

अथ दैवज्ञ-वराहमिहिराचार्य-विरचितं

बृहज्जातकम् ।

भट्टोत्पलीय-संस्कृत-विद्युत्या विलसितम्

वाराणसेय-संस्कृतविश्वविद्यालयीयसम्मानितप्राध्यापक—

त्रिस्कन्धज्यौतिषाचार्य

पं० श्रीसीतारामभा-कृत—

सोदाहरणोपनि सारार्थदीपिकाख्यया

भाषाव्याख्यया सहितम् ।

—❀❀❀—

प्रकाशकः—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुक्सेलर,

राजादरवाजा, ब्राह्म-कचौड़ीगली,

वाराणसी-१

प्रकाशक —

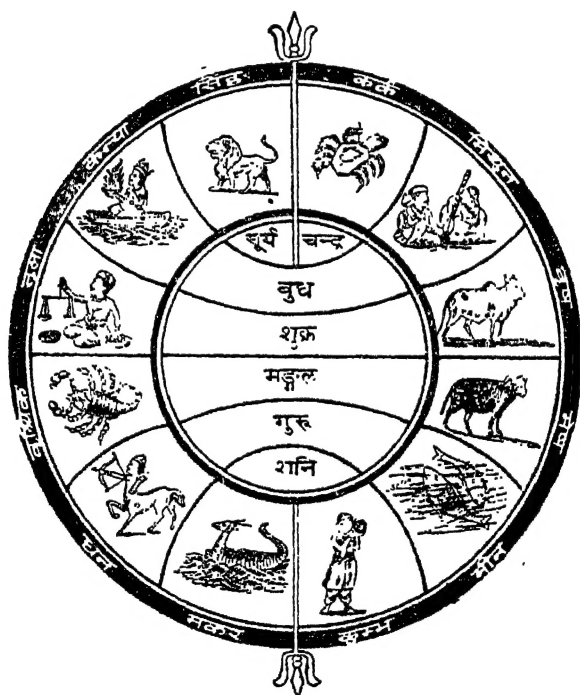
ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुक्सेलर

राजादरवाजा, ब्राह्म-कचौड़ीगली,

वाराणसी ।

[सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित]

राशिस्वरूप तथा राश्यधिपति चक्र



मुद्रक—

शिवशंकर प्रेस,

बुलानाला, वाराणसी ।

प्राकथन

समस्त विद्याओं को 'वेद' कहते हैं, जो छः भागों में विभक्त करके 'वेदाङ्ग' माने जाते हैं। उनमें 'ज्योतिष' नेत्ररूप है, यथा महर्षि नारद—

सिद्धान्त-संहिता-होरा-रूपं स्कन्धत्रयात्मकम् ।

वेदस्य निर्मलं चतुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम् ॥

विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कमे न सिद्ध्यति ।

तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥”

ज्योतिष के 'गणित' और 'फलित' दो भाग हैं। गणित को निश्चयात्मक होने के कारण 'सिद्धान्त' कहते हैं, यथा सूर्य-सिद्धान्त आदि। फलित को अनुमान वल पर कहे जाने के कारण 'सम्भावनात्मक' कहा गया है। उसके दो भाग हैं, जिसमें सामूहिक फल कहे गये हैं, उसको 'संहिता' और जिसमें वैयक्तिक [प्रत्येक मानव अथवा प्राणियों के अपने-अपने जन्म-लग्न (होरा) से भिन्न-भिन्न] जीवन-फल कहे गये हैं वह 'होरा' अथवा 'जातक स्कन्ध' कहा जाता है।

मानव समाज को सामूहिक फल समझने की उत्तनी अभिलषि नहीं रहती है, जितनी अपने जीवन के शुभाशुभ भविष्य-फल जानने की। अधुना पाश्चात्य वैज्ञानिक-जन भी भारतीय फलित ज्योतिष का अनुसन्धान करके निश्चित विश्वास कर चुके हैं कि पृथ्वी पर होनेवाली शुभ किंवा अशुभ (सुभिक्ष अथवा दुर्भिक्ष) समस्त घटनाएँ आकाशस्थ ग्रहों और नक्षत्रों के परस्पर किरण-सम्पर्क से ही होती हैं। ग्रह और नक्षत्र प्रकाशवान् होने के कारण 'ज्योतिस्' कहे जाते हैं। कोशकारों ने कहा है—

“ज्योतिर्ब्रह्मणि विश्वेशे नक्षत्रग्रहमण्डले ।”

तत्सम्बन्धी विचार को “ज्योतिष” कहते हैं।

ज्योतिषशास्त्र का प्रयोजन—

शुभाशुभफलादेशो ज्योतिःशास्त्र-प्रयोजनम् ।

स च लग्न-बलाधीनः कथितः पूर्वसूरिभिः ॥

भ-चक्रस्य समा भागा उक्ता द्वादश राशयः ।

राशीनामुद्यो लग्नं ते तु मेष-वृषादयः ॥” स्पष्टार्थः ।

प्राणियों के जन्म समय में अपने उदय-क्षितिज में जो राशि (नक्षत्र-ग्रह-समूह) लगी रहती है उसे 'लग्न' कहते हैं। इसका विस्तृत वर्णन 'सोदाहरण लग्नविवेक' नामक पुस्तक में देखिये। यहाँ हम ऋषियों द्वारा वर्णित (प्राणियों के जीवन-फल रूप) 'जातक शास्त्र' का ही संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

शास्त्रों-पुराणों में उन्हीं को 'ऋषि-पद' दिया गया है, जिनका उपदेश-वचन निश्चित रूप से सत्य हो और जो स्वयं विषय-ज्ञान में निःसन्देह हों। जैसे पूर्व समय में नारद, वसिष्ठ आदि, एवं कलियुगादि में पराशर। इन सबके वचन प्रायः सत्य ही हुवा करते थे, अतः इनके उपदेशों को लोग 'शास्त्र' मानते हैं और उनपर विश्वास करते हैं।

किन्तु विज्ञानजनों के मत से विश्वास करने योग्य शास्त्र वही है, जो 'प्रमाण-सङ्गत' हो। प्रमाण तीन— शब्द, अनुमान और प्रत्यक्ष। जहाँ केवल 'शब्द' (आगम अथवा आस पुरुष वचन) प्रमाण है, उस पर विश्वास करने वाले 'आस्तिक', अन्यथा 'नारितिक' माने जाते हैं। कहा भी है—

“यान्यप्रत्यक्षशास्त्राणि विवादस्तत्र केवलः ।

प्रत्यक्षं ज्योतिषं यत्र प्रमाणं तारका ग्रहाः ॥”

प्रत्यक्ष होने पर ही किसी प्रमाण पर विश्वास होता है। अब शब्द प्रमाण के सम्बन्ध में मुनिये। यथा—

“काश्यां सरणान्मुक्तिः ।”

“कोटिजन्मान्तं पापं गङ्गास्नानान् प्रणश्यति ।”

इसे कोई प्रत्यक्ष नहीं दिखता मज्जा या देव सकता है। ज्योतिष शास्त्र में ऋषि-वचन भी प्रत्यक्ष से विशद ही तो अमान्य सपना जाता है। यथा कमलाकर—

“सुयुक्ता न सुयुक्ताप्यत्र शास्त्रे भवेत् कार्ययस्य या दृग्विहङ्गा ।”

पराशर के अनन्तर राजा विक्रम के समान्तर वराहमिहिर ने ऋषिप्रणीत जातक ग्रन्थों के विषय को स्व-निर्मित अनेक छन्दों में रचना करके इनका नाम “होराशास्त्र” रखा। किन्तु इसको कुछ विमनुज जानकर, इसमें वर्णित मनस्त विषयों को संक्षेप में छोटा बनाकर लिखा, जिमनी अवतरणिका के वाक्य ये हैं—

“होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरोक्ष्य शास्त्राणि ।

यत् तस्याप्यार्याभिः सारमहं संप्रवक्ष्यामि ॥”

छोटा होने के कारण जिसका नाम ‘स्वराजातक’ और पूर्व रचित होराशास्त्र का नाम लोगों ने ‘वृहज्जातक’ रखा। ऋषि से इतर आचार्यों द्वारा प्रणीत जातक ग्रन्थों में यही (वृहज्जातक) श्रेष्ठ माना जाता है। मानव धर्मवश वराहमिहिर को ऋषि प्रणीत वचनों के अर्थ में कहीं-कहीं भ्रम और सन्देह हुआ। जैसे ‘वियोनिजन्मा-व्याय’ में मुनियों ने मानवी के गर्भ में वियोनि (मनुष्येतर पशु-पक्षी की आकृति, कहीं तरु-गुल्म) का जन्म देखकर उन-उन योगों का उल्लेख किया। एवं ‘आकृति-योगा-ध्याय’ में वज्र, यय आदि योगों में सन्देह हुआ तो ऋषियों पर आश्रय-वचन लिखा —

“पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः ।

चतुर्थे भवने सूर्याञ्ज-सितौ भवतः कथम् ? ॥” इत्यादि ।

फिर भी, अ-य जातक ग्रन्थों से यह बहुत अंश में श्रेष्ठ है। हमने इनका समाधान अपनी हिन्दी व्याख्या में सयुक्ति कर दिया है। विशेष मेरे रचित “ज्योतिषशास्त्र महत्त्व” नामक ग्रन्थ में देखिये ।

यद्यपि इसकी संस्कृत टीका ‘भट्ट उदाल’ ने कर दी है, तथापि उनको भी भ्रान्ति-स्थल में भ्रान्ति बनी ही रही। इतना हाने पर भी संस्कृतज्ञों के लिए वह अतीव उपयुक्त है ।

सकल साधारण जन के बोधार्थ ‘सार्थदीपिकाख्या’ हिन्दी व्याख्या मैंने कर दी है। मुझे विश्वास है कि इस व्याख्या से समस्त जनता को अवश्य लाभ पहुँचेगा ।

अन्त में, इस टीका के सम्पादन में, उदाहरण, गणित एवं प्रूफ संशोधन में पं० जुहरीलाल विश्वम्भर, वेद-ज्योतिषाचार्य, अर्जुन झा ‘पथिक’ बी० ए०, ज्योतिषा-चार्य एवं मन्नालाल अभिमन्यु, एम० ए० ने सहयोग दिया। अतः इन तीनों व्यक्तियों के प्रति आभार प्रकट करता हुआ मानव-धर्मवश अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ ।

वाराणसी, गुरुवार
संवत् २०३१ चैत्र शुक्ल ५ }

बिनीत—
सीताराम भा

अथ बृहज्जातकस्य विषयानुक्रमणिकाः ।

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| [राशिप्रभेदोऽध्यायः १] | |
| टीकाकृता मङ्गलाचरणम् | ३ |
| ग्रन्थकृता मङ्गलाचरणं तत्र वाक्- सिद्धिकथनम् | ४ |
| एतच्छास्त्रानर्थक्यपरिहारपूर्वकमन्य- शास्त्रेभ्य एतस्य गुणवत्त्वम् | ६ |
| होराशब्दव्युत्पत्तिरुक्तम् | ७ |
| कालावयवसंकेतकथनम् | ८ |
| राशिस्वरूपविज्ञानम् | १० |
| राशिनवांशद्वादशांशेशाः | १२ |
| त्रिशांशाधिपाः | १४ |
| मेषादीनां संज्ञाः | १५ |
| ग्रहस्य क्षेत्रहोरादिसंज्ञाः | १६ |
| राशीनां रात्रिदिनसंज्ञात्वं पृथोदय- शीर्षोदयत्वं च | १७ |
| राशिकूरसौम्यादिविभागः | १८ |
| मतान्तरेण होराद्वेषकाणपतिलक्षणम् | २० |
| ग्रहाणामुच्चनीचविभागः | २१ |
| ग्रहाणां वर्गोत्तममूलत्रिकोणपरिज्ञानं | २३ |
| लनादिद्वादशस्थानानां तन्वादिसंज्ञाः | |
| तृतीयादीनां चोपचयसंज्ञाः | २४ |
| पुनरपि होरादीनां संज्ञाः | २५ |
| केन्द्रसंज्ञास्तद्राशिबलं च | २५ |
| परिशिष्टस्थानानां संज्ञाः | २६ |
| होरादिराशीनां बलं तत्प्रमाणं च | २७ |
| राशिपर्णाः | ३० |
| [ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायः २] | |
| कालाख्यस्य पुरुषस्य आत्मादिग्रह- मयभावकथनम् | ३२ |
| सूर्यादिग्रहाणां संज्ञाः | ३३ |
| गुर्वादिग्रहाणां संज्ञाः | ३४ |
| ग्रहवर्णाः | ३४ |
| ग्रहवर्णस्वाम्यादिकथनम् | ३५ |
| ग्रहाणां प्रकृतिविभागादिकथनम् | ३६ |
| ग्रहाणां ब्राह्मणादिवर्णाधिपत्यं गुणविभागश्च | ३७ |
| चन्द्रार्कयोः स्वरूपम् | ३८ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| अङ्गारकवृन्दयोः स्वरूपम् | ३८ |
| जीवशुक्रयोः स्वरूपम् | ३९ |
| शनैश्चरस्वरूपादिकथनम् | ३९ |
| ग्रहाणां स्थानादिकथनम् | ४० |
| ग्रहाणां दृष्टिस्थानानि निसर्गदृष्टि- फलानि च | ४२ |
| ग्रहाणां कालादिनिर्देशः | ४४ |
| मित्रामित्रविधिः | ४५ |
| सत्योक्ता द्वयेकानुक्तमपा ग्रहस्य सुहृन्मध्यस्थशत्रवश्च | ४९ |
| तात्कालिकमित्रामित्रविभागः | ५० |
| तत्र तादस्थानदिग्बलम् | ५३ |
| चेष्टाबलम् | ५४ |
| ग्रहाणां कालबलं नैसर्गिकबलं च | ५५ |
| [वियोनिजन्माध्यायः ३] | |
| वियोनिजन्मनिश्चयज्ञानम् | ५७ |
| तज्ज्ञाने योगान्तरम् | ५९ |
| वियोनावुपयोगी चतुष्पदानां राश्या- त्मकोऽङ्गविभागम् | ५९ |
| वियोनिवर्णज्ञानम् | ६० |
| पक्षिजन्मज्ञानम् | ६१ |
| वृक्षजन्मज्ञानम् | ६२ |
| वृक्षविशेषज्ञानम् | ६२ |
| भूतशुभाशुभज्ञानं संख्यां च | ६३ |
| [निषेकाध्यायः ४] | |
| ऋतुनिरूपणमृतावपि स्त्रीपुरुषसंयोग- ज्ञानम् | ६४ |
| मैथुनज्ञानप्रकारः | ६५ |
| गर्भसम्भवासम्भवज्ञानम् | ६६ |
| स्त्रीपुंसयोरारोधानकालवशादाप्रस- वावधि यावच्छुभाशुभज्ञानम् | ६६ |
| निषिक्तस्य पित्रादीनां शुभाशुभज्ञानम् | ६७ |
| आवाहनकालवशान्मातुर्भरणयोगद्वयम् | ६८ |
| तत्र योगान्तरम् | ६८ |
| अन्ययोगान्तराणि | ६९ |
| आधानलग्नवशान्मातुः शस्त्रनिमित्तो | |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|--|------------|
| मरणयोगो गर्भस्रावश्च | ६९ |
| गर्भपुष्टिज्ञानम् | ७० |
| निषेधाकालाद्यन्यतमज्ञानात्पुंस्त्री- | |
| विभागज्ञानम् | ७० |
| पुंजन्मयोगात्तरम् | ७२ |
| क्लीबजन्मयोगाः | ७२ |
| द्वित्रिगर्भसम्भवयोगाः | ७३ |
| अधिकगर्भसम्भवयोगाः | ७४ |
| गर्भस्य मासाधिपाः | ७५ |
| अधिकाङ्गभूकचिरलब्धगिरां | |
| सम्भवयोगाः | ७६ |
| सदन्तकुब्जजडजन्मयोगाः | ७७ |
| वामनहीनाङ्गयोगी | ७८ |
| विकलजन्मज्ञानम् | ७९ |
| प्रस्ताधानकाले योगवशात्प्रसव- | |
| कालज्ञानम् | ८० |
| धृतस्य गर्भस्य वर्षत्रयवर्षादशज्ञानं | ८३ |
| [जन्मविधिनामाध्यायः ५] | |
| पितुः सन्निधावसन्निधौ वा जात इति | |
| ज्ञानम् | ८४ |
| तत्रान्येऽपि योगाः | ८७ |
| सर्पज्ञानं सर्पवेष्टितज्ञानं च | ८७ |
| एकजरायुवेष्टितयोज्जन्मज्ञानम् | ८८ |
| नालवेष्टितजन्मज्ञानम् | ८८ |
| जारजातज्ञानम् | ८९ |
| जातस्य पितृबन्धनयोगाः | ९० |
| पोतगताप्रसवज्ञानम् | ९० |
| उदकमध्यप्रसवज्ञानम् | ९१ |
| बन्धनागारावटयोः प्रसवज्ञानम् | ९१ |
| क्रीडागृहादिप्रदेशेषु प्रसवज्ञानम् | ९१ |
| श्मशानादिप्रदेशेषु प्रसवज्ञानम् | ९२ |
| प्रसवदेशज्ञानम् | ९३ |
| यद्योगे जातो मात्रा त्यज्यते यत्र त्य- | |
| क्तोऽपिदीर्घायुःसुखीचभवति तज्ज्ञानं | ९३ |
| यद्योगे जातो मात्रा त्यक्तो विनश्यति | |
| तज्ज्ञानम् | ९४ |
| प्रसवगृहज्ञानम् | ९५ |
| दीपसम्भवासम्भवभूतप्रदेशप्रसवादि- | |
| ज्ञानम् | ९५ |
| दीपगृहद्वारज्ञानम् | ९७ |

| विषयाः | पृष्ठांकाः |
|-------------------------------------|------------|
| सूतिकागृहस्वरूपज्ञानम् | १०० |
| समस्तवस्तुनि क सूतिकागृहमिति | |
| तद्विज्ञानम् | १०२ |
| सूतिकागृहे शयनज्ञानम् | १०२ |
| उपमूतकासंख्या | १०४ |
| जातस्य स्वरूपादिज्ञानम् | १०५ |
| अङ्गविभागे पुराशिविभागः | १०६ |
| अङ्गज्ञानप्रयोजनम् | १०८ |
| जातस्य द्रवज्ञानम् | १०९ |
| [अरिष्टाध्यायः ६] | |
| अरिष्टयोगद्वयम् | ११० |
| अन्येऽरिष्टयोगाः | १११ |
| अरिष्टान्तराणि | ११२-११६ |
| अनुक्तमरणकालानामरिष्टयोगानां | |
| कालपरिज्ञानम् | ११७ |
| [आयुर्द्वयाध्यायः ७] | |
| मयमवनादिमतेन ग्रहस्य परमा- | |
| युष्प्रमाणम् | ११८ |
| परमनीचस्थितानामायुर्द्वयज्ञानम् | ११९ |
| ग्रहाणां स्वायुषश्चक्रपातेनापहानिः | १२५ |
| लग्नस्थः पापश्चक्रपातवदायुषोऽयम- | |
| पहरति तस्यांशप्रमाणज्ञानम् | १२६ |
| पुरुषादीनां परमायुर्ज्ञानम् | १३१ |
| यद्योगे जातस्य परमायुर्भवति | |
| तद्योगज्ञानम् | १३२ |
| परमनायुर्द्वयस्य दूषणम् | १३५ |
| अन्याचार्यमतेन दूषणम् | १३७ |
| जीवशर्मन्त्याचार्ययोर्मतेन ग्रहाणा- | |
| मायुरानयनम् | १४२ |
| सत्यमतेन ग्रहायुरानयनम् | १४६ |
| सत्यमतेनायुःकर्मविशेषः | १४७ |
| सत्यमतेन लग्नायुःकरणम् | १४८ |
| मयादिमतमुपन्यस्य सत्यमतस्यै- | |
| वाङ्गीकरणम् | १५१ |
| यद्योगे जातस्य आयुष्प्रमाणं न | |
| ज्ञायते तज्ज्ञानम् | १५२ |
| [दशान्तर्दशाध्यायः ८] | |
| पुरुषस्य जीवितान्तःस्थितसुखदुःखयोः | |
| परिच्छेदार्थं ग्रहदशापरिज्ञानम् | १५४ |

विषयाः पृष्ठाङ्काः

| | |
|-----------------------------------|-----|
| दशकालप्रमाणं केन्द्रस्थानानामपि | |
| दशकमज्ञानं च | १५६ |
| अन्तर्दशायां ग्रहज्ञानम् | १५७ |
| दशापरिकल्पनाज्ञानम् | १५९ |
| शुभाशुभज्ञानार्थं दशादेः स्वफला- | |
| नुरूपाः संज्ञाः | १६७ |
| पुनर्दशान्तर्दशायाः संज्ञाः | १६८ |
| पुनरपि दशादेः संज्ञाः | १६९ |
| लग्नदशायां शुभाशुभज्ञानम् | १७० |
| नैसर्गिकग्रहाणां दशाकालज्ञानम् | १७१ |
| दशान्तर्दशाशुभाशुभज्ञानम् | १७३ |
| अन्तर्दशाकालं चन्द्राक्रान्तराशि- | |
| वशेन शुभज्ञानम् | १७७ |
| अर्कदशायां शुभाशुभफलप्रदर्शनम् | १७८ |
| चन्द्रदशायां शुभाशुभफलम् | १७९ |
| भौमदशायां शुभाशुभफलम् | १८० |
| बुधदशायां शुभाशुभफलम् | १८० |
| जीवदशायां शुभाशुभफलम् | १८१ |
| शुक्रदशायां शुभाशुभफलम् | १८२ |
| शनिश्चरदशायां शुभाशुभफलम् | १८२ |
| शुभाशुभफलानां विषयविभागो | |
| लग्नदशाफलं च | १८३ |
| अन्येषामपि फलानां दशास्वत्तिदेशः | १८४ |
| अगणितजातकस्यापि शरीरच्छा- | |
| यातो ग्रहदशाज्ञानम् | १८५ |
| शुभाशुभफलदशाज्ञानार्थमन्तरा- | |
| त्मनः स्वरूपम् | १८६ |
| एकग्रहदत्तसदृशफलयोनींशो भिन्न- | |
| दत्तानां बहूनामपि पक्तिरेवे- | |
| त्येतत्कथनम् | १८८ |

[अष्टवर्गाध्यायः ६]

| | |
|---------------------|-----|
| अर्काष्टकवर्गः | १८९ |
| चन्द्राष्टकवर्गः | १९१ |
| भौमाष्टकवर्गः | १९२ |
| बुधस्याष्टकवर्गः | १९३ |
| जीवस्याष्टकवर्गः | १९४ |
| शुक्रस्याष्टकवर्गः | १९६ |
| सौरस्याष्टकवर्गः | १९७ |
| अष्टकवर्गफलनिरूपणम् | १९८ |

विषयाः पृष्ठाङ्काः

[कर्माजीवाध्यायः १०]

| | |
|----------------------------------|-----|
| प्रकारद्वयेन ग्रहाणां धनदातृत्व- | |
| कथनम् | २०४ |
| वृत्तिकथनम् | २०६ |
| जीवांशे धनप्राप्तकहेतवः | २०६ |
| धनागमज्ञानम् | २०७ |

[राजयोगाध्यायः ११]

| | |
|-----------------------------|---------|
| यवनजीवशर्मणोर्मतम् | २०८ |
| द्वात्रिंशद्वाजयोगाः | २०९ |
| चतुश्चत्वारिंशद्वाजयोगाः | २१० |
| पञ्च योगाः | २१३ |
| अन्ये राजयोगाः | २१३-२१७ |
| एतेष्वराजवंशजोऽपि राजा भव- | |
| तीत्येतत्कथनम् | २१७ |
| पुनः राजयोगकथनम् | २१८-२२१ |
| राजयोगजातस्य राज्यावाप्ति- | |
| कालज्ञानम् | २२१ |
| भोगिनां शबरदम्युस्वामिनां च | |
| जन्मज्ञानम् | २२२ |

[नाभसयोगाध्यायः १२]

| | |
|-------------------------------------|-----|
| द्वित्रिचतुर्विकल्पजानां योगानां | |
| संख्याज्ञानम् | २२३ |
| आश्रययोगाः दलयोगो च | २२४ |
| अन्यराश्रययोगत्रयं दलयोगद्वयं च | |
| व्याख्यातं तद्धेतुः | २२६ |
| गदाद्याः पञ्चाकृतियोगाः | २२७ |
| वज्रादिसंज्ञं योगचतुष्टयम् | २२८ |
| वज्रादयः पूर्वशास्त्रानुसारेण कृता | |
| इत्येतत्कथनम् | २२९ |
| यूपेषुशक्तिदण्डाख्ययोगाः | २३० |
| नौकूटच्छत्राचापार्धचन्द्राख्यं योग- | |
| पञ्चकम् | २३० |
| समुद्रचक्राख्यो योगो | २३१ |
| संख्यायोगसप्तकम् | २३२ |
| आश्रययोगत्रय-दलयोगद्वय-योग- | |
| जातानां फलम् | २३२ |
| अन्ययोग आश्रययोगश्चेत्तदा | |
| तस्य निराकरणम् | २३३ |
| गदादियोगजानां स्वरूपम् | २३४ |
| वज्रादियोगजातानां स्वरूपम् | २३४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------------|-------------|
| यूपादिजातानां स्वरूपम् | २३५ |
| नौकृटादिजातानां स्वरूपम् | २३६ |
| अर्धचन्द्रादिजातानां स्वरूपम् | २३६ |
| दामिनीपाशवैदारशूलजातानां स्वरूपम् | २३७ |
| युगगोलजातस्य स्वरूपम् | २३७ |

[चन्द्रयोगाध्यायः १३]

| | |
|-----------------------------------|-----|
| अर्कास्केन्द्रपणफरापोक्लिमस्थे | |
| चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २४२ |
| सफलोधियोगाख्ययोगः | २४३ |
| मुनफादियोगचतुष्टयम् | २४४ |
| मुनफादीनां प्रकारज्ञानम् | २४६ |
| मुनफानफायोगजानां स्वरूपम् | २५१ |
| दुरुधुराकेमद्रुमजानां स्वरूपम् | २५२ |
| ग्रहवशाद्विशेषफलम् | २५२ |
| शनी योगकर्तरि पुरुषस्य चन्द्रे च | |
| दृश्यादृश्ये स्वरूपम् | २५३ |
| लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्योपचये शुभ- | |
| ग्रहास्तस्य फलम् | २५४ |

[द्विग्रहयोगाध्यायः १४]

| | |
|-------------------------------------|-----|
| आदित्ये चन्द्रादियुक्ते जातस्य स्व० | २५४ |
| भौमादियुक्ते चन्द्रे स्वरूपम् | २५५ |
| अङ्गारके बुधादियुक्ते स्वरूपम् | २५६ |
| बुधे जीवादियुक्ते जीवे च शुक्रा- | |
| दियुक्ते स्वरूपम् | २५७ |
| शुके धनैश्चरयुक्ते जातस्य स्वरूपं | |
| द्विग्रहयोगफलं च | २५७ |

[प्रब्रज्यायोगाध्यायः १५]

| | |
|---------------------------------|-----|
| चतुरादिभिरेकस्थग्रहेर्जातस्य | |
| प्रब्रज्यायोगः | २५८ |
| अस्तमितान्यजितान्यदृष्टानां | |
| ग्रहाणामपवादः | २६० |
| चतुरादिभिरेकस्थविना प्रब्रज्या- | |
| योगाः | २६२ |
| यद्योगे जातः शास्त्रकरो राजापि | |
| दीक्षितस्तद्योगद्वयम् | २६२ |

[ऋक्षशीलाध्यायः १६]

| | |
|--------------------------------------|-----|
| चन्द्रभुज्यमाननक्षत्रशीलं तत्राश्वि- | |
| नीभरण्योर्जातस्य स्वरूपम् | २६४ |
| कुत्तिका-रोहिण्योर्जातस्य स्वरूपम् | २६४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------------|-------------|
| मृगशीर्षार्द्रयोर्जातस्य स्वरूपम् | २६५ |
| पुनर्वसौ जातस्य स्वरूपम् | २६५ |
| पुष्याश्लेषयोर्जातस्य स्वरूपम् | २६५ |
| मघापूर्वाफाल्गुन्योः जातस्य | |
| स्वरूपम् | २६६ |

| | |
|---------------------------------|-----|
| उत्तरा-हस्तयोर्जातस्य स्वरूपम् | २६६ |
| चित्रास्वात्योर्जातस्य स्वरूपम् | २६६ |
| शिशाखानुरावयोः स्वरूपम् | २६७ |
| ज्येष्ठा मूलयोर्जातस्य स्वरूपम् | २६७ |
| पूर्वोत्तराषाढयोः स्वरूपम् | २६७ |
| श्रवणघनिष्ठयोः स्वरूपम् | २६८ |
| शत० पू० जातस्य स्वरूपम् | २६८ |
| उत्तराभाद्रपदेवत्योः स्वरूपम् | २६८ |

[चन्द्रराशिशीलाध्यायः १७]

| | |
|----------------------------------|-----|
| मेघस्थचन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २६९ |
| वृषस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २७० |
| मिथुनस्थे चन्द्रे स्वरूपम् | २७० |
| कर्कटस्थे चन्द्रे स्वरूपम् | २७१ |
| सिंहस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २७१ |
| कन्यास्थे चन्द्रे स्वरूपम् | २७२ |
| तुलास्थे चन्द्रे स्वरूपम् | २७३ |
| वृश्चिकस्थे जातस्य स्वरूपम् | २७३ |
| धनुःस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २७४ |
| मकरस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २७४ |
| कुम्भस्थे चन्द्रे स्वरूपम् | २७५ |
| मीनस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | २७५ |
| उत्तराशिस्य स्वरूपम्, अपवादश्च | २७६ |

[राशिशीलाध्यायः १८]

| | |
|------------------------------|-----|
| मेघवृषगतेऽर्के स्वरूपम् | २७७ |
| मि० क० सि० क० गतेऽर्के स्व० | २७७ |
| तु० वृ० ध० मकरस्थे स्वरूपम् | २७८ |
| कुम्भमीनगतेऽर्के स्वरूपम् | २७९ |
| मेघवृश्चिकवृषतुलास्थे कुजे | |
| जातस्य स्वरूपम् | २७९ |
| मिथुनकन्या कर्कस्थे स्वरूपम् | २८० |
| सिंहघनिमीनकुम्भमकरस्थे कुजे | |
| स्वरूपम् | २८० |
| मेघवृश्चिकतुलावृषगते बुधे | |
| जातस्य स्वरूपम् | २८१ |
| मिथुनकर्कटस्थे बुधे स्वरूपम् | २८२ |
| सिंहकन्यागते बुधे स्वरूपम् | २८२ |

| विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| मकरकुम्भधन्विमीनगते स्वरूपम् | २८२ |
| मेषवृषतुलामिथुनकन्यागते जीवे स्वरूपम् | २८३ |
| कर्कटमिहधन्विमीनकुम्भमकरस्थे जीवे स्वरूपम् | २८४ |
| मेषवृश्चिकवृषतुलागते शुक्रे जातस्य स्वरूपम् | २८४ |
| मिथुनकन्यामकरकुम्भस्थे शुक्रे जातस्य स्वरूपम् | २८५ |
| मेषवृश्चिककन्यागते सौरे स्वरूपम् | २८६ |
| वृषतुलाकर्कसिहस्थे स्वरूपम् | २८६ |
| धन्विमर्मनमकरकुम्भगते स्वरूपम् | २८७ |
| मेपादिषु चन्द्राक्रांतराश्रयुक्तस्वरूपातिदेशः | २८७ |

[दृष्टिफलाध्यायः १६]

| | |
|--|-----|
| मेषवृषमिथुनकर्कटस्थे चन्द्रे कुजादिदृष्टे स्वरूपम् | २९१ |
| सिहकन्यातुलावृश्चिकस्थे चन्द्रे बुधादिदृष्टे स्वरूपम् | २९२ |
| धन्विमकरकुम्भमीनस्थे स्वरूपम् | २९३ |
| होराद्रेष्काणव्यवस्थितस्य चन्द्रस्य ग्रहदृष्टिफलम् | २९४ |
| मेषवृश्चिकवृषतुलाशकस्थे चन्द्रे सूर्यादिदृष्टे फलम् | २९५ |
| मिथुनकन्याकर्काशस्थे स्वरूपम् | २९६ |
| सिहधन्विमीनांशस्थे स्वरूपम् | २९६ |
| मकरांशस्थे कुम्भांशस्थे वा चन्द्रे सूर्यादिदृष्टे फलम् | २९७ |
| अस्यैव दृष्टिफलविशेषम् | २९८ |

[भावाध्यायः २०]

| | |
|---|-----|
| रश्मिस्तनुघनगतस्य फलम् | २९९ |
| ३-४-५-६ भावस्थस्य फलम् | ३०० |
| सप्तमादिस्थेऽर्के स्वरूपम् | ३०० |
| लग्नादिषष्टांशभावस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपम् | ३०१ |
| सप्तमादिस्थे चन्द्रे स्वरूपम् | ३०२ |
| लग्नादिस्थयोर्भौमबुधयोजितस्य स्वरूपम् | ३०२ |
| लग्नादिस्थजीवस्य फलम् | ३०३ |
| लग्नादिस्थस्य शुक्रस्य फलम् | ३०४ |

| विषयः | पृष्ठांकाः |
|---|------------|
| लग्नादिस्थसौरस्य फलम् | ३०४ |
| लग्नादिभावेषु व्यवस्थितानां सर्वग्रहाणां फलविशेषम् | ३०५ |
| ग्रहकुण्डलिकाफलविशेषम् | ३०७ |
| [आश्रययोगाध्यायः २१] | |
| एकादिवृद्ध्या स्वग्रहग्रहाणां मित्रक्षेत्रगानां च फलम् | ३०७ |
| उच्चगतस्यैकस्यापि मित्रदृष्टस्यैकोत्तरवृद्ध्या नीचशत्रुस्थानानां च फलम् | ३०८ |

| | |
|--|-----|
| कुम्भलग्नजातस्य शुभफलम् | ३०९ |
| होरास्थानां ग्रहाणां फलम् | ३१० |
| पुनरपि होरागतफलम् | ३१० |
| द्रेष्काणावस्थानाच्चन्द्रफलम् | ३११ |
| मेषादिनवांशजातस्य स्वरूपम् | ३१२ |
| स्वत्रिंशांशकस्थयोर्भौमसौरयोः फलम् | ३१२ |
| स्वत्रिंशांशजीवबुधस्वरूपम् | ३१३ |
| स्वत्रिंशांशस्थस्य शुक्रस्य भौमादित्रिंशांशस्थयोश्चन्द्रार्कयोः स्वरूपम् | ३१४ |

[प्रकीर्णकाध्यायः २२]

| | |
|--|-----|
| प्रकीर्णग्रहाणां कारकसंज्ञाः | ३१५ |
| अस्यैवोदाहरणम् | ३१५ |
| अन्यत्कारकलक्षणम् | ३१६ |
| कारकसंज्ञाप्रयोजनम् | ३१७ |
| यद्योगे यौवने सुखी भवति स दशेशः फलपाकश्च | ३१७ |
| अष्टकवर्गफलस्य कालः | ३१८ |

[अनिष्टाध्यायः २३]

| | |
|-------------------------------|---------|
| दारसुतहीनजन्मज्ञानम् | ३१९ |
| जीवित एव भार्यामरणयोगज्ञानम् | ३२० |
| विकलनेत्रदारजन्मयोगाः | ३२१ |
| सुतकलत्रवन्ध्यापितजन्मज्ञानम् | ३२२ |
| परयुवतिगजन्मज्ञानम् | ३२२ |
| अन्येऽप्यनिष्टयोगाः | ३२३-३२९ |

[स्त्रीजातकाध्यायः २४]

| | |
|---|-----|
| पुरुषज-मोक्तफलातिदेशः | ३३० |
| वपुस्तु लग्नेन्दुगमिति कथनम् | ३३१ |
| भौमर्के लग्नगे चन्द्रगे वा भौमादि-त्रिंशांशजातास्वरूपम् | ३३२ |

विषयाः पृष्ठांकाः

| | |
|--|-----|
| बुधशुक्लेत्रयोरन्यत्रे लगने चन्द्रगे | |
| वा भीमादित्रिंशत्शकजातायाः | |
| स्वरूपम् | ३३२ |
| चन्द्राद्यन्यतमे लगने चन्द्रगे वा | |
| भीमादित्रिंशत्शकजातायाः स्वरूपम् | ३३३ |
| एतदशकैरिति प्रदर्शनम् | ३३४ |
| यद्योगे जाता पुत्रपाकारसंस्थाभिः सह | |
| भद्रं समर्पति तद्योगद्वयज्ञानम् | ३३४ |
| अस्तमये पतित्वेति विज्ञानम् | ३३५ |
| सप्तमस्थाने चन्द्रस्य फलदर्शनाभा- | |
| वाज्जाताया लक्षणम् | ३३६ |
| यद्योगे जाता मात्रा सह वंशकी | |
| भवतीत्यादियोगाः | ३३७ |
| यस्याः सप्तमस्थाने शून्यं तस्याः | |
| शय्यंगारकशुक्लेत्रे तदंशे वा | |
| यादृशी तज्ज्ञानम् | ३३७ |
| चन्द्रराशी सप्तमे तत्तवांशे जीवराशी | |
| वादित्रराशी च तद्विज्ञानम् | ३३८ |
| चन्द्रशुक्लबुधानां द्वौ त्रयो वा लग्नगता | |
| यस्यास्तत्स्वरूपम् | ३३८ |
| पूर्वं भवति मरणमिति कथनम् | ३३९ |
| यद्योगे जाता पुरुषिणी ब्रह्मादिनी | |
| च भवति तज्ज्ञानम् | ३४० |
| यद्योगे प्रव्रजति तज्ज्ञानम् | ३४० |
| [नैर्याणिकाध्यायः २५] | |
| अष्टमस्थाने ग्रहदृष्टे विद्युक्ते युक्ते | |
| वा यथा म्रियते तद्विज्ञानम् | ३४१ |
| शंलाग्राभिघातेषु यैर्योगैर्म्रियते ते | |
| योगाः | ३४२ |
| अन्येऽपि मृत्युयोगाः | ३४३ |
| यस्य जन्मनि पूर्वोक्तयोगा न अष्टम- | |
| स्थाने च कश्चिद्ग्रहस्तद्दृष्टिश्च | |
| नास्ति तन्मृत्युकारणम् | ३४८ |
| भूमी मरणज्ञानम् | ३४८ |
| मृतस्य शरीरपरिणामः | ३५० |
| कस्माद्धोकादागत इति कथनम् | ३५१ |
| मृतस्य गतेर्ज्ञानम् | ३५२ |
| [नष्टजातकाध्यायः २६] | |
| प्रसूतिकालज्ञानम् | ३५३ |
| वधनुं ज्ञानम् | ३५४ |

विषयाः पृष्ठाङ्काः

| | |
|-------------------------------------|-----|
| अयने विलोमे ग्रहज्ञानादनुज्ञानं | |
| मासज्ञानं च | ३५७ |
| चन्द्रमानतिथिज्ञानोपायः | ३५९ |
| अर्थान्तरेण मासज्ञानम् | ३६० |
| अन्यथा जन्मराशिज्ञानम् | ३६२ |
| जन्मराशी ज्ञाने लग्नज्ञानम् | ३६३ |
| प्रकारान्तरेण लग्नानयनम् | ३६४ |
| प्रसक्तकाले तात्कालिकं लग्नं कृत्वा | |
| लिखापिण्डाकृतस्य गुणकारविज्ञानं | ३६५ |
| नक्षत्रानयनम् | ३६७ |
| वर्षाद्यानयनम् | ३६८ |
| कस्माद्वाशेः कस्यानयनं कार्यं- | |
| मिति कथनम् | ३६८ |
| दिवा रात्रिजातज्ञानम् | ३७० |
| प्रकारान्तरेण नक्षत्रानयनम् | ३७१ |
| नष्टजातकोपसंहारः | ३७३ |

[द्रेष्काणाध्यायः २७]

| | |
|-------------------------------------|-----|
| मेघद्रेष्काणत्रयजातस्य स्वरूपज्ञानं | ३७४ |
| वृषद्रेष्काणस्वरूपम् | ३७५ |
| मिथुनद्रेष्काणस्वरूपम् | ३७६ |
| कर्कद्रेष्काणस्वरूपम् | ३७७ |
| सिंहद्रेष्काणस्वरूपम् | ३७८ |
| कन्याद्रेष्काणस्वरूपम् | ३७९ |
| तुलाद्रेष्काणस्वरूपम् | ३८० |
| वृश्चिकद्रेष्काणस्वरूपम् | ३८२ |
| धनिवद्रेष्काणस्वरूपम् | ३८३ |
| मकरद्रेष्काणस्वरूपम् | ३८४ |
| कुम्भद्रेष्काणस्वरूपम् | ३८५ |
| मीनद्रेष्काणस्वरूपम् | ३८६ |

[उपसंहाराध्यायः २८]

| | |
|---------------------------------|-----|
| अध्यायसंग्रहः | ३८८ |
| शेषाध्यायसंग्रहो यत्रायात्रायां | |
| निबद्धाध्यायसंग्रहश्च | ३८९ |
| शेषाध्यायस्य कीर्तनम् | ३८९ |
| शेषवस्तुसंग्रहः | ३८९ |
| कालविशेषेण कुकृतात्पकृतयोश्च | |
| पुनः | ३९० |
| करणे सतां प्रार्थना | ३९० |
| स्वपित्रादिनामकथनम् | ३९० |
| पूर्वभ्यो नमस्कारः | ३९१ |

❀ दैवज्ञवरवराहमिहिराचार्यविरचितम् ❀

बृहज्जातकम्

दैवज्ञमष्टोत्पलकृतं अङ्गलाचरणपूर्वकं वस्तुनिर्देश—

ब्रह्माजशङ्कररवीन्दुकुजज्ञजीवशुकार्कपुत्रगणनाथगुरुन्म्रणस्य ।

यः सङ्ग्रहोऽर्कवरलाभविशुद्धबुद्धेरावन्तिकस्य तमहं विवृणोमि कृत्स्नम् ॥१॥

यच्छास्त्रं सविता चकार विपुलैः स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषां

तस्योच्छिन्नमभ्यात्पुनः कलियुगे संसृत्य यो भूतलम् ।

भूयः स्वल्पनरं वगाद्मिहिरव्याजेन सर्वं व्यधा-

दिस्थं यं प्रवदन्ति मोक्षकुशलास्तस्मै नमो भास्वते ॥ २ ॥

वराहमिहिरोद्भौ सुबहुभेदतोयाकुले

ग्रहक्षेपणयादसि प्रचुरयोगरत्नोज्ज्वले ।

भ्रमन्ति परितो यतो लघुधियोऽर्थलुब्धास्ततः

करोमि विवृतिप्लवं निजधियाहमत्रोत्पलः ॥ ३ ॥

इह शास्त्रे कानि सम्बन्धाभिधेयप्रयोजनानि भवन्तीत्युच्यते । वाच्य-
वाचकलक्षणः सम्बन्धः वाच्योऽर्थो वाचकः शब्दः । अथवोपायोपेयलक्षणः
संबन्धः उपायस्त्विदं शास्त्रमुपेयो यद्विज्ञानम् । अथवा आत्रह्यादिविनिःसृतमिदं
वेदांगमिति सम्बन्धः । राशिस्वरूपहोराद्वेष्काणनवांशकदादशभागत्रिशङ्का-
परिज्ञानग्रहस्वरूपग्रहराशिबलावलवियोनिजन्माधानपरिज्ञानजन्मकालविस्मा-
पनप्रभावकथनारिष्टायुर्दायदशातर्दशाष्टकवर्गकर्माजीवराजयोगनाभसयोगचन्द्र-
योगद्विग्रहादियोगप्रत्रज्याराशिशीलदृष्टिफलभावफलाश्रयप्रकीर्णानिष्टयोगस्त्री-
जातकनिर्याणनष्टजातकद्वेष्काणगुणरूपमभिधेयम् । लोकानां प्राक्कर्मविपाक-
व्यञ्जकत्वं प्रयोजनम् । सत्पात्रशुभाशुभकथनादिहलोकपरलोकसिद्धिरिति
प्रयोजनम् । किमेभिरुक्तैरित्यत्रोच्यते । यस्मान्नृणां श्रोतॄणां संबन्धाभिधेय-
प्रयोजनकथनाच्छास्त्रविषये श्रद्धा जायत इति । तथा चोक्तमत्रार्थे—“सिद्धिः
श्रोतृप्रवृत्तीनां संबंधकथनाद्यतः । तस्मात्सर्वेषु शास्त्रेषु संबंधः पूर्वमुच्यते ॥
किमेवात्राभिधेयं स्यादिति पृष्टस्तु केनचित् । यदि न प्रोच्यते तस्मै फलशून्यं
तु तद्भवेत् ॥ सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत्प्रयोजनं
नोक्तं तावत्तत्केन गृह्यते ॥” इति । कस्यास्मिन्शास्त्रेऽधिकार इत्यत्रोच्यते ।
द्विजस्यैव । यतस्तेन षडंगो वेदोऽध्येतव्यो ज्ञातव्यश्च । कान्यङ्गानीत्युच्यते—
“शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गतिः । छन्दसां लक्षणं चैव षडंगो
वेद उच्यते ॥” इति । तथा चोक्तमंगे—“वेदा हि यज्ञार्थमभिवृत्ताः काला-
नुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः । यस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स
वेद यज्ञान् ॥” इति । ज्योतिःशास्त्रं वेदांगमेव । ननु कुतो ज्योतिःशास्त्रस्य

वेदांगत्वमुक्तम् । तदुच्यते । चन्द्रसूर्योपरागसंक्रातिव्यतीपातवैधृतगजच्छायै-
कादशयमावस्यादिपुराणकालकथनात् यज्ञानां कालव्यञ्जकत्वात् अन्येषां श्रुति-
स्मृतिपुराणोक्तानां कर्मणां कालकथनाच्चाग्न्य वेदांगत्वमेव । तथा च भास्कर-
सिद्धान्ते—“वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता रक्षाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण । शास्त्रा-
दस्मात्कालबोधो यतः स्याद्वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ॥ शब्दशास्त्रं मुखं
ज्योतिषं चक्षुर्गो श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ । दा तु शिखास्य वेदस्य सा
नासिका पादपद्मद्वयं छन्द आग्नेयुधैः ॥ वेदचक्षुः किलेदं स्मृतज्योतिषं मुख्यता
चांगमध्येऽस्य तेनोच्यते । संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषांगेन हीनो
न क्रिच्छिन्नरः ॥ तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्तत् । यो
ज्योतिषं वेत्ति नरः स सम्यग्धर्मार्थमोक्षलभते यशश्च ॥” सतामयमाचारो
यच्छास्त्रप्राम्भेवभिमतदेवतायाः प्रसादात्तन्मस्कारेण तत्स्तुत्या तद्वक्ति-
विशेषेण चाभिप्रेतार्थसिद्धिर्वाङ्मति । तद्यमप्यावन्तिकाचार्यः श्रीबराहमिहिर-
नामा द्विजोऽर्कलब्धवरप्रसादो ज्योतिःशास्त्रसंग्रहकृद्गणितस्कंधादनन्तरं
होरास्कंधं चिकीर्षुः शेषविज्ञोपशांत्यर्थं भगवतः सूर्यादात्मगामिनीं वाक्सिद्धि-
शादूखविक्रीडितेनाह—

मूर्तित्वे परिकल्पितः शशभृतो वर्त्माऽपुनर्जन्मना-

मात्मेत्यात्मविदां क्रतुश्च यजतां भर्तामरज्योतिषाम् ।

लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिबिभ्रथानेकधा यः श्रुतो

वाचं नः स ददात्वनेककिरणस्त्रैलोक्यदीपो रविः ॥ १ ॥

मूर्तित्वे इति ॥ स रविर्भगवानादित्यो नोऽस्मभ्यं वाचं गिरं ददातु प्रय-
च्छतु । कीदृशो रविः ? अनेककिरणः न एकः किरणो यस्यासावनेककिरणः प्रभूत-
रश्मिः । सहस्ररश्मित्यर्थः । पुनः किंभूतः ? त्रैलोक्यदीपः त्रयो लोकास्त्रैलोक्यं
भूर्भुवः स्वर्गलोक्य तत्र दीपः प्रकाश्यसाधर्म्यात् । तथा मूर्तित्वे परिकल्पितः शश-
भृतः शशं प्राणिविशेषं बिभर्ति चारयतीति शशभृच्चंद्रमास्तस्य मूर्तित्वे शरीरत्वे
परिकल्पितः । “शशिनो मूर्तिरादित्यः” इति पर्यवस्थापितः यतो जलमयश्चन्द्रः
प्रकाशशून्यः प्रोक्तः तस्मिन्स्तरणिक्किरणप्रतिफलनादितरस्य ज्योत्स्नाप्रसरविस्तरः ।
यस्मादुक्तमाचार्येणैव बृहत्संहितायाम् “नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिर्मानोः सितं
भवत्यधम् । स्वच्छाययान्यदसितं कुंभस्येवातपस्थस्य ॥ त्यजतांऽर्कतलं शशिनः
पश्चादवलंबते यथा शौक्यम् । दिनकरवशात्तर्धेदोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः ॥
सलिलमये शशिनि रवेर्दीवितयो मूर्छितास्तमो नैशम् । क्षपयन्ति दपेणादरजि-
हिता इव मंदिरस्यांतः ॥” इति । तथा च भास्करसिद्धान्ते । “तरणिक्किरण-
संगादेव पीयूषपिंडो दिनकरादिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति । तदितरदिशि
बालाकुंतलस्यामलश्रीर्षट इव निजमूर्तिच्छाययेवातपस्थः ॥” इति । तथा च
वेदे । “सुषुप्तः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमाः” इति । अथवा शशभृतो महादेवस्य मूर्तित्वे

परिकल्पितः । यतोऽसौ भगवानष्टमूर्तिः 'क्षितिजलपवनहुताशनयजमानाकाश-
सोमसूर्याख्या' इत्यष्टमूर्तयस्तस्य महादेवस्यातो माहेश्वरी मूर्तिरादित्य इति ।
शशिमृत इति साधुपाठः । तथा वर्त्मानोऽपुनर्जन्मनां न पुनर्जन्म विद्यते येषां
तेऽपुनर्जन्मानो मुक्तास्तेषां वर्त्तमानां मार्गः मोक्षद्वारमित्यर्थः । यतो द्विविधो मार्गः
देवयानाख्यः पितृयाणाख्यश्च । तत्र पितृयाणमार्गद्वारभूतश्चंद्रमाः 'येन स्वर्ग-
गामिनः स्वर्गं गच्छन्ति । मोक्षद्वारं सूर्यः । यतः सूर्यमंडलं भिक्ष्वा मोक्षभाजो
भवन्ति मोक्षद्वारं गच्छन्तीति । तथा च श्री भारते भगवान्वाक्यसः । 'स्वर्गद्वारं
प्रजाद्वारं त्रिविष्टपम् ।' इति । आत्मेत्यात्मविदाम् आत्मानं विदति जानन्ती-
त्यात्मविदो योगिनस्तेषां स एवात्मा चित्तत्वम् । तेजोरूपी प्राणरूपेण हृदया-
ंतरस्थितः । तथा च श्रुतेः । "सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च" इति । जगतो
जङ्गमस्य तथुषः स्थावरस्य सूर्य एवात्मा । क्रतुश्च यजताम् । यजमानानां स
एव क्रतुर्यज्ञः । यत उक्तं मनुना । "अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥" इति । भर्तामरड्योतिषाम् ।
अमरा देवाः ज्योतीषि ग्रहनक्षत्रादीनि तेषां भर्ता प्रभुः, प्रधान इत्यर्थः । यतः
सर्वे एव देवयोनयस्तस्योपस्थानं कुर्वन्ति । ग्रहनक्षत्राणां च केवलं तद्वशेन
नित्योदयास्तमयाः । यत उक्तम् । "तेजसां गोलकः सूर्यो ग्रहार्णव्यं बुगोलकाः ।
अभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपताः ॥" इति । एवं गुणाधिव्यादमर-
ज्योतिषां प्रभुः । लोकानां प्रलयोद्भवस्थितिविभुरिति । लोकाः भूलोकादयस्तेषां
प्रलये विनाशे उद्भवे उत्पत्तौ स्थितौ पालने विभुर्विष्णुः । भगवतोऽतीत-
वर्तमानभाविकालत्रयपरिच्छेदचिह्नभूतत्वात् । चशब्दोऽत्रावधारणे । अनेकधा
यः श्रुतौ । श्रुतौ वेदे योऽनेकधानेकप्रकारैः पठ्यते । तथा च श्रुतिः । "इंद्रं
मित्रं वरुणमग्निमादुरयो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा
जदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः" इति ॥ १ ॥

सम्पादक (भाषाभाष्यकार) कृत मङ्गलाचरण—

श्रीमद्वराहमिहिरोदितजातकं सद्

भट्टोत्पलेन विवृतं सुरभाषया यत् ।

तच्चाल्पसंस्कृतविदामवबोधनार्थं

नत्वा श्रियं नरगिरा विवृणोमि चाहम् ॥

भाषा—जो सुषामय चन्द्रमण्डल में प्रतिविम्बित होकर विद्यमान है, अपुनर्ज-
न्माजो (मुपुक्षुश्री) का मार्ग, आत्मज्ञानियों की आत्मा, याजक (यज्ञ करने वालों)
का यज्ञ स्वरूप, अमर (इन्द्रादि देव), ज्योति (आकाशस्थ तेजोमय पिण्ड नक्षत्र
और ग्रह) के भर्ता (पोषक), समस्त लोक (विश्व) के प्रलय, उत्पत्ति और
पालन करने में समर्थ, वेदों में अनेक नाम से वर्णित, अनेक किरण (अनन्त तेजो-
रश्मि वाले) एवं गुणविशिष्ट वे (भगवान् सूर्य) हमें वाक्शक्ति प्रदान करें ॥ १ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ बहुत सी पुस्तकों में 'शशिमृतः' पाठ है किन्तु वह प्रामादिक है,

क्योंकि तीनों देव एवं तीनों लोक के रचयिता को महादेव का एक अङ्ग कहना असङ्गत है । अतः (शशभृतः) यही पाठ युक्त है । चन्द्रबिम्ब में प्रतिबिम्बित होकर रात्रि में भी प्रकाशक होने के कारण “त्रैलोक्यदीप” विशेषण उपपन्न होता है ॥ १ ॥

अधुनास्य शास्त्रस्य परप्रणोतत्वादानर्थक्यं परिजिहीर्षुरन्यशास्त्रेभ्योऽस्य गुणवत्त्वं प्रदर्शयन्ञ्जार्दूलविक्रीडितेनाह—

भूयोभिः पटुबुद्धिभिः पटुधियां होराफलज्ञप्तये

शब्दन्यायसमन्वितेषु बहुशः शास्त्रेषु दृष्टेष्वपि ।

होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामहं

स्वल्पं वृत्तविचित्रमर्थबहुलं शास्त्रप्लवं प्रारभे ॥ २ ॥

भूयोभिरिति ॥ होरायास्तन्त्रं होरातन्त्रम् अथवा होरा एव तन्त्रं तदेव महार्णवो दुष्परात्वात् तन्त्रयते तार्यते येनार्थस्तन्त्रम् । अहं होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानां शास्त्रप्लवं प्रारभे । होरातन्त्रमेव महार्णवो महासमुद्रस्तत्प्रतरणे प्रतरणविषये भग्नोद्यमानाम् भग्नोद्साहानां शास्त्रप्लवं प्रारभे करोमि । शास्त्रमेव प्लवः शास्त्रप्लवस्तं शास्त्रप्लवम् । यथा प्लवस्तितीर्थूणां परपारगमनमाशु संपादयति, तथेदमपि । होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामित्यस्य प्लवेन साधर्म्यम् । केन कृते होरातन्त्रमहार्णवप्रतरणे भग्नोद्यमानामित्यत आह—भूयोभिरिति । भूयोभिर्बहुतरैः । किमूतैः ? पटुबुद्धिभिः पटुः पटुवो बुद्धियेषां ते पटुबुद्धयः प्रचुराः प्रज्ञास्तैः । शास्त्रेषु दृष्टेषु चिरं विचारितेषु सत्स्वपि । किं भूतेषु शब्दन्यायसमन्वितेषु । शब्दानां न्यायः शब्दन्यायः मीमांसा । तदुक्तम् । “शब्दानामेव सा शक्तिस्तर्को यः पुरुषाश्रयम् ॥” इति । अथवा शब्दाश्च न्यायाश्च शब्दन्यायाः शब्दोऽर्थवान्यायो मीमांसा तैः समन्वितेषु संयुक्तेषु । किमेकवारं दृष्टेषु नेत्याह—बहुशः इति । बहुशः बहून्वारा-न्याससमासैर्बहुप्रकारै रचितेष्वित्यर्थः । किमर्थं दृष्टेषु । पटुधियां होराफल-ज्ञप्तये । चतुरबुद्धीनां होराफलावबोधनाय प्राक्तनकमेविपाको होरा होरायाः फलं होराफलं तस्य ज्ञप्तिस्त्वफलं शुभाशुभं तज्ज्ञानाय । किम्भूतं शास्त्रप्लवं ? स्वल्पं लघुप्रथम् । पुनः किम्भूतं ? वृत्तविचित्रम् । वृत्तैः शार्दूलविक्रीडितप्रभृतिभिर्विचित्रं रम्यं तस्मात्स्वल्पतयैवास्य गुणवत्त्वम् । यतस्तेषामत्राप्युद्यमभङ्गो न भवति । स्वल्पमित्यनेन ग्रहणधारणसुखतां प्रदर्शयति । तथा च हस्तिवैद्य-करो वीरसेनः । “समासोक्तस्य शास्त्रस्य सुखं ग्रहणधारणे ॥” वृत्तविचित्र-मित्यनेन सूक्ततां प्रदर्शयति । ननु स्वल्पशास्त्रस्य स्वल्पार्थतैव भविष्यतीत्याह—अथबहुलं बह्वभिधेयम् । अत एव पूर्वविरचितशास्त्रेभ्योऽस्य गौरवम् । अन्यथा हि शास्त्रसम्भवात्पुनरुक्ततादोषः स्यात् । एतदुक्तं भवति । प्रागभिहितशास्त्रा-गयातिविस्तृतान्यतस्तेषु भग्नोद्यमास्तदर्थमहं शास्त्रप्लवं प्रारभे । ननु कदाचि-दरूपग्रहणतया ते भग्नोद्यमास्तत्कुतो लब्धम् । यथा पूर्वशास्त्राणां महत्त्वाद्भग्नोद्य-

मास्तदर्थमिदमल्पमित्यत इदमाह । पटुधियामित्यनेनैतत्प्रतिपादितं भवति । न हि ते बुद्धिहीनत्वात्तेषु शास्त्रेषु भग्नोद्यमाः किं तर्हि शास्त्रदोषादन्यथाऽत्रापि तेषामुद्यमभङ्गः स्यात् । प्लवमपि स्वल्पं च लघुवृत्तमदीर्घं वृत्तविचित्रं रम्यमर्थ-बहुलं वित्तपरिपूर्णमेवंविधं तृतीपूर्णामतिसुखादहं भवतीति ॥ २ ॥

भाषा—अपनी-अपनी तीक्ष्ण बुद्धियों से शब्द (व्याकरण), न्याय (भीमांसादि तर्क सहित) अनेक शास्त्रों को पुनः पुनः अवलोकन करने पर भी होरातन्त्र (जन्मलग्नवश जातक के फलज्ञापक शास्त्र) रूप महार्णव (अपार समुद्र) के पार पाने में भग्न हो गये हैं उद्यम (यत्न) जिनके ऐसे परिपक्व बुद्धि वाले विज्ञजनों के होरा फल (जन्मलग्न से जीवनफल) ज्ञानार्थ मैं वृत्तों (नाना छन्दों) से लक्षित छोटे शास्त्ररूप प्लव (नौका) का निर्माण करना प्रारम्भ करता हूँ ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—जैमिनि, पराशरादि ऋषियों ने प्राणियों के जन्मलग्नवश शुभाशुभ जीवनफल को विस्तृत रूप से कहा है । वराहमिहिराचार्य ने उन सब फलों का सार स्वल्प में बताया है ।

जैसे समुद्र में पार होने के लिये बड़े बड़े जहाज बनाये जाते हैं, किन्तु उनको चलाने में अन्य व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है, किन्तु छोटी नौका पर चढ़कर अकेला भी, भोजनादि सामग्री साथ में लेकर, धीरे-धीरे चलाकर समुद्र पार कर जाता है, उसी प्रकार मुनिजनों से निर्मित शास्त्र में, गुरुजनों की सहायता की अपेक्षा होती है किन्तु इस छोटे से शास्त्र को बार-बार देखने से विज्ञजन होराफल को जान सकते हैं ॥ २ ॥

अधुना होराशास्त्रस्य पुराकृतकर्मविपाकव्यञ्जकत्वं वर्णद्वयपरिहारेण शब्दव्युत्पत्तिं प्रदर्शयन्निन्द्रवज्रयाह—

होरेत्यहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति पूर्वापरवर्णलोपात् ।

कर्माजितं पूर्वभवे सदादि यत्तस्य पक्तिं समभिव्यनक्ति ॥ ३ ॥

होरेति ॥ होरार्थं शास्त्रं होरा तामहोरात्रविकल्पमेके वाञ्छन्ति । अहश्च रात्रि-आहोरात्रो होराशब्देनोच्यते । तस्य विकल्पो विकल्पना । एके अन्ये होरां वाञ्छन्तीत्यर्थः । कथमुच्यते ? पूर्वापरवर्णलोपात् । अहोरात्रशब्दस्य पूर्वं वर्णोऽकारोऽपरवर्णश्च त्रकारस्तयोर्लोपमदर्शनं कृत्वा होराशब्दोऽवशिष्यते । किमर्थं ? पुनरहोरात्रशब्दाद्धोराशब्दो व्युत्पाद्यते इति । अत्रोच्यते । मेषादयो द्वादश लग्नराशयोऽहोरात्रान्तर्भूताः लग्नस्य च कालवशाज्ज्ञानं लग्नवशाच्छुभाशुभ-ज्ञानम् । अतोऽहोरात्राश्रयत्वात्त एव होराशब्दो व्युत्पाद्यते एतदेवाचार्य-स्याप्यभिप्रेतम् । यतः परमतप्रतिषिद्धमनुमतमिति । तथा च सारावल्याम्—“आद्यन्तवर्णलोपाद्धोरास्माकं भवत्यहोरात्रात् । तत्प्रतिषिद्धः सर्वो ग्रहभगण-श्चिन्त्यते यस्मात् ॥” किमस्य प्रयोजनमित्याह—कर्माजितमिति । पूर्वभवे प्राग्जन्मनि यत्सदादि शुभमशुभं मिश्रं च कर्माजितं तस्य पक्तिं पाकं सम्यक् अभिव्यनक्ति प्रकटीकरोति । तथा च लघुजातके । “यदुपचितमन्यजन्मनि

शुभाशुभं तस्य कर्मणः पक्तिम् । व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दोष इव ॥” इति । ननु शुभस्याशुभस्य वावश्यं भाविनः किं व्यनक्ति ? उच्यते । द्विविधं शुभाशुभं दृढकर्मोपाजितमदृढकर्मोपाजितं च । तत्र दृढकर्मोपाजितस्य दशाफलं पाककमेण व्यनक्ति । अशुभं दशाफलं ज्ञात्वा यात्रादेः पारहारः कर्तव्यः । शुभं ज्ञात्वा यात्रादेरतिशयेन दानम् । अदृढकर्मोपाजितस्याष्टकवर्गण फलव्यक्तिः । तच्चाशुभं ज्ञात्वा शान्त्यादिभिरुपशमं नयेत् । तथा च यवने-
श्वरः । “यद्यद्विधानं नियतं प्रजानां प्रदत्तं योगप्रभवं प्रसूतौ । भाग्यानि तानोत्प-
मिशब्दयन्ति वार्तानियोगेति दशा नराणाम् ॥ तदप्यभिज्ञैर्द्विविधं निरुक्तं
स्थिराख्यमौत्पातिकसंज्ञितं च । कालक्रमाज्जातकनिश्चितं यत्कमोपसर्पि
स्थिरमुच्यते तत् ॥ सप्तप्रहाणां प्रथितानि यानि स्थानानि जन्मप्रभावानि
सद्भिः । तेभ्यः फलं चारप्रदकमस्या दद्युर्यदोत्पादकसंज्ञितं तत् ॥” अनेनस्थि-
रस्य शान्त्यादिभिरुपशमः प्रदर्शितो भवति । उक्तं च भगवता व्यासेन ।
“विहन्त्याद्दुःखलं दैवं पुरुषेण विपरिचिता ॥” इति ॥ ३ ॥

भाषा—(होरा शब्द व्युत्पत्ति-कोशकारों ने लग्न और राश्यर्ष को होरा नाम से कहा है । क्योंकि—अहोरात्र के बीच में १२ लग्न और २४ राश्यर्ष बीतते हैं इसलिये यहाँ वराहमिहिर कहते हैं—) होरा—यह ‘अहोरात्र’ का ही विकल्प है ऐसा बहुत से आचार्यों का कहना है । क्योंकि “अहोरात्र” इस चार अक्षर से बने शब्द में से पूर्व-
वर्ण ‘अ’ और अपर वर्ण ‘त्र’ को निकाल देने से बीच में ‘होरा’ ही दो वर्ण बचते हैं । यह (होरा शास्त्र) प्राणियों के पूर्व जन्म में उपाजित शुभ या अशुभ कर्मों के फल प्राप्ति समय को सूचित करता है ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—इसलिये लोग जन्म या गर्भाधान कालिक लग्न और यहाँ की स्थिति बनाकर रखते हैं जिसको जन्मपत्र कहा जाता है । जिससे शुभ फल प्राप्ति समय में थोड़ा भी यत्न करने से अवश्य शुभ फल का लाभ होता है । और अशुभ फल प्राप्ति समय में धर्मानुष्ठानादि द्वारा अशुभ फल को टाल दिया जाता है, अथवा थोड़े समय (स्वल्प चिन्तन) में ही अशुभ फल का भोग हो जाता है ॥ ३ ॥

अधुना व्यवहारार्थ कालाख्यस्य पुरुषस्य मेषादिराशिपूर्वकं शिरःप्रभृत्यङ्ग-
विभागं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कालाङ्गानि वराङ्गमाननपुरो हृत्क्रोडवासोभृतो

वस्तिर्व्यञ्जनमूरुजानुयुगले जङ्घे ततोऽङ्घ्रिद्वयम् ।

मेषाश्विप्रथमा नवर्चचरणाश्चक्रस्थिता राशयो

राशिचेत्रगृहर्चमानि भवनं चैकार्थसम्प्रत्ययाः ॥ ४ ॥

कालाङ्गानीति ॥ कालस्याङ्गानि कालाङ्गानि तानि च मेषप्रभृतिराशयो नवर्चचरणा नवभिर्ऋक्षवरणैर्नक्षत्रपादैः प्रमाणं येषां ते । अश्विप्रथमाः अश्विनीतः प्रभृति नवनक्षत्रपादा एकैकस्य प्रमाणम् । मेषप्रभृतिराशयोऽश्विप्रथमै-

नक्षत्रपादैर्युक्ता इत्यर्थः । तथाभूता राशयो धातुरव्ययाः । तथा च यवनेश्वरः ।
 “द्वे द्वे सपादे भवनं गते” इति । तथा च भगवान्नागिः । “अश्विनी भरणी मेषः
 कृत्तिकापाद एव च । तत्पादत्रितयं ब्रह्मं वृषः सौम्यदलं तथा ॥ सौम्यार्द्धमाद्रा
 मिथुनं त्वदित्याश्चरणत्रयम् । तत्पादः पुष्यमाश्लेषा राशिः कर्कटकः स्मृतः ॥
 पित्र्य भाग्यमथार्यम्णः पादः सिंहः प्रकीर्तितः । तत्पादत्रितयं कन्या हस्तश्चित्रार्ध-
 मेव च ॥ तुला चित्रादलं स्वातिर्विशाखचरणत्रयम् । तत्पादं मित्रदैवत्यं ज्येष्ठा
 वृश्चिक उच्यते ॥ मूलमाष्यं तथा धन्वी पादो विश्वेश्वरस्य च । तत्पादत्रितयं
 श्रोत्रं मकरो वासवं दलम् ॥ तदलं वारुणं कुम्भस्तथाजाचराणत्रयम् । तत्पाद
 एको मीनः स्यादहिर्बुध्न्यं च रेवता ॥” चक्रे स्थिताश्चक्रस्थिताः, चक्रस्थिता
 राशयः, अथवा चक्रवत् स्थिताः, अनेन संस्थानमेषां प्रदर्शितं भवति । तत्र
 कालाख्यस्य वराङ्गं शिरो मेषः । आननं मुखं तद्वृषः । उरो वक्षो मिथुनम् ।
 तद् हृदयं कुलारः कर्कटः । क्रोडमुदरं सिंहः । वासोभृत् कटिः कन्या । वस्ति-
 र्नाभिव्यञ्जनयोरन्तरे तुला । व्यञ्जनं येन पुंस्त्वं व्यञ्ज्यते लिङ्गं तत् वृश्चिकः ।
 ऊरुयुगलं धन्वी । जानुयुगलं मकरः । जंघे द्वे कुम्भः । अंग्रिद्वयं पादयुगलं
 मीन इति । तथा च बादरायणः । “मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विधातुर्वक्षो
 भवेन्मिथुनं हृदयं कुलीरः । सिंहस्तथोदरमथो युवतिः कटिश्च वस्तिस्तुला-
 भृदथ मेहनमष्टमं स्यात् ॥ धन्वी चास्योरुयुगं मकरो जानुद्वयं भवति ।
 जङ्घाद्वितयं कुम्भः पादौ मत्स्यद्वयं चेति ॥” अस्य प्रयोजनम् । जन्मकाले यो
 राशि पापग्रहाकान्तः स कालाख्यस्य पुरुषस्य यस्मिन्नङ्गे स्थितस्तत्राङ्गे जात-
 स्योपवातो वक्तव्यः । यत्र सौम्यः स्थितस्तत्र पुष्टिरिति । तथा च सारावल्याम् ।
 “कालनरस्यावयवान्पुरुषाणां कल्पयेत्प्रसवकाले । सदसद्ग्रहसंयोगात्पुष्टा-
 त्सोपद्रवांश्चापि” ॥ इति । राशिक्षेत्रमित्यादि । एषां च प्रत्येकस्य राशिरिति
 संज्ञा तस्यैव पर्यायनामानि । क्षेत्रं गृहमृत्तं भं राशिश्च क्षेत्रं च गृहं च
 ऋत्तं च भं च तानि राशिक्षेत्रगृहर्त्तभानि भवनं च गृहत्वाद्भवनग्रहणे सिद्धे
 यत्पुनर्भवनग्रहणं कृतं तत्सर्वेषां गृहपर्यायाणां ग्रहणार्थम् । ऋत्तत्वादिपि
 भग्नग्रहणे सिद्धे यत्पुनर्भग्नग्रहणं तेनैव दर्शयति । यत्र यत्र होरा रात्रौ भग्नग्रहणमृत्त-
 ग्रहणं वा तत्र तत्र राशेरेव ग्रहणं स्यान्न तु नक्षत्रस्य । एते राश्यादयः शब्दा
 एकार्थसम्प्रत्यया एकार्थाभिधायका इत्यर्थः ॥ ४ ॥

भाषा—(समस्त श्रुति स्मृति पुराणों में इस चरावर विश्व को परब्रह्म परमेश्वर का
 व्यक्त स्वरूप बताया गया है, जिसको ब्रह्माण्ड या भचक्र कहा जाता है । यहाँ उनके
 अंग विभागों को बताया जाना है—) भचक्र में मेष और अश्विनी के प्रारम्भ बिन्दु से
 (भचक्र के तुल्य १२ विभाग) नक्षत्रों के ९, ९ चरण (सवा-दो सवा-दो नक्षत्रों) के
 १२ राशियाँ भगवान् कालपुरुष के मस्तकादि चरण पर्यन्त अङ्ग हैं, जैसे—मेष मस्तक,
 वृष मुख, मिथुन छाती, कर्क हृदय, सिंह पेट, कन्या कटि, तुला वस्ति, वृश्चिक लिङ्ग,
 धनुर्बाह, मकर ठेढ़ना, कुम्भ फीली (धावा) और मीन पैर है ।

विशेष अर्थ—बराहमिहिर ने लघुजातक में कहा है कि—जैसे कालपुरुष के अङ्ग में राशियाँ हैं उसी प्रकार प्राणियों के अङ्ग में भी समझना । जन्म समय में जिस अंग की राशि में शुभ ग्रह हो उस अंग की पुष्टि, और जिस अंग की राशि में पाप ग्रह हो उस अंग की विकलता (व्रण आदि रोगभय) से युक्त समझना चाहिए ॥ ४ ॥

अधुना राशियों स्वरूपविज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगदं सवीणं

चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः ।

तौली ससस्यदहना प्लवगा च कन्या

शेषाः स्वनामसदृशाः स्वचराश्च सर्वे ॥ ५ ॥

मत्स्याविति ॥ मीनो राशिर्मत्स्यौ मत्स्यद्वयमन्योन्यं पुच्छाभिमुखम् । एतत् कुतो लभ्यते ? उच्यते । तस्यैवोभयोदयत्वात् । वक्ष्यति च । “लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम्” इति । घटी कुम्भः, स्कन्धासक्तरिक्तघटधारी पुरुषः कुम्भः । मिथुनो नृमिथुनराशिर्मिथुनं नृमिथुनं स्त्रीपुमांसौ तन्मिथुनम् । सगदं सवीणं पुमान्सगदः स्त्री सवीणा । चापी नरोऽश्वजघनः धन्वी राशिश्चापी विद्यमानधन्वा नरोऽश्वजघनः । अश्वस्तुरगस्तस्येव जघनं पादं यस्य सोऽश्वजघनः, चतुष्पादित्यर्थः । मकरो मृगास्यो मकरो राशिर्मकर एव स च मृगास्यो मृगमुखः । तौलीत्यादि । तुला विद्यमानतुलः पुरुषः । कन्या कुमारी प्लवगा नौकास्था ससस्यदहना । सस्यं च दहनश्च तौ सस्यदहनौ ताभ्यां सह वर्तत इति ससस्यदहना । शेषा राशयो मेषवृषकर्कटसिंहवृश्चिकाः स्वनामसदृशाः स्वसंज्ञाविहिताकृतयः । तद्यथा—मेषो मेषः, वृषो वृषभः, कर्कटः कुलीरो जलचरप्राणी, सिंहः केसरी, वृश्चिको वृश्चिकः कीटजातिः । तथा च सत्यः । “छागो वृषभो वीणागदाधरं मिथुनमंभसि कुलीरः । सिंहः शैले कन्या नौसंस्था दीपसस्यकरा । पुरुषस्तुलाधरो वृश्चिकोऽथ धन्वी नरो ह्यांत्यार्धः । मकरार्धं मृगपूव कुम्भी पुरुषो भूषो मीनः ॥” स्वचराश्च सर्वे, सर्वे द्वादश राशयः स्वचराः स्वेषु स्वेषु स्थानेषु चरन्ति, यथादृष्टस्थाननिवासिन इत्यर्थः । तद्यथा—मेषवृषवारण्यौ दिवारात्रौ ग्राम्यौ मिथुनं ग्राम्यः कर्कटोऽम्बुचरः सिंह आरण्यः कन्या दशितदेशविभागा तुला परण्यवीथिस्थः वृश्चिकः श्वभ्रचारी धन्वी ग्राम्यः मकरस्य पूर्वभाग आरण्योऽन्यो जलचरः कुम्भो ग्राम्यः मीनो जलचर इति । तथा च यवनेश्वरः—

“आद्यः स्मृतो मेषसमानमूर्तिः कालस्य मूर्द्धा गदितः पुराणैः ।

सोऽजाविका सञ्चरकन्दराद्रिस्तेनाग्निधात्वाकररत्नभूमिः ॥ १ ॥

वृषाकृतिस्तु प्रथितो द्वितीयः स वक्त्रकण्ठायतनं विधातुः ।

वनाद्रिसानुद्विपगोकुलानां कृषीवलानामधिवासभूमिः ॥ २ ॥

वीणागदाभन्मिथुनं तृतीयः प्रजापतेः स्कंधभुजांसदेशे ।

अनर्तको गायनशिल्पकस्त्रीक्रीडारतिर्द्युतविहारभूमिः ॥ ३ ॥

कर्क कलीगाकृतिरम्बुसंस्थो वक्षःप्रदेशे विहितश्च धातुः ।
 केदारवापीपुलिनानि तस्य देवाङ्गनारम्यविहारभूमिः ॥ ४ ॥
 सिंहश्च शैले हृदयप्रदेशे प्रजापतेः पञ्चममाहुराद्याः ।
 तस्याटवीदुर्गगुहावनाद्रिव्याधावनीदुर्गवनप्रदेशाः ॥ ५ ॥
 प्रदीपिकां गृह्य करेण कन्या नौस्था जले षष्ठमिति ब्रुवन्ति ।
 कालार्थधीरा जठरं विधातुः सशाङ्बला स्त्री रतिशिल्पभूमिः ॥ ६ ॥
 वीथ्यां तुला पण्यधरो मनुष्यः स्थितः स नाभोकटिवस्तिदेशे ।
 शुक्लार्थवीथ्यापणपट्टनाध्वसार्थाधिवासोन्नतसस्यभूमिः ॥ ७ ॥
 श्वभ्रोऽष्टमो वृश्चिकविग्रहस्तु प्रोक्तः प्रभोर्मेढ्रगुदप्रदेशे ।
 गुहाबिलश्चभ्रविषाश्मगुप्तिर्वल्मीककीटाजगराहिभूमिः ॥ ८ ॥
 धन्वी मनुष्यो ह्यपश्चिमाध्वस्तमाहुरूरु भुवनप्रणेतुः ।
 समस्थितव्यस्तसमस्तवाजिसुरास्त्रभृद्यज्ञरथाश्वभूमिः ॥ ९ ॥
 मृगार्द्धपूर्वो मकरोम्बुगार्धो जानुप्रदेशे तमुशन्ति धातुः ।
 नदीवनारण्यसरोद्रथनूपश्वभ्राधिवासो दशमः प्रदिष्टः ॥ १० ॥
 स्कन्धे तु रिक्तः पुरुषस्य कुम्भो जंघे तमेकादशमाहुरार्याः ।
 शुष्कोदकाधारकुशस्य पक्षी स्त्रीशौण्डिको द्यूतनिवासभूमिः ॥ ११ ॥
 जले तु मीनद्वयमन्त्यराशिः कालस्य पादौ विहितौ वरिष्ठौ ।
 स पुण्यप्रदेवद्विजतीर्थभूमिर्नदीसमुद्रांबुचयाधिवासः ॥ १२ ॥”
 प्रयोजनं हृतनष्टादिषु द्रव्यस्थानपरिज्ञानम् । उक्तं च—
 “राशिभ्यः कालदिग्देशा” इति ॥ ५ ॥

भाषा—परस्पर मुक्तमुच्छमिलित दो मछलियों के सदृश मीन राशि का स्वरूप है ।
 कन्धे पर घड़ा लिये हुए पुरुष के समान कुम्भ है । वीणायुत स्त्री तथा गदायुत पुद्ग
 की जोड़ी मिथुन का स्वरूप है । हाथ में धनुष लिये हुए घोड़े के जंघा वाले मनुष्य
 सदृश धनु है । हरिण के समान मुख वाले मगर के समान मकर है । हाथ में अन्न
 और अग्नि लेकर नौका पर बैठी हुई कन्या के समान कन्या राशि है । शेष राशि
 अपने नाम के सदृश (अर्थात् मेष मंढा के समान, वृष बैल के समान, कर्क केकड़ा के
 समान, सिंह सिंह के समान, वृश्चिक बिच्छू के सदृश) हैं तथा सब राशियाँ अपने-
 अपने स्थान में रहने वाले हैं ॥ ५ ॥

विशेष अर्थ—भाव यह है कि मेष और वृष यह दिन में वन में और रात्रि में
 ग्राम में रहते हैं । मिथुन ग्राम में, कर्क जल में, सिंह वन में, कन्या जल में नौका पर,
 तुला बाजार में, वृश्चिक बिल (गड्ढे) में, धनु ग्राम में, मकर के पूर्वार्ध वन में और
 उत्तरार्ध जल में, कुम्भ ग्राम में और मीन जल में रहने वाला है । इसका प्रयोग प्रश्न
 लग्नादि द्वारा हृत नष्टादि द्रव्य के स्थान, जन्मलग्न से प्रसवादि स्थान समझने में
 होता है । क्योंकि देश, दिशा, काल इनका ज्ञान राशि के द्वारा ही होता है ॥ ५ ॥

अधुना राशिनवमांशद्वादशांशाधिपांस्तोदकेनाह—

क्षितिजसितज्ञचन्द्रविशौम्यसितावनिजाः

सुरगुरुमन्दसौरिगुरवश्च गृहांशकपाः ।

अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधि-

भवनसमांशकाधिपतयः स्वगृहात् क्रमशः ॥ ६ ॥

क्षितिजसितज्ञेति ॥ क्षितिजादयो ग्रहाः गृहपा अंशकपाश्च गृहाणां राशीनां मेषादीनां पतयः स्वामिनो भवन्ति । क्षितिजोऽगारकः स मेषस्याधिपतिः । सितः शुक्रो वृषभस्य । ज्ञो बुधो मिथुनस्य । चन्द्रः कर्कटस्य । रविरादित्यः सिंहस्य । शौम्यो बुधः कन्यायाः । सितः शुक्रस्तुलायाः । अवनिजोऽगारको वृश्चिकस्य । सुरगुरुर्बृहस्पतिर्धन्विनः । मन्दः शनैश्चरो मकरस्य । सौरिः शनैश्चरः कुम्भस्य । गुरुर्बृहस्पतिर्मौनस्येति । प्रयोजनं होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता इत्यत्र । एत एव नवांशकाधिपतयः न केवलं मेषस्य भौमाऽधिपतिः । यावद्यस्मिन्राशौ मेषनवांशकोदयो भवति तस्यापि भौमोऽधिपतिः । शेषाणामप्येवमेव । ते च नवांशकाः कथं भवन्तीत्याह— अजमृगतौलिचन्द्रभवनादिनवांशविधिरिति । अजो मेषः । मृगो मकरः । तौलो तुला । चन्द्रभवनं कर्कटकः । आदिनवांशविधिरिति प्रत्येकमभि- संबध्यते । तत्रैवमभिसम्बन्धोऽभिजायते । अजादिमृगादितौल्यदिचन्द्र- भवनादिनवांशविधिः सर्वराशीनां भवति । तत्राजादिनवांशविधिर्मेषस्य । तेन मेषवृषभमिथुनकर्कटसिंहकन्यातुलावृश्चिकधनुर्धराणां सम्बन्धिनो नवांशा मेषस्य भवन्ति । मृगादिबृषभस्य तेन मकरकुम्भमीनमेषवृषभमिथुनकर्कटसिंह- कन्यासम्बन्धिनो नवांशा वृषभस्य । तुलादिमिथुनस्य तेन तुलावृश्चिकधनुर्म- करकुम्भमीनमेषवृषभमिथुनानां सम्बन्धिनो नवांशाः मिथुनस्य । कर्कटादिः कर्कटस्य । तेन कर्कटसिंहकन्यातुलावृश्चिकधनुर्मकरकुम्भमीनानां सम्बन्धिनो नवांशाः कर्कटस्य । एवं सिंहस्य मेषवत् । कन्याया वृषवत् । तुलाया मिथुन- वत् । वृश्चिकस्य कर्कटवत् । पुनरपि धनुषो मेषवत् । मकरस्य वृषवत् । कुम्भस्य मिथुनवत् । मीनस्य कर्कटवत् । तदुक्तं ग्रन्थांतरे—

“मेषकेसरिधन्विनां मेषाद्या अंशकाः स्मृताः ।

वृषकन्यामृगाणां च मकराद्या नव स्मृताः ॥

तुलामिथुनकुंभानां तुलाद्या नव कीर्तिताः ।

कर्कटालिम्बषाणां च कर्कटाद्या नवांशकाः ॥” इति ।

प्रयोजनं ‘स्तेनो भोक्ता पंडिताद्या’ इत्यादि । भवनसमांशकाधिपतयः स्वगृहात्क्रमश इति । भवनसमा अंशका भवनसमांशकाः, भवनानि द्वादश- तत्समा अंशका द्वादशांशका इत्यर्थः । ते च प्रत्येकस्य राशेः स्वगृहादारभ्य गण- नीयाः । तद्यथा—मेषस्य मेषवृषभमिथुनकर्कटसिंहकन्यातुलावृश्चिकधनुर्मकर-

कुम्भमीनानां सम्बन्धिनो द्वादशभागा भवन्ति । ते मेषाद्यधिपतयः । एवं वृषस्य वृषाद्या मेषांताः । मिथुनस्य मिथुनाद्या वृषांताः । कर्कटस्य कर्कटाद्या मिथुनांताः । सिंहस्य सिंहाद्याः कर्कांताः । कन्यायाः कन्याद्याः सिंहांताः । तुलायास्तुलाद्याः कन्यांताः । वृश्चिकस्य वृश्चिकाद्यास्तुलांताः । धनिनो धनुराद्या वृश्चिकांताः । मकरस्य मकराद्या धन्यताः । कुम्भस्य कुम्भाद्या मकरांताः । मीनस्य मीनाद्याः कुम्भांता इति । प्रयोजनं चैषां 'तत्कालिकेन्दु-सहितो द्विरसांशको यः' इत्यादि ॥ ६ ॥

भाषा—मङ्गल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मङ्गल, वृहस्पति, शनि, शनि, वृहस्पति ये क्रम से मेषादि १२ राशियों के स्वामी हैं । तथा मेषादि राशियों के नवांशादिकों के भी क्रम से मङ्गलादिक ही स्वामी होते हैं ।

तथा मेषादिक राशियों में क्रम से मेष, मकर, तुला, कर्क से आरम्भ कर ९, ९ राशियों के नवांश होते हैं । और प्रति राशि में अपने ही से आरम्भ कर क्रम से १२ राशियों के द्वादशांश होते हैं । स्पष्टार्थ नीचे चक्र देखिये ।

विशेष अर्थ—राश्याधिप निरूपण करने का प्रयोजन यह है कि—जो राशि या अंश अपने स्वामी से युत दृष्ट हो वह सबल होकर भाव फल को पुष्ट करती है अन्यथा निबल होकर भावफल को ह्रास करती है । तथा प्रत्येक राशि ९, ९ विभाग करके नवमांश कहे गये हैं । इनका प्रयोजन—'लग्ननवांशपतुत्यतनुः स्यात्' इत्यादि जातक के स्वरूप जीविका आदि में होता है । तथा प्रत्येक राशि में अढ़ाई-अढ़ाई अंश के १२ विभाग बनाकर द्वादशांश कहे गये हैं जिनका प्रयोजन—'तत्कालिकेन्दुसहितो द्विरसांशको यः' इत्यादि में आगे होता है ॥ ६ ॥

राशि स्वाभिचक्र

| राशि | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. |
|--------|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|------|-----|
| स्वामी | मं. | शु. | बु. | चं. | सु. | बु. | शु. | म. | वृ. | श. | श. | वृ. |

नवमांशचक्र

| अंशकला | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. |
|--------|-----|------|------|------|-----|------|------|------|-----|------|------|------|
| ३।२० | मे. | मं. | तु. | क. | मे. | मं. | तु. | क. | मे. | मं. | तु. | क. |
| ६।४० | वृ. | कुं. | वृ. | सि. | वृ. | कुं. | वृ. | सि. | वृ. | कुं. | वृ. | सि. |
| १०।०० | मि. | मी. | ध. | क. | मि. | मी. | ध. | क. | मि. | मी. | ध. | क. |
| १३।२० | क. | मे. | मं. | तु. | क. | मे. | मं. | तु. | क. | मे. | मं. | तु. |
| १६।४० | सि. | वृ. | कुं. | वृ. | सि. | वृ. | कुं. | वृ. | सि. | वृ. | कुं. | वृ. |
| २०।०० | क. | सि. | मी. | ध. | क. | मि. | मी. | ध. | क. | मि. | मी. | ध. |
| २३।२० | तु. | क. | मे. | मं. | तु. | क. | मे. | मं. | तु. | क. | मे. | मं. |
| २६।४० | वृ. | मि. | वृ. | कुं. | वृ. | सि. | वृ. | कुं. | वृ. | सि. | वृ. | कुं. |
| ३०।०० | ध. | क. | मि. | मी. | ध. | क. | मि. | मी. | ध. | क. | मि. | मी. |

द्वादशांशचक्र

| अंश | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. |
|------|------|------|------|------|------|------|------|------|------|------|------|------|
| २३० | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. |
| ५१० | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. |
| ७३० | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. |
| १०१० | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. |
| १२३० | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. |
| १५१० | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. |
| १७३० | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. |
| २०१० | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. |
| २२३० | ध. | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. |
| २५१० | म. | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. |
| २७३० | कुं. | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. |
| ३०१० | मी. | मे. | वृ. | मि. | क. | सि. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. |

अधुना त्रिंशंशकाधिपतीन्पुष्पिताप्रयाह—

कुजरविजगुरुशुक्रभागाः

पवनसमीरणकौर्पिजूकलेयाः ।

अयुजि युजि तु मे विपर्ययस्थाः शशिवनानालिभषान्तमृचसन्धिः ॥७॥

कुजेति ॥ कुजो भौमः रविजः शनिः गुरुर्बृहस्पतिः ज्ञो बुधः शुक्रो भार्गवः एवं कुजरविजगुरुशुक्राणां क्रमेण भागाः पवनसमीकरणकौर्पिजूक-
लेयाः । तद्यथा—पवना वायवः पञ्च, पञ्च एव भागाः कुजस्य । तत ऊर्ध्वं
समीरणाः पञ्चैव, रविजस्य एवं दश । अत ऊर्ध्वं कौर्पिसंज्ञा अष्टौ गुरोः
कौर्पाख्यो वृश्चिकः स च गणनयाष्टमः एवमष्टादश । ततः परं जूकसंज्ञाः सप्त
भागा बुधस्य जूकसंज्ञा तुलायाः स च गणनया सप्तमः एवं पञ्चविंशतिः ।
तत ऊर्ध्वं लेयसंज्ञाः पञ्च शुक्रस्य लेयसंज्ञा सिंहस्य स च गणनया पञ्चमः एवं
त्रिंशत् । किं सामान्येनेत्यत आह—अयुजि युजीति । अयुजि विषमराशौ
कुजादयो ग्रहाः पवनादीनां भागानां यथाक्रमेणाधिपतयः । तत्र मेषमिथुनसिंह-
तुलाधनुःकुंभानां विषमराशीनामेष क्रमः । युजि तु मे विपर्ययस्थाः युजि
समराशौ पवनादिभागा ग्रहाश्च विपर्ययस्था व्यत्ययेन तिष्ठन्ति । तद्यथा ।
तत्रादौ पञ्च शुक्रस्य ततः परं सप्त बुधस्य एवं द्वादश । ततः परमष्टौ जीवस्य
एवं विंशतिः । ततः परं पञ्च शनेः एवं पञ्चविंशतिः । ततः परं पञ्च भौमस्य
एवं त्रिंशत् । तत्र वृषकर्कटकन्यावृश्चिकमकरमीनाः समराशयः एवं त्रिंशद्भा-
गाधिपतयः पञ्च ताराग्रहाः । अत्र केचिदाहुर्यथा । विपर्ययस्था इत्यनेनान्त-
राणामेव पवनादिसंख्यानां भागानां विपर्ययेण भवितव्यं न व्यवहितानां
कुजादीनाम् । तच्चायुक्तम् । यस्मात्तत्रादौऽत्र पठ्यते स च कुजादिसमन्वयार्थः ।

तथा च श्रुतकोर्णिः । “पञ्चाथ पञ्च चाष्टौ सप्त च षड्चैव चौजभवनेषु । धरणिमुतमन्दसुगुरुबुधशुक्राणां क्रमेणांशाः । षड्चैव सप्त चाष्टौ पञ्च च पञ्चाथ युग्मभवनेषु । भागा भागैश्शशिसुतसुरेज्यशनिभूमिपुत्राणाम् ॥” इति । प्रयोजनम् । “कन्यैव दुष्टा व्रजतीह दास्यं साध्वी समाया कुचरित्रयुक्ता । भूम्यात्मजर्ज्ञे क्रमशोऽशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभागवाणाम् ॥” इत्यादि । शशिभवनालिम्फांतमृत्सन्धिः । अन्तःशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । शशि-भवनान्तमन्यन्तं ऋषान्तं च ऋत्तसन्धिः । शशिभवनं कर्कटः, अलिर्बृश्चिकः ऋषो मीनः एनेषामन्तं नवमनवांशकं यत्र नक्षत्रराश्योर्युगपदवसानं तदृत्त-सन्धिः यस्मादाश्लेषान्ते कर्कटकान्तः । ज्येष्ठान्ते वृश्चिकान्तः रेवत्यन्ते मीनान्त इति । एतदेव लोके गण्डान्तमिति प्रसिद्धम् । उक्तं च । “अश्विनीपित्र्यमूलाद्या मेषसिंहहयादयः । वर्तन्ते विषमर्क्षान्ते पादवृद्धया यथोत्तरम् ॥” इति । प्रयो-जनं च । ‘सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत् सौम्यदृष्टिः’ इति ॥ ७ ॥

भाषा—विषम राशियों में प्रारम्भ से ५ अंश भीम (मङ्गल) के, उसके पश्चात् ५ अंश शनि के, उसके बाद ८ अंश वृहस्पति के, उसके बाद ७ अंश बुध के, तथा अन्त में ५ अंश शुक्र के त्रिंशांश होते हैं । तथा समराशियों में इससे विपरीत (अर्थात् पहिले ५ अंश शुक्र के, फिर ७ अंश बुध के, उसके बाद फिर ८ अंश वृहस्पति के, फिर ५ अंश शनि के और अन्त में ५ अंश मङ्गल के त्रिंशांश होते हैं । तथा कर्क, वृश्चिक और मीन का अन्त ऋत्तसन्धि कहलती है ॥ ७ ॥

विशेष अर्थ—जहाँ साथ ही नक्षत्र और राशियों का अन्त और आरम्भ होता है वह ऋत्तसन्धि कहलाता है । दूसरे राशियों का अन्त और आरम्भ नक्षत्रों के बीच में, तथा नक्षत्रों का आरम्भ भी राशियों के मध्य में ही होता है । इसलिये उसमें सन्धि दोष नहीं है । ऋत्तसन्धि को ही गण्डान्त भी कहते हैं । सन्धि में जन्म होने से अशुभ फल होता है । तथा त्रिंशांश से आगे शुभाशुभ विचार किया गया है ।

त्रिंशांश मङ्गलादि पाँच ही ग्रहों के क्यों होते और उनमें भी सबके तुल्य अंश क्यों नहीं होते ? इसकी युक्ति ‘लग्नविवेक’ के षड्वर्ग विचार में देखिये ॥ ७ ॥

अधुना लोकव्यवहारार्थं मेषादीनां संज्ञाः पथ्यार्ययाऽऽह—

क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपाथोनजूककौर्प्याख्याः ।

तौत्तिक आकोकेरो हद्रोगश्चान्त्यभं चेत्यम् ॥ ८ ॥

क्रियेति ॥ इत्थमेवं प्रकारनामानो मेषाद्या राशयो ज्ञेयाः । तद्यथा—क्रियो मेषः, ताबुरिर्बृषः, जितुमो मिथुनः, कुलीरः कर्कटः, लेयः सिंहः, पाथोनः कन्या, जूकस्तुला, कौर्प्याख्यो वृश्चिकः, तौत्तिको धन्वी, आकोकेरो मकरः, हद्रोगः कुम्भः, अन्त्यभं मीन इति । प्रयोजनं च । ‘गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले’ इत्यादि ॥ ८ ॥

भाषा—क्रिय १, तावुरि २, जितुम ३, कुलीर ४, लेय ५, पाथोन ६, जूक ७, कौपि ८, तीक्ष्क ९, अ कोकेर १०, हृद्रोग ११, अन्त्यभ १२, ये क्रम से मेषादि द्वादश राशियों की संज्ञाएँ हैं ॥ ८ ॥

| विषमराशि | मं. | श. | बृ. | बु. | शु. | त्रिंशांशपति |
|----------|-----|-----|-----|-----|-----|--------------|
| अश्व | ५ | ५ | ८ | ७ | ५ | |
| समराशि | शु. | बु. | बृ. | श. | मं. | त्रिंशांशपति |
| | ५ | ७ | ८ | ५ | ५ | |

अधुना ग्रहस्य क्षेत्रहोराद्रेष्काणनवांशद्वादशभागत्रिंशांशद्वादशभागानां वर्गसंज्ञा व्यवहारार्थमिन्द्रवज्रयाह—

दृक्काणहोरा नवभागसंज्ञा त्रिंशांशकद्वादशसंज्ञिताश्च ।

क्षेत्रं च यद्यस्य स तस्य वर्गो होरेति लग्नं भवनस्य चार्द्धम् ॥६॥

दृक्काणेति ॥ दृक्काणादयः षट् पदार्थाः स्वकीयग्रहस्य वर्गसंज्ञाः । तत्र दृक्काणो राशित्रिभागः होरा राश्युद्धे नवभागो नवांशकः एषा संज्ञा येषां ते तथा । त्रिंशांशकत्रिंशांशद्वादशभागः द्वादशांशो द्वादशभागः एतत्संज्ञिताश्च एषा संज्ञाख्या येषां ते तथा । यद्यस्य ग्रहस्य क्षेत्रं राशिः स तस्य वर्गः । वर्गशब्देनात्र षड्वर्गः । एते सर्वे एव ग्रहस्यात्मीयवर्गसंज्ञाः । एवं षड्विकल्पो राशिषट्स्वात्मीयेषु स्थितो वर्गस्थो भवति । ननु ग्रहवर्गस्य षड्विकल्पो न सम्भवन्ति । यतश्चन्द्रार्कयोस्त्रिंशांशकाभावः भौमादीनां होराभावः तस्मात्पक्षे सम्भवन्ति तेन पञ्चस्वात्मीयेषु स्थितो वर्गस्थः । एतदप्युपलक्षणार्थम् । अतो यथासम्भवं त्र्यादिविकल्पस्थो ग्रहो वर्गस्थ उच्यते । यस्माद्भगवान् गार्गिः—

“क्षेत्रं होराथ दृक्काणो नवांशो द्वादशांशकः ।

त्रिंशांशकश्च वर्गोऽयं सर्वस्य समुदाहृतः ॥

त्र्यादिविष्वपि पदार्थेषु स्थितः स्वेषु स्ववर्गः ।

पञ्चवर्गगतोऽप्येवं ग्रहो भवति नान्यथा ॥” इति ।

प्रयोजनम् । “एकोऽपि वर्गोपगतो नराणां शुभोऽशुभो वापि चतुष्टयस्थः । वर्गोऽपि वास्योदयगो विनाशं बहुप्रकारं कुरुतेऽध्वगानाम् ॥” इत्यादि । होरालम्बनयोः सहार्थमाह—होरेति । लग्नं भवनस्य चार्धमिति । होरेति लग्नमुच्यते । प्रयोजनं च । ‘होरा स्वामिगुरुवीक्षितयुता’ इति । भवनस्य च राशेर्यद् होरा । प्रयोजनम् । ‘मातेयदेन्द्रोरयुजि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे’ इति ॥ ६ ॥

भाषा—द्रेष्काण, होरा, नवभांश, त्रिंशांश, द्वादशांश, और क्षेत्र (राशि) इनमें जो जिस ग्रह का हो वह उसका वर्ग कहलाता है । तथा ‘होरा’ शब्द से लग्न और राशि का आधा भी समझा जाता है । अर्थात् यहाँ षड्वर्ग में होरा शब्द से राशि का आधा ही ग्रहण करना चाहिए ॥ ९ ॥

अधुना राशीनां रात्रिदिनसंज्ञात्वं पृष्ठोदयशीर्षोदयत्वं च वसन्ततिलकेनाह—

गोऽजाश्विकर्किमिथुनाः समृगा निशाख्याः

पृष्ठोदया विमिथुनाः कथितास्त एव ।

शीर्षोदया दिनबलाश्च भवन्ति शेषा

लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्मम् ॥१०॥

गोऽजेति ॥ गोऽजाश्विकर्किमिथुनाः—गोशब्देन वृष उच्यते, अजो मेघः अश्वोऽस्यास्तीत्यश्वो धन्वी, कर्को कुलोरः, मिथुनः प्रसिद्धः एते गोऽजाश्विकर्कि-मिथुनाः समृगा मृगेण सहिताः पट्टाशयो निशाख्या रात्रिबलसंज्ञाः । पृष्ठो-दया विमिथुनाः त एव रात्रिसंज्ञा विमिथुनाः मिथुनवर्जिताः पृष्ठोदयसंज्ञा भवन्ति । पृष्ठोदयं यातोत्यर्थः । मिथुनः पुनः शीर्षोदयः । शीर्षोदया इति । उक्तेभ्यः शेषाः सिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भाः शीर्षोदयाः शिरसोदयं यान्ति दिनबलाश्च भवन्ति । अत्र रात्रिदिनबलाख्यास्त इति संज्ञामात्रम् । यतस्तेषा-मुत्तरत्र बलं वक्ष्यति द्विपदादयोऽह्नि निशि च प्राप्ते च संध्याद्वय इति । एवं सत्याचार्यस्य स्ववचनविरोधः स्यात् । तस्मात्संज्ञामात्रं बलग्रहणम् । प्रयोजनम् । ‘रात्रियुसंज्ञेषु विलोमजन्म’ इत्यादि । तथा पृष्ठोभयकोदयर्त्तगा इति । यात्रायां वक्ष्यति च । “शीर्षोदये समभिवाञ्छितकार्यसिद्धिः पृष्ठोदये विफलता बलविद्रवश्च ।” तथा “शस्तं दिवा दिनबले निशि नक्तवीर्ये रात्रौ विपर्ययबले गमनं न शस्तम् ।” अन्यच्चैभ्यो मीनस्य विशेषमाह । लग्नं समेत्युभयतः पृथुरोमयुग्ममिति । पृथुरोमा मत्स्यस्तद्वयं मत्स्यद्वयं मीनो राशिः स उभयतः पृष्ठशीर्षाभ्यां लग्नं समेत्यागच्छति ॥१०॥

भाषा—वृष, मेघ, धनु, कर्क, मिथुन और मकर ये छः रात्रिबली और इनमें मिथुन को छोड़कर बाकी ५ पृष्ठोदय है । तथा शेष राशियाँ शीर्षोदय और दिनबली है, परन्तु मीन राशि उभयोदय (शीर्षपृष्ठोदय), है ॥ १० ॥

| | |
|--|----------|
| मे. वृष घ. क. म. पृष्ठोदय रात्रिबली | |
| सिंह, कन्या, तु. वृश्चि. कु. शीर्षोदय दिनबली | |
| मिथुन रात्रिबली | शीर्षोदय |
| मीन दिनबली | उभयोदय |

विशेष अर्थ—इसका प्रयोजन “रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म” इत्यादि नष्टजात-कादि में होता है। तथा यात्रा में “शीर्षोदये समभिव्राज्जितकार्यसिद्धिः पृष्ठोदये विफलता बलविद्रवश्च” तथा च “शस्तं दिने दिनबले, निशि नक्तवीर्ये ज्ञेयं विपर्ययबले गमनं न शस्तम्” इत्यादि में होता है ॥ १० ॥

अधुना राशीनां क्रूरसौम्यविभागं स्त्रीपुरुषविभागं चरस्थिरद्विस्वभाव-विभागं दिगधिपत्वं होरादृक्काण्यपतीनां विभागं च मन्दाक्रान्त्याह—

क्रूरः सौम्यः पुरुषवनिते ते चरागद्विदेहाः

प्रागादीशाः क्रियवृषनृयुक्कर्कटाः सत्रिकोणाः ।

मार्तण्डेन्द्रोरयुजि समभे चन्द्रभान्वोश्च होरे

(१) दृक्काणाः स्युः स्वभवनसुतत्रिकोणाधिपानाम् ॥११॥

क्रूरः सौम्य इति ॥ ते मेषादयो राशयो यथाक्रमं क्रूरसौम्यसंज्ञाः । तत्र मेषः क्रूरः । वृषः सौम्यः । मिथुनः क्रूरः । कर्कटः सौम्यः एवं सर्वेषां योज्यम् । तेन विषमराशयः क्रूरसंज्ञाः समराशयः सौम्यसंज्ञाः । प्रयोजनं च “क्रूरेषु जाताः क्रूरस्वभावाः सौम्येषु जाताः सौम्यस्वभावा भवन्ति ।” इति । तथा चाचार्यः । “ओजे पुरुषा ज्ञेयाः सौम्याः स्त्रीसंज्ञकाः क्रमाद्युग्मे । उग्रेषूमाः सौम्या सौम्य युग्मेषु भवन्तेषु ।” पुरुषवनिते इति । त एव मेषादयो यथाक्रमं पुरुष-वनिताख्या ज्ञेयाः । तेन मेषः पुरुषो नरः । वृषो वनिता स्त्री । एवं सर्वत्र । तेन षड्विषमराशयः पुरुषसंज्ञाः षट् समराशयः स्त्रीसंज्ञाः प्रयोजनं च पुरुषराशिषु जातास्तेजस्विनः । स्त्रीराशिषु जाता मृदवो भवन्ति । ते च रागद्विदेहा इति । त एव मेषादयो राशयो यथाक्रमं यथासंख्यं च रागद्विदेहाख्या भवन्ति । तत्र मेषश्चरः वृषोऽगः स्थिरः मिथुनो द्विदेहो द्विस्वभावः । एवं कर्कटादिषु योज्यम् । तेन मेषकर्कटतुलामकराश्चराः । वृषसिंहवृश्चिककुम्भाः स्थिराः । मिथुनकन्या-धनुर्मीना द्विस्वभावाः । प्रयोजनं च । “चरराशिषु जाताश्चरस्वभावाः स्थिरेषु स्थिरस्वभावा द्विस्वभावेषु मिश्रस्वभावा भवन्ति ।” तथा च सत्यः । “चर-संज्ञाः स्थिरसंज्ञा द्विप्रकृतिरिति राशयः क्रमशः । राशिस्वभावतुल्या जायन्ते प्रकृतयः प्रसूतानाम् ।” प्रागादीशा इति । क्रियो मेषः वृषः प्रसिद्धः नृयुङ्मिथुनं

(१) द्रेक्काणविचारः—“द्रेक्क-द्रेक्काणद्रेक्काणा भवन्ति च द्रेक्काणवत् ।” इति परद्विरूप-कोषः । तथा—“हृग् ज्ञाने ज्ञातरि त्रिषु” कणोऽतिसूक्ष्मे” इति चामरकोषः कणस्याति-सूक्ष्मस्य भावः काणो धर्मः स्यात्तेन—स्वकीय-बुद्धि-धर्मयोर्विचारार्थं भागो द्रेक्काणांशः कथ्यतेऽत एव प्रथम-पञ्चम-नवमपा एव तत्पतयो भवितुर्महन्तीति दिक् ।

अथवा “रूपात् कटपयपूर्वैर्वर्णैर्वर्णक्रमाद्भवत्यङ्काः ।” इति महासिद्धान्तनियमात् (दृक्=८१, द्वादशतष्टितोषः ९ । का=१ । ण=५) । (दृक्काणाः ९।१।५) अत एव “द्रेक्काणः प्रथमपञ्चनवपानाम्” इति (स्फुटं सिद्धयतीति) ।

कर्कटकः कुलीरः एते क्रियवृषण्युक्कर्कटाः सत्रिकोणाः त्रिकोणाभ्यां स्वपञ्चम-
नवमाभ्यां सहिताः प्रागादिषु पूर्वाद्यासु चतसृषु दिशासु ईशाः स्वामिनो
भवन्ति । मेघः स्वपञ्चमनवमाभ्यां सह पूर्वस्याम् । एव वृषः स्वपञ्चमनवमाभ्यां
सह दक्षिणस्याम् । मिथुनः स्वपञ्चमनवमाभ्यां पश्चिमायाम् । एवमेव कर्कोऽपि ।
तेन मेघसिंहधन्विनः पूर्वस्याम् । वृषकन्यामकरा दक्षिणस्याम् । मिथुनतुला-
कुम्भाः पश्चिमायाम् । कर्कटवृश्चिकमीना उत्तरस्यामिति । प्रयोजनम्—‘द्वत-
नष्टादौ चौरादेर्द्रव्यस्य वा दिग्विज्ञानम् च ।’ तथा च । ‘यातव्यदिङ्मुखगतस्य
मुखेन सिद्धिर्व्यर्थश्रमो भवति दिक्प्रतिलोमलग्ने ।’ इति । मार्तण्डेन्द्रोरिति ।
मार्तण्डः सूर्यः इन्दुश्चन्द्रः अयुज्ययुग्मराशौ विषमराशौ यथाक्रमं मार्तण्डेन्द्रो-
र्होरे भवतः । प्रथमा होरा सूर्यस्य । द्वितीया होरा चन्द्रस्य । होराशब्देनात्र
राश्यर्द्धमुच्यते । समभे चन्द्रभान्वोश्चेति । समभे समराशौ चन्द्रभान्वोर्होरे
भवतः । प्रथमा होरा चन्द्रस्य शशिनः । द्वितीया भानोः सूर्यस्य । प्रयोजनम्—
‘सूर्यहोरायां जातास्तेजस्विनश्चन्द्रस्य होरायां मृदुस्वभावा भवन्ति ।’ दृक्काणाः
स्युरिति । दृक्काणां राशित्रिभागः स्वभवनसुतत्रिकोणाधिपानां सम्बन्धिनो
दृक्काणा भवन्ति । प्रथमो द्रेष्काणः स्वभवनाधिपतेरात्मोयभवनाधिपतेः ।
द्वितीयः सुतभवनस्य पञ्चमस्थानाधिपतेः । तृतीयस्त्रिकोणाधिपतेः । नवमस्थान-
नाधिपतेः । तेन मेषस्य प्रथमो द्रेष्काणः प्रथमस्य भौमस्य, द्वितीयः पञ्चमस्थान-
सिंहाधिपतेरर्कस्य तृतीयो नवमस्थानधनुषोर्ध्वानेगुरोरिति । वृषस्य प्रथमः
शुक्रस्य, द्वितीयो बुधस्य तृतीयः शनेः । मिथुनस्य प्रथमो बुधस्य द्वितीयः
शुक्रस्य तृतीयः शनेः । कर्कटस्य प्रथमश्चन्द्रस्य द्वितीयो भौमस्य
तृतीयो जीवस्य । सिंहस्य प्रथमः सूर्यस्य, द्वितीयो जीवस्य तृतीयो भौमस्य ।
कन्यायाः प्रथमो बुधस्य, द्वितीयः शनेः तृतीयः शुक्रस्य । तुलायां प्रथमः शुक्रस्य,
द्वितीयः सौरस्य तृतीयो बुधस्य । वृश्चिकस्य प्रथमो भौमस्य द्वितीयो जीवस्य
तृतीयश्चन्द्रस्य । धन्विनः प्रथमो जीवस्य द्वितीयो भौमस्य तृतीयो रवेः ।
मकरस्य प्रथमः शनेः द्वितीयः शुक्रस्य तृतीयो बुधस्य । कुम्भस्य प्रथमः शनेः
द्वितीयो बुधस्य तृतीयः शुक्रस्य । मोनस्य प्रथमो जीवस्य द्वितीयश्चन्द्रस्य
तृतीयो भौमस्येति । प्रयोजनम् । ‘द्विरुत्तमास्वांशकभत्रिभागगैः’ इत्यादि ॥११॥

भाषा—मेघ आदि १२ राशियाँ क्रम से पाप और सौम्य । पुरुष स्त्री । चर, स्थिर
(अचल) द्विस्वभाव हैं । तथा मेघ, वृष, मिथुन, कर्क ये अपने-अपने पञ्चम, नवम राशि
सहित क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं । विषम राशियों में प्रथम राश्यर्ध्व
(होरा) सूर्य की, द्वितीय राशि की और सम राशियों में प्रथम राशि की, द्वितीय भानु
की होरा होती है । तथा प्रत्येक राशि में प्रथम द्रेष्काण स्वकीय (राशि का अपना
ही) द्वितीय द्रेष्काण उस राशि से ५ वीं का तृतीय द्रेष्काण अपने से नवमी राशि
के स्वामी का होता है ॥ ११ ॥

विशेष अर्थ—मेघ सिंह धनु पूरव राशी ।

वृष कन्या मृग दक्षिण बासी ॥

मिथुन तुला घट पश्चिम जानो ।

कर्क मीन अलि उत्तर मानो ॥

प्रयोजन-राशि के स्वभावानुसार ही जातक का स्वभाव होता है । यथा क्रूर में क्रूर स्वभाव, सौम्य में सौम्य स्वभाव । चर में चञ्चल, स्थिर में स्थिर और द्विस्व भाव में पूर्वाद्ध में स्थिर उत्तरार्द्ध में चञ्चल होता है ॥ ११ ॥

स्पष्ट ज्ञानार्थ कोट्टक

| मे. वृ. मि. क. सि. कं. तु. वृ. ध. म. कु. मी. | राशि |
|---|-------------------|
| कू. सी. कू. सी. कू. सी. कू. सी. कू. सी. कू. सी. | अशुभ शुभ |
| पु. स्त्री. पु. स्त्री. पु. स्त्री. पु. स्त्री. पु. स्त्री. पु. स्त्री. | पु. स्त्री संज्ञा |
| च. स्थि. द्वि. च. स्थि. द्वि. च. स्थि. द्वि. च. स्थि. द्वि. | चरादि संज्ञा |
| पूर्व. द. प. उ. पू. द. प. उ. पू. द. प. उ. | दिशा पति |

अधुना मतांतरेण होराद्रेष्काणपतीनां लक्षणमिद्वज्जयाह—

केचित्तु होरां प्रथमां भपस्य वाञ्छन्ति लाभधिपतेद्वितीयाम् ।

द्रेष्काणसंज्ञामपि पर्णयन्ति स्वद्वादशैकादशराशिपानाम् ॥१२॥

केचिदिति ॥ केचिद्यवनेश्वरादयः प्रथमां होराम् भपस्य राश्यधिपते-
र्वाञ्छन्ति इच्छन्ति । द्वितीयां लाभधिपतेरेकादशस्थानाधिपस्य । यथा मेषस्य
प्रथमहोरा भौमस्य । द्वितीया. होरैकादशकुम्भपतेः सौरस्य । एवं सर्वेषामपि
योज्यम् । द्रेष्काणसंज्ञामपाति । स्वद्वादशैकादशराशिपानामपि द्रेष्काणसंज्ञां
वर्णयन्ति कथयन्ति । प्रथमं स्वाधिपतेरात्म्यस्वामिनः । द्वितीयं द्वादशाधि-
पतेः । तृतीयमेकादशराश्यधिपतेः । यथा मेषस्य प्रथमो द्रेष्काणो भौमस्य
द्वितीयो जीवस्य तृतीयः सौरस्य । एवमन्येषामपि ज्ञातव्यम् । तथा च यवनेश्वरः ।
“आद्या तु होरा भवनस्य । पत्युरेकादशक्षेत्रपतेद्वितीया । स्वद्वादशैकादशराशि-
पानां द्रेष्काणसंज्ञाः क्रमशस्त्वयोऽत्र ॥” एवं यवनेश्वरमतेन सर्वग्रहाणाम्
होराधिपत्यमस्ति । एतदाचार्यस्य नाभिप्रेतं सत्यादीनामपि । तथा च सत्यः ।
“ओजेषु रवेर्होरा प्रथमा युग्मेषु चोत्तरा शेषा । इन्दोः क्रमशो ज्ञेया जन्मनि
चेष्टौ स्वहोरास्थौ ॥ राशिपतेर्द्रेष्काणस्तत्पञ्चमनवम् (१।१।६) भवनपतयः
स्युः । तेषामधिपतयः स्वस्वद्रेष्काणे ग्रहा बलिनः ॥” इति ॥ १२ ॥

भाषा—यवन आदि आचार्य प्रथम होरा राशिराशि की और द्वितीय होरा उस राशि से एकादशेश की कहते हैं। द्रेष्काण भी प्रथम राशीय का, द्वितीय उस राशि से द्वादशेश का तथा तृतीय एकादशेश का कहते हैं।

विशेष अर्थ—सत्याचार्य आदि आचार्यों के विरुद्ध होने के कारण यवनोक्त होरा, द्रेष्काण मान्य नहीं है ॥ १२ ॥

अथ ग्रहाणामुच्चनीचविभागं पुष्पिताग्रयाह—

(१) अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीरा भूषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः ।

दशशिखिमनुयुक्तथीन्द्रियांशैस्त्रिनवकविंशतिभिश्च तेऽस्तनीचाः ॥ १३ ॥

अजेति ॥ अजादयो राशयो यथाक्रमेण दिवाकरादीनां ग्रहाणां तुङ्गाः उच्चसंज्ञाः । तद्यथा । अजो मेष आदित्यस्योच्चम्, वृषभो वृषः स चन्द्रस्य । मृगो मकरः स भौमस्य, अङ्गना कन्या बुधस्य । कुलीरः कर्कटो जीवस्य, भूषो मीनः शुक्रस्य । वणिक् तुलाधरः सौरस्य । एत एव राशयो दशादिषु भागेषु सूर्यादीनां परमोच्चसंज्ञा भवन्ति । तत्रादित्यस्य मेषो दशमभागे परमोच्चः । चन्द्रस्य वृषः शिखिसंख्ये तृतीये भागे । भौमस्य मकरो मनुयुक्तसंख्येऽष्टाविंशे भागे परम उच्चः । मनवश्चतुर्दश तेषां युगं द्विगुणा मनव इत्यर्थः । बुधस्य कन्या तिथिसंख्ये पञ्चदशे भागे । जीवस्य कर्कट इन्द्रियसंख्ये पञ्चमे भागे । शुक्रस्य मीनस्त्रिनवकसंख्ये सप्तविंशे । सौरस्य तुला विंशे । ननु सर्व एव राशिर्उच्चसंज्ञः स च त्रिशदंशकः तत्र दशादीनां तदन्तर्भूतानां सिद्धैवोच्चसंज्ञा तर्हि दशाद्युपादानम् । सत्यम् । किंतु परमोच्चवृत्तापनार्थं दशादीनां ग्रहणम् । अन्यथा सर्व एव राशयोऽमी उच्चसंज्ञाः । तेनोक्तराशिदशाद्यंशस्थाः कथिता ग्रहाः परमोच्चस्था इत्युच्यन्ते । परमोच्चज्ञानेन चोच्चादव्यतिरिक्तं प्रयोजनमस्ति । तथा च भगवान् गार्गिः । “स्वोच्चगो रविशीतांशू जनयेतां नराधिपम् । उच्चस्थौ धनिनं ख्यातं स्वत्रिकोणगतावपि ॥” तथा च यवनेश्वरः

(१)

उच्चनीचचक्रम् ।

| | ग्र. | र. | चं. | म. | बु. | वृ. | शु. | श. |
|--------|------|------|---------|------|-------|------|-------|------|
| उच्चम् | रा. | मेघ | वृष | मक. | कन्या | कर्क | मीन | तुला |
| | अं. | १० | ३ | २८ | १५ | ५ | २७ | २० |
| नीचम् | रा. | तुला | वृश्चिक | कर्क | मीन | मकर | कन्या | मेघ |
| | अं. | १० | ३ | २८ | १५ | ५ | २७ | २० |

“स्वोच्चेषु सर्वान्परिगृह्यभागांस्त्रिषु सर्वेषु बलाधिकेषु । लग्ने शुभे पूणव-
पुष्मतीदौ त्रैलोक्यराज्याधिपतिः प्रसूते ॥” अथेदृशा एवं विधाः सूर्यादयः
परमोच्चस्थिता द्रष्टव्याः । अत्र वृत्तभङ्गभयात्पूरणप्रत्ययान्ता दशादय आचार्येण
नोक्ताः । पूरणप्रत्ययान्तत्वमेषां यवनेश्वरवाक्याज्ज्ञायते । तथा च यवनेश्वरः ।
“सूर्यस्य भागे दशमे तृतीये चन्द्रस्य जीवस्य तु पञ्चमेशे । सौरस्य विशेषे
त्वधिसप्तके तु विद्याद्भृगोः पञ्चदशे बुधस्य । भौमस्य विशेषेऽप्युते परोच्चम्
विशाल्लवे सूर्यसुतस्य तूष्णम् ।” तेऽस्तनीचा इति । न आदित्यादयो ग्रहा अस्त-
नीचाः अस्ते नीचम् येषां ते, अस्तः सप्तमः प्रकृतित्वात् स्वोच्चात्सप्तमः प्रत्येकस्य
नीचसंज्ञा । तद्यथा । आदित्यस्य स्वोच्चान्मेपात्सप्तमस्तुला स नीचसंज्ञः । एवं
चन्द्रस्य सप्तमो वृश्चिकः । भौमस्य सप्तमः कर्कटः । बुधस्य मीनः । गुरोर्मकरः ।
शुकस्य कन्या । सौरस्य मेष इति । अत्रापि दशादिषु भागेषु परमनीचस्था
द्रष्टव्याः । तथा च यवनेश्वरः “स्वोच्चात्तु जामित्रमुशन्ति नीचं त्रिशल्लवो यच्च
समानसंख्या ।” अथेदृशा एवं विधा रव्यादयः परमनीचस्था भवन्ति । परम-
नीचस्थानामनिष्टं फलं भवतीति गार्गिणा प्रदर्शितम् । तथा च गार्गिः । “अन्ध-
दिगम्बरं मूर्खं परपिण्डोपजोचिनम् । कुर्यातामतिनीचस्थौ पुरुषं शशि-
भास्करो ॥” इति ॥ १३ ॥

भाषा—मेघ में १० अंश से सूर्य का वृष में ३ अंश पर चन्द्रमा का २८ अंश पर
मकर में मङ्गल का १५ अंश पर कन्या में बुध का ५ अंश पर कर्क गुह का २७ अंश
पर मीन शुक का और २० अंश पर तुला शनि का उच्च स्थान हैं । और ये सब ग्रह
अपने-अपने उच्च से सप्तम राशि में उतने ही अंश पर परम नीच के होते हैं ।

विशेष अर्थ—इसका प्रयोजन ‘त्रिभिरुच्चगतैर्भूपो दीनो नीचस्थितैर्ग्रहैः’ इत्यादि जातक
फल में होता है । उपरोक्त उच्च राशियों में अंश का निर्देश करने का आशय यह है
कि जो राशि अपना उच्च भी है और मूल त्रिकोण भी है तथा स्वग्रह भी है तो उनमें
कौन सा फल कहना चाहिये । जैसे—कन्या राशि बुध का ग्रह भी है मूलत्रिकोण भी
है और उच्च भी है, यदि बुध कन्या में हो तो वह किस अधिकार में समझा जायेगा ?
इसी प्रकार और ग्रहों में भी सन्देह निवारण के लिए उच्च का अंशों से विभाग कर
दिया गया है ॥ १३ ॥

यहाँ विशेष सारावली का वचन—

“विशत्यंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य ।
उच्चं भागत्रितयं वृष इन्दोः स्यात् त्रिकोणमपरेशाः ॥
द्वादश भागा मेरे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य ।
उच्चमथो कन्यायां बुधस्य तिथ्यंशकैः सदा चिन्त्यम् ॥
परतस्त्रिकोणभवनं पञ्चभिर्दशैर्निजं गृहं परतः ।
दशभिर्गर्गिश्चापे त्रिकोणभवनं गुरोः स्वभं परतः ॥

शुक्रस्य तु तिथयोऽशान्निकोणमपरे स्वराशिश्च ।

कुम्भे त्रिकोणनिजमे रविजस्य रवेर्यथा-सिंहे ॥”

सूर्य का सिंह में २० अंश तक मूलत्रिकोण, तथा आगे के १० अंश स्वगृह । चन्द्रमा का वृष में ३ अंश तक उच्च, तथा शेष २७ अंश त्रिकोण । मङ्गल का मेष में १२ अंश तक त्रिकोण । बाद के १८ अंश स्वगृह । बुध का कन्या में १५ अंश तक उच्च, उसके आगे के ५ अंश त्रिकोण तथा अन्त के १० अंश स्वगृह । गुरु का धन में १० अंश तक त्रिकोण और अन्त के २० अंश स्वगृह शुक्र का तुला में १५ अंश त्रिकोण तथा अगले १५ अंश स्वगृह । शनि का कुम्भ में २० अंश तक त्रिकोण और बाद के १० अंश स्वगृह होता है ॥ १३ ॥

अधुना प्रहाणां वर्गोत्तममूलत्रिकोणपरिज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

वर्गोत्तमाश्चरगृहादिषु पूर्वमध्य-

पर्यन्ततः शुभफला नवभागसंज्ञाः ।

सिंहो वृषः प्रथमषष्ठहयाङ्गतौलि-

कुम्भास्त्रिकोणभवनानि भवन्ति सूर्यात् ॥१४॥

वर्गोत्तमा इति ॥ चरगृहादिषु चरस्थिरद्विस्वभावेषु यथासंख्यं पूर्वमध्य-पर्यन्तत आदिमध्यावसानतः । पूर्वमध्यपर्यन्तगा वा पाठः । ये नव भागास्ते वर्गोत्तमसंज्ञा भवन्ति वर्गांशकसमूहे उत्तमाः । प्रधाना वर्गोत्तमाः । तद्यथा चरेषु मेषकर्कितुलामकरेषु प्रथमो नवांशो वर्गोत्तमाख्यो भवति । स्थिरेषु वृषसिंहवृश्चिककुम्भेषु मध्यमः पञ्चमो नवांशको वर्गोत्तमः । द्विस्वभावेषु मिथुनकन्याधनिमीनेषु पर्यन्ततः नवमो नवांशको वर्गोत्तमः । एतदुक्तम् भवति—प्रत्येकस्मिन् राशौ स्वनवमांशको वर्गोत्तमाख्यः इति । तथा च यव-नेश्वरः । “स्वे स्वे गृहेषु स्वगृहांशका ये वर्गोत्तमास्ते यवनैर्निरुक्ताः ।” इति । शुभफला नवभागसंज्ञा इति । ते च वर्गोत्तमाख्या नवभागसंज्ञा जन्मनि शुभफलदाः शुभं फलं ददति । वक्ष्यति च । “शुभं वर्गोत्तमे जन्म” इति । तथा च सत्यः । “चरभवनेष्वाद्यंशाः स्थिरेषु मध्या द्विमूर्तिषु तथान्याः । वर्गोत्तमाः प्रदिष्टास्तेष्विह जाताः कुले मुख्याः ॥” प्रयोजनम्—स्वतुङ्गवक्रोप-गतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशकभन्निभागैः ।” इति । सिंहो वृष इत्यादि । सिंहादयो राशयो यथापाठक्रमेण सूर्यादीनाम् प्रहाणाम् त्रिकोणभवनानि मूलत्रिकोणभवनानि भवन्ति । तद्यथा । सिंहः सूर्यस्यादित्यस्य मूलत्रिकोणसंज्ञः वृषश्चन्द्रस्य प्रथमो मेषोऽङ्गारकस्य षष्ठः कन्या बुधस्य हयाङ्गो धन्वी बृहस्पतेः तौली तुला शुक्रस्य कुम्भः सौरस्येति । प्रयोजनम्—वृषस्वत्रिकोणगैर्वलस्थै-स्त्याद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः इत्यादि ॥ १४ ॥

भाषा—चर स्थिर और द्विस्वभाव में क्रम से प्रथम (१) मध्यम (५) और अन्तिम (९) नवांश शुभ फल दायक वर्गोत्तम कहलाता है । तथा सिंह, वृष, मेष, कन्या,

घनु, तुला और कुम्भ राशि ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के मूलत्रिकोण होते हैं ॥ १४ ॥

विशेष अर्थ—किसी भी राशि का अपना ही नवांश वर्गोत्तम कहलाता है । जैसे—मेष आदि चर राशियों में १ पहिला नवांश और वृष आदि स्थिर राशियों में मध्य का (५ वाँ) तथा मिथुन आदि द्विस्वभाव राशि में अन्तिम (९ वाँ) नवांश अपना ही होता है । इसका प्रयोजन “शुभ वर्गोत्तमे जन्म” तथा “उच्चस्वत्रिकोणगैर्वलस्थे-
स्थायार्थं भूतपतिवशजा नरेन्द्राः” इत्यादि कहे हुये में आगे होता है ॥ १४ ॥

अधुना लग्नादीनाम तन्वाद्या द्वादशसंज्ञाः, तृतीयपष्ठदशमैकादशानाम्
चोपचयसंज्ञा वसन्ततिलकेनाह—

होरादयस्तनुकुटुम्बसहोत्थबन्धु-

पुत्रारिपत्निमरणानि शुभास्पदायाः ।

रिःफाख्यमित्युपचयान्यरिकर्मलाभ-

दुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणि न नित्यमेके ॥ १५ ॥

होरादय इति ॥ होरादयो लग्नादयस्तेषां यथाक्रमेण तन्वादीनि नामानि
तत्र लग्नस्य तनुरित्याख्या । द्वितीयस्य कुटुम्बम् । तृतीयस्य सहोत्थः सहोत्थो
भ्राता । चतुर्थस्य बन्धुः बन्धुशब्दो ज्ञातिवाची । पुत्राख्यः पञ्चमः । अरिः
शत्रुस्तदाख्यः षष्ठः । पत्न्याख्यः सप्तमः । मरणाख्योऽष्टमः । शुभाख्यो नवमः ।
आस्पदाख्यो दशमः । आयाख्य एकादशः । रिःफाख्यो द्वादशः । इति शब्द-
प्रकारार्थद्योतकः । तेन होरादीनां तन्वादिपर्याया अपि संज्ञाभूता इत्यवगन्त-
व्यम् । उपचयान्यरिकर्मलाभदुश्चिक्यसंज्ञितगृहाणीति । अरिः पष्ठं कर्म दशमं
लाभ एकादशं दुश्चिक्यसंज्ञं तृतीयं एतानि गृहाणि स्थानानि उपचयसंज्ञा-
नीति । न नित्यमेके इति । एके केचिन्न नित्यमुपचयानीति वर्णयन्ति कथयन्ति ।
तेषामयमभिप्रायः । यदि पापग्रहेण स्वस्वामिशत्रुणा वा दृष्टा भवन्ति तदा
नोपचयास्ते । तत्र च गर्गादिवाक्यम् “अथोपचयसंज्ञा स्यात्त्रिलाभरिपुर्कर्म-
णाम् । न चेद्भवन्ति दृष्टास्ते पापस्वस्वामिशत्रुभिः ॥”

एतदाचार्यवराहमिहिरस्य नाभिप्रेतम् । यतोऽसौ सर्वदैवोपचयाख्यैस्तै-
र्यवहरति । सत्यादयोऽप्येवम् । तथा च सत्यः । “दशमैकादशषष्ठतृतीयसंज्ञानि”
जन्मलग्नाभ्याम् । उपचयभवनानि स्युः शेषाण्युच्चाण्युपचयाख्यानि ॥” यवने-
श्चरश्च । “षष्ठं तृतीयं दशमं च राशिमेकादशं चोपचयर्त्तमाहुः । होरागृहस्थान-
शशाङ्कभेभ्यः शेषाणि चैभ्योऽपचयात्मकानि ॥” प्रयोजनम्—“उपचयगृह-
मित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ॥” इत्यादि ॥ १५ ॥

भाषा—तनु १, कुटुम्ब २, सहोत्थ (सहज) ३, बन्धु ४, पुत्र ५, अरि ६,
पत्नी ७, मरण ८, शुभ ९, आस्पद १०, आय ११ और रिष्क १२ ये लग्नादि द्वादश
भावों की संज्ञा है । तथा ६, १०, ११, ३ इन चार स्थानों की उपचय (वृद्धि)
संज्ञा है । ये नित्य उपचय नहीं हैं ऐसा कितने आचार्यों का मत है ॥ १५ ॥

विशेष अर्थ—लग्न आदि के तनु इत्यादि नाम क्यों हुए इसकी युक्ति लघुपराशरी की भेरी टीका में देखिये । तथा उपचय के नित्य नहीं होने में गर्ग का वाक्य—“अथोपचय संज्ञा स्यात् त्रिलाभरिपुर्कर्मणाम् । चेद् भवन्ति न दृष्टास्ते पापस्वस्वामिशत्रुभिः”— अर्थात् ३, ६, १०, ११ इन सबकी उपचय संज्ञा तभी होती है, जब पापग्रह अथवा अपने स्वामी के शत्रु से दृष्ट नहीं हो । पर बराहमिहिर ने सत्याचार्य के अनुसार नित्य उपचय माना है । इस प्रकार उपचय से भिन्न स्थान अपचय संज्ञक हैं ॥ १५ ॥

पुनरपि होरादीनां संज्ञांतराणि वसन्ततिलकेनाह—

कल्पस्वविक्रमगृहप्रतिभाक्षतानि

चित्तोत्थरन्ध्रगुरुमानभवव्ययानि ।

लग्नाच्चतुर्थनिधने चतुरस्रसंज्ञे

द्यूनं च सप्तमगृहं दशमर्क्षमाज्ञा(१) ॥१६॥

कल्पेति ॥ एतेषामपि लग्नादीनां द्वादशानां यथाक्रमं कल्पाद्याः संज्ञा भवन्ति । तद्यथा लग्नं कल्पाख्यम् । कल्पशब्दः शक्तीवाची । द्वितीयं स्वम् । तृतीयं विक्रमम् । चतुर्थं गृहम् । पञ्चमं प्रतिभा । षष्ठं क्षतम् । सप्तमं चित्तोत्थम् । अष्टमं रन्ध्रम् । नवमं गुरुम् । दशमं मानम् । एकादशं भवम् । द्वादशं व्ययम् । लग्नाच्चतुर्थनिधने इति । लग्नाच्चतुर्थं स्थानं निधनमष्टमं च ते चतुरस्रसंज्ञे चतुरस्राख्ये, लग्नात्सप्तमं गृहं द्यूनं, दशमर्क्षं दशमराशिराज्ञाख्या एताः संज्ञा व्यवहारार्थं ज्ञेयाः ॥ १६ ॥

भाषा—कल्प १, स्व (धन) २, विक्रम ३, गृह ४, प्रतिभा (बुद्धि) ५, क्षत ६, चित्तोत्थ (मदन) ७, रन्ध्र ८, गुरु ९, मान १०, भव ११, व्यय १२, ये लग्नादि द्वादश भावों के नाम हैं । लग्न से ४ ८ भावों की चतुरस्र संज्ञा, सप्तम की द्यून संज्ञा, तथा छ और आज्ञा ये दशम के नाम हैं ॥ १६ ॥

अथ केन्द्राणां संज्ञास्तत्स्थराशिबलं च दोषकेनाह—

कण्टककेन्द्रचतुष्टयसंज्ञाः सप्तमलग्नचतुर्थखभानाम् ।

तेषु यथाभिहितेषु बलाढ्याः कीटनराम्बुचराः पशवश्च ॥१७॥

कण्टकेति ॥ सप्तमलग्नचतुर्थानि प्रसिद्धानि । खभं दशमम् । ख आकाश-मध्ये तत्कालं यद्ग्रं राशिवर्तते तस्य खभमिति संज्ञा । एतेषां सप्तमलग्नचतुर्थ-खभानां राशीनां प्रत्येकस्य कण्टककेन्द्रचतुष्टयाख्यास्तिस्रः संज्ञाः । तेषु स्थानेषु यथाभिहितेषु यथानिर्दिष्टेषु कीटनराम्बुचराः पशवश्च राशयो बलाढ्या भवन्ति । तद्यथा कीटो वृश्चिकः सप्तमे स्थाने बली । नराः नृराशयो मिथुन-कन्यातुलाधनिर्वपूर्वार्धकुम्भाः एते लग्ने स्थिता बलिनः । अम्बुचरा जलचर-

(१) “दशमं खमाज्ञा” इति पाठः साधुः ।

राशयः कर्कटमीनमकरपराद्धास्ते चतुर्थस्थाने बलिनः । पशवश्चतुष्पदाः मेष-
वृषसिंहधन्विपराद्धमकरपूर्वाद्धास्ते दशमस्था बलिनः । तथा च भगवान्
गार्गिः । “नृयुक्तुला घटः कन्या पूर्वमर्द्धं च धन्विनः । लग्नस्था बलिनो ज्ञेया
एते हि नरराशयः ॥ चतुर्थे कर्कटो मीनो मकराद्धं च पश्चिमम् । विज्ञेया
बलिनो नित्यमेते हि जलराशयः ॥ सप्तमे वृश्चिकः कीटो बलवान्परिकीर्तितः ।
घन्त्यन्ताद्धाजगोसिंहा बलिनः खे चतुष्पदाः ॥” अत्रार्द्धशब्देन मकरपूर्वाद्धं
मपि गृह्य इति ॥ १७ ॥

भाषा—केन्द्र आदि संज्ञा-लग्न से ७, १, ४ और १० इन चारों स्थानों की
कण्टक, केन्द्र और चतुष्टय ये तीन संज्ञाएँ हैं । इनमें यथा क्रम से पठित (७, १, ४, १०)
स्थानों में क्रम से शीट, नर, जलवर, पशु (चतुष्पद) राशियाँ बली होती हैं ॥ १७ ॥

धनुः पूर्वदलं कन्या नृयुक्कुम्भ-तुलानरा ।

मृगान्त्यार्धं च मीनश्च कर्कश्च जलराशयः ॥

गोऽजसिंहा मृगाद्यार्धं चागन्त्यार्धं चतुष्पदाः ।

कीटाख्यो वृश्चिकस्त्वेवं राशयो हि चत्विधाः ॥

अधुना परिशिष्टस्थानानां संज्ञान्तराणि वसन्ततिलकेनाह—

केन्द्रात्परं पणफरं परतश्च सर्व-

मापोक्लिमं हिबुकमम्बु सुखं च वेश्म ।

जामित्रमस्तभवनं सुतभं त्रिकोणं,

मेषूरणं दशममत्र च कर्म विद्यात् ॥१८॥

केन्द्रादिति ॥ सर्वस्मात्केन्द्राद्द्वितीयस्थानं पणफरं तेन द्वितीयपञ्चमाष्ट-
मैकादशस्थानानां पणफरसंज्ञा । परतश्च सर्वमापोक्लिमं सर्वस्मात्पणफरात्परं
सर्वं स्थानमापोक्लिमं तेन तृतीयषष्ठनवमद्वादशास्थानानामापोक्लितमिति
संज्ञा । हिबुकमम्बु सुखं च वेश्म वेश्मशब्दो गृहपर्याया वेश्मेति चतुर्थस्य
प्राक्संज्ञाभिहिता तस्यैव हिबुकसंज्ञा च । जामित्रमस्तभवनम् । अस्तभवनं
सप्तमस्थानम् । यतः सर्व एव ग्रहा उदयरारोः सप्तमराशावस्त यान्ति तदेवास्त-
भवनं जामित्रम् । सुतभं त्रिकोणम् । सुतभं पञ्चमस्थानं त्रिकोणसंज्ञम् ।
मेषूरणं दशमं दशमस्थानं मेषूरणसंज्ञं च । अत्रास्मिन् दशमे स्थाने कर्मत्यपरां
संज्ञां विद्यात् जानीयात् ॥१८॥

भाषा—केन्द्र (१४।७।१०) के आगे के (२।५।८।११) इन चार स्थानों का
नाम पणफर है । उसके अतिरिक्त सब (३।६।९।१२) ये आपोक्लिम संज्ञक हैं ।
हिबुक, अम्बु, सुख, वेश्म ये ४ चतुर्थभाव की, तथा सुत, त्रिकोण ये पञ्चम भाव की,
और मेषूरण, कर्म ये दशम भाव की संज्ञा हैं ॥ १८ ॥

अथ होरादीनां राशीनां बलं व्यवहारार्थं प्रमाणं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—
 होरा स्वामिगुरुज्ञवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्योत्कटा
 केन्द्रस्था द्विपदादयोऽहि निशि च प्राप्ते च संध्याद्वये ।
 (१) पूर्वाद्धे विषयादयः कृतगुणा मानं प्रतीपं च तद्
 दुश्चिक्यं सहजं तपश्च नवमं व्याघ्रं त्रिकोणं च तत् ॥१६॥

(१) पूर्वाद्धे इति । एतेन सार्द्धसप्तगुणपलभासन्नदेशे मेषादीनां राशीनामं-
 शात्मकान्युदयमानानि साधितानि । तत्साधनं सयुक्तिकं प्रदर्श्यते तत्र स्वदेशोदयसाधनार्थं
 चरपलताघगार्थं ग्रहलाघवोक्तं पद्यम्—

“मेषादिने सायनभागसूर्ये दिनाद्धेजाभा पलभा भवेत् सा ।

त्रिष्ठा हता स्युर्दशभिर्भुजङ्गैर्दिग्भिश्चराद्धाणि गुणोद्धृतान्त्या ॥”

गतत्पद्यानुसारेण सार्द्धसप्तगुणपलभादेशे मेषादिराशित्रयस्य चरपलानि मेच=
 ७५ । वृच=६० । मिच=२५ । ततो

“लङ्कोदया विघटिका गजभानि गोङ्कदस्त्राक्षिपश्वहना क्रमगोत्क्रमस्थाः ।
 हीनान्विताश्चरदलैः क्रमगोत्क्रमस्थैर्नैपादितो घटत उत्क्रमतस्त्वमे स्युः ॥”
 एतत्पद्यानुसारेण सार्द्धसप्तगुणपलभादेशे उदयमानानि पलात्मकानि—

लंउ, चप, स्वदेश. उ०

मेउ=२७८—७५=२०३=२००.

स्वल्पान्तरान्

वृउ=२९०—६०=२३९=२४०

”

मिउ=३२३—२५=२९८=२८०

”

कउ=३२३+२५=३४८=३२०

”

सिउ=२९९+६०=३५९=३६०

”

कउ=२७८+७५=३५३=४००

”

अत्राचार्येण स्वल्पान्तरत् फलोपयोगित्वाच्चत्वारिंशत्पलोत्तराणि गृहीतानि तानि
 दशभक्तान्यंशात्मकानि मेषादिपञ्चराशीनामुदयमानानि—

मेउ=२००÷१०=२०=५×४ ।

वृउ=२४०÷१०=२४=६×४ ।

मिउ=२८०÷१०=२८=७×४ ।

कउ=३२०÷१०=३२=८×४ ।

सिउ=३६०÷१०=३६=९×४ ।

कन्याउ=४००÷१०=४०=१०×४ ।

एतान्येव विलोमेन तुलादीनां षण्णां राशीनां मानानि भवन्ति । उक्तञ्च सिद्धान्त-
 शिरोमणौ—

“योऽभ्युदेति समयेन येन नत्सप्तयोऽस्तमुपयाति तेन च ।

राशिरुध्वंमपमण्डलं कुजादधमेव सततं यतः स्थितम् ॥” इति

अत उपपन्नम् ।

होरेति ॥ होरा लग्नं तत्स्वामिना तत्पतिना वीक्षिता दृष्टा वीर्योत्कटा बलवती भवति । तथा तेनैव युता संयुता बलवती । तथा गुरुणा जीवेन वीक्षिता युता च बलवती । तथा ज्ञेन बुधेन वीक्षिता युता च बलवती भवति । नान्यैश्चेति । अन्यैर्ग्रहैः स्वामोगुरुज्ञवर्जितैर्दृष्टा युता वा बलवती न भवति । अथ यद्युक्तानुक्तैर्मिश्रैर्युतदृष्टा भवति तदा मध्यबला अर्थादेव स्वामी-गुरुज्ञवर्जमन्यैर्युतदृष्टा बलहीना भवति । तथा च वादरायणः । “जीवस्वनाथ-शशिशैर्युतदृष्टा बलवती भवति होरा । मैर्बलहीना स्यादेवं मिश्रैस्तु मध्य-बला ॥ बलहीना यदि सर्वेन वीक्षिता नैव युक्ता वा ॥” केन्द्रस्था इति वीर्यो-त्कटा इत्यनुवर्त्तते । अत्रादिशब्दो लुप्तो द्रष्टव्यः । केन्द्रस्थाः सर्वे एव राशयो बलिनो भवन्ति । पणफरस्था मध्यबला आपोक्लिमस्था हीनबलाः । अत्र केचित् केन्द्रपणफरापोक्लिमस्थानां द्विपदचतुष्पदकीटानां यथाक्रमं बलवत्त्वं व्याचक्षते । तदयुक्तम् । यस्माद्वादरायणः । “केन्द्रस्थातिबलाः शुर्मध्यबलाः पणफराश्रिता श्रेयाः । आपोक्लिमगाः सर्वे हीनबलाः राशयः कथिताः ॥” इति । द्विपदादयोहि निशि च सन्ध्याद्वय इति । वीर्योत्कटा इत्यनुवर्त्तते । द्विपदचतुष्पदकीटाः यथाक्रममहि निशि च प्राप्ते च सन्ध्याद्वये वीर्योत्कटा भवन्ति । अहि दिने द्विपदा बलिनः निशि रात्रौ चतुष्पदाः सन्ध्याद्वये कीटाः । अत्र न केवलं वृश्चिकः यावदाप्याः सर्वे कीटग्रहणेन ज्ञेयाः । अत्र च श्रीदेव-कीर्तिः । “मिथुनतुलकुम्भकन्या दिवाबला धनिनश्च पूर्वार्धम् । अजवृषसिंहा रात्रौ मृगहययोः पूर्वपश्चार्धे ॥ वृश्चिकमीनकुलीरा मकरान्त्यार्द्धं च सन्ध्या-याम् ॥” इति । पूर्वार्द्धे विषयादयः कृतगुणाः इति । विषया इन्द्रियाणि तानि पञ्च तदादयः पञ्चषट्सप्ताष्टनवदश कृतगुणा इति । विषयादयः सर्वे एव कृतगुणाश्चतुर्गुणिताः पूर्वार्द्धे मानम् । कस्य । प्रकृतत्वाच्चक्रस्य पूर्वार्द्धे प्रथम-राशिषट्के इत्यर्थः । प्रतीपं च यदेव चक्रपूर्वार्द्धे मेषादीनां राशीनां पण्णां प्रमाणं तदेव प्रतीपं च विपर्यस्तं तुलादिषु षट्सु मानम् । तद्यथा विषयादयः ५।६।७।८।९।१० एते चतुर्गुणिता जाताः २०।२४।२८।३२।३६।४० एते प्रमाणं मेषादीनां व्यत्ययाच्च तुलादीनामिति । तथा च सत्यः । “चतुरहस्तरोत्तराः स्युर्विंशतिभागा भवन्ति मेषाद्ये । मानमिहार्द्धपूर्वं मीनाद्ये चोत्क्रमाद्वे ॥” भागव्यवहारश्च क्षेत्रे भागेनैकेन काले दश चषका भवन्ति । यस्माद्या कला क्षेत्रे सा काले प्राण इति । यस्माद्बृहद्ब्रह्मगुप्तेनोक्तम् । ‘लङ्कासमपश्चिममं प्राणेन कलां भमण्डले भ्रमति ।’ इति । एवमेते भागा दशगुणिताश्चषका भवन्ति । तत्रैतज्जातम् । काले घटिका सा षष्ट्यधिकेन शतत्रयेण गुणिता प्राणा भवन्ति क्षेत्रे च ता एव विलिप्तास्तासां षष्ट्या भागमपहृत्य षड् भागाः क्षेत्रे भवन्ति । एवं मेषादीनां प्राणभागा दशगुणिताश्चषका भवन्ति तेन चषकशतद्वयं मेष-मीनयोः प्रमाणम् । एवं चत्वारिंशदधिकं शतद्वयं वृषकुम्भयोः । शतद्वयमशीत्य-धिकं मिथुनमकरयोः शतत्रयं विंशत्यधिकं कर्कटधनुषोः । शतत्रयं षष्ट्यधिकं

सिंहवृश्चिकयोः । शतचतुष्टयं कन्यातुल्योः । एत एव चपका दशविभक्ता भागत्वेन परिकल्पिताः यतः क्षेत्रे दशभिश्चषकैर्भागो भवति । ननु चरदल-
वशात्प्रतिदेशमननुरूपेषु राश्युदयेषु गणितस्कन्धसिद्धेषु किमर्थमेकरूपं तदुदय-
प्रमाणं दर्शितमाचार्येण । अत्रोच्यते । नष्टचिन्तादिष्वर्थपरिज्ञानाय पुरुषा-
वयवानां ह्रस्वदीर्घत्वज्ञापनायुपपद्यते । तथा च यवनेश्वरः । “आद्यन्तराशो-
रुदयप्रमाणं द्वौ द्वौ मुहूर्तौ नियतं प्रदिष्टौ । क्रमोत्क्रमोभ्यामधिपञ्चमं स्याच्च-
क्रार्द्धयोर्विद्वद्युदयप्रमाणम् ॥ एवम्प्रमाणानि गृहाणि बुद्ध्वा ह्रस्वानि मध्यानि
तथायतानि । चक्राङ्गभेदैः सदृशीकृतानि मार्गप्रमाणानि विकल्पयति ॥”
अङ्गविभागकल्पनं वदयति कादिविलग्नविभक्तभगात्र इति । तत्र यस्मिन्नङ्गे
दीर्घराशिर्भवति दीर्घाधिपो वा ग्रहस्तदङ्गं दीर्घं भवति मध्ययोर्मध्यं ह्रस्वयोर्ह्र-
स्वमिति । तथा च सारावल्याम् । “ह्रस्वास्तिमिगोजघटा मिथुनधनुःकर्किमृग-
मुखाश्च समाः । वृश्चिककन्यामृगपतिवर्णिजो दीर्घाःसमाख्याताः ॥ एभिर्ल-
ग्नदिगतैः शीर्षप्रभृतीनि सर्वजन्तूनाम् । सदृशानि च जायन्ते गगनचरैश्चैव
तुल्यानि ॥” तथा च सत्यः । “दीर्घाधिपतिर्दीर्घं गृहे स्थितोऽवयवदीर्घकृ-
द्भवति ।” एवमादिष्वर्थेष्वेतैर्विकल्पना कार्या । लग्नोदयनिरूपणा गणितस्कन्ध-
सिद्धेष्वेव कार्येति । दुश्चिक्यं सहजमिति । सहजस्य तृतीयस्थानस्य दुश्चिक्य-
संज्ञा । तपश्च नवममिति । नवमस्थानस्य तु तपःसंज्ञा । त्रयाद्यं त्रिकोणं च
तत् । तदेव नवमं स्थानं त्रयाद्यं त्रिकोणं त्रिशब्द आद्यो यस्य तन्नित्रिकोण-
मित्यर्थः त्रिकोणं च तदेव नवममिति ॥१६॥

भाषा—यदि लग्न अपने स्वामी और बुध, गुरु से दृष्ट युत हो, दूसरे ग्रह से युतदृष्ट नहीं
हो तो विशेष बलवान् होता है । अर्थात् सिद्ध हुआ कि दूसरे ग्रह से भी युत दृष्ट हो
तो मध्यबली होता है । और स्वामी तथा बुध गुरु से दृष्ट न हो तो निर्वल होता है ।
तथा द्विपद, चतुष्पद, जलचर और कीट ये केन्द्र में बली होते हैं । अर्थात् पणपर में
मध्यबल और आपोविलम में हीनबल समझे जाते हैं । तथा द्विपद राशि दिन में
चतुष्पद रात्रि में तथा जलचर और कीट दोनों सन्ध्या के समय बली होते हैं । पाँच
आदि अंकों (५।६।७।८।९।१०) को ४ से गुणा करने से (२०।२४।२८।३२।३६।४०)
क्रम से पूर्वाब्द अर्थात् मेषादि ६ राशियों के अंशात्मक उदयमान होते हैं, ये ही विलोम
क्रम से तुलादि के मान होते हैं । तृतीय भाव का दुश्चिक्य और नवम का तप और
त्रित्रिकोण नाम हैं ॥ १९ ॥

विशेष अर्थ—स्थूल व्यवहारके लिये ७।३० अर्थात् साढ़े सात पलभासन्न देशीय
मान साधन कर अंशात्मक बनाकर आचार्य ने यहाँ पठित किये हैं । इसका प्रत्येक
देश में व्यवहार नहीं हो सकता है । उदाहरण स्वरूप पलभा=७।३० इस पर से
चरखण्डा ७५।६०।२५ इनको क्रमोत्क्रम से लङ्कोदय में घटाने और जोड़ने से स्वदेशोदय
पल होते हैं, तथा पलों में १० का भाग देने पर अंशात्मक मान सिद्ध होता है ॥१९॥

स्पष्टार्थं गणितं देखिये—

लङ्कोदय — चरखण्ड — स्वोदयपल — अंशात्मक

मे. मी. २७८ — ७५ = २०३ = २० = ५ × ४ स्वल्पान्तरात्

वृ. कु. २९९ — ६० = २३९ = २४ = ६ × ४ „

मि. म. ३२३ — २५ = २९८ = २८ = ७ × ४ „

क. ध. ३२३ + २५ = ३४८ = ३२ = ८ × ४ „

सि. वृ. २९९ + ६० = ३५९ = ३६ = ९ × ४ „

क. तु. २७८ + ७५ = ३५३ = ४० = १० × ४ „

अधुना राशिवर्णान्मन्दाक्रान्तयाह—

रक्तः श्वेतः शुक्रतनुनिभः पाटलो धूम्रपाण्डु-

श्वित्रः कृष्णः कनकसदृशः पिङ्गलः कर्बुरश्च ।

बभ्रुः स्वच्छः प्रथमभवनाद्येषु वर्णाः प्लवत्वं

स्वाम्याशाख्यं दिनकरयुताद्भाद्वितीयं च वेशिः ॥२०॥

रक्त इति ॥ प्रथमभवनं मेघस्तदादिषु राशिषु यथाक्रममेते वर्णाः तत्र मेघो रक्तो लोहितवर्णः । वृषः श्वेतः शुक्लः । मिथुनः शुक्रतनुनिभः हरित इत्यर्थः । कर्कटः पाटलः पाटलापुष्पवर्णः ईषत्कृष्णरक्त इत्यर्थः । सिंहो धूम्र-पाण्डुरोषच्छुक्लः । कन्या चित्रा नानावर्णेत्यर्थः । तुला कृष्णः । वृश्चिकः कनक-सदृशः सुवर्णवर्णः । धन्वी पिङ्गलः पीतवर्णः । मकरः कर्बुरः शुक्लकपिलव्या-मिश्रवर्णः । कुम्भो बभ्रु नकुलवर्णसदृशः । मीनः स्ववर्णो मत्स्यवर्ण इत्यर्थः । प्रयोजनम्—“वियोनिजन्मज्ञाने लग्नांशकादिति वक्ष्यति । प्लवत्वं स्वाम्याशा-ख्यमिति । स्वामिन आशा स्वाम्याशा आशा दिक् तत्र प्लवत्वं प्लवस्यभावः प्लवत्वम् । सर्वस्य राशेः स्वाम्याशाख्यं स्थानं प्लवत्वं निम्नतेत्यर्थः । यथा मेघवृश्चिकयोर्भौमोऽधिपतिः तस्य दक्षिणा दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ । वृषतुल्योः शुक्रोऽधिपतिः तस्यानेयी दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ । मिथुनकन्ययोर्बुधोऽधि-पतिस्तस्योत्तरा दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ । कर्कटस्य चन्द्रोऽधिपतिस्तस्य वायवी दिक् तत्र स प्लवसंज्ञः । सिंहस्यादित्योऽधिपतिस्तस्य पूर्वा दिक् तत्र स प्लव-संज्ञः । धन्विमीनयोर्बौवोऽधिपतिस्तस्यैशानी दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ । मकर-कुम्भयोः सौरोधिपतिस्तस्य पश्चिमा दिक् तत्र तौ प्लवसंज्ञौ । एवं राशि-स्वामिनो या दिक् तद्विप्लवो राशिर्ज्ञेयः । प्रयोजनम्—“हृतनष्टादिषु तद्वि-मुखम् चौरादेः । अन्यच्च यात्रायामुपयुज्यते ।” तथा च सारावल्याम् ।

“भवनाधिपतिग्रामप्लव इह यवनैः प्रबन्धतः कथितः । तत्प्लवगो विनिहन्त्याद-
चिरेण महीपतिः शत्रून् ॥” इति । दिनकरयुताद्भाद्वितीयं च वेशिरिति ।
दिनकरः सूर्यस्तेन युतो यो राशिस्तस्माद्वितीयो वेशिसंज्ञः । प्रयोजनं यात्रायां
वक्ष्यति । “वेशित्रिलग्नो पगतो ग्रियासोः” इति । तथा च । वेशिस्थाने च
सद्ग्रहः’ इत्यादि । अत्र संज्ञाध्याये याः संज्ञा उक्तास्ता द्विप्रकाराः । तत्र
काश्चित्संज्ञामात्रप्रयोजनाः, काश्चित्फलनिर्देशप्रयोजनाः । तत्रेमाः संज्ञामात्र-
प्रयोजनाः । यथा लग्नस्य होरा तृतीयस्य दुरिचक्यम् । चतुर्थस्य द्विवृक्कम् ।
पञ्चमस्य त्रिकोणम् । सप्तमस्य द्युनम् । नवमस्य त्रिकोणसंज्ञा । दशमस्य मेधू-
रणम् । द्वादशस्य रिःफम् । चतुर्थाष्टमयोश्चतुरस्रसंज्ञा । लग्नचतुर्थसप्तमदश-
मानां कण्टककेन्द्रसंज्ञा चतुष्टयसंज्ञा च । तथा द्वितीयपञ्चमाष्टमैकादशस्थानानां
परणफरसंज्ञा । तृतीयषष्ठनवमद्वादशानामपोक्लिमसंज्ञा । एताः संज्ञामात्रप्रयो-
जनाः । इमाश्च फलनिर्देशप्रयोजनाः । तत्र लग्नस्य तनुसंज्ञा कल्पसंज्ञा च तेन
लग्नाच्छरीरवृद्धयन्वेषणमारोग्यान्वेषणं च कार्यम् । द्वितीयस्य कुटुम्बसंज्ञा च
तेन तस्माज्जातिधनान्वेषणं कार्यम् । तृतीयस्य सहजसंज्ञा विक्रमसंज्ञा च तेन
तस्माद् भ्रातृणां पुरुषार्थस्य चान्वेषणं कार्यम् । चतुर्थस्य बन्धुसंज्ञा वेश्मसंज्ञा
सुखसंज्ञा च तेन तस्माद्बन्धुसुखगृहाणां चान्वेषणं कार्यम् । पञ्चमस्य बुद्धिसंज्ञा
पुत्रसंज्ञा च तेन तस्माद्बुद्धिपुत्रयोरन्वेषणं कार्यम् । षष्ठस्य अरिसंज्ञा क्षतसंज्ञा
च अरिशब्दः शत्रुवाची क्षतशब्दो ब्रणवाची तेन तस्मादरातिव्रणान्वेषणं
कार्यम् । सप्तमस्य दारसंज्ञा चित्तोत्थसंज्ञा जामित्रसंज्ञा च दारशब्द भार्यावाची
तेन तस्माद्भार्याकामविवाहान्वेषणं कार्यम् । अष्टमस्य मरणरन्ध्रसंज्ञा मरणं
मृत्युः रन्ध्रशब्दः पापपर्यायः तेन तस्मान्मरणपापान्वेषणं कार्यम् । नवमस्य
शुभसंज्ञा गुरुसंज्ञा तपःसंज्ञा च शुभशब्देनात्र धर्मो ज्ञेयः गुरवो मातृपितृ-
पूर्वकाः तपो व्रतादि तेन तस्माद्धर्ममातृपितृपूर्वकाणां गुरुणां तपसां चान्वेषणं
कार्यम् । दशमस्यास्पदकर्मसंज्ञा आस्पदशब्दः कर्मवाची स्थानवाची वा कर्मा-
स्पदसंज्ञे सुप्रसिद्धे तेन तस्मात् क्रियाभावान्वेषणं कार्यम् । एकादशस्य भवाय-
संज्ञा भवशब्दोऽत्र विद्यादिगुणसम्पत्प्राप्तिवाची आयशब्दोऽर्थवाची तेन
तस्मात्तयोरन्वेषणं कार्यम् । व्यय इति द्वादशस्याख्या तेन तस्माद्व्ययान्वेषणं
कार्यम् । तृतीयषष्ठदशमैकादशस्थानानामुपचयसंज्ञा उपचयकरत्वात् । इदं च
तेषामुपचयकरत्वं यदि तत्रस्थाः पापा अपि शुभफलप्रदा भवन्ति । तथा हि
“षष्ठस्थानं विना सौम्याः सर्वत्र भावविवृद्धिकराः । षष्ठस्थाः पुनरिहानि न
कुर्वन्ति क्षतहानि च ॥” पापास्तूपचयस्था भावविवृद्धि कुर्वाणा अपि षष्ठमुप-
चयस्थानं तच्चित्यदुष्टभावयोररिक्लतयोरपि हानि कुर्वन्ति । यतस्तेषामुपचयकरा
इत्यन्वर्थसंज्ञा । उपचयस्थास्त एव पापदा भावहानि कुर्वाणा अपि अष्टम-
द्वादशस्थानं विचिन्त्यमनिष्टभावं भावस्यानिष्टत्वात् स्थानस्योपचयात्मकत्वाद्-

वृद्धिं प्रापयन्ति । तथा च श्रीशेवकीर्तिः । “सौम्याः पष्ठे पापास्तन्वर्थसुखारि-
धर्मधीद्युनगाः । कुर्युर्भावत्रिपत्ति शेषोपगताश्च तद्वृद्धिम् ॥” इति । एतद्विशेष-
वचनं विना सर्वत्रोपतिष्ठत इति ॥ २० ॥

भाषा—१ लाल, २ शुक्ल, ३ हरा (हरित) ४ सफेद लाल मिला हुआ, ५ धूम्रपाण्डु, (श्वेत-पीतमिश्रित पाण्डु कहलाता है उसमें भी कुछ कालापन) ६ चित्र (अनेक वर्ण) ७ कृष्ण, ८ सुवर्ण वर्ण, ९ पिङ्गल (कपिल) १० कर्बुर (अनेक वर्ण), ११ बभ्रु (पिङ्गल), १२ स्वच्छ ये क्रम से मेघ आदि १२ (बारह) राशियों के वर्ण हैं । तथा स्वामियों की दिशा में राशियों का प्लवत्व (भुक्त्व) होता है । और सूर्य से द्वितीय स्थान “वेशि” संज्ञक है ॥ २० ॥

विशेष अर्थ—इसका प्रयोजन “चन्द्रसमेतनवांशपवर्णः” लग्नांशकाद् ‘ग्रहयोगेक्ष-
णाद्वा’ इत्यादि जातक और चोर आदि के वर्ण समझने में होता है । तथा प्लवत्व का प्रयोजन हृत नष्टादि में प्लवत्व दिशा में चोर तथा वस्तु की स्थिति रहती है । तथा तत्प्लवगे । विनिहन्वादिचरेण महीपतिः शत्रून्” इत्यादि युद्ध यात्रा में होता है । तथा जन्मकाल में वेशिस्थान में शुभग्रह हो तो जातक भाग्यवान् होता है ॥ २० ॥

इति सटीकबृहज्जातकेराशिप्रभेदाध्यायः ॥ १ ॥

अथ ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायः ॥ २ ॥

अथातो ग्रहयोनिप्रभेदाध्यायो व्याख्यायते । तत्र चराचरं जगद्ग्रहमयमेव प्राकालाख्यपुरुषस्य कालाङ्गानीत्येवं मेपादिना राशिनक्षत्रमयोऽगविभागः प्रदर्शितः । तत्प्रदर्शनेन ग्रहमय एवासौ प्रदर्शितो भवति यतो राशिस्वामिनो ग्रहा एव अधुना तस्यात्मादीन्भावान्ग्रहमयानेव जगत्पालकांस्तथा राजादीन्ग्रह-
मयानेव शार्ङ्गूलविक्रीडितेनाह—

कालात्मा दिनकृन्मनस्तुहिनगुः सत्त्वं कुजो ज्ञो वचो

जीवो ज्ञानमुखे सितश्च मदनो दुःखं दिनेशात्मजः ।

राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः

सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्रांशुजः ॥१॥

कालात्मा दिनकृदिति ॥ कालस्यात्मा कालात्मा दिनकृत्सूर्यः । तस्यैव तुहिनगुश्चन्द्रो मनः तुहिनेन हिमेन सदृशाः शीतलाः गावो रश्मयो यस्य स तुहिनगुः । सत्त्वं कुजो भौमः । सत्त्वस्य लक्षणम् । “अधिकारकरं सत्त्वं वासनाभ्युदयागमे ।” सत्त्वशब्दोऽत्र शौर्यपर्यायः यच्च सिंहादीनामस्ति । तथा च “एकाकिनि वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनीतिशास्त्रज्ञे । सत्त्वाश्रयान्मृगपतौ राजेति गिरः परिणमन्ति ॥” उत्कृष्टस्वभावेनेत्यर्थः । ज्ञो बुधो वचो गिरः । जीवो बृहस्पतिज्ञानमुखे ज्ञानं च मुखे च ज्ञानमुखे । सितः शुक्रो मदनः कामः । दिनस्येशो दिनेशः सूर्यस्तस्यात्मजः पुत्रः शनैश्चरा दुःखम् । अत्र कालग्रहणं

कालस्य सर्वगतत्वप्रदर्शनार्थम् । अत्र न केवलं कालपुरुषस्य मेषाद्या राशयः शिरःप्रभृत्यंगविभागेन स्थिताः यावदादित्यादयश्चात्मविभागेन सर्वस्य जगतः स्थिताः । प्रयोजनम् । “पीडिते ग्रहे देहवतोऽपि तदङ्गभावात्मगुणपीडनं वक्तव्यं पुष्टे पुष्टिः ।” इति । न केवलं यावज्जन्मनि बलवद्भिर्ग्रहेरेत एव भावा आत्मादयः शुभा भवन्ति दुर्बलैर्दुर्बलाः किन्तु सौरस्य विपरीतम् । तथा च सारावल्याम् ।

“आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः ।

दुर्बलैर्दुर्बला ज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतम् ॥” इति ।

राजानावित्यादि । रविरादित्यः शीतगुश्चन्द्रः एतौ राजानौ नृपौ । क्षिति-भूमिरस्याः सुतः पुत्रोऽगारकः सनेता सेनापतिः । कुमारो बुधः कुमारो युवराजः राजपुत्र इति केचित् । सूरिवृहस्पतिः दानवपूजितः शुक्रः एतौ सचिवौ मन्त्रिणौ । सहस्रांशुः सूर्यस्तस्माज्जातः शनैश्चरः स प्रेष्यो दासः । ननु जगत्फलनकरणे शनैश्चरः प्रेष्यः किमत्रोच्यते । प्रेष्योऽपि स्वकर्मणां पालक एव । प्रयोजनम् । जन्मनि प्रश्नकाले वा बलवानुपचयस्थो ग्रहो भवति तदुक्तो राजादिकस्तस्य कार्यसाधको भवति अन्यथा हानिकरः ॥ १ ॥

भाषा—सूर्य काल (समय रूप परमेश्वर) की आत्मा है, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्त्व (बल), बुध वाणी, गुह ज्ञान और सुख, शुक्र काम तथा शनि कालपुरुष का दुख है । सूर्य और चन्द्रमा राजा, मङ्गल सेनापति, बुध युवराज, गुह और शुक्र ये दोनों मन्त्री तथा शनि प्रेष्य (भृत्य) है ॥ १ ॥

विशेष अर्थ—इसका प्रयोजन “आत्मादयो गगनगैर्बलिभिर्बलवत्तराः । दुर्बलैर्दुर्बलाज्ञेया विपरीतं शनेः स्मृतः ॥” आत्मा आदि ग्रहों के बली होने से आत्मा आदि पुष्ट और निर्बल होने से आत्मा आदि भी दुर्बल होते हैं । तथा राजा आदि ग्रह जन्म समय या प्रश्न समय में बली और लग्न से उपचय में हो तो राजा आदि हो या राजादि के द्वारा कार्य सिद्ध होती है ॥ १ ॥

अधुना व्यवहारार्थं सूर्यचन्द्रबुधाङ्गारकशनैश्चराणां सञ्ज्ञाः शालिन्याह—
हेलिः सूर्यश्चन्द्रमाः शीतरश्मिर्हेम्ना विज्ज्ञो बोधमश्चेन्दुपुत्रः ।

आरो वक्रः क्रूरदृक्चावनेयः कोणो मन्दः सूर्यपुत्रोऽसितश्च ॥२॥

हेलिरिति ॥ सूर्य आदित्यो हेलिसंज्ञः । चन्द्रमाः शीतरश्मिसंज्ञः । शीतरश्मयः किरणा यस्य सः । इन्दुपुत्रो बुधः स हेम्ना विज्ज्ञो बोधनः एतास्तस्य संज्ञाः । अविनिर्भूतस्यापत्यभावनेयो भौमः स आरः वक्रः क्रूरदृक् एताः भौमस्य संज्ञाः । सूर्यपुत्रः सौरः कोणः मन्दः असितः एताः शनैश्चरस्य संज्ञाः ॥ २ ॥

भाषा—सूर्य का नाम हेलि । चन्द्रमा का शीत रश्मि । बुध के इन्दु पुत्र, हेम्ना, वित् एवं बोधन नाम हैं । मङ्गल के आर, क्रूरदृक् आवनेय । शनि के कोण, मन्द, सूर्यपुत्र, असित ॥ २ ॥

अधुना गुरुशुक्रग्राहकेतूनां संज्ञा वसन्ततिलकेनाह—
जीवोऽङ्गिराः सुरगुरुर्वचसां पतीज्यः

शुक्रो भृगुर्भृगुसुतः सित आस्फुजिच्च ।

राहुस्तमोऽगुरसुरश्च शिखीति केतुः

पर्यायमन्यमुपलभ्य वदेच्च लोकात् ॥३॥

जीव इति ॥ जीवो बृहस्पतिः स एवाङ्गिराः सुरगुरुः सुरा देवास्तेषां गुरुः वचसां पतिः तथा इज्यः पूज्यः देवानाम् एता बृहस्पतेः संज्ञाः । शुक्रो भार्गवः स एव भृगुः भृगुसुतः सितः आस्फुजित् च शब्दः समुच्चयार्थः एताः शुक्रस्य संज्ञाः । राहुः स्वर्भानुः स एव तमः अगुः न विद्यन्ते गावो रश्मयो यस्य सः अरश्मिरित्यर्थः असुरो दैत्यः एता राहोः संज्ञाः । शिखीति केतुः केतोः शिखीति संज्ञा शिखा विद्यते यस्य स शिखी अन्यं पर्यायं लोकादन्यशास्त्रादुपलभ्य वदेत् ब्रूयात् । यथा—रविस्तीक्ष्णशुद्धिवाकरो भास्वास्तीक्ष्णरश्मिर्भानुर्विवस्वानित्यादिकः सूर्यस्य । शशाङ्कस्तुहिनगुर्मृगाङ्कः शशी निशाकरो नक्षत्रपतीत्याद्याश्चन्द्रस्य । कुजो लोहितो भौमः दमातनय इत्याद्या भौमस्य । सौम्यौ रौहिण्यश्चाद्रिर्भृगाङ्कतनय इन्दुज इत्याद्या बुधस्य । सूरिः सुरेयो वाक्पतिर्देवपुरोद्भिर्इन्द्रमन्त्रीत्याद्या गुरोः । भार्गव उशना दैत्येज्योऽगुरगुरुः दैत्यत्विगित्याद्याः शुक्रस्य । यमो रविजः पातङ्गिश्चायासुत इत्याद्याः सौरस्य । सैहिकेयः स्वर्भानुर्दानवोऽमृतचौरो विधुन्दुद इत्याद्या राहोरिति ॥ ३ ॥

भाषा—गुरु के जीव, अङ्गिरा, सुरगुरु वाचस्पति, इज्य । शुक्र के भृगुसुत, सित, और आस्फुजित् । राहु के तम, अगु, असुर आर । केतु का नाम शिखी है । इस प्रकार और भी पर्याय (संज्ञा) शास्त्रान्तर से प्रसिद्ध समझ कर कहना चाहिये ॥३॥

अधुना ग्रहवर्णाञ्जालिन्याह—

रक्तश्यामो भास्करो गौर इन्दुर्नात्युच्चाङ्गो रक्तगौरश्च वक्रः ।

दूर्वाश्यामो ज्ञो गुरुर्गौरगात्रः श्यामः शक्रो भास्करिः कृष्णदेहः ॥४॥

रक्तश्याम इति ॥ रक्तश्चासौ श्यामः पाटलपुष्पवर्ण इत्यर्थः । एवंविधो भास्कर आदित्यः । इन्दुश्चन्द्रो गौरः श्वेतवर्णप्रायः । वक्रोऽङ्गारकः स नात्युच्चो नातिदीर्घो रक्तगौरः पद्मपत्राभः । ज्ञो बुधः स दूर्वाश्यामः शाद्वलवर्णः । गुरुर्वृहस्पतिः स गौररात्रो गौरशरीरः । शुक्रः श्यामवर्णो नातिगौरो नाति-कृष्णः । भास्करिः सौरिः स कृष्णदेहोऽसितशरीरः । वर्णप्रयोजनम् । सर्वग्रहेषु यो बलवांस्तद्वर्णस्तत्कालजातो भवति प्रश्नकाले चौरादेरपि ॥ ४ ॥

भाषा—सूर्य लालमिश्रित श्याम वर्ण । चन्द्रमा गौर वर्ण है । मंगल सामान्य लम्बा और लाली लिये हुये गौर वर्ण है । बुध दूर्वा के समान श्याम वर्ण । गुरु गौर शरीर का । शुक्र श्याम (शुक्ल कृष्णमिश्र) वर्ण और शनि काला वर्ण वाला है ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—प्रयोजन-जन्म काल में जो ग्रह सबसे बली हो उस ग्रह के सदृश जातक का वर्ण होता है। तथा प्रश्न लग्न के समय में जो ग्रह सबसे बलवान हो उसके सदृश चौरादि का वर्ण समझना चाहिये ॥ ४ ॥

अधुना ग्रहाणां वर्णस्वाम्यं ग्रहदेवता स्वदिवस्वाम्यं सौम्यपातृत्वं च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वर्णास्ताप्रसितातिरक्तहरितव्यापीतचित्रासिता

बह्वयम्ब्वभिजकेशवेन्द्रशचिकाः सूर्यादिनाथाः क्रमात् ।

प्रागाद्या रविशुक्रलोहिततमःसौरेन्दुवित्स्वरयः

क्षीणेन्द्रकर्महोसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः ॥ ५ ॥

वर्णा इति ॥ ताम्रादयो वर्णाः सूर्यादिग्रहनाथाः सूर्यादयो ग्रहा नाथाः स्वामिनो येषां ते । ताम्रवर्णस्यादित्यो नाथः स्वामी । सितस्य श्वेतस्य चन्द्रः । अतिरक्तस्यातिलोहितस्य भौमः । हरितस्य शुक्रवर्णस्य बुधः । विशेषेण आस-मन्तात्पीतो व्यापीतस्तस्य हरिद्रासदृशस्य जीवः । चित्रस्य नानावर्णस्य शुक्रः । असितस्य कृष्णवर्णस्य सौरिः । प्रयोजनम् । हूतनष्टादिद्रव्यवर्णज्ञानं जन्मनि प्रश्नकाले चोक्तद्रव्यलाभोऽन्यथा हानिः ग्रहपूजायां तद्वर्णकुसुमपूजा । तथा च याज्ञवल्क्यः । “वर्णैर्मंडलकेषु च” इति । बह्वीत्यादि । सूर्यादिनाथा इत्यनुवर्तते सूर्यादीनां नाथाः सूर्यादिनाथाः, आदित्यस्य वह्निरभिर्नाथः स्वामी । चन्द्रमसोऽम्बु जलम् । भौमस्याभिजः कुमारः स्वामिकार्तिकेय इत्यर्थः । बुधस्य केशवो विष्णुः । गुरोरिन्द्रः शतक्रतुः । शुक्रस्य शचीन्द्राणी । सौरस्य कः प्रजापतिर्ब्रह्मेत्यर्थः । प्रयोजनम् । ग्रहपूजायां ग्रहोक्तदेवता पूज्याः । तथा यवनेश्वरः । “देवा ग्रहाणां जलवह्निविष्णुप्रजापतिस्कन्दमहेन्द्रदेवो । चन्द्रार्क-चान्द्रयर्कजभौमजीवशुक्रांश्च यज्ञेषु यजेत शश्वत् ॥” तथा चौरनामानयने बलवद्ग्रहोक्तदेवतापर्यायनाम । तथा च यात्रायां ग्रहदेवतां सम्पूज्य तद्दिशं यायात् । तथा च सारावल्याम् । “ताम्रसितरक्तहरितकपीतविचित्रासिता इनादीनाम् । पावकजलगुहकेशवशक्रशचीवेधसः पतयः ॥ पूर्वादिग्रहदेवांस्तन्मन्त्रैः समभिपूज्य तामाशाम् । कनकगजवाहनादीन्प्राप्नोति नृपोऽरितः शीघ्रम् ॥” प्रागाद्या इति । प्रागाद्याः पूर्वप्रथमा दिशस्तासां पूर्वादीनां रव्यादयो नाथाः । तत्र पूर्वस्यां दिशि रविरादित्योऽधिपतिः । पूर्वदक्षिणस्यां शुक्रः । दक्षिणस्यां लोहितोऽगारकः । दक्षिणपश्चिमायां तमो राहुः । पश्चिमायां सौरिः शनैश्चरः । पश्चिमोत्तरस्यामिदुश्चन्द्रः । उत्तरस्यां वित् बुधः । उत्तरपूर्वस्यां सूरिर्बृहस्पतिः । प्रयोजनम् । केन्द्रस्थे ग्रहे सूतिकागृहद्वारज्ञानं हूतनष्टादिषु चौरादेगेमनं च । क्षीणेन्द्रकर्मति क्षीणश्चासाविन्दुश्च क्षीणेन्दुः कृष्णाष्टम्यर्द्धाच्छुक्लाष्टम्यर्द्धा यावत् क्षीणश्चन्द्रः परतः पूर्ण आयुर्दायविधौ कृष्णपक्षत्रयोदश्यन्तात्प्रभृति

यावदमावास्यान्ते सूर्यमण्डलान्नोद्गतस्तावत् क्षीण इति । यस्माद्यवनेश्वरश्चन्द्रस्य पापत्वं न कदाचिदपीच्छति तद्वाक्यम् । “मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते राद्ये शशी मध्यबलो दशाहे । श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलस्तृतीये सौम्यैस्तु च्छे बलवान्सदैव ॥” तथा च “क्रूरग्रहोऽर्कः कुजसूर्यजौ च पापौ शुभाः शुक्रशशाङ्कजीवाः । सौम्यस्तु सौम्यो व्यतिमिश्रितोऽन्यैर्वर्गैस्तु तुल्यप्रकृतित्वमेति ॥” इति । तस्मादेव तावत्क्षीण इति । अर्क आदित्यः महीसुतोऽगारकः अर्कतनयः सौरिः एते सदैव पापाः बुधस्तैर्युतस्तेषामेकतमेन युक्तः पाप एव सौम्याः शेषाः । शुक्लपक्षाष्टम्यर्द्धात्क्रूरपक्षाष्टम्यर्द्धे यावत् चन्द्रः सौम्यः । बुधः पापवियुतः सौम्य एव । जीवशुक्रो सदैव सौम्याविति । प्रयोजनम् । पापसौम्यग्रहबलाज्जातः पापात्मकः सौम्यस्वभावश्च भवति ॥ ५ ॥

भाषा—ताम्रवर्ण, शुक्ल, अत्यन्त लाल, हरा, पीला, वित्रवर्ण और काला इन वर्णों के क्रम से सूर्यादि ग्रह स्वामी होते हैं । तथा अग्नि, जल कार्तिकेय, विष्णु, इन्द्र, इन्द्राणी और ब्रह्मा ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के देवता होती हैं । और सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि चन्द्र बुध और वृहस्पति ये क्रम से पूर्व आदि दिशाओं के स्वामी हैं । तथा क्षीणचन्द्र सूर्य, वज्रल और गनि ये पाप ग्रह हैं; इनसे युत बुध हो तो, वह भी पाप ग्रह हो जाता है । अर्थात् इनके अतिरिक्त (पूर्णचन्द्र बुध, गुरु और शुक्र) शुभ ग्रह हैं ॥ ५ ॥

विशेष अर्थ—नष्टादि द्रव्य के वर्ण ज्ञान, वा जन्म समय में जो ग्रहबली रहता है उस वर्ण के पदार्थ का लाभ अन्यथा हानि इत्यादि में वर्ण का प्रयोजन होता है । तथा ग्रहों की पूजा (शान्ति) में ग्रहों की देवता की पूजा की जाती है । तथा देवता की पूजा में उनके ग्रहों की पूजा होती है । एवं केन्द्रस्थ बली ग्रह की दिशा में सूतिका ग्रह का द्वार और चोर आदि की दिशा जानने में ग्रह की दिशा का प्रयोजन होता है । तथा दिशा के स्वामी के दिन आदि में उस दिशा में दिग्बल और पृष्ठ दिशा में दिक्शूल होता है ॥ ५ ॥

अधुना ग्रहाणां प्रकृतिविभागं महाभूताधिपत्यं चौपच्छन्दसिकेनाह—

बुधसूर्यसुतौ नपुंसकाख्यौ शशिशुक्रौ युवतौ नराश्च शेषाः ।

शिखिभूखपयोमरुद्गणानां वशिनो भूमिसुतादयः क्रमेण ॥ ६ ॥

बुधसूर्यसुताविति ॥ बुधश्चान्द्रिः सूर्यसुतः शनिः एतौ नपुंसकाख्यौ नपुंसकनामानौ । शशी चन्द्रः शुक्रो भार्गव एतौ द्वौ युवतिसंज्ञौ । शेषा रविजीवभौमा नराः पुरुषसंज्ञाः पुरुषनामानः । प्रयोजनम्—जन्मनि चिन्तायां हूतनष्टादिषु बलवन्तः स्वपक्षमेव कुर्वन्ति एषामुपतापे तदाश्रितानामुपतापः । शिखिभूखपयोमरुद्गणानामिति । शिख्यादीनां पञ्चानां महाभूतानां पञ्च ग्रहा भूमिसुतादयः क्रमेण वशिनः । तद्यथा । शिखिनोऽग्नेर्भूमिसुतोऽगारको वशी भौमोऽग्नेः स्वामीत्यर्थः । एवं भूमेबुधः । खस्याकाशस्य जीवः । पयसोऽभसः ।

शुक्रः । मरुतो वायोः शनैश्चरः । गणप्रहणमत्र वृत्तपूरणार्थम् । नन्वादित्य-
चन्द्रयोः कस्मान्नोक्तमित्यत्रोच्यते । तयोः पूर्वमेवोक्तं वह्नयं विवति तावेव
प्रसिद्धौ । प्रयोजनम्—स्वदशायां महाभूतकृतां छायां व्यञ्जयन्ति । वद्वति च ।
“छायां महाभूतकृतां च सर्वे” इति ॥ ६ ॥

भाषा—बुध, शनि तपुंसक । चन्द्र, शुक्र स्त्रीग्रह शेष (रवि, मंगल और गुरु)
ये पुरुष ग्रह हैं । तथा १ अग्नि, २ भूमि ३ आकाश ४ जल और ५ वायु इन पाँच
तत्त्वों के स्वामी क्रम से मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि ये ५ ग्रह हैं ॥ ६ ॥

विशेष अर्थ—जन्म समय में जातक के और प्रश्न समय में चोर आदिके पुंस्त्रीत्व,
पुंग्रह और स्त्री ग्रह से समझा जाता है । तथा ग्रहों की शुभ दशा में अपने तत्त्व
सम्बन्धी गुणों से सुख. अशुभ दशा में उस तत्त्व सम्बन्धी गुणों से दुःख होता है । जो
आगे दशाध्याय में वर्णित है ॥ ६ ॥

अधुना ग्रहाणां ब्राह्मणादिवर्णाधिपत्यं गुणविभागं चोपजातिकयाह—

विप्रादितः शुक्रगुरु कुजाकौ शशी बुधश्चेत्यसितोऽन्त्यजानाम् ।

चन्द्रार्कजीवा इसितौ कुजाकौ यथाक्रमं सत्वरजस्तमांसि ॥ ७ ॥

विप्रादित इति ॥ विप्रादितो ब्राह्मणादेर्वर्णाधितुष्टयस्य स्वामिनो ग्रहा अधि-
पतयः । शुक्रो भार्गवो गुरुबृहस्पतिरेतौ द्वौ ब्राह्मणानामधिपतौ । कुजो
भौमोऽर्क आदित्यः एतौ द्वौ क्षत्रियाणाम् । शशो चन्द्रो वैश्यानां । शूद्राणां
बुधः । असितः शनैश्चरोऽन्त्यजानां वर्णाप्रतिलोमभवानां चाण्डालमागधनि-
षादादीनाम् । प्रयोजनम्—हृतनष्टादिषु ग्रहबलाच्चौरादीनां ग्रहोक्तवर्णप्रभावः
एषामुपघाते तद्वर्णोपघातः । तथा च सत्यः । “गुरुशुक्रौ रविरक्तौ चन्द्रः
सौम्यः शनैश्चरश्चेति । विप्रक्षत्रियविट्शूद्रसंकराणां प्रभुत्वकराः ॥ अजये
जयेऽथ तुष्टावप्रीतौ वित्तनाशने लाभे । तेभ्यस्तेभ्यः कुयुर्गुणांश्च दोषांश्च
पक्षांस्तान् ॥” चन्द्रार्कजीवा इत्यादि । चन्द्रः शशी अर्कः आदित्यः जीवो
बृहस्पतिः एते सत्त्वसंज्ञा । शो बुधः सितः शुक्रः एतौ द्वौ रजःसंज्ञौ । कुजोऽ-
गारकः आर्कः सौरः एतौ द्वौ तमः संज्ञौ । एते यथाक्रमं सत्त्वादिगुणाधि-
पतयो ग्रहाः । प्रयोजनम्—“सत्त्वं रजस्तमा वा त्रिंशो यस्य भास्करस्ताह्व”
इति । अन्ये पुनर्ग्रहबलाद्वर्णयन्ति । तथा च श्रोदेवकीर्तिः । “बलवद्विस्तद्गुणो
भवेज्जातः” इति । अत्रार्चायस्य यवनेश्वरेण सह मतभेदः तेन भौमः
सात्त्विक उक्तः । तथा च तद्वाक्यम् । “सत्त्वाधिका भास्करभौमजीवा
भृग्वात्मजो राजसिकः शशी च । शनैश्चरस्तामसिको बुधस्तु संयोगवाऽस्मा-
ल्लभते विशेषान् ॥” आचार्यस्य सत्यवचनमभिमतम् । तथा च सत्यः ।
“तामसिकौ कुजसौरी राजसिको भार्गवः शशिसुतश्च । जीवशशिभास्कराः
सात्त्विका ग्रहवत्प्रकृतयो नृणाम् ॥” एवं यत्र यत्रार्चायस्य यवनेश्वरेण सह
मतभेदस्तत्राङ्गीकृतं सत्यमतमपि । अथ पूर्वमभिहितं सत्त्वं कुजः । चन्द्रार्क-

जीवाः पुनः किमित्युक्तम् । उच्यते । इह गुणवचनः सत्त्वशब्दस्तत्र शौर्यपर्यायः । यः कार्याकार्यप्रवृत्तानां सिंहादीनामप्यस्ति येन एकाकिनोऽपि वनवासिनः । तथा च । “एकाकिनि वनवासिन्यराजलक्ष्मण्यनोतिशास्त्रज्ञ । सत्त्वस्थिते मृगपत्तौ राजेति गिरः परिणमन्ति ॥” अथ गुणस्वरूपम् ।

“यः सात्त्विकस्तस्य दयास्थिरत्वं सत्यार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः ।

रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः ॥

तमोऽधिको वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः ।” इति ॥ ३॥

भाषा—शुक्र, गुरु, ये ब्राह्मणों के स्वामी, मङ्गल और सूर्य क्षत्रियों के स्वामी चन्द्रमा वैश्यों का तथा शनि नीच जातियों का स्वामी है । तथा चन्द्र, सूर्य, गुरु ये सत्त्वगुणी बुध, शुक्र रजोगुणी, मङ्गल और शनि तमोगुणी ग्रह हैं ॥ ७ ॥

विशेष अर्थ—प्रयोजन-प्रश्नकाल में वली ग्रह से चौर आदि का वर्ण समझाने में होता है तथा “सत्त्वं रजस्तमो वा त्रिंशदि यस्य भास्करस्तादृक्” इत्यादि जातक के गुण समझने में होता है ॥ ७ ॥

अधुना चन्द्रार्कयोः स्वरूपं तोटकेनाह—

मधुपिङ्गलद्वचतुरस्रतनुः पित्तप्रकृतिः सविताल्पकचः ।

तनुवृत्ततनुर्बहुवातकफः प्राज्ञश्च शशी मृदुवाक् शुभदृक् ॥ ८ ॥

मधुपिङ्गलद्वगिति ॥ मधुवत्पिङ्गला दृष्टिर्यस्य सः ईप्सकातराक्षः । चतुरस्रतनुः प्रसारितभुजद्वयप्रमाणसमोच्छ्रायः । पित्तप्रकृतिः पित्ताधिकः । अल्पकचो विरलकेशः एवंविधः सविता आदित्यः तनुवृत्ततनुरित्यादि । तन्वी चासौ वृत्ता च तनुवृत्ता तादृशी तनुर्यस्य स तनुवृत्ततनुः । कृशवर्तुलाङ्ग इत्यर्थः । बहुवातकफः प्रभूतमारुतश्लेष्मा प्राज्ञो मेधावी मृदुवाक् कोमलभाषी शुभदृक् दर्शनीयान्नः एवंविधः शशी चन्द्रः ॥ ८ ॥

भाषा—मधु के समान पिङ्गल वर्ण दृष्टि चतुरस्र (लम्बाई और चौड़ाई में बराबर) शरीर वाला पित्ताधिक, थोड़े केश वाला ऐसा सूर्य का स्वरूप है । तनु (छोटा), और गोलाकृति शरीर अधिक वातकफ, प्राज्ञ (मेधावी) मृदुभाषी, सुन्दर नेत्र इस प्रकार चन्द्रमा का स्वरूप है ॥ ८ ॥

विशेष अर्थ—इसका प्रयोजन—“लग्नवांशपतुल्य तनुः स्यात्” इत्यादि जन्मलग्न नवांश पति ग्रह के स्वरूप स्वभाव जातकादि के कहने में होता है ॥ ८ ॥

अथाङ्गारकबुधयोः स्वरूपं स्वागतयाह—

क्रूरदृक्तरुणमूर्तिरुदारः पैत्तिकः सुचपलः कृशमध्यः ।

श्लिष्टवाक्सततहास्यरुचिर्जःपित्तमारुतकफप्रकृतिश्च ॥ ९ ॥

क्रूरेति ॥ क्रूरा दुष्टा दृक् दृष्टिर्यस्य स क्रूरदृक्ङ्गारकः स च तरुणमूर्तिः नित्यं यौवनोपेताकारविग्रहः उदारो दाता पैत्तिकः पित्तबहुलः सुचपलोऽ

तीवास्थिरचित्तः कृशमध्यस्तनूदरः एवं त्रिधोऽगारकः । श्लिष्टवागित्यादि । श्लिष्टवागद्गदभाषीसतत हास्यरुचिः नित्यं परिहासशीलः पित्तमारुतकफ-प्रकृतिदोषत्रयोल्बणस्वभावः एवंविधो ज्ञो बुधः ॥ ६ ॥

भाषा—कूर दृष्टि वाला, युवावस्था, उदार (दाता) पित्तप्रकृति, चञ्चल, क्षीणकटि ऐसा मंगल का स्वरूप है । श्लिष्ट अनेक अर्थवाला वाक्य दोलने वाला, सर्वथा हास्य में रुचि रखने वाला, पित्त, वायु, कफ तीनों प्रकृति वाला ऐसा बुध है ॥ ९ ॥

अथ जीवशुक्रयोः स्वरूपं वंशस्थेनाह—

बृहत्तनुः पिङ्गलमूर्धजेक्षणो बृहस्पतिः श्रेष्ठमतिः कफात्मकः ।

भृगुः सुखी कान्तवपुः सुलोचनः कफानिलात्मासितवक्रमूर्द्धजः ॥ १० ॥

बृहत्तनुरिति ॥ बृहत्तनुः स्थूलशरीरः, मूर्धजाः केशा ईक्षणो नयने च पिङ्गले कपिले यस्य कपिलकेशकातराक्ष इत्यर्थः । श्रेष्ठमतिर्धर्मानुग्रहः कफात्मकः श्लेष्मात्मा एवंविधो बृहस्पतिः । भृगुरित्यादि । सुखी नित्यं सुखासक्तः कान्तवपुर्दर्शनीयशरीरः सुलोचनः शोभनाक्षः कफानिलात्मा श्लेष्ममारुतप्रकृतिः असितवक्रमूर्द्धजः असिताः कृष्णा वक्राः कुटिलाः मूर्द्धजाः केशाः यस्य स कृष्णकुटिलकेश इत्यर्थः । एवंविधो भृगुः शुक्रः ॥ १० ॥

भाषा—दीर्घ और स्थूल शरीर, पिङ्गल वर्ण तथा पिङ्गल केश और पिङ्गल नेत्र वाला, उत्तम बुद्धि ऐसा बृहस्पति का स्वरूप है । सदा सुखी दर्शनीय शरीर, सुन्दर नेत्र, कफ, वायु प्रकृति काला और टेढ़ा टेढ़ा (ओठिया) केश वाला शुक्र का स्वरूप है ॥ १० ॥

अधुना शनैश्चरस्वरूपं स्नायवादिसारत्वं च ग्रहाश्रयं वसंततिलकेनाह—

मन्दोऽलसः कपिलदृक्कृशदीर्घगात्रः

स्थूलद्विजः परुषरोमकचोऽनिलात्मा ।

स्नायवस्थिसुक्त्वगथ शुक्रवसे च मज्जा-

मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः ॥ ११ ॥

मन्दोऽलस इति ॥ अलसः क्रियास्वपटुः कपिलदृक् पिङ्गलाक्षः कृशं दुर्बलं दीर्घमुच्चतरं गात्रं यस्य गात्राणि वा सः दुर्बलोर्ध्वदेहः स्थूलद्विजो बृहदन्तः परुषरोमकचा रुक्षतनूरुहकेशः अनिलात्मा वातप्रकृतिः एवंविधो मन्दः शनैश्चरः । स्नायवस्थित्यादि । मन्दादीनां ग्रहाणां स्नायवादिसारत्वं स्नायवस्थिनी प्रसिद्धार्थे । देहवतां शनैश्चरादित्यौ स्नायवस्थिसारौ शनैश्चरः स्नायुसारः । आदित्योऽस्थिसारः । असृग्बुधिरं तच्चन्द्रमाः । त्वक् चर्म तद्बुधः । अथशब्द आनन्तर्यार्थे । शुक्रं रेतः तच्छुक्रः । वसा मेदस्तत्सुरेज्यो गुरुः । मज्जा अस्थ्यन्तर्गतो धातुविशेषः स भौमः । ग्रहाणां स्वरूपज्ञानप्रयोजनम् । लग्न-

वांशपतुल्यतनुः स्यादित्यत्रोपयुज्यते । जन्मकाले यो ग्रहो बलवांस्तत्पठितस्वरूपस्तत्कालजातो भवति तद्घातुसारश्च हृतनष्टादिषु प्रश्नकालेऽप्येवंविधा धातुरूपाश्चौरादयः व्याधिप्रश्ने यल्लग्नं यश्च लग्ने नवांशको तत्स्वामिनो बलवशादभिहितदोषभवा पीडा ॥ ११ ॥

भाषा—आलस्य युक्त कपिल नेत्र, दुबला और लम्बा शरीर स्थूल दाँत कठोर रोम और केश, तथा वात प्रकृति शनि है ।

शनि, सूर्य, चन्द्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति और मङ्गल ये क्रम से स्नायु (शिरा) अस्थि शोणित तथा वीर्य वसा और मज्जा रूप हैं अर्थात् इन सात धातुओं में बल वाले होते हैं ॥ ११ ॥

विशेष अर्थ—जन्मकाल में जो ग्रह बलवान होता है उसी के समान ही जातक भी रूप और गुण से युक्त होता है ।

यथा—“एते ग्रहा बलिशः प्रसूतिबाले नृणां स्वमूर्तिसमम् । कुर्युर्देहं नियतं बह्वक्ष समाप्ता मिश्रम्” (ल. ज्ञ.) । तथा जो ग्रह बली रहता है उस धातु की पुत्रता, जो निर्बल रहता है, उस धातु की दुर्बलता जानने के लिये इसका प्रयोजन होता है ॥ ११ ॥

अधुना ग्रहाणां स्थानवस्त्रद्रव्यतुर्प्रभुत्वं शार्दूलविक्रीडितेनाह—
देवाम्बग्निविहारकोशशयनक्षित्युत्करेशाः क्रमाद्

वस्त्रं स्थूलमभुक्तमग्निकहतं मध्यं दृढं स्फाटितम् ।

ताम्रं स्यान्मणिहेमयुक्तिरजतान्यर्काच्च मुक्तायसी

द्रेष्काणैः शिशिरादयः शशुरुचज्ञवादिषूद्यत्सु वा । १२ ॥

देवाम्बग्नीति । अर्कात्प्रभृति तदादीनां ग्रहाणां क्रमहेवादीनि स्थानानि । तत्र देवस्थानमादित्यस्य । अम्बुस्थानं चन्द्रमसः । अग्निस्थानं भौमस्य । विहारस्थानं क्रीडास्थानं बुधस्य । कोशो भाण्डारागारं तत्स्थानं बृहस्पतेः । शयनस्थानं शुक्रस्य । क्षित्युत्करः अवकरराशिस्तत्स्थानं शनैश्चरस्य । एषां स्थानानामेत ईशाः स्वामिनः । प्रयोजनम् । बलवति ग्रहे ग्रहोक्तस्थाने प्रसवज्ञानं हृतनष्टादेश्चौरादेः स्थानं द्रव्यस्य च । वस्त्रमित्यादि । अर्कादिति सर्वत्रानुवृत्तिः । तत्र स्थूलतन्तुकृतमादित्यस्य वस्त्रम् । अभुक्तं नवं चन्द्रस्य । अग्निना हतमेकदेशदग्धं भौमस्य । केनाम्बुना हतं क्लिन्नं बुधस्य । मध्यं नातिनवं नातिजीर्णं बृहस्पतेः । दृढङ्कालान्तरस्थायि शुक्रस्य । स्फाटितं जीर्णं शनैश्चरस्य । प्रयोजनम् । सूतिक्वावस्त्रज्ञाने हृतनष्टादिचिन्तायां च बलवद्ग्रहवशाद्वस्त्रज्ञानम् । ताम्रं स्यादित्यादि, आदित्यस्य ताम्रं चन्द्रस्य मणयः भौमस्य हेम सुवर्णं, बुधस्य युक्तिः युज्यते इति युक्तिः रौतिकांस्यादि । रजतं रौप्यं बृहस्पतेः स्वस्थानस्थस्य सुवर्णमपि । मुक्ता शुक्रस्य अयः कृष्णलोहं सीसत्रपुर्णी च

शनैश्चरस्य । तथा तेनैव सूक्ष्मजातके उक्तम् । “अर्कादिताम्रमणिहेमयुक्ति-
रजतानि मौक्तिकं लोहम् । वक्तव्यं बलवद्भिः स्वस्थाने हेम जीवेऽपि ॥” तथा
च बादरायणः । “अर्कस्य ताम्रं मणयो हिमांशोभौमस्य हेमेन्दुसुतस्य युक्तिः ।
जीवस्य रौप्यं स्वगृहे स्थितस्य तस्यैव हेमोशनसश्च मुक्ता ॥ तीक्ष्णांशुदेह-
प्रभवस्य सोसकृष्णायसं च प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥” प्रयोजनम् सूतिकागृहे बल-
वद्ग्रहे द्रव्यसत्ता हृतनष्टादिचिन्तायां द्रव्यनाशादिपरिज्ञानं तच्छुभदशायां
तस्मिन्नुपचयस्थे तदाम्निः उक्तविपरीते हानिः । द्रेष्काणैरित्यादि । अत्र शका-
रादिभिर्गुपर्यन्तैर्वर्णैः सांज्ञाद्यैः शनैश्चरप्रभृतीनां गुर्वन्तानां वृत्तानुरोधान्नि-
र्देशः कृतः । शनैश्चरशुक्ररुधिरचन्द्रबुधगुरुपृथ्वस्तु लग्नगतेषु शिशिरादयः
षडर्तव्ये ज्ञेयाः । तत्र शकारोपलक्षितशनैश्चरः तस्मिन्नुदयति लग्नस्थे शिशिर-
तुर्विज्ञेयः । शुक्रारोपलक्षितः शुक्रः तस्मिन्नुदयति वसन्तः । रुकारोपलक्षितो
रुधिरः भौमस्तस्मिन् ग्रीष्मः । चकारोपलक्षितश्चन्द्रस्तस्मिन् वर्षा । ज्ञो बुध-
स्तस्मिन्वृश्चरत् । गुकारोपलक्षितो गुरुस्तस्मिन् हेमन्तः । आदित्येऽप्युदयति
ग्रीष्मः । तथा च बादरायणः । “ग्रीष्ममथ प्रवदन्ति कुजाङ्गौ” इति ।
द्रेष्काणैरित्यस्य वा इत्यनेन व्यवहितेन सम्बन्धः । द्रेष्काणैर्वोदयद्भिः शनैश्च-
रादिसम्बन्धिभिः शिशिरादयो ज्ञेयाः । एतदुक्तं भवति । लग्ने प्रहाभावे
शनैश्चरद्रेष्काणे लग्नगते शिशिरः । एवं शुक्रद्रेष्काणे लग्नगते वसन्तः ।
भौमद्रेष्काणे ग्रीष्मः । रविद्रेष्काणे ग्रीष्म एव । चन्द्रद्रेष्काणे वर्षा ।
बुधद्रेष्काणे शरत् । जीवद्रेष्काणे हेमन्तः । अत्र च मुख्यो ग्रहोदयेनर्तुनिर्देश-
स्तदभावे द्रेष्काणेनेति ज्ञातव्यम् । बहूनामुदयेऽपि द्रेष्काणेनैव । केचिद्बहू-
नामुदये बलवद्ग्रहेणेति व्याचक्षते । तथा च मणित्थः । “रथ्याद्यैर्लभोग्रगतैर्यो
बलवांस्तद्ग्रहर्तुनिर्देशः ॥” इति । तत्रैतज्ज्ञातं लग्ने यो ग्रहः स्थितस्तदुक्त
ऋतुर्वाच्यः । बहुषु लग्नगतेषु यो बलवान्, प्रहाभावे द्रेष्काणपतेऋतु-
निर्देशः । प्रयोजनम् । “नष्टजातके ऋतुनिर्देशो हृतनष्टादिचिन्तायां च ॥”
इति । अत्राचार्येण प्रहाणां शाखाधिपत्यं नोक्तम् । उक्तं च स्वल्पजातके ।
“ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः ॥” ऋग्वेदाधिपतिर्गुरुः ।
अथर्ववेदाधिपतिः सौम्यो बुधः । सामवेदाधिपतिर्भौमः । यजुर्वेदाधिपतिः
शुक्रः । प्रयोजनम् । बलवति शाखाधिपे ब्राह्मणो जातस्तच्छाखापाठको
भवति । ब्राह्मणे जाते शाखाविज्ञानम् । अनिष्टस्थानस्थे ग्रहे तन्मन्त्रैः
शान्तिरिति ॥ १२ ॥

भाषा—देवमन्दिर, जलाशय, अग्निकुण्ड, त्रीडास्थल कोशागार, शयन स्थान
और उत्कर भूमि (कतवार रखने की जगह) ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के स्थान
हैं । तथा स्थूल (मोटा) अमृक्त (विलकुल नया) अग्निहृत (जला हुआ) क-हृत
(जल से भीगा हुआ), मध्यम दर्जे का, दृढ़ (खूब मजबूत) और फटे हुये इस

प्रकार के वल्ल क्रम से सूर्यादि ग्रहों के होते हैं। और ताम्बा, मणि, सुवर्ण, मुक्ति (कांसा) आदि, चान्दी, मोती और लोह ये क्रम से सूर्यादि ग्रहों के द्रव्य हैं।

श- (शनि), शु (शुक्र), र (रुधिर = मंगल), चं (चन्द्र), ज (बुध), गुं (गुरु) ये ग्रह लग्न में हों तो क्रम से शिशिर १, वसन्त २, ग्रीष्म ३, सर्पा ४, शरद् ५, हेमन्त ६ ये ऋतु समझना अथवा इन ग्रहों में जिसका द्रेष्काण लग्न में हो उसकी ऋतु समझना चाहिये ॥ १२ ॥

विशेष अर्थ—स्थान और वल्लादि का प्रयोजन हूत, नष्टादि में तथा जन्मकाल में प्रसूतिके स्थान वल्लादि जानने में होता है। तथा नष्ट जन्मपत्रादि बनाने में ऋतु जान का प्रयोजन होता है। अर्थात् लग्न में जो ग्रह हो उसी की ऋतु जाननी चाहिये। यदि लग्न में अनेक ग्रह हों तो उनमें सबसे बलवान ग्रह की ऋतु समझना। तथा सूर्य के द्रेष्काण लग्न में हो तो ग्रीष्म ऋतु जानना। आगे नष्ट जातकाध्याय में “ग्रीष्मोऽकालम्ने कथितास्तु शेषैः” ऐसा कहा भी है। उदाहरण भी वही दिखाया गया है।

इस ग्रन्थ में वेदों के अधिपति नहीं कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं—

“ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो, यजुर्वेदाधिपो भृगुः।

सामवेदाधिपो भौमो, बुधोऽथर्वपतिः स्मृतः इति ॥ १२ ॥

अथ ग्रहाणां दृष्टिस्थानानि निसर्गदृष्टिफलानि च ग्रहर्षिण्याह—

(१) त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमान्यवलोकयन्ति चरणाभिवृद्धितः।

रविजामरेज्यरुधिराः परे च ये क्रमशो भवन्ति किल वीक्षणेऽधिकाः ॥ १३ ॥

(१) सामान्येन पराक्रमे राज्ये च सर्वेषामभ्यादृष्टिर्भवत्यतो ग्रहा अपि तृतीय (पराक्रमस्थानं) तथा दशमं (राज्यस्थानं) चैकेन चरणेन पश्यन्तीति किं चित्रम्? तदपेक्षया विद्यायां तथा धर्मो च किञ्चिदधिका दृष्टिर्भवत्यतो ग्रहा अपि पञ्चमं (विद्यास्थानं) नवमं (धर्मस्थानञ्च) चरणद्वयेन पश्यन्ति। विद्याधर्मतोऽपि किञ्चिदधिका दृष्टिः सुखे मृत्यौ च भवति तेन ग्रहाः सुखं (चतुर्थं) अष्टमं (मृत्युस्थानञ्च) चरणत्रयेण पश्यन्तीति युक्तमेव। तथा च जायायां (स्त्रियां) सर्वेषां सर्वतोभावेन दृष्टिर्भवत्येवेति प्रकृतिनिर्दिष्टं सर्वत्र प्रसिद्धमेव। उक्तञ्च भर्तृहरिणा—

“विश्वामित्रपराशरप्रभृतयो बाताम्बुपर्णशिना-

स्तेऽपि स्त्रीमुखपङ्कजं सुललितं दृष्ट्वैव मोहं गताः ॥”

इत्यादि। तस्मात् सर्वे ग्रहाः सप्तमं (जायास्थानं) सम्पूर्णदृशा विलोकयन्तीति किमाश्चर्यम्।

अथ च रविजामरेज्यरुधिरः परंवत्यादिना विशेषं कथयति—तदुक्तिर्यथा—
रविजो भृत्योऽतो राज्यपराक्रमरक्षणं तत्कर्तव्यमतस्तृतीयं दशमञ्च रविजः पूर्णदृशा पश्यतीति युक्तमेव। तथा विद्याधर्मरक्षणं तत्क्षणञ्च गुरोः कार्यं, तस्मात् त्रिकोणं गुरु पूर्णदृशा पश्यतीत्यपि समुचितम्। एवं मृत्युसुखरक्षणं नेतृकर्म तेन तत्स्थानं (चतुरस्रं) नेता मङ्गलो पश्यति। तथा राजराजकुमारास्तु जायाशक्ता भवन्ति तेन ते (रविचन्द्र-बुधाः) सप्तमं (जायास्थानं) पूर्णदृशा पश्यन्तीत्यपि समुचितमेव।

त्रिदशेति ॥ यस्मिन्स्थाने ग्रहाः स्थितास्तस्मात्त्रिदशादीनि स्थानानि चरणाभिवृद्धितः पादवृद्ध्याऽत्रलोकयन्ति ग्रहो यस्मिन्राशौ स्थितस्तस्माद्यस्त्वृतीयो ग्रहो दशमश्च तथा तृतीयदशमस्थौ राशी यौ तौ पादेन चतुर्थभागदृष्ट्याऽवलोकयन्ति । एवं त्रिकोणस्थौ नवपञ्चमस्थानगतावर्धदृष्ट्या । चतुरस्रेऽष्टमचतुर्थे अष्टमचतुर्थस्थानस्थौ पादोनदृष्ट्या । सप्तमं गृहं परिपूर्णदृष्ट्या । चरणाभिवृद्धित इत्यत्राभिषब्दो वीप्सां द्योतयति । चरणवृद्ध्या पादवृद्ध्येत्यर्थः । यावत्पाददृष्ट्या पश्यन्ति तावत्फलं प्रयच्छन्ति । तथा च स्वल्पजातके । “दशमचतुर्थे नवमपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च । पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ॥” अर्थादेव ग्रहोऽनुक्तस्थानानि न पश्यतीति । तथा च सारावलगाम् । “सव्यं पश्यन्ति सदा ग्रहान्ग्रहाश्चरणवृद्धितः सर्वे । त्रिदशत्रिकोणचतुरस्रसप्तमगताः क्रमेणैव ॥ पूर्णं पश्यति रविजस्त्वृतीयदशमे त्रिकोणमपि जीवः । चतुरस्रं भूमिसूतः सितार्कबुधहिमकराः कलत्रञ्च ॥” तथा यवनेश्वरः । “द्वौ पश्चिमौ षष्ठमथ द्वितीयं संस्थानराशोः परिहृत्य राशीन् । शेषान्ग्रहः पश्यति सर्वकालमिष्टेषु चैषां विहिता दृगिष्ठा ॥ जामित्रमे दृष्टिफलं समग्रं स्वपादहीनं चतुरस्रयोश्च । त्रिकोणयोर्दृष्टिफलार्धमाहुर्दुश्चिक्वसंज्ञे दशमे च पादम् ॥” रविजामरेज्यरुधिरा इति । किलेत्यागमसूचने । चरणाभिवृद्धित इत्यनुवर्तते । एते रविजादयश्चरणाभिवृद्धितः पादोपचयाद्वीक्षणैर्दशने क्रमशोऽधिकफलप्रदा भवन्ति । रविजः सौरिः सुदर्शने पादफलप्रदः । अमरेज्यो बहस्पतिरर्धफलप्रदः । रुधिरोऽगारकः स पादहीनफलप्रदः । अपरेऽर्कचन्द्रबुधशुक्रास्ते वीक्षणैर्दशमफलप्रदाः । एतन्नैसर्गिकं ग्रहाणां दृष्टिफलं स्थानवशादेतेषां यथास्वं दृष्टिफलमूहमेवमेके व्याचक्षते अपरे त्वाहुः । स्थानफलमेतत् । तेन त्रिदशादिस्थानगतान्ग्रहाशीन्पश्यन्तो रविजादयो दर्शनेऽधिकफलप्रदा भवन्ति । तद्यथा । तृतीयदशमस्थान्ग्रहान्राशीन्वा शनैश्चरः पश्यन्नन्येभ्यो ग्रहेभ्योऽधिकफलप्रदो भवति । परिपूर्णं पश्यतीत्यर्थः । एवं त्रिकोणस्थाञ्जीवः चतुस्त्रागान्भौमः सप्तमस्थानसूर्यचन्द्रबुधशुक्राः । एतच्च बहुतराणामाचार्याणां मतम् । तथा च भगवान्गार्गिः । “दुश्चिक्वदशगान्सौरिस्त्रिकोणस्थान्वृहस्पतिः । चतुर्थाष्टमगान्भौमः शेषाः सप्तमसंस्थितान् ॥ भवन्ति वीक्षणैर्नित्यमुक्ताधिकफला ग्रहाः ।” इति ॥ १३ ॥

भाषा—ग्रह अपने-अपने आश्रित स्थान से ३, १० को एक चरण से ५, ९ को २ चरण से ४, ८ को ३ चरण से और ७ सप्तम स्थान को ४ चरण (पूर्ण) दृष्टि से देखते हैं । इस प्रकार सामान्य कहकर विशेष कहते हैं—शन ३, १० को गुरु ५, ९ को, मंगल ४, ८ को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं । और शेष ग्रह केवल सप्तम को ही पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ।

अर्थात् सिद्ध हुआ कि इनसे भिन्न स्थान (१, २, ६, ८, ११, १२) इनको

नहीं देखते हैं। और दृष्टि के अनुसार ही फल भी देते हैं। लघुजातक में कहा भी है कि—

“पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति” ॥ १३ ॥

अधुना ग्रहाणां कालनिर्देशं रसनर्दिशं च वैतालीयेनाह—

अनयक्षणावासरतो मासोर्द्धं च समाश्च भास्करात् ।

कटुकलवणतित्तमिश्रिता मधुराम्लौ च कषाय इत्यपि ॥ १४ ॥

अयनेति । भास्करादादित्यात्प्रभृत्ययनादिकालनिर्देशः । तत्रायननिर्देशो भास्करात्सूर्यात् । क्षणो मुहूर्तस्तन्निर्देशश्चन्द्रात् । वासरो दिवसस्तन्निर्देशो भौमात् । ऋतुर्मासद्वयात्मकस्तन्निर्देशो बुधात् । मासनिर्देशो जीवात् । मासोर्द्धं पञ्चस्तन्निर्देशः शुक्रात् । समाः संवत्सरास्तन्निर्देशः सौरात् । प्रयोजनम् । प्रश्नलग्ने यस्य ग्रहस्य नवांशकोदयः स ग्रहस्तस्मान्नवांशकाद्यावत्संख्ये नवांशके भवति तावत्संख्योऽयनादिको ग्रहोपलक्षितकालशुभाशुभफलपक्वौ वाच्यः । (१) अन्ये त्वेवं व्याचक्षते । लग्ने यावत्संख्यो नवांशक उदितस्तावत्संख्योऽयनादिकालोऽशकपतिवशाद्वक्तव्यः । तथा च मणित्थः । “लग्नांशकपतितुल्यः कालो लग्नादितांशसमसंख्यः । वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्यसंयोगे ॥” कटुकलवणेत्यादि । भास्करादीदित्यात्कटुकादिरसनर्दिशः । तत्रादित्यात्सूर्यात्कटुकस्य रसस्य निर्देशः कटुकं मरीचादि । चन्द्रात् लवणस्य । भौमात्तिकस्य तित्तं निम्वादि । बुधान्मिश्रस्य षड्रसस्य । जीवान्मधुरस्य मिष्टस्य । शुक्रादम्लस्य । सौरात्कषायस्य । प्रयोजनम् । आधानकाले यो वलवांस्तदुत्तरसदोहदो गर्भिण्या भवति । तथा च सारावल्यम् । “मासि वृत्तीये स्त्रीणां दोहदको जायतेऽवश्यम् । स रसाधिपस्य भावैर्विलग्नयोगादिभिश्चिन्त्यः ॥” भोजनाश्रये च प्रश्ने ग्रहोदये तन्नवांशकोदये वा तदुत्तरसान्वितभोजनज्ञानमिति ॥ १४ ॥

भाषा—सूर्य आदि ग्रहों से अयन, मुहूर्त, दिन, ऋतु, मास, पक्ष और वर्ष क्रम से सपञ्चना और सूर्यादि ग्रहों से ही कटु, लवण, तित्त मिश्रित (सब रस मिला हुआ) मधुर, अम्ल और कषाय (कसैला) इन रसों को भी समझना चाहिये ॥ १४ ॥

(१) लग्नवांशत् क्रियन्मते नवमांशे ग्रहो वर्तते तज्ज्ञानोपायः प्रदर्शयतेः—

ग्रहाल्लग्नं विशोध्य शेषस्यांशाः कार्यास्ततोऽनुपातो यदि त्रिशदंशेनैव नवमांशा लभ्यन्ते तदा लग्नग्रहान्तरांशैः किमिति लब्धिलग्नग्रहान्तरनवांशसङ्ख्या स्यात् । ततोऽयनद्वयमेवातो रविनवांशसङ्ख्या द्विभक्तकशेषे सौम्यायनं द्विशेषे याम्यायनं त्रैयम् । तथा च चन्द्रनवांशसङ्ख्या पञ्चदशभक्ता शेष मूहूर्तिः पञ्चदशैव । तथा कुजनवांशसङ्ख्या सप्तशेषिता रव्यादयो वासरा ज्ञेयाः । बुधनवमांशसङ्ख्या पञ्चभक्ता शेषमृतुप्रमाणम् । एवं गुरुनवमांशसङ्ख्या द्वादशभक्ता शेषाच्चैत्रादिमासज्ञानम् । तथा च शुक्रनवांशसङ्ख्या द्विभक्ता शेषात्पक्षज्ञानम् । एवं शनिनवांशसङ्ख्यातुल्यवर्षप्रमाणं ज्ञेयमिति दिक् ।

विशेष अर्थ—शत्रु की जय पराजय, परदेशी के आगमन प्रश्न आदि में इसका प्रयोजन होता है । जैसे—लग्न में जिस ग्रह का नवांश जितनी संख्या में हो उस ग्रह सम्बन्धी काल के शुभाशुभ फल में समझना । यथा सारावली का वचन “लग्नांशकपतित्यः कालो लग्नोदितांश संख्यः वक्तव्यो रिपुविजये गर्भाधानेऽथ कार्य संयोगे ।”

उदाहरण—मानो किसी ने प्रश्न किया कि “मेरा कार्य कितने दिन में सिद्ध होगा” प्रश्नकालिक स्पष्ट लग्न ३।१५।२०।२४ कर्क के पाचवाँ नवांश है इसलिये नवांश पति मंगल हुआ मंगल से मास का निर्देश है इसलिये कहना चाहिये कि ५ वें महिने में कार्य सम्पन्न होगा । एवं—कोई प्रश्न करे कि “मैंने आज कौन से रस का भोजन किया या कहेगा” तो स्पष्ट लग्न बनाकर देखना कि लग्न में जो ग्रह हों और जिस ग्रह का नवांश हो उन ग्रह के रसों का आदेश करे । कहा भी है “सरसाधिपत्य भावैर्विलग्नयोगादिभिश्चित्यः” माना कि—उपरोक्त प्रश्नलग्न कर्क में रवि और बृहस्पति हैं और मंगल का नवांश है तो कटु, तिक्त और मधुर रस भोजन सामग्री कहना ॥ १४ ॥

अधुना मित्रामित्रविधिं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

जीवो जीवबुधौ सितेन्दुतनयौ व्यर्का विभौमाः क्रमा-

द्वीन्द्रर्का विकुजेन्द्रिनाश्च सुहृदः केषाञ्चिदेवं मतम् ।

सत्योक्ते सुहृदस्त्रिकोणभवनात्स्वात्स्वान्त्यधीधर्मपाः

स्वोच्चायुःसुखपाः स्वलक्षणविधेर्नान्यैर्विरोधादिति ॥ १५ ॥

जीव इति ॥ सूर्यादीनां ग्रहाणां क्रमाज्जीवादयः सुहृदः । तत्रादित्यस्य सूर्यस्य जीवो बृहस्पतिः सुहृन्मित्रम् । जीवबुधौ गुरुसौम्यौ चन्द्रस्य । सितः शुक्रः इन्दुतनयो बुधः एतौ भौमस्य । विगतोऽर्कः सूर्यो येभ्यो ग्रहेभ्यस्ते सूर्यवर्जिताः सर्व एव बुधस्य । विभौमा विगतोऽंगारको येभ्यस्ते भौमरहिताः सर्व एव बृहस्पतेः । वीन्द्रर्का विगतौ चन्द्रार्का येभ्यस्ते सर्व एव शुक्रस्य । विकुजेन्द्रिनाः कुजो भौम इन्दुश्चन्द्रः इनः सूर्यः एते(?)विकुजेन्द्रिनाः सवं एव सौरस्य शनैश्चरस्य एवं केषाञ्चिन्मत न बहूनाम् । अत्र च तेषां शत्रुमित्रव्यवहार एवेष्टो नोदासीनव्यवहारस्तस्मान्मित्रेभ्योऽन्ये ह्यमित्राणीति केचिद्यवनेश्वरादयः । तथा च यवनेश्वरः । “रवेगुरुर्मित्रमतोऽन्यथान्ये गुरोस्तु भौमं परिहृत्य सर्वे । चान्द्रेरनर्का भृगुनन्दनस्य त्वर्केन्दुवजं सुहृदः प्रदिशः ॥ भौमस्य शुक्रः शशिश्च मित्रे इन्दोर्बुधं देवगुरुं च विद्यात् । सौरस्य मित्राण्यकुर्जेन्दुसूर्याः शेषान्निपून्विद्धि नृणां च तद्वत्” ॥ सत्योक्त इति । सत्योक्ते होराशास्त्रे त्रिकोणभवनादात्मीयमूलत्रिकोणराशेः स्वांत्यधीधर्मपाः स्वोच्चायुः सुखपाश्च ते ग्रहस्य सुहृदो भवन्ति । तत्र त्रिकोणं मूलत्रिकोणं तस्मात्स्वपो

द्वितीयराश्यधिपः तस्मादेवान्त्यपो द्वादशस्थानाधिपः धीस्थानपः धीस्थानस्य पञ्चमस्याधिपः धर्मपो नवमाधिपः स्वोच्चपो ग्रहोक्तस्योच्चस्य स्वामी आयुषोऽष्टमस्थानस्याधिपतिः सुखपञ्चतुर्थस्थानाधिपतिः ग्रहो मित्रं भवति । स्वलक्षणविधेर्विरोधादन्यैरपठितस्थानाधिपतिभिर्ग्रहैः सह नायं मित्रामित्रविभागः कल्पनीयः । विरोधादसुहृद्भवं स्वं च तल्लक्षणं स्वलक्षणं स्वलक्षणे विधिः स्वलक्षणविधिः तेन विरोधस्तस्मात् । एतदुक्तं भवति । योऽयं स्वविधिर्मित्रलक्षणविभागः प्रदर्शितः अतोऽन्यस्थानाधिपा ये ग्रहास्ते ग्रहस्य सुहृदो न भवति । तथा च सत्यः । “सुहृदस्त्रिकोणभवनाद्ग्रहस्य सुतमे व्ययेऽथ धनभवने । स्वजने निधने धर्मे स्वोच्चे च भवन्ति न शेषाः ॥” स्वजनसंज्ञं चतुर्थस्थानं ततो द्विराश्यधिपो मित्रसंज्ञः एकराश्यधिपो मध्यमः अनुक्तराश्यधिपः शत्रुः । वक्ष्यति च । “द्वयेकानुक्तभपान्सुहृत्समरिपून्सञ्चिन्त्य नैसर्गिकान्” इति । एकराश्यधिपो मध्यम इति । यदुक्तं तथा चन्द्रार्कावेकराश्यधिपावपि मित्रसंज्ञौ भवतः तयोर्हि राशिद्वयस्याधिपत्याभावात् राशिद्वयस्य योऽधिपतिर्ग्रहः स एवोच्चराश्यधिपत्वात् द्विभपत्वं प्राप्नोति तथापि द्विभप एव ज्ञातव्यः तस्य स्वरशिष्यतिरेकात् । एतन्मन्दबुद्धिव्युत्पादनार्थं स्पष्टतरं व्याख्यायते । तद्यथा । आदित्यस्य सिंहस्त्रिकोणं तस्माद्द्वादशस्थानस्य कर्कटस्य चन्द्रमा अधिपतिः । स एकराश्यधिपोऽपि सन् द्वितीयराशेराधिपत्याभावाद् दित्यस्य मित्रम् । सिंहाच्चतुर्थी वृश्चिकः नवमो मेषः तयोर्भौमोऽधिपतिः । आदित्यस्योच्चं मेषः तस्याधिपो भौमः मेषस्य सिंहनवमत्वादादित्यस्य स्वोच्चत्वादेकराशित्वं मेषस्यैकत्वाद्वृश्चिकस्य द्वितीयत्वाद्भौमो द्विराश्यधिपो जातः तेनादित्यस्य मित्रम् । सिंहात्पञ्चमाष्टमौ धन्विमीनौ तयोरधिपतिर्जीवः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपतित्वादादित्यस्य मित्रम् । सिंहादिद्वितीयैकादशौ कन्यामिथुनौ तयोर्बुधः स्वामी तत्र द्वितीयस्थानस्योक्तत्वादेकादशस्यानुक्तत्वात् पठितैकराश्यधिपत्वादबुधो रवेर्मध्यमः । सिंहात्षष्ठसप्तमस्थाने मकरकुम्भौ नोक्तौ तयोरधिपत्यादादित्यस्य शनैश्चरः शत्रुः । सिंहाद्दशमचतुर्थे वृषतुले तयोरनुक्तयोः स्थानयोराधिपत्याच्छुक्र आदित्यस्य शत्रुः । एवं रवेः । अथ चन्द्रस्य यथा । चन्द्रस्य वृषस्त्रिकोणस्तस्माच्चतुर्थस्थानं सिंहस्तस्याधिपः सूर्यः स एकराश्यधिपो द्वितीयराशेराधिपत्याभावाच्चन्द्रस्य मित्रम् । वृषादिद्वितीयो मिथुनः पञ्चमः कन्या तयोर्बुधोऽधिपतिः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपत्याच्चन्द्रस्य मित्रम् । वृषात्सप्तमद्वादशौ वृश्चिकमेषौ तयोर्भौमः स्वामी तत्रद्वादशस्योक्तत्वात्सप्तमस्यानुक्तत्वात् पठितैकराश्यधिपत्वाद्भौमश्चन्द्रस्य मध्यमः । वृषाद् द्वितीय-पञ्चमेयोर्मिथुनकन्ययोः स्वामी बुधस्योक्तस्थानद्वयाधिपत्वाबुधश्चन्द्रस्य मित्रम् । वृषादष्टमैकादशौ धन्विमीनौ तयोर्जीवः स्वामी तत्रैकादशस्यानुक्तत्वात् अष्टमस्योक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाज्जीवश्चन्द्रस्य मध्यस्थः । चन्द्रस्य वृषः उच्चः वृषात्षष्ठस्तुला तयोः शुक्रोऽधिपतिस्तत्र वृषस्योच्चत्वेनोक्तत्वात्षष्ठस्या-

नुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाच्चन्द्रस्य शुक्रो मध्यस्थः । वृषान्नवमदशमौ मकर-
कुम्भौ तयोः स्वामी शनिः तत्र नवमस्योक्तत्वाद्दशमस्यानुक्त्वात्पठितैकराश्य-
धिपत्वात्सौरः चन्द्रस्य मध्यस्थः । एवं चन्द्रस्य । अथ भौमस्य । तद्यथा ।
भौमस्य मेषस्त्रिकोणं मेषाच्चतुर्थस्थानस्य कर्कटस्याधिपश्चन्द्रः स एकराश्यधि-
पोऽपि सन्दितीयराशेराधिपत्याभावाद्भौमस्य मित्रम् । मेषात्पञ्चमस्य सिंहस्या-
धिपः सूर्यः । स एकराश्यधिपोऽपि सन्दितीयराशेराधिपत्वाभावाद्भौमस्य
मित्रम् । मेषात्तृतीयषष्ठौ मिथुनकन्ये नोक्ते तयोर्बुधस्याधिपत्याद्भौमस्य बुधः
शत्रुः । मेषाद्द्वितीयसप्तमौ वृषतुले तयोः शुक्रः स्वामी तत्र द्वितीयस्योक्तत्वा-
त्सप्तमस्यानुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाच्छुक्रो भौमस्य मध्यमः । मेषाद्दशमैका-
दशौ मकरकुम्भौ तयोः सौरोऽधिपतिः भौमस्य मकर उच्चः तस्योक्तत्वादेका-
दशस्यानुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात् सौरो भौमस्य मध्यमः । एवं भौमस्य ।
अथ बुधस्य कन्या मूलत्रिकोणं तस्माद्द्वादशस्थानस्य सिंहस्याधिपतिः सूर्यः
स एकराश्यधिपोऽपि सन्दितीयराशेराधिपत्याभावाद् बुधस्य मित्रम् । कन्यायाः
द्वितीयनवमौ तुलावृषौ तयोः शुक्रोऽधिपतिः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपत्वाद्-
बुधस्य मित्रम् । कन्याया एकादशस्थानस्य कर्कटस्याधिपतिश्चन्द्रः तस्यानुक्त-
त्वाद्बुधस्य शत्रुः । कन्यायाः तृतीयाष्टमौ वृश्चिकमेषौ तयोर्भौमोऽधिपतिः
तत्राष्टमस्योक्तत्वात्तृतीयास्यानुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात् भौमो बुधस्य मध्यमः ।
कन्यायाश्चतुर्थसप्तमौ धन्विमीनौ तयोर्जीवाऽधिपतिस्तत्र चतुर्थस्योक्तत्वात्सप्तम-
स्यानुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाज्जीवो बुधस्य मध्यमः । कन्यायाः पञ्चमषष्ठौ
मकरकुम्भौ तयोः सौरोऽधिपतिस्तत्र पञ्चमस्योक्तत्वात्षष्ठस्यानुक्त्वात्पठितैक-
राश्यधिपत्वात्सौरो बुधस्य मध्यमः । एव बुधस्य । अथ गुरोः । जीवस्य धन्वी
त्रिकोणं तस्मादष्टमस्थानस्य कर्कटस्याधिपतिश्चन्द्रः स एकराश्यधिपोऽपि सन्
द्वितीयराशेराधिपत्याभावाज्जीवस्य मित्रम् । धनुषो नवमस्य सिंहस्याधि-
पतिः सूर्यः स एकराश्यधिपोऽपि सन्दितीयस्य राशेराधिपत्याभावाज्जीवस्य
मित्रम् । धनुषः पञ्चमद्वादशौ मेषवृश्चिकौ तयोर्भौमोऽधिपतिः स चोक्तस्थान-
स्याधिपत्वाज्जीवस्य मित्रम् । धनुषो द्वितीयतृतीयौ मकरकुम्भौ तयोः सौरोऽधि-
पतिस्तत्र द्वितीयस्योक्तत्वात्तृतीयास्यानुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वात्सौरो जीवस्य
मध्यस्थः । धनुषः सप्तमदर्शमे मिथुनकन्ये तयोर्बुधोऽधिपतिः स चानुक्तस्थान-
द्वयस्याधिपतित्वाद्गुरोः शत्रुः । धनुषः षष्ठैकादशस्थाने वृषतुले तयोः शुक्रोऽ-
धिपतिः स्थानद्वयस्यानुक्त्वाच्छुक्रो गुरोः शत्रुः । एवं जीवस्य । अथ शुक्रस्य ।
शुक्रस्य तुला त्रिकोणं तुलायाः नवमद्वादशस्थाने मिथुनकन्ये तयोर्बुधोऽधिपतिः
स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपतित्वाच्छुक्रस्य मित्रम् । तुलायाश्चतुर्थपञ्चमौ मकर-
कुम्भौ तयोरधिपतिः सौरः स चोक्तस्थानद्वयस्याधिपत्वाच्छुक्रस्य मित्रम् ।
तुलाया द्वितीयसप्तमौ वृश्चिकमेषौ तयोर्भौमोऽधिपतिः तत्र द्वितीयस्योक्तत्वा-
त्सप्तमस्यानुक्त्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाद्भौमः शुक्रस्य मध्यस्थः । शुक्रस्य मीन

उच्चं तुलायास्तृतीयपञ्चौ धन्विमीनौ तयोर्जीवोऽधिपतिः तत्र मीनस्योच्चादुक्त-
त्वाद्वन्विनोऽनुक्तत्वात्पठितैकराश्यधिपत्वाज्जीवः शुक्रस्य मध्यस्थः । तुलादेका-
दशः सिंहस्तस्याधिपः सूर्यः स एकराश्यधिपोऽपि सन् द्वितीयगशेराधिपत्या-
भावाच्छुक्रस्यार्कः शत्रुः । तुलात्कर्कटस्य दशमस्थानस्याधिपश्चन्द्रः स एकराश्य-
धिपोऽपि द्वितीयराश्याधिपत्याभावाच्छुक्रस्य चन्द्रः शत्रुः । एवं शुक्रस्य । अथ
सौरस्य कुम्भस्त्रिकोणं कुम्भात्पञ्चमाष्टमे मिथुनकन्ये तयोर्बुधोऽधिपतिः स
चोक्तस्थानद्वयस्याधिपतित्वात्सौरस्य मित्रम् । कुम्भाद्द्वितीयैकादशौ धन्विमीनौ
तयोर्जीवोऽधिपतिः तत्र द्वितीयस्योक्तत्वादेकादशस्यानुक्तत्वात्पठितैकराश्यधिप-
त्वात्सौरस्य जीवो मध्यस्थः । कुम्भात्षष्ठः कर्कटस्तस्याधिपश्चिंद्रस्तस्यानुक्तत्वा-
त्सौरस्य चन्द्रः शत्रुः । कुम्भात्सप्तमः सिंहस्तस्याधिपतिः सूर्यस्तस्यानुक्तत्वात्सौरस्य
सूर्यः शत्रुः । कुम्भात्तृतीयदशमौ मेषवृश्चिकौ तयोर्भौमोऽधिपतिस्तयोरनुक्तत्वा-
द्भौमः सौरस्य शत्रुरिति ॥ १५ ॥

भाषा—बृहस्पति । बृहस्पति, बुध । शुक्र, बुध । रवि वर्जित सय ग्रह । मंगल
वर्जित सय ग्रह । रवि, चन्द्र वर्जित सय ग्रह । तथा कुज, चन्द्र, रवि इन तीनों से
वतिरिक्त शेष ग्रह । क्रम से सूर्यादि ग्रहों के मित्र होते हैं । इस प्रकार किसी (यवन
आदि आचार्य) का मत है । परन्तु सत्याचार्य के मत से—ग्रहों के अपने-अपने मूल त्रिकोण
से २।१२।५।९।८।४ इन स्थानों के स्वामी मित्र होते हैं । अर्थात् शेष स्थानों के
स्वामी शत्रु होते हैं । तथा जिनमें मित्र और शत्रु दोनों के लक्षण हों वे सम (उदा-
सीन) होते हैं । इस प्रकार के अपने लक्षणों के विरोध होने के कारण दूसरे (यवन
आदि अन्य आचार्य) के कहे मंत्रों विचार नहीं ग्रहण करना चाहिये ॥ १५ ॥

सत्याचार्योक्त मंत्रों का उदाहरण—

अपने मूलत्रिकोण से २।१२।५।९।८।४ इन उक्त स्थानों के स्वामी मित्र होते हैं ।
(१।३।६।७।१०।११ इन) अनुक्त स्थानों के स्वामी ग्रह के शत्रु होते हैं । इसको
ध्यान में रख कर विचार करना चाहिये—जैसे सूर्य के मूलत्रिकोण (सिंह) से उक्त
द्वितीय स्थान के स्वामी होने के कारण बुध सूर्य का मित्र हुआ तथा “अनुक्त”
एकादश स्थान के स्वामी होने से शत्रु भी हुआ । अतः मित्र और शत्रु होने के कारण
बुध सूर्य का सम हुआ । तथा सिंह से ३।१० (तुला और वृष) इन दोनों अनुक्त स्थान
के स्वामी होने से शुक्र सूर्य का शत्रु हुआ । तथा सिंह से ४।९ इन दोनों उक्त स्थान के
स्वामी होने से मंगल सूर्य का मित्र हुआ । तथा सिंह से ५।८ इन दोनों उक्त स्थान के
स्वामी होने से गुरु सूर्य का मित्र हुआ । एवं सिंह से ६।७ इन दोनों अनुक्त स्थान के
स्वामी होने से शनि सूर्य का शत्रु हुआ । एवं सिंह से १२ उक्त स्थान के स्वामी होने
के कारण चन्द्रमा मित्र हुआ । इस प्रकार सब ग्रहों के अपने-अपने मूलत्रिकोण से विचार
कर मित्र, सम और शत्रु समझना चाहिये ॥ १५ ॥

इस प्रकार दोनों उक्त स्थान के स्वामी मित्र, एक उक्त एक अनुक्त के स्वामी
सम और अनुक्त स्थान के स्वामी शत्रु होते हैं । इससे सिद्ध उदाहरण—

अधुना सत्योक्तान् द्वयेकानुक्तभपान् ग्रहस्य सुहृन्मध्यस्थशत्रून्द्वादूल-
विक्रीडितद्वयेनाह—

शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवे-
स्तीक्ष्णांशुहिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः ।
जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्योऽरिः सिताकीर्णं समौ
मित्रे सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥१६॥

शत्रू मन्दसिताविति ॥ रवेरादित्यस्त मन्दः सौरः सितः शुक्रः एतौ द्वौ शत्रू
रिपू शशिजो बुधः समो मध्यस्थः न शत्रुर्न मित्रमुदासीन इत्यर्थः । शेषा
ग्रहाश्चंद्रांगारकगुरबो मित्राणीति । तीक्ष्णांशुरित्यादि । शीतगोश्चंद्रमसः
तीक्ष्णांशुः सूर्यः हिमरश्मिजो बुधः एतौ द्वौ सुहृदौ मित्रे शेषाः समा एव
भौमजीवशुक्रसौराः समा मध्यस्था उदासीना इत्यर्थः । जीवेन्दूष्णकरा इति ।
कुजस्य भौमस्य जीवो बृहस्पतिः इन्दुश्चन्द्रः उष्णकरः सूर्य एते सुहृदो मित्राणि
ज्यो बुधः अरिः शत्रुः । सिताकीर्णं शुक्रसौरौ समौ मध्यस्थाविति । मित्रे सूर्य-
सिताविति । सूर्यो रविः सितः शुक्रः एतौ द्वौ बुधस्य मित्रे सुहृदौ, हिमगु-
श्चन्द्रमाः शत्रुररिः, अपरेऽन्ये भौमगुरुसौराः समा मध्यस्था इति ॥१६॥

भाषा—सूर्य के शनि, शुक्र शत्रु बुध सम तथा शेष चन्द्र, मंगल और गुरु ये मित्र
होते हैं । चन्द्रमा के सूर्य बुध मित्र तथा शेष सभी ग्रह सम हैं । अर्थात् चन्द्रमा के
नैसर्गिक शत्रु नहीं हैं । मंगल के गुरु, चन्द्र, रवि ये मित्र, चन्द्रमा शत्रु और वाकी
मंगल, गुरु, शनि सम हैं । बुध के सूर्य और शुक्र मित्र, चन्द्रमा शत्रु, शेष—मंगल, गुरु,
शनि सम हैं ॥ १६ ॥

यवनोक्त मंत्री चक्र—

| ग्रह | सू. | चं. | मं. | बु. | बृ. | शु. | श. |
|-------|--------------------------|-------------------|--------------------|--------------------------|--------------------------|-------------------|----------------|
| मित्र | बृ. | बृ. बु. | बु. शु. | चं. मं. बृ. शु. श. | सू. चं. बु. शु. श. | मं. बु. बृ. श. | बु. बृ. शु. |
| शत्रु | चं. मं. बु. शु. श. | सू. मं. शु. श. | सू. चं. बृ. शु. | सू. | मं. | सू. चं. | सू. चं. मं. |

सत्योक्त नैसर्गिक मंत्री चक्र—

| ग्रह | सू. | चं. | मं. | बु. | इ. | शु. | श. |
|-------|---------------|-----------------|---------------|--------------|---------------|--------|---------------|
| मित्र | चं.मं. वृ. | सू.बु. | सू.चं. वृ. | सू.शु. | सू.चं. मं. | बु.श. | बु.शु. |
| सम | बु. | मं.वृ. शु.श. | शु.श. | मं.वृ. श. | श. | मं.वृ. | वृ. |
| शत्रु | श.शु. | × | बु. | चं. | बु.शु. | सू.चं. | सू.चं. मं. |

सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्योऽपरे त्वन्यथा

सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरु शुक्रस्य शेषावरी ।

शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयो

ये प्रोक्ताः स्वत्रिकोणभादिषु पुनस्तेऽमी मया कीर्तिताः ॥१७॥

सूरेरित्यादि । सूरेर्बृहस्पतेः सौम्यो बुधः सितः शुक्रः एतावरी शत्रू, रविसुतः सौरो मध्यस्थः अपरे अन्ये रविचन्द्रभौमाः अन्यथा मित्राणीत्यर्थः । सौम्यार्कीत्यादि । शुक्रस्य सौम्यार्की बुधसौरौ सुहृदौ मित्रे कुजो भौमः गुरुर्जीवः एतो द्वौसमौ मध्यस्थौ, शेषावादित्यचन्द्रावरी शत्रू । शुक्रज्ञावित्यादि । सौरस्य शनेः शुक्रज्ञौ सितबुधौ सुहृदौ मित्रे, सुरगुरुर्जीवः समो मध्यस्थः अन्येऽपरे रविशशिभौमाः अरयः शत्रवः । ये प्रोक्ता इत्यादि । ये मया स्वत्रिकोणभादिषु पूर्वं त्रिकोणभवनात्स्वात्स्वांत्यधीधर्मपा इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तास्त एवेह प्रविभज्य पुनर्भूयः कीर्तिताः उदाहरणत्वेन प्रदर्शिता इति ॥१७॥

भाषा—बृहस्पति के बुध शुक्र शत्रु, शनि सम और रवि, चन्द्र, मंगल ये मित्र हैं शुक्र के बुध शनि मित्र, मंगल गुरु सम और बाकी (रवि चन्द्र) शत्रु हैं । तथा शनि के शुक्र, बुध मित्र, गुरु सम, और अन्य (रवि, चन्द्र, मंगल) ये शत्रु होते हैं । पूर्व 'स्वत्रिकोणभात्' इत्यादि से जो नैसर्गिक मंत्री कही मैंने फिर यहाँ उदाहरण रूप से स्पष्ट कहा है ॥ १७ ॥

एवं नैसर्गिकमित्रामित्रमध्यस्थविभागमुक्त्वाधुना तात्कालिकं मि-

त्रामित्रविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

अन्योन्यस्य धनव्ययायसहजव्यापारबन्धुस्थिता-

स्तत्काले सुहृदः स्वतुङ्गभवनेऽप्येकेऽरयस्त्वन्यथा ।

द्वयेकानुक्तभपान् सुहृत्समरिपून्सञ्चिन्त्य नैसर्गिकां-

स्तत्काले च पुनस्तु तानधिसुहृन्मित्रादिभिः कल्पयेत् ॥१८॥

अन्योन्यस्येति ॥ अन्योन्यस्य परस्परमेतेषु धनादिषु स्थानेषु ग्रहस्य ग्रहा

व्यवस्थितास्तत्काले जन्मनि यात्रायां विवाहे प्रश्ने वा तत्समये सुहृदो मित्राणि भवन्ति । धनस्थानं द्वितीयं व्ययस्थानं द्वादशम्, आयस्थानं एकादशं सहज-स्थानं तृतीयं व्यापारस्थानं कर्माख्यं दशमं बन्धुस्थानं चतुर्थम् एतेषु स्थानेषु यो ग्रहः स्थितः स माह्नपदाद्व्यवस्थितस्तस्य सुहृन्मित्रं भवति स च तस्यापि । यत उक्तमन्योन्येति । स्वतुंगभवनेऽप्येक इति । एकेऽन्ये पुनराचार्याः ग्रहस्य यस्योच्चे यो ग्रहः स्थितः तस्य स्वोच्चस्थितं तत्कालं मित्रमिच्छन्ति । ते च यवने-श्वरादयः तथा च तद्वाक्यम् । “मूलत्रिकोणाद्धनधर्मबन्धुपुत्रव्ययस्थानगता ग्रहेन्द्राः । तत्कालमेते सुहृदो भवन्ति स्वोच्चे च यो यस्य विकृष्टवीर्यः ॥” इति । एतदप्युच्चार्यस्य अभिप्रेतम् । यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम् । “तत्काले च दशायबन्धुसहजस्वांत्येषु मित्रं स्थिताः” इति । अरयस्त्वन्यथेति । अन्यथा अन्येन प्रकारेण ग्रहस्य ग्रहा व्यवस्थितास्तत्कालेऽरयः शत्रवो भवन्ति अन्यो-न्यमिति । तद्यथा । एकराशिगताः पञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमनवमस्थानस्थश्च तत्कालं शत्रुर्ग्रहस्य ग्रहो भवति । द्वयेकानुक्तभपानिति । पूर्वमेव दर्शितं द्वितयभपानेक-भपाननुक्तभपांश्च मित्रमध्यस्थशत्रु नैसर्गिकान् “शत्रून् मन्दसितौ” इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तान्संचित्य विज्ञाय तत्काले जन्मादौ तानेवाधिसुहृन्मित्रादिभिरुप-लक्षितान् । तत्र धनादीनि मित्रस्थानानि तेषु नैसर्गिकसुहृत्स्थितोऽधिमित्रं भवति । मध्यस्थो मित्रम् शत्रुर्मध्यस्थ इति धनादिवर्जितेष्वन्येषु स्थितो निसर्गसुहृन्मध्यस्थो भवति । मध्यस्थः शत्रुः शत्रुरधिशत्रुरिति । अधुना ग्रहाणां चतुर्विधं बलं भवति स्थानदिक्चेष्टाकालबलाख्यम् ॥ १८ ॥

भाषा—जन्म, प्रश्न आदि इष्ट समय में परस्पर द्वितीय द्वादश, तृतीय एकादश और चतुर्थ दशम में स्थित ग्रह तात्कालिक मित्र होते हैं । और अन्य स्थानों में स्थित ग्रह शत्रु होते हैं । किसी (यवन आदि) के मत से अपने उच्च स्थित ग्रह भी मित्र होते हैं । परन्तु यह सत्याचार्य का अभिप्रेत नहीं है । क्योंकि उन्होंने लघुजातक में “तत्काले च दशायबन्धुसहजस्वांत्येषु मित्रम्” ऐसा ही कहा है ।

अब पञ्चधा मैत्री कहते हैं—पूर्व जो दो कथित स्थान के स्वामी को मित्र, एक स्थान के स्वामी को सम और अनुक्त स्थान के स्वामी शत्रु नैसर्गिक (अर्थात् शत्रु मन्दसितौ इत्यादि) कहे गये हैं । उनको विचार कर और तात्कालिक मैत्री भी विचार कर फिर उन्हें अधिमित्र, मित्र, सम, शत्रु और अधिशत्रु इस प्रकार कल्पना (विचार) करना चाहिये ॥ १८ ॥

विशेष अर्थ—जो ग्रह नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हो, वह अधिमित्र, जो नैसर्गिक सम और तात्कालिक मित्र वह मित्र, जो नैसर्गिक तो शत्रु और तात्कालिक मित्र वह सम हो जाता है । जो नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु वह शत्रु ही होता है । तथा जो दोनों प्रकार से शत्रु हो वह अधिशत्रु होता है ।

उदाहरण—तात्कालिक कुण्डली देखिये सूर्य से १०।११।१२ और द्वितीय स्थान में शनि, चन्द्र और मंगल हैं इसलिये ये चारों सूर्य के तात्कालिक मित्र हुये । और शेष ग्रह बुध और वृहस्पति ये दो शत्रु हुए । इस प्रकार सब ग्रहों के अपने-अपने स्थान से विचार कर चक्र में दिये जाते हैं ॥ १८ ॥

| | |
|-----------|---|
| श. ६ | ७ |
| रा. वृ. ८ | ६ |
| मं. ११ | ५ |
| के. २ | ४ |
| शु. १ | ३ |

तात्कालिक मैत्रीचक्र—

| ग्रह | सू. | चं. | मं. | बु. | वृ. | शु. | श. |
|-------|-------------------|------------------------------|------------------------------|--------------------------|--------------------|--------------------|---------------------------|
| मित्र | श. चं. मं. शु. | सू. मं. बु. शु. वृ. श. | सू. चं. बु. वृ. शु. श. | चं. वृ. मं. शु. श. | चं. मं. सू. श. | सू. मं. बु. वृ. | सू. चं. मं. वृ. वृ. |
| शत्रु | बु. वृ. | × | × | वृ. सू. | सू. बु. वृ. शु. | वृ. श. | शु. |

अब यहाँ चन्द्रमा और मंगल नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकार से मित्र हैं, अतः ये दोनों सूर्य के अधिमित्र हुये। तथा बुध नैसर्गिक सम और तात्कालिक शत्रु है, इसलिये शत्रु ही हुआ। एवं वृहस्पति नैसर्गिक मित्र तात्कालिक शत्रु होने से सम हुआ। शुक, शनि नैसर्गिक शत्रु और तात्कालिक मित्र होने से सम हुये। इस प्रकार तात्कालिक चक्र से सब ग्रहों का विचार करें ॥१८॥

उक्त रीति से पञ्चधा मैत्रीचक्र—

| ग्रह | सू. | चं. | मं. | बु. | वृ. | शु. | श. |
|-------|---------------|-------------------|----------------|---------|---------|---------------|--------------------|
| अ.मि. | चं. मं. | सू. बु. | चं. वृ. सू. | शु. | चं. मं. | बु. | वृ. |
| मित्र | ० | मं. वृ. शु. श. | शु. श. | मं. श. | श. | मं. | सू. चं. मं. वृ. |
| सम | वृ. शु. श. | + | बु. | सू. चं. | सू. | सू. चं. श. | शु. |
| शत्रु | बु. | + | + | वृ. | + | वृ. | + |
| अ. श. | + | + | + | + | बु. शु. | + | + |

तत्र तावत्स्थानदिग्बलं दोषकेनाह—

स्वोच्चसुहृत्स्वत्रिकोणनवांशैः स्थानबलं स्वगृहोपगतैश्च ।

दिक्षु बुधाङ्गिरसौ रविभौमौ सूर्यसुतः सितशीतकरौ च ॥१६॥

स्वोच्चसुहृदिति ॥ स्वग्रहणं प्रत्येकमभिसंवध्यते । तत्र स्वोच्चस्थितो ग्रहो बलवान् भवति । तात्कालिकस्य सुहृदो मित्रस्य क्षेत्रे स्थितो बलवानेव । स्वत्रिकोणे आत्मीये मूलत्रिकोणे स्थितः स्वनवांशे स्थितः स्वगृहे स्वराशावुपगतः प्राप्तो बलवानेव । एतेषामन्यतमे व्यवस्थितो ग्रहः स्थानबलयुक्तो भवति । अत्राकन्य सिंहस्त्रिकोणं तदेव स्वगृहम् । चन्द्रस्य वृष उच्चः स एव त्रिकोणम् । भौमस्य मेषस्त्रिकोणं तदेव स्वक्षेत्रम् । बुधस्य कन्या उच्चः सैव मूलत्रिकोणं स्वक्षेत्रं च । गुरोर्धन्वी त्रिकोणं तदेव स्वक्षेत्रम् । शुक्रस्य तुला त्रिकोणं तदेव स्वक्षेत्रम् । एतेषामाचार्येण विशेषो नोक्तः । अस्माभिरन्यहोराशास्त्रादातोय शिष्यहितायेह लिख्यते । तथा च सारावल्याम् ।

“विंशतिरंशाः सिंहे त्रिकोणमपरे स्वभवनमर्कस्य ।

उच्चं भागतृतीयं वृष इन्द्रोः स्यात्त्रिकोणमपरंऽशाः ॥

द्वादश भागा मेषे त्रिकोणमपरे स्वभं तु भौमस्य ।

उच्चफलं कन्यायां बुधस्य तिथ्यंशकैः सप्त विंशत्यम् ॥

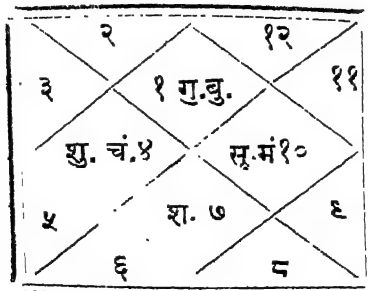
परतस्त्रिकोणजातं पञ्चभिरंशैः स्वराशिजं परतः ।

दशभिर्भागैर्जीवस्य त्रिकोणफलं स्वभ परं चापे ॥

शुक्रस्य तु त्रयोऽशास्त्रिकोणमपरे धटे स्वराशिश्च ।

कुम्भे त्रिकोणनिजमे रविजस्य रवेर्यथा सिंहे ॥”

एतद्व्याचिनुष्यं सुबोधम् । दिक्षुबुधाङ्गिरसावित्यादि । प्राच्याद्यासु चतसृषु दिक्षु क्रमाद्बुधादयो बलिनो भवन्ति । तत्र पूर्वस्यां बुधांगिरसौ ज्ञजीवौ बलिनौ भवतः । लग्नस्थावित्यर्थः । दक्षिणस्यां रविभौमौ सूर्याङ्गारकौ दशमस्थावित्यर्थः पश्चिमायां सूर्यसुतः शनिः सप्तमस्थानस्थ इत्यर्थः । उत्तरस्यां सितशीतकरौ शुक्र-चन्द्रौ चतुर्थस्थावित्यर्थः । यो ग्रहो तत्र बली स तस्मात्सप्तमस्थानस्यो विबलौ भवति । मध्येऽनुपातत ऊह्यमिति सर्वत्रेयं परिभाषा । ग्रहाणामुच्चनीचविभागे राशीनां दिग्बलप्रविभागेऽपि ।



तथा च यवनेश्वरः ।

“गुर्विन्दुजौ पूर्वविलग्नसंस्थौ नभस्थलस्थौ च दिवाकरागौ ।

सौरोऽस्तगः शुक्रनिशाकरौ तु जले स्थितावग्न्यबलौ भवेताम् ॥” इति ॥

अग्न्यबलग्रहणादन्तरेऽनुपात एव युक्तः । एतद्ग्रहाणां दिग्बलम् ॥ १६ ॥

भाषा—अपने उच्च, मित्र की राशि, अपने त्रिकोण (मूल त्रिकोण), अपने नवांश, और अपने गृह इनमें किसी एक में भी ग्रह के रहने से स्थानफल होता है । और बुध वृहस्पति पूर्व में, रवि मङ्गल दक्षिण में गनि पश्चिम में और शुक्र चन्द्रमा उत्तर दिशा में बली होते हैं । यह दिग्बल कहलाता है ॥ १९ ॥

विशेष अर्थ—कुण्डली देखिये—प्रथम लग्न पूर्व, दशम लग्न दक्षिण, सप्तम लग्न पश्चिम और चतुर्थ लग्न उत्तर दिशा है । कहा भी है—

“यत्र लग्नमपमण्डलं कुजे तद्ग्रहाद्यमिदं लग्नमुच्यते ।

प्राचि पश्चिमकुजेऽस्तलग्नकं मध्यलग्नमिति दक्षिणोत्तरे ।”

इमलिये बुध वृहस्पति लग्न में, रवि मंगल दशम में, गनि सप्तम में और चन्द्रमा शुक्र चतुर्थ लग्न में बली होते हैं । अर्थात् विरुद्ध दिशा में विरल होते हैं । इमलिये मध्य में अनुपात से—“मन्दालग्नमिनात्कुजाच्च हिवुक” इत्यादि प्रकारसे केशवीय-जादक पद्धति में स्पष्ट बल साधन किया गया है ॥ १९ ॥

अधुना चेष्टाबलं दोधकेनाह —

उदगयने रविशीतमयूखौ वक्रसमागमगाः परिशेषाः ।

विपुलकरा युधि चोत्तरसंस्थाश्चेष्टितवीर्ययुताः परिकल्प्याः ॥ २० ॥

उदगयने इति ॥ अकरादिराशिषट्कमुत्तरमयनं कर्कटादिराशिषट्कं दक्षिण-मयनमिति । उदगयने उत्तरायणे रविशीतमयूखौ सूर्याचन्द्रमसौ बलिनौ भवतः । परिशेषाः भौमबुधगुरुसितसौराः वक्रगा विपरोतगतयो बलिनो भवन्ति । तथा समागमगाश्चन्द्रेण सहिता बलिन एव । चन्द्रेण सह संयोगो ग्रहाणां समागम-शब्दवाच्यः । रविणा सहाऽस्तमयो, भौमादीनां परस्परं युद्धम् । उक्तं चाचार्य-विष्णुचन्द्रेण । “दिवसकरेणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम् । कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्” ॥ इति । विपुलकरा इति । विपुलः करा येषां ते विपुलकराः विस्तीर्णरश्मयो बलिनो भवन्ति । शीघ्रकेंद्रद्वितीय-पदस्थग्रहस्य विपुलकरत्वं प्रायः सम्भवति । वक्रासन्नत्वात् । युधि संग्रामे चोत्तरसंस्था बलिन एव । कुसुतादीनां युद्धमित्युक्तम् । तत्र यः उत्तरदिग्भाग-स्थितः स जयी बलवान् उत्तरसंस्थत्वमत्रोपलक्षणार्थं यस्तु जयी स बलवान् । तत्रैतज्जयित्क्षणम् । “दक्षिणदिक्स्थः पुरुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽगुः । अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥ उक्तविपरीतलक्षणसंपन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः । विपुलः स्निग्धो द्युतिमान्दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥” इति । एतच्छ्रुतस्य प्रायः सम्भवति । यस्मात्पुलिशाचार्यः । “सर्वे जयिन उद-

वस्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः ।” इति । एतच्चेष्टाबलम् । एषामन्यतमेन संयुक्तश्चेष्टाबलयुक्तो भवति ॥ २० ॥

भाषा—सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण में, शेष मङ्गलादि ५ ग्रह वक्रगति और समागम (चन्द्रमा के साथ) होने पर बली होते हैं । और जो ग्रह विपुल (अधिक) किरण बाने हों तथा जो ग्रह युद्ध में उत्तर दिशा में हों वे बली होते हैं इस प्रकार के बलवाने ग्रह को चेष्टा बली समझना चाहिये ॥ २० ॥

विशेष अर्थ—“दिवाकरणास्तमयः समागमः शीतरश्मिसहितानाम् ।

कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम् ।”

मङ्गलादिग्रह सूर्य के साथ रहने से अस्त, तथा चन्द्रमा के साथ रहने से समागम कहलाता है । और ये ही मङ्गलादि ग्रह परस्परयुक्त होते हैं तो युद्ध कहलाता है उनमें उत्तरवाला ग्रह बली समझा जाता है । केवल शुक्र विपुल रश्मिवाला हो तो दक्षिण में रहने पर भी बली समझा जाता है । यथा पुलिशाचार्यः—“सर्वे जघिन उदक्त्वा दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः” ग्रहों का शीघ्र केन्द्र द्वितीयपद में हो तो विपुल किरण-वाला होता है ॥ २० ॥

अधुना ग्रहाणां कालबलं च मालिन्याह—

निशि शशिकुजसौराः सर्वदा ज्ञोऽह्नि चान्ये

बहुलसितगताः स्युः क्रूसौम्याः क्रमेण ।

द्वययनदिवसहोरामासपैः कालवीर्यं

शरुवुशुचसाद्या वृद्धितो वीर्यवन्तः ॥ २१ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके ग्रहयोनि-

प्रभेदोऽध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥

निशीति ॥ शशिकुजसौराश्चन्द्रभौमशनयः निशि रात्रौ वीर्यवन्ता बलिनः । ज्ञो बुधः सर्वदा सर्वस्मिन्काले निशि दिने च बली । अन्येऽपरे रविगुरुसिता अह्नि दिने बलिनः । क्रूराः पापाः प्रागुक्ता बहुलपक्षे कृष्णपक्षे बलिनः । सौम्याः शुभग्रहाः सितगता शुक्लपक्षे बलिनः । कृष्णपक्षे चन्द्रमा अपि क्रूरो बलवान् भवति । यस्माद्यवनेश्वरः । “मासे तु शुक्ले प्रतिपत्प्रवृत्तेः पूर्वे शशी मध्यबलो दशाहे । श्रेष्ठो द्वितीयेऽल्पबलश्चतुतीये सौम्यैस्तु दृष्टो बलवान्सदैव ॥” इति । द्वययनेति । द्वययनं प्रमाणं यस्य तत् द्वययन वर्षम् । स्ववर्ष आत्मीयवर्षे यो ग्रहो यत्र वर्षेऽधिपतिः स तत्र बलवान् स्वदिवसे आत्मीयवासरे स्वहोरायां कालहोरायां तथा स्वमासे यस्मिन्मासे योऽधिपतिः स तत्र बली । द्वययनाद्वस-होरामासानां येऽधिपतयस्तैर्ग्रहैः कालबलमुपलक्षणीयं ते कालबलोपेता इत्यर्थः । केचिद्द्वययनदिवसहोरामासपैरिति पठन्ति । अन्ये स्वदिवससमहोरामास-पैरिति पठन्ति । एष सापराधः पाठः । एतेषु सर्वे एव बलिनो भवन्ति । एतत्

ग्रहाणां कालवीर्यमेषामन्यतमेन संयुक्तः कालबलसंपन्नो भवति । शरुवुगुशुच-
साद्या इति । शादयो वर्णाः येषां शकार आद्यस्ते शाद्याः । शकाराद्यः शनैश्चरः
सर्वेभ्यो बलहीनः । रुकाराद्यो रुधिरो भौमः शनैश्चरान् बलवान् । वुकाराद्यो
बुधः स भौमाद्बलवान् । गुकाराद्यो गुरुः स बुधाद्बली । शुकाराद्यः शुक्रः स
जीवाद्बली । चकाराद्यश्चन्द्रः स शुक्राद्बली । सकाराद्यः सविता स चन्द्राद्बलीति ।
एतद्ग्रहाणां नैसर्गिकं बलम् । यस्मादनेनैव म्वल्पजातके उक्तम् । “मन्दार-
सौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः । नैसर्गिकबलमेतद्बलसाभ्येऽस्मा-
दधिकृच्छता ॥” इति । यत्र ग्रहाणां ग्रहयोर्वा बलसाभ्यं तत्रास्माद्बलादधि-
वीर्यता ज्ञेयेति । अत्राचार्येण चतुःप्रकारस्य ग्रहाणां बलस्य फलं नोक्तं तच्चास्माभिः
शिष्टग्रहितहेतवेऽन्यशास्त्राल्लिख्यते । तथा च सारावल्याम् ।

“उच्चबलेन समेतः परां विभूतिं ग्रहः प्रसाधयति ।

म्वत्रिकोणबलः पुंसां साचिव्यं बलपतित्वं च ॥

स्वर्क्षबलेन च सहितः प्रमुदितधनधान्यसंपदाक्रान्तम् ।

मित्रभबलसंयुक्तो जनयति कीर्त्यान्वितं पुरुषम् ॥

तेजस्विनमतिमुखिनं सुस्थिरविभवं नृगञ्च लब्धधनम् ।

स्वनवांशकत्रलयुक्तः करोति पुरुषं प्रसिद्धं च ॥”

सूक्ष्मजातके उक्तम् । “बलवान्मित्रस्वगृहोच्चनवांशेष्वीक्षितः शुभैश्चापि ।
चन्द्रसितौ खोक्षेत्रे पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः ॥” इति । तत्र शुभदृष्टस्य फलम्
तावत् ।

“शुभदर्शनबलसहितः पुरुषं कुर्याद्धनान्वितं ख्यातम् ।

सुभगं प्रधानमखिलं सुरुपददेहं च सौम्यं च ॥

पुत्रीभवनबलेन च करोति जनपूजितं कलाकुशलम् ।

पुरुषं प्रसन्नचित्तं कल्पं परलोकभीरुं च ॥

आशाबलसमवेतो नयति स्वदिशं ग्रहेश्वरः पुरुषम् ।

नीत्वा वस्त्रविभूषणवाहनसौख्यान्वितं क्रुन्ते ॥

कचिद्राज्यं कचित्पूजां कचिद् द्रव्यं कचिद्यशः ।

ददाति विहगश्चित्रं चेष्टावीर्यसमन्वितः ॥

वक्रिनस्तु महावीर्याः शुभा राज्यप्रदा ग्रहाः ॥

पापा व्यसनदाः पुंसां कुर्वन्ति च वृथाटनम् ॥

स्वस्थः (१) शरीरसमागमसुखमाह्वजयबलेन विदधाति ।

शुभमतुलं विहगेन्द्रो राज्यं च विनिर्जितारातिम् ॥

रात्रिदिवाबलपूर्णैर्भूगजलाभेन शौर्यपरिवृद्धया ।

मलिनयते त्रैपक्षं भुनक्ति सर्वं नरः प्रकटः ॥

(१) “स्वस्थो देहसमागम” इत्यादिपाठः साधुः ।

द्विगुणं द्विगुणं दद्युर्वर्षाधिपमासदिवसहो रेशाः ।
 कुर्युर्ध्वं द्वया सौख्यं स्वदशासु धनं च कीर्तिं च ॥
 पक्षबलाद्रिपुनाशं रत्नाम्बरहस्तिसम्पदं दद्युः ।
 स्त्रीकनकभूमिलाभम् कीर्तिं च शशाङ्ककरधवलाम् ॥
 सकलबलभारभरिता निर्मलकरजालभासुराः सततम् ।
 राज्यं ग्रहा विदद्युः सौख्यं च मनोरथातीतम् ॥

आचारसौख्यशुभशौचयुताः सुरुपास्तेजस्विनः कृतविदो द्विजदेवभक्ताः ।
 सद्ब्रह्ममाल्यजनभूषणसम्प्रियाश्च सौम्यैर्ग्रहैर्वलयुतैः पुरुषा भवन्ति ॥
 लुब्धाः कुकर्मनिरता निजकार्यनिष्ठाः पाषाण्विताः सकलहाश्च तमोऽभिभूताः ।
 क्रूराः शठा वधरता मलिनाः कृतघ्नाः पापग्रहैर्वलयुतैः पुरुषा भवन्ति ॥
 पुराशिपुं प्रहृष्टैर्धर्मैः संग्रामकाङ्क्षिणो वलिनः ।
 निःस्नेहाः सुकठोराः क्रूरा मूर्खाश्च जायन्ते ॥
 युवतिभवनस्थितेषु च मृदवः संग्रामभीरवः पुरुषाः ।
 जलकुसुमवस्त्रनिरताः सौम्याः कलहाससंगुक्ताः ॥”

इति । एतत्सर्वं सुगमम् ॥२१॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां वृद्धजातकविवृतौ ग्रहयोनिप्रभेदोऽ-
 ध्यायो द्वितीयः ॥ २ ॥

भाषा—चन्द्र, मङ्गल, शनि ये रात्रि में, बुध सर्वदा, शेषग्रह दिन में, दिन का स्वामी दिन में, होरा का स्वामी होरा में, मास का स्वामी मास में (रवि, वृहस्पति और शुक्र) ये दिन में बली होते हैं । द्रव्यन (वर्ष) का स्वामी वर्ष में बली होता है । यह काबल कहलाता है ।

अब नैसर्गिक बल कहते हैं । श (शनि) कु (कु = मङ्गल) बु (बुध) शु (शुक्र) शु (शुक्र) च (चन्द्रमा) और स सविता (रवि) ये क्रमसे बली होते हैं ॥२१॥

इस प्रकार के बलयुक्त ग्रहों के पल संस्कृत टीकाकार ने स्पष्ट लिखा है ।

अथ वियोनिजन्माध्यायः ३ ।

अथातो वियोनिजन्माध्यायो व्याख्यायते । कः पुनरर्थी वियोनिजन्मे-
 त्युच्यते । विविधवियोनिजन्मनां तिर्यक्पक्षिस्थावरादीनामुत्पत्तिर्वियोनिजन्मे-
 त्युच्यते । तत्र प्रष्टुः सकाशाज्जातककालं प्रश्नकालं वा विज्ञाय वियोनिजन्म-
 निश्चयज्ञानं भवति । तत्तु वसन्ततिलकेनाह—

क्रूरग्रहैः सुबलिभिर्विबलैश्च सौम्यैः क्लीबे चतुष्टयगते तदवेक्षणाद्वा ।
 चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं सत्त्वं वदेद्यदि भवेत्स वियोनिसंज्ञः ॥१॥

क्रूरग्रहैः सुबलिभिरिति ॥ चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपमिति । चन्द्रमा
 उपगतो व्यवस्थितो यस्मिन् द्विरसभागे द्वादशभागे तत्समानरूपं तत्सदृशरूपं

सत्त्वं प्राणिनं वियोजनजन्मानं वदेत् । स च द्विरसभागो यदि वियोजनसंज्ञस्तदैव वदेन्नान्यथेति । तत्र मेषद्वादशभागे व्यवस्थिते चन्द्रमसि मेषाख्यस्य । एवं वृषद्वादशभागे व्यवस्थिते वृषाख्यस्य महिषादेश्च । कर्कटद्वादशभागे व्यवस्थिते कुलीरादेः । सिंहद्वादशभागे व्यवस्थिते सिंहद्वीपिसृगालमार्जारादिसत्त्वानां जन्म । वृश्चिकद्वादशभागे व्यवस्थिते सर्पकांटादेः । धनुर्धरद्वादशभागे द्वितीयार्धे व्यवस्थितेऽश्वगर्दभादिजन्म । मकरद्वादशभागे पूर्वार्धे व्यवस्थिते मृगजन्म । अपरे मण्डूकादेर्जलचरप्राणिन इच्छन्ति । मीने मीनस्यैव । किमे-
तावतैव वियोजनजन्मनिश्चयेनेत्याह । क्रूरग्रहैरित्यादि । क्रूरग्रहैरादित्याङ्गारक-
शनैश्चरैर्बुधेन च तदेकतमेन युक्तेन क्षीणेन चन्द्रमसा एतैः सुबलिभिः बलयुक्तैः,
सौम्यैः शुभग्रहैः क्रूरपरिशिष्टैर्विबलैर्बौर्यरहितैः क्लीबे शनैश्चरे बुधे वा चतुष्ट-
यगते केन्द्रस्थे एको वियोजनजन्मयोगः । तद्वेक्षणाद्वा चन्द्रमसि प्रदर्शितवियो-
निजन्मद्वादशभागे व्यवस्थिते । क्रूरैर्बलयुक्तैः सौम्यैर्हान्वित्यत्र तत्रावस्थितेन
बुधेन शनैश्चरेण वा लग्ने दृष्टे वियोजनजन्मज्ञानं द्वितीयो योगः । अर्थादेव
द्विपद्वादशभागव्यवस्थिते चन्द्रमसि पूर्वोक्तयोगाभावे द्विपदजन्म । तथा
च सारावल्ल्याम् ।

“क्रूरैः सुबलसमेतैर्विबलैः सौम्यैर्वियोजनभागगते ।

चन्द्रे ज्ञानी केन्द्रे तदीक्षिते चोदये वियोनिः स्यात् ॥

मेषे शशी तदंशे छागादिप्रसवमाहुराचार्याः ।

गोमहिषाणां गौऽंशे नररूपाणां तृतीयैऽंशे ॥

तत्र चतुर्थे भागे कूर्मादीनां भवेदुदकजानाम् ।

व्याघ्रादीनां परतः परतो ज्ञेय नराणां च ॥

वणिगंशे नररूपा वृश्चिकभागे तथा भुजङ्गाद्याः ।

खरतुरगाद्या नवमे मृगशिखिनां स्यात्तथा दशमे ॥

ज्ञेयाश्च तत्र विविधा वृक्षास्तृणजातयश्चित्राः ।

एकादशे च पुरुषा जलजा नानाविधाश्चान्त्ये ॥”

श्रमार्जारमृषकादीनां संख्याज्ञानं श्रमभृतीनां प्रसवे यावन्तो द्वादशांशका
लग्ने तावन्ति वदेत्प्राज्ञः पुंस्त्रीसंज्ञान्प्रपत्यानि ॥ १ ॥

भाषा—जितने भी पापग्रह हैं वे बली हों और सब शुभ ग्रह निर्बल हों एव बुध
शनि केन्द्र में हो तो—इम प्रकार के योग में जिस प्रकार के द्विरसभाग (द्वादशांश) में
चन्द्रमा हो उसी प्रकार प्राणियों का स्वरूप कहना । यदि वह (द्वादशांश) वियोजन-
संज्ञक (द्विपद से अलग) राशि हो तो वियोजन का जन्म समझना । अथवा पापग्रह
बली और शुभग्रह निर्बल हो और बुध अथवा शनि से दृष्ट लग्न हो तो भी वियोजन का
जन्म कहना । यदि चन्द्रमा वियोजन संज्ञक द्वादशांश में हो अर्थात् चन्द्रमा द्विपद
द्वादशांश में हो तो द्विपद का ही जन्म समझना । १ ।

विशेष अर्थ—“कूरः सुबलसमेतविदलैः सौम्यवियोनिभागगते ।

चन्द्रे ज्ञानो केन्द्रे तदीक्षिते ब्रौदये वियोनिः स्यात् ॥

मेपे शशी तदशे छागादिप्रसवमाहुराचार्याः ।

गोमहिषाणां गौंशे नररूपाणां च मिथुनांशे ॥ इत्यादि ।

अर्थात् यदि चन्द्रमा मेष के द्वादशांश में हो तो छाग, मेढा आदि का जन्म, यदि वृष का अंश हो तो गाय, भैस आदि, कर्क के अंश में हो तो केकड़ा, कछुआ आदि, सिंह के द्वादशांश में हो तो बाघ, सिंह, विलार आदि, इसी प्रकार यदि वृश्चिक के द्वादशांश में हो तो बिच्छू, सर्प आदि, धनु के उत्तराश्व में घोड़े, गदहे आदि, मकर के पूर्वार्ध में हरिण आदि, उत्तराश्व में गोह एवं जल जन्तु इत्यादि और मीन के अंश में हो तो मछली आदि जल जन्तु का जन्म समझना । किन्तु मिथुन कन्या आदि शेष द्विपद राशि के द्वादशांश में चन्द्रमा हो तो मानव का समझना चाहिए ॥ १ ॥

अथ वियोनिजन्मज्ञाने योगान्तरं वैतालीयेनाह—

पापा बलिनः स्वभागगाः पारक्ये विबलाश्च शोभनाः ।

लग्नं च वियोनिसंज्ञकं दृष्ट्वात्रापि वियोनिमादिशेत् ॥ २ ॥

पापा इति ॥ चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपमित्यनुवर्तते । पापाः ब्रह्म प्रहाः प्रागुक्ता बलिनः सवलाः न केवलं यावत्स्वभागगाः स्वनवांशस्थाः । भागप्रहणे-नेह नवांशक एव ज्ञातव्यः । शोभनाः सौम्यप्रहाः प्रागुक्ताः पारक्ये परनवांशके विबला वीर्यरहिता व्यवस्थिताः । लग्नं तात्कालिकं च यदि वियोनिसंज्ञकं भवति तदत्राप्यस्मिन्नपि योगे चन्द्रोपगद्विरसभागसमानरूपं सत्त्वं जातमिति वदेत् ॥ २ ॥

भाषा—यदि पापग्रह दली होकर अपने नवांश में हो और शुभग्रह निर्बल होकर दूसरे के नवांश में हो तथा वियोनि (द्विपद भिन्न) राशि लग्न हो ऐसे योग में चन्द्रोपगत द्वादशांश के (चन्द्रमा जिन राशि के नवांश में हो) उसके समान वियोनि का जन्म समझना ॥ २ ॥

अथ वियोनावपि चतुष्पदानां प्राधान्येनोपयोगित्वात्तदङ्गविभागं राश्यात्मकमुपजातिकयाह—

क्रियः शिरो वक्त्रगलो वृषोऽन्ये पादोऽसकं पृष्ठमुरोऽथ पार्श्वे ।

कुक्षिस्त्वपानाङ्घ्रयथ मेढ्रमुष्कौ स्फिकपुच्छमित्याह चतुष्पदाङ्गे ३

क्रिय इति ॥ क्रियो मेषश्चतुष्पदानां शिरस्तदुपलक्षितमित्यर्थः । वृषो वक्त्रगलो वक्त्रं मुखं गलः कम्बलं वृषः । अन्ये मिथुनादयो यथाक्रमं पादादि । मिथुनः पादोऽसकं पादौ पूर्वपादावसौ स्कन्धौ । पृष्ठं कर्कटः । श्रो वक्त्रः सिंहः । अथशब्द आनन्तर्ये । पार्श्वे पार्श्वद्वयं कन्या । कुक्षिद्वयं तुला । अपानं गुदा वृश्चिकः । अंग्री पश्चिमपादौ धन्वी । अथशब्दः पादपूरणे । मेढ्रः लिङ्गं मुष्कौ

वृषणौ मकरः । स्फिचौ (१) कुम्भः । पुच्छं लांगूलं मीनः । इति शब्दप्रकारे ।
केचिच्चतुष्पदांगे राशिविभागमाहुः । आहेति ब्रुवन्त्याचार्या इति वाक्याध्या-
हारः । चतुष्पदग्रहणमुपलक्षणार्थम् । पक्षिणामप्येवं पूर्वपादस्थाने पक्षपाली ।
शेषं सामान्यं प्रयोजनम् । राश्युपलक्षितेऽंगे ब्रह्मोपघातादेर्विज्ञानमिति ॥ ३ ॥

भाषा—१ मेघ मस्तक, २ वृष मुख और गला, ३ मिथुन अगले पैर और कन्या
४ कर्क पीठ, सिंह छाती, ६ कन्या दोनों पादवं (पिंजर) ७ तुला पेट, ८ वृश्चिक
पान (गुदामार्ग), ९ धनु पिछले पैर, १० मकर लिङ्ग और अण्डकोश, ११ कुम्भ
स्फिक (पूठ) १२ मीन पुच्छ इस प्रकार चार पैर वाले के अङ्ग में राशियों का
विभाग कहा गया है ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—शुभ और अशुभ ग्रह के योग से वियोनि के अङ्गों की पुष्टि और
हानि समझना ।

अथ वियोनिवर्णज्ञानं दैश्वदेव्याह—

लग्नांशकाद् ग्रहयोगेक्षणाद्वा वर्णान्वदेद्वलयुक्ताद्वियोनौ ।

दृष्ट्या समानान्प्रवदेत्स्वसङ्ख्यया रेखां वदेत्स्मरसंस्थैश्च पृष्ठे ॥४॥

लग्नांशकादिति ॥ लग्ने येन ग्रहेण योगो यस्तत्र व्यवस्थितस्तस्य यो वर्णः
प्रागुक्तः वर्णास्ताम्रसितातिरक्तहरिता इत्याद्याः तद्वर्णं वियोनौ सत्त्वजाते वदेत्
हृतनश्रादौ वा । ईक्षणाद्वेति । अथ लग्ने न कश्चिद्ग्रहो भवति तदा येन ग्रहेण
लग्नमीक्ष्यते तस्य यो वर्णस्तं वा वदेत् । अथ लग्नं न केनचिद्युतं दृष्टं भवति
तदा लग्नांशकात् लग्ने यद्राशिनवांशकोदयो भवति तद्राशिर्वर्णं रक्तः श्वेत
इत्यादि वा वदेत् । दृष्ट्या समानानिति । अथ बहुभिर्ग्रहैर्लग्नं युत दृष्टं च
भवति तदा बहुनेव वर्णान्वदेत् । तत्रापि यो वीर्यवान् सबलस्तद्वर्णवाहुल्यम् ।
यदुक्तं बलयुक्तादिति । अथ स्वस्वामिना युतदृष्टस्य राशेः सम्बन्धिनवांशको
लग्नगतो भवति तदा तद्वर्णमेव वदेत् । तत्र च यो ग्रहो वियोनौ यस्मिन्नंगे
व्यवस्थितस्तत्रास्मीयवर्णं करोति । एतत्कुतो लब्धं सप्तमस्थानगतैर्ग्रहैर्बलवद्-
ग्रहवर्णं पृष्ठे वियोनौ रेखां वदेत् । तथा च सारावल्याम्

मेषादिभिरुदयस्थैरंशैर्वा ग्रहयुतेश्च दृष्टैर्वा ।

स्वग्रहांशकसंयोगाद्विद्याद्वर्णाम् पारांशके रुक्षान् ॥

सप्तमसंस्थाः कुर्बुः पृष्ठे रेखां स्ववर्णसमाम् ।

वीक्षन्ते यावन्तो वियोनिवर्णाश्च तावन्तः ॥

यलदीप्तो गगनचरः करोति वर्णं वियोनीनाम् ।

पीतं करोति जीवः शशी सितं भार्गवो विचित्रं च ॥

रक्तं दिनकररुधिरौ रविजः कृष्णं बुधः शबलम् ।

(१) स्फिचौ कटिप्रोथौ कटिस्थमांसपिण्डावित्यर्थः । “स्त्रियां स्फिचौ कटिप्रोथौ”
इत्यमरः ।

स्वे राशौ परभागे परराशौ स्वे नवांशके तिष्ठन् ॥

पश्यन्महो विलग्नं स्ववर्णवर्णं तदा कुरुते” ॥ ४ ॥

भाषा—लग्न के नवांश से वियोनि का वर्ण कहना चाहिये यदि लग्न में किसी ग्रह का योग हो तो उस ग्रह के समान वर्ण कहना । यदि लग्न में ग्रह नहीं हैं और जिस किसी भी ग्रह की लग्न पर दृष्टि हो तो उसी के समान वर्ण कहना चाहिए । यदि लग्न में एक से अधिक ग्रहों की दृष्टि या योग हो तो सबसे बली ग्रह के समान वर्ण कहना वा जितने ग्रह की दृष्टि हो उतने ही वर्ण कहना । तथा सप्तम भाव में जितने ग्रह हो उतनी ही रेखा (चिह्न) वियोनि के पृष्ठ (बहिरङ्ग) अर्थात् सप्तम भाव की राशि जिस अङ्ग की हो उस पर कहना चाहिये ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—“सप्तमसंस्थाः कुर्युः पृष्ठे रेखां स्ववर्णसमा ॥

वीक्षन्ते यावन्तो वियोनिवर्णाश्च तावन्तः ॥

॥ सारावली से ॥

अधुना पक्षिजन्मज्ञानं वंशस्थेनाह—

खगे दृकाणे बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये ।

बुधांशके वा विहगाः स्थलाम्बुजाः शनैश्चरेन्द्रीक्ष्णयोगसंभवाः ॥

खगे इति ॥ खगे दृकाणः पक्षिद्रेष्काणस्तत्र पक्षिद्रेष्काणो मिथुनद्वितीयः सिंहप्रथमः तुलाद्वितीयः कर्कभप्रथमः एषामन्यतमद्रेष्काण उदयति शनैश्चरेन्द्रीक्ष्णयोगसंभवाः यथाक्रमं विहगाः पक्षिणः स्थलाम्बुजा भवन्ति । पक्षिद्रेष्काणे शनैश्चरेण युते दृष्टे वा स्थलजपक्षिणां जन्म वक्तव्यम् एवमिन्दुना युते दृष्टे वा जलजानां पक्षिणां जन्मेति एको योगः । अत्र लग्ने प्रथमभागे नवांशके यो ग्रहः स्थितः स प्रथमद्रेष्काणस्थः ततः परमन्यस्मिन्नवांशके द्वितीयद्रेष्काणस्थः ततः परमन्यस्मिन्नंशके तृतीयद्रेष्काणस्थ इति । एवं त्रयो भागा विंशतिः कलाश्चैकनवांशकप्रमाणं परिकल्प्य ग्रहस्थितिरन्वेष्ट्या । सर्वराशिष्वियं परिभाषा । बलसंयुतेन वा ग्रहेण युक्ते चरभांशकोदये यस्य तस्य लग्नस्य चरनवांशकोदये बलसंयुतेन येन ग्रहेण युक्ते तथाभूतशनैश्चरयुतदृष्टे स्थलजानां चन्द्रयुतदृष्टे जलजानामिति द्वितीयो योगः । बुधांशके वेति । बुधनवांशके मिथुनकन्ययोरन्वयतमे तात्कालिकस्य लग्नस्योदिते तस्मिंश्च बलवद्ग्रहसंयुक्ते शनैश्चरयुतदृष्टे स्थलजानां चन्द्रयुतदृष्टे जलजानामिति तृतीयो योगः । एते शनैश्चरस्येन्दोर्वा योगेन वीक्षणेन वा सम्भवन्तीति । तथा च सारावल्याम्—

“विहगोदितदृकाणे ग्रहेण बलिना युतेऽथ चरभांशे ।

वौर्धेऽशे वा विहगाः स्थलाम्बुजाः शनिशशीक्ष्णाद्योगात्” इति ॥ ५ ॥

भाषा—यदि लग्न में पक्षी द्रेष्काण हो अथवा चर राशि का नवांश हो वा बुध का नवांश हो और बली ग्रह से युक्त हो और उस पर शनि की दृष्टि अथवा योग हो

तो स्थल पक्षी, यदि चन्द्रमा की दृष्टि या योग हो तो जल पक्षी का जन्म कहना । यदि शनि चन्द्रमा दोनों की दृष्टि या योग हो तो जल और स्थल दोनों स्थान में रहने वाला पक्षी समझना इस प्रकार अर्थ से सिद्ध होता है ॥ ५ ॥

विशेष अर्थ—पक्षी द्रेष्काण मिथुन का द्वितीय, सिंह का प्रथम, तुला का द्वितीय, कुम्भ का प्रथम, यह द्रेष्काणाध्याय मे द्रेष्काण के स्वरूप में कहा गया है ॥ ५ ॥

अधुना वृक्षजन्मज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

होरेन्दुसूरिविभिविथलैस्तरूणां तोयस्थले तरुभवोऽशकृतः प्रभेदः ।

लग्नाद्ग्रहः स्थलजलवृक्षपतिस्तु यावांस्तावन्त एव तरवः स्थलनोयजाताः ६

होरेति ॥ होरा लग्नम् इन्दुश्चन्द्रः सूरिर्जीवः रविरादित्यः एतैर्विबलैर्वियैरहितैः प्रष्टा तरूणां वृक्षाणां जन्म पृच्छतीति वक्तव्यम् । तत्रायं विशेषः । तोयस्थले इति । तत्र तरुभवो वृक्षजन्म किं तोये जले स्थले निजं जले देशे वेति तत्प्रभेदस्तद्विकल्पोऽशकृतो नवांशकविहितः तत्र तोयराश्यंशकोदये तोयसमीपजान्वृक्षान्नूपजान् । तोयराशयः कर्कटमकरपश्चाद्द्विमीनाः एतैरनूरजवृक्षजन्मज्ञानम् । इतरराश्यंशकोदये स्थलवृक्षजन्मज्ञानं तत्रापि संख्यम् । लग्नाद्ग्रह इति । उदितंशैः स्थलचारी जलचारी वा भवति तदधिपतिर्यावत्संख्याराशौ लग्नादव्यवस्थितस्तावत् एव तत्संख्यास्तरवो वृक्षाः स्थलजा जलजा वा वक्तव्याः । अत्राप्यंशकपतिवशाद्व्यवस्थितायुर्दायविधिना द्विगुणत्वं वाच्यम् । “स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणं द्विरुत्तमस्वांशकभन्निभागैः ।” इति । अत्र द्वित्रिगुणत्वं प्राप्ते यावन्त्यो गणना भवन्ति तावन्त्यः कार्या इत्यागमविदः । तथा च सारावल्याम्—

“लग्नार्कजीवचन्द्रैरबलैः शेषैश्च मूलयोनिः स्यात् ।

स्थलजलभवनविभागा वृक्षादीनां प्रभेदकराः ॥

स्थलजलग्रहयोर्लग्नाद्यावति राशौ तु तेऽपि तावन्तः ।

द्वित्रिगुणत्वं तेषामायुर्दायप्रकारोक्तम्” इति ॥ ६ ॥

भाषा—लग्न, चन्द्रमा, वृद्धिपात, रवि ये निर्बल हों तो वृक्षों का जन्म समझना । जल मन्बन्धी या स्थल सम्बन्धी वृक्ष का प्रभेद नवांश से समझना । अर्थात् जलचर नवांश हो तो जल के समीप का, स्थल राशि नवांश हो तो स्थल का वृक्ष समझना । वा जलचर या स्थलचर नवांश का स्वामी लग्न से जितने संख्या आगे राशि में हो उतने ही जल या स्थल के वृक्ष कहना ॥ ६ ॥

विशेष अर्थ—नवांश राशि अपने उच्च में या वक्र हो तो संख्या को ३ गुणा करना चाहिये । यदि वर्गोत्तम नवांश या स्वनवांश स्वराशि स्वद्रेष्काण में हो तो द्विगुणित संख्या समझना ॥ ६ ॥

अधुना स्थलजलजांशस्वामिप्रशाद्वृक्षाणां विशेषज्ञानं मन्दाक्रान्तयाह—

अन्तःसाराज्जनयति रविर्दुर्भगान्मूर्धन्यस्तुः

शीरोपेतांस्तुहिनकिरणः कण्टकाढ्यांश्च भौमः ।

वागीशज्ञौ सफलविफलान् पुष्पवृक्षान् शुक्रः

स्निग्धानिन्दुः कटुकविटपान्भूमिपुत्रश्च भूयः ॥ ७ ॥

अन्तःसारानिति ॥ रविः सूर्योऽशकपतिरन्तःसारान् मध्यवृक्षान् शिश-
पादीन्वृक्षान् जनयति उत्पादयति । सूर्यसूनुर्वाकिर्दुर्भगान्दृक्मनसोरप्रियान्
कुर्कुसप्रभृतीन् जनयति । तुहिनकिरणश्चन्द्रः क्षीरोपेतान्सक्षीरानित्प्रभृतीन्
जनयति । भौमः कुजः कण्टकाढ्यान् कण्टकवृक्षान्खदिरप्रभृतीन् जनयति ।
वागीशज्ञाविति । वागीशो वृहस्पतिः ज्ञो बुधः एतौ द्वौ यथासंख्येन सफल-
विफलान्वृक्षान् जनयतः । तत्र वृहस्पतिः सफलानामप्रभृतीन् । बुधो विफलान्
येषां लोके पुष्पमेवोपयुज्यते न फलानि तान् जनयति । शुक्रः पुष्पवृक्षान्
चम्पकप्रभृतीन् जनयति । इन्दुश्चन्द्रः भूयः पुनः स्निग्धान् सचिक्रकणान् धवदेव-
दारुप्रभृतीन् जनयति । भूमिपुत्रोऽगारकः कटुकविटपान् भल्लातकप्रभृतीन् जनयति ।
अत्रोभयजनित्वनिर्देशाच्चन्द्रभौमयोर्विकल्पेनादेशः ॥ ७ ॥

भाषा—नवांशपति सूर्य हो तो मध्य में सारवाले (साखू आदि) वृक्षों का, रवि
हो तो खराब (दुर्गन्धादियुत) वृक्षों का, चन्द्रमा दूध वाले वृक्षों का, मंगल कांटे वाले
वृक्षों का, गुरु फल वाले वृक्षों का, बुध बिना फलवाले वृक्षों का, शुक्र पुष्पों के वृक्षों
का उत्पादक है । चन्द्रमा सब चिकने वृक्षों का, तथा सब कटुबे निम्ब आदि वृक्षों
का भी उत्पादक मंगल है ॥ ७ ॥

अथ भूमितरुशुभाशुभज्ञानं संख्यां च वंशस्थेनाह—

शुभोऽशुभर्त्त रुचिरं कुभूमिजं करोति वृक्षं विपरीतमन्यथा ।

परांशके यावति विच्युतः स्वकाद्भवन्ति तुल्यास्तरवस्तथाविधाः ॥२॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

वियोनिजन्माध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

शुभोऽशुभर्त्त इति ॥ स एव स्थलजलांशपतिर्ग्रहः शुभस्तत्कालमशुभर्त्त
पापग्रहराशौ व्यवस्थितो भवति तदा रुचिरं शोभनं वृक्षं कुभूमिजमशोभ-
नभूमिजातं वदेत् । अन्यथा विपर्यये विपरीतं वृक्षं करोति । अशपतिर-
शुभस्तत्कालं शुभग्रहराशिस्थो भवति तदा अशोभनं वृक्षं शोभनभूमिजातं
वदेत् । अर्थादेव शुभग्रहे शुभक्षेत्रस्थे शुभं वृक्षं शोभनभूमिजातं वदेत् ।
अशुभग्रहे अशुभक्षेत्रस्थे अशोभनं वृक्षमशोभनभूमिजातं वदेत् । परांशके
यावतीति । स्वस्थलजलांशपतिर्ग्रहः स्वकादात्मोयादंशकाद्विच्युतश्चलितो
यावत्संख्ये परनवांशके व्यवस्थितः स्वमंशमतिक्रम्य यावत्संख्ये परनवांशके
वर्तते तत्तुल्यास्तत्संख्यास्तथाविधास्तज्जातीयाश्च तरवो वृक्षा भवन्ति । तत्र पुनः
संख्याकरणाद्विकल्पनादेश इति । तथा च सारावल्याम्—

“स्वांशात्परांशगामिषु यावत्संख्या भवन्ति तावन्तः ।

स्थलजा वा जलजा वा तरवः प्राक्संख्यया वाच्याः, इति ॥ ८ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ त्रियो-

निजन्माध्यायस्तृतीयः ॥ ३ ॥

भाषा—अंशपतिग्रह यदि शुभ हो और अशुभ राशि में हो तो सुन्दर वृक्ष खराब भूमि में, अन्यथा विपरीत समझना, (अर्थात् पापग्रह शुभराशि में हो तो खराब वृक्ष सुन्दर भूमि में, तथा शुभ ग्रह शुभ राशि में हो तो सुन्दर वृक्ष सुन्दर भूमि में, एवं पापग्रह पापराशि में हो तो खराब वृक्ष खराब भूमि में समझना) तथा अश पति ग्रह अपने नवांश से जितने नवांश आगे हो उतने तुल्य और उतने ही प्रकार (स्थल वा जल) के वृक्ष होते हैं ॥ ८ ॥

अथ निषेकाध्यायः ४ ।

अथातो निषेकाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावृतौ सति गर्भाधानमित्यत ऋतुनिरूपणमृतावपि स्त्रीपुरुषसंयोगज्ञानं वंशस्थेनाह—

कुजेन्दुहेतु प्रतिमासमार्तवं गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधितौ ।

अतोऽन्यथास्थे शुभपुंग्रहेक्षिते नरेण संय्योगमुपैति कामिनी ॥१॥

कुजेन्दुहेत्विति ॥ कुजो भौमः इन्दुश्चन्द्रः तौ हेतुः कारणं निमित्तं यस्य रजसः तत्कुजेन्दुहेतु । प्रतिमास मासं मासं प्रतीति प्रातिमासम् । स्त्रीणां प्रतिमासमार्तवं कुजेन्दुहेतु । प्रतिमासग्रहणेन प्रथमोद्भूतरजोनिवृत्तिं दर्शयन् गर्भग्रहणक्षममार्तवं प्रदर्शयति । ऋतौ भद्रमार्तवम् । कथमित्याह । गते तु पीडर्क्षमनुष्णदीधिताविति । अनुष्णदीधितौ शीतमयूखे चन्द्रे पीडर्क्षं गते । प्रकृतत्वात्स्त्रीणामनुपचयगृहाश्रित आर्तवं कारणं भवति । अर्थादेवं यदि चन्द्रः कुजसंदष्टो भवति एतदुक्तं भवति । स्त्रिया जन्मर्क्षादनुपचयस्थश्चन्द्रमास्तत्र च यद्यङ्गारकेण दृश्यते तदा गर्भग्रहणक्षम आर्तवहेतुर्भवति, अन्यत्र बालवृद्धातुरवन्ध्याभ्यः । अत्र च वादरायणः ।

“स्त्रीणां गतोऽनुपचयर्क्षमनुष्णरश्मिः संदृश्यते यदि धरातनयेन तासाम् । गर्भग्रहात्तवमुशंति तदा न बन्ध्यावृद्धातुराल्पवसामपि चैतदिष्टम् ॥”

तथा च सारावल्याम्—

“अनुपचयराशिसंस्थे कुमुदाकरवान्धवे रुधिरदृष्टे ।

प्रतिमासं युवतीनां भवतीह रजोऽब्रुवत्येके ॥

इन्दुर्जलं कुजोभिर्जलमस्रं त्वग्निरेव पित्तं स्यात् ।

एवं रक्ते क्षुभिते पित्तेन रजः प्रवर्तते स्त्रीषु ।

एवं यद्भवति रजो गर्भस्य निमित्तमेव कथितं तत् ।

उपचयसंस्थे विफलं प्रतिमासं दर्शनं तस्य ॥”

एवं गर्भग्रहणयोग्यमार्तवं प्रदर्श्य स्त्रीपुरुषसंयोगसम्भवासम्भवौ प्रदर्शयति । अतोऽन्यथास्थ इति । अतोऽन्यथोक्तप्रकागदन्यथास्थे विपर्ययस्ये चन्द्रमसि तत्रोक्तविपर्ययः पुरुषजन्मर शेरुपचयस्थश्चन्द्रमा यदि भवति तस्मिन् बहुभेन सौम्येन पुंमहेण गुरुणेक्षिते दृष्टे कामिनी स्त्री नरेण पुरुषेण सह संयोगं मैथुनमुपैति गच्छतीति वक्तव्यम् । नन्वत्रातोऽन्यथास्थ इति स्त्रिया उपचयः कस्मान्न व्याख्यायते । अयुक्तमेतत् प्राधान्यात्पुरुषस्यैव । यस्माद्वादरायणः । “पुरुषोऽपचयगृहस्थो गुरुणा यदि दृश्यते हिममयूखः । स्त्रीपुरुषसंप्रयोगं तदा वदेदन्यथा नैव ॥” इति । सारावलीकारेण सामान्येनोक्तम् । तद्यथा— “उपचयभवने शशभृद्दृष्टो गुरुणा सुहृद्भिरथवासौ । पुंसां करोति योगं विशेषतः शुक्रसंहृष्टः ॥” कस्मिन्कालेऽयं विचारः । उच्यते चतुर्थदिने ज्ञातायाम् । तथा मणित्थः ।

“ऋतुविरमे ज्ञातायां यद्युपचयसंस्थितः शशी भवति ।

बलिना गुरुणा दृष्टो भर्त्रा सह सगमश्च तदा ॥

राजपुरुषेण रविणा विटेन भौमेन वोक्षिते चन्द्रे ।

सौम्येन चपलमतिना भृगुणा कान्तेन रूपवती ॥

भृत्येन सूर्यपुत्रेणायाति स्त्री संगमं हि तदा ।

एकैकेन फलं स्याद्दृष्टे नान्यैः कुजादिभिः पापैः ॥

सर्वैः स्वगृहं त्यक्त्वा गच्छति वेश्यापदं युवतिः ॥” इति ॥ १ ॥

भाषा—प्रति मास मङ्गल और चन्द्रमा के कारण स्त्रियों को ऋतुधर्म होता है । यदि स्त्री की जन्म राशि से अनुपचय स्थान में चन्द्रमा हो—और मङ्गल से दृष्ट हो तो गर्भ धारण योग्य ऋतु होता है । और इससे भिन्न (अर्थात् पुरुष राशि से अनुपचय स्थान ३ । ६ । १० । ११ में) चन्द्रमा हो तथा शुभ पुरुष ग्रह (गुरु) से दृष्ट हो तो स्त्री को पुरुष का संयोग होता है ॥ १ ॥

अथ मैथुनज्ञानप्रकारमिन्द्रवज्रयाह—

यथास्तराशिर्मिथुनं समेति तथैव वाच्यो मिथुनप्रयोगः ।

असद्ग्रहालोकितसंयुतेऽस्ते सरोष इष्टैः सविलासहासः ॥ २ ॥

यथास्तराशिरिति ॥ आधानलगात्प्रश्नलगाद्वा योऽस्तराशिः सप्तमोऽस्तलग्नस्तत्संज्ञको यो जन्तुस्तस्मिन् स्त्रीपुमांसौ यथा येन प्रकारेण समेति संयोगं सुरतं याति तथा तेनैव प्रकारेण तस्य नरस्य मिथुनप्रयोगः संयोगो वाच्यो वक्तव्यः । तस्मिन्नेवास्ते सप्तमे स्थाने असद्ग्रहालोकितसंयुते पापग्रहैर्दृष्टे युक्ते वा सरोषः सकलहो मिथुनप्रयोगो वाच्यः । इष्टैः सौम्यैर्युतदृष्टे सविलासहासः । विलासोपहाससीत्कारादिसंयुक्तो मिथुनप्रयोगो वाच्यः । अर्थादेव न केनचिद्युतदृष्टे न सरोषो नापि सविलास इति । मिश्रयुतदृष्टे सरोषः सविलासहासश्चेति । तथा च सारावल्याम् ।

“द्विपदादयो विलग्नान् सुरतं कुर्वति सप्तमे यद्वत् ।

तद्वत्पुरुषाणामपि गर्भाधानं समादेश्यम् ॥

अस्ते शुभयुतदृष्टे सरोषकलहं भवेद्ग्राम्यम् ।

सौम्यं सुरतं वात्स्यायनसम्प्रयोगिकाख्यातम्” इति ॥ २ ॥

भाषा—गर्भाधानलग्न या प्रह्नलग्न से सप्तमराशिसमान जन्तु जिस प्रकार मैथुन करता है उसी प्रकार मैथुन का प्रयोग कहना चाहिए । सप्तम भाव यदि पापग्रह के साथ-साथ दृष्ट भी हो तो कलह पूर्वक, यदि शुभ ग्रह के साथ साथ दृष्ट हो तो हास विलास पूर्वक मैथुन का प्रयोग कहना चाहिये ॥ २ ॥

अथ गर्भसम्भवासम्भवज्ञानं वंशस्थेनाह—

रवीन्दुशुक्रावनिजैः स्वभागैर्गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वा ।

भवत्यपत्यं हि विबीजिनामिमे करा हिमांशोर्विदशामिवाफलाः ॥३॥

रवीति ॥ रविः सूर्यः इन्दुश्चन्द्रः शुक्रः सितः अवनिजौऽगारकः एतैः स्व-
भागैर्यत्र कुत्र राशौ स्वनवांशकस्थितैरपत्यं भवति । गर्भसम्भवो भवतीत्यर्थः ।
यदि च सर्वे स्वभागगा न स्युस्तदा पुरुषोपचयर्त्तगाभ्यां सूर्यसिताभ्यां स्वनवांश-
कगाभ्यामेव गर्भसम्भवो वाच्यः । एवं भौमचन्द्राभ्यां नार्युपचयर्त्तगाभ्यां
स्वनवांशकस्थाभ्यामाधानकालेऽवश्यमेवापत्यं भवति । गर्भसम्भवो भवती-
त्यर्थः । यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम् । “बलद्युक्तौ स्वगृहांशेष्वर्कसितावु-
पचयर्त्तगौ पुंसाम् । स्त्रीणां वा कुजचन्द्रौ यदा तदा गर्भसम्भवो भवति ॥”
गुरौ त्रिकोणोदयसंस्थितेऽपि वेति । गुरौ बृहस्पतौ त्रिकोणयोर्नवमपञ्चमयोरुदये
लग्नेऽपि वा संस्थिते एषामन्यतमस्थानस्थेऽपि भवत्यपत्यसम्भवः । विबीजि-
नामिमे । इति हि यस्मादर्थे इमे हि योगाः विबीजिनां षण्ढानां विगतं बीजं
वीर्यं येषां स्त्रीपुरुषाणां तेषामफला विद्यमाना अपि न सम्भवन्ति । अत्रोदा-
हरणम् । करा हिमांशोर्विदशामिवाफला इति । यथा हिमांशोः शीतरश्मेः
चन्द्रस्य करा रश्मयो विद्यमाना अपि विदशामन्धानामफला निष्फला भवन्ति ।
विगता दृशो येषां ते विदशस्तेषामिवेति ॥ ३ ॥

भाषा—रवि, चन्द्र, मङ्गल तथा शुक्र ये अपने नवांश में हों, अथवा गुरु त्रिकोण या लग्न में हो तो निश्चय ही सन्तान (गर्भ) सम्भव होता है ।

ये योग-जैसे-अन्धे व्यक्ति को चन्द्र किरण निष्फल होती हैं, वैसे ही निर्बीज (नपुंसक) लोगों के लिये व्यर्थ होते हैं ॥ ३ ॥

अधुना स्त्रीपुंसयोराधानकालवशादाप्रसवावधि यावच्छुभाशुभज्ञानं

वंशस्थेनाह—

दिवाकरेन्द्रोः स्मरगौ कुजार्कजौ गदप्रदौ पुङ्गलयोपितोस्तदा ।

व्ययस्वगौ मृत्युकरौ युतौ तथा तदेकदृष्ट्या मरणाय कल्पितौ ॥४॥

दिवाकरेति ॥ दिवाकरात्सूर्यात्स्मरगौ सप्तमस्थानस्थौ कुजार्कजौ कुजो-

ऽगारकः अर्कजः सौरि एतौ यदि भवतस्तदा पुङ्गलस्य मनुष्यस्य गदग्रदौ रोगग्रदौ भवतः एतदुक्तं भवति । आधानकाले यत्रार्कः स्थितस्तस्मात्सप्तमे स्थाने यदाङ्गारको भवति तदा पुंसो रोगग्रदो भवति स्वमासे । एवमिन्द्रो-
अन्द्रात्सप्तमो भौमः सौरो वा भवति तदा शेषितः स्त्रिया रोगग्रदो भवति ।
स्वमासे एव । व्यवस्थगौ मृत्युकराविति । तावेव कुजसौरौ व्ययस्वगौ द्वादश-
द्वितीयगौ तयोर्दिवाकरेन्द्रोः सकाशादुभयत्र पार्श्वस्थितौ तदा पुङ्गलयाषितोः
स्त्रीपुरुषयोर्मृत्युकरौ भवतः एतदुक्तं भवति । सूर्यादेको द्वादशे द्वितीयो द्वितीये
तदा तयोर्मध्ये यो बलवान् स स्वमासे मृत्युकरो नरस्य भवति । चन्द्रादप्येवं
व्यवस्थितौ यथा चन्द्रादेको द्वादशे द्वितीयो द्वितीये तदा तयोर्मध्ये यो बलवान्स
स्वमासे मृत्युकरः स्त्रिया भवति । युतौ तथेति । तदिति कुजसौरयोः परामर्शः ।
तयोः कुजसौरयोरुभयोर्मध्याद्यदैकेनादित्यो युतो भवत्यन्येन दृश्यते तदा नरस्य
मरणाय कल्पितो निश्चितः । एवं चन्द्रमा यद्येकेन युक्तो भवत्यपरेण दृष्टस्तदा
स्त्रिया मरणाय कल्पितः । द्वयोर्मध्ये यो बलवान्स्तस्य मास इति ॥ ४ ॥

भाषा—सूर्य से सप्तम में शनि और मङ्गल हो तो पुरुषों के लिये तथा चन्द्रमा से
सप्तम में हों तो स्त्री के लिये रोगग्रद होते हैं । इसी प्रकार सूर्य से (१२ । २) में हों
तो पुरुष के लिये मृत्युकारक होते हैं । तथा मङ्गल एवं शनि इन दोनों में से किसी एक
से युत और एक से दृष्ट सूर्य हो तो पुरुष के, एवं उन्हीं दोनों (मङ्गल शनि) में
किसी एक से युत और एक से दृष्ट चन्द्रमा हो तो स्त्री के लिये मरण कारक होते
हैं ॥ ४ ॥

अथ निषिक्तस्य पितृमातृपितृव्यमातृष्वसृणां शुभाशुभज्ञानं वंशस्थेनाह—

दिवाकशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् ।

पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ च तावथौज्युग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ ॥ ५ ॥

दिवाकशुक्राविति ॥ दिवा दिने निषिक्तस्य जातस्य वा जंतोर्यथाक्रमं
पितृमातृसंज्ञितावर्कशुक्रौ भवतः पितृसंज्ञकोऽर्को मातृसंज्ञकः शुक्रः । एवमेव
निशि रात्रौ निषिक्तस्य जातस्य वा शनैश्चरेन्दू सौरचन्द्रौ यथाक्रमं पितृमातृ-
संज्ञितौ भवतः । तत्र शनैश्चरः पितृसंज्ञकः चन्द्रो मातृसंज्ञकः । तद्विपर्ययादिति ।
तद्विपर्ययादिवात्रात्रिव्यत्यात्तावेव पूर्वोक्तौ ग्रहौ पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ
भवतः । तत्र दिवा निषिक्तस्य जातस्य वार्कः पितृव्यसंज्ञः शुक्रो मातृष्वसृसंज्ञः ।
तत्संज्ञयोः प्रयोजनं तावथौज्युग्मर्क्षगतौ शुभौ ज्ञेयौ । ओजा विषमराशयो
युग्माः समराशयः । तत्र दिवाको विषमर्क्षगो मेषमिथुनसिंहतुलाधनिकुम्भाना-
मन्यतमस्थः पितुः शुभकृत् रात्रौ पितृव्यस्य । तथा दिवा शुक्रः समर्क्षगो वृष-
कर्कटकन्यावृश्चिकमकरमीनानामन्यतमस्थो मातुः शुभकृत् रात्रौ मातृष्वसुः ।
शनैश्चरो रात्रौ विषमर्क्षगतः पितुः शुभकृत् दिवा विषमर्क्षगः पितृव्यस्य ।
तथा चन्द्रो रात्रौ समर्क्षगो मातुः शुभकृत् दिवा मातृष्वसुः । सामर्थ्यादेवोक्तम् ।

विपर्ययस्थः स एवोक्तयोरशुभः । यथा दिवा समक्षेत्रगतोऽर्कः पितुरशुभो रात्रौ पितृव्यस्य । दिवा विषमर्क्षगतः शुक्रो मातुरशुभो रात्रौ मातृष्वसुः । रात्रौ समक्षेत्रगतः शनैश्चरः पितुरशुभो दिवा पितृव्यस्य । रात्रौ विषमर्क्षगतश्चन्द्रमा मातुरशुभो दिवा मातृष्वसुरिति ॥ ५ ॥

भाषा—यदि दिन में गर्भाधान या जन्म हो तो सूर्य पितृसंज्ञक और शुक्र मातृ-संज्ञक, तथा रात्रि में हो तो शनि पितृसंज्ञक और चन्द्रमा मातृ संज्ञक होते हैं । इसके विपरीत पितृव्य और मातृष्वसु संज्ञक होते हैं । अर्थात् दिन में शनि पितृव्य (चाचा आदि) चन्द्रमा मातृष्वसु (मौसी आदि) संज्ञक, तथा रात्रि में गर्भाधान होने से सूर्य पितृव्य, और शुक्र मातृष्वसु संज्ञक होते हैं । इनमें पितृसंज्ञक और पितृव्य संज्ञक यदि विषम राशि में हो तो पिता और पितृव्य (चाचा आदि) को शुभ देते हैं तथा मातृसंज्ञक और मातृष्वसुसंज्ञक ग्रह सप्त राशि में हो तो माता और मौसी आदि को शुभ देते हैं । अर्थात् इससे अन्यथा अशुभ होते हैं ॥ ५ ॥

अथाधानप्रश्नमध्ये आधानकालदशान्मातुर्मरणयोगद्वयं द्रुतपदेनाह—

अभिलषद्भिरुदयर्क्षमसद्भिर्मरणमेति शुभदृष्टिमयाते ।

उदयराशिसहिते च यमे स्त्री विगलितोडुपतिभूसुतदृष्टे ॥६॥

अभिलषद्भिरिति ॥ उदयर्क्षमुदयलग्नमसद्भिः पापग्रहैरभिलषद्भिः तत्रोद-यलग्नाभिलाषुकैः कैश्चिद्लग्नाद्द्वितीयस्थग्रहस्य व्याख्यातम् । तेषामभिमतं यथा उदयलग्नादनन्तरं तदुदयस्य प्रत्यासन्नतयाभिलषत्पुदयर्क्षमिति । अन्ये पुनर्लग्नाद्द्वादशस्थानस्य ग्रहस्योदयर्क्षाभिलाषं कथयन्ति । यस्मात्तद्विहायोदय-राशिगमनं ग्रहः करोति । एवं लग्नाद्द्वादशस्थैः पापैर्लग्ने यदि शुभदृष्टिः सौम्य-ग्रहदर्शनमयाते अप्राप्ते सौम्यग्रहैरदृश्यमाने स्त्री योषिदुर्गभिणी मरणमेति मृत्युं प्राप्नोति । अत्र च भगवान् गार्गिः । “अशुभैर्द्वादशर्क्षस्थैः शुभदृष्टिविवर्जितैः । आधानलग्ने मरणं योपितः प्रवदेद्बुधः ॥” इति । योगान्तरमाह । उदयराशि-सहिते च यमे इत्यादि । यमे शनैश्चरे उदयराशिसहिते लग्नस्थे तस्मिन् विग-लितेनोडुपतिना नक्षत्रस्वामिना स्त्रीणचन्द्रेण भूसुतेनांगारकेण च दृष्टेऽवलोकिते स्त्री गर्भिणी मरणमेति ॥ ६ ॥

भाषा—पापग्रह लग्न में जाने को उद्यत हो (अर्थात् अन्तिम अंश में द्वादशभावमें मार्गी हो) और शुभ ग्रह से अदृष्ट हो तो गर्भवती स्त्री का मरण होता है । अथवा गर्भाधानलग्न में शनि हो और क्षीणचन्द्र तथा मङ्गल इन दोनों से देखा जाता हो तो भी स्त्री का मरण होता है ॥ ६ ॥

अथ योगान्तरं वैतालियोनाह—

पापद्वयमध्यसंस्थितौ लग्नेन्दू न च सौम्यवोक्षितौ ।

युगपत्पृथगेव वा वदेन्नारी गर्भयुता विपद्यते ॥ ७ ॥

पापेति ॥ लग्नमुदयराशिः । इन्दुश्चन्द्र एतौ लग्नेन्दू पापद्वयमध्यसंस्थितौ

लग्नस्थे चन्द्रमसि यद्येकः पापग्रहो द्वादशस्थो भवति द्वितीयस्थोऽपरस्तदा लग्नेन्दू युगपत्तुल्यकालं पापद्वयमध्यगावुच्येते । अथ लग्नेन्दू विप्रकृष्टांशकान्वितौ भवतस्तत्र चैकः पापस्तावप्राप्य स्थितोऽपरस्तावतिक्रम्य स्थितस्तदापि लग्नेन्दू पापद्वयमध्यगावुच्येते । अथवा द्वादशस्थाने एकः पापाऽपरो द्वितीये तृतीये चन्द्रश्चतुर्थे च पापो भवति तदापि लग्नेन्दू पापद्वयमध्यगावुच्येते । एवं लग्नेन्दू यदि युगपत्पापद्वयमध्यगतौ न च सौम्यदीक्षितौ शुभग्रहावलोकितौ न भवतस्तदा नारी स्त्री गर्भयुता विपद्यते म्रियते । पृथगेवेति । अथवा पृथक्स्थौ लग्नेन्दू भवतस्तयोर्मध्यादेकतरोऽपि पापद्वयमध्यगतौ भवति सौम्यग्रहादृष्टश्च तदा नारी गर्भयुता विपद्यते । अथवा लग्नादेकादशे चन्द्रो द्वितीयतृतीयद्वादशगाः पापास्तथापि लग्नेन्दू पापद्वयमध्यगौ भवतः । युगपद्ग्रहणं पादपूरणार्थं विम्वष्टार्थं वा । तदर्थस्य पृथगेव सामर्थ्याल्लब्धत्वात् । अत्र योगकर्तृणां ग्रहाणां मध्याद्या बली तन्मासि गर्भिणीमरणं भवतीति सर्वत्र परिभाषा ॥ ७ ॥

भाषा—लग्न और चन्द्रमा ये दोनों एक साथ हों या अलग अलग पापग्रहों के मध्य में हों और शुभग्रह से दृष्ट नहीं हों तो गर्भ सहित स्त्री का मरण कहना चाहिये । अर्थात् यदि शुभग्रह से दृष्ट हों तो मरण नहीं होता है ॥ ७ ॥

अथान्ययोगान्तराणि वैतालीयेनाह—

क्रूरे शशिनश्चतुर्थगे लग्नाद्वा निधनाश्रिते कुजे ।

वन्ध्वन्त्यगयोः कुजार्कयोः क्षीणेन्दौ निधनाय पूर्ववत् ॥ ८ ॥

क्रूर इति ॥ शशिनश्चन्द्रात्क्रूरे पापग्रहे चतुर्थस्थानस्थे निधनाश्रितेऽष्टमस्थानस्थे कुजे भौमे एको योगः । अथवा लग्नाच्चतुर्थे पापे अष्टमे भौमे द्वितीयो योगः । वन्ध्वन्त्यगयोः कुजार्कयोरिति । लग्नाद्बन्धुगे चतुर्थस्थे भौमेऽन्त्यगे द्वादशस्थानस्थेऽर्के सूर्ये चत्र तत्रस्ते क्षीणेन्दौ रश्मिर्क्षीणे चन्द्रे तृतीयो योगः । एषामाधानकाले कतमस्य सम्भवे मरणाय पूर्ववन्नारी गर्भयुता विपद्यत इति ॥ ८ ॥

भाषा—लग्न से वा चन्द्रमा से पापग्रह चतुर्थ में हो और मंगल अष्टम में हो या चतुर्थ भाव में मङ्गल और द्वादश में सूर्य हो और चन्द्रमा क्षीण हो तो ये योग पूर्ववत् (गर्भ स्त्री के) मरणकारक होते हैं ॥ ८ ॥

अधुना मातुः शस्त्रनिमित्तं मरणयोगं गर्भस्त्रावं चाधानलग्नग्रशाद्वैतालीयेनाह—

उदयास्तगयोः कुजार्कयोर्निधनं शस्त्रकृतं वदेत्तथा ।

मासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं स्रवणं समादिशेत् ॥ ९ ॥

उदयास्तेति ॥ निषेककाले कुजार्कयोर्भौममूर्ययोर्यथासंख्यमुदयास्तगयोर्लग्नसप्तमस्थयोर्लग्ने भौमे सप्तमस्थेऽर्के गर्भयुतायाः स्त्रियः शस्त्रकृतं शस्त्रहेतुकं मरणं

निधनं वदेद् ब्रूयात् । तथा तेनैव प्रकारेणेति । नारी गर्भयुता विपद्यन् इत्यर्थः । मासाधिपताविति । गर्भमासेषु मासाधिपान्वदयति कललघनेत्यादिना । तत्र निषेककाले यो ग्रहो येन ग्रहेण युद्धे विजितो भवति केतुनावधूमित उल्कया चाभिहतः सोऽपि निपीडित इत्युच्यते तस्यापि निपीडितस्य ग्रहस्य यो भवति मासो यस्मिन्मासे मासाधिपत्यं तस्य भवति तत्कालं तस्मिन्काले गर्भस्रवणं ऋतिं समादिशेद्वदेत् ॥६॥

भाषा—लग्न में मङ्गल, सप्तम में सूर्य हो तो शस्त्र के द्वारा गर्भिणी का मरण कहना और गर्भ के जिस महीने का स्वामी निपीडित (युद्ध में पराजित, केतु से अभिधूमित आदि) हो तो उस महीने में गर्भ का पतन कहना चाहिए ॥ ९ ॥

अधुना गर्भपुष्टिज्ञानं वंशस्थेनाह—

शशाङ्कलग्नोपगतैः शुभग्रहैस्त्रिकोणजायाऽर्थसुखास्पदस्थितैः ।

तृतीयलाभर्क्षगतैश्च पापकैः सुखी तु गर्भो रविणा निरीक्षितः १०॥

शशाङ्केति ॥ यत्र राशौ शशाङ्कश्चन्द्रः स्थितस्तत्रैव शुभग्रहैर्व्यवस्थितैर्बुध-
गुरुसितैरित्यर्थः । अथवा लग्नस्थैः शुभग्रहैः लग्ने व्यवस्थितैः अथवा कैश्चि-
च्छशाङ्कोपगतैः कैश्चिलग्नोपगतैरेवं शशाङ्कोपगतैः शुभग्रहैर्द्वयोपगतैर्वा
अथवा तैरेव शुभग्रहैः त्रिकोणजायार्थसुखास्पदस्थितैः त्रिकोणं नवपञ्चमे
जायास्थानं सप्तमम् अर्थस्थानं द्वितीयं सुखस्थानं चतुर्थम् आरम्भस्थानं दशमम्
एतेषु त्रिकोणजायार्थसुखास्पदेषु यथासम्भवं चन्द्राल्लग्नान्नाद्वा द्वयोर्वा समवस्थि-
तैस्तथा पापकैः क्रूरग्रहैश्चन्द्राल्लग्नान्नाद्वा तृतीयलाभर्क्षगतैः तृतीयैकादशस्थान-
स्थैर्यथासम्भवं द्वयोर्वा स्थितै रविणा सूर्येण यदि निरीक्षितो ह्यः शशी लग्नं
वा भवति यस्मादेवं योगः स च दृश्यते तदा गर्भस्थः सुखी पुष्टिमान्भवति ।
केचिद्गुरुणा निरीक्षित इति पठन्ति तन्न युक्तम् । यस्मात्सारावल्यामुक्तम्
“होरेदुयुतैः सौम्यैस्त्रिकोणजायासुखान्वरस्थैः । पापैश्चिलाभयातैः सुखी च
गर्भो निरीक्षितो रविणा” ॥१०॥

भाषा—चन्द्रमा या लग्न के साथ शुभग्रह हो वा लग्न और चन्द्र से ५ । ९ । ७ ।
२ । ४ । १० इन स्थान में शुभ ग्रह और ३ । ११ स्थान में पापग्रह हो और लग्न
वा चन्द्र पर रवि की दृष्टि हो तो गर्भ सुखी (पुष्ट) होता है । १० ॥

अथ निषिक्तस्य निषेककालाज्जातस्य जन्मकालादुभयोरपि प्रश्नकालाद्वा

पुंस्त्रीविभागज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ओजर्क्षे पुरुषांशकेषु बलिभिर्लभार्कगुर्विन्दुभिः

पुञ्जन्म प्रवदेत्समांशकगतैर्युग्मेषु तैर्योपितः ।

गुर्वर्कौ विषमे नरं शशिसितौ वक्रश्च युग्मे स्त्रियं

द्वयङ्गस्था बुधवीक्षणान्च यमलौ कुर्वन्ति पक्षे स्वके ॥ ११ ॥

ओजर्क्षे पुरुषांशकेष्विति ॥ लग्नमुदयलग्नम् अर्क आदित्यः गुरुर्जीवः
इन्दुश्चन्द्रः एतैर्लग्नार्कगुर्विन्दुभिरोजर्क्षस्थैर्विषमराशिव्यवस्थितैर्न केवलं या-
वद्विषमराशिव्यवस्थितैर्विषमनवांशगतैर्बलिभिश्च पुंसो जन्म वदेत् । नन्वत्र
विषमनवांशग्रहणं नास्ति कथं व्याख्यातं विषमनवांशकगैरिति । उच्यते ।
पुरुषांशकेष्विति वचनात्पुरुषराशीनामंशकेष्वित्यर्थः । यतो य एव विषम-
राशयस्त एव पुरुषराशयः । समांशकगतैर्युग्मेष्विति । तैरेव लग्नार्कगुर्विन्दु-
भिर्युग्मेषु समराशिषु व्यवस्थितैर्न केवलं यावत्समांशकगतैर्युग्मराशिनवांश-
र्बलिभिश्च योपितः स्त्रिया जन्म वदेत् । अथैषां यथाभिहितानां लग्नग्रहाणां
मुभयविकल्पगतां बाहुल्याः पुंस्त्रीनिर्देशः । साम्ये बलाधिकत्वात् । गुर्वर्का-
विति । गुरुर्जीवः अर्क आदित्यः एतानुभावपि विषमे विषमराशौ गतौ यत्र
तत्र नवांशकस्थौ नरं पुरुषं कुर्वतः । बलग्रहणमप्यत्रानुवर्तते । राशौ चन्द्रः
सितः शुक्रः वक्रोऽंगारक एते यदि सबलाः युग्मे समराशौ गता यत्र तत्र
नवांशकस्थाः स्त्रियं जनयन्ति । द्वयंगस्था इति । एत एव ग्रहा द्वयंगस्था यत्र
तत्र राशौ द्विशरीरनवांशकस्था बुधवीक्षणाय बुधदृष्ट्या यमलौ द्वौ
स्वपक्षे कुर्वन्ति । स्वपक्षे आत्मीयपक्षे आत्मीयपुरुषनवांशके स्त्रीनवांशके
चेत्यर्थः । एतदुक्तं भवति । चत्वारो द्विस्वभावा मिथुनकन्याधन्विमीनाः तत्र
मिथुनधन्विनौ पुरुषांशकौ । कन्यामीनौ स्वव्यंशकौ तेन यथासम्भवं मिथुन-
धन्व्यंशगतावादित्यजीवौ यदि बुधेन यत्र तत्रावस्थितेन दृश्येते तदा यमलौ
द्वौ पुरुषौ वाच्यौ । एवं यथासम्भवं कन्यामीनांशकगताः शशिशुक्रभौमाः यत्र
तत्रावस्थितेन बुधेन दृश्यन्ते तदा यमले द्वे कन्ये वाच्ये । अथ द्वावेव वर्गौ
यथा दर्शितस्थौ बुधः पश्यति तदैकः पुरुषो द्वितीया च कन्या । नन्वत्रांशक-
ग्रहणं नास्ति तत्कथं व्याख्यातं द्विशरीरनवांशके स्थिता इति । अनेनैव
स्वल्पजातके उक्तम् । “बलिनौ विषमेऽर्कगुरु नरं स्त्रियं समगृहे कुजेन्दुसिताः ।
यमलौ द्विशरीरांशेष्विदुजदृष्ट्या स्वपक्षसमौ ॥ इति । अन्यथा पुनरुक्तता
स्यात् । ओजर्क्षे पुरुषांशकेष्वित्यनेनैव गतार्थत्वात् । बलग्रहणमत्रानुवर्तनीय-
मिति ॥ ११ ॥

भाषा—यदि लग्न, रवि, गुरु और चन्द्रमा ये बली होकर विषमराशि, विषम
नवांश में हो तो पुरुष का जन्म और यदि ये ही चारों सम राशि सम नवांश में हों
तो स्त्री का जन्म कहना चाहिये । गुरु और रवि ये दोनों विषम राशि में हों तो पुरुष
का जन्म, तथा चन्द्रमा शुक्र और मङ्गल ये तीनों समराशि में हों तो स्त्री का जन्म
समझना चाहिए । तथा ये ही चन्द्र, शुक्र मङ्गल यदि द्विस्वभाव में हों और उस पर
बुध की दृष्टि हो तो अपने पक्ष में यमल (जोड़ा) का जन्म देते हैं ॥ ११ ॥

विशेष अर्थ—यमल के जन्म में—यदि विषम द्विस्वभाव (मिथुन, धनु) में हो तो
पुरुष का, यदि सम द्विस्वभाव (कन्या मीन) में हो तो स्त्री का जोड़ा समझना

चाहिये । यदि विषम और सम दोनों में हो तो एक पुरुष और एक स्त्री समझना चाहिए । बुध की दृष्टि होने पर ही यमल का जन्म होता है अन्यथा नहीं ॥ ११ ॥

अथ पुञ्जन्मयोगान्तरसूपेन्द्रवज्रयाह—

विहाय लग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुञ्जन्मकरो विलग्नः ।

प्रोक्तग्रहाणामवलोक्य वीर्यं वाच्यः प्रसूतौ पुरुषोऽङ्गना वा ॥१२॥

विहाय लग्नमिति ॥ उक्तयोगाभावस्यावसरे नान्यथा आधानपृच्छाकालिकं वा लग्नं विहाय त्यक्त्वा सौरः शनेश्चरो लग्नाद्विषमर्क्षगतस्मृतीयपञ्चम-
सप्तमनवमैकादशस्थानानामन्यतमस्थः पुंजन्मकरः पुरुषजन्मकरो भवति ।
प्रोक्तग्रहाणामिति । प्रोक्तग्रहाणां कथितयोगकर्तृणां ग्रहाणां वीर्यं बलमवलोक्य
विचार्य प्रसूतौ प्रसवकाले पुरुषो नरोऽङ्गना स्त्री वा वक्तव्यः । एतदुक्तं भवति ।
यत्र पुरुषजन्मयोगसम्भवस्तत्र पुरुषो वाच्यः । यदा योगद्वयसम्भवो भवति
तदा यो योगो बलवद्ग्रहाभिनिर्मितस्तद्वशात्पुंस्त्रीजन्म वक्तव्यम् ॥ १२ ॥

भाषा—लग्न से लग्न को छोड़ कर अन्य विषम स्थान में शनि भी पुरुष का जन्म
कारक होता है । इस प्रकार पूर्वोक्त योगों के बलावल देखकर यदि पुरुषकारक ग्रह
बली हो तो पुरुष का, स्त्रीकारक ग्रह बली हो तो स्त्री का जन्म कहना चाहिये ॥१२॥

अथ स्त्रीवजन्मयोगाब्ध्यार्दूलविक्रीडितेनाह—

अन्योऽन्यं यदि पश्यतः शशिरवी यद्यार्किसौम्यावपि

वक्रो वा समगं दिनेशमसमे चन्द्रोदयौ चेत्स्थितौ ।

युग्मौजर्क्षगतावपीन्दुशशिशौ भूम्यात्मजेनेक्षितौ

• पुम्भागे सितलग्नशीतकिरणाः स्युः क्लीवयोगाश्च षट् ॥१३॥

अन्योऽन्यमिति ॥ शशी चन्द्रः रविरादित्यः एतौ शशिरवी यथाक्रमं
युग्मौजर्क्षगतौ समविषमराशिस्थावन्योन्यं परस्परं यदि पश्यतः समरा-
शिगतमर्कं पश्यत्यर्कश्च शशिनं पश्यति तदा क्लीवजन्मयोग एकः । यद्यार्कि-
सौम्यावपिति । आर्किः सौरः सौम्यो बुधः एतावार्किसौम्यौ यथाक्रमं युग्मौ-
जर्क्षगतौ अन्योन्यं यदि पश्यतस्तदा द्वितीयो योगः । वक्रो वा समगमिति ।
चक्रोऽङ्गारको विषमर्क्षगः समगं समराशिस्थं दिनेशं सूर्यं पश्यति सूर्यश्चाङ्गारकं
तदा तृतीयो योगः । असमे चन्द्रोदयौ चेदिति । चन्द्रः शशी उदयो लग्नमेता-
वसमे विषमराशाववस्थितौ भूम्यात्मजेनाङ्गारकेण समराशिगेनेक्षितौ दृष्टौ
तदा चतुर्थो योगः । युग्मौजर्क्षगतावपीति । इन्दुश्चन्द्रः शशिशौ बुधः एतौ
यथासंख्यं युग्मौजर्क्षगतौ समविषमराशिगौ भूम्यात्मजेन भौमेन यत्र तत्रा-
वस्थितेन वीक्षितौ दृष्टौ तदा पञ्चमो योगः । पुंभाग इति । सितः शक्रः लग्न-
मुदयलग्नं शीतकिरणश्चन्द्रः एते सितलग्नशीतकिरणाः यत्र तत्र राशौ पुंभागे

विषमनवांशके व्यवस्थिता भवन्ति तदा क्लीबजन्मयोगः षष्ठः । तथा च बादरायणः ।

“अन्योऽन्यं रविशशिनौ विषमौ विषमर्चागौ निरीक्ष्येते ।

इंदुजरविपुत्रौ वा तथैव नपुंसकं कुरुतः ॥

वक्रो विषमे सूर्यः समग्रश्चैवं परस्परालोकात् ।

विषमर्क्षे लग्नेंदू समराशिगतः कुजोऽवलोकयति ॥

बुधचन्द्रौ कुजदृष्टौ विषमर्क्षसमर्चागौ तथैवोक्तौ ।

ओजनवांशकसंस्था लग्नेन्दुसितास्तथैवोक्ताः ॥”

इति एते योगाः पूर्वयोगानामभावे वक्तव्याः । तेषां योगानामेतेषां च संभवे तेषामेव बलवत्त्वम् ॥ १३ ॥

भाषा—यदि समराशि में चन्द्रमा तथा विषम में सूर्य हो और दोनों में परस्पर दृष्टि हो (१) वा विषम राशि में शनि तथा सम में बुध हों तथा इन दोनों में परस्पर दृष्टि हो (२) या विषम राशिस्थ मङ्गल यदि समराशिस्थ सूर्य को देखता हो (३) अथवा समराशि में चन्द्रमा और विषम राशि में लग्न हो और इन दोनों को मंगल देखता हो (४) वा सम राशि में चन्द्र और विषम राशि स्थित बुध दोनों को मंगल देखता हो (५) अथवा शुक्र, लग्न, चन्द्रमा ये तीनों किसी राशि में विषम नवांश में हो (६) तो ये ६ प्रकार नपुंसक के जन्मकारक योग होते हैं ॥ १३ ॥

अधुना द्वित्रिगर्भसंभवयोगाच्छार्दूलविष्क्रीडितेनाह—

युग्मे चन्द्रसितौ तथौजभवने स्युर्ज्ञारजीवोदया

लग्नेन्दू नृनिरीक्षितौ च समगौ युग्मेषु वा प्राणिनः ।

कुर्युस्ते मिथुनं ग्रहोदयगतान्द्वयङ्गांशकान् पश्यति

स्वांशे ज्ञे त्रितयं ज्ञगांशकवशाद्युग्मं त्वमिश्रैः समम् ॥ १४ ॥

युग्मे चन्द्रसिताविति ॥ चन्द्रसितौ शशिशुक्रौ युग्मे समराशौ व्यवस्थितौ तथा तेनैव प्रकारेण ज्ञारजीवोदयाः ज्ञो बुध आरोऽङ्गारकः जीवो बृहस्पतिः उदयो लग्नम् एते सर्वे एवौजभवने विषमराशौ स्युर्भवेयुः एवमेते मिथुनं कुर्युः दारिकां दारकश्च । लग्नेंदू उदयचन्द्रौ समगौ युग्मराशिद्वयवस्थितौ नृनिरीक्षितौ नरग्रहेण येन केनचित् दृष्टौ भवतस्तथापि मिथुनं गर्भस्थं वाच्यम् । युग्मेषु वा प्राणिनः । त एव पूर्वोक्ता ज्ञारजीवोदयाः सर्वे एव युग्मेषु समराशिषु स्थिताः प्राणिनो बलिनो भवन्ति तदापि मिथुनं कुर्युः । ग्रहोदयगतानित्यादि । ग्रहाः सर्वे एव द्वयंशांशकेषु द्विस्वभावनवांशकेषु गताः प्राप्ताः उदयो लग्नं च द्वयंशांशकेषु गतः तान्ग्रहोदयगतान् द्वयंशांशकान् स्वांशे स्वनवांशकस्थे ज्ञे बुधे पश्यति सति तदा त्रितयं वक्तव्यम् । तत्रायं विशेषः । ज्ञगांशकवशाद्युग्मं त्विति । ज्ञो बुधो गतो व्यवस्थितो यस्मिन्नवांशके तद्वशाद्युग्मम् । बुधो यस्मि-

ननवांशके व्यवस्थितः स यल्लिगांशकस्तल्लिंगं तत्र गर्भे युग्मं वक्तव्यम् । एकस्त-
द्विपरीतः । एतदुक्तं भवति । मिथुनांशकस्थो बुधो यदाग्र होदयान्पश्यति द्वयं गांश-
कान्पश्यति तदा गर्भे दारकद्वयं दारिकाचैका वक्तव्या । अथो कन्यानवांशकस्थो
बुधो द्वयं गांशकव्यवस्थितान्ग्रहोदयान्पश्यति तदा गर्भे दारिकाद्वयमेको दारकश्च
वक्तव्यम् । अमिश्रैः सममिति । तैर्ग्रहोदयबुधैर्मिश्रस्थितैर्द्विस्वभावसमानलि-
गन्धितैस्त्रितयं सममेकलिंगं वक्तव्यम् । एतदुक्तं भवति । मिथुनवांशकव्यव-
स्थितो बुधो मिथुनधन्विष्यंशकव्यवस्थितान्ग्रहोदयान्पश्यति तदा गर्भे दारक-
त्रितयं वक्तव्यम् । अथ कन्यांशकव्यवस्थितो बुधः कन्यामीनांशकव्यवस्थितान्
ग्रहोदयान्पश्यति तदा गर्भे दारिकात्रितयं वाच्यमिति । तथा च सागवल्याम् ।
“समराशौ शशिसितयोर्धिपमे गुरुवक्रसौम्यलग्नेषु । योगे गर्भगतं तद्विद्वि-
मिथुनं तु वक्तव्यम् ॥ लग्नेन्दू वा समगौ पुंग्रहद्वौ च मिथुनजन्मकरो ।
उदयज्ञवक्रगुरवो वलिनः समराशिगास्तथैवोक्ताः ॥ द्विशरीरांशकयुक्तान्ग्रहान्
विलग्नं च पश्यतीन्दुसुते । कन्यांशे कन्ये द्वे पुरुषश्चैको निविच्यते गर्भे ॥
मिथुनांशे कन्यैका द्वौ पुरुषौ त्रितयमेवं स्यात् । मिथुनधनूराशिगतान्ग्रहान्वि-
लग्नं च पश्यतीन्दुसुतः ॥ मिथुनांशस्थश्च यदा पुरुषत्रितयं तदा गर्भे । कन्या-
मीनांशस्थान्विहगानुदय च युवतिभागगतः । पश्यति शांतगुतनयः कन्यात्रितयं
तदा गर्भे ।” ॥ १४ ॥

भाषा—चन्द्रमा और शुक्र दोनों सम राशि में हों और बुध, मंगल, गुरु और लग्न
ये विषम राशि में हो वा लग्न चन्द्रमा दोनों सम राशि में और पुरुष ग्रह से देखे जाते
हों, वा बुध, मंगल, गुरु और लग्न ये वली होकर सम राशि में हो तो मिथुन (गभ
में दो सन्तान) उत्पन्न करते हैं । तथा सब ग्रह और लग्न द्विस्वभाव नवांश में हो
और बुध अपने नवांश (मिथुन, या कन्या के अंश) में होकर ग्रहगत वा लग्नगत
द्विस्वभाव नवांश को देखता हो तो इस प्रकार के योग में ३ सन्तान कहना चाहिये ।
उनमें बुध के नवांश सजातीय दो कहना चाहिए । यदि नवांश सजातीय हो तो, तीनों
समान (पुत्र या कन्या एकजातीय) ही सन्तान समझना चाहिये ।

विशेष अर्थ—यदि बुध विषम (मिथुन) नवांश में हो और ग्रह लग्न सम
(कन्या, मीन) नवांश में हो तो २ पुत्र, १ कन्या । तथा बुध यदि सम (कन्या) नवांश
में हो और ग्रह लग्न विषम (मिथुन, धनु) में हो तो २ कन्या एक पुत्र का जन्म
समझना चाहिए । बुध और ग्रह लग्न विषम नवांश में हो तो तीनों पुत्र ही समझना ।
यदि सब सम नवांश में ही हो तो तीनों कन्या ही समझना चाहिए ॥ १४ ॥

अधुना ऽग्रधिकगर्भसम्भवयोगज्ञानमुपजातिकयाह—

धनधुरस्यान्त्यगते विलग्नैर्ग्रहैस्तदंशोपगतैर्वलिष्ठैः ।

ज्ञेनाकिंणा वीर्ययुतेन दृष्टे सन्ति प्रभूता अपि कोशसंस्थाः ॥ १५ ॥

धनुरिति ॥ धन्विलग्नैर्धनुरधरांशके वा लग्नमुपगते यत्र तत्र राशौ व्यव-

स्थितैः सर्वग्रहैर्धन्वयोपगतैः बलिष्ठैर्वीर्यवद्भिश्च ज्ञेन बुधेन आर्किणा च शनैश्चरेण वीर्ययुतेन बलवता दृष्टेऽवलोकिते प्रभूता बहवः कोशसंस्था जरा-बुवेष्टितविग्रहा गर्भं सन्ति भवन्तीति पञ्च सप्त दश(१) यावत् ॥ १५ ॥

भाषा—अन्तिम नवांशगत घनु लग्न हो और सब ग्रह घनुराशि के नवांश में हों एवं बलवान बुध और शनि लग्न को देखता हो तो गर्भ में बहुत (३ से भी अधिक) स तान है ऐसा कहना चाहिए ॥ १५ ॥

पूर्वमुक्तं “गर्भमासाधिपतौ निपीडिते तत्कालं श्रवणं समादिशेत् ।” इति ।

तदधुना गर्भस्य मासाधिपान्कुट्टेनाह—

कललघनाङ्कुरास्थिचर्माङ्गजचेतनताः

सितकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किबुधाः परतः ।

उदयपचन्द्रसूर्यनाथाः क्रमशो गदिता

भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः सदृशम् ॥ १६ ॥

कलल इति ॥ सिताद्या ग्रहा गर्भस्य प्रथममासात्प्रभृति कललादीनि भवन्ति वर्तयन्ति । तद्यथा । गर्भस्य प्रथमे मासि कललं भवति । शुक्रशोणिते घने संमिश्रीभूते तत्र गर्भस्य तस्मिन्मासे सितः शुक्रोऽधिपतिः । द्वितीये घनता काठिन्यं भवति तत्र कुजोऽगारकोऽधिपतिः । तृतीयेऽकुरोत्पत्तिर्हस्ताद्यव-जन्म तत्र जीवो बृहस्पतिरधिपतिः । चतुर्थेऽस्थिसम्भवः तत्र सूर्यो रविरधि-पतिः । पञ्चमे चर्मसम्भवस्तत्र चन्द्रोऽधिपतिः । षष्ठेऽङ्गजसम्भवो लोमजन्म तत्रार्किः सौरोऽधिपतिः । सप्तमे चेतनता सम्भवति चेतनता स्वभावः तत्र बुधोऽधिपतिः । बुधमासात्परतोऽन्ये शेषा मासास्ते गर्भस्याशनोद्वेगप्रसव-कालास्ते चोदयपतिचन्द्रसूर्यनाथाः स्वाग्निनः क्रमशो गदिताः उक्ताः । तत्राष्टमे मासि गर्भस्थो जन्तुरशनं करोति मात्रा भुक्तं पीतं रसादि तस्य नाभिलग्न-नालेन संक्रमते । तत्र गर्भाधानलग्नाधिपतिर्यो ग्रहः स मासाधिपतिः । नवमे गर्भस्थस्योद्वेगो भवति तत्र चन्द्रोऽधिपतिः । दशमे गर्भस्य प्रसवः प्रसूति-र्भवति तत्र सूर्यो रविरधिपतिः । तथा च स्वल्पजातके ।

“कललघनावयवास्थित्वग्रोमस्मृतिसमुद्भवाः क्रमशः ।

मासेषु शुक्रकुजजीवसूर्यचन्द्रार्किसौम्यानाम् ।

अशनोद्वेगप्रसवाः परतो लग्नेशचन्द्रसूर्याणाम् ।” इति ।

अत्र प्रथमद्वितीयमासाधिपयोर्यवनेश्चरेण सह मतभेदः । तथा तद्वैक्यम् ।

(१) एतादृशस्य गर्भस्य पूर्णप्रसवासम्भवाद् यस्य मासस्याधिपतिनिपीडितो निर्वल-
वा तस्मिन् मासे पतनं स्यादिति ज्ञेयम् ।

“कुजास्फुजिज्जीवरवोन्दुसौरशशांकलग्नेन्दुदिवाकराणाम् ।
 मासाधिपत्यप्रभवो न चेपां जयोपधातैर्ग्रहवद्भवन्ति ॥
 आद्ये तु मासे कललं द्वितीये पेशिस्तृतीयेऽपि भवन्ति शाखाः ।
 अस्थीन्यथ स्नायुशिराश्चतुर्थे सज्जान्त्रचर्साण्यपि पञ्चमे तु ॥
 पष्ठे त्वसृप्रोमनखैर्यकृच्च चेतस्विता सप्तममासि चित्या ।
 वृष्णाशनास्वादनमष्टमे स्यात् स्पर्शोपरोधो नवमे रातेश्च ॥
 स्रोतोभिरुद्वाटितपूर्णदेहो गर्भोऽर्कमासे दशमे प्रसूते ॥”

आचार्यस्य बहुमतमासानामभिमतमिति भवति शुभाशुभं च मासाधिपतेः
 सदृशम् । गर्भस्थस्य मासाधिपतिसदृशं शुभमशुभम् फलम् भवति । एतदुक्तं
 भवति । आधानकाले यो ग्रहो निषीडितो भवति तन्मासि गर्भस्य पतनम् ।
 कलुषे मन्दरश्मौ विवर्ये पीडनम् । निर्मलेंऽशुजालसम्पन्ने बलवति पुष्टिरिति ।
 तथा च मूढमजातके । “कलुषैः पीडा पतनं निषीडितैर्निर्मलैः पुष्टिः ॥” इति ।
 अथ चान्यैः शास्त्रकारैर्विशेष उक्तः । तत्किञ्चित्प्रदृश्यते । तथा च सारावल्ल्याम् ।
 “तत्र शुभाशुभमिश्रैः कर्मभिरधिवासिता विषयवृत्तिः । गर्भावासे निपतति
 संयोगे शुक्रशोणितयोः ॥ मिथुनस्य मनोभावो यादृङ्मदालस्यतो भवति ।
 श्लेष्मादिभिश्च दोषैस्तत्तुल्यगुणो निषिक्तस्य ॥ यादृक्पश्यति सौम्यस्तत्तुल्य-
 गुणं सुतं समाधात्ते । पितृजननीसादृश्यं रवेः शशांकस्य बलयोगान् ॥”
 सुबोधमेतत् ॥ १६ ॥

भाषा—गर्भके प्रथम मासमें बल (रजवीर्य मिश्रण), दूसरे मास में घन (पिण्ड),
 तीसरे मासमें अंकुर (अवयव), चतुर्थमासमें अस्थि (हड्डी), पञ्चम मासमें चर्म, षष्ठम
 मासमें अंगज (रोम) और सप्तम मासमें चैतन्य होता है, इन सातों मासके अधिपति क्रमसे
 शुक, मंगल, गुरु, सूर्य, चन्द्र, शनि और बुध होते हैं । बाद इसके अष्टम, नवम, दशम मास
 के स्वामी क्रम से लग्नेश, चन्द्र और सूर्य होते हैं । मासों के अधिप के शुभाशुभत्व से
 गर्भ के शुभ या अशुभ फल होता है । अर्थात् जिस मास का स्वामी बली हो उस मास
 में गर्भवती को सुख, जिस मास का स्वामी निर्बल हो उसमें क्लेश (दुःख) होता
 है । १६ ॥

विशेष अर्थ—अष्ट मास में गर्भस्थ बालक माता के स्नाये हुए रस को खाता है,
 नवें मास में गर्भ से निकलने (बाहर आने) का उद्वेग करता है । और दसवें मास
 में प्रसव होता है । यथा लघुजातक में—(संस्कृत टीका में देखिये)

अधुनाधिकाङ्गमूचिरलब्धगिरां सम्भवयोगान्वंशस्थेनाह—

त्रिकोणगे ज्ञे विबलैस्ततो परैर्मुखाङ्घ्रिहस्तद्विगुणस्तदा भवेत् ।

अवाग्गवीन्दावशुभैर्भसन्धिगैः शुभेक्षितैश्चेत्कुरुते गिरं चिरात् ॥ १७ ॥

त्रिकोणगे इति ॥ ज्ञे बुधे त्रिकोणगे लग्नान्नवमस्थे पञ्चमस्थे वा ततः

तस्माद्बुधादपरैरन्यैः सर्वेर्ग्रहैर्यत्र तत्रावस्थितैर्विबलैर्वार्यरहितैर्मुखाग्रहस्तद्वि-
गुणां गर्भस्थो वाच्यः । द्विशिराश्चतुष्पाश्चतुर्भुज इत्यर्थः । त्रिकोणगे बुधे कन्या-
गतम् इत्याहुः । तच्चायुक्तम् । यस्माद्भगवान्गार्गिः । “वल्हनीनैर्ग्रहैः सर्वैर्नवपञ्चमगे
बुधे । द्विगुणाग्रिशिरोहस्तो भवत्येकोदरस्तथा ॥” अवागिति । गवि वृषे स्थिते
इन्दौ चन्द्रेऽशुभैः पापैर्भसन्धिगैः । कर्कटवृश्चिकमीनानामन्त्यनवांशकस्थैर्यथा-
सम्भव सर्वैरेवान्त्यनवांशकस्थैः अवाङ् मूको गर्भस्थो वाच्यः । शुभेक्षित
इति । चेच्छब्दो यद्यर्थे । एवंविधे योगे यदि शुभेक्षितः सौम्यग्रहदृष्ट-
श्चन्द्रो भवति तदा जातस्य चिराद्बहुना कालेन गिरं वाचं कुरुते अर्थादेव
पापवीक्षिते वाग्धीन इति । एवं योगे मिश्रग्रहवीक्षिता यदा सौम्या
बलिनस्तदा चिरेण कालेन लब्धवाग्भवति । यदा पापा बलिनस्तदा नैवेति ।
अत्र च भगवान्गार्गिः । “कुलीरालिभ्रष्टांतस्थैः पापैश्चन्द्रे वृषोपगे । मूकः
पापेक्षितैः सौम्यैश्चिरेण लभते गिरम् ॥ मिश्रदृष्टैर्ग्रहैर्हानैर्मूको वा लब्धवाक्
चिरात् ॥” इति ॥ १७ ॥

भाषा—बुध लग्न से त्रिकोण में हो और शेष ग्रह निर्बल हो तो जातक २ मुख,
४ पैर, ४ हाथ वाला होता है । यदि चन्द्रमा वृष में हो और पापग्रह राशि सन्धि
(राशिगण्डान्त) में हो तो गूंगा होता है । यदि शुभ ग्रह की दृष्टि उन पर हो तो
अधिक दिनों में बोलता है ॥ १७ ॥

अधुना सदन्तकुब्जजडजन्मयोगान्मन्दाक्रान्त्याह—

सौम्यर्क्षांशे रविजरुधिरौ चेत्सदन्ताऽत्र जातः

कुब्जः स्वर्क्षे शशिनि तनुगे मन्दमाहेयदृष्टे ।

पङ्गुर्मीने यमशशिकुजैर्वीक्षिते लग्नसंस्थे

सन्धौ पापे शशिनि च जडः स्यान्न चेत्सौम्यदृष्टिः ॥ १८ ॥

सौम्येति ॥ रविजः शनैश्चरः रुधिरौऽगारकः यत्र तत्र राशौ शनैश्चरांगारकौ
सौम्यर्क्षांशे बुधनवांशके मिथुनांशके कन्यांशके वा भवतः अथवा बुधर्क्षे
मिथुनकन्ययोरन्यतमे राशौ स्थितौ भवतः चेच्छब्दो यद्यर्थे यद्येवं तदात्रास्मि-
न्योगे सदन्तो दन्तसहितो गर्भस्थो वाच्यः । केचित्सौम्यर्क्षांशे मिथुने मिथु-
नांशके कन्यायां कन्यांशके चेतीच्छन्ति ऋक्षांशयोर्युगपद्ग्रहणात् । अंशशब्देन
केवलेनैव सिद्धिः स्यात्तद्वत्ग्रहणमतिरिच्यत इति एवंविधे योगे गर्भस्थः
सदन्तो भवति जातो वा कुब्जः । स्वर्क्षे इति । शशिनि चन्द्रे स्वर्क्षे आत्मीय-
राशौ कर्कटस्थिते तथाभूते च तनुगते लग्नगते तथाभूते मन्दमाहेयदृष्टे मन्देन
शनैश्चरेण माहेयेनाङ्गारकेण च दृष्टेऽवलोकिते चन्द्रे एवंभूते योगे गर्भस्थः
कुब्जो वाच्यः । पङ्गुर्मीन इति । मीने लग्नसंस्थे यमशशिकुजैः यमः शनैश्चरः
शशी चन्द्रः कुजो भौमः एतैर्वीक्षिते दृष्टे पङ्गुः पादविकृतो गर्भस्थो वाच्यः ।

संधौ पाप इति । पापे आदित्यकुजसौराणामन्यतमे शशिनि च चन्द्रे संधौ कर्कटवृश्चिकमीनान्त्यनवांशगते यथासम्भवं गर्भस्थो जन्तुर्जडः श्रोत्रेन्द्रियहीनो वाच्यः । न चेत्सौम्यदृष्टिरिति । एते योगकर्तारो ग्रहो यथादर्शिता न चेत् यदि सौम्यैः शुभग्रहैर्दृष्टा न भवन्ति तदैतद्योगवत्पुष्ट्यं पूर्णं वक्तव्यम् । सौम्यैर्बलिभिर्निरीक्षता योगा एव भवन्ति मध्यबलैर्हीनबलैर्वा दृष्टास्तदा असमग्रफला भवन्ति ॥ १८ ॥

भाषा—यदि शनि मंगल बुध की राशि और बुध के ही नवांश में हो तो जातक दन्त सहित उत्पन्न होता है । अपनी राशि (कर्क) का चन्द्रमा लग्न में हो और शनि मंगल से दृष्ट हो तो कुब्ज (कुवड़ा) होता है । मीन लग्न हो और शनि चन्द्र मंगल तीनों से दृष्ट हो तो पंगु (लगड़ा) होता है । पाप ग्रह और चन्द्रमा राशि सन्धि में हो तो जड़ (बहिरा) होता है । यदि शुभ ग्रह की दृष्टि नहीं हो तभी इन योगों का फल समझना चाहिये । यदि शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो ये उक्त फल नहीं होते हैं ॥ १८ ॥

अधुना वामनहीनांगयोगौ दोधकेनाह—

सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे वामनको मकरान्त्यविलग्नौ ।

धीनवमोदयगैश्चट्काणैः पापयुतैरभुजाङ्घ्रिशिराः स्यात् ॥१९॥

सौरशशांकेति ॥ मकरान्त्यविलग्नौ मकरराश्यन्त्यनवांशके विलग्नस्थे नवमनवांशक उदयमानः स च मकरस्येत्यर्थः । तस्मिंश्च सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे सौरः शनैश्चरः शशाङ्कश्चन्द्रः दिवाकरः सूर्यः एतैरवलोकिते वामनको गर्भस्थो वाच्यः । धीनवमोदयगैरिति । अत्रैके व्याचक्षते । यदा लग्ने द्वितीयद्रेष्काणोदयो भवति तदा तस्य पंचमराशिसम्बन्धित्वाद्द्विद्रेष्काण इत्याख्या । तस्मिन्द्वितीये द्रेष्काणे पापग्रहयुते उदयमनुप्राप्ते नवमे तस्मिन्सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टे गर्भस्थोऽनुजो भुजहीनो वाच्यः । एवं यदा लग्ने तृतीयस्य द्रेष्काणस्य उदयो भवति तदा तस्य नवमराशिसम्बन्धित्वान्नवमदृष्काण इत्याख्या । तस्मिन्नुदयगते पापयुते सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टेऽनङ्घ्रिः पादहीनो गर्भस्थो वाच्यः । एवं प्रथमद्रेष्काणस्य लग्नसम्बन्धित्वादुदयद्रेष्काण इत्याख्या । तस्मिन्नुदयगते सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्टेऽशिराः शिरोहीनो गर्भस्थो वाच्यः । एतेषु योगेषु सौरशशाङ्कदिवाकराणां दर्शनयोगात्पापयुक्त इति । केवलमेवाभुजाङ्घ्रिशिरसां सम्भवं व्याचक्षते । सौरशशाङ्कदिवाकरदृष्ट इत्यस्यानुवृत्तिं नेच्छन्ति । अन्ये विभुजादिसम्भवे यथासंख्यं त्यक्त्वा दृष्काणत्रयेऽपि प्रतिदृष्काणं तदुद्भवविकल्पमाहुः । विभुजो वानङ्घ्रिर्वा विशिरा वेति । अन्ये एवं व्याचक्षते । यथा । लग्ने यदा प्रथमद्रेष्काणो यो भवति तदा पञ्चमेऽपि राशौ प्रथमद्रेष्काणो नवमेऽपि प्रथम एव । एतद्द्रेष्काणत्रयं यदि पापयुतं भवति तदा भुजहीनो

गर्भस्थो वाच्यः । अथ लग्ने द्वितीयद्रेष्काणोदयो भवति तदा पञ्चमनवमयोरपि द्वितीय एव । एतद्द्रेष्काणत्रयं यदा पापयुतं भवति तदा पाद्वीनो गर्भस्थो वाच्यः । अथ लग्ने तृतीयद्रेष्काणोदयो भवति तदा पञ्चमनवमयोरपि तृतीय एव । एतद्द्रेष्काणत्रयं यदि पापयुतं भवति तदा शिरोविहीनो गर्भस्थो वाच्यः । अत्राप्यन्ये यथा संख्यं त्यक्त्वा त्रिप्रकारेऽपि योगे भुजाग्निशिरोहीनानां विकल्पेन गर्भस्थस्य संभवमाहुः । वयं पुनर्ब्रूमः । निषेककाले पञ्चमराशौ चो द्रेष्काणः स यद्यंगारकेण युक्तः सौरशशांकदिवाकरदृष्टश्च भवति । एवं नवमे स्थाने द्रेष्काणो नवमद्रेष्काणः तथा निषेककाले नवमराशौ चो द्रेष्काणः स यद्यंगारकेण युक्तः सौरशशांकदिवाकरदृष्टश्च भवति तदा अनग्निर्भवति । तथा निषेककाले लग्नस्थो द्रेष्काणः स यद्यंगारकेण युक्तः सौरशशांकदिवाकरदृष्टश्च भवति तदा अशिरा गर्भस्थो वाच्यः । एषैव व्याख्या साध्वी । यस्माद्भग-
वान्गार्गिः ।

“लग्नद्रेष्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः ।

कुर्याद्विशिरसं तद्वत्पञ्चमे बाहुवर्जितम् ॥

विपदं नवमस्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः” इति ।

तथा च सारावल्याम् । “भौमयुता द्रेष्काणास्त्रिकोणलग्नेषु संहृष्टाः । विभुजाग्निमस्तकः स्याच्छनिरविचन्द्रैर्वदेद्गर्भः” ॥ १६ ॥

भाषा—यदि मकर अन्तिम द्रेष्काण से लग्न में हो और शनि, चन्द्र, सूर्य से दृष्ट हो तो जातक वामन (वौना) होता है । और पञ्चम, नवम तथा लग्न इन भावों के द्रेष्काण पाप (मंगल) से युत हो और शनि, चन्द्र, सूर्य इनसे दृष्ट हो तो जातक क्रम से भुज रहित, पैर रहित (विना पैर का) और मस्तक रहित अर्थात् विना मस्तक का होता है । यदि शुभ ग्रह से युत दृष्ट न हो तभी यह फल समझना चाहिये ॥ १९ ॥

विशेष अर्थ—यथा भगवान् गार्गि :—

लग्नद्रेष्काणगो भौमः सौरसूर्येन्दुवीक्षितः ।

कार्याद्विशिरसं, तद्वत् पञ्चमे बाहुवर्जितम् ।

विपदं नवमे स्थाने यदि सौम्यैर्न वीक्षितः ॥ १९ ॥

अथ विकलजन्मज्ञानार्थं हरिण्याह—

रविशशियुते सिंहे लग्ने कुजार्किनिरीक्षते

नयनरहितः सौम्यासौम्यैः सबुद्बुदलोचनः ।

व्ययगृहगतश्चन्द्रो वामं हिनस्त्यपरं रवि-

र्न शुभगदिता योगा याप्या भवन्ति शुभेक्षिताः ॥ २० ॥

रविशशियुते इति ॥ सिंहे लग्ने रविशशियुते अर्कचन्द्राभ्यां संयुते तथा-

भूने कुजाकिं निरीक्षिते भौमसौराभ्यां दृष्टे नयनरहितो नेत्ररहितोऽधो गर्भस्थो वाच्यः । अथादेव केवले सिंहलग्नेर्ऋण युते सौरांगारकदृष्टे दक्षिणाक्षिकाणः । एवं सिंहलग्ने केवलेन चन्द्रेण दृक्ते सौरांगारकदृष्टे वामाक्षिकाणः । सौम्या-सौम्यैः सवुद्वुदलोचन इति । तस्मिन्नेव सिंहलग्नेऽर्कचन्द्राभ्यां युक्ते सौम्या-सौम्यैः शुभपापग्रहैर्दृष्टे गर्भस्थः सवुद्वुदलोचनः पुष्पिताक्षो वाच्यः । अत्राप्येकतमयुक्ते प्राग्वत् पुष्पिताक्षत्वं वाच्यम् । व्ययगृहगत इति । निषेककाल-लग्नाज्जन्मलग्नाद्वा यस्य चन्द्रमा व्ययगृहगतो द्वादशस्थो भवति तस्य वामं चक्षुर्हि नस्ति वामाक्षिकाणः स भवतीत्यर्थः । एवं रविरादित्यो लग्नाद्द्वादशो-ऽपरं दक्षिणं चक्षुर्हि नस्ति । न शुभगदिता योगा इति । एते योगाः प्रागभिहि-ताक्षिकाण्ये ज्ञ इत्यादिना ग्रन्थेन शुभाशुभफलदास्तेषां सर्वेषामेव योगानां यदा योगकर्तारो शुभग्रहैः सौम्यग्रहैर्दृष्टा भवन्ति तदा ते योगा याप्या भवन्ति पूर्णं यथोक्तं फलं न प्रयच्छन्ति किंतु किञ्चित्प्रयच्छतीत्यर्थः ॥ २० ॥

भाषा—रवि चन्द्र सहित सिंह लग्न हो और मंगल शनि से दृष्ट हो तो जातक अन्धा होता है । यदि शुभ और पापग्रह दोनों से दृष्ट हो तो आँख में फूलवाला होता है । यदि द्वादश भाव में चन्द्रमा हो तो वाम नेत्र का तथा सूर्य (रवि) द्वादश भाव में हो तो दहिने नेत्र का नाश कारक होता है ! इन कहे हुए अशुभ योगों में शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो पूर्ण फल नहीं होता है ॥ २० ॥

अथ प्रश्नाधानकाले योगवशात्प्रसवकालज्ञानं वसंततिलकेनाह—

(१) तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको यस्तत्तुल्यराशिसहिते पुरतः शशाङ्के ।
यात्रानुदेति दिनरात्रिसमानभाग-स्तावद्गते दिननिशोः प्रवदन्ति जन्म ॥ २१ ॥

तत्कालमिन्दुसहित इति ॥ तत्काले प्रश्नकाले वा यश्मिन् राशौ चन्द्रमा वर्तते तत्र च यस्मिन् द्वादशभागे व्यवस्थितः स तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशकः । केचित्तु तत्कालिकेन्दुसहितो द्विरसांशक इति पठन्ति । तत्कालिकेन्दुना यावत्संख्यो द्वादशभागः सहितः तत्तुल्यस्तावत्संख्यो मेषादौ गणनया यो राशिस्तत्रस्थे चन्द्रमसि पुरतोऽप्रतो दशमे मासि गर्भस्य प्रसवो वाच्य इति केचित् । तथा च सारावल्याम् । “यश्मिन् द्वादशभागे गर्भाधाने व्यवस्थितश्चन्द्रः । तत्तुल्यर्क्षे प्रसवं गर्भस्य समादिशेत्प्राज्ञः ॥” अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते । आधानकाले यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तत्र यावत्संख्यो द्वादशभागो वर्तते तस्माद्द्वादशभागराशेस्तावत्संख्यो य एव पुरतो राशिस्तत्रस्थे चन्द्रमसि दशमे मासि प्रसवो वक्तव्यः । एषैव साध्वी व्याख्या । यस्माद्भगवन् गार्गी “यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थितः । तत्संख्यो यस्ततो राशिर्जन्मेन्दौ तद्गते

वदेत् (?) ॥” अत्रापि नक्षत्रानयनेऽयमनुपातोपायः । यदि चन्द्राक्रांतद्वादश-
भागप्रमाणेन सकलचन्द्रराशिष्टादशशतलिमाप्राणो लभ्यते तदानेन भुक्त-
द्वादशराशिप्रमाणेन किमिति लब्धं चन्द्रराशिभुक्तं लभ्यते ततोऽष्टशतलिमा
परिकल्पनया नक्षत्रमूहम् । अत्रापि दिनरात्रिकालज्ञानमाह । यावानुदेतीति ।
दिनरात्रिसंज्ञाः पूर्वं व्याख्याताः । गोजात्रिकर्कमिथुना इत्यादि । आधानकाले
प्रश्नकाले वा यत्लग्नं तस्य यः प्रविभागः दिनसंज्ञो रात्रिसंज्ञो वा यावानुदेति

(१) अत्र वालावबोचार्थमुदाहरणं प्रदर्श्यते—यथा वंशाखशुक्लपूर्णमाया गुरौ
रात्रिगतघटीषु ११ । ० एतावन्मितासु निषेकः । तत्कालिकस्पष्टचन्द्रो राश्यादिः ७ । ९ ।
३० । १० अत्र चन्द्रमा वृश्चिकराशेश्चतुर्थद्वादशांशे वर्तते वृश्चिके चतुर्थद्वादशांशः
कुम्भस्य भवति तेन कुम्भाच्चतुर्थवृषराशौ स्थिते चन्द्रमसि दशमे मासे फाल्गुने जन्म
भविष्यतीति ज्ञेयमिति ।

अथात्र वृषराशौ कृतिकानक्षत्रस्य चरणत्रयं रोहिणीनक्षत्रस्य चरणचतुष्टयं मृग-
शिरोनक्षत्रस्य पादद्वयञ्च वर्तते तत्र कस्य नक्षत्रस्य कस्मिन् चरणे जन्म भविष्यति

तदानयनं प्रदर्श्यते—चन्द्रस्य भुक्तकुम्भद्वादशांशमानम् = $\left(\overset{0}{9} \overset{1}{1} \overset{11}{30} \overset{11}{10} \right)$ —

$\left(\overset{0}{7} \overset{1}{30} \right) = \left(\overset{0}{2} \overset{1}{10} \overset{11}{10} \right) = \left(\overset{0}{1} \overset{1}{20} \overset{11}{10} \right) = 120$ स्वल्पान्तरात्
“अर्धाल्पे त्याज्यमर्धाधिके रूपं ग्राह्यमिति नियमात्” ततोऽनुपातो यदि चन्द्रनिष्ठसम्पूर्ण-

द्वादशांशप्रमाणेनानेन २ । ३० = १५० राशिकला अष्टादशशतानि लभ्यन्ते तदा

चन्द्रभुक्तद्वादशांशमानेना १२० नेन का इति लब्धा राशिभुक्तकलाः = $\frac{1600 \times 120}{150}$

= १२ × १२० = १४४० । अथैकस्मिन् राशौ नवचरणास्तथैकस्मिन् चरणे शतद्वयकला
भवन्त्यतः शतद्वयेन भक्ता राशिभुक्तकलाः = $\frac{1440}{100} = 14 + \frac{40}{100}$ लब्धा वृषराशे
भुक्ताः सप्त चरणा अतो वृषराशेरष्टमे चरणेऽर्थात् मृगशिरोनक्षत्रस्य प्रथमचरणे जन्म
भविष्यतीति ज्ञेयम् ।

अथ दिनरात्रिगतेष्टकालप्रमाणानयनार्थमुदाहरणम्—अत्र निषेककालिकं लग्नम्
९ । १० । २५ । ० तत्र चतुर्थो मेषनवमांशो वर्तते स च रात्रिवली तस्माद् रात्रिगतेष्ट-

कालानयनमनुपातेन यदि सम्पूर्णनवमांशप्रमाणेना (३ । २० = २००) नेन गर्भाधान-

रात्रिमानम् २८ । ० लभ्यते तदा लग्नचतुर्थनवमांशभुक्तमानेना २५ नेन किमिति

लब्धं रात्रिगतेष्टकालमानम् = $\frac{28 \times 25}{200} = 3.5$ घट्यादिकम् । अतो रात्रिगतसा-

र्धघटीत्रयेष्टसमये जन्म भविष्यतीति वाच्यम् । एवमेव सर्वत्र विचार्यमिति दिक् ।

स्वमानाद्यावत्कालभागो गतस्तावत्येव दिननिशोः स्वमानाद्गते काले जन्म भविष्यतीति वाच्यम् । एवं दिनस्य रात्रेर्वा गतकालं बुद्ध्वा प्रसवकाले लग्न-होराद्रेष्काणनवांशद्वादशभागत्रिंशंशका वाच्याः । अत्र ये प्रवदन्ति कथयन्ति तेषां तद्वाक्यं सारावल्याम् ।

“तत्कालं दिवसनिशासंज्ञः समुदेति राशिभागो यः ।

यावानुदयस्तावान्वाच्यो दिवसस्य रात्रेर्वा ॥

इत्याधाने प्रथमं प्रसूतिकालं सुनिश्चितं कृत्वा ।

जातकविहितं च विधिं विचिन्तयेत्तत्र गणितज्ञः ॥२१॥

भाषा—गर्भाधान काल में चन्द्रमा जितने संख्यक द्वादशांश में हो उस राशि से उतने संख्यक राशि में, दशवें मास में जब चन्द्रमा जाता है, तब प्रसव होता है । अथवा दिन बली वा रात्रि बली गर्भाधान कालिक लग्न के जितने अंश उदित हों उतने ही दिन वा रात्रि वीतने पर जन्म कहना ॥२१॥

विशेष अर्थ—भगवान् गार्गि का वचन—

“यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थिते ।

तत्संख्यो यस्ततो राशिर्जन्मेन्दौ तद्गते भवेत्” ॥

यथा सारावली—

“तत्काले दिवसनिशासंज्ञः समुदेति राशिभागो यः ।

यावानुदयस्तावान् वाच्यो दिवसस्य रात्रेर्वा ॥”

उदाहरण—मानो सं० १९९१ फाल्गुन शुक्ल ३ सोमवार रात्रि गत घटी ७।३० गर्भाधानकाल में लग्न राश्यादि ५।२३।१५।२० स्पष्ट चन्द्रमा ११।८।१४।२५ है तो यहाँ चन्द्रमा मीन राशि के चतुर्थ (मिथुन) के द्वादशांश में है, इसलिये मिथुन से चतुर्थ कन्याराशि में आधान मास से दशवें मास में जब चन्द्रमा जायगा तब जन्म होगा । तथा—चन्द्रमा की अंश कला समझने के लिये त्रैराशिक से ऐसा अनुपात है कि एक द्वादशांश २।३०' की कला (१५०") में ३० अंश तो आधानकालिक गत द्वादशांश में क्या ? इस प्रकार जन्मकालिक चन्द्रमा के लब्ध अंशादि =

$$\frac{३० \times \text{गतद्वादशांशकला}}{१५०} = \frac{\text{गतद्वादशांशकला}}{५}$$

अर्थात् गत द्वादशांश की कला में ५ का भाग देने से अंशादि होते हैं । अतः आधानकालिक चन्द्रमा ११।८।१४।२५ के चतुर्थ द्वादशांश की गत कला ४४।२५ में ५ का भाग देने से लब्ध अंशादि ८।५३।० अर्थात् दशवें मास (अग्रहण) में कन्या राशि के ८ अंश ५३ कला में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होगा । यह निश्चित हुआ ।

अतः जन्मकालिक चन्द्रमा ५।८।५३।० राश्यादि हुआ । इस पर से इष्टकाल भी समझ लेना चाहिये ।

तथा आधानकालिक लग्न से जन्मकालिक दिनरात्रि गतेष्टकाल के आनयन

का उदाहरण—ऊपर सिद्ध हो चुका है कि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के चतुर्थ चरण में चन्द्रमा के जाने पर जन्म होगा ।

वह संवत् १९९२ अग्रहण कृष्ण ११ गुरुवार में हुआ । तथा गर्भाधान लग्न कन्या दिनवली है उसके गतांश २३।१५।२० से यह अनुपात हुआ कि ३० अंश में नियमित जन्मकालिक दिनमान तो गतांश में क्या ?

$$= \frac{\text{दिनमान} \times \text{गतांश}}{३०} = \text{दिनगतेष्टकाल}$$

अर्थात् गतांश से दिनमान को गुणाकर ३० के भाग देने से इष्टकाल होता है । इसी प्रकार रात्रिवली लग्न में रात्रिमान से रात्रिगत इष्टकाल सिद्ध होता है ।

जैसे नियमित दिनमान २६।३० को लग्न के गतांश २३।१५।२० से गुणा कर ६१६।१६।२० इस से ३० का भाग देने से लब्ध घट्यादि दिनगत इष्टकाल २०।३२ हुआ ॥२१॥

अधुना धृतस्य गर्भस्य वर्षत्रयवर्षद्वादशज्ञानं सालिन्याह—

उदयति मृदुभांशे सप्तमस्थे च मन्दे

यदि भवति निषेकः सूतिरब्दत्रयेण ।

शशिनि तु विधिरेष द्वादशेऽब्दे प्रकुर्या-

न्निगदितमिह चिन्त्यं सूतिकालेऽपि युक्त्या ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके निषेकाध्यायश्चतुर्थः ॥४॥

उदयतीति ॥ मृदोः सौरस्य भांशे मृदुभांशे निषेककाले यस्य तस्य लग्नस्योदये मृदुभांशे शनैश्चरराशिनवांशके मृगांशके कुम्भांशके वादयति तथाभूते यस्मादेव लग्नान्मन्दे शनैश्चरे तत्काले सप्तमस्थे घनूगते एवंविधे योगे यदि निषेक आधानं भवति तदा धृतस्य गर्भस्याब्दत्रयेण सूतिः प्रसवो वक्तव्यः । शशिनीति । एष एव विधिर्यदा शशिनि चन्द्रे भवति तदा द्वादशेऽब्दे द्वादशे वर्षे सूतिं प्रसवं कुर्यादित्यर्थः । एतदुक्तं भवति । यस्य तस्य लग्नस्योदये यदा कर्कटांशकोदयो भवति तस्माल्लग्नान्मन्दो भवति तदा धृतस्य गर्भस्य द्वादशेऽब्दे प्रसवो वाच्यः । निगदितमिहेति । इहास्मिन्नाधानाध्याये आधानकालयोगवशाद्यथा हीनाधिकाङ्गादीनां गर्भसम्भवो भवति तथा प्रसूतिकालेऽपि तादृग्योगवशात्तथाविधानामेव जन्म वक्तव्यम् । पितृमातृपितृव्यमातृष्वसणामपि शुभाशुभं जन्मकाललग्नवशात्तदनन्तरमपि वक्तव्यम् । युक्त्येति । यन्न सम्भवति तन्न वक्तव्यम् । यथा गर्भस्त्रावादि गर्भप्रसवकालनिर्देशादि च । एवमाधानकालात्प्रसवकालाच्च यथैवोद्देशः कृतस्तथा प्रश्नकालादपि वक्तव्यः । उक्तं च जन्मन्याधाने प्रश्नकाले वेति ॥ २२ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ निषेकाध्यायश्चतुर्थः ॥ ४ ॥

भाषा—लग्न में शनैश्चर की राशि (मकर वा कुम्भ) के नवांश हो और शनि सप्तम भाव में हो ऐसे योग में यदि गर्भाधान हो तो ३ वर्ष में प्रसव होता है। इस प्रकार यदि चन्द्रमा में हो (अर्थात् लग्न में कर्क का नवांश हो और चन्द्रमा सप्तम भाव में हो ऐसे योग में गर्भाधान हो) तो १२ वर्ष में प्रसव होता है। इस अध्याय में कहे हुये फलों को युक्ति से जन्मकाल में भी विचार करना चाहिये ॥२२॥

विशेष अर्थ—जैसे पितृ मातृ आदि संज्ञक ग्रहों से जन्मकाल में भी पिता माता आदि का शुभाशुभ विचार करना चाहिये ॥२२॥

अथ जन्मविधिर्नामाध्यायः ॥ ५ ॥

अथातो जन्मविधिर्नामाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव पितुः सन्निधावसन्निधौ वा जात इत्यनुष्टुभाह—

पितुर्जातः परोक्षस्य (१) लग्नमिन्दावपश्यति ।

विदेशस्थस्य चरमे मध्याद् अष्टे दिवाकरे ॥ १ ॥

पितुर्जात इति ॥ इन्दौ चन्द्रे प्रसवलग्रमपश्यति सति पितुः परोक्षस्य जनकस्यासन्निधौ जातः । तत्र पितुरसन्निधाने स्वदेशपरदेशस्थितिज्ञानमाह ।

(१) अत्राचार्येण लग्नादिद्वादशभावानां संज्ञाः पठिताः । किन्तु किन्नाम लग्नं, के च भावाः, कथञ्च तत्साधनं भवतीति न कृतमतोऽत्र मया छात्रोपकारार्थं तदानयनं प्रदर्श्यते । तत्रापि तावदुपयोगित्वाद्यनांशाधनं प्रदर्श्यते :—

एकद्विवेदसम्मितशकवर्षेऽयनांशाभाव एव प्राचीनाचार्यैरुपलब्धस्तदनन्तरमेकेन वर्षेण चतुःपञ्चाशद्विकला अयनगतिरुपलब्धा; अत इष्टशकवर्षादावयनांशज्ञानार्थमिष्टक एकद्विवेदोनः कार्यः शेषवर्षैरनुपातो यदि वर्षेणैकेन चतुःपञ्चाशद्विकला अयनगतिर्लभ्यते तदा शेषवर्षेः किमित्यागता अभीष्टवर्षादावयनविकलास्ताः षष्टिवर्गभक्ता

जाता अयनांशाः $\frac{५४(इश-४२१)}{१ \times ३६००} = \frac{३(इश-४२१)}{२००}$ अतोऽत्र पद्यम्—

शकादेकद्विवेदोनात् त्रिनिघ्नाद्दशभाजितात् ।

द्विशत्याप्तं फलं ज्ञेया वर्षादावयनांशकाः ॥ इति ॥

अथेष्टाकराशिसम्बन्ध्ययनांशानयनार्थमनुपातो यदि द्वादशभी रविभुक्तराशिभिश्चतुष्पञ्चाशदयनविकला लभ्यन्ते तदेष्टाकराशिभिः किमित्यागतास्तत्सम्बन्ध्ययनविकलाः = $\frac{५४ \times इररा}{१२} = \frac{९ \times इररा}{२}$ एभिः सहिता वर्षादिभवा अयनांशा अभीष्टमासादौ भवितुमर्हन्त्यतोऽत्रापि पद्यम्—

द्वयांशा नवघ्नाकर्गतर्क्षसङ्ख्या लब्धाभिराभिर्विकलाभिराख्याः ।

वर्षादिजाता अयनांशकास्ते स्वाभीष्टमासप्रमुखे भवन्ति ॥

विदेशस्थस्येति । दिवाकरे सूर्ये चरभे चरराशिस्थिते मध्याह्नमस्थानाद्भ्रष्टे पतिते एकादशद्वादशस्थे नवमाष्टमस्थानस्थे पितुर्विदेशस्थस्य अन्यदेशगतस्य

ततो रविभुक्तांशसम्बन्धयनविकलानयनार्थमनुपातो यदि चक्रांशं श्रुतुष्वंशदयन-
विकला लभ्यन्ते तदा रविभुक्तांशैः किमिति लब्धाभिविकलाभिः सहिता मासादिभवा
अयनांशा अभीष्टवासरे स्युरतोऽत्रापि पद्यम्—

विघ्ना नखाता रविभुक्तभागा लब्धाभिरेवं विकलाभिराद्याः ।

मासादिजातायनभागकास्ते स्वाभीष्टवारे प्रभवन्ति नूनम् ॥ इति ॥

एवमयनांशानयन कार्यमिति दिक् ।

अथ पञ्चाङ्गस्थग्रहेभ्योऽभीष्टकाले ग्रहानयनार्थमुपायः प्रदर्श्यते :—

यस्मिन् दिनेऽभीष्टकाले ग्रहाः साध्यास्तस्मात् कालाद्यदि पृष्ठस्थिता पङ्क्तिरासन्ना
स्यात् तदाऽभीष्टवारादेः पङ्क्तिवाराद्यं विशोध्य शेषं धनचालनं ज्ञेयम् । तेन ग्रहगति-
कलाः सङ्गुण्य पट्या विभज्य लब्धमशाद्यं पञ्चाङ्गस्थग्रहे योग्यतदेष्टकाले ग्रहो भवेत् ।
यदि चाभीष्टकालादग्रस्थिता पङ्क्तिरासन्ना स्यात् तदा पङ्क्त्या इष्टं विशोध्य शेषमृण-
चालनं ज्ञेयं तेन ग्रहगतिं सङ्गुण्य पट्या विभज्य लब्धमशाद्यं पङ्क्तिग्रहाद्विशोध्य तदा
स्वेष्टकाले ग्रहो भवितुमर्हति ।

तथा च—

पङ्क्त्याः स्वेष्टो भवेदग्रे पङ्क्तिमिष्टाद्विशोध्यते ।

तच्चालनं धनं ज्ञेयं व्यत्ययाद् व्यत्ययं तथा ॥

धनर्णचालनेनैवं गतिनिघ्नी खषड् ६० हुता ।

लब्धांशाद्यं क्रमाद्योग्यं शोध्यमिष्टग्रहो भवेत् ॥

विलोमगमनादत्र राहौ कुर्याद्विपर्ययम् ।

तथा वक्रगती खेटे चालनस्य विधिरस्त्वयम् ॥

एवमभीष्टकाले सर्वे ग्रहाः प्रसाध्या इति ।

अथ प्रथमलग्नसाधनार्थं पद्यानि ॥

सायनार्कस्य भुक्तांशा भोग्यांशाः स्वोदयैर्हताः ।

त्रिशता विहृता लब्धपलानीष्टात् पलीकृतात् ॥

विशोष्यानि ततो भुक्त-भोग्यराश्युदयासवः ।

शोष्यारत्वेवं न यन्मानं शुध्येत्सोऽशुद्धसञ्ज्ञकः ॥

शेषं त्रिशदगुणं भक्तमशुद्धमवनोदयैः ।

लब्धमशाद्यशुद्धर्को शोध्यं योग्यं च शुद्धमे ॥

व्ययनांशं ततस्तत् स्यात्कलार्थं लग्नमादृतम् ।

लग्नं सूर्योदयादिष्टदण्डैर्भोग्यप्रकारतः ॥

रात्रिशेषघटीभिस्तु साध्यं भुक्तप्रकारतः ।

यामिनीगतदण्डैर्वा लग्नं पङ्कभयुताद्भवेः ॥

जातः । चन्द्रमसि प्रसवलग्नमपश्यत्येष योगो नान्यथेति । चन्द्रे प्रसवलग्नम-
पश्यति अर्के स्थिरराशिस्थे मध्याद् भ्रष्टे स्वदेशस्थस्यैव पितुः परोक्षे जातः ।
अस्मिन्नेव योगे द्विस्वभावस्थेऽर्के मध्याद् भ्रष्टे स्वदेशपरदेशयोर्मध्योपस्थि-

भोग्यप्रकारतरत्वेवं क्रियाया लघुता भवेत् ।

इष्टाधिकानि सूर्यस्य भुक्तभोग्यपलानि चेत् ॥

तदेष्टातिश्रिता निघ्नात् सूर्याक्रान्तोदयहृतात् ।

लब्धांशं रहितो युक्तो रविरेव हि लग्नकम् ॥

लग्नन्तूदयकाले स्याद्रविरेव हि सर्वदा ।

अस्तकाले सषड्भार्कतुल्यं ज्ञेयं विपश्चिता ॥

एवं दिवानताभावे रविरेव खलग्नकम् ।

ज्ञेयं रात्रिनताभावे सषड्भरविणा समम् ॥

दशमलग्नानयनं नतकालाद्भवत्यतस्तावदत्र नतकालसाधनोपायः प्रदर्शयते—यदि
दिनार्धादिभीष्टषट्त्रयोऽल्पास्तदा दिनार्धादिष्टघटीपलप्रमाणं विशोध्य शेषं नतघटीप्रमाणम् ।
यदि चाभीष्टघटिका दिनार्धतोऽधिकास्तदाभीष्टघटीभ्य एव दिनार्धं विशोध्य शेषं
नतकालप्रमाणं ज्ञेयम् । एवं रात्रिगतेष्ट-रात्र्यर्धतोरात्रिगतनतकालः सुधिया स्वबुद्ध्या
साध्य इति । ततो नतकालालङ्कोदयैश्च दशमलग्नानयनं लग्नानयनवदेव कार्यम् । कथं
दशमलग्नं लङ्कोदयैः साध्यते तदुच्यते स्वोर्ध्वयाम्योत्तरवृत्तक्रान्तिवृत्तसम्पात्तरूपं दशम-
लग्नं निरक्षदेशीयानां स्वपूर्वपश्चिमस्वस्तिकनिवासिनां प्रथमलग्नं स्वयाम्योत्तरवृत्तस्य
तत्क्षितिजत्वात् । अत एव दशमलग्नं निरक्षोदयैरेव साध्यम् । प्रथमलग्नन्तु स्वक्षिति-
जस्थं भवति तेन तत् स्वोदयैरेव साध्यते । लङ्कोदयस्वदेशोदयमानबोधकं पद्यमस्यैव
ग्रन्थस्य प्रथमाध्याये १९ श्लोकस्य टिप्पण्यां विलोक्यम् ।

अथ नतकाल-दशमलग्न—ससन्धिसर्वभावसाधनार्थमनुक्तपद्यानि—

पूर्वं नतं स्याद् शुद्धलालपमिष्टं दिनार्धमानात् प्रविशोध्य शेषम् ।

इष्टे दिनार्धादधिके विशोध्यं दिनार्धमिष्टादपरं नतं स्यात् ॥ १ ॥

एवं स्वबुद्ध्या सुधिया विधेयं रात्र्यर्धतो रात्रिगतं नतं च ।

लङ्कोदयैः पूर्वनतात् प्रसाध्यं भुक्तप्रकारेण पुरोदितेन ॥ २ ॥

भोग्यप्रकारेण परान्नताद् यत्लग्नं भवेत्तद्दशमाभिधानम् ।

भवेच्च तत् षड्भयुतं चतुर्थं लग्नं सषड्भं च तथास्तसञ्ज्ञम् ॥ ३ ॥

लग्नोनतुर्यरसभागयुता तनुस्तसन्धिर्भवेत्स रसभागयुतो द्वितीयः ।

भावः स चोत्तरसभागयुतः स्वसन्धिरेवञ्च सोऽपि रसभागयुतस्तृतीयः ॥ ४ ॥

भावोऽथ सोऽपि रसभागयुतः स्वसन्धिरेवन्तदुत्तरसभागविहीनितेन ।

रूपेण तुर्यतनुरेव युता स्वसन्धिः साध्यावर्धयमपि पञ्चमषष्ठभावी ॥ ५ ॥

वि०—एवमत्र सायनाकस्वोदयाम्यां लग्नादिभावसाधनं जन्मयात्रादृष्टफलार्थं
प्रत्यक्षमसंगतम्-तदर्थं मत्कृतो लग्नविवेको जन्मपत्रप्रबोधश्च विलोक्यौ ।

तस्य परोक्षे जातः अर्थादेव चन्द्रे प्रसवलग्नमपश्यत्यर्के चरराशिस्थे वा द्वि-
स्वभावराशिस्थे वा मध्याद् भ्रष्टेऽपि वा पितुः स्वदेशस्थस्यैव परोक्षे जात
इति वक्तव्यम् । तथा च सारावल्याम्—

“होगमनोद्यमाणे पितरि न गोहस्थिते शशिनि जातः ।

मेपूरणान्च्युते वा चरगे भानौ विदेशगते” ॥ १ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा द्वात्रिंशत् लग्न को नहीं देखा जाता हो तो पिता के परोक्ष में
जन्म कहना चाहिये । इस योग में यदि सूर्य दशम स्थान से आगे हटा हुआ चर
राशि में हो तो विदेशस्थ पिता के परोक्ष में जन्म कहना चाहिये ॥१॥

विशेष अर्थ—सूर्य के चर राशि में रहने पर विदेशस्थ कहा गया है इस प्रकार
मिथ्य होता है कि—स्थिर राशि में सूर्य हो तो स्वदेशस्थ और द्विस्वभाव राशि में
हो तो मार्गस्थ पिता के परोक्ष में जन्म समझना चाहिये । तथा यदि दशम स्थान से
भ्रष्ट (हटे) सूर्य हो और चन्द्रमा लग्न को न देखे तभी यह योग समझना चाहिए ।
अर्थात् सूर्य दशमस्थान में हो तो योग नहीं होता है ॥१॥

अथान्यानपि योगाननुष्ठुमाह—

उदयस्थेऽपि वा मन्दे कुजे वास्तं समागते ।

स्थिते वान्तः क्षपानाथे शशाङ्कसुतशुक्रयोः ॥ २ ॥

उदयस्थ इति ॥ मन्दे सौर उदयस्थे लग्नगते पितुः परोक्षस्य जातः, अथवा
कुजे भौमे जन्मलग्नद्वारं सप्तमं समागते प्राप्ते पितुः परोक्षस्य जात इति ।
स्थिते वान्तरिति । क्षपानाथे चन्द्रे शशाङ्कसुतशुक्रयोर्मध्यस्थे शशाङ्कसुतो बुधः
शुक्रो भागेवः, अनयोर्मध्यस्थिते चन्द्रादेको द्वादशेऽन्यो द्वितीये अथवै-
कस्मिन्नाशौ मध्यभागेषु चन्द्रः स्थितः आद्यन्तभागयोर्बुधशुक्रौ तथापि
मध्यस्थः । एवंविधे योगे पितुः परोक्षस्य जातः । तथा च स्वल्पजातके—

“चन्द्रे लग्नमपश्यति मध्ये वा सौम्यशुक्रयोश्चन्द्रे ।

जन्म परोक्षस्य पितुर्यमोदये वा कुजे चास्ते ॥” इति ॥ २ ॥

भाषा—यदि शनि लग्न में, अथवा मङ्गल सप्तम भाव में हो, या बुध शुक्र के
मध्य में चन्द्रमा हो तो पिता के परोक्ष में जन्म कहना चाहिए ॥२॥

अधुना सर्पज्ञानं सर्पवेष्टितज्ञानं चानुष्ठुमाह—

शशाङ्के पापलग्ने वा वृश्चिकेशत्रिभागगे ।

शुभैः स्वायस्थितैर्जातः सर्पस्तद्वेष्टितोऽपि वा ॥ ३ ॥

शशाङ्क इति ॥ वृश्चिकेशो वृश्चिकस्वामी भौमः शशांके चन्द्रे वृश्चिके-
शत्रिभागगे भौमद्रेष्काणस्थे तत्र भौमद्रेष्काणो मेषे प्रथमः कर्कटे द्वितीयः
सिंहे तृतीयः, वृश्चिके प्रथमः धनुषि द्वितीयः मीने तृतीयः एषामन्यतमस्थस्य
चन्द्रमसः शुभैः शुभग्रहैः स्वायस्थितैर्द्वितीयेकादशस्थितैः सर्प उरगो जात

इति वक्तव्यम् । पापलग्ने वेति । एवं पापग्रहसम्बन्धिलग्नोदये यदा भौम-
द्रेष्काणो भवति तत्र पापलग्ने भौमद्रेष्काणः मेषे प्रथमः, कर्कटे द्वितीयः, सिंह-
तृतीयः वृश्चिके प्रथमः धनुषि द्वितीयः मीने तृतीय एषामन्यतमस्योदयो लग्ना-
द्यदि शुभग्रहैर्द्वयैकादशस्थैस्तद्वेष्टितः सर्पवेष्टितो जन्तुर्जात इति वक्तव्यम् । अन्ये
पुनरेवं व्याचक्षते । चन्द्रे पापलग्ने वा भौमद्रेष्काणस्थे तस्मादेव शुभग्रहैः
स्वायस्थितैः विकल्पेन सर्पो वा सर्पवेष्टितो वा जात इति वक्तव्यम् । अत्र
पूर्वव्याख्या साध्वी । यस्माद्भगवान्गार्गिः । “भौमद्रेष्काणग्रे चन्द्रे सौम्यैराय-
धनस्थितैः । सर्पस्तद्वेष्टितस्तद्वत्पापलग्ने विनिर्दिशेत् ।” तथा च सारावल्याम्—

“भौमद्रेष्काणगतैर्दौ लग्ने वा संस्थिते वदेज्जातम् ।

द्वयेकादशगैः सौम्यैरहिवेष्टितको भुजङ्गो वा” ॥ ३ ॥

भाषा—चन्द्रमा यदि मंगल के द्रेष्काण में हो, या पाप से युत लग्न मंगल के
द्रेष्काण में हो तो इन दोनों योग में शुभग्रह २।११ स्थान में हो तो सर्प का जन्म
अथवा सर्प से वेष्टित मनुष्य का जन्म कहना चाहिये ॥३॥

विशेष अर्थ—भगवान् गार्गि का वचन—भौमद्रेष्काणे चन्द्रे सौम्यैरायधन-
स्थितैः । सर्पस्तद्वेष्टितस्तद्वत्पापलग्ने विनिर्दिशेत् ॥ इति स्पष्टार्थः ॥३॥

अधुनैकजरायुवेष्टितयो जन्मज्ञानमनुष्टुभाह—

चतुष्पादगते भानौ शेषैर्वीर्यसमन्वितैः ।

द्वितनुस्थैश्च यमलौ भवतः कोशवेष्टितौ ॥ ४ ॥

चतुष्पादेति । भानौ सूर्ये चतुष्पादराशिगते मेषवृषसिंहधन्विपराधमकर-
पूर्वाधानामन्यतमस्थे शेषैरन्यैः सर्वग्रहैर्द्वितनुस्थैर्द्विस्वभावराशिस्थितैः स्ववीर्य-
समन्वितैः बलिभिश्च कोशवेष्टितौ एकजरायुवेष्टितौ यमलौ जायेते ॥ ४ ॥

भाषा—यदि सूर्य चतुष्पद राशि में हो, और शेषग्रह बलवान् होकर द्विस्वभाव
राशि में हो तो एक जरायु में वेष्टित दो सन्तान (जोड़ा) का जन्म होता है ॥४॥

अधुना नालवेष्टितजन्मज्ञानमनुष्टुभाह—

छागे सिंहे वृषे लग्ने तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे ।

राश्यंशसदृशे गात्रे जायते नालवेष्टितः ॥ ५ ॥

छाग इति ॥ छागो मेषः सिंहः प्रसिद्धः वृषो वृषभः एतैः छागसिंहवृषैर्ल-
ग्नस्थितैः एषामन्यतमो यदि लग्नगतो भवति तत्स्थे सौरेऽथवा कुजे तस्मिन्
छागसिंहवृषाणामन्यतमे लग्नगते तत्स्थे तत्रस्थे सौरे शनैश्चरेऽथवा कुजे भौमे
तत्रस्थे नालवेष्टितो जन्तुर्जायते । नालशादेन नाड्यो विधीयन्ते । कस्मिन्नङ्गे
वेष्टित इत्याह । राश्यंशसदृशे गात्रे इति । राशेरंशो राश्यंशः राशेः लग्नस्य यो
नवांशकस्वत्कालमुदितः स च यद्राशिसम्बन्धी स च राशिर्यस्मिन्नङ्गे कालपुरु-
षस्य व्यवस्थितः कालाङ्गानीत्यादिना ग्रन्थेन निरूपितस्तत्सदृशे गात्रे तस्मि-
न्नेवाङ्गे नालवेष्टित इति वक्तव्यम् । तथा च सारावल्याम्—

“सिंहाजगोभिरुदये सूते नालेन वेष्टितो जन्तुः ।

लग्ने कुजेऽथ सौरै राश्यंशसमानगात्रेषु” ॥ ५ ॥

भाषा—मेष, सिंह या वृष लग्न हो, उसमें शनि वा मंगल हो तो लग्न में जिस राशि का नवांश हो उस राशि का जो अंग (कालाङ्गानि इत्यादि प्रकार से) हो उस अंग में नाल से वेष्टित (लपेटा हुआ) जातक का जन्म होता है ॥५॥

अधुना जारजातं वंशस्थेनाह—

न लग्नमिन्दुं च गुरुनिरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समागतम् ।

सपापकोऽर्केण युतोऽथ वा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ॥६॥

न लग्नमिति ॥ गुरुर्जीवो लग्नमुदयमिन्दुं चन्द्रं च यदि न निरीक्षते न पश्यति लग्नचन्द्रावेकराशिस्थौ पृथक्स्थौ वा यदोभावपि गुरुणा न दृश्येते तदा परेण जारेण जात इति निश्चयात्प्रवदन्ति कथयन्ति मुनयः । अत्र यदि लग्नचन्द्रौ जीवभागस्थौ जीवनवांशकस्थौ भवतः तदा न परजात इति वक्तव्यम् । यस्माद्यवनेश्वरः । “अजीवभागेऽप्यनवीक्षिते वा जीवेन चन्द्रेऽथ विलग्नभे वा । जातं परोद्भूतमिति ब्रूवन्ति वाच्यो जनेनाथ वलावलोकात्” इति । न वा शशांकमिति । शशाङ्कं चन्द्रं रविणा सूर्येण समागतं संयुक्तं गुरुं निरीक्षते चन्द्रार्कावेकराशिस्थौ यदि च बृहस्पतिना न दृश्येते तदा परेण जातः । अथवा शशी चन्द्रः सपापकः पापग्रहेण भौमेन सौरिण वा युक्तः तथाविधोऽर्केण सूर्येण यदि युक्तो भवति तथापि परेण जात इति । अत्राप्यन्ये जीवदृष्टयनुवर्ति व्याख्यानं कुर्वन्ति । तदयुक्तम् । यस्माच्चन्द्रार्कावेकराशिगतौ पापयुक्तौ वायुक्तौ वा जीवेन दृश्यमानावदृश्यमानौ वा जारजातजन्मकरौ तत्र चन्द्रार्कयोगः पापेन समेत्य किं कृतं भवति तस्माच्चन्द्रार्कावेकराशिगतौ अपापौ जीवेनादृश्यमानौ सपापौ जीवेन दृश्यमानौ वा जारजातजन्मकरौ निश्चयादवश्यं भवतः । अत्र चन्द्रमा यदि गुरुगृहे तद्द्वेष्काणतन्त्रवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागस्थो भवति अन्यत्र वा राशी गुरुणा युक्तस्तदा न जारजात इति । यस्माद्भगवान्गार्गिः—

“गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तदयुक्ते वान्यराशिगे ।

तद्द्वेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते” ॥ ६ ॥

भाषा—गुरु यदि लग्न और चन्द्रमा को नहीं देखता हो, अथवा सूर्य से युक्त चन्द्रमा हो उसे बृहस्पति नहीं देखता हो, अथवा पापग्रह (शनि या मङ्गल) से युक्त चन्द्रमा यदि सूर्य से भी युक्त हो तो इन तीनों योग में परजात (दूसरे से उत्पन्न) का जन्म कहना चाहिये ॥६॥

विशेष अर्थ—इन योगों में चन्द्रमा यदि गुरु की राशि वा द्वेष्काणादि में हो तो परजात नहीं समझना । यथा भगवान् गार्गि का वचन—“गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तदयुक्ते वान्यराशिगे । तद्द्वेष्काणे तदंशे वा न परैर्जात इष्यते ॥” इति स्पष्टार्थ ॥ ६ ॥

अथ जातस्य पितृबन्धनयोगज्ञानं वैतालीयेनाह—

क्रूरर्क्षगतावशोभनौ सूर्याद्यूननवात्मजस्थितौ ।

बद्धस्तु पिता विदेशगः स्वे वा राशिवशादथो पथि ॥ ७ ॥

क्रूरर्क्षगताविति ॥ क्रूरर्क्षाणि क्रूरग्रहराशयः मेषसिंहवृश्चिकमकरकुम्भाः कृष्णपक्षे क्षीणचन्द्रे कर्कटः पापयुक्ते बुधेऽपि कन्यामिथुने अशोभनौ पापौ शनिभौमौ क्रूरर्क्षगतौ पापक्षेत्रस्थितौ सूर्याद्रवेद्यूननवात्मजस्थितौ द्यूनं सप्तमं, नवमं प्रसिद्धं आत्मजस्थानं पञ्चममेवामन्यतमस्थौ भवतस्तदा जातस्य पिता जनको बद्धो वाच्यः । तस्यादित्याक्रान्तराशिवशाद्वन्धनदेशज्ञानमाह । स्वे वा राशिवशादथो पथीति । चरराशिस्थेऽर्के परदेशे बद्धः स्थिरराशिस्थेऽर्के स्वदेशे, द्विस्वभावे पथि मार्गे एवं राशिवशात्स्थानपरिज्ञानम् । अथो इत्ययं निपातो विकल्पे । केचित् “स्वे वा राशिवशात्तथा पथि” इति पठन्ति ॥ ७ ॥

भाषा—दो पापग्रह यदि पापग्रह की राशि में स्थित होकर सूर्य से ७, ९, १५ इन स्थानों में हो तो जातक के पिता को बद्ध (जेल में बंधा हुआ) समझना चाहिये । सूर्य चरराशि में हो तो विदेश में, स्थिर राशि में हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव में हो तो मार्ग में पिता को बंधा हुआ समझना चाहिये । ७॥

अधुना पोतगताप्रसवज्ञानं वैतालीयेनाह—

पूर्णं शशिनि स्वराशिगे सौम्ये लग्नगते शुभे सुखे ।

लग्ने जलजेऽस्तगेऽपि वा चन्द्रे पोतगता प्रसूयते ॥ ८ ॥

पूर्ण इति ॥ शशिनि चन्द्रे पूर्णं परिपूर्णमण्डले तस्मिन् स्वराशिगे कर्कटस्थिते तथा सौम्ये बुधे लग्नगते उदयस्थे शुभे जीवे उदयात् सुखे चतुर्थे पोतगता नौस्था प्रसूयते इति वक्तव्यम् । तत्रान्ये शुभैः सुख इति पठन्ति । पठित्वा चैवं व्याचक्षते । शुभैरिति बहुवचनं न घटते । लग्ने बुध उक्तः शुक्रबृहस्पती शेषौ शुभाभ्यामित्येवं प्राप्नोति । यत्क्रियते शुभैरिति तस्मादेवमवसीयते । पूर्णश्चन्द्रमाः शुक्रबृहस्पतिभ्यां युक्तो भवति तदा शुभैरिति भवति । एतच्च मेषलग्ने तत्रस्थे बुधे पूर्णचन्द्रे शुक्रबृहस्पतिभ्यां समायुक्ते कर्कटव्यवस्थिते सर्वं युज्यत इति । अयं पाठो मूढव्याख्याने न युक्तः यस्मान्मकरावस्थितेऽर्के कर्कटस्थश्चन्द्रमाः पूर्णो भवति मकरव्यवस्थिते चार्के मकराच्चतुर्थं भवने मेषे बुधस्य सम्भवो नास्ति । किं पुनर्मकरात्सप्तमराशौ कर्कटके शुक्रस्याप्यवस्थानमिति । तस्माच्छुभे इति सुखे इति सप्तम्येकवचनान्त एव पाठो न्याय्यः । शुभे सुख इति । तत्कथं जीवो व्याख्यातः ? उच्यते । बुधो लग्नगतस्तस्माच्चतुर्थे शुक्रस्यावस्थानं न सम्भवति अतो जीव इति व्याख्यातम् । केचित्पूर्वशास्त्रानुसारेणेति शुक्र इच्छन्ति । अथ पोतगताप्रसवयोगो द्वितीयः । लग्ने जलज इति । लग्ने जलजे जलराशौ कर्कटमकरपश्चिमाधेमीनानामन्यतमे तस्मादस्तगे

सप्रमस्थानस्थे चन्द्रे पूर्णे वापूर्णे च पोतगतैव प्रसूयत इति । वाशब्दः प्रकारार्थः ॥ ८ ॥

भाषा—यदि पूर्ण चन्द्रमा कर्क में हो, बुध लग्न में हो, शुभग्रह चतुर्थ में हो तो नौका पर प्रसव होता है । अथवा जलचर राशि लग्न हो, तथा सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो भी नौका पर प्रसव समझना चाहिये ॥ ८ ॥

अथोदकमध्यप्रसवज्ञानं वैतालीयेनाह—

आप्योदयमाप्यगः शशी सम्पूर्णः समवेक्षतेऽथवा ।

मेपूरणबन्धुलग्नगः स्यात्सूतिः सलिले न संशयः ॥ ९ ॥

आप्योदयमिति ॥ आप्यराशयोः मकरपश्चाद्वृक्केमीनास्तेषामन्यतमस्योदय आप्योदयः । जलराशिलगने भवति शशी चन्द्रश्चाप्यगो जलराशिस्थस्तदा सूतिः प्रसवः सलिले जलसमीपे, न संशयः निश्चयाद्वाच्यः । अथवा सम्पूर्णः शशी लग्नगमाप्योदयं समवेक्षते पश्यति तथापि सलिले प्रसूतिः । मेपूरणबन्धुलग्नग इति । अथवाप्यराशिवुदयगते मेपूरणबन्धुलग्नगो मेपूरणे दशमे बन्धुस्थाने चतुर्थे लग्ने प्राग्लगने स्थितः स्याद्वेत्तथापि सलिले प्रसूतिरिति वदेत् । तथा च सारावल्याम्—

“सलिलभलग्नं चन्द्रो जलचरराशौ त्वेक्षते पूर्णः ।

प्रसवं सलिले विद्याद्वन्धूदयदशमगश्च यदा” ॥ ९ ॥

भाषा—पूर्ण चन्द्रमा जलचर राशि में हो और जलचर राशि लग्न को देखता हो तो जल में प्रसव होता है । तथा जलचर राशि में स्थित चन्द्रमा, दशम, चतुर्थ वा लग्न भाव में हो तो भी जल में प्रसव कहना चाहिये ॥ ९ ॥

अधुना बन्धनागारावटयोः प्रसवज्ञानं वैतालीयेनाह—

उदयोदुपयोर्व्ययस्थिते गुप्त्यां पापनिरीक्षते यमे ।

अलिकिंयुते विलग्नगे सौरे शीतकरेक्षितेऽवटे ॥ १० ॥

उदयेति ॥ उदयो लग्नमुदुपश्चन्द्रः तयोर्दुदुपयोरेकराशिस्थयोर्यमे सौरे व्ययस्थिते द्वादशस्थे तस्मिंश्च पापनिरीक्षते गुप्त्यां बन्धनागारे प्रसूयत इति वक्तव्यम् । सौरे शनैश्चरे अलिकिंयुते वृश्चिककुलीयोरन्यतमस्थे विलग्नगे तस्मिंश्च शीतकरेक्षिते चन्द्रदृष्टेऽवटे श्वभ्रे प्रसूतिर्वक्तव्या ॥ १० ॥

भाषा—लग्न में चन्द्रमा हो उससे १२ स्थान में शनि हो और पापग्रह से देखा जाता हो (दृष्ट हो) तो जलखाना में जन्म कहना । तथा वृश्चिक या कर्क में स्थित शनि लग्न में हो और चन्द्रमा से दृष्ट हो तो अवट (गर्त = गड़हे) में जन्म समझना चाहिए ॥ १० ॥

अथ क्रीडागृहदेवालयसोषरभूमिप्रदेशेषु प्रसवज्ञानं वैतालीयेनाह—

मन्देऽजगते विलग्नगे बुधसूर्येन्दुनिरीक्षते क्रमात् ।

क्रीडाभवने सुरालये सोखरभूमिषु च प्रसूयते ॥ ११ ॥

मन्द इति ॥ मन्दे शनैश्चरेऽजगते जलराशिस्थे तथाभूते विलग्नगे प्राग्लग्नस्थे क्रमात्परिपाट्या बुधसूर्येन्दुनिरीक्षिते क्रीडाभवने सुरालये सोम-
रभूमिषु च प्रसूयत इति वदेत् । एतदुक्तं भवति । शनैश्चरे जलराशिस्थे
लग्नगते बुधनिरीक्षिते बुधदृष्टे क्रीडाभवने रतिगृहे प्रसूयते । एवं सूर्यणार्कण
निरीक्षिते सुरालये देवगृहे, इन्दुना चन्द्रेण निरीक्षिते सोमरभूमिषु सवालु-
कास्त्रवनिषु प्रसूयत इति ॥ ११ ॥

भाषा—शनि जलचर राशि में स्थित होकर लग्न में हो और बुध से दृष्ट हो
तो क्रीडा स्थान या क्रीडा भवन में, सूर्य से दृष्ट हो तो देवालय में और चन्द्र से
दृष्ट हो तो ऊषर भूमि में प्रसव कहना चाहिये ॥ ११ ॥

अथ श्मशानरम्यप्रदेशाग्निशालानृपदेवगृहगोकुलशिल्पालय-
प्रसवज्ञानमुपजात्याह—

नृलग्नं प्रेक्ष्य कुजः श्मशाने रम्ये सितेन्दू गुरुरग्निहोत्रे ।

रविर्नरेन्द्रामरगोकुलेषु शिल्पालये ज्ञः प्रसवं करोति ॥ १२ ॥

नृलग्नगमिति ॥ पूर्वश्लोकान्मन्द इत्यनुवर्तन्ते प्रत्यासन्नत्वात् । नृलग्नं
नरराशिलग्नस्थितं नरराशया मिथुनकन्यातुलाधन्विपूर्वार्धकुम्भाः तत्र गतं
शनैश्चरं कुजोऽङ्गारकः प्रेक्ष्य दृष्ट्वा भौमो यदि पश्यति तदा श्मशाने प्रसवं
जन्म करोति । केचिन्नृलग्नदर्शी क्षितिज इति पठति । नृलग्नं पश्यति
तन्त्रज्ञो नृलग्नदर्शी क्षितिजः । रम्ये सितेन्दू इति । नरराशिलग्नं शनैश्चर-
युक्त सितः इन्दुश्चन्द्रो वा पश्यति तथा रम्ये रमणीये प्रदेशे जन्म । एवंविधं
सौरं गुरुर्जीवः पश्यति तथा अग्निहोत्रेऽग्निशालायाम् । एवंविधं सौरिं रविः
पश्यति तदा नरेन्द्रामरगोकुलेषु नरेन्द्रगृहे राजवेशमनि, अमरगृहे, वा गोकुले
गोशालायां वा प्रसूतिः । एवमेव बुधेन दृष्टे सौरे शिल्पालये शिल्पिगृहे
चित्रपुस्तककरवर्धकिप्रभृतीनां शिल्पिनामालये गृहे प्रसूतिरिति । तथा च
सारावल्याम् । “रविजे जलजविलग्ने क्रीडोद्याने बुधेक्षिते प्रसवः । रविणा
देवागारे तथोत्तरे चैव चन्द्रेण ॥ आरण्यभवनलग्ने गिरिवनदुर्गे तथा नर-
विलग्ने । रुधिरेक्षिते श्मशाने शिल्पाकनिलये च सौम्येन” तथा च
वाङ्मयायणः ।

सूर्येक्षिते गोनृपदेववासे शुक्रेन्दुजाभ्यां रमणीयदेशे ।

सुरेज्यदृष्टे द्विजवह्निहोत्रे नरोदये सम्प्रवदन्ति सूतिम् ॥ १२ ॥

भाषा—द्विपदराशि लग्न में स्थित शनि को मंगल देखे तो श्मशान भूमि में,
शुक्र और चन्द्रमा ये दोनों देखें तो रमणीय स्थान में, गुरु देखता हो तो अग्निशाला
में, सूर्य देखता हो तो राजगृह में वा देवालय में अथवा गोशाला में और बुध देखता
हो तो चित्रालय में प्रसव होता है ॥ १२ ॥

अथ प्रसवदेशज्ञानं वैतालीयेनाह—

राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म चरे स्थिरे गृहे ।

स्वर्क्षाशगते स्वमन्दिरे बलयोगात्फलमंशकर्त्तव्योः ॥ १३ ॥

राश्यंशेति ॥ राशिश्च अंशश्च तद्वाश्यंशं राशिर्लग्नराशिरंशो नवांशकः लग्नराशेस्तन्नवांशकस्य वा यः समानः सद्यः स्वात्मीयगोचरो विषयः स्वचराश्च सर्वे इत्यनेन प्रदर्शितः । तत्र यस्मिन्प्रदेशे यो यो राशिरूपः प्राणो संचरति तत्र यो मार्गः पन्थास्तस्मिन्जन्म । यदि चरे लग्नराशिस्तन्नवांशको वा चरे भवति, अथ लग्नराशिस्तन्नवांशको वा स्थिरस्तदा राशिस्वरूपतुल्यस्य प्राणिनः यस्मिन्गृहे यत्र प्रसवे सति तत्स्थाने राशिस्वरूपतुल्यस्य प्राणिनो यद्गृहं समीपस्तत्र प्रसव इत्यर्थः । स्वर्क्षाशगत इति । चरस्य स्थिरस्य द्विस्वभावस्य वा राशेर्लग्नगतस्य स्वर्क्षाश आत्मीयनवांशकोदयो यदा भवति तदा स्वमन्दिरे आत्मीयगृहे एव जन्म वक्तव्यम् । तत्र राश्यंशसमानगोचरे मार्गे जन्म इत्यादि सामान्येनोक्तं तत्र ज्ञायते किं लग्नराशिसमानगोचरे किमंशसमानगोचरे प्रसवादेशः । क्रियतां तदर्थमयं निश्चयः । बलयोगादिति । अंशको नवांशकः ऋक्षं राशिः अनयोर्बलयोगात्फलं प्रसवस्थानज्ञानम् । एतदुक्तं भवति । लग्नराशेर्नवांशकराशेश्च यो बलवांस्तत्समानगोचरेपु मार्गगृहसमीपेषु प्रसवो वक्तव्यः । अत्र पूर्वोक्तयोगाभावे राश्यंशसमानगोचरमार्गादिषु प्रसवो वक्तव्यः । तेषां सम्भवे योगोक्तप्रदेशेष्वेव प्रसवो वक्तव्यः ॥ १३ ॥

भाषा—लग्न की राशि वा नवांश के सद्यः प्रदेश में जन्म कहना अर्थात् “स्वचराश्च सर्वे” इस प्रकार से जिस राशि के जो स्थान हैं उस प्रकार के स्थान में प्रसव कहना । यदि लग्न या नवांश चर हो तो मार्ग में, स्थिर हो तो घर में जन्म कहना । यदि लग्न में अपने ही नवांश हो तो अपने ही घर में जन्म कहना चाहिये । तथा लग्न और नवांश की राशियों में जो बली हो उसके सद्यः स्थान में ही प्रसव समझना चाहिये ॥ १३ ॥

अथ यस्मिन्योगे जातो मात्रा त्यज्यते, यस्मिंश्च योगे जातस्त्यक्तोऽपि

मात्रा दीर्घायुः सुखी च भवति तद्योगद्वयं वैतालीयेनाह—

आरार्कजयोस्त्रिकोणगे चन्द्रेऽस्ते च विसृज्यतेऽम्बया ।

दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा दीर्घायुः सुखभाक्च स स्मृतः ॥ १४ ॥

आरार्केति ॥ चन्द्रे शशिन्यारार्कजयोर्भौमसौरयोरेकराशितयोस्त्रिकोणगे नवमस्थे पञ्चमस्थे वाऽस्ते च सप्तमे स्थाने स्थिते जातोऽम्बया मात्रा विसृज्यते त्यज्यते । एवंविधे योगे चन्द्रमसि अमरराजमन्त्रिणा गुरुणा दृष्टे मात्रा त्यक्तोऽपि परहस्तगतोऽपि दीर्घायुः चिरजीवी सुखभाक्च भवति ॥ १४ ॥

भाषा—मंगल और शनि दोनों एक राशि में हो उससे त्रिकोण (१।५) वा सप्तम में शनि हो तो उस जातक को माता त्याग कर देती है। किन्तु चन्द्रमा को गुरु देखता हो तो माता से त्यक्त होने पर दीर्घायु और सुखभागी होता है ॥१४॥

अथ यस्मिन्योगे जातो मात्रा त्यक्तो विनश्यति तद्वसन्ततिलकेनाह—

पापेक्षिते तुहिनगावुदये कुजेऽस्ते त्यक्तो विनश्यति कुजार्कजयोस्तथाये ।
सौम्येऽपि पश्यति तथाविधहस्तमेति सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः १५

पापेक्षित इति ॥ तुहिनगौ चन्द्रे पापेक्षिते पापग्रहदृष्टे सौरेणार्कण वेत्यर्थः । तथाभूते उदये लग्ने स्थिते कुजे भौमे चास्ते सप्तमस्थाने जातो मात्रा त्यक्तो विनश्यति म्रियत इत्यर्थः । कुजार्कजयोरिति । तथा तेनैव प्रकारेण लग्नगते चन्द्रमसि पापेक्षिते सूर्यदृष्टे कुजार्कजयोर्भौमशानैश्चरयोराये लग्नादेकादशे स्थितयोर्जातो मात्रा त्यक्तोऽपि विनश्यति म्रियत इत्यर्थः । सौम्येऽपि पश्यति । पूर्वोक्तयोगस्थे चन्द्रमसि पापदृष्टे सौम्ये शुभग्रहेऽपि पश्यति सति जातो मात्रा त्यज्यते त्यक्तोऽपि यादृग्वर्णप्रभुणा सौम्यग्रहेण चन्द्रमसा दृष्टस्तथाविधस्य हस्तमेति, तादृग्वर्णस्य ब्राह्मणादेर्हस्तं गच्छति तेन धार्यते जीवति च । अथास्मिन्नेव योगे स्थितश्चन्द्रमाः पापेन कुजेन सौरेण वा दृश्यतेऽन्येन सौम्यग्रहेण च दृश्यते तदा जातस्तयोर्द्रष्टृग्रहयोर्यो बलवान्तादृग्वर्णस्य ब्राह्मणादेर्हस्तङ्गतोऽपि विनश्यति । यदुक्तम् । ‘सौम्येतरेषु परहस्तगतोऽप्यनायुः’ इति । ननु यथा योगस्थे चन्द्रमसि सौम्यैः पापैश्च दृश्यमाने मात्रा त्यक्तो विनश्यतीत्यभिहितं तत्र क्षत्रियवैश्यशूद्रवर्णसंकरादिषु हस्तगतः सर्व एव विनाशमानोति । बह्वश्च मात्रा त्यक्ताः क्षत्रियादिवर्णसङ्करगताश्च जीवमाना दृश्यन्ते तस्मात्पूर्वश्लोकात् “दृष्टेऽमरराजमन्त्रिणा दीर्घायुः सुखभाक् च स स्मृतः” इत्येतदिह शेषभूतमवगन्तव्यम् । तस्माद् बुधेन शुक्रेण वा यथादृशितयोगस्थश्चन्द्रमा दृश्यते जीवेन न दृश्यते तदा परहस्तगतोऽपि म्रियते । यदा पापेन सौम्येन वा दृश्यमानोऽपि जीवेन दृश्यते तदा द्रष्टृग्रहयोर्बलवशात्तद्वर्णस्य ब्राह्मणादेर्हस्तगो जीवति । तथा च सारावल्याम्—

“म्रियते पापैर्दृष्टे शशिनि विलग्नो कुजेऽस्तगो त्यक्तः ।

लग्नाच्च लाभगतयोर्वसुधासुतमन्दयोरेवम् ॥

पश्यति सौम्यो बलवान्यादृग्गृह्णाति तादृशो जातम् ।

शुभपापग्रहदृष्टे परैर्गृहीतोऽप्यसौ म्रियते ॥

सर्वेष्वेतेषु यदा योगेषु शशिसुरेज्यसन्दृष्टः ।

भवति तथा दीर्घायुर्हस्तगतः सर्ववर्णेषु” ॥ १५ ॥

भाषा—पापग्रह से दृष्ट चन्द्रमा लग्न में हो और उससे ७वें मंगल हों तो वह जातक माता से त्यक्त हो कर मर जाता है । तथा पापग्रह चन्द्रमा एक राशिगत शनि मंगल से ११वें भाव में हो तो भी जातक माता से त्यक्त हो कर मर जाता है ।

और यदि शुभ ग्रह चन्द्रमा को देखता हो तो वह शुभ ग्रह जिस वर्ण का स्वामी हो तो उसी वर्ण के पुरुष या स्त्री के हाथ में वह बालक जाता है । यदि चन्द्रमा सौम्यतर (पापग्रह) से दृष्ट हो और उसे वृहस्पति न देखता हो तो अन्य के हाथ में जाने पर भी मर जाता है ॥१५॥

अधुना प्रसवगृहज्ञानं वेतालीयेनाह—

पितृमातृगृहेषु तद्वलात्तरशालादिषु नीचगैः शुभैः ।

यदि नैकगतैस्तु वीक्षितौ लग्नेन्दु विजने प्रसूयते ॥ १६ ॥

पितृमातृगृहेष्विति ॥ पितृमातृग्रहा दिवार्कशुक्रावित्यादीनोक्तास्तद्वला-
त्पितृमातृग्रहबीर्यात्पितृमातृगृहेषु प्रसूयत इति वदेत् । तत्रार्कशनैश्चरयोरन्यतमे
वल्लवति पितृगृहे पितृष्वसृपितृव्यादिसम्बन्धिगृहे प्रसूतिः । तरशालादिषु
नीचगैः शुभैरिति । बहुवचनात्सर्व एव शुभग्रहाः यदा नीचस्था भवन्ति
तदा तरुषु वृक्षेषु शालासु प्रसवो वाच्यः । आदिग्रहणान्नदीकूपारामपर्वता-
दिदेशेष्वनादृतेषु इति । यदि नैकगतैरिति । नीचगैः शुभैरित्यनुवर्तते । सर्वे
शुभग्रहाः नीचगतास्तैर्लग्नेन्दू उद्भूतवृद्धावुभावप्येकराशिगतैर्ग्रहैर्बहुवचनात्त्रि-
प्रभृतिभिर्द्यदा न दृश्येते तदा विजने जनरहिते स्थानेऽटव्यां प्रसूतिरिति ।
यदा पुनरेकैर्बहुभिर्ग्रहैर्लग्नेन्दू दृश्येते तदा जनाकीर्णं प्रसूतिरिति । तथा च
सारावल्याम्—

“पितृमातृग्रहवर्गे तत्स्वजनगृहेषु बलयोगात् ।

प्राकारतरुनदीषु च सूतिर्नीचाश्रितैः संस्थैः ॥

नेक्षते लग्नेन्दू यद्येकस्था ग्रहास्तदाटव्याम्” ॥ १६ ॥

भाषा—(अध्याय ४ श्लोक ५ में “दिवार्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ” इत्यादि जो
ग्रह कहे गये हैं) उनमें जो ग्रह बली हो तदनुसार पिता या माता आदि के घर में
जन्म कहना । यदि सभी शुभ ग्रह नीचस्थ हों तो तरशाला (वन, वाटिका आदि)
में जातक का जन्म कहना । तथा सब शुभ ग्रह किसी एक स्थान में रह कर लग्न
और चन्द्रमा को नहीं देखते हों तो निर्जन स्थान में जन्म समझना चाहिये ॥१६॥

अधुना दीपसम्भवासम्भवभूप्रदेशप्रसवज्ञानं गर्भमोक्षं मातुः सूतिकाले
तन्निमित्तक्लेशज्ञानं च मन्दाक्रान्तयाह—

मन्दर्क्षाशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा

तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ ।

यद्वद्राशिर्त्रजति हरिजं गर्भमोक्षस्तु तद्वत्

पापैश्चन्द्रस्मरसुखगतैः क्लेशमाहुर्जनन्याः ॥ १७ ॥

मन्दर्क्षाश इति ॥ शशिनि चन्द्रे यत्र तत्र राशौ मन्दर्क्षाशे शनैश्चरस्य
जन्मभागे मकरकुम्भयोरन्यतमांशस्थे तमस्यन्धकारे सूतिकाशयनं वक्तव्यम् ।

हिबुके लग्नाच्चतुर्थस्थे चन्द्रेऽन्धकार एव शयनम् । यत्र तत्रावस्थिते चन्द्रे मन्देन दृष्टेऽन्धकार एव । अञ्जगे वेति । अञ्जराशी अत्र कर्कटमीनौ द्वौ विज्ञेयौ मकरकुम्भयोरुक्तत्वात् । मन्दर्क्षाश इत्यादिनेति । तेन यत्र यत्र राशौ कर्कट-नवांशकस्थे चन्द्रे तमस्यन्धकार एव मीननवांशकस्थे वा तमस्यन्धकार एव । तद्युक्ते वेति । तदिति सौरः परामृश्यते । यत्र तत्रावस्थिते चन्द्रे सौरयुक्तेऽन्ध-कार एव निपेककाले नारीशयनमपि । सर्वेष्वेतेषु योगेषु यदार्कदृष्टश्चन्द्रमा भवति तदान्धकाराभावः । यस्माद्यवनेश्वरः । “सौरांशकस्थे शशिनि प्रलग्ने जले जलाख्यांशकमाश्रिते वा । स्वांशस्थिते केन्द्रगतेऽर्कजे वा जातस्तमिस्त्रे यदि नार्कदृष्टः” । अन्येषां सूर्ये बलवति भौमेन दृष्टे सत्स्वपि योगेष्वन्धकारा-भावाः । तथा च सारावल्याम् । “बलवति सूर्ये दृष्टे बहुप्रदीपा धरा कुपुत्रेण । अन्यैर्व्यपगतवीर्यैः सूतौ ज्योतिस्तृणैर्भवति ॥ सौरांशे जलजांशे चन्द्रेऽर्कयुते-ऽथवा हिबुके । तद्दृष्टे वा कुर्यात्तमसि प्रसवं न सन्देहः” । नीचस्थैश्च भूमाविति । शयनमित्यनुवर्तते । बहुवचनाद्यथासम्भवे त्रिप्रभृतिभिर्गर्भैर्नीच-स्थैर्भूमौ शयनं वाच्यम् । भूशब्देनात्र तृणास्तृता भूर्ज्ञेया । केचिल्लग्नस्थे चतु-र्थस्थे वा नीचगते चन्द्रे भूशयनमिच्छन्ति । तथा च सारावल्याम् । “नीचस्थे भूशयनं चन्द्रेऽप्यथवा सुखे विलम्बे वा” । यद्वदिति । प्रसवलप्रराशिर्यद्वद्येन प्रकारेण हरिजं व्रजत्युदयलेखां परित्यजति तद्वत्तेनैव प्रकारेण नार्या गर्भमोक्षो वाच्यः । यत्राकाशं भूम्या सह संसक्तं समन्ताद् दृश्यते तद्वरिजम् । उक्तं च । “हरिजमिति गगनमवनौ सम्पृक्तमिव लक्ष्यते यथाक्तेषु” तद्यथा । शीर्षोदयेषु लग्नेषूत्तानास्योदरं दर्शयतो गर्भस्य मोक्षो वाच्यः । पृष्ठोदयेष्वधोमुखस्य पृष्ठं दर्शयतः । मीनोदये पार्श्वं दर्शयतः । तथा च सारावल्याम् । “शीर्षोदये विलम्बे मूर्ध्ना प्रसवोऽन्यथोदये चरणैः । उभयोदये च हस्तैः शुभदृष्टे शोभनोऽन्यथा कष्टः” केचिदेवं व्याचक्षते । यथा लग्नाधिपो नवांशकाधिपो वा ग्रहो वक्री भवति तदा वैपरीत्येन गर्भमोक्षो भवति । तथा च मणित्थः । “लग्नाधिपेऽ-शकपतौ लग्नस्थे वक्रिते ग्रहेऽप्यथवा । विपरीतगतो मोक्षो वाच्यो गर्भस्य संक्लेशः” । पापैरिति । पापग्रहैश्चन्द्रगतैः शशिना सह व्यवस्थितैः स्मरगतैर्ल-ग्नान्धकारस्थैर्वा । सुखगतैर्लग्नाच्चतुर्थस्थैर्वा प्रसवकाले जनन्या मातुः क्लेशमाहुः कष्टं कथयन्ति सूरयः । तथा च सारावल्याम्—

“क्लेशो मातुः क्रूरैर्बन्ध्वस्तगतैः शशाङ्कयुक्तैर्वा” ॥ १७ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा शनि की राशि (मकर, कुम्भ) के नवांश में हो, या चतुर्थ स्थान में हो, शनि से देखा जा रहा हो, या शनि से युक्त हो तो अन्धेरे स्थान में प्रसूति का शयन कहना । यदि ३ से अधिक ग्रह नीच में हों तो भूमि में प्रसूति का शयन समझना । और लग्नराशि जिस प्रकार क्षितिज में उदित होता है उसी प्रकार गर्भ का मोक्ष (गर्भस्थ बालक का जन्म) होता है । तथा चन्द्रमा से ७१४ स्थान में पापग्रह हो तो माता को प्रसव काल में कष्ट होता है ॥१७॥

विशेष अर्थ—अन्धकार प्रसव योग में शनि को सूर्य देखता हो तो अन्धकार नहीं कहना । यथा—यवनाचार्य—

“सौरांशकरस्थे शशिनि प्रलग्ने—

जले जलाख्यांशकमाश्रिते वा ।

स्वांशस्थिते केन्द्रगतेऽर्कजे वा

जातस्तमिस्त्रे यदि नार्कदृष्टः ॥

तथा—शीर्षोदय लग्न में जातक का भी प्रथम शीर्षोदय (अर्थात् गर्भ से प्रथम मस्तक का ही उदय) होता है । पृष्ठोदय में प्रथम पैर का उदय और उभयोदय में प्रथम हाथ का उदय होता है । यथा सारावली में—

“शीर्षोदयविलम्बे मूर्ध्ना प्रसवोऽन्यथोदये चरणैः ।

उभयोदये च हस्तैः शुभदृष्टे शोभनोऽन्यथा कण्ठम् ॥ इति ॥

अथ दीपगृहद्वारज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

स्नेहः शशाङ्कादुदयाच्च वर्तिर्दीपोऽर्कयुक्त्तर्क्षवशाच्चराद्यः ।

द्वारं च तद्वास्तुनि केन्द्रसंस्थैर्ज्ञेयं ग्रहैर्वीर्यसमन्वितैर्वा ॥ १८ ॥

स्नेहः शशाङ्कादिति ॥ शशाङ्काच्चन्द्रात्स्नेहो वाच्यः । जन्मकाले पूर्णं चन्द्रे स्नेहेन पूर्णं दीपभाजनं वक्तव्यम् । क्षीणे क्षीणस्नेहाक्तमिति । तथा यद्येवं तदामावास्यायां सर्वेषामन्धकारे प्रसवो भवति । तस्मादयुक्तमेतत् । तेन यत्र राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तत्र यदि राशिप्रारम्भे स्थितो भवति तदा दीपभाजनं स्नेहेन पूर्णं वक्तव्यम् । यत्र राश्यवसाने स्थितस्तत्र स्नेहाक्तम् । मध्यप्राप्तेऽर्धम् । अन्यत्रानुपातादिति । उदयाच्च वर्तिः उदयाल्लग्नानाद्वर्तिरादेश्या । लग्नारम्भे तत्क्षणादन्ता वर्तिरादेश्या । मध्ये अर्द्धदग्धा वर्तिः । लग्नावसाने वर्तिदाहो वाच्यः । अन्तरेऽनुपातः । तथा च सारावल्याम् । “यावल्लग्नानादुदितं वर्तिर्दग्धा तु तावती भवति ॥” दीपोऽर्कयुक्त्तर्क्षवशादिति । अर्को रविस्तद्यक्तराशिवशाच्चराद्यो दीपो वाच्यः । तत्र चरराशिव्यवस्थितेऽर्के सञ्चार्यमाणो दीप आदेश्यः । स्थिरराशिस्थेऽर्के एकदेशस्थः । द्विस्वभावस्थेऽर्के चलितप्रतिष्ठित इति । केचिद्वदन्ति । यथा यस्मिन्नाशाबर्कः स्थितः स राशिर्यस्यां दिशि स्थितः प्रागादीशाः क्रियवृषण्युक्कर्कटेत्यादिना प्रदर्शितस्तस्यां दिशि दीप आदेश्यः । अन्ये एवं वदन्ति । यथा यस्यां दिशि अर्को भ्रमवशेनाष्टप्रहरकल्पनयाष्टासु दिक्षु परिभ्रमति तेनैव क्रमेण यस्यां दिशि व्यवस्थितस्तस्यां दिशि गृहस्य दीपस्थानमिति । तथा च सारावल्याम् । “द्वादशभागविभक्ते वासगृहेऽवस्थिते सहस्रांशौ । दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले” । अत्र प्राच्यादिक्रमेण गृहं द्वादशधा विभज्य मेषादिगणनयार्कराशिर्यत्र भवति तत्र दीपस्थानमिति । केचिल्लग्नस्य यादृशो वर्णस्तादृशवर्णो दीपवर्तिमिच्छन्ति । तथा च मणिस्थः । “लग्नस्य योऽत्र वर्णो निर्दिष्टस्तेन वर्तिरादेश्या” । द्वारं च तद्वास्तुनीति । सूति-

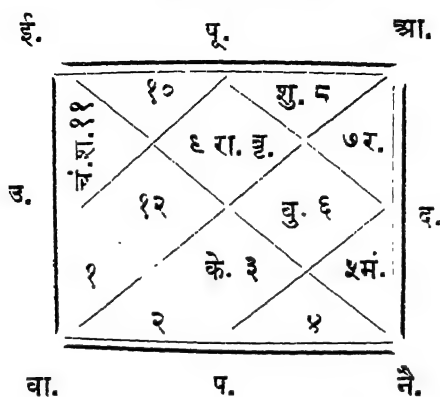
कागृहे लग्नार्केन्द्रस्थैर्ग्रहैर्द्वारादेशः कार्यः । यस्य ग्रहस्य या दिक्प्राच्याद्या रवि-
शुक्रलोहिततम इत्यादिनोक्ताः तद्दिगभिमुखं सूतिकागृहं वक्तव्यं बहुषु केन्द्रेषु
बलवद्ग्रहवशात् । शून्येषु केन्द्रेषु तल्लग्नराशिवशात् लग्नस्य या दिक्तदभि-
मुखम् । यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम् । “द्वारं वास्तुनि केन्द्रेपगताद्ग्रहादसति
चा विलग्नर्क्षात्” अन्ये वदन्ति । यथा । “लग्नद्वादशभागराशिदिगभिमुखं
सूतिकागृहद्वारम्” तथा च मणित्थः । “लग्ने यो द्विरसांशस्तदभिमुखं सूतिका-
गृहे द्वारम्” एतच्च संवादेनापि दृष्टमिति । वीथेसमन्विताद्ग्रहाद्गृहद्वारं
वदेत् । तथा च सारावल्याम् । “वासगृहोद्यानगतं द्वारं दिक्पालकाद्बलो-
पेतात्” इति ॥ १८ ॥

भाषा—चन्द्रमा के अंशानुसार दीप में तेल का प्रमाण समझना चाहिये, अर्थात्
चन्द्रमा राशि के प्रारम्भिक अंश में हो तो दीप में तेल भरा हुआ समझना । यदि
चन्द्रमा राशि के अन्तिम अंश में हो तो तेल का भी अभाव समझना । बीच में जितने
अंश हो उसी अनुपात से तेल का भी प्रमाण समझना चाहिये । तथा उदय (लग्न)
के अंश से वक्तिका का प्रमाण भी इसी प्रकार समझना । तथा सूर्य जिस राशि में हो
तदनुसार दीप को भी चर, स्थिर जानना (अर्थात्) सूर्य चर राशि में हो तो दीप को
भी चलायमान, और स्थिर राशि में हो तो दीप भी स्थिर तथा द्विस्वभाव के पूर्वार्ध
में हो तो दीप भी स्थिर और उत्तरार्ध में हो तो दीप को चलायमान समझना और
जिस दिशा की सूर्य राशि हो उसी दिशा में सूतिका गृह में दीप समझना चाहिये ।
और केन्द्र स्थित ग्रहों से सूतिका गृह का द्वार समझना; यदि केन्द्र में बहुत से ग्रह
हो तो जो ग्रह सब से बली हो उस ग्रह की दिशा में सूतिका गृह का द्वार समझे;
और यदि केन्द्र में कोई ग्रह न हो तो लग्न राशि की दिशा में द्वार समझना
चाहिये ॥ १८ ॥

विशेष अर्थ—जन्मलग्न कुण्डली में प्रथम लग्न पूर्व दिशा, दशम लग्न दक्षिण
दिशा, सप्तम भाव पश्चिम दिशा और चतुर्थ लग्न को उत्तर दिशा समझना । जिस
केन्द्र में ग्रह बली हो उस दिशा में सूतिका गृह का द्वार कहना । अनेकों केन्द्र में ग्रह
बली हो तो अनेक दिशा में द्वार कहना । यदि केन्द्र में ग्रह न हो तो लग्न राशि
जिस दिशा की हो उस दिशा में प्रसूति के घर का द्वार कहना ।

बहुत से टीकाकारों का यह भी अभिप्राय है कि केन्द्र में जो ग्रह बली हो उस ग्रह
की दिशा में सूतिका गृह का द्वार कहना चाहिये । यथा लघुजातके में “द्वारं वास्तुनि
केन्द्रेपगताद् ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात् ।” स्पष्टार्थ । द्वादश, लग्न और द्वितीय भाव
(१२।१२ ये) पूर्व में; ३, ४, ५ भाव ये उत्तर में; ६।७।८ ये भाव पश्चिम में; तथा
९, १०, ११ ये भाव सर्वदा दक्षिण दिशा में रहते हैं । “दीपोऽर्कयुक्तवशात्” इसका
अभिप्राय यह है कि लग्नादिद्वादश भाव के अनुसार सूर्य जिस दिशा में हो उस दिशा
में दीप समझना चाहिये । तथा—“प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विभूतयः”

इस वचन के अनुसार सूर्य की भावगति दिशा में जो राशि पड़े उस राशि के चरस्थिर आदि वश दीप को भी चर या स्थिर समझना चाहिये । न कि सूर्य जिस राशि में हो



तदनुसार । क्योंकि सूर्य १ राशि में १ मास रहता है । उसके अनुसार तो संसार भर में एक मास तक दीप की स्थिति सर्वत्र एक ही होगी जो प्रत्यक्ष असम्भव है ।

प्रसङ्गवश कुण्डली में विदिशा का विचार—लग्न कुण्डली देखने से मालूम पड़ता है कि दो दो भाव दिशा में और एक एक भाव विदिशा (कोण) में रहता है । जैसे द्वादशभाव का भोग्यांश (उत्तरार्ध), प्रथम भाव तथा द्वितीय भाव का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) पूर्व दिशा में । तथा द्वितीय भाव का उत्तरार्ध और तृतीय भाव का पूर्वार्ध (ये दोनों मिलकर १ भाव) ईशानकोण में । एवं तृतीय भाव का उत्तरार्ध, चतुर्थ भाव सम्पूर्ण और पञ्चम भाव का पूर्वार्ध (ये मिल कर २ भाव) उत्तर में । पञ्चम का उत्तरार्ध और षष्ठम का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) वायव्यकोण में । षष्ठम का उत्तरार्ध, सप्तम सम्पूर्ण और अष्टम का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) पश्चिम में । अष्टम का उत्तरार्ध और नवम का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) नैऋत्य में । नवम का उत्तरार्ध, दशम सम्पूर्ण और एकादश का पूर्वार्ध (ये मिलकर २ भाव) दक्षिण में । एवं एकादश का उत्तरार्ध और द्वादश भाव का पूर्वार्ध (मिलकर १ भाव) अग्निकोण में समझना चाहिये ॥१८॥

इस प्रकार जन्मकाल में सूर्य जिस भाव में हो उस दिशा में दीपक समझना चाहिये ।

यथा सारावली—“द्वादशभागविभक्ते वासगृहेऽवस्थिते सहस्रांशौ । दीपश्चर-स्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले ॥”

जैसे—प्रथम तो इष्टकाल से दिन वा रात्रि समय सपन्न कर दीप का विचार करना चाहिये । क्योंकि दिन में प्रायः दीपक नहीं जलाया जाता है । कदाचित् घर में अन्धकार रहता है तभी लोग दिन में दीपक जलाते हैं । यदि इष्टकाल नहीं मालूम हो तो कुण्डली में रवि से आगे ६ राशि के भीतर लग्न हो तो दिन में; अन्यथा रात्रि

में जन्म समझना चाहिये। यहाँ जन्मलग्नकुण्डली में रवि से आगे ६ राशि के भीतर ही लग्न है इसलिए दिन में ही जन्म हुआ। यदि दीपक का प्रश्न हो तो रवि एकादश भावके पूर्वार्धमें हैं इसलिये दक्षिण भागमें दीपक का स्थान सिद्ध होता है। तथा “प्राच्यादिगृहे क्रियादयो” इत्यादि श्लोकानुसार एकदश भाव का पूर्वार्ध कुम्भ राशि है, वह स्थिर है अतः दीप एक स्थानमें स्थिर था। एवं चन्द्रमा = (१०।१३।२५।४३) कुम्भराशि के १४ वाँ अंश में है अतः आधा से कुछ कम तेल जल चुका था। तथा लग्न (८।५।१०।१७) के केवल ५ हो अंश भुक्त हुये हैं इस लिये दीपक में बत्ती का पष्ठांश मात्र जल चुका था, ऐसा समझना। तथा लग्न में वृहस्पति और दशम में बुध अपने अपने राशिस्थ हैं। परञ्च वृहस्पति में “दिक्षु बुधाङ्गिरसौ” इस वचन से दिक्बल भी प्राप्त है। इसलिये इन दोनों में वृहस्पति बली है। अतः लग्न की दिशा पूर्व अथवा मतान्तर से वृहस्पति की दिशा (ईशान कोण = उत्तर) में प्रसूतिका गृह का द्वार सिद्ध होता है। मेरी समझ से जिस केन्द्र में बली ग्रह हो या अधिक ग्रह हों उसी दिशा में द्वार समझना। क्योंकि ग्रह तो कोण दिशा का भी विपत्ति होता है। परञ्च कोण में द्वार बनाना व्यवहार नहीं है। एवं देश, काल और कुल के अनुसार दीप की स्थिति आदि भी समझना। क्योंकि जिस मकान में बिजली फिट की गई हो वहाँ तो दीप को स्थिर ही कहना चाहिये। इस प्रकार के विचार लग्न की शुद्धता के लिये ही किये जाते हैं ॥१८॥

अधुना सूतिकागृहस्वरूपज्ञानं शार्दूलयिक्रीडितेनाह—

जीर्णं संस्कृतमर्कजे क्षितिसुते दग्धं नवं शीतगौ
काष्ठाढ्यं न दृढं रवौ शशिसुते तन्नैकशिल्प्युद्भवम् ।
रम्यं चित्रयुतं नवं च भृगुजे जीवे दृढं मन्दिरं
चक्रस्थैश्च यथोपदेशरचनां सामन्तपूर्वा वदेत् ॥ १६ ॥

जीर्णं संस्कृतमिति । वीर्यसमन्वितादित्यनुवर्तते । सर्वग्रहेभ्योऽर्कजे सौरे वीर्यवति सबले जीर्णमिति चिरन्तनं भूयः संस्कृतं सूतिकागृहं वक्तव्यम् । क्षितिसुते भौमे बलवत्यग्निना दग्धं शीतगौ चन्द्रे नवं शुक्लपक्षे उपलिप्तं वदेत् । यस्माद्यवनेश्वरः । “संवर्धता चन्द्रमसोपलिप्तम्” इति । काष्ठाढ्यं न दृढं रवाविति । रवावादित्ये काष्ठाढ्यं दारुबहुलं न दृढमसारं शशिसुते बुधे तद्गृहमनेकशिल्प्युद्भवं बहुविधशिल्पिरचितम् । रम्यं चित्रयुतमिति । भृगुजे शुक्रे रमणीयं मनोरमं च परं नवं नूतनं चित्रयुतं चित्रकर्मयुक्तम् । जीवे गुरौ दृढं चिरकालस्थायि । चक्रस्थैर्भचक्राधिरूढैर्गृहदातृग्रहसमीपस्थैरन्यैर्ग्रहैः सामन्तपूर्वा समन्तात्सर्वदिक्षु यथोपदिष्टां वदेद् ब्रूयात् । सामन्तपूर्वां प्रतिवेशिम-
कवेशमनां समन्तात्क्रमेणेत्यर्थः । यथा गृहदातृग्रहस्य पुरतः पश्चाद्वा पार्श्व-

योर्वाऽन्ये ग्रहा व्यवस्थितास्तेनैव क्रमेण सूतिकागृहस्यान्यानि प्रतिवेश्म-
गृहाणि वाच्यानि । अन्ये सामन्तपूर्वामिति पठन्ति । समन्ताद्गृहपर्यन्तपूर्विकां
रचनामिति । यथा च सारावल्याम् । “भवनग्रहसंयोगैः प्रतिवेशमाश्विन्त-
नीयाश्च । देवाल्यांबुपावककोशविहाराद्यवस्करस्थानम् । निद्रागृहं च भारकर-
शशिकुजगुरुभार्गवार्किबुधयोगान्” । अत्राचार्येण भूमिकाप्रमाणं नोक्तं
त्रिशाल-द्विशालज्ञानं च तदुच्यते । वृहस्पतौ ककेटस्थे परमोच्चवाद् भ्रष्टे लग्नाद्-
शमगे द्विभूमिकमुच्चभागेष्वर्वाविस्थिते त्रिभूमिकम् । उच्चभागस्थे चतुर्भू-
मिकं धनुषि सबले दशमस्थानस्थे गुरौ त्रिशालं तद्गृहम् । मिथुनकन्यामीनग्न्य-
द्विशालम् । उक्तं च स्वल्पजातके—

“गुरुर्गुह्ये दशमस्थे द्वित्रिचतुर्भूमिकं करोति गृहम् ।

धनुषि सबले त्रिशालं द्विशालमन्येपु यमलोषु ॥” १६ ॥

भाषा—जन्मकाल में यदि सब ग्रहों की अपेक्षा शनैश्चर बलवान् हो तो संस्कार
(मरम्मत) किया हुआ पुराना सूतिका गृह समझना चाहिये । मङ्गल बली हो तो
जला हुआ, चन्द्रमा बली हो तो नवीन, रवि बली हो तो बहुत कष्टों से युक्त होने पर
भी कमजोर, बुध बली हो तो बहुत कारीगरों से बनाया हुआ, शुक्र बली हो तो सुन्दर
चित्रों से सुसज्जित और नवीन, तथा वृहस्पति बली हो तो बहुत दृढ़, सूतिका घर
कहना चाहिये । तथा जन्मलग्न कुण्डली में स्थित ग्रहों के अनुसार सूतिका गृह के
चारों दिशाओं में आसपास के मकानों का स्वरूप कहना चाहिये ॥१९॥

विशेष अर्थ—अभिप्राय यह है कि जो ग्रह सबसे बली हो उस ग्रह के अनुसार
उक्त प्रकार का सूतिका गृह का स्वरूप समझना । तथा उस गृह से जिस भाग में
जो गृह हो उस भाग में उस गृह के सदृश उक्त रीति से अन्य भवनों का स्वरूप भी
समझना चाहिये ।

उदाहरण—जैसे उक्त कुण्डली में सबसे बली वृहस्पति है । अतः प्रसूतिका घर नूतन
मजबूत है । तथा उसके बाएँ भाग (पिछवाड़े की ओर) शुक्र पड़ता है इसलिये उधर
मनोहर चित्रों से युक्त नवीन भवन समझना । तथा वृहस्पति के बाएँ भाग में रवि,
बुध और मङ्गल हैं अतः उधर एक मकान काष्ठों से युक्त किन्तु, अदृढ़, दूसरा अनेक
कारीगरों से बनाया हुआ तथा तीसरा कुछ जला हुआ मकान कहना । एवं गुरु से दाहिने
भाग में चन्द्रमा और शनि है इसलिये सूतिका गृह के दाहिने भाग में १ नवीन और
दूसरा मकान पुराना भी है ऐसा कहना चाहिये ।

विशेष ध्येय—अपने से सप्तम सम्मुख, दशम भाव वाम, चतुर्थभाव दाहिने भाग में
तथा साथ में रहने वाला ग्रह पृष्ठ भाग में समझा जाता है । इस प्रकार सब से
बली ग्रह से सूतिका गृह तथा उसके आगे पीछे अन्य ग्रहों की स्थिति से अन्य गृहों का
स्वरूप समझना चाहिये ॥१९॥

अथ समस्तवारुनि क सूतिकागृहमिति तद्विज्ञानं दोधकेनाह—

मेषकुलीरतुलालिघटैः प्रागुत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु ।

पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ ॥२०॥

मेपेति ॥ मेषः प्रसिद्धः कुलीरः कर्कटः तुला तुल एव अलिघृश्चिकः घटः कुम्भः एषामन्यतमे लग्ने वास्तुनि प्राग्भागे निवासः सूतिकास्थानं वक्तव्यम् । अंशे वा । उत्तरतो गुरुसौम्यगृहेषु गुरुगृहे धन्विमीनौ सौम्यगृहे मिथुनकन्ये एनेषु लग्नेषु तदंशकेषु चोत्तरतो वास्तुनि सूतिकागृहं वाच्यम् । वृषेण तदंशकेन च गृहपश्चिमभागे सूतिकागृहम् । मृगसिंहौ मकरकेसरिणौ दक्षिणभागकराविति । दक्षिणभागे सूतिकागृहं कुरुतः ॥ २० ॥

भाषा—मेष, कर्क, तुला, वृश्चिक और कुम्भ लग्न हो तो घर के पूर्व भाग में सूतिका निवास समझना चाहिये । धनु, मीन, कन्या या मिथुन लग्न हो तो उत्तर भाग में, वृष लग्न हो तो पश्चिम में और मकर या सिंह लग्न हो तो दक्षिण भाग में सूतिका का निवास समझना चाहिये ॥२०॥

अथ सूतिकागृहे क शयनमिति तज्ज्ञानं वैतालीयेनाह—

प्राच्यादिगृहे क्रियादयो द्वौ द्वौ कोणगता द्विमूर्तयः ।

शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेत्पादैः षट्त्रिनवान्त्यसंस्थितैः ॥२१॥

प्राच्यादिगृह इति ॥ गृहे सूतिकावेश्मनि प्राच्यादि पूर्वाद्याः क्रियादयो मेपादयो राशयः द्वौ द्वौ चतसृषु दिक्षु, कोणगता विदिक्स्था द्विमूर्तयो द्विस्वभावाः । तद्यथा । मेषवृषयोर्लग्नयोर्गृहस्य प्राग्भिभागे सूतिकाशयनं मिथुने आग्नेय्यां कर्कसिंहयोर्दक्षिणे कन्यायां नैऋत्ये तुलावृश्चिकयोः पश्चिमे धनुषि वायव्ये मकरकुंभयोः उत्तरे मीने ऐशाने इति । एष एव विधिः शय्यास्वपि वक्तव्यः । अत उक्तं शय्यास्वपि वास्तुवद्वदेदिति । किं त्वयं विशेषः । पादैः षट्त्रिनवांत्यसंस्थितैरिति । इह खट्वापादाः षट्त्रिनवांत्यराशयः लग्नात्षष्ठ-तृतीयनवमद्वादशराशयः पादाः परिकल्प्याः । तत्रैतज्जातं येन लग्नेन प्रसवस्तदुक्तदिशि शय्यायाः शिरस्तस्मादेव षट्त्रिनवांत्याः पादाः । तत्र द्वादशतृतीयौ पूर्वपादौ । तत्रापि तृतीयो दक्षिणः पादो द्वादशो वामः । षष्ठनवमौ पश्चिमपादौ । तत्रापि षष्ठो दक्षिणो नवमो वामः । द्वितीयलग्नौ शीर्षभागः, चतुर्थपंचमौ दक्षिणमङ्गम्, सप्तमाष्टमौ पादांतभागः । दशमैकादशौ वामांगम् ।” प्रयोजनम्—विनतत्वं यमलक्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः” इति । यत्र द्विस्वभावराशयः स्थितास्तत्र विनतास्तत्र विनतत्वं यत्र पापास्तत्र तादृशो वोपघातः । एवं सदैवानुषण्णखट्वांगप्रसंगः । यस्मादवश्यं कचिदपि यमलक्षेण पापग्रहैर्भविष्यं तस्माद्यत्र यमलक्षं सौम्यग्रहस्वामियुतदृष्टं तत्र विनतत्वम् । पापग्रहोऽपि स्वभराशित्रिकोणमित्रक्षेत्रस्थः शुभफलकरो न भवतीति ॥२१॥

भाषा—सूतिका भवन में मेघ और वृष पूर्व में रहता है, मिथुन ईशान कोण में, कर्क और सिंह उत्तर भाग में, कन्या वायव्य भाग में, तुला वृश्चिक पश्चिम भाग में, धनु, नैऋत्यकोण में, मकर कुम्भ दक्षिण में और मीन अग्निकोण में रहता है। अर्थात् इसप्रकार सूतिका गृह में राशियों के स्थान हैं। इसी प्रकार शय्या (सूतिका की खटिया) में भी लग्नादि द्वादश भाव के स्थान समझे किन्तु वहाँ ६।३।९ १२ भाव खटिया के पाँवों में समझना चाहिये। अर्थात् खटिया के शिरहाने को पूर्वदिशा कल्पना करके लग्न और द्वितीय (१२) भाव पूर्व (शिरहाने) में, ३ तृतीय भाव शिरहाने के बाएँ पावे में; ४।५ भाव उत्तर (बाएँ भाग) में, ६ पष्ठ भाव पिछले बाएँ पावे में; ७, ८ भाव पश्चिम (पौथान) भाग में, ९ नवम भाव पौथान के दाहिना पाव में; १०, ११ भाव दक्षिण (दाहिने भाग) और १२ द्वादश भाव शिरहाने के दाहिने पाव में समझना चाहिये। इसका प्रयोजन शय्यादि के स्वरूप समझने में होता है। यथा आचार्य ने स्वयं लघुजातक में कहा है—

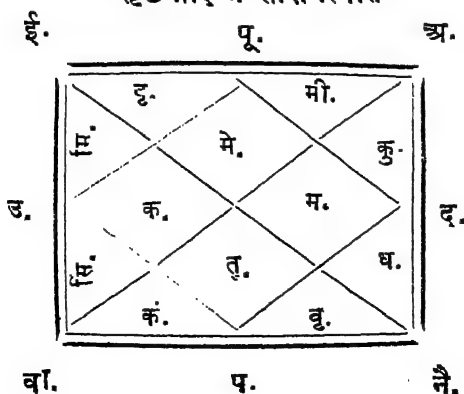
“षट्त्रिनवान्त्याः पदाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि।

विनतत्त्वं यमलक्षैः क्रूरैस्तत्तुल्य उपधातः” ॥ इति ॥

भावार्थ यह है कि—लग्न से ६, ३, ९, १२ ये शय्या के पावे और १, २ आदि भाव शिरहाने आदि चारों भागों में रहते हैं। जिस स्थान में द्विस्वभाव राशि पड़ती है उस स्थान में नम्रता (भुकाव) और जिस स्थान की राशि पापग्रह से युक्त हो वहाँ शय्या के अंग में उपधात समझना चाहिये ॥२१॥

विशेष अर्थ—यहाँ भट्टोत्पल ने वस्तु स्थिति से उल्टा ही अर्थ किया है कि—मेघ, वृष, पूर्व; मिथुन अग्निकोण; कर्क सिंह दक्षिण और कन्या नैऋत्य कोण; तुला, वृश्चिक पश्चिम; धनु वायुकोण; मकर, कुम्भ उत्तर और मीन ईशान कोण में। कि तु इसप्रकार की कल्पना प्रत्यक्ष विरुद्ध प्रतीत होती है। क्योंकि सृष्ट्यारम्भ में जो राशियों के स्थान थे, उसके अनुसार पूर्वंकथित अर्थ ठीक ही है। तथा लग्नादि द्वादश भावों के स्थान भी पूर्वंकथित अर्थानुसार ही रहते हैं। नीचे कुण्डली देखिये।

सृष्ट्यादि में राशि स्थिति

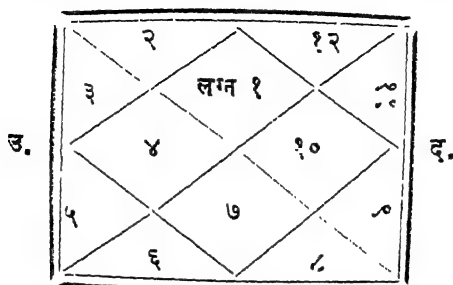


तात्कालिक भाव स्थिति

पाद

पू. (शिर)

पाद



पाद

प.

पाद

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि सृष्टिक्रम से मेघ पूर्व, कर्क उत्तर, तुला पश्चिम और मकर दक्षिण दिशा में होता है। एवं लग्न पूर्व, चतुर्थ भात्र उत्तर, सप्तम पश्चिम तथा दशम दक्षिण दिशा में पड़ता है। भट्टोत्पल के अर्थानुसार इससे विरुद्ध होता है। मेरा आग्रह यह नहीं है कि भट्टोत्पल का अर्थ असङ्गत ही है। मैंने तो अपना आशय प्रकट कर दिया है, क्योंकि यह आगम शास्त्र है जिस अर्थ के अनुसार फल घटित हो वही वास्तव मानना चाहिये। कहा भी है—

“ज्योतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्ती न योग्यमस्माकम् ।

स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये” ॥ इति ॥ २१ ॥

अधुनोपसूतिकासंख्यामनुष्टुभाह—

चन्द्रलग्नान्तरगर्तग्रहैः स्युरूपसूतिकाः ।

बहिरन्तश्च चक्रार्थे दृश्यादृश्येऽन्यथापरे ॥ २२ ॥

चन्द्रलग्नेति ॥ लग्नादारभ्य यत्र राशौ चंद्रमा व्यवस्थितस्तदंतरे तयोर्मध्ये यावंतो ग्रहा व्यवस्थितास्ते चन्द्रलग्नांतरगता ग्रहास्तेरूपसूतिकाः स्युः । तावत्संख्या उपसूतिकाः समीपवर्तिन्यः स्त्रियः स्युर्भवेयुः । ताश्च ग्रहजातिवयोवर्णरूपाः । तथा च सारावल्याम् । “शशिलग्नविवरयुक्ता ग्रहतुल्याः सूतिकाश्च विज्ञेयाः । अनुदितचक्रार्थयुतैरंतर्वहिरन्यथा वदंत्येके ॥ लक्षणरूपविभूषणयोगास्तासां शुभैर्योगात् । क्रूरैर्विरूपदेहा लक्षणहीनाश्च रौद्रमलिनाश्च ॥ मिश्रैर्मध्यमरूपा बलसहितैः सर्वमेतदवधार्यम्” । बहिरंतश्चेति । तत्र यावन्तो ग्रहा दृश्ये चक्रार्थे व्यवस्थितास्तावत्संख्या उपसूतिका गृहबाह्ये वक्तव्याः । यावन्तश्चादृश्ये चक्रार्थे व्यवस्थितास्तावत्संख्या अभ्यंतरे वक्तव्याः । तत्र लग्नस्य यावंत उदिता भागास्तथा द्वादशैकादशदशमनवमाष्टमराशयस्तथा सप्तमराशोर्लग्नोदितभागतुल्यांशा दृश्यमर्थं शेषमदृश्यमिति । अन्यथापरे । अपरे अन्ये आचार्या अन्यथाऽन्येन प्रकारेण दृश्यचक्रार्थे अभ्यंतरगता वर्णयन्ति । अदृश्ये

वाह्यस्था ज्ञेयाः । तथा च जीवशर्मा । “उदयशशिमध्यस्थैर्ग्रहैः स्युरूपसूतिका-
स्तत्र । उदगर्धस्थैर्वाह्ये दक्षिणैर्गैरन्तरे ज्ञेयाः” । एतदाचार्यस्य नाभिमतम् । यतोऽ-
नेनैव स्वल्पजातके उक्तम् । “शशिलग्नान्तरसंस्था ग्रहतुल्याः सूतिकाश्च
वक्तव्याः । उदगर्धेऽभ्यन्तरगा बाह्याश्चक्रस्य दृश्येऽर्थे” । अत्र चायुर्दायविधिना
“स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणम्” इत्यादिना द्वित्रिगुणत्वं कृत्वा गृहस्थानवशादु-
पसूतिकानिश्चयः कार्यः । यदि बहुजनप्रसूतियोगा न भवन्ति तथापि ग्रहसं-
ख्याधिकसूतिकासंभवो यत्र भवति तत्र बहुजनप्रसूतियोगेन भवितव्यमिति ॥

भाषा—लग्न से चन्द्रमा पर्यन्त जितने भी ग्रह हों उतनी उपसूतिका (सूतिका
के समीप में रहने वाली अन्य स्त्रियों) की संख्या समझनी चाहिये । दूसरा प्रकार
कहे हैं कि—दृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी स्त्री सूतिका गृह के बाहर और
अदृश्य चक्रार्ध में जितने ग्रह हों उतनी सूतिका गृह में अन्य स्त्रियों की संख्या समझे ।
अन्य आचार्य इसे अन्यथा कहते हैं अर्थात् जितने ग्रह दृश्य चक्रार्ध में हों उतनी घर
में और जितने ग्रह अदृश्यचक्रार्ध में हों उतनी उपसूतिका घर से बाहर समझे ॥२२॥

विशेष अर्थ—यहाँ विशेषता यह है कि जो ग्रह अपने उच्च या मूल त्रिकोण में
या वक्र हो उतनी संख्या को दो गुणा और जितने ग्रह स्वराशि, स्वनवांश, स्वद्वेष्काण
में हो उतनी संख्या को दो गुणा करके उपसूतिका की संख्या बतावे । यथा आचार्य
स्वयं आगे कहे हैं—“स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणं द्विहत्तमस्वांशकमत्रिभागनैः ॥” तथा
उन उन ग्रहों के वयस, रूप, स्वभाव, वर्ण आदि उपसूतिका के समझना । यथा—

“लक्षणरूपविभूषणयोगास्तासां शुभैर्योगात् ।

क्रूरैर्विरूपदेहा लक्षणहीनाश्च रौद्रमलिनाश्च ॥

मिश्रमध्यमरूपा बलसहितैः सर्वमेतदवधार्यम् ॥” इत्यादि

तथा सप्तमभाव के भोग्यांश, ८, ९, १०, ११, १२ और लग्नभुक्तांश ये दृश्य
तथा लग्नभोग्यांश २, ३, ४, ५, ६, भाव और सप्तम भाव ‘भुक्तांश’ ये अदृश्य
चक्रार्ध हैं ॥२२॥

अथ जातस्य स्वरूपादिज्ञानं दोधकेनाह—

लग्ननवांशपतुल्यतनुः स्याद्वीर्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा ।

चन्द्रसमेतनवांशवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः ॥ २३ ॥

लग्नेति ॥ जन्मकाले लग्ने यो नवांशक उदितस्तस्य यः स्वामी स लग्न-
नवांशपः तत्तुल्यतनुस्तदाकरो जातो वक्तव्यः । यथा मधुपिङ्गलदृगित्यादि ।
अथवा जातकाले सर्वग्रहेभ्यो यो ग्रहो वीर्ययुतो बलवांस्तत्तुल्यतनुर्वा वक्तव्यः ।
यदि लग्ननवांशकस्थो राशिर्बलवान्भवति तदा तदीशतुल्यतनुर्भवति । अन्यथा
सर्वग्रहेभ्यो यो वीर्यवान्ग्रहस्तत्तुल्यतनुरिति । चन्द्रसमेत इति । यो नवांशः
चन्द्रेण शशिना समेतश्चन्द्रो यस्मिन्नवांशके स्थित इत्यर्थः । तस्य नवांशराशेयो-
ऽधिपतिः स चन्द्रसमेतनवांशपतिस्तस्य यो वर्णस्तद्वर्णो जातो भवति । अत्र

च वर्णो “रक्तः श्यामो भास्करो गौर” इति । अन्ये चंद्राक्रान्तराशिवर्णमेवाहुः । यथा “रक्तः श्वेतः शुक्लतनुनिभः” इत्यादि । अत्र शुक्लवर्णस्यासंभवादयुक्तमेतत् । एतच्च वर्णादि जातिकुलदेशान्बुद्ध्वा वक्तव्यम् । उक्तं च । “बलिनः सदृशी मूर्तिर्बुद्ध्वा वा जातिकुलदेशान्” इति । कादिविलग्नविभक्तभगात्र इति । आधानविधिना शीर्षादीनामवयवानां ह्रस्वदीर्घत्वं निरूपयति । कादिभिर्विलग्नभैर्लग्नराशिभिः विभक्तानि गात्राणि यस्य सः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः । तत्र लग्नादयो राशयः कादिषु शिरःप्रभृतिगात्रेषु परिकल्प्याः । यथा कालाङ्गानि । तत्र लग्नं शिरो, द्वितीयो राशिवर्कत्रं, तृतीय उरः, चतुर्थो हृत्, पञ्चमः क्रोडः, षष्ठः कटिः, सप्तमो वस्तिः, अष्टमः शिश्नगुदे, नवमो वृषणौ, दशम ऊरू, एकादशो जानुनी, द्वादशो जंघापादौ । अत्र च राशीनां प्रमाणमुक्तं पूर्वाद्धे विषयादय इति । तत्र यत्राङ्गस्थे दीर्घराशौ दीर्घराश्यधिपो ग्रहो व्यवस्थितो भवति तदङ्गं तस्य दीर्घं वक्तव्यम् । तथा च सत्यः ।

“दीर्घाधिपतिर्दीर्घे ग्रहः स्थितोऽवयवदीर्घकृद्भवति” । अर्थादेवाल्यप्रमाणराशावल्यराश्यधिपो ग्रहो व्यवस्थितस्तदङ्गाल्यकृद्भवति । ‘दीर्घराश्यधिपोऽल्पराशिव्यवस्थितः स मध्यमकृत् अल्पराश्यधिपो दीर्घराशौ व्यवस्थितोऽङ्गमध्यमकृत् । यत्राङ्गराशौ बहवो व्यवस्थितास्तत्र बलवद्ग्रहवशाद्वाच्यम् । यत्र न कश्चिद्व्यवस्थितः तत्र राशिप्रमाणत एवाङ्गं वाच्यम् ॥ २३ ॥

भाषा—लग्न जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह के समान जातक का (ह्रस्व, मध्य, या दीर्घ) आकार समझना चाहिये । अथवा नवांशपति निबल हो तो जो ग्रह सब से बली हो उसी के समान आकार समझना चाहिये । तथा चन्द्रमा जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह के समान (गौर, कृष्ण आदि) वर्ण कहना चाहिये । तथा आगे कहे हुए श्लोकानुसार मस्तकादि अङ्गों में लग्नादिराशियों द्वारा विभक्त अवयव जातक का समझकर फल कहना चाहिये ।

विशेष अर्थ—यहाँ वर्ण आकृति आदि का ज्ञान देश, कुल, जाति के अनुसार तारतम्य से समझ कर बताना चाहिये । जैसे चन्द्रमा यदि शनिके नवमांश में हो तो शनि के समान जातक भी कृष्ण वर्ण होना चाहिये । किन्तु यदि किसी यूरोपीय, या भारतीय भी काश्मीर देश के ब्राह्मण या क्षत्रिय हो तो उसे कृष्ण (काला) वर्ण ही कहना चाहिये । यथा—आचार्य ने स्वयं भी लघुजातक में कहा है कि—“बुद्ध्वा वा जातिकुलदेशान् ।” इति ॥ २३ ॥

अत्रैव सूक्तिकाध्याये जातस्य ब्रह्ममशकादिनिरूपणार्थमङ्गप्रकरणमारभ्यते । तत्र लग्नप्रथमद्वितीयतृतीयद्रेष्काणवशेन प्रथमद्वितीयतृतीयशरीरभागपरिच्छेदः । तत्र शिरःप्रभृति यावद्वर्कत्रं प्रथमोऽङ्गविभागः । शिरोऽधस्ताद्यावन्नाभिस्तावद्द्वितीयः । तदधस्तात्तृतीयः । तेषामङ्गविभागानां राशिविभागं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कन्दकच्छ्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रं च होरादय-

स्ते कण्ठांसकबाहुपार्श्वहृदयक्रोडानि नाभिस्ततः ।

वस्तिः शिश्नगुदे ततश्च वृषणावूरु ततो जानुनी

जङ्घाङ्घ्रोत्पुभयत्र वाममुदितैर्द्रेष्काणभागैस्त्रिधा ॥ २४ ॥

कंहगिति ॥ त्रिभिः प्रकारैस्त्रिधा त्रिभिर्द्रेष्काणभागैस्त्रिधा शरीरप्रविभागः । तत्र लग्नस्य प्रथमद्रेष्काणे उदयति प्रथमो मूर्धाद्यङ्गविभागः । द्वितीयद्रेष्काणे उदयति कण्ठपूर्वको द्वितीयोऽङ्गविभागः । तृतीये द्रेष्काणे उदयति वस्तिपूर्व-
कस्तृतीयः । तत्राप्यङ्गविभागे वामदक्षिणवर्त्यवयवज्ञानं कथमित्याह । वाम-
मुदितरिति । राशिभिरुदितैः दृश्यभागावस्थितैर्वामोऽङ्गविभागः । लग्नस्योदित-
भागाः । तथा द्वादशैकादशदशमनवमाष्टमाः । तथा सप्तमस्य राशेर्लग्नस्योदित-
तुल्यभागाः । एष भाग उदितः शेषोऽनुदितः अर्थादनुदितैरदृश्यैर्दक्षिण इति । तत्र लग्नानुदितभागास्तथा द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठाः । सप्तमराशेर्लग्नोदित-
तुल्यभागः । एवं स्थिते लग्नप्रथमद्रेष्काणोदयो लग्नराशिः कं शिरः कल्पनीयम् । लग्नाद्द्वितीयद्वादशौ दृक्चक्षुषी । तत्र द्वितीयो दक्षिणमक्षि, द्वादशो वामम् । तृतीयैकादशौ श्रोत्रे । तत्र तृतीयो दक्षिणं, एकादशो वामम् । चतुर्थदशमौ नासापुटे । चतुर्थो दक्षिणं, दशमो वामम् । पञ्चमनवमौ कपोलौ । पञ्चमो दक्षिणः, नवमो वामः । षष्ठाष्टमौ हनू षष्ठो दक्षिणं, अष्टमो वामम् । सप्तमो वक्त्रं मुखम् । एवं राश्याद्युपलक्षितः प्रथमोऽङ्गविभागः । ते कण्ठांशक इति । अथ द्वितीयद्रेष्काणोदयः कण्ठाद्ये द्वितीयेऽङ्गविभागे परिकल्प्यः । तद्यथा । लग्नं कंठो गलकः । द्वितीयद्वादशौ स्कन्धौ । तत्र द्वितीयो दक्षिणस्कन्धः द्वादशो वामः । तृतीयैकादशौ बाहू । तत्र तृतीयो दक्षिणः एकादशो वामः । चतुर्थदशमौ पार्श्वे । तत्र चतुर्थो दक्षिणं, दशमो वामम् । पञ्चमनवमौ हृद्भागौ । तत्र पंचमो दक्षिणः, नवमो वामः । षष्ठाष्टमौ क्रोड उदरभागौ । षष्ठो दक्षिणः, अष्टमो वामः । सप्तमो नाभिरिति । नाभिग्रहणमुदरोपलक्षणार्थम् । एवं द्वितीयोऽङ्गविभागः । वस्तिः शिश्नगुदे इति । लग्नद्रेष्काणे तृतीये उदयति त एव होरादयस्तृतीयेऽङ्गविभागे परिकल्प्याः । तद्यथा । लग्नं वस्तिः नाभिलिङ्ग-
योर्मध्यभागः । द्वितीयो दक्षिणभागः, द्वादशो वामः । ततोऽनन्तरं तृतीयैकादशौ वृषणौ । तृतीयो दक्षिणः, एकादशो वामः । चतुर्थदशमौ ऊरू । चतुर्थो दक्षिणः, दशमो वामः । पञ्चमनवमौ जानुनी । पञ्चमो दक्षिणं, नवमो वामम् । षष्ठाष्टमौ जङ्घे । षष्ठो दक्षिणजङ्घा, अष्टमो वामजङ्घा । सप्तमः पादद्वयमिति ॥ २४ ॥

भाषा—लग्नगत द्रेष्काण से लग्नादि द्वादश भावों से मस्तकादि अङ्ग विभाग तीन प्रकार के होते हैं । उनमें उदित (क्षितिजोर्ध्वगत = सप्तमभाव का भोग्यांश ८।९।१०।११।१२ और लग्न का मुक्तांश इन) भावों से वाम अङ्ग तथा अनुदित

(क्षितिजावस्थित—लग्न भोग्यांश २।३।४.५।६ और सप्तमभाव का भुक्तांश एन)
इन भावों से दक्षिण अङ्ग समझना ॥२४॥

जैसे लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो लग्न १ मस्तक, और २, १२ नेत्र, ३, ११ कान, ४, १० नाक, ५, ९ गाल, ६, ८ हनु, (दोनों गालों के नीचे का भाग टुट्टी) और सप्तम भाव मुख । एवं लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न कण्ठ, २, १२ कंधा, ३, ११ बाहु, ४, १० बगल, पार्श्व), ५, ९ दोनों तरफ के हृदय भाग, ६, ८ दोनों तरफ के पेट भाग और सप्तम भाव नाभि होता है । यदि तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न वस्ति (नाभि और लिङ्ग का मध्य भाग, पेड़), २, १२ लिङ्ग गुदा, ३, ११ दोनों अण्ड वीर्य, ४, १० उरु, ५, ९ जात्रु, ६, ८ घुटना और सप्तम भाव पैर समझना चाहिये ।

स्पष्टार्थ—नराकार चक्र में लग्नादि राशियों का विन्यास करके समझिये । २४।

अथाङ्गज्ञानप्रयोजनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

तस्मिन्पापयुते व्रणं शुभयुते दृष्टे च लक्ष्मादिशेत

स्वर्क्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथागन्तुकः ।

मन्देश्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभवः

सूर्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगौ शृङ्गध्वजजोऽन्यैः शुभम् ॥२५॥

तस्मिन्पापयुत इति ॥ तत्र प्रथमद्रेष्काणे जातस्य शिरोऽगविभागो द्वितीयद्रेष्काणे जातस्य कण्ठाद्यङ्गविभागः । तृतीयद्रेष्काणे जातस्य वस्त्याद्यङ्गविभागः । यत्र पापग्रहो व्यवस्थितस्तस्मिन्पापयुते व्रणो वाच्यः । तस्मिन्नेव पापयुतेऽग्राशौ शुभयुते दृष्टे सौम्यग्रहसंयुक्तेऽवलोकिते वा तद्वाश्युपलक्षितेऽङ्गलक्ष्मादिशेत मशकादि चिह्नं वाच्यम् । स्वर्क्षांश इति । स एव ग्रहो व्रणमशकादिकर्ता स्वर्चे स्वराशौ स्वनवांशके वा स्थितो भवति, स्थिरराशौ स्थिरांशके वा स्थितस्तदा व्रणमशकादि सहजोत्पन्नं तस्य जन्तोर्भवति । अन्यथाक्तविपर्ययस्थे आगन्तुको जातस्योत्तरकाले केनचिन्निमित्तेन वक्ष्यमाणेन स्वदशकाले एव वक्तव्यः । आगन्तुकस्य व्रणादेर्ग्रहवशेन निमित्तमाह । मन्देश्मानिलज इति । मन्दे शनैश्चरे व्रणकर्तृत्वं प्राप्ते स व्रणादिग्रहमजः पाषाणहेतुकोऽनिलजो वातव्याधिहेतुको वा वक्तव्यः । भौमे व्रणकर्तृत्वे प्राप्तेऽग्निहेतुकः शस्त्रहेतुको विषहेतुको वा वक्तव्यः । बुधे भूभवः भूस्थितपातादुच्छिन्नपाताद्भूम्याधिपातहेतुको लोष्ट्रप्रहारहेतुको वा । सूर्ये रवौ काष्ठप्रहारहेतुकश्चतुष्पदप्राणिहेतुको वा वक्तव्यः । हिमगौ चन्द्रे शृङ्गध्वजजः सृङ्गध्विपातहेतुकः शृङ्गे विद्यते यस्य प्राणिनः स शृङ्गी, तज्जातोऽज्जजो वा जलप्राणिहेतुको वा वक्तव्यः । अन्यैः शुभम् । अन्ये ग्रहा यत्राङ्गदेशस्था भवन्ति तत्र शुभव्रणादिकरा भवन्ति । तत्रावशेषौ गुरुसितौ तत्किं बहुवचनम् ।

उच्यते । बुधः पापयुक्तो व्रणकरः क्षीणश्चन्द्रमा नान्यथा । ततोऽन्यैः शुभ-
मित्युक्तम् ॥ २५ ॥

भाषा—पूर्वरीति से विभक्त अङ्ग विभागस्थ राशियों में—जिसमें केवल पापग्रह (पाप से युत बुध, क्षीणचन्द्र, रवि मंगल वा शनि) हो उस अङ्ग में व्रण (घाव) कहना चाहिये । यदि वह पापग्रह शुभ से युक्त या दृष्ट हो तो उ ! अङ्ग में मशक तिला आदि चित्तमात्र कहना चाहिये । यदि वह पापग्रह अपनी राशि नवांश, या स्थिर राशि नवांश में हो तो जन्म के साथ ही उस स्थान में व्रण या चित्त कहना चाहिये । यदि अन्य राशि नवांश में हो तो उस ग्रह की दशा अन्तर्दशा काल में वर्ण आदि भावी कहना । जिस अंग में शनश्चर हो वहाँ पत्थर की चोट से अथवा वात रोग से व्रण कहना चाहिये । जिस में मंगल हो वहाँ अग्नि, शस्त्र या विष से, जहाँ पापयुत बुध हो वहाँ पृथ्वी पर गिरने आदि से, जहाँ सूर्य हो वहाँ लकड़ी या पशुओं के आघात से और जहाँ क्षीण चन्द्रमा हो वहाँ सींगवाले जन्तु या जलचर जन्तु के आघात से व्रण कहना चाहिये । और अन्य अर्थात् शुभग्रह जहाँ हो उस अंग में शुभफल (पुष्ट वा मनोहरता आदि) कहना चाहिये ॥ २५ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ केवल पापग्रह ही व्रणकारक कहा गया है । अतः बुध के स्थान में पापयुत बुध, चन्द्रमा के स्थान में क्षीण चन्द्रमा ही समझना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ व्रणज्ञानं हरिण्याह—

समनुपतिता यस्मिन्भागे त्रयः सबुधा ग्रहा

भवति नियमात्तस्यावाप्तिः शुभेष्वशुभेषु वा ।

व्रणकृदशुभः षष्ठे देहे तनोर्भसमाश्रिते ।

तिलकमशकृदृष्टः सौम्यैर्युतश्च स लज्जमानः ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

जन्मविधिर्नामाध्यायः पञ्चमः ॥ ५ ॥

समनुपतिता इति । यस्मिन् भागे वामे दक्षिणे वा त्रयः सबुधा ग्रहाः त्रयोऽन्ये ग्रहाश्चतुर्थेन बुधेन सहिताः समनुपतिताः समाश्रितास्तत्रांगे पूर्व-प्रक्रान्तस्य व्रणादेर्नियमात्रिश्चयादवश्यं प्राप्तिर्भवति । शुभेष्वशुभेषु वा । ते ग्रहाः सबुधाः शुभाः सौम्याः अशुभा पापा वा भवन्ति । तथापि तत्रांगे तस्य व्रणावाप्तिर्वक्तव्या । तेषां मध्ये यो बली स स्वदशायां करोति । व्रणकृदिति । लग्नात् षष्ठे स्थाने अशुभः पापो ग्रहो व्यवस्थितो देहे शरीरे व्रणकृद्भवति । कस्मिन्स्थाने । तनोर्भसमाश्रिते—तनोर्लग्नात् षष्ठस्थो राशिः कालांगानीत्यनेन दर्शितांगविभागे यस्मिन्भवति तस्मिन्भसमाश्रिते राशियुक्ते देहे शरीरे भवति । अत्रापि 'स्वक्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथागन्तुकः' इत्यनुवर्तनीयम् । स एव षष्ठस्थानस्थः पापः सौम्येन शुभग्रहेण यदा दृष्टो भवति तदा तत्रांगे

तिलकमशकृद्भवति । तिलकः कृष्णो बिन्दुः, मशकोऽर्बुदः । अथ शुभग्रहेण स एव पापो युतस्तदा स लक्ष्मवान्भवति राशयुपलक्षितमंगं सचिह्नं भवति । अत्र स्थाने धनो लोमनिचयो लक्ष्मेति ॥ २६ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ जन्म-

विधिर्नामाऽध्यायः पञ्चमः ॥ ५ ॥

भाषा—बुध के सहित और तीन ग्रह जिस अंग-विभाग में पड़े वे पापग्रह वा शुभग्रह हों तो उस अंग में व्रण या चिह्न अवश्य होता है । और लग्न से पशुभाव में पाप-ग्रह हो तो 'कालाङ्गानीत्यादि' क्रम से वह राशि जिस अङ्ग में हो उस अंग में भी व्रण होता ही है । वह षष्ठस्थ पापग्रह यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो उस अङ्ग में तिल वा मसक (मांसवृद्धि) तथा शुभग्रह से युक्त हो तो केवल चिह्न कहना चाहिये ॥ २६ ॥

अथारिष्टाध्यायः ६ ।

अथारिष्टाध्यायो व्याख्यायते । तत्र तावज्जातस्यारिष्टसम्भवे सत्यायुर्दाया-ष्टकवर्गदेशः कर्तव्यः । तस्मात्प्रथममरिष्टाध्यायं वक्ष्यति । तत्रारिष्टद्वयं विद्युन्मालया (१) ह—

सन्ध्यायां हिमदीधितिहोरा पापैर्भान्तगतैर्निधनाय ।

प्रत्येकं शशिपापसमेतैः केन्द्रैर्वा स विनाशमुपैति ॥१॥

संध्यायामिति ॥ संध्यालक्षणं संहितायामुक्तम् । “अर्धास्तसमयात्सन्ध्या व्यक्तीभृता न तारका यावत् । तेजःपरिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयो यावत्” अस्मिन्सन्ध्याकाल इति । तत्र जन्मनि यस्य सन्ध्याकालो भवति तत्काललग्नगता हिमदीधितेश्चन्द्रस्य होरा भवति यथासम्भवं पापैर्भान्तगतैः यत्र तत्र राशिस्थान्त्यनवांशगताः पापा भवन्ति तदैव योगो जातस्य निधनाय भवति । प्रत्येकमिति । एकमेकमिति प्रत्येकं, शशी चन्द्रः पापाक्षयश्चतुर्षु केंद्रेषु व्यवस्थिता भवन्ति । एतदुक्तं भवति । आदित्यचन्द्रांगारकशनैश्चरैर्यथासम्भवं चत्वार्यपि केंद्राण्याक्रांतानि भवन्ति तथापि यस्य जन्म भवति स विनाशमुपैति, न्नियत इत्यर्थः ॥ १ ॥

(१) नेद वृत्तं विद्युन्मालाख्यम् । यतस्तल्लक्षणं कविकुलतिलकेन श्रीमत्कालिदासेन श्रुतबोध—नाग्नि ग्रन्थे सुरक्षितम्—

‘सर्वे वर्णा दीर्घा यस्यां विश्रामः स्याद् वेदेवेदे ।

विद्वद्बुन्दैर्वीणावाणि ! याख्याता सा विद्युन्माला”

एतेन महद्वैषम्यम् । मन्मतेन तु ‘उपवित्रा’ भवतीति छन्दोविद्भिरनुसन्धेयम् । तदुदाहरणमपि पिङ्गलच्छन्दःसूत्रे—

“यच्चित्तं गुहसक्तमुदारं विद्याभ्यासमहाव्यसनञ्च ।

पृथ्वी तस्य गुणीरुपचित्रा चन्द्रमरीचिनिभमैवतीयम्” इति ।

भाषा—सन्ध्याकाल में चन्द्रमा की होरा हो, और पाप ग्रह सब राशि के अन्तिम नवांश में हो तो जातक के मरणकारक होते हैं। अथवा चारों केन्द्र में चन्द्रमा और पापग्रह हो तो भी वह जातक मर जाता है ॥१॥

अथान्यानरिष्टयोगानिन्द्रवज्रयाह—

चक्रस्य पूर्वापरभागेषु क्रूरे सौम्येषु च कीटलघ्रे ।

क्षिप्रं विनाशं समुपैति जातः पापैर्विलग्नास्तमयाभितश्च ॥२॥

चक्रस्येति ॥ यावन्तो भागा लग्नस्योदितास्तावन्त एव भागा लग्नचतुर्थ-
राशेः परित्यज्य शेषभागमारभ्य पञ्चमषष्ठसप्ताष्टमनवमराशयो दशमराशि-
लग्नोदितभागतुल्यांशाश्चक्रपरार्द्धम् । शेषं पूर्वार्द्धम् । तत्र चक्रस्य पूर्वभागे क्रूराः
पापाः, इतरभागे पश्चिमे सौम्याः शुभग्रहाः । कीटलग्ने वृश्चिकराशावुदये कर्कटे
चोदयस्थिते जातः शिशुः क्षिप्रमवश्यमेव विनाशमुपैति मरणं प्राप्नोतीत्यर्थः ।
नन्वत्र पूर्वं वृश्चिकः कीटसंज्ञ उक्तः पुनरपि 'द्विपदादयोऽङ्घ्रि निशि च प्राप्ते च
संध्याद्वये' इत्यत्र कर्कटवृश्चिकमकरमीनानां कीटत्वमभ्युपगतम् । तदत्र वृश्चिक-
कर्कटावेव कथं व्याख्यातावित्यत्रोच्यते । मकरमीनयोर्जलत्वादपि सपक्षत्वा-
त्कीटसंज्ञा नाभ्युपगम्यते । यस्माद्वादरायणः—“पूर्वापरभागगतैः शुभाशुभै-
रलिनि कर्कटे लग्ने । जातस्य शिशोर्मरणं सद्यः कथयन्ति यवनेन्द्राः” ॥ पापै-
र्विलग्नास्तमयाभितश्चेति । पापैः क्रूरग्रहैः विलग्नाभितः अस्तमयाभितश्च
स्थितश्च सद्यो जातः क्षिप्रं शीघ्रमेव विनाशं समुपैति । अत्र केचिदेवं
योगद्वयं व्याचक्षते । अभित उभतः लग्नात्पापैरुभयत इत्येको योगः ।
अस्तमयाच्चाभित इति द्वितीयः । तत्र लग्नद्वादशद्वितीयस्थयोः पापयोजातो
म्रियते । तथा लग्नषष्ठाष्टमयोश्च पापयोजातो म्रियते । तथा लग्नसप्तमाष्ट
ये द्वादशद्वितीये तत्स्थयोश्च पापयोजातो म्रियते । अन्ये पुनरभिषब्द
आभिमुख्ये वर्तत इत्यनुवर्णयन्ति । तत्र लग्नाद्यो द्वितीयराशौ ग्रहः स्थितः
स उद्यमभिलषति लग्नस्याभिमुखो भवति । यश्च लग्नादष्टमराशौ भवति
सोऽस्तमयमभिलषतीत्यर्थः सप्तमराशिरभिमुखो भवति । तेनैतज्जातम् ।
लग्नद्वितीयाष्टमगतैः सर्वैः पापैर्जातो म्रियते । वयं पुनरभिषब्द आभि-
मुख्यव्यावृत्तिं ब्रूमः । “पापेषु लग्नाभिमुखेषु सर्वेष्वेवाप्तवीर्येषु शुभर्त्त-
नोऽपि” किन्तु यो लग्नाद्द्वादशस्थाने स्थितः स उद्यमभिलषति लग्नाभिमुखो
भवति । यश्च षष्ठे स्थितः सोऽस्ताभिमुखो भवति, यस्माद्ग्रहाणां प्राङ्मुखो
गतिः ! उक्तं च । “प्रागतयस्तुल्यजवा ग्रहाश्च सर्वे स्वमण्डलगाः” इति । तत्र
पूर्वाभिमुखं व्रजतो गच्छतो लग्नाद्द्वितीयस्थस्य न तदाभिमुख्यम् । तेनैतज्जातं
लग्नाद्द्वादशषष्ठाश्रितैः पापैर्यस्य जन्म स म्रियत इति । भगवता गार्ग्येण सर्वा-
ण्येव व्याख्यातान्याभिमुख्यानीति । तथा च तद्वाक्यम्—“रिपुव्ययगतैः पापैरेदि-
वा धनमृशुगैः । लग्ने वा पापग्रहस्थे द्यूने वा मृशुनापुत्रात्” इति ॥२॥

भाषा—चक्र के पूर्वार्ध में (दशम भाव राश्यादि से आगे चतुर्थ भाव राश्यादि पर्यन्त अर्थात् पूर्व कपाल में) पापग्रह हों, और चक्र के परार्ध (पश्चिमकपाल = चतुर्थ भाव से आगे दशमभावपर्यन्त) शुभग्रह हों तो जातक शीघ्र मर जाता है । तथा लग्न से द्वितीय, द्वादश और सप्तम से द्वितीय द्वादश में पापग्रह हो तो भी जातक का मरण शीघ्र होता है । २॥

विशेष अर्थ—भगवान् गर्ग का वचन “रिपुव्ययगतैः पापैर्यदि वा धनमृत्युगैः । लग्ने वा पापमध्यस्थे द्यूते वा मृत्युमाप्नुयात्” ॥२॥

अथ योगान्तरमनुष्टुभाह—

पापाबुदयास्तगतौ क्रूरेण युतश्च शशी ।

दृष्टश्च शुभैर्न यदा मृत्युश्च भवेदचिरात् ॥ ३ ॥

पापाविति । एकः पाप उदये लग्ने स्थितोऽन्योऽस्ते सप्तमे गतः, शशी चन्द्रमाः यत्रतत्रस्थः क्रूरेण पापेन युतो भवति स च सौम्यैः शुभग्रहैर्यदि न दृष्टस्तदा जातस्य मृत्युरचिराच्छीघ्रमेव भवेत् ॥ ३॥

भाषा—लग्न और सप्तम में पापग्रह हो, और चन्द्र भी पापग्रह से युक्त हो तथा शुभग्रह से दृष्ट न हो तो जातक का शीघ्र मरण होता है ॥३॥

अथ योगान्तरमनुष्टुभाह—

क्षीणे हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः ।

केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत्क्षिप्रं निधनं प्रवदेत् ॥ ४ ॥

क्षीणे हिमगाविति । हिमगौ चन्द्रे लग्नाद्व्ययगे द्वादशस्थे तथा पापैः क्रूरग्रहैरुदयाष्टमगैः लग्नस्थैरष्टमगतैश्च केन्द्रेषु कण्टकेषु चेद्यदि शुभा न भवन्ति तदा जातस्य क्षिप्रमाश्वेव निधनं मरणं प्रवदेद्ब्रूयात् । अत्र केचित्पापैरुदयाष्टमगैरिति नेच्छन्ति । तदयुक्तम् । यस्माद्भगवान्गार्गिः । “क्षीणो चन्द्रे व्ययगते पापैरष्टमलग्नगैः । केन्द्रबाह्यगतैः सौम्यैर्जातस्य निधनं वदेत्” ॥ ४ ॥

भाषा—यदि कलाहीन चन्द्रमा द्वादशभाव में हो और लग्न तथा षष्ठम में पापग्रह हो और किसी केन्द्र में शुभ ग्रह नहीं हो तो शीघ्र मरण करना चाहिये ॥४॥

अथारिष्टान्तरमनुष्टुभाह—

क्रूरेण(१) सय्युतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः ।

कण्टकाद्बहिः शुभैरवीक्षितश्च मृत्युदः ॥ ५ ॥

(१) बहुषु पुस्तकेष्वेवमेव पाठो दृश्यते किन्तु वृत्तोऽस्मिन्ननुष्टुब्लक्षणं नास्ति, उक्त-
रार्धे पञ्चदशवर्णत्वात् । तथा द्वितीयचतुर्थचरणवनुष्टुब्धभेद-नगस्वरूपिणीवृत्तलक्षणो-
पेक्षी प्रथमतृतीयचरणी च तद्भिन्नलक्षणकावतोऽत्र—

“खलेन सय्युतः शशी स्मरान्त्यमृत्युलग्नगः ।

चतुष्टयाद्बहिः शुभैरवीक्षितश्च मृत्युदः” इति पाठः समुचितः ।

क्रूरेणेति । शशी चन्द्रः क्रूरेण पापग्रहेण संयुतस्तथाभूतः स्मरान्त्यमृत्यु-
लग्नगः सप्तमद्वादशाष्टमलग्नानामन्यतमस्थस्तथा शुभैः शुभग्रहैः कंटकबाह्य-
स्थैः केन्द्रवर्जमन्यस्थानस्थैः अवोक्षितः न दृष्टो यदि भवति तदा जातस्य
मृत्युदो मरणदो भवति । अर्थादेव सौम्यैः केन्द्रस्थैस्तदानीष्टाभावः । तथा च
सारावल्याम्—“व्ययाष्टसप्तोदयो शशांके पापैः समेते शुभदृष्टिहीने । केन्द्रेषु
सौम्यप्रहवर्जितेषु जातस्यः सद्यः कुरुते प्रणाशम्” ॥ ५ ॥

भाषा—पापग्रह से युक्त चन्द्रमा यदि ७, १२, ८, १ इन भावों में हो और केन्द्र से
भिन्न स्थान में शुभग्रह हो उन शुभग्रहों से दृष्ट न हो तो मृत्युप्रद होता है ॥ ५ ॥

अथारिष्टांतराणि पृथग्याह—

शशिन्यरिविनाशगे निधनमाशु पापेक्षिते

शुभैरथ समाष्टकं दलमतश्च मिश्रैः स्थितिः ।

असद्भिरवलोकिते बलिभिरत्र मासं शुभे

कलत्रसहिते च पापविजिते विलग्नधिपे ॥ ६ ॥

शशिनीति ॥ शशिः चन्द्रे अरिविनाशगे लग्नाष्टमस्थानस्थेऽष्टमस्थे
वा तत्र च पापानां क्राणामन्यतमेनेक्षिते दृष्टे सौम्यग्रहेणादृष्टे जातस्य निधनं
मरणमाशु क्षिप्रमेव भवति । शुभैरिति । अत्र लग्नाष्टमस्थानस्थे चन्द्रे सौम्यै-
र्ग्रहैर्दृष्टे पापेनादृश्यमाने जातस्य समाष्टकं वर्षाष्टकं स्थितिः, जीवितं वक्तव्यम् ।
ततोऽनन्तरं मरणमेति । समाशब्दो वर्षपर्यायः । दलमत इति । लग्नाष्टम-
मगे चन्द्रे मिश्रैः पापैः सौम्यैश्च दृष्टे अतोऽस्मात्समाष्टकाद्वर्षाष्टकादलमतर्द्धं
वर्षचतुष्टयं स्थितिर्भवेत्ततो मरणमिति । अर्थादेव षष्ठाष्टमस्थे चन्द्रमसि न
वेनचिद्दृश्यमानेऽरिष्टयोगाभावः । चन्द्रमा यदि षष्ठाष्टमस्थः सौम्यक्षेत्रगतः
सौम्ययुक्तो भवति तदा न मरणप्रदः । यस्माद्यवनेश्वरः—“लग्नाच्छशी नैधन-
ज्ञेऽशुभर्क्षे षष्ठाऽथवा पापनिरीक्षितश्च । सर्वायुराहन्ति शुभैर्विमिश्रैस्तदोक्षि-
तोऽव्दाष्टकमधकं वा” तथा यस्य कृष्णपक्षे दिवा जन्म शुक्लपक्षे रात्रौ जन्म-
लग्नाष्टमस्थानस्थः शशी शुभाशुभदृष्टोऽपि भवति तस्य न मरणप्रदः ।
यस्मान्मांडव्यः—“पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां कृष्णेऽथवाहन्ति
शुभाशुभदृश्यमानः । तच्चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्नादापत्सु रक्षति
पितेव शिशुं न हन्ति” । असद्भिरिति । अत्रास्मिन्नेव षष्ठेऽष्टमे वा स्थाने शुभे
सौम्यग्रहे बुधगुरुसितानामन्यतमे स्थिते तस्मिँश्चासद्भिः पापैः बलिभिर्वा-
र्ययुक्तैरवलोकिते दृष्टे जातस्य मासं स्थितिः जीवितं वक्तव्यम् । ततो मरणम् ।
अत्र निर्दिष्टयोगस्थे शुभग्रहे शुभदृष्टेऽरिष्टयोगाभावः । यस्मादनैनैव स्वल्प-
जातके उक्तम् “शशिवत्सौम्याः पापैर्वक्रिभिरवलोकिता न शुभदृष्टाः । मासेन
मरणदाः स्युः पापयुतो लग्नपश्चास्ते” । कलत्रसहित इति । विलग्नधिपे

जन्मलग्नपतौ कलत्रसहिते सप्तमस्थानस्थे वा पापविजिते क्रमग्रहेण युद्धे संप्राप्ते विजिते । विजितलक्षणम् । “दक्षिणदिक्स्थः पक्षो वेपथुः प्राप्य सन्निवृत्तोऽगुः । अधिकृष्टा विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः” ॥ भौमादीनामाकाशे युद्धं भवति ॥ यः दक्षिणाशास्थः स त्रयः जितः । कुमुता-
दानां युद्धमित्युक्तत्वाच्चन्द्रदीपिकायाम् । परुषो रूक्षः वेपथुः कम्पमानः अन्य-
गृहप्राप्य सन्निवृत्तः द्विपरोतगतिमापन्नः अगुः सूक्ष्मः अधिकृष्टः अन्येना-
क्रान्तः विकृतः विकारसहितः निष्प्रभो दीप्तिरहितः विवर्णः वर्णरहितः स
जित इति । चशब्दान्मासं स्थितिस्ततो मरणमिति ॥ ६ ॥

भाषा—चन्द्रमा ६।८ स्थान में पापग्रह से दृष्ट हो तो शीघ्र मरण कहना चाहिये ।
यदि शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक की स्थिति (जीवन) ८ वर्ष तक, यदि पाप शुभ दो
प्रकार के ग्रह से दृष्ट हो तो उसका आधा (४ वर्ष तक) स्थित कहना चाहिये । यदि
६।८ में शुभग्रह हो और बलवान् पापग्रह से दृष्ट हो तो १ मास मात्र तथा पापग्रह से
पराजित लग्नेश यदि सप्तम भाव में हो तो भी १ मास स्थिति (जीवन) कहना
चाहिये ॥६॥

अथारिष्टान्तराणि मन्दाक्रान्तयाह—

लग्ने क्षीणे शशिनि निधनं रन्ध्रकेन्द्रेषु पापैः

पापान्तःस्थे निधनहिबुकधूनयुक्ते च चन्द्रे ।

एवं लग्ने भवति मदनच्छिद्रसंस्थैश्च पापै-

मात्रा सार्धं यदि च न शुभैर्वीक्षितः शक्तिभृद्भिः ॥ ७ ॥

लग्ने क्षीण इति ॥ क्षीणे शशिनि चन्द्रे लग्ने जन्मलग्नस्थिते तथा रन्ध्र-
केन्द्रेषु पापैः क्रूरैः स्थितैर्यथासम्भवमेवंविवे योगे जातस्य निधनं मरणं
वक्तव्यम् । तथा चन्द्रे शशिनि पापान्तःस्थे पापमध्यगते निधनहिबुकधूनयुक्ते-
ऽष्टमचतुर्थसप्तमस्थानानामन्यतमस्थे जातस्य मरणं वक्तव्यम् । एवमिति ।
एवमनेनैव प्रकारेण लग्नगे पापान्तःस्थे शशिनि तथा मदनच्छिद्रसंस्थे सप्त-
माष्टमस्थानयोरन्यतमस्थे पापे क्रूरे यदि शुभैः सौम्यग्रहैः शक्तिभृद्भिः सबलैः
चन्द्रमा न वीक्षितो न दृष्टो भवति तदा जातस्य मात्रा सार्द्धं जनन्या सह मरणं
बदेत् । अथ निर्दिष्टयोगस्थश्चेच्चन्द्रमाः शुभैर्दृश्यते बलिभिस्तदा जातस्यैव
मरणं, न तन्मातुरिति ॥ ७ ॥

भाषा—यदि क्षीण चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह अष्टम तथा केन्द्रस्थान में हो
तो जातक का मरण होता है । तथा चन्द्रमा यदि पापग्रहों के मध्य में होकर ८।४।७
इन स्थान में हो तो मरण कहना चाहिये । तथा यदि लग्न इस प्रकार पाप मध्य में हो
और ७।८ में पापग्रह हो तो माता के सहित जातक का मरण होता है । यदि बलवान्
शुभग्रह से दृष्ट न हो तभी मरण होता है अर्थात् बली शुभग्रह से दृष्ट हो तो उपरोक्त
योग में मरण नहीं कहना चाहिये ॥७॥

पापयोग एवायं गण्यते यस्माद्वश्यमभावाद्यन्तेऽवग्रहणेन भवितव्यम् । तत्र चावश्यमर्केण क्षीणचन्द्रसहितेन भवितव्यम् । तदार्थः क्षीणेन्दुना युक्त इति आचार्यस्याभिप्रेतं स्यात्तदा प्रस्तेऽर्के निधनाश्रिते कुज इति केवलमकरिष्यत् । उदयति रवावादित्ये उदयति लग्नगते शीतांशौ चन्द्रे वा लग्नगते तथा अशुभैः पार्पस्त्रिकोणविनाशकैः नवपञ्चमाष्टमस्थैः सर्वैरेव यथासम्भवमेवंविधयोगस्थे रवौ चन्द्रे वा शुभैः सौम्यग्रहैः वीर्योपेतैः बलवद्भिः न युक्तेक्षिते न संयुक्ते नापि दृष्टे जातस्य निधनं मरणं वदेत् । अर्थादेवांक्तयोगस्थे रवौ चन्द्रे वा बलिभिः शुभैर्युते दृष्टे चारिष्टयोगाभावः ॥६॥

भाषा—यदि राहु से ग्रस्त और पापग्रह से युक्त चन्द्रमा लग्न में हो और मङ्गल ८ भाव में हो तो माता सहित जातक का मरण होता है । यदि इस प्रकार का योग सूर्य में हो (अर्थात् पापयुत और राहुग्रस्त सूर्य लग्न में हो और मङ्गल अष्टम में हो) तो उक्त मरण शास्त्र के द्वारा समझना चाहिये । सूर्य उदय (लग्न) में हो वा चन्द्रमा लग्न में हो और पापग्रह ५, ११, ८ स्थान में हो तो मरण होता है । यदि बली शुभग्रह से युत दृष्ट न हो अर्थात् शुभग्रह से युत दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है ॥१॥

अथारिष्टान्तरमपरवक्त्रेणाह—

असितरविशशाङ्कभूमिजैर्व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः ।

भवति मरणमाशु देहिनां यदि बलिना गुरुणा न वीक्षिताः ॥१०॥

असितेति ॥ असितः सौरः रविरादित्यः शशांकश्चन्द्रः भूमिर्जोऽगारकः एतैर्यथाक्रमं व्ययनवमोदयनैधनाश्रितैः द्वादशनवमलग्नाष्टमस्थानस्थैः तत्रैतज्जातं शनैश्चरे द्वादशे अर्के नवमे चन्द्रे लग्नगो भौमेऽष्टमस्थे एते सर्वे एव योगकर्तारो महा यदि बलिना वीर्यवता गुरुणा जीवेन न वीक्षिताः न दृष्टास्तदा जातस्य जन्तोराश्वेव मरणं भवति वदेत् । अत्र यदा योगकर्तृन्ग्रहान्वलवान्गुरुः कांश्चित्पश्यति कांश्चिन्न पश्यति अथवा बलहीनः सर्वानेव पश्यति तदा जातस्य मरणाद्यं प्रवदेत्, किन्तु आशु शीघ्रं न वदेत् । अर्थादेव सर्वानेव गुरुः पञ्चमगः पश्यति तदारिष्टयोगाभावः ॥१०॥

भाषा—शनि, सूर्य, चन्द्र, मंगल ये क्रम से १२, ९, १, ८ में स्थित हो तो जातकों का शीघ्र मरण होता है; यदि बलवान् गुरु से दृष्ट न हो अर्थात् बलवान् गुरु से दृष्ट हो तो मरण नहीं होता है ॥१०॥

अथारिष्टान्तरं पुष्पिताग्रयाह—

सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः ।

भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा ॥११॥

सुतेति ॥ शीतरश्मिश्चन्द्रः स च क्षीणः अशुभयुतः पापग्रहेण संयुक्तः सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेषु स्थितः पंचमसप्तमनवमद्वादशोदयाष्टमगतः ।

अथवा सुतमदननवांतरन्ध्रे स्थित इति पाठः । एतेपामन्यतमस्थानस्थः भृगु-
सुतेन शुक्रेण शशिपुत्रेण वुषेन देवपूज्येन बृहस्पतिना बलिभिर्वीर्यसंयुक्तैर्न
युतो नाप्यवलोकितः एषां त्रयाणां मध्यादेकतमेनापि संयुतो न च दृष्टस्तदा
जातस्य मरणाय भवति अर्थादेव भृगुसुतशशिपुत्रदेवपूज्यानामन्यतमेन बलवता
दृष्टो युक्तो वा भवति तदारिष्टयोगाभावः । अत्र क्षीणचन्द्रग्रहणां नास्ति
तत्कस्माद्व्यवह्यातमित्यत्रोच्यते । आगमांतरदृष्टत्वात् । तथा च सारावल्याम् ।
“निधनास्तव्ययलग्नत्रिकोऽस्याः क्षीणचन्द्रसंयुक्ताः । पापा बलिनः शुभदैरदृश्य-
स्याना गतायुषां प्रायः ॥” ॥११॥

भाषा—पापयुक्त चन्द्रमा ५, ७, ९, १२, १, ८ स्थान में हो तो मरण होता है । यदि
जसो भृगु, वुष या शुक्र में युग वा दृष्ट न हो । यदि इनमें युग वा दृष्ट हो तो मरण
नहीं होता है ॥११॥

अथानुक्तमरणकालानादरिष्टयोगानां कालपरिज्ञानं भ्रमः बलसितेनाह—

योगे स्थानं गतवति बलिचन्द्रे स्वं वा तनुगृहमथ वा ।

पापैर्दृष्टे बलवति वरुणं वर्षस्यान्तः किल मुनिगदितम् ॥१२॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातकेऽरिष्टाध्यायः ॥ ६ ॥

योगे स्थानमिति ॥ दक्षिणरिष्टयोगे जातस्य मरणकालावधिर्नोक्तस्त-
स्मिन्नरिष्टयोगे योगकर्तारो ये ये प्रज्ञास्तेषां मध्याद्यो बलवान्स यस्मिन्नाशौ
जन्मकाले व्यवस्थितः स राशिर्बलिनः स्थानम् । तत्र चारक्रमाच्चन्द्रमसि प्राप्ते
जातस्य मरणं वक्तव्यम् । अथवा चन्द्रे स्वमात्मीयस्थानं गते जन्मकाले यत्र
राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तमेव राशिं पुनरपि चन्द्रे गते तत्र तस्य मरणं वक्त-
व्यम् तनुगृहमथवा तनुगृह लग्नं वा चारक्रमाद्गते चन्द्रमसि जातस्य मरणं
वक्तव्यम् । कदेत्युच्यते । वर्षस्यान्तः सर्वत्सराभ्यन्तरे । एतदुक्तं भवति । “अनुक्त-
कालरिष्टजातो वर्षं नातिक्रामति” इति । नन्वत्र प्रतिमासं चन्द्रमसा सर्वाण्येव
स्थानानि गन्तव्यानि तत्किमित्युक्तं वर्षस्यान्तः । उच्यते । पापैर्दृष्टे बलवति ।
एषु निर्दिष्टस्थानेषु मध्याद्यत्र गतश्चन्द्रमा बलवान्भवति पापैश्च दृश्यते तदा
जातस्य मरणं वक्तव्यम् । न केवलं गतमात्र एव चन्द्रे । किल मुनिगदितं
किलेत्यागमसूचने, मुनिगदितमिदमरिष्टलग्नमित्यागमपारंपर्येण श्रूयते इति ।
अत्रान्यैराचार्यैररिष्टभङ्गा उक्तास्ते च सत्यरूपाः यतो बहवो जाता अपि सत्त्वपि
योगेषु जीवन्तो दृश्यन्तेऽतोऽस्माभिः किञ्चिल्लिख्यते ।

“सर्वानिमानतिबलः स्फुरदंशुजालो

लग्नस्थितः प्रशमयेत्सुरराजमन्त्री ।

एको बहूनि दुरितानि मुदुस्तराणि

भक्त्या प्रयुक्तं हव शूलधरप्रणामः ॥ १ ॥

लम्नाधिपोऽतिवलवानशुभैरदृष्टः

केन्द्रस्थितैः शुभस्वगैरवलोक्यमानः ।

मृत्युं विधूय विदधाति सुदीर्घमायुः

सार्धं गुरौर्बहुभिरुजितया च लक्ष्म्या ॥ २ ॥

लम्नादष्टमवर्त्यपि गुरुवृषशुक्रदृकाण्यश्चन्द्रः ।

मृत्युं प्राप्तमपि नरं परित्यजेव निर्वर्जम् ॥ ३ ॥

चन्द्रः संपूर्णतनुः सौम्यर्त्तगतः शुभेक्षितश्चापि ।

प्रकरोति रिष्टभंगं विशेषतः शुक्रसंदष्टः ॥ ४ ॥

बुधभार्गवजीवानामेकतमः केन्द्रमागतो बलवान् ।

यद्यत्कूरसहायः (१) सद्योऽरिष्टस्य भङ्गाय ॥ ५ ॥

रिपुभयनगतोऽपि शशी गुह्यसितचन्द्रात्मजदृकाण्यथः ।

अगद इव भोगिदष्टं परित्यजेव निर्वर्जम् ॥ ६ ॥

सौम्यद्वयांतरगतः संपूर्णः स्निग्धमण्डलः राशभृत् ।

निःशेषरिष्टहन्ता भुजंगलोकस्य गरुड इव ॥ ७ ॥

राशभृति पूर्णशरीरे शुक्ले पक्षे निशाभवे काले ।

रिपुनिधनस्थेऽरिष्टं प्रभवति नैवात्र जातस्य ॥ ८ ॥

प्रस्फुरितकिरणजाले स्निग्धामलमण्डले बलोपेतः ।

सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते सर्वारिष्टं शमं याति ॥ ९ ॥

सौम्यभवनोपयाताः सौम्यांशकसौम्यदृकाण्यथाः ।

गुरुचन्द्रकाव्यशशिजाः सर्वेऽरिष्टस्य हन्तारः ॥ १० ॥

चन्द्राध्यासितराशेरधिपः केन्द्रे शुभग्रहो वापि ।

प्रशमयति रिष्टयोगं पापानि यथा हरिस्मरणम् ॥ ११ ॥

पापा यदि शुभवर्गे सौम्यैर्दृष्टाः शुभांशवर्गस्थैः ।

निघ्नन्ति तदारिष्टं पतिं विरक्ता यथा युवतिः ॥ १२ ॥

राहुस्त्रिषष्ठलाभे लम्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सम्यक् ।

नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसंवातम् ॥ १३ ॥

शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ ।

प्रकृतिस्थैश्चारिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम् ॥ १४ ॥

तत्काले यदि विजयी शुभग्रहः शुभनिरीक्षितोऽवश्यम् ।

नाशयति सर्वरिष्टं मारुत इव पादपान्धवलः ॥ १५ ॥

सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टश्चन्द्रो विनाशयति रिष्टम् ।

आपूर्वमायामूर्तिर्यथा नृपः स्वं नयेद्द्वेषी ॥ १६ ॥ इति ॥ १२ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ पष्ठोऽरिष्टाध्यायः

समाप्तः ॥ ६ ॥

(१) अत्र “कूरसहायो यद्यपि” इति पाठः साधुः ।

भाषा—जिन योगों में मरण का काल नहीं कहा गया है उन योगों में दण्ड के भीतर जब चन्द्रमा बलवान् होकर अपने स्थान में वा किसी दली ग्रह के स्थान में या लग्न राशि में जाय और पापग्रहों से दृष्ट हो उस समय उस जातक का मरण मुनियों ने कहा है ॥१२॥

अथायुर्दायाध्यायः ॥ ७ ॥

अथायुर्दायाध्यायो व्याख्यायते । तत्र पूर्वोक्तग्रिष्टाध्यायेऽरिष्टवर्जितस्यायुर्दायः कर्तव्यः । तत्राद्यावेव मययवनमणित्थपराशरमतेन प्रत्येकस्य ग्रहस्य परमायुःप्रमाणं पृथिवतामयाह—

मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैर्दिवसकरादिषु वत्सराः प्रदिष्टाः ।

नवतिथिविषयाश्विभूतरुद्रदश सहिता दशभिः स्वतुङ्गमेषु ॥१॥

मययवनेति ॥ मयो मयनामा दानवः सूर्यलब्धवरप्रसादः । यवना स्लेच्छ-
जानीया होराविदः । मणित्थ आचार्यः । पराशरः शक्तिः पूर्वा यस्य स शक्ति-
पूर्वः पूर्वशब्देन पिता उच्यते । तैः मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैः दिवसकरादि-
ष्वदित्यादिषु ग्रहेषु वत्सराः संवत्सरा परमायुःप्रमाणाव्दाः प्रदिष्टाः उक्ताः ।
नवतिथिविषयाश्वेत्यादि । अत्र नवभिर्दशसहिता इति सर्वत्रैव शेषभूतं तेन
नवभिः सहिता दश एकोनविंशतिः परमायुः प्रमाणवत्सरा दिवसकरस्यादि-
त्यस्य । तिथिभिः पञ्चदशभिः सहिता दश पञ्चविंशतिश्चन्द्रस्य । विषयैः
पञ्चभिः सहिता दश पञ्चदश भौमस्य । अश्विभ्यां द्वाभ्यां सहिता दश द्वादश
बुधस्य । भूतैः पञ्चभिः सहिता दश पञ्चदश गुरोः । रुद्रैरेकादशभिः सहिता
दश एकविंशतिः शुक्रस्य । दशभिः सहिता दश विंशतिः सौरस्य । एतानि
ग्रहाणां परमायुः प्रमाणवर्षाणि स्वपरमोच्चांशस्थितेषु भवन्ति । तत्रेदृशाः पर-
मोच्चस्थिता ग्रहा आदित्यादयो भवन्ति । तद्यथा । एवं विधा ह्येते यथानिर्दिष्ट-
वर्षाणि प्रयच्छति । १६ । २५ । १५ । १२ । १५ । २१ । २० । अकेनापि एता-
न्यर्कादीनां परमायुः प्रमाणवर्षाणि ॥ १ ॥

भाषा—यदि सूर्यादि ग्रह अपने अपने उच्च में हों तो क्रम से १९, २५, १५, २१, २० इतने वर्ष रव्यादि ग्रहों की आयु होती है । जैसे रवि अपने परम उच्च (मेष के १० अंश पर) में हो तो रविकृत आयु १९ वर्ष, एवं सब ग्रहों के क्रम से समझना चाहिये ॥१॥

अथ परमनीचावस्थितानामायुर्दायज्ञानं मन्दाक्रान्तयाह—

नीचेऽतोऽर्द्धं हसति(१) हि ततश्चान्तरस्थेऽनुपातो

(१) “नवतिथिविषयाश्विभूतेत्यादि” ग्रहाणां परमायुःप्रमाणं यदुक्तं तत्स्वोच्चा-
राशी । ततः क्रमापचयान्नीचे तदर्धमायुःप्रमाणमवशिष्यते । अतो मध्येऽनुपातेन आयुः-
प्रमाणं साध्यमिति सयुक्तिकम् । तद्यथा यदि भगणार्धकलातुल्यनोच्चग्रहान्तरेण पठि-
तोच्चायुर्वर्षार्धं विनश्यति तदेष्टोच्चग्रहान्तरेण किमिति फलं पठितोच्चायुःप्रमाणद्विशो-
ध्यमवशिष्टमिष्टग्रहस्य स्पष्टाय भवतीति ।

होरा त्वंशप्रतिममपरे राशितुल्यं वदन्ति ।

हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागः

सूर्योच्छिन्नद्युतिपु (१) च दलं प्रोज्झय शुक्रार्कपुत्रौ ॥ २ ॥

नीच इति । एत एव दिवसकरादयो नीचे परमनीचे अर्थ परमायुःप्रमाण-
वर्षेभ्योऽनुहरति । अत एवोक्तम् । नीचेऽतोऽस्मात्पूर्वोक्तात्परमायुषोऽर्धं दलं
ह्रनति क्षायते अथेदृशा रथादयः परमनीचस्था भवन्ति । परमनीचस्थास्त एव
पूर्वोक्तायुषोऽर्धं दलं प्रयच्छन्ति । तद्यथा । रविः सार्धानि नव वर्षाणि प्रयच्छति ।
चंद्रः सार्धानि द्वादश वर्षाणि प्रयच्छति । एवं भौमः सप्त सार्धानि । एवं बुधः षट् ।
एवं वृहस्पतिः सप्त सार्धानि । एवं शुक्रो दश सार्धानि । एवं शनैश्च गो दश ।
अकेनापि रवेर्वर्षाणि ६ मासाः ६ । चंद्रस्य वर्षाणि १२ मासाः ६ । भौमस्य
वर्षाणि ७ मासाः ६ । बुधस्य वर्षाणि ६ । गुरो वर्षाणि ७ मासाः ६ । शुक्रस्य
वर्षाणि १० मासाः ६ । शनेः वर्षाणि १० । ततश्चांतरस्थेऽनुपात इति । ततः
तस्मादुच्चात्नीचाच्चान्तरस्थे मध्यवर्तिनि ग्रहेऽनुपातः त्रैराशिकः कर्तव्यः । सर्वेषां
नीचानि अंकतयैव लिख्यन्ते । तत्र तावत्सर्वस्यैव ग्रहस्य परमोच्चपरमनीचान्तरालं
राशिषट्कं भवति । तावदेव लिप्तापिण्डीकृत्य दश सहस्राण्यष्टौ च शतानि
भवन्ति (१००००) तत्र स्त्रोच्चादधिकं ग्रहेण यदा भुक्तं भवति तदा तत्र
स्त्रोच्च विशोध्य शेषस्य लिप्तापिण्डीकार्यम् । अथ स्वनीचादधिकं ग्रहेण भुक्तं
भवति तदा तत्र स्वनीचमपास्यावशेषं लिप्तापिण्डीकार्यम् । तासां ग्रहभुक्त-
लिप्तागण इत्याख्या । तस्यैव ग्रहस्य परमनीचोक्तानि वर्षाणि मासयुतानि
कार्याणि । कथमुच्यते । वर्षाणि द्वादशभिः संगुण्य तत्र मासान्योजयेत्तानि च
मासीकृतान्यादित्यादीनां लिख्यन्ते । तद्यथा । चतुर्दशाधिकं शतं रवेः । प्राग्व-
द्विभज्य सार्धं शतं चन्द्रस्य । नवतिभौमस्य । द्विसप्ततिर्बुधस्य । नवतिर्जीवस्य ।
षड्विंशत्यधिकं शतं शुक्रस्य । विंशत्यधिकं शतं सौरस्य । अकेनापि ११४
सूर्यस्य । १५० चन्द्रस्य । ६० भौमस्य । ७२ बुधस्य । ६० जीवस्य । १२६
शुक्रस्य । १२० शनेः । तत्र त्रैराशिकं यदि भगणार्धालिप्ताभिः खखाष्टदिवस-
स्याभिरेताः (१००००) इष्टग्रहपरमनीचमासा लभ्यन्ते तदा तद्ग्रहभुक्तलि-
प्ताभिः क्रियन्त इति अत्रेदं सूत्रम् । “त्रैराशिके प्रमाणं फलमिच्छाद्यन्तयोः
सदृशराशी । इच्छा फलेन गुणिता प्रमाणभक्ता फलं भवति ।” तदर्थं
ग्रहपरमनीचमासैः सङ्गुण्य भगणार्धलिप्ताभिर्विभज्यावाप्तं मासाः । मासशेषं
त्रिशदगुणितं (३०) प्राग्वद्विभज्यावाप्तं दिवसाः । दिनशेषं षष्ठ्या
सङ्गुण्य प्राग्वद्विभज्यावाप्तं घटिकाः । घटिकाशेषं षष्ठ्या सङ्गुण्य प्राग्व-

(१) “सूर्याच्छिन्नद्युतिपु” इत्यपि पाठस्तत्र सूर्योणाच्छिन्ना द्युतिर्गोषान्ते सूर्याच्छिन्न-
द्युतयस्तेषु तथोक्तेष्विति विग्रहः

द्विभज्यावाप्तं विकलाः पलानि । एवं मासादिभ्रमकान्तः काल आगतः । मासानां द्वादशभिर्भागमपहृत्य चात्राप्तं वर्षाणि लभ्यन्ते । तदेव शेषं मासाः । एवमागतं वर्षादिपरमोच्चायुर्दशितवर्षेभ्यः संशोध्यवशेषं ग्रहेण वर्षादिराद्युपः कालो दत्तो भवति । एवमुच्चाद्विच्युतस्य नीचगप्राप्तस्य कर्त्तव्यं नीचाद्विच्युत-स्योच्चमप्राप्तस्य प्राग्बत्कालमानीय तस्यैव ग्रहस्य परनीचागुपि संशोध्य ग्रहस्या-युपः कालो वर्षादिर्भवति । अथवा यदि राशिषट्कलिप्राभिर्धार्वायुर्वर्षाण्यपची-यन्ते तदैताभिर्ग्रहभुक्तलिप्राभिः किमित्यत्र मध्यमराशिसवर्णकृत्य तेनाकेन ग्रहभुक्तलिप्रा गुणयेत् । ततः परिवर्त्य भागहारच्छेदांशैरगच्छेदसङ्कुण्णच्छेदांशां-शगुणो भाज्यस्य भागहारः सघणितयोगित्यत्र वर्षाणामेकम् स्वच्छेदादिकेन भगणार्धलिप्राः सङ्कुण्ण खखपट्चन्द्रनयनलिप्रा भवन्ति (२१६००) एताभि-र्भागमपहृत्य वर्षाणि लभ्यन्ते । शेषं द्वादशभिः सविकलं सङ्कुण्णयाधःस्थस्य सविकलस्य षष्ठ्या भागमपहृत्योपरितनराशौ संशोध्य प्राग्बद्विभज्य मासा लभ्यन्ते । एवं शेषं सविकलं त्रिशता षष्ठ्या सङ्कुण्ण दिनघटिका विघटिका-श्चानयितव्याः । शेषं प्राग्बत्कर्म । अथ लघुनोपायेन पिएडगुण आनयनं प्रदर्श्यते । तद्यथा । इष्टग्रहान् प्रागुक्तमुच्चध्रुवकं विशोध्यवशेषं कर्म भूमौ स्थापयेत् । अथोच्चध्रुवकं न शुध्यति तदा ग्रहं राशिद्वादशकं दत्त्वा तस्मादुच्चम-पास्यावशेषं स्थापयेत् । ततस्तद्वशेषं राशिषट्कादूनं भवति तदा राशिद्वादश-कादपास्य शेषं स्थाप्यम् । राशिषट्काधिकं भवति तदा तदेव ग्राह्यम् । तत्कर्म भूमौ राश्यादिकं विलिप्तान्तं स्वपरमायुर्वर्षैः सङ्कुण्ण स्वच्छेदैर्विभज्य लब्धनुप-पर्युपरि योजयेत् । अवशेषं स्थापयेत् । विलिप्तानां च षष्ठ्या भागानां त्रिशता राशीनां द्वादशभि राशिभ्यो लब्धं वर्षाणि । तद्वशेषं मासाः । भागशेषं दिवसाः । लिप्ताशेषं घटिकाः । विलिप्ताशेषं चषका इति । एतावतैव कर्मणा स्फुटं भवति । तथा च सारावल्याम् । “स्वोच्चशुद्धो म्रः शोध्यः षड्भादूनो भ-मण्डलात् । स्वपिएडगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः ॥ (११२।३०।६०। ६० ।) इति । होरा त्वंशप्रतिममिति । होरा लग्नम् । सा चांशप्रमाणानि वर्षाणि ददाति यावन्तो नवांशका लग्नेन भुक्तास्तावन्त्येव वर्षाणि ददाति । तत्करणं यथा । तात्कालिकस्य लग्नस्य राशीनपास्य शेषं लिप्तापिएडीकार्यम् । तत्र शत-द्वयेन भागमपहृत्यावाप्ता भुक्तनवांशकास्तावन्त्येव वर्षाणि लग्नमायुर्दायं प्रयच्छति अवशेषेण सह त्रैराशिकं कृत्वा वर्षाणामधस्तान्मासाद्यं स्थापयि-तव्यम् । तद्यथा । यदि लिप्ताशतद्वयेन द्वादश मासा लभ्यन्ते तदावशेषलिप्ताभिः कियन्त इति । तेनावशेषलिप्ता द्वादशभिः सङ्कुण्ण शतद्वयेन विभज्यावाप्तं मासास्ते च वर्षाणामधः स्थाप्याः मासशेषं त्रिशता सङ्कुण्ण शतद्वयेन प्राग्बद्वि-भज्यावाप्तं च दिवसाः ते मासानामधः स्थाप्याः । एवं लग्नायुर्दायः । अपरे राशितुल्यं वदन्ति । अपरेऽन्ये मणित्यादय आचार्या लग्नस्य राशितुल्यमा-युर्दायमिच्छन्ति । लग्नेन यावन्तो राशयो भुक्तास्तावन्त्येव वर्षाणि लग्नायुः ।

लग्नस्य भुक्तभागादिकं लिप्तापिण्डीकृत्य मासाद्यानयने त्रैराशिकं कर्तव्यम् । यद्यष्टादशभिलिप्ताशतैर्द्वादश मासा लभ्यन्ते तदैताभिलिप्तभुक्तलिप्ताभिः कियन्त इति । प्राग्वद्वर्षाणामधस्तान्मासाद्य निहितव्यम् । एवं केचित्प्रायुर्दायमिच्छन्ति । तथा च मणित्थः । “लग्नराशिसमाश्चाद्दश मासाद्यमनुपाततः । लग्नायुर्दायमिच्छन्ति होराशास्त्रविशारदः ॥” इति । तदेव मतं शोभनमित्यस्माकमभिप्रेतम् । अन्ये त्वेवमिच्छन्ति । यथा लग्नांशपतौ बलवति अंशतुल्यं राश्यधिपे बलवति च राशितुल्यमिति । तथा च सारावल्याम् “लग्नादत्तोऽंशतुल्यः स्यादन्तरे चानुपाततः । तत्रतौ बलसंयुक्ते राशितुल्यं च भाधिपे ॥” हित्वा वक्रमिति । येन ग्रहेण यावत्संख्यं आयुर्दायो दत्तस्तस्य स्वं भवति तस्मात्स्वादायुषो भौमादिकस्य ग्रहस्य वक्रं विपरीतगतं हित्वा वर्जयित्वा यो ग्रहो रिपुगृहगतः शत्रुक्षेत्रावस्थितो भवति तेन स्वादायुषस्त्रिभागा ह्रीयते स ग्रहस्त्रिभागमपहरतीत्यर्थः । वक्रितः पुनः शत्रुक्षेत्रगतोऽपि नापहरति । तथा च “वक्रचारं विना त्र्यंशं शत्रुराशौ हरेद्ग्रहः ।” एतद्ब्रूनां मतम् । आचार्यस्य पुनरेव एव पक्षोऽभिप्रेतः । अन्यथा हित्वा भौमं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागम्” इत्येवावदयन् । वक्रं हित्वा यो ग्रहो रिपुराशिगत एव ज्ञायते यथा वक्रगो ग्रह आयुर्दायं सबलत्वात् त्रिगुणं ददाति तथाऽत्रापि नापहरतीति निश्चयः । अन्ये पुनरेवं व्याचक्षते । यथा वक्रमङ्गारकं हित्वा यो ग्रहो रिपुराशिगस्तेन स्वादायुषस्त्रिभागा ह्रीयते भौमः शत्रुक्षेत्रगतोऽपि नापहरति । अत्र च बादरायणः । “भूम्याः पुत्रं वर्जयित्वाऽरिभस्था हन्युः स्वात्वादायुषस्ते त्रिभागम् ।” इति । सूर्योच्छिन्नद्युतिषु सूर्येण रविणा उच्छिन्ना कर्तिता द्युतिर्येषां ते सूर्योच्छिन्नद्युतयः आदित्यमण्डले अस्तमितेषु ग्रहेषु दलमर्थं ह्रीयते । किन्तु शुक्रार्कपुत्रौ सितशनैश्चरौ प्रोम्भय वर्जयित्वा । तावत्सङ्गतावपि नापहरतः । तथा च बादरायणः । “अस्तं याताः सर्व एवार्धहानिं कुर्युर्हित्वा दैत्यपूज्यार्कपुत्रौ” ॥ २ ॥

भाषा—ग्रह अपने परम नीच में हो तो उपरोक्त आयु का आधा नाश हो जाता है, अर्थात् आधा रहता है । इसलिये उच्च और नीच के मध्य में अनुपात से आयुर्दाय का मान समझना चाहिए । लग्न की आयु-अंश (लग्न भुक्तनवांश) तुल्य वर्षादि होती है । दूसरे आचार्य लग्न के भुक्तराशि तुल्य वर्षादि लग्नायु कहते हैं । वक्रमति ग्रह को छोड़कर शत्रुगृह में रहनेवाले ग्रहों को छोड़कर शत्रुगृह में रहनेवाले ग्रहों का गणितागत आयु का तृतीयांश नष्ट हो जाता है । एवं शुक्र और शनि को छोड़कर अन्य ग्रह यदि सूर्यसान्निध्य वश अस्त हो तो उसका आधा आयुर्दाय नष्ट हो जाता है ॥२॥

स्पष्टार्थ चक्र—

| ग्रह | र. | च. | मं. | बु. | गु. | शु. | श. | |
|------|----|----|-----|-----|-----|-----|----|----|
| उच्च | १९ | २५ | १५ | १२ | १५ | २१ | २० | व. |
| नीच | ९ | १२ | ७ | ६ | ७ | १० | १० | ब. |
| | ६ | ६ | ६ | ० | ६ | ६ | ६ | म. |

विशेष अर्थ—उच्च और नीच के मध्य में अनुपात इस प्रकार है 'यदि उच्च और नीच के अन्तर (६ राशि) में आधा नष्ट होता है तो ग्रह और उच्च के दृष्ट अन्तर में क्या ? इस प्रकार उच्च और ग्रह के अन्तर राश्यादि को पठित वर्ष के आधे मान से गुणाकर ६ के भाग देने से लब्धि मुख्य वर्षादि या मासादि मान को पठित उच्चवर्ष प्रमाण वर्ष में घटाने से उस ग्रह का आयुर्दाय होता है ।

लग्नायु के विषय में—आचार्य का अभिप्राय है कि यदि लग्न की राशि वली हो तो राशितुल्य वर्षादि समझना ।

वक्रोग्रह—शत्रुग्रह में भी हो तो उसका तृतीयांश नष्ट नहीं होता है । क्योंकि वक्रोग्रह के आयुर्दाय की वृद्धि होती है । इसलिये यहाँ 'वक्र' शब्द से वक्रगति सम्झना चाहिये । किसी ने 'वक्र' शब्द से मङ्गल का ग्रहण किया वह असङ्गत होने के कारण बहुत सम्मत नहीं है । १२ ।

उदाहरण—सं० १९६९ वैशाखशुक्ल प्रतिपदा गुरुवार सूर्योदय से दृष्ट घटीफल १।५९ समय में किसी का जन्म है । तो उस समय के स्पष्ट ग्रह और जन्म कुण्डली—

जन्मलग्न चक्र—

| | | |
|-------|-----------|------------|
| २ | चं. | शु. १२ बु. |
| मं. ३ | सू. १ के. | ११ |
| ४ | श. | १० |
| ५ | रा. ७ | ६ |
| ६ | मंगु. | |

| | |
|---------------|-------------|
| स्पष्ट सूर्य— | ० ६ ४९ ४० |
| चन्द्र— | ० १२ १५ ७ |
| मङ्गल— | २ १३ २० २७ |
| बुध— | ११ २४ १७ २५ |
| गुरु— | ७ १४ १० २७ |
| शुक्र— | ११ १६ २० ७ |
| शनि— | ० २८ ८ १५ |
| लग्न— | ० २१ २१ ९ |

स्पष्ट सूर्य ०६।४९।४० को उसके उच्च ०।१० के साथ अन्तर ०।३।१०।२० की कला १९०।२० को रवि परमायुर्दाय के आधे ९ वर्ष ६ मास अर्थात् ११४ मास से गुणा करके २१६९८।० इसमें चक्रार्धकला १०८००० का भाग देकर लब्ध ०।२०।

१६२० को उच्च गतवर्ष १९ में घटाने से १८।१।२९।४३।४० वर्षादि सूर्यायुर्दाय हुआ। इसी प्रकार चन्द्रायुर्दाय २३।६।२१।४०। भौमायुर्दाय ९।४।१०।०।०। बुधायुर्दाय ६।३।२१।३६।०। जीवायु ९।७।१०।३०। शुक्रायुर्दाय २०।४।१६।२१।०। शनैश्चरायुर्दाय १०।२।१२।०।०। लग्नायु साधन-राश्यादि लग्न ०।२।१।२१।१९ यहाँ लग्न की राशि मेष और तुला का नवमांश है। ये दोनों "स्वामिगुरुज्वीक्षितयुत" नहीं होने के कारण निर्दल हैं। इसलिये लग्न भुक्त नवांश तुल्य वर्षादि लग्नायु होगी। लग्न के भुक्तांग २१।२।१।१९ इसकी कला १२८।१।१० इसमें २०० का भाग देने से लब्धि मान ४ शेष को ६० से गुणा कर २०० के भाग देकर लब्ध दिन २६ एवं घटीपल = २।१।२ इस प्रकार ६।४।२६।२२।१३ लग्नायु हुई।

ऊपर साधित आयुर्दाय जानने का दूसरा सरल प्रकार सारावली में इस प्रकार है यथा—

“स्वोच्चशुद्धो ग्रहः बोध्यः पञ्चाद्यूतो भमण्डलान्।

स्वपिण्डगुणितो भक्तो भादिमानेन वत्सराः ॥

भाषा—ग्रह को अपने उच्च में घटाने से ६ राशि से कम हो जाए तो उसको १२ में घटा कर ग्रहण करें। और ६ राशि या उससे अधिक हो तो उसी को ग्रहण कर के अपने पिण्ड (उच्च गत पठित वर्ष) संख्या से गुणा कर के राश्यादि में अपने अपने मान से भाग देने (अर्थात् विकला और कला स्थान में ६० के, अंश स्थान में ६० के और राशि स्थान के १२ से भाग देने से) वर्षादि आयुमान होता है।

जैसे—सूर्य को अपने उच्च में घटाने से ०।३।१०।२० यह ६ राशि से कम है इसलिये १२ राशि में घटा कर ११।२६।४९।४० इसको सूर्य के पिण्ड १६ से गुणा करने से २०९।४९४।९३।७६० विकला में ६० के भाग देकर लब्धि को कला में जोड़कर फिर कला में ६० का भाग दे कर लब्धि को अंश में, पुनः अंश में ३० का भाग देकर लब्धि को राशि में, फिर राशि में १२ का भाग देने से लब्धि वर्ष और शेष मासादि एवं पूर्वतुल्य ही वर्षादि १८।१।२९।४३।४० सूर्यायुर्दाय हुआ।

इसी प्रकार सभी ग्रहों के आयुर्दाय वनते हैं।

अब जो ग्रह शत्रु ग्रह में हो उसका तृतीयांश और अस्त का आधा आयुनाशक कहा गया है। तथा आगे के श्लोकानुसार चक्रार्ध हानि भी कही गई है। इसलिये द्वादश भाव में बुध और शुक्र दो पड़े हैं और उनमें शुक्र उच्च होने के कारण बली है। इसलिये केवल शुक्र की ही चक्रार्ध हानि करने से पूर्वसाधित आयु का आधा १०।२।८।१०।३०।० वर्षादि इसमें शत्रुग्रह में रहने के कारण से फिर इसका तृतीयांश ३।४।२२।४३।३० वर्षादि घटाने से ६।९।१५।२७।० यह शुक्र का स्पष्टायुर्दाय हुआ। एवं बुध शत्रु के ग्रह में है अतः बुधायु के तृतीयांश २।१।७।१२ बुधायु में घटाने से बुध का स्पष्टायुर्दाय ४।२।१४।२४।० हुआ। एवं गुरु अष्टमभाव में है इसलिये जीवायु के दशमांश ०।११।१६।१५ को जीवायु में घटाने से ८।७।२६।१५।० गुरु का स्पष्टायुर्दाय

हुआ । तथा चन्द्रमा सूर्यरश्मि से अस्त है इसलिये उसका पूर्व साधित आयु का आधा ११:१।१०।५० स्पष्टायुर्दाय हुआ एवं सबका योग = ७६।५।२५।१।५२ वर्षा द आयु हुई ।

| | | | | | |
|-------------|----|---|----|-----|----|
| सूर्यायु | १८ | ९ | २९ | ४३ | ४० |
| चन्द्रायु | ११ | ९ | १० | १० | ० |
| भौमायु | ९ | ४ | १० | ० | ० |
| बुधायु | २ | ४ | १४ | २४ | ० |
| जीवायु | ८ | ७ | २६ | १५ | ० |
| शुक्रायु | ६ | ९ | १५ | २७ | ० |
| गर्गश्चरायु | १० | ५ | १२ | ० | ० |
| लग्नायु | ६ | ४ | २६ | २२ | १२ |
| योग = | ७६ | ५ | २५ | १५२ | |

वहुसम्मत राशितुल्य लग्नायुर्दाय-

साधन प्रकार—

“लग्नराशिसमाश्वाब्दा,

द्विघ्नांशाद्याः शरोद्धृताः ।

मासाः, शेषांशकाद्यास्तु,

रसघ्ना दिवसादिकाः ॥

लग्न की जितनी भुक्तराशि संख्या

हो उतने ही वर्ष और अंशादि को २ से गुणा कर ५ के भाग देने से लब्धितुल्य मास, फिर शेष अंशादि को ६ से गुणा करने से दिनादि होते हैं ।

यथा लग्न राश्यादि १०।२६।२८।५ यहाँ राशि तुल्य वर्ष १०, अंशादि २६।२८।५ को २ से गुणा कर ५२।५६।१० इसमें ५ के भाग देने से लब्धितुल्य १० मास शेष अंशादि को ६ गुणा करने से दिनादि १७।३७।० एवं लग्नायु वर्षादि १०।१०।१७।३७।०॥

इस प्रकार इसकी युक्ति यह है कि—यदि ३० अंश में १२ मास तो शेष

अंशादिकों में क्या ? $\frac{१२ \times \text{शेष अंशादि}}{५} =$ लब्धिमास संख्या, शेष

$\frac{(\text{शेष अंशादि})}{५}$ को ३० से गुणा करने से $\frac{\text{शेष अंशादि}}{५} =$ शेष अंश $\times ६ =$ दिनादि

होते हैं ॥२॥

अथ ग्रहाणां स्वादायुषश्चक्रपातेनापहानिं प्रहर्षिण्याऽऽह—

सर्वाद्वित्रिचरणपञ्चषष्ठभागाः क्षीयन्ते व्ययभवनादसत्सु वामम् ।

सत्स्वर्द्ध हसति तथैकराशिगानामेकोऽंशं हरति बली तथाह सत्यः ॥३॥

सर्वाद्वेति ॥ असत्सु पापग्रहेषु व्ययभवनादारभ्य द्वादशस्थानात्प्रभृति सप्तमान्तं यावद्व्यवस्थितेषु वा व्युत्क्रमेण यथाक्रमं सर्वाद्विद्वयो भागाः क्षीयन्ते । तत्र लग्नात् द्वादशस्थः पापग्रहः सर्वमायुरात्मीयमेवापहरति एकादशस्थोऽर्द्धं दशमस्थश्चिभागं नवमस्थश्चतुर्भागम् अष्टमस्थः पञ्चमभागं सप्तमस्थः षड्भागमिति । सत्स्वर्द्धमिति । एतेष्वेव व्ययादिषु स्थानेषु सत्सु शुभग्रहेषु व्यवस्थितेष्वशुभग्रहोक्तस्यार्द्धं क्षीयते । तत्र लग्नात् द्वादशस्थः शुभग्रहः स्वायुषोर्द्धमपहरति । एकादशस्थश्चतुर्भागं दशमस्थः षड्भागं नवमस्थोऽष्टमभागम्

अष्टमस्थो दशमभागं सप्तमस्थो द्वादशभागमिति । तथैकराशिगानामिति । उक्तस्थानेषु यदा ग्रहद्वयं भवति बृहो वा स्युस्तदा तेषामेकसंस्थितानां मध्यादेक एव यो बली दीयेवान्स एवैकोऽगं भागं यथागठितमपहरति नान्ये तत्रस्था अपहरन्ति । एतः सत्य आह सत्याचार्यः कथयति । अंशग्रहणं यथासम्भवं भागप्रदर्शनार्थम् । तथा च सत्यः । “एकादशोत्क्रमात्सप्तमादिति प्राह हरण-कर्माणे । एकत्रोगेषु दीर्घाधिकः स्वभागं हरेदेकः ॥ अर्धं तृतीयभागं चतुर्थकं पञ्चमं च षष्ठं च । आयुःपिण्डात्पापा हरन्ति सौम्यास्तथार्धानि ॥ द्वादशसत्यः पापः स्वन्दायं शोभनस्ततोऽर्द्धं तु । अपहरति सर्वमायुर्यथा च योगस्तमपि वक्ष्ये इति ॥ एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण । क्षपयति यथोक्त-मंशं स एव नान्योऽपि तत्रस्थः ॥” इति । वराहमिहिरस्याप्येवं मतम् । इह सत्यमतोपन्यास आगमानुश्रुतिप्रदर्शनार्थः ॥ ३ ॥

भाषा—द्वादश भाव से उत्क्रम से सप्तमभाव पर्यन्त पापग्रह हों तो क्रम से गणितागत आयु का सब, आधा, तृतीयांश, चतुर्थांश, पञ्चमांश और षष्ठांश का नाश हो जाता है और यदि उन्हीं स्थानों में शुभ ग्रह हो तो पाप ग्रह की अपेक्षा आधा नाश होता है ।

जैसे द्वादश भाव में पापग्रह हो तो उसका सब भाग, और शुभग्रह का आधा, तथा एकादश में पापग्रह का आधा और शुभग्रह का चतुर्थांश, दशम में पाप का तृतीयांश और शुभग्रह का षष्ठांश, नवम में पाप का चतुर्थांश और शुभ का अष्टमांश, अष्टम में पाप का पञ्चमांश और शुभग्रह का दशमांश तथा सप्तम भाव में पाप का षष्ठांश और शुभग्रह का द्वादशांश आयुर्दीय का नाश होता है । यदि एक ही स्थान में २ या अधिक ग्रह हो तो उन में जो सब से बली हो तो केवल उसी ग्रह का अंश नष्ट होता है; सब ग्रहों का नहीं, ऐसा सत्याचार्य का मत है ॥३॥

उदाहरण :—पूर्व श्लोक में देखिये ॥३॥

अथ लग्नस्थः पापश्चक्रपातवदायुषोऽशमपहरति तस्यांशप्रमाणज्ञानं

वसन्ततिलकेनाह—

साद्वर्द्धितोदितनवांशहतात्समस्ताद्भागोऽष्टयुक्तशतसंख्यमुपैति(१)नाशम् ।
क्रूरे विलग्नसहिते विधिना त्वनेन सौम्येक्षिते दलमतः प्रलयं प्रयाति ॥४॥

साद्वर्द्धितेति ॥ उदित्ता ये नवांशास्ते उदितनवांशाः सहाद्वर्द्धितेन नवांशेन वर्तन्त इति साद्वर्द्धितोदितनवांशाः । एतदुक्तं भवति । तात्कालिकस्य स्फुटलग्नस्थ ये भुक्ता भागाः तेषां लिप्ताः पिण्डोक्त्य शतद्वयेन भागमपहृत्या-वाप्त तस्मिन्काले भवक्रस्य च यावन्तो नवांशका उदितः पश्चाद्वर्द्धितो नवांशकः स तत्र उदितनवांशसमूहे योज्यः । एवं कृते साद्वर्द्धितोदितनवांश-समूहो भवति । तेन गणितागतं समस्तमेवायुःपिण्डं गुणयेत् । एवं कृते साद्वर्द्धि-

(१) “शतसङ्ख्य उपैति नाशम्” इति पाठान्तरम् ।

दितोद्विनवांशहतः समस्त आयुःपिण्डो भवति । तस्मादग्राधिकशतेन भागे हृते
यद्वाप्यते वर्षादि तन्नाशमुपैति क्षयं गच्छति । किं सर्वेषां नेत्याह । क्रूरे
विलग्नसहित इति । यदा विलग्नस्थः क्रूरः आदित्याङ्गारशनैश्चराणामन्यतमो
भवति तदैव आगत वर्षादि लग्नस्तायुःपिण्डात्सशोध्यम् । एवं कृते तात्काल-
जातस्य जंतोरायुर्वर्षादि स्फुटं भवति किन्तु प्रत्येकस्य ग्रहस्य तत्कर्त्तव्यं
कर्त्तव्यं येनायुःसंशुद्धानि दशवर्षाणि सर्वेषां भवन्ति । विधिना त्वनेन
सौम्येक्षित इति अनेन विधिना न एव लग्नस्थः क्रूरप्रदो यदा सौम्येक्षितः
शुभग्रहेण दृश्यते तदा विधिरा त्वनेन यत्फलमायुः पिण्डात्सार्द्धो-
दितः दितनवांशहतात्समस्तायुः पिण्डादग्रात्तरशतेन भागे हृते यत्फलं लब्धम्
अता दलमर्थं प्रलयं प्रयाति तद्वर्धकृत्यायुः पिण्डात्पातयेद्वं कृते आयुः-
प्रमाणं स्फुटं भवति । अन्ये एवं व्याचक्षते । तात्कालिकेन लग्नेन भुक्ता ये
नवांशकास्ते सार्द्धोदितनवांशेन सह ग्राह्याः । अयमर्थः । तात्कालिकस्य लग्नस्य
राशीनपास्य भागान् लिप्तापिण्डोक्तस्य सतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्तमुदितांश-
कास्तैः प्राग्वत्कार्यम् । एतदपि स्थूलम् । तेन लग्नभागांलिप्तीकृत्य ताभिः प्रत्येक-
ग्रहदत्तवर्षादिकायुर्दायं संगुण्य स्वच्छेदैर्भागमपहृत्यापयुपरि योजयेत् । वर्ष-
भागकलाभिर्भागमपहरेल्लब्धं वर्षादि तस्य प्राग्वत्पालनं कार्यम् । तथा च
सारावल्याम् । “लग्नांशल्लिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विद्वाद्यायुषा । भाव्या मंडल-
लिप्ताभि २१६००लब्धं वर्षादि शोध्येत् ॥ स्वायुषो लग्नगे क्रूरे सौम्यदृष्टे च
तद्वलम् ॥” (१) इति । एतदेव शोभनमस्माकं प्रतिभाति । न केवलमत्र याव-
च्चक्रपातेऽप्येवं विधिः लग्नादिग्रहं विशोध्यानशेषं यदि पङ्क्तादून तदा तस्य
ग्रहस्य चक्रपातोऽस्ति नान्यथेति तेनावशेषेणायुःपिण्डस्य भागमपहृत्य लब्धं
प्राग्वदायुः पिण्डं पातयेत् तेनायुश्चक्रेण शुद्धं भवति । अथ रूपादूनो भागहारो
भवति तदा रूपाद्वागहारं संशोध्य शेषेणायुर्दायं संगुण्य रूपेण भागमपहृत्य
लब्धमेवायश्चक्रपातशुद्धं भवति । उक्तं च । “लग्नं ग्रहोनकं पङ्क्तादूनकं यद्यसौ
हरः । आयुः पिण्डं भजेत्तेन लब्धं वर्षादि शोध्येत् । रूपाद्यदूनो हारः
स्याद्रूपाच्छुद्धेन ताडयेत् । रूपेण विभजेल्लब्धं तदैवायुः स्फुटं भवेत् ॥”

(१) एतेन सारावलीवचनेन क्रूरे विलग्नगते सति लग्ननवांशकला × ग्रहायुः
२१६००

एतन्मितं ग्रहायुःप्रमाणेभ्यः शोध्यं भवितुमर्हति । अयाव लग्ननवांशकलाज्ञानार्थ-
मनुपातो—यद्येकस्मिन्नवांशके कलाशतद्वयं भवति तदा लग्नभुक्तनवांशेषु कियत्य इति

लब्धा लग्ननवांशकलाः = $\frac{२०० \times \text{लग्ननवांशस}}{१}$ अनेनेद (१)सगुण्याध्य जात शोध्य आयुः

$\frac{२०० \times \text{लग्ननवांशस} \times \text{ग्रहायुः}}{२१६००} = \frac{\text{लग्ननवांशस} \times \text{ग्रहायुः}}{१०८}$ एतेन सार्द्धोदितोदितनवांशहता-

दित्यादि सर्वमुपपन्नम् ।

अस्मिन्साद्धोदिते कर्मणि लभे यदा पापसौम्यौ भवतस्तदा यो लभोदितान्शकः समीपवर्ती स एव ग्राह्यो नेतर इति । अत्र क्रूरशब्देन क्षीणश्रद्धमानं ग्राह्यः । तथा च वादरायणः । “सूर्याग्रशनीनामेकस्मिन्ल्लभगे भवति हानिः । विधिना त्वनेन सौम्येक्षिते दलं पातयेल्लब्धम्” ॥ ४ ॥

भाषा—लग्न में यदि पापग्रह हों तो लग्न के अधोदित (वर्तमान) नवांश सहित जितने गत नवांश हो उससे गणितागत समस्त आयुःप्रमाण (वर्षादि) को गुणा करके उसमें १०८ का भाग देकर जो वर्षादि लब्ध हो उतना नाश हो जाता है, अर्थात् उतने वर्षादि गणितागत आयु में से घटा देना चाहिये । यदि लग्नगत पापग्रह पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उक्त विधि से प्रातःफल (वर्षादि) का मात्र आधा ही नाश होता है ॥४॥

विशेष अर्थ—यहाँ अधोदित पद का यह अभिप्राय है कि जो नवांश पूर्ण उदित नहीं हो गया हो अर्थात् वर्तमान नवांश की जितनी कला उदित हुई हों वह अधोदित नवांश कहलाता है उस को लग्न के गत नवांश में जोड़ने से अधोदित नवांश सहित उदित नवांश होता है । यहाँ कोई लग्न राश्यादि की कला बना कर उसमें २०० का भाग देकर लब्ध और शेष को नवांश संख्या मानते हैं । और कोई कोई लग्न की राशि को छोड़कर केवल अंशादि की कला बना कर उसमें २०० का भाग देकर जो शेष सहित लब्ध हो उसी को उक्त नवांश संख्या मानते हैं ।

इस प्रकार नवांश संख्या बना कर आयु को गुणा कर के गुणनफल में १ ८ का भाग देने से जितने वर्षादि हो, उतने ही लग्न की कला से आयु को गुणा करके उसमें २१६०० (भवक्र कला) का भाग देने से होते हैं । इसलिये सारावली में—

“लग्नांशलिप्तिका हत्वा प्रत्येकं विहगायुपा । भाग्यामण्डललिप्ताभिलब्धं वर्षादि शोधयेत् । स्वायुषो लग्नगे क्रूरे, सोम्यदृष्टे च तल्लम् ।” ऐसा ही पाठ है ।

लग्न में पापग्रह हो तो लग्न के भुक्तांश के अनुपात से आयुर्दाय का नाश होता है अर्थात् यदि लग्न प्रथम नवांशारम्भ में ही हो तो लायु का ह्रास नहीं होता है । तथा समस्त राशियों का नवांशभुक्त कर चुका हो तो समस्त आयु का नाश हो जाता है । समस्त राशियों की नवांश संख्या १०८ है इसलिये त्रैराशिक से अनुपात हुआ कि—यदि १०८ भुक्तांश संख्या में समस्त आयु का नाश होता है तो लग्नभुक्त इष्ट नवांश संख्या में क्या ? —

$$\text{इस प्रकार लब्ध आयु का ह्रास मान} = \frac{\text{समस्त आ०} \times \text{लग्नभु}}{१०८} = \frac{\text{समस्त आ०}}{२१६००}$$

$$\times \frac{\text{लग्नभुनवांशफला}}{२००} = \frac{\text{स० आ०} \times \text{लग्नभुन० क०}}{२१६००}$$

इस प्रकार बराहमिहिर और सारावली दोनों के प्रकार उपपन्न होते हैं । यदि लग्नकी राशिको छोड़कर भुक्तनवांश संख्या ली जाए तो इस प्रकार से अनुपात ही नहीं हो सकता । अतः राश्यादि लग्न की समस्त भुक्तनवांश अथवा कला ग्रहण करके उक्त क्रिया करनी चाहिये ॥४॥

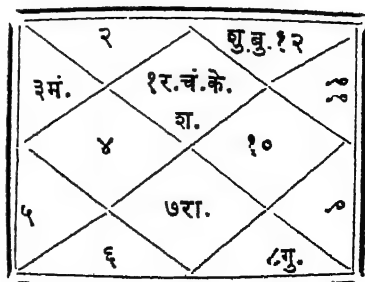
उदाहरण—उपपत्ति से सिद्ध हो चुका है कि लग्न नवांश संख्या से आयु को गुणा कर १०८ का भाग देने से, तथा लग्न की नवांश कला से गुणाकर २१६०० के भाग देने से लब्ध तुल्य ही है। इसलिये सारावली प्रकार में भी “लग्नांश” पद से सार्वोदितोदित नवांश ही समझना चाहिए। क्योंकि अंश पद से नवांश ही समझा जाता है। इसलिये सुभीता के लिये सारावली के अनुसार ही उदाहरण दिखलाता हूँ। यहाँ यह भी ध्यान में रख लेना चाहिये कि सब ग्रहों की आयु के योग को एक ही बार लग्न कला से गुणा करके २१६०० के भाग देकर जो फल होगा, वही प्रत्येक ग्रह की आयु को पृथक् पृथक् गुणा करके २१६०० का भाग देकर पृथक् लब्धवर्षादि के योग करने से होगा। इसलिये प्रत्येक ग्रह की आयु पर से पृथक् पृथक् फल सावन कर के अपनी-अपनी आयु में घटा कर स्पष्ट आयुर्दाय बनाना चाहिये क्योंकि जिस ग्रह की जितनी आयु होगी उतनी ही उसकी दशा “दशाक्रम” में लगानी पड़ती है। एवं यहाँ क्षीण चन्द्रमा को पापग्रह नहीं समझना चाहिये क्योंकि बादरायण आदि पाप के स्थान में केवल रवि, मङ्गल, शनि ये तीन ही ग्रहण किये हैं। यथा—“सूर्यङ्गारशनी-नामेकतमे लग्ने भवति हानिः” इति।

पूर्वकल्पित उदाहरण में—लग्न में पापग्रह है इसलिये इस श्लोक के अनुसार लग्न ०।२१।२१।१९ के गत और वर्तमान नवांश संख्या ७ से पूर्व ाधित समस्त आयुर्दाय ७६।५।२५।१।५२ को गुणा करने से ५३५।४।२५।१३।४ इसमें १०८ के भाग देने से लब्ध वर्षादि ४।११।१४।४४।३ इसको सम्पूर्ण आयु में घटाने से शेष ७१।६।१०।१७।४९ यह जातक का मय आदि मत से वर्षादि स्पष्ट आयुर्दाय हुआ। अथवा इसप्रकार प्रत्येक ग्रह के आयुर्दाय को पृथक् पृथक् गुणाकर १०८ के भाग देने से जो लब्ध हो वह अपने-अपने साधित आयु में घटाने से पृथक् पृथक् स्पष्टायु होती है। सबके योग करने से फिर तुल्य ही हो जाता है। यहाँ शुभग्रह की दृष्टि नहीं है इसलिये १०८ वां भाग पूरा घटा दिया गया है। जहाँ लग्न पर शुभग्रह की दृष्टि हो वहाँ लब्ध के आधे को ही घटाकर स्पष्टायु समझना चाहिये। कार्यक्षेत्र में वर्तमान नवांश थोड़ा भुक्त हुआ हो तब भी उसकी १ संख्या ग्रहण की जाती है। इसलिये यहाँ लग्ननवांश संख्या ७ ही ली गई है।।

सगति-रव्यादिस्पष्टग्रह

| | | | | | |
|-----|----|--------|----|-----|------|
| र० | ० | ६४१४० | ग० | ५८ | ३१ |
| च० | ० | १२१५५७ | ग० | ७९० | ४७ |
| म० | २ | १३२० | ७७ | ग० | ३२४० |
| बु० | ११ | २४१७ | २५ | ग० | ३५३५ |
| गु० | ७ | १४१० | २७ | ग० | ४१८ |
| शु० | ११ | १६२० | ७ | ग० | ७३१ |
| श० | ० | २८५५ | ५ | ग० | ७५६ |
| ल० | ० | २१२११९ | * | * | * |

जन्मलग्न कुण्डली



मयादि कथित पिण्डायुसाधन का उदाहरण जो ९१ पृ- में दिया गया है, वहाँ चन्द्रादि ग्रहों के स्वल्पान्तर से घटी पल में कुछ न्यूनाधिक ग्रहण किया गया है। तथा 'सार्धोदितोदितनवांशहतात्' इस प्रकार से समस्त आयुर्दाय को गुणाकर हानि दिखलाई गई है। यहाँ "स्वोच्छुद्धो ग्रह" इत्यादि रीति से ग्रहों के सूक्ष्म आयुर्दाय-मान को पृथक्-पृथक् "सार्धोदितोदितनवांशहतात्" इत्यादि क्रिया द्वारा वास्तव नवांश-संख्या से स्पष्ट बनाकर दशाक्रम लिखने की रीति दिखलाई जाती है। द्वितीय श्लोक के उदाहरण में जिन प्रकार सूर्य का आयुर्दाय साधन किया गया है उसी प्रकार चन्द्रादि ग्रहों के सूक्ष्म वर्षादि आयुर्दाय चक्र न० (१) में देखिये।

(१) चक्र

| | | |
|------|----|---------|
| सूआ० | १८ | ९२९४३४० |
| चआ० | २३ | ६२१३८४५ |
| मआ० | ९ | ४९५३१५ |
| बुआ० | ६ | ३२१३९० |
| गुआ० | ९ | ७१२२३१५ |
| शुआ० | २० | ४१६२२७ |
| शआ० | १० | ५११५८३० |

यहाँ चन्द्रमा के अस्त होने के कारण अर्धहानि, शुक्र के चक्रार्ध हानि के बाद शत्रुग्रह में होने के कारण अंश हानि भी प्राप्त है। तथा बुध शत्रुग्रह में है अतः उसका अंशहानि, एवं गुरु अष्टम भाव में है अतः उसका दशांश हानि करके तथा शेष ग्रहों के यथागत आयुर्दाय द्वितीय चक्र में देखिये। अब यहाँ लग्न में पापग्रह (शनि) है। अतः राश्यादि लग्न ०।२१।२१।१९ की

कला १२८१०'। १९" में २०० के भाग देने से लब्धि ६ उदित नवांश संख्या हुई वर्तमान सप्तम नवांश आर्धोदित है इसलिये शेष कला ८१'। १९" को ६० से गुणाकर २०० के भाग देकर लब्धि सप्तम नवांश का अवयव २४'। २४" अतः उदित नवांश

चक्र (२)

| अस्त-शत्रुग्रहगत और चक्रार्ध हानि शुद्ध आयुर्दाय | | |
|--|----|---------|
| सूर्यायु. | १८ | ९२९४३४० |
| चन्द्रायु. | ११ | ९१०४९२२ |
| भौमायु. | ९ | ४९५३१५ |
| बुधायु. | ४ | २१४२६० |
| जीवायु. | ८ | ७२८८५६ |
| शुक्रायु. | ६ | ९१५२०३९ |
| सौरायु. | १० | ५११५८२० |
| लग्नायु. | ६ | ४२६२२१२ |
| योग = | ७६ | ५२६४२२४ |
| हानिमान = | ४ | ६१३३०१७ |
| स्पष्टायु. | ७१ | १११३१२७ |

सहित आर्धोदित नवांश संख्या ६।२४।२४। हुई। अतः अनुपात हुआ कि १०८ नवांश में सम्पूर्ण आयु की हानि होती है तो सार्धोदितोदित नवांश संख्या

$$\text{लब्धि} = \frac{(\text{आयु} \times \text{सार्धोदितनवांश सं०})}{१०८}$$

तुल्य हानि को आयुर्दाय में घटाने से स्पष्ट आयुर्दाय होगा। जैसे चक्रार्ध-हानि और अस्त शत्रुग्रह हानि सिद्ध वर्षादि आयु ७६।५।२६।४२।२४ को दिनादि बनाकर २७।५३६।४२।२४ इसको सार्धो-दितोदित (सावयव) नवांश संख्या (६।२४।२४) से गौमूत्रिका क्रम से गुणा करने से गुणनफल १७६४१८।३०।२ में १०८ के भाग देकर दिनादि १६३३।

२० । १७ वर्षादि वनाने से ४ । ६ । १३ । ३० । १७ इसको पूर्व शुद्ध वर्षादि आयु ७६ । ५ । २६ । ४२ । २४ में घटाने से दोष ७१ । ११ । १३ । १२ । ७ यह जातक का स्पष्ट आयुर्दाय ददनादि मन से हुआ । अथवा सार्धोदित नवांश संख्या से पृथक् पृथक् ग्रह और लग्न के आयुर्दाय मान को १०८ के भाग देकर लब्धि को अलग अलग आयु में घटाने से स्पष्टायु होती है । और सबके योग्यतुल्य स्पष्टायु होती है । जैसे—सूर्य के आयुर्दाय वर्षादि १८।१।२९।४३।४० इसको दिनादि बनाने से ६७७९।४३।४० इसको सार्धोदितोदित नवांश संख्या ६ । २४ । २४ से गुना करने से ४२४३५। २७।२१ इसमें १०८ के भाग देने से दिनादि ४०२। १० । ४८ वर्षादि बनाने से १।१।१२।१०।४८ इसको सूर्य के आयुर्दाय १८।१।२९।४३।४० में घटाने से १७।८। १७।२।५२ यह सूर्य का स्पष्टायुर्दाय हुआ । जिस ग्रह के जितने आयुर्दाय होते हैं, उसकी उतनी ही दशा भी समझी जाती है । जिसका क्रम आगे कहा है ।

पूर्व नवांश संख्या पूरा ७ मानकर क्रिया दिखलाई गई है । जिससे स्पष्टायु में लगभग ५ मास का अन्तर होता है । इसलिये जहाँ तक हो सूक्ष्म मानकर ही ग्रहण करना चाहिये ॥४॥

विशेष अर्थ—भाग क्रिया में अन्तिम दोष हर के आधे से अधिक हो तो अवयव में लब्धि १ अधिक ग्रहण करना चाहिये । आधा से अल्प हो तो त्याग कर देना चाहिये ॥ ४ ।

अथ पुरुषादीनां परमायुःप्रमाणज्ञानं शिखरिण्याऽह—

समाषष्टिर्द्वित्री मनुजकरिणां पञ्च च निशा

हयानां द्वात्रिंशत्खरकरभयोः पञ्चककृतिः ।

विरूपा साऽप्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादश शुनां

स्मृतं छागादीनां दशकसहिताः षट् च परमम् ॥ ५ ॥

समार्षष्टिर्द्विन्नो इति ॥ समाशब्देन वर्षमुच्यते समानां वर्षाणां षष्टिर्द्वि-
न्नो द्विगुणीकृता विंशत्यधिकं वर्षशतं भवति । एवं विंशत्यधिकं वर्षशतं
पञ्च निशा पञ्च रात्रयोऽहोरात्राणीत्यर्थः । मनुजकरिणां मनुजानां मनुष्या-
णां करिणां हस्तिनां च परमायुः । हयानामश्वानां द्वात्रिंशद्वर्षाणि परमायुः ।
खरो गर्दभः करभ उष्ट्रः अनयोः पञ्चककृतिः पञ्चकस्य कृतिः पञ्चानां वर्गः
पञ्चविंशतिः परमायुः । विरूपा साऽप्यायुरिति । सा पञ्चककृतिः विरूपा एकोना
चतुर्विंशतिर्वर्षाणि वृषमहिषयोः वृषाणां महिषाणां च परमायुः । गोमहिष्यो-
रित्यर्थः । शुनां सारमेयानां द्वादश वर्षाणि परमायुः । श्वग्रहणं सर्वेषां नखि-
नामुपलक्षणार्थं तेन सिंहमार्जारादीनामप्येतदेव स्मृतम् । छागादीनामिति दश-
कसहिताः षट् षोडश वर्षाणि परमायुः । छागादीनाम् आदिग्रहणान्मृगादीना-
मपि । परममिति सर्वेषां शेषभूतम् । किं परमायुर्दायप्रयोजनम् । अश्वादीनां
जातानामायुः प्रमाणज्ञानार्थमिति । तद्यथा । अश्वदेर्जातस्य पुरुषवदायुः प्रमाण-

मानीय तत्त्रैराशिकं कर्तव्यं यदि विंशत्यधिकवर्षशतं पञ्चदिनाधिकं पुरुषस्यायुः प्रमाणं तदा द्वात्रिंशद्वर्षायुः प्रमाणस्याश्वस्य किं स्यादिति । एवमागतमायुः प्रमाणमश्वस्य तत्कालजातस्य वाच्यम् । एवं सर्वेषामभिहितप्राणिनां स्वायुषा परमेण त्रैराशिकं कृत्वा तत्कालजातस्यायुः प्रमाणनिर्देशः कार्यः । अन्ये एवं वदन्ति । यथापठितात्परमायुषः प्रमाणादधिकं न कश्चिज्जीवति । तदयुक्तम् । यस्माद्विंशत्यधिकाद्वर्षशतादधिकमप्यायुर्गणितकर्मणा भवति तस्मात्परमायुः प्रमाणपठने त्रैराशिकमेव ज्ञातव्यमिति ॥ ५ ॥

भाषा—१२० वर्ष ५ अहोरात्र भारतीय मनुष्य और हाथियों की परमायु कही गई है । घोड़ों की ३२ वर्ष, गदहे और ऊंटों की २५ वर्ष, गाय और भैंस की २४ वर्ष, कुत्तों की १२ वर्ष, बकरा, भेड़, हरिण आदि की १६ वर्ष परमायु कही है यह औसत मान है ॥ ५ ॥

विशेष—यहाँ सभी जानवरों की आयु कहने का प्रयोजन यह है कि—राजा महाराजाओं के यहाँ पालतू जानवर रहते हैं, उनके जन्म समय से शुभाशुभ फल और आयु जानने के लिये जन्मपत्र बनाया जाय तो उनकी आयु मनुष्य के समान ही उक्त रीति से साधन करे फिर अनुपात (त्रैराशिक) करे कि—यदि मनुष्य की परमायु (१२०) में इतनी आयु तो इष्ट जानवर की परमायु में कितनी ? इस प्रकार गणितागत आयु को अपनी परमायु से गुनाकर १२० के भाग देने से लब्ध वर्षादि उस जानवर की स्पष्ट आयु होती है—

उदाहरण—मान लो कि उक्त उदाहरण के इष्ट काल ही में किसी घोड़े का जन्म हुआ, तो उक्त विधि से साधित आयुवर्षादि ७१ । ६ । १० । १७ । ४९ को अश्व परमायु ३२ से गुना करके गुणनफल में १२० का भाग देकर लब्ध वर्षादि १२ । ० । २६ । ४४ । ४३ यह उस घोड़े की स्पष्ट आयु हुई । यहाँ मनुष्य आदि के परमायु प्रमाण जो कहे गये हैं इससे यह नहीं समझना चाहिये कि इससे अधिक मनुष्यादि जन्तु जी नहीं सकते । यहाँ तो ग्रहों की स्थितिबल गणितागत आयु १२० के आसन्न आते हैं और भारत में प्रायः अधिकतर उससे अधिक नहीं जीते इसलिये आचार्यों ने मध्यम मान से परमायु का प्रमाण गणितागत मध्यम मान से कहा है क्योंकि विशेष योग और जातरु के पुण्य-पाप कर्मबल गणितागत आयु से अधिक और न्यून भी हो जाते हैं । जो आचार्य ने स्वयं आगे—“अमितमिहायुरनुकृमाद् विना स्यात्” ऐसा कहा है ॥ ५ ॥

अथवा तिब्बत में २४० वर्ष तक भी बहुत लोग जीते हैं । अतः शून्य० से २४० वर्ष के औसतमान १२० वर्ष कहे गये हैं ॥ ५ ॥

अथ यस्मिन्योगे जातस्य परमायुर्भवति तद्योगज्ञानं पुष्पिताग्रयाऽह—
अनिमिषपरमांशके विलग्रे शशितनये गवि पञ्चवर्गलिप्ते ।

भवति हि परमायुषः प्रमाणं यदि सकलाः सहिताः स्वतुङ्गमेषु ॥६॥

अनिमिपरमांशक इति ॥ अनिमिपो मीनः तस्य परमांशको नवमनवां-
शकः तस्मिन्ननिमिषपरमांशके विलगने, शशितनये बुधे गवि वृषे च पञ्चवर्ग-
लिप्ते स्थिते लिप्ताः पञ्चविंशतिं भुक्त्वा बुधो वृषे स्थितः सकलाः समस्ता अन्ये
ग्रहाः सर्व एव यदि स्वतुंगभेषु स्थिताः परमोच्चगता भवन्ति तदा जातस्य पर-
मायुः प्रमाणं विंशत्यधिकं वर्षशतं पञ्चदिनाधिकमायुर्भवति । तत्र च कर्म
तद्यथा आदित्यादयो ग्रहाः सलग्ना ईदृशाः अत्रादित्यादीनां बुधवर्जितानां

| सू. | चं. | मं. | बु. | वृ. | शु. | श. | ल. |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|----|
| ० | २ | ६ | १ | ३ | ११ | ६ | ११ |
| ६ | २२ | ७ | ० | ४ | २६ | १६ | २६ |
| ० | ० | २५ | ० | ० | ० | ५६ | |
| ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |

यथापठितानि परमायुःप्रमाणवर्षाणि भवन्ति ।
बुधस्य पुनः क्रियते । तत्र तावद्बुधो नीचान्मी-
नाद्विच्युतः तस्मात्तात्कालिकादस्माद्बुधात् १।०।
२५।१ बुधपरमनीचध्रुवकमिदं ११।१५।० संशोध्य
जातम् १.१५।२५।० एतल्लिप्तापिण्डीकृतं २७२५

एताभिस्त्रैराशिकं यदि भगणार्धलिप्तानामेतासां १०८०० बुधपरमनीचवर्षाणि
षट् भवन्ति तदाऽऽसां नीचाक्रान्तलिप्तानां २७२५ किं स्यादिति । अत्र प्राग्ब-

लग्नम् ११।२६°

| | | |
|-----------|--------|-------|
| १० मं. | ११ | १ सू. |
| | १२ शु. | ३ मं. |
| १ | | |
| ८ | ६ | ४ गु. |
| श. ७ | | ५ |

त्फलं वर्षादि १।६।५।० एतद्बुधपरमनीचवर्षेष्वेतेषु ६ दृष्ट्वा जातं ७।६।५ एत-
द्बुधस्य परमायुः । तत्र लग्नादेकादशस्थानस्थत्वाद्भौमस्य चक्रपातत्परमायुः-
प्रमाणवर्षापञ्चदशकादर्थं पातयित्वा सार्धानि सप्त (७।६) वर्षाणि । सौरस्याष्टम-
स्थानस्थत्वात्परमायुःप्रमाणाद्वर्षविंशतेः (१) पञ्चमभागं चत्वारि वर्षाणि पात-
यित्वा जातानि षोडश वर्षाणि (१६) आदित्यचन्द्रबृहस्पतिशुक्राणां परमायुः ।
लग्नस्य नवमनवांशकस्थत्वान्नव वर्षाणि भवन्ति । सर्वेषां स्थापनम् ।
सूर्यवर्षाणि १६ । चन्द्रवर्षाणि २५ । भौमवर्षाणि ७ मासाः ६ । बुधवर्षाणि

(१) अत्र जातकक्रोडकृता “सौरस्याष्टमस्थानगतत्वात्परमायुःप्रमाणादेकविंशति-
मितादित्यादि” यदुक्तं तदयुक्तम् । यतो “नवतिथिविषयादिवभूतद्वेदंश सहिता
दशभिः स्वतुङ्गभेषु” इति वचनेन सौरस्य परमायुःप्रमाणं विंशतिरेवातो भट्टोत्पलोक्त-
मेव तथ्यमिति विचिन्तनीयं विपश्चितेति ।

७ मासाः ६ दिनानि ५ । जीववर्षाणि १५ । शुक्रवर्षाणि २१ । शनिवर्षाणि १६ । लग्नवर्षाणि ६ । सर्वेषां योगः वर्षाणि १२० दिनानि ५ । अत्र चादित्ये मेघस्थे कन्यास्थत्वं बुधस्य न सम्भवति तत्र पङ्क्तिर्ग्रहैरुच्चस्थैर्बुधे च वृषस्थे योगोऽयं प्रदर्शितः । अत्र च परमोच्चगते सूर्ये बुधस्य वृषस्थभागचतुष्टयं भुक्त्वा स्थितिर्भवति तस्मादधिकं यतो मध्यमार्कैर्दक्षराशिस्थाने शून्यं भागाः षट् पञ्चाशद्विलिप्ता ६।५० भवति तदा तस्य शुद्धस्य परमोच्चता भवति । एष एव सूर्यो मध्यमबुधः । अत्र च यदा परमार्कफलं परमं च शीघ्रफलं धनगतं भवति तदा बुधो वृषे भागचतुष्के स्फुटो भवति तत्र यथादर्शितलग्ने यथावस्थितग्रहसंख्यायां वृषे चतुर्थभागे ईदृशो बुधो भवति १।५ अस्मान्नीचध्रुवकमिदं ११।१५ संतोष्य जातम् १।१६ एतद्विलिप्ताष्टाद्विंशोक्तम् २६।४० एताभिर्लगाशिकं यदि भगणार्थल्लिप्तानामेतासां १०५०० षट् वर्षाणि तदैताभिः २६।४० कानोति लब्धं वर्षं १ मासाः ७ दिनानि १८ एतद्बुधपरमनीचवर्षेषु दत्त्वा जातानि वर्षाणि ७ मासाः ७ दिनानि १८ एतदाद्येषु यथादर्शितवर्षेषु सयोज्य जातं वर्षाणां-विंशत्यधिकं शतं (१२०) मासः १ दिनानि १७ एतदंशितपरमायुःप्रमाणादधिकमप्यायुः संभवति इति । तस्मात्परमायुः प्रमाणापठनं त्रैराशिकार्थमेव व्याख्यातम् । अन्ये पुनः । अनिमिपपरमांशके विलग्नं योगमेवानुं व्याचक्षते । यथा मीने वर्गोत्तभगते लग्ने वृषभस्थेन बुधेन पंचविशतिल्लिप्ता भुक्ता भवन्त्यन्ये च ग्रहाः स्वोच्चराशिषु परमोच्चभागव्यतिरेकेणापि यदि स्थितास्तदा योगशक्त्यैव परमायुः प्रमाणं जातो जीवति । अथ बुधस्य परमनीचध्रुवकमिदं ११।१४ पूर्वं दर्शितं सांप्रतं कर्मकाले कथमिदं प्रदर्शितमित्यत्रोच्यते । चतुर्दश भागान्भुक्त्वा पंचदशे पठिते परमनीचभागे व्यवस्थितो भवति अतश्चतुर्दश भागाः परमनीचस्थस्य प्रदर्शिताः । तत्रस्थस्य परमनीच-

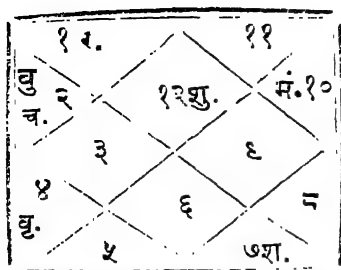
| सु. | चं. | मं. | बु. | वृ. | शु. | श. | ल. |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|----|
| ० | १ | ६ | ५ | ३ | ११ | ६ | ११ |
| ६ | २२ | ७ | १४ | ४ | २६ | १६ | ४६ |

प्रदर्शितमायुर्भवति तस्माद्यावत्पंचदशो भागो न भुक्तो बुधेन तादृत्त्रैराशिकोत्तिर्न कर्तव्येत्यतः कर्मकाले पंचदश भागाः प्रदर्शिताः । इत्येतत्सर्वेषामेव ग्रहाणां त्रैराशिककाले पठितैर्भागैर्भुक्तैः प्रदर्शयितव्यानि तत्र त्रैराशिकार्थमुच्चध्रुवकाः,

तथा त्रैराशिकार्थं परमनीचध्रुवकाः एतैः कर्म कर्तव्यमिति ॥ ६ ॥

भाषा—यदि मीन के अन्तिमांश लग्न हो और बुध वृषराशि की २५ वीं कला पर हो तथा शेष सब ग्रह अपने अपने परमोच्च में हो तो उक्तविधि से गणित द्वारा परम आयुर्द्वय का प्रमाण होता है ॥ ६ ॥

उदाहरण—राश्यादि लग्न = ११।२९।५९॥ रवि = ०।१०।०॥
चं = १।३।०॥ मं = ९।२८।००॥ बु = १।०।२५।०॥ शु = ३।



५।०॥ शु=११।२७।०॥ श=६।
२०। यहाँ लग्न नवम नवांश में है इसलिये
लग्नायु=६ वर्ष। बुध १।०।२५ को अपने
उच्च ५।१५ में घटाकर राश्यादि ४।१४।
३५ की कला ८०७५ पर से अनुपात किया कि
उच्च नीचान्तर कला १०८०० में ६ वर्ष की
हानि होनी है तो उक्त बुध और उसके उच्च के

अन्तर ८०७० में क्या ? इन प्रकार उच्च बुधान्तर ८०७५ को ६ गुणाकर, १०८००
का भाग देने से लब्धवर्षादि ४।५।२५ को बुध की पठित उच्चायु १२ से घटाने
से बुध की स्पष्टायुवर्षादि ७।६।५॥ मङ्गल उच्च में है किन्तु एकादश भाव में
पड़ने के कारण उच्चस्थ १५ वर्ष का आवा ७।६ सात वर्ष ६ मास मङ्गल की
स्पष्टायु। एवं शनि सप्तम भाव में पड़ा है इसलिये उसके उच्चगत आयु में पञ्चमांश
घटाने से १६ वर्ष शनि की स्पष्टायु। शेष सभी ग्रह के उच्चगत होने के कारण
पठित उच्चायु क्रम से रवि (सूर्य) १९, चन्द्र की २५, गुरु की १५, शुक्र की
२१ वर्ष। इस प्रकार सबका योग १२० वर्ष ५ दिन होता है।

इस प्रकार रवि को अपने उच्च में होने पर बुध कदाचित् भी अपने उच्च में
नहीं हो सकते हैं। यदि बुध अपने उच्च में हो तो रवि और शुक्र की भी अपने
उच्च में नहीं हो सकते हैं। इसलिये लग्न की परमायु प्राप्ति के लिये मीन का अन्तिम
अंश लग्न कल्पना की गई है। तथा रवि को अपने उच्च (मेघ में १० अंश पर)
रहने से बुध अपने उच्च के परम समीप वृष के ४ अंश तक जा सकता है। क्योंकि
रवि का परम फल ऋण और बुध का परम फल धन हो तो रवि से बुध २४ अंश
आगे रहेगा। इस प्रकार यदि रवि परमोच्च में हो तो कदाचित् परमान्तरित होकर
बुध की आयु ७ वर्ष ७ मास १८ दिन अर्थात् पूर्वं साधित आयु से १ मास १३ दिन
अधिक होती है। इस प्रकार गणितागत आयु १२० वर्ष १ मास १८ दिन तक आती
है। किन्तु आर्षोक्त परमायु प्रमाण १२० वर्ष ५ दिन हैं। वह बुध को वृष के २५
कला ही पर मानने से सिद्ध होता है ॥ ६ ॥

अथास्यापरमतायुर्दायस्य दूषणार्थं शालिन्याऽऽह—

आयुर्दायं विष्णुगुप्तोऽपि चैवं देवस्वामी सिद्धसेनश्च चक्रे ।

दोषश्चैषां जायतेऽष्टावरिष्टं हित्वा नायुर्विशतेः स्यादधस्तात् ॥७॥

आयुर्दायमिति ॥ एतदायुर्दायं न केवलं मययन्नमणित्यशक्तिपूर्वैरुक्तं
यावद्विष्णुगुप्तेनापि चाणक्यापरनाम्नैवमुक्तम्। आचार्यदेवस्वामी तथा सिद्ध-
सेनश्चैवं चक्रे कृतवानित्यर्थः। तथा च विष्णुगुप्तः। “परमोच्चगतैः सर्वैर्मनी-
मीनांशसंस्थिते। सौम्ये च वृषगे जातः परमायुः स जीवति ॥” तत्रा-च

देवराजामी । “सूर्याद्यैरुच्चगतैर्मनी मीनांशसंस्थिते लग्ने । सौम्ये वृषगे याते जातः परमायुराप्नोति ॥” तथा च सिद्धसेनः । “मीने परमांशगते सौम्ये गवि पंचवर्गलिप्तास्थे । सर्वैः परमोच्चगतैर्जातः परमायुराप्नोति ॥” यद्येवं बहुभिराचार्यैरुक्तं तत्कोऽस्य दोषः । वक्ष्यमाणं सत्याचार्यमते प्रदर्शितमायुर्दाय बहुतराणामाचार्याणां मतमिति । यस्मादाचार्यवराहमिहिरस्य प्रतिज्ञेयम् । “ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् । स्वयमेव विकल्पायितुं किंतु बहूना मतं वक्ष्ये ॥” अस्य परमतस्य बहुतरविरुद्धत्वं तावदास्ताम् । विवादसंभवो दोषोऽप्यस्ति दोषश्चैषामित्यादि । एषामाचार्याणां मते दोषो जायते । कीदृश इत्याह । अष्टावरिष्टमित्यादि । वर्षाष्टकं यावज्जातानामरिष्टमुक्तं वर्षाष्टकं हित्वा त्यक्त्वा वर्षविंशतेरधस्ताद्वर्षितप्रकारेणायुर्न स्यान्नागच्छति । एवं वर्षाष्टकादूर्ध्वमरिष्टं नास्ति तस्माद्वर्षाष्टकादूर्ध्व वर्षविंशतेरधस्तात् कस्यचिन्मरणमापद्यते । यावच्च त्रियंतो दृश्यन्ते अयं तेषां प्रत्यक्षो दोषः ॥ ७ ॥

भाषा—इसी (मय-यवनादि कथित) प्रकार से विष्णुगुप्त, देवराजामी और सिद्धसेन नामक आचार्यों ने भी आयुर्दाय साधन किया है । परन्तु उनके इस मत में प्रत्यक्ष दोष है कि इस प्रकार से साधित आयु २० वर्ष से कम नहीं होती । परन्तु ८ वर्ष पर्यन्त जो जातक का अरिष्ट कहा गया है उसको छोड़कर भी २० वर्ष से पूर्व मरते हुये देखे जाते हैं ॥ ७ ॥

विशेष—आचार्य यहाँ पर यह दोष दिखलाते हैं कि जैसे सब ग्रहों को उच्च में और बुध को अपने उच्च के आसन्न रवि से परम फलान्तरित मानने से परमायु १२० वर्ष ५ दिन होती है । और इसी प्रकार यदि बुध को वृश्चिक के २५ कला पर और लग्न को प्रथम अंश पर तथा शेष ग्रहों को अपने अपने नीच में कल्पना कर आयुर्दाय बनाया जाय तो २० वर्ष से कम आयु नहीं होती है । अतः २० वर्ष से कम में किसी का मरण नहीं होना चाहिये । कहोकि “वह अरिष्ट योग पड़ने पर मरता है” तो यह भी ठीक नहीं, क्यों कि बालारिष्ट ८ वर्ष तक ही कहे गये हैं । फिर आठ वर्ष के ऊपर और २० वर्ष के भीतर भी कितने ही मरते हैं । यह प्रत्यक्ष दोष है ।

भट्टोत्तल अपनी टीका में लिखते हैं कि—“यह श्लोक असङ्ग है,” इससे मालूम होता है यह वराहमिहिर का पद्य नहीं है, किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया है । क्योंकि उक्त प्रकार से २० वर्ष से कम भी आयुर्दाय का मान आता है । जैसे उदाहरण—लग्न राश्यादि १०।०।१॥ रवि ०।१०।॥ चन्द्र १।३॥ शुक्र १।१२०॥ बुध १।१५०॥ गुरु १।५०॥ शनि ०।२०।०॥ मं० १०।२८।०॥ अब यहाँ पूर्व विधि से लग्न के अंश सूच्य होने के कारण लग्नायु वर्षादि० ॥ उच्च और नीच स्थित ग्रहों के आयुर्दाय पठित ही है । मङ्गल की आयु जानने के लिये स्पष्ट मङ्गल के उच्च १।२८ का अन्तर १ राशि की

कला १८०० को ९० मास से गुना करके १०८०० के भाग देकर लब्ध १५ मास अर्थात् १ वर्ष ३ मास इसको भीम परमोच्च पठित वर्ष १५ में घटाने से १३ वर्ष ९ मास, यह मंगल की आयु हुई।

जन्म लग्न कुण्डली—

| | | |
|------------|--------|---|
| शु. १२ बु. | १० गु. | |
| ११ मं. | ९ | |
| २ चं | ८ | |
| ३ | ५ | ७ |
| ४ | ६ | |

गुरु की नीच में रहने से' वर्षादि आयु ७।६ किन्तु द्वादश भाव में पड़ने के कारण "व्ययभ्रवनादक्षतु वामं सत्त्वर्ध" इत्यादि वचनानुसार चक्रार्धपात से ३।९ वर्षादि आयु हुई। तथा सूर्यायु १९, चन्द्रायु २५, बुधायु ६, शुक्रायु २१, शनि की आयु १० वर्ष सवका योग ९८ वर्ष ६ मास। फिर लग्न में

पाप (मंगल) के होन के कारण लग्न के भुक्तनवांश ९० वर्तमान कुम्भ के अर्धोदितोदित नवांश संख्या ६१ से समस्त आयुर्वाय को गुनाकर ८९६३।६ इसमें १०८ के भाग देने से लब्ध वर्षादि ८२।११।२८।२० इसको समस्त आयु में घटाने से शेष स्पष्टायु वर्षादि १५।६।१।४० यह आठ से अधिक और २० से कम प्रत्यक्ष आता है। इसलिये "नायु-विंशतेः स्यादष्टतात्" यह कहना अयुक्त हुआ।" परन्तु इस प्रकार असंग होने पर 'यह वराहमिहिर का पद्य ही नहीं है?' ऐसा मानना भी असंगत ही है, क्योंकि प्रमाद मनुष्यमात्र से हो सकता है ॥७॥

अधुना तेषामेवाचार्याणां मते आयुर्दायदूषणान्तरं शालिन्याऽऽह—

यस्मिन्योगे पूर्णमायुः प्रदिष्टं तस्मिन्प्रोक्तं चक्रवर्तित्वमन्यैः ।

प्रत्यक्षोऽयं तेषु दोषः परोऽपि जीवन्त्यायुः पूर्णमर्थैर्विनापि ॥ ८ ॥

यस्मिन्योग इति ॥ अनिमिषपरमांशके विलग्न इत्यस्मिन्योगे विंशत्यधिकं वर्षशतं सपंचदिनं परमायुः पूर्णं प्रदिष्टं तस्मिन्योगे षड्ग्रहाः परमोच्चगता भवन्ति। षड्भिश्च परमोच्चगतैश्चक्रवर्तित्वं भवतीति प्रोक्तमभिहितमन्यैराचार्यैः। तथा च बादरायणः। "षडभिः स्याचक्रवर्ती त्रिभुवनमखिलं शास्ति सर्वैर्ग्रहेन्द्रैः।" इति। यवनेश्वरश्च। "षड्राजराजद्विबलोपकषेप्रदानमानेष्वाभिजातशक्तिः।" तत्र परमोच्चगता यावन्तः षड् ग्रहा न भवन्ति तावत्परमोच्चायुर्न प्राप्नोति। यदा परमोच्चगता भवन्ति तदा जातेन चक्रवर्तिना भवितव्यम्। एवं पूर्णमायुः। विंशत्यधिकं वर्षशतमर्थैर्धनैर्विना वर्जयित्वा बहवः पुरुषा जीवन्ति तस्मादयमपि तेष्वपरो दोषः। एतच्च परमतायुर्दायदूषणं शालिनीद्वयमसंबद्धत्वाद्वाहमिहिरकृतमेव न भवतीति प्रतिभाति। तत्र तत्रैवदत्र प्रथमशालिन्या दूषणमुक्तं तस्य दूषणस्यासंबद्धत्वमुच्यते। "साद्धो-दितोदितनवांशहतात्समस्तात्" इति न्यायेन यत् करे विलग्नगत आयुषः पातने

क्रियते तस्य प्रतिलग्नं प्रत्यंशकवशाद्विद्यता न संभवतीति तच्च पातयित्वा यदायुः शिष्यने तस्यापीयता नास्तीति । तस्माद्यदुक्तं नायुर्विशतेः स्यादव-
न्मातृदयुक्तम् ।

अत्रोदाहरणम् । यथा कुम्भलग्नस्याद्यंशकोदये आदित्यचंद्रशुक्राः परमोच्चे
बुधजीवशनैश्चराः परमनीचे । भौमश्च कुम्भस्याप्यष्टाविंशतितमं भागं भुक्त्वा
स्थितस्तदा तात्कालिका ग्रहाः सलग्नाः (१) अत्र लग्नं न किञ्चिद्भुक्तमिति
लग्नः युर्दीयो नास्ति । परमोच्चगतानां च ज्ञात एव । भौमस्य क्रियते तात्का-
लिकाद्धोमादस्मान् १० । २८ भौमस्य परमोच्चध्रुवकमिदं ६ । २८ संशोध्य
जातम् १ । ० एतन्निमायिडीकृतम् १८०० । अथ त्रैराशिकं यदि भगणा-

| सु. | चं. | मं. | बु. | बृ. | शु. | श. | ल. |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|----|
| ० | १ | १० | ११ | १० | ११ | ० | १० |
| ६ | २ | २८ | १४ | ४ | १४ | १६ | ० |
| ० | ० | ० | ० | ० | ० | ७ | १ |

र्द्धलिप्तानामेतासां १०००० भौमनोचमासाः
नवति (६०) भवन्ति तदैतासां क्रियन्त इति लक्ष्या
मासाः १५ एतैर्वर्षे सत्रिमासं जातं वर्ष १
मासाः ३ एतद्भौमपरमोच्चवर्षेष्वेतेषु १५

संशोध्य जातं वर्षाणि १३ मासाः ६ एष भौमायुर्दीयः । लग्नाद्द्वादशस्थ-
त्वाच्चक्रपातेनाद्धं पातयित्वा जातो जीवायुर्दीयः वर्षाणि ३ मासाः ६ परमो-
च्चगतानां परमनीचगतानां च शत्रुक्षेत्रस्थत्वात् त्र्यंशमस्तं गतानामद्धं च
न पात्यते यस्मादनिमिषपरमांशके विलग्ने इत्यत्र योगे चंद्रमसो वृषस्थ-
त्वाद्यद्यायुषः त्रिभागः पात्यते तदा पूर्णमायुर्न भवतीति यस्मादन्याचार्यमत-
मिति तात्कालिकमित्रामित्रविधायुक्तम् । “मूलत्रिकोणाद्धनधर्मबंधुपुत्रव्य-
यस्यानगता ग्रहेंद्राः । तात्कालिकाः स्युः सुहृदो ग्रहस्य स्वोच्चे च यो यस्य
विकृष्टवीर्यः । जामित्रपष्ठाष्टमशत्रुमूर्तिद्यूनत्रिकोणैकगृहे निविष्टाः । तत्कालमेते
रिपवो भवन्ति ह्येतानि मित्राणि रिपूश्च वक्ष्ये ॥” अनेनापि शुक्रश्चंद्रमसः
तात्कालिकं मित्रं न भवति । तस्मान्मीनस्थे शुके वृषस्थश्चंद्रमाः शत्रुगृहो
भवति । तस्य च शत्रुक्षेत्रस्थत्वाद्यद्यायुषस्त्रिभागः पात्यते तदा अनिमिष-
परमांशक इत्यत्र योगे पूर्णमायुर्न प्राप्नोतीति । तच्चाचार्येण श्रृंगग्राहिकयैव
प्रदर्शितम् । तेनैतज्ज्ञापयति । परमोच्चगतानां परमनीचगतानां च शत्रुक्षेत्रे
त्र्यंशमस्तं गतानां चाद्धं न पात्यते तेन च यथादर्शितयोगं पृथक्पृथक्ग्रहायु-
र्दीयवर्षाणि लिख्यन्ते । सूर्यस्य वर्षाणि ६६ । चन्द्रस्य वर्षाणि २५ ।
भौमस्य वर्षाणि १३ मासाः ६ । बुधस्य वर्षाणि ६ । जीवस्य वर्षाणि ३
मासाः ६ । शुक्रस्य वर्षाणि २१ । शनेः वर्षाणि १० । लग्नेन न किञ्चिद्भुक्त-
मिति लग्नायुर्दीयो नास्ति । अथैतेषां योगः वर्षाणि ६८ मासाः ६ । अथा-
ङ्गारकस्य लग्नगतत्वात्साद्धोदितेति कर्म क्रियते । तत्र च लग्ने कुम्भारम्भ-
त्वान्नवति (६०) नवांशका भुक्ता भवन्ति । ते च नवांशकाश्चक्रस्योदिता

नद्यगत एकनवतिसमाः (६१) तेनैकनवत्या सर्वायुःपिण्डमिदं वर्षाणि
 ६८ मासाः ६ संगुण्य जातं ८६६३ । ६ । अस्याष्टाधिकशतेन भागमपहत्या-
 वप्तवर्षाणि ८२ मासाः ११ दिनानि २८ घटिकाः २० एतानि वर्षाणि अस्मात्
 ६८ । ६ संशोध्य जातं वर्षाणि १५ मासाः ६ दिनं १ कलाः ४० एवमष्टम्य
 ऊर्ध्वं विंशतेरधस्तादायुरुत्पन्नमिति । तस्मादयुक्तमुक्तम् । नायुर्विशतेः स्यादध-
 स्तादिति । अत्रान्ये वदन्ति । यथा क्रूरहीनं मीनलग्नं हृदि कृत्वैतद्वराह-
 मिहिरेणोक्तम् । अनिमिपगमांशके विलम्बे इति अनेनापि प्रकारेण न
 वक्तव्यम् । यथा नायुर्विशतेः स्यादधस्तादित्यत्र धन्विलग्नं क्षीणे चन्द्रे
 विशतितमे भागे बुधस्तत्रास्तमितः सर्वेष्वन्येषु यस्य जन्म भवति तस्य
 चक्रपातेनैवायुर्दायो बहुः पततीति । तस्यैव तावत्प्रदर्श्यते । तत्र तात्कालिका
 ग्रहाः सलग्नाः । रविः ६।६ चन्द्रः ७।२ भौमः ३।२७ बुधः ५।२० गुरुः
 ६।४ शुक्रः ५।२६ शनिः ०।१६ लग्नं ८।० तत्र बुधस्योच्चध्रुवकं ५।१५ बुधः
 ५।२० अस्मात्पातयित्वा शेषं ०।५ लिप्तापिण्डीकृतं ३०० तत्तच्चैराशिकेन
 तदन्तरं परमनीचमासैः ७२ गुणितं भगणार्धलिप्ताभिः १०८०० भक्तं लब्धं
 वर्षं ० मासौ २ एतत्परमायुषः निपात्य जातं वर्षाणि ११ मासाः १०
 अन्येषां परमनीचस्थत्वाज्जायते । लग्ने न किञ्चिद्भूक्तमिति तस्यायुर्दायो
 नास्ति । चन्द्रस्य क्षीणस्य पापत्वाल्लगनाद्द्वादशस्थत्वाच्च चक्रपातेन सर्वं
 पतति तदायुर्दायो नास्ति । आदित्यस्य लग्नेकादशस्थत्वाच्चक्रपातेनाद्धं पात-
 यित्वा जातं वर्षाणि ४ मासाः ६ । बुधस्यास्तमितत्वादधं पातयित्वा
 जातानि वर्षाणि ५ मासाः ११ । दशमस्थत्वाच्छुक्रः स्वादायुपस्तृतीयमंशम-
 पहरति इति सौम्यत्वात्तदधर्मस्मात्पङ्कभागाद्वर्षमेकं नव मासान्पातयित्वा
 जातान्यष्टौ वर्षाणि नव मासाश्च शुक्रस्य । भौमस्य लग्नाष्टमस्थत्वात्पञ्चम-
 भागं साद्धं वर्षं पातयित्वा जातानि वर्षाणि षट् इति । एवं सर्वेषां वर्षाणि ।
 वर्षाणि ४ मासाः ६ सूर्यस्य । वर्षाणि ० मासाः ० चन्द्रस्य । वर्षाणि ६
 मासाः ० भौमस्य । वर्षाणि ५ मासाः ११ बुधस्य । वर्षाणि ७ मासाः ६
 जीवस्य । वर्षाणि ८ मासाः ६ शुक्रस्य । वर्षाणि १० मासाः ० शनैश्चरस्य ।
 वर्षाणि ० मासाः ० लग्नस्य । सर्वेषां योगः वर्षाणि ४२ मासाः ११ । अत्रा-
 सम्भवेऽप्यभिगम्यापि ब्रूमः । एवंविध आयुर्दायः सर्वेऽप्यस्तङ्गता यदि
 भवन्ति तथापि सूर्योच्छिन्नन्यतिपु च दलं प्रोम्भ्य शुक्रार्कपुत्राविति कृत्वा
 तथापि पञ्चत्रिंशद्वर्षाणि मासोनानि यतो बुधस्य पूर्वमेवाद्धं पातितम् । एवं
 च द्विचत्वारिंशतोऽधस्तादायुर्नागच्छतीति तथापि विंशतेरधस्तादित्यस-
 म्बद्धम् । अत्राप्यन्ये एवं वदन्ति । क्रूरहीने विलग्नं जाता अष्टाभ्य ऊर्ध्वं
 विंशतेः अधस्तान्म्रियमाणा दृश्यन्ते तेनान्याचार्यमतमसम्बद्धम् । अत्रोच्यते ।
 अन्याचार्यमतं पूर्वापर्येण विचार्यैतद्वदन्ति यैरेवाचार्यैरेनेन मार्गेणायुर्दायः
 प्रदर्शितः तैरेवायं मृत्युयोगोऽभिहितः । स चेह लिख्यते । तथा च बादरा-

यणः । “षष्ठाष्टमस्थो रिपुहृष्टमूर्तिः पापग्रहः पापगृहे यदि स्यात् । स्वातर्दशायां मरणाय जन्तोर्ज्ञेयः स युद्धे विजितो यद्गान्यैः ॥” तथा च यवनेश्वरः । “षष्ठाष्टमस्थोऽशुभदस्त्वरोऽत्रः पापैः सुहृत्स्थानगतश्च दृष्टः । स्वान्तर्दशायां प्रकरोति मृत्युं पःशाध्वबन्धादिपरिक्षयाद्वा ॥” तथा च सारावल्याम् । “क्रूरदशायां क्रूरः प्रविश्य चान्तर्दशां यदा कुरुते । पुंसां स्यात्सन्देहस्तदारियोगा हि सदैव महान् ॥ रवितनयस्य दशायां क्षितिजस्यांतर्दशा यदा भवति । बहुकालजीविनामपि मरणं निःसंशयं पुंसाम् ॥ क्रूराशौ स्थितः पापः षष्ठे वा निधनेऽपि वा । तस्थेन वारिणा दृष्टः स्वपाके मृत्युदो ग्रहः ॥ यो लग्नाधिपतेः शत्रुर्लग्नस्यान्तर्दशां गतः । करोत्येकस्मान्मरणं सत्याचार्यः प्रभाषते ॥” एवं क्रूरहीने लग्ने ये जातास्तेषां वर्षाष्टकादूर्ध्वं दर्शितकालादधस्तान्मरणं सम्भवत्येव । ते चापि मृत्युयोगेनानेन मृता इति ज्ञेयाः । यस्मात्तस्यांतर्दशा दर्शितग्रहसम्बद्धिनी कदा भवतीत्यत्रायं नियमः । तस्मादन्याचार्यमतेनैवाष्टाभ्य ऊर्ध्वं दर्शितकालादधस्तान्मरणं सम्भवत्येव तस्मादेतद्दूषणमसम्बद्धं प्रथमम् । अथ द्वितीयस्य दूषणस्यासम्बद्धत्वमुच्यते । अत्र चक्रवर्तित्वयोगं विनापि दीर्घमायुः सम्भवति । अत्रोदाहरणम् । यत्र तात्कालिका ग्रहाः सलग्नाः वृषेऽर्को दश भागा-

| सु. | चं. | मं. | बु. | बृ. | शु. | श. | ल. |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|----|
| १ | २ | १० | ० | ४ | ० | १० | ८ |
| १० | ३ | २८ | १५ | ५ | ३० | २० | ३१ |

न्भुक्त्वा स्थितः एवं मिथुने चं; मास्त्रीन्भागान् कुम्भे भौमोऽष्टाविंशतिभागान् मेषे बुधः पञ्चदशभागान् सिंहे जीवः पञ्च भागान् मेषे सप्तविंशति सत्रिभागाञ्छुक्रः कुम्भे विंशतिभागान्सौरः धन्विलग्नमन्त्येऽशौ । तद्यथा ।

ईदृशा ग्रहा अत्र पूर्वप्रदर्शितकर्मणागतानि ग्रहायुर्दायवर्षाणि लिख्यन्ते । वर्षाणि १७ मासाः ५ सूर्यस्य । वर्षाणि २२ मासाः ११ चन्द्रस्य । वर्षाणि १३ मासाः ६ भौमस्य । वर्षाणि ७ मासाः ० बुधस्य । वर्षाणि १३ मासाः ६ जीवस्य । वर्षाणि १६ मासाः २ दिनानि २६ घट्यः १० शुक्रस्य । वर्षाणि १३ मासाः ४ शनेः । वर्षाणि ६ मासाः ० लग्नस्य । अथ बृहस्पतेर्वर्षाणां चक्रपातादष्टमभागमपास्य जातानि वर्षाणि १३ मासाः ० दिनानि ११ घट्यः १५ । चन्द्रस्य षष्ठभागमपास्य जातानि वर्षाणि १६ मासाः १ दिनानि ५ । रवेः गुरुमित्रमतोऽन्यथान्य इति शुक्रः शत्रुः स चार्कमूलत्रिकोणात्सिंहान्नवमे स्थाने स्थितः तस्मात्तात्कालिकं मित्रीभूतः तेन वृषस्यः समक्षेत्रस्थितस्तेन तस्यः युर्दायः न किञ्चित्पतति चन्द्रश्च मिथुने मित्रक्षेत्रे स्थितः । तस्यापि यथादर्शितान्येवायुर्दायवर्षाणि यस्मादुक्तम् । “इन्दोर्बुधं देवगुरुं च विद्यात्” अङ्गारकः कुम्भे शत्रुक्षेत्रे स्थितः । यस्मादुक्तम् । “भौमस्य शुक्रः शशिजश्च मित्रम्” इति । शेषान् रिपून् शेषत्वाच्छनैश्चरस्तस्य शत्रुस्तात्कालिकश्चैकगृहे निविष्टत्वाच्छनैश्चरोऽधिशत्रुः किं त्वङ्गारकस्य शत्रुक्षेत्रस्थस्यापि न पतति । यस्मादुक्तम् । “हित्वा वक्रं रिपुगृहगतैर्हीयते स्वत्रिभागं” इति । तस्मादङ्गारकस्य

यथागतमेवायुः । “चान्द्रेरनर्का” इति वचनाद्भौमो बुधस्य मित्रम् । तेन तस्य मेषस्थत्वाद्यथागतमेवायुर्वुधस्य । बृहस्पतेरप्यादित्यो मित्रम् । यस्मादुक्तम् । “गुरोश्च भौमं परिहृत्य सर्वे” इति तस्मात्सिंहस्थस्य बृहस्पतेः यथागतमेवायुः । शुक्रस्य मेषे स च मित्रक्षेत्रे । यस्मादुक्तम् । “भृगुनन्दनस्य त्वर्केन्दुवज्याः सुहृदः प्रदिष्टाः ।” तस्मात्तस्यापि यथागतमेवायुः । शनैश्चरस्यापि कुम्भे स्वक्षेत्रे स्थितत्वाद्यथागतमेवायुः । लग्नस्य पातचारहीनत्वात् यथागतमेवायुः । एवमायुर्दायवर्षाणि पृथक्पृथग्लिख्यन्ते । वर्षाणि १७ मासाः ५ सूर्यस्य । वर्षाणि १६ मासः १ दिनानि ५ चन्द्रस्य । वर्षाणि १३ मासाः ६ भौमस्य । वर्षाणि ७ मासाः ० बुधस्य । वर्षाणि १२ मासाः ० दिनानि ११ घटयः १५ गुरोः । वर्षाणि १६ मासौ २ दिनानि २६ घटयः ३० शुक्रस्य । वर्षाणि १३ मासाः ४ शनेः । वर्षाणि ६ मासाः ० लग्नस्य । एवंविधे योगे दशाधिकं वर्षशतमप्यायुः । वर्षादि ११० । १० । १२ । ४५ सम्भवति ११३ मासाः ११ । यदा चन्द्रवर्षाणि २२ मासाः ६ तदा सर्वेषां योगः वर्षादिः ११४ । ८ । ७ । ४५ । एवंविधे योगे चतुर्दशाधिकं वर्षशतमप्यायुः सम्भवति । केमद्रुमाख्यश्चायं योगः । यस्माद्वक्ष्यति । “हित्वाऽर्कं सुनफानफादुरुधरा स्वांत्योभयस्थैर्ग्रहैः शीतांशोः कथितोऽन्यथात्र बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ ।” तस्मादेवंविधे योगे जातो दीर्घमायुः प्राप्नोति । केमद्रुमत्वाच्च दरिद्रो भवति । वक्ष्यति च “केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःश्वाः प्रेक्ष्याः खलाश्च नृपतेरपि वंशजाताः ।” केवलं दरिद्रा दीर्घायुषो दृश्यन्ते । न केनचित्कस्यचिद्विरिद्रस्यायुः प्रमाणं ज्ञातम् । यथायं दरिद्रो विंशत्यधिकेन वर्षशतेन सपञ्चदिनेन मृतः तस्मात्तौद्रमेव दूषणं ज्ञातव्यम् । एवमस्य दूषणस्यासम्बद्धत्वं प्रदर्शितमिति । असम्भाव्यत्वाद्ब्राह्मिहिरकृतमेतच्छालिनीद्वयं न सम्भाव्यते । यच्च दर्शिताचार्यमतेनायुर्दायं त्यक्त्वा सत्यमतायुर्दायमङ्गीकरिष्यत्याचार्यस्तत्र च सत्यमतस्य बहुतराणामाचार्याणां मताङ्गीकरणमेव प्रयोजनम् । यस्मात्पूर्वमेवाचार्यमतेनायुःप्रतिज्ञा व्याख्याता । “ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यमस्माकम् । स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥” अथ कश्चिदाह । ननु योऽयं योगस्त्वया प्रदर्शितः स केमद्रुम एव न भवति । यदाचार्य एव वक्ष्यति । “केन्द्रे शीतकरेऽथवा प्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते” इति । लग्नात्सप्तमस्थः केन्द्रस्थश्चन्द्रमास्तस्मादयं केमद्रुमो न भवति । अत्र च ब्रूमः । अत्र चन्द्रमा न गण्यते यस्माच्चन्द्रमसः सकाशाद्ग्रहेणान्येन योगः कर्तव्य इति । यद्येवं तल्लग्नत्वेन केन्द्रस्थः कथं करोतीत्यत्रोच्यते । चन्द्रलग्नयोस्तुल्यत्वात् । तथा च यवनेश्वरः । “मूर्तिश्च होरां शशिनं च विद्यात् ।” अत्र च गार्गिः । “व्ययार्थं केन्द्रगश्चन्द्राद्विना भातुं न चेद्ग्रहः । कश्चित्स्याद्वा विना चन्द्र लग्नात्केन्द्रगतोऽथवा योगः केमद्रुमो नाम तदा स्यात्तत्र गर्हितः । भवन्ति निन्दिताचारा

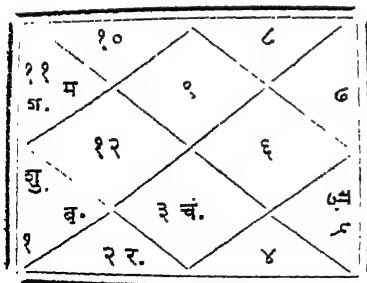
दारिद्र्यमयसंयुताः ॥” इति । तस्मात्तन्नात्समस्थे चन्द्रमसस्य योगस्य केन्द्रमता सिद्धैवेति ॥८॥

भाषा—जिस योग में पूर्णायु प्रमाण कहा गया है उस योग में ६ ग्रहों के उच्च में होने के कारण अन्य आचार्यों ने चक्रवर्तित्व (राजाधिराजत्व) योग माना है । किन्तु उनके इस मन में तो और भी प्रत्यक्ष दोष है कि बिल्कुल धनहीन आदमी भी पूर्ण आयुर्द्वय से जीवित रहता है ॥८॥

विशेष अर्थ—इस श्लोक का भावार्थ यह है कि—जब ग्रहों की उच्चगत रहने पर ही पूर्ण आयुर्द्वय कहा गया है तो उसमें चक्रवर्तित्व योग भी होता है, तब जो दीर्घायु हो वह चक्रवर्ती राजा या पूर्ण धनवान् भी हो । किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है । बहुत से दीर्घायु निधन भी होते ही हैं । इसलिये मय-यवनादि का आयुर्द्वय साधन असङ्ग है ॥ यहाँ भट्टोत्पल कहते हैं कि—“पूर्वोक्त मय-यवनादि के मत ‘नीचेस्तोर्ध’ इत्यादि से उच्च से भिन्न स्थान में भी दीर्घायु (पूर्णायु) योग होता है, जिसमें केन्द्रम (दारिद्र्य) योग भी होता है अतः पूर्णायु होकर भी दरिद्र हो सकता है । इसलिये मालूम होता है कि यह बराहमिहिर का पद्य नहीं है । किसी ने प्रक्षिप्त कर दिया है ।”

जैसे उदाहरण—राश्यादि रवि ११०१०॥ चन्द्र २३१०॥ मं० १०२८१०॥ बुध ०१५०॥ गुरु ४१५१०॥ शुक्र ०२३२०॥ शनि १०२०१०॥ लग्नम् ८२९१५९५९ यहाँ “नीचेस्तोर्ध लसति” इत्यादि प्रकार से वर्षादि स्पष्ट सूर्यायु १७५॥ चन्द्रायु १९११५॥ भौमायु १३१॥ बुवायु ७०॥ जीवायु १२०११११५॥ शुक्रायु १९१२१-२६३०॥ शनैश्चरायु १३४१०॥ लग्नायु ९१०॥ सबका योग ११०११०१२४५ वर्षादि आयुर्द्वय सिद्ध होता है । तथा “हित्वाङ्के सुनफाऽनफा” इत्यादि चन्द्र-योगाध्याय ३ श्लोक के अनुसार केन्द्रम योग भी है । अतः दारिद्र्ययोग में भी पूर्णायु प्राप्त हुआ ।

जन्मलग्न कुण्डली—



इसलिये मय आदि के आयुर्द्वय साधन प्रकार में यह दोष देना भी असंगत सिद्ध होता है ॥८॥

अथ जीवशर्ममतेन सत्याचार्यमतेन चायुर्द्वयमौपच्छंदसिकेनाह—

स्वमतेन किलाह जीवशर्मा ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशम् ।

ग्रहशुक्लनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम् ॥ ६ ॥

स्वमतेनेति ॥ जीवशर्मा नामाचार्यः स्वमतेनात्मीयमतेन परमायुषो
विंशत्यधिकस्य वर्षशतस्य सप्तचदितस्य स्वर्गशं सप्तयभाग प्रत्येकस्य ग्रह-
सायुर्दायमाह कथयति । किलशब्दस्तथा नासप्रदर्शनार्थः । तद्यथा । परमायुः
१००।०।५ अस्य सप्तभिर्भागमपह्नत्प्राप्तं वर्षादि १७ । १ । २२ । ८ । ३४ ।
अथान्वाचार्येनेतिविषयेत्येवमादीनि परमोच्चगतातामादित्यादीनां वर्षाणि
पाठितानि तथैतानि परमायुःस्वर्गशदर्षाण्यैकैकस्य जीवशर्मपठितानि । “नीचे-
तोऽर्द्धं हसति” इत्यत्रापि स्थितमेव तत्रार्द्धमेतत् ८ । ६ । २६ । ४ । १७ ।
एतानि परमनोचस्थस्यैकैकस्य ग्रहस्य एतेः प्राग्वदेव त्रैशशिकं कृत्वैकैकस्य
ग्रहस्यायुर्दायः वर्तव्यः । अत्रापि वक्रं विना शबुक्तेत्रस्थस्य ग्रहस्य त्र्यंशापहानिः ।
शुक्रशनेश्वरौ विना भौमं विनास्तंगतभ्यार्द्धापहानिः । सर्वार्द्धं त्रिचरणेत्यादिका
चात्र पातापहानिः । क्रूरे विलग्ने सार्द्धोदितोदितेति हानिः । एतत्सर्वं जीवशर्म-
णोऽप्यन्याचार्यैः समानम् । तथा च जीवशर्मा । “सप्तदशै (१७) को (१)
द्विगमौ (२२) वसवो (८) वेदान्तयो (३४) ग्रहैर्द्राणाम् । दर्पाण्यच्च-
स्थानां नोचस्थानामतोऽर्द्धं स्यात् । मध्येऽनुपाततः स्यादानयनं शेषमत्र
यत्किञ्चित् । पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्त्वज्ञैः ॥” इति अत्रानयनं
मुखोपायेन प्रदर्श्यते । “स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्भादूनो भमंडलात् ।
तद्भागाः कद्विषड्भोगि (८६४१) हता वेदाभ्रसायकैः (५०४) ॥ भक्ता
दिनानि यत्नत्वं तदायुर्जीवशर्मजम् । दिनैस्तु त्रिशता मासा मासेभ्यो रविभिः
समाः ॥” न केवलं ग्रहदायं परमायुषः स्वर्गशमेतत् तेनोक्तम् । यावत्स्वमते-
नेति । अनेनैवं प्रतिपादयति । यथैतस्मया ऋषिकृतेष्वाचार्यकृतेषु वा न केषुचि-
दृष्टमिति । तस्मादस्यायुर्दायस्य जीवशर्मणः स्वमतकरणमेष दोषः । एवं
च्छास्त्रेषु सर्वाचार्यमतेनायुर्दायो व्याख्यातः । अत्राचार्येण परमतमेवोपन्यस्तम् ।
मययवनमणित्थशक्तिपूर्वैरिति । न च यवनेश्वरकृते शास्त्रे तथाविध आयुर्दायो
दृष्टः । यस्माद्यवनेश्वरेणोक्तम् । “आयूषि राश्यंशराशियोगात्” इति । अत्रो-
च्यते । यवनेश्वरेण स्फुजिध्वजेनान्यच्छास्त्रं कृतम् । तथा च स्फुजिध्वजः ।
“गतेन साभ्यर्धशतेन युक्ताऽप्यंकेन केषां न गताब्दसंख्या । कालः शका-१०४४-
नां स विशोध्य तस्मादतीतवर्षाद्यगवर्षजातम् ॥” एवं स्फुजिध्वजकृतं शक-
कालस्यावगम्यते । अन्यच्च यवनाचार्यैः पूर्वैः कृतमिति तदर्थं स्फुजिध्वजो-
ऽप्याह । “यवना ऊचुः । ये संप्रहे दिग्जनजातिभेदाः प्रोक्ताः पुराणैः कमशो
ग्रहस्य ।” तदेतज्ज्ञायते यथा वराहमिहिरेण पूर्वयवनाचार्यमतमेवोपन्यस्तम्
अस्माभिस्तन्न दृष्टम् । स्फुजिध्वजकृतमेव दृष्ट्वा पराशरस्यापीयमेव वार्ता ।
पाराशरीया संहिता केवलमस्माभिर्दृष्टा न जातकम् । श्रूयते स्कंधत्रयमिति
पाराशरस्येति तदर्थं वराहमिहिरः शक्तिपूर्वैरित्याह । “चित्रं प्रोऽभ्य पराशरः
कथयते दौर्भाग्यदं योषिताम् ” इत्येवमादि मयमणित्थयोर्होराशास्त्रे विद्येते ।
तथा च मयः । “एकोनविंशतिः सूर्यश्चंद्रमाः पंचविंशतिः । तिथिसंख्यः कुजः

सौम्यो द्वादशोच्चगतो गुरुः ॥ कुजवद्दैत्यपूज्यस्य वर्षाणामेकविंशतिः ।
 एकोना सूर्यपुत्रस्य परमोच्चगतस्य च ॥ आयुर्दायमिदं प्रोक्तमर्थं नीचगतस्य
 तु । अंतरे त्वनुपाताच्च कारयेदायसंग्रहम् ॥” तथा च मणित्थः । “नवरूपाः
 शरयमलास्तितथोऽर्काः पंचरूपकाः क्रमशः । रूपयमाकृतिसंख्याः सूर्यादीनां
 स्वतुंगभेदवद्भाः ॥ नीचेष्वस्मादब्दाहलमन्यत्रानुपाततः कार्यम् । आयुर्दाय-
 विधानं होराभुक्तांशराशितुल्यमपि ॥”

अथ वराहमिहिरस्य स्वमतायुर्दायो यवनेश्वरसत्यमतानुसारी व्याख्यायते ।
 ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यमिति । यत्र तत्र राशौ यस्मिन्नवांशके ग्रहो व्यवस्थितः
 स च नवांशको मेषादेरारभ्य यावत्संख्यस्य राशेः सम्बन्धी भवति तावन्ति
 वर्षाणि ग्रहः स्वायुर्दायं प्रयच्छति । एतदुक्तं भवति । मेषादेरारभ्य यावतां
 राशीनां संबंधिनो नवांशका ग्रहेण भुक्ता भवन्ति तावन्ति वर्षाणि ग्रहः
 प्रयच्छतीति । एवं ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं भवति । यस्मिन्नवांशके वर्तते
 तस्माद्यद्भुक्तं ग्रहेण तेन सह त्रैराशिकं कृत्वा मासाद्यानयितव्यम् । त्रैराशिक-
 करणं च वक्ष्यति । एवमायुर्दायानयनं च सत्याचार्येणोक्तम् । तथा च तद्वाक्यम् ।
 “राश्यंशकसंयोगादायुरिह समासतो ग्रहा दद्युः ।” एतच्च सत्यवाक्यं बहु-
 साम्यं समुपैति बहूनामाचार्याणां सम्मतम् । यथा च यवनेश्वरः । “आयूंषि
 राश्यंशकचारयोगात्” इति । अत्र तावत्सत्ययवनेश्वरवाक्यव्याख्याने किंचिद्वि-
 पतिपन्नं राशेरंशकचारयोगादिति व्याचक्षते । यथा यस्मिन्नाशौ ग्रहो वर्तते तत्र
 तेन यावन्तो नवांशका भुक्तास्तावन्त्येव वर्षाण्यायुः स ग्रहो ददाति । अत्र च
 व्याख्याने परमग्रहायसाध्यमानेन वर्षाणि भवन्ति । एतच्च व्याख्यानं बादराय-
 णादिभिरंगीकृतम् । तथा च बादरायणः “राश्यंशकलागुणिता द्वादशनव-
 भिर्ग्रहस्य भगणेभ्यः द्वादशहृतावशेषेऽब्दमासदिननाडिकाः क्रमशः ॥”
 इदमाचार्यवराहमिहिरेणाचिनष्ट एव स्वल्पजातकेऽभिहितमेतदनुसारेण सत्य-
 यवनेश्वरयोर्व्याख्यानं क्रियते । आयूंषि राश्यंशकचारयोगादिति राशीनामं-
 शकां राश्यंशकाः । तेषु चारयोगादिति । यत्र यत्र राशौ मेषांशकस्थो ग्रहो
 वर्षमेकं प्रयच्छति वृषनवांशकस्थो ग्रहो वर्षद्वयं प्रयच्छति । एवमुत्तरांशकवृद्ध्या
 वर्षवृद्धिर्वावन्मीनांते द्वादश इति । पूर्वव्याख्यानेन यवनेश्वरसत्यवाक्ययो
 राशिग्रहणमनर्थकं भवति । अवश्यमेव राश्यंशकैर्भवितव्यमिति ॥ ६ ॥

भाषा—जीवशर्मा आचार्य ने अपने मत से—उच्चस्थान में सबग्रहों के आयु
 परमायु (१२० वर्ष ५ दिन) के सप्तमांश (१७ वर्ष १ मास २२ दिन ८ घड़ी
 ३४ पल) तुल्य ही कहा है । किन्तु यह सर्वसम्मत नहीं है । इसलिये—“ग्रह जितने
 नवांश भोगकर चुके हों—उतनी रात्रि तुल्य वर्षं ग्रहायुर्दाय होता है” इसप्रकार
 सप्तमाचार्य का कथन बहुत से आचार्य मानते हैं ॥ १॥

विशेष अर्थ—अभिप्राय यह है कि—जीवशर्मा ने अनुभव किया कि अपने-अपने
 उच्च में सब ग्रहों का आयुर्दाय तुल्य होना चाहिये, इसलिये परमायुर्दाय के सप्तमांश

तुल्य वर्षादि उच्च में, और नीच में उसका आधा ८।६।२६।४।१७ इसपर से पूर्ववत् मध्य में त्रैराशिक से अनुपात द्वारा आयु साधन कर के जो ग्रह चक्रार्ध में हो उसकी “सर्वार्धत्रिचरण” इत्यादि, एवं शत्रु-राशिस्थित, अस्तङ्गत ग्रहों की तथा लग्न में क्रूर ग्रह हो तो—“सार्धोदितोदित” इत्यादि हानि क्रिया करके स्पष्टायु साधन करना चाहिये। जैसे जीवशर्मा का वाक्य “सप्तदशैको द्वियमो वसवो वेदाग्नयो ग्रहेन्द्राणाम्। वर्षाद्युच्चस्थानां नीचस्थानामतोऽर्धं स्यात्॥ मध्येऽनुपाततः स्यादानयनं शेषमत्र यत्। पिण्डायुष इव कार्यं तत्सर्वं गणिततत्त्वज्ञैः॥

तथा सत्याचार्य का कथन है कि—जो ग्रह जितने नवांश भोगकर चुके हों उतनी राशि संख्या समझ कर १२ से अधिक हो तो १२ के भाग देकर शेष तुल्य उस ग्रह का आयुर्दाय होता है। ग्रह भुक्त नवांश जानने का उपाय यह है कि ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें २०० का भाग देने से भुक्तनवांश संख्या होगी क्योंकि २०० कला १ नवांश होता है। इसप्रकार जितनी संख्या हो उसमें १२ के भाग देकर शेष तुल्य वर्ष समझना चाहिये तथा शेष कला को १२ से गुना कर २०० के भाग देने से लब्धि मास, फिर शेष को ३० से गुनाकर २०० के भाग देने से लब्धि दिन एवं ६० से गुनाकर घटी और पल साधन करना चाहिये जो आचार्य स्वयं आगे श्लोक में कहते हैं ॥१॥

जीवशर्मा के आयुर्दाय का सोपपत्ति उदाहरण—नरमायु १२० वर्ष ५ दिन इसके दिन बनाने से ४३२०५ इसका सातवाँ भाग $४३२०५ \div ७$ उच्चस्थ ग्रह का आयुः प्रमाण दिनात्मक हुआ। इस पर से त्रैराशिक (अनुपात) हुआ कि यदि स्वोच्च ग्रहान्तर = ० अर्थात् १२ राशि अथवा ३६० अंश में ४३२०५ इतना आयुर्दाय तो इष्ट उच्चग्रहान्तरांश में क्या?—लब्धि = $\frac{४३२०५}{७} \times \frac{\text{उच्चग्रहान्तरांश}}{३६०} =$

$\frac{८६४१ \times \text{उच्चग्रहान्तरांश}}{५०४} =$ दिनादि ग्रहायुर्दाय। यहाँ उच्चग्रहान्तर ६ गति राशि

से अधिक हो तो उस प्रकार ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि—नीच से ज्यों-ज्यों ग्रह आगे बढ़ता, त्यों-त्यों आयु की वृद्धि होकर उच्च में पूर्ण होता है। इससे यह सूत्र (श्लोक) उपपन्न हुआ कि—

“स्वोच्चशुद्धो ग्रहः शोध्यः षड्राश्यूनो भमण्डलात्।

तद्भागाः क्वविषड्भोगिहता वेदाभ्रसायकैः॥

भक्ता दिनादि यल्लब्धं तदायुर्जीवशर्मजम्।

अर्थ—ग्रह और उच्च के अन्तर ६ से अधिक हो तो उसी के, यदि ६ राशि से कम हो तो उसको १२ राशि में घटाकर शेष राश्यादि के अंश बनाकर उसको ८६४१ से गुना करके ५०४ का भाग देने से दिनादि ग्रह का आयुर्दाय होता है।”

जैसे पूर्व उदाहरण में स्पष्ट सूर्य ०६।४९।४० को सूर्य के उच्च ०।१० में घटाने से राश्यादि अन्तर ०।३।१०।२० यह ६ राशि से अल्प है इसलिये इसको १२ राशि में बटाकर ११।२६।४९।४० इसके अंश ३५६।४९।४० इसको ८६४१ से गुना करने से ३०८३३४८।४९।४० इसमें ५०४ का भाग देने से लब्धि दिनाङ्क ६११७।४५।२० इसको वर्षादि बनाने से १६।११।२७।४५।२० यह सूर्य का आयुर्द्वय हुआ । इसी प्रकार चन्द्रमा को सूर्य के साथ अस्त होने के कारण १६।१।१६।४४।१३ के आधा ८।०।२८।२२। ॥ मंगल का १०।८।८।२६।१९ तथा बुध को शत्रुगृह में होने के कारण तृतीयांश घटाने से ६।०।३।३४।४॥ गुरु के १०।१।१२।७।२८। आठमस्थान में रहने के कारण दशांश घटाकर ९।१०।२१।४३।३०॥ शुक के १६।७।१९।१।३।२ द्वादश भाव तथा शत्रुगृह में होने के कारण आधा करके फिर तृतीयांश घटाने से ५।६।१६।२५।४॥ तथा शनि का ८।११।१४।५५।१४ एवं लग्न का पूर्वोक्त रीति से अंशायु ६।४।२६।२२।१२ यह जीवजर्मा के मत से जातक का आयुर्द्वय हुआ ॥९॥

अथानेनैव व्याख्यानानुसारेणाचार्यः स एवायुर्द्वयानयनमार्ययाऽऽह—

सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्वा शतद्वयेनाप्तम् ।

मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः स्युः शेषात्तु मासाद्याः (१) ॥१०॥

सत्योक्ते इति ॥ सत्योक्ते सत्यमतायुर्द्वयकरणे तात्कालिकमिष्टमभिप्रेतं ग्रहं लिप्तीकृत्य लिप्तापिंडं कृत्वा तस्य शतद्वयेन भागमपहृत्य यदवाप्तं तद-
वाप्ताख्यं स्थाप्यम् । अवशेषमधः स्थाप्यम् । अवाप्ते मण्डलभागविशुद्धेऽब्दाः
स्युः । मण्डलभागशब्देन द्वादशभाग उच्यते तेनावाप्तस्य द्वादशभिर्भाग-
मपहृत्यावाप्तं त्याज्यम् । यदवशिष्यते तेऽब्दाः स्युस्तावन्ति वर्षाणि तेन ग्रहेणा-
युषो दत्तानि भवन्ति । शेषात्तु मासाद्याः यदवशेषं स्थापितं तस्माद्द्वादशगुणि-
तासैनैव च्छेदेन विभक्तान्मासा लभ्यन्ते । तच्छेषात्त्रिंशद्गुणितानिहानि ।
तच्छेषात्षष्ठ्या गुणिताद्घटिकाः । पुनरपि षष्टिन्नात्प्राग्ब्रूतं भक्त्वा विकला लभ्यन्ते
इति । एवमागतं ग्रहस्यायुर्द्वयो भवति ।

(१) अत्र युक्तिः—“ग्रहभुक्तनवांशराशितुल्यं बहुसाम्यं समुपैति सत्यवाक्यम्”
इति वचनेन यत्र कुत्रापि राशी मेषनवांशकस्थस्य ग्रहस्यायुःप्रमाणं वर्षमेकम् । वृषनवां-
शकस्थस्य वर्षद्वयम् । मिथुननवांशकस्थस्य वर्षत्रयं, एवं मीननवांशकस्थस्य द्वादश-
वर्षमितमायुर्भवति । अथ ग्रहनिष्ठनवांशज्ञानार्थमिष्टं ग्रहं लिप्तीकृत्वाऽनुपातो यदि
कलाशतद्वयेनैको नवमांशो लभ्यते तदेष्टग्रहकलाभिः किमिति फलं ग्रहभुक्तनवमांश-
प्रमाणम् = $\frac{\text{ग्रह} \times १}{२००}$ अत्र लब्धौ द्वादशतोऽधिकस्य प्रयोजनाभावाद्द्वादशभिर्भागमपह-
ृत्यावशेषं वर्षप्रमाणं स्यात् । तथा च शतद्वयोद्धृतावशेषान्मासाद्याः साध्या यथा
वर्षावशेषं द्वादशभिः सङ्गुण्य स्वच्छेदेन विभज्य फलं मासाः । एवं मासावशेषं त्रिंशता
सङ्गुण्य स्वच्छेदेनैव विभज्य फलं दिनानि । दिनावशेषं षष्ठ्या सङ्गुण्य स्वच्छेदेन
विभज्य फलं घट्यः । एवं पलान्यपि साध्यानि । . . . उपपन्नम् ।

तत्रोदाहरणम् । तात्कालिको ग्रहः १ । ८ । ४५ । ० लिप्तापिंडीकृतः २३२५
अस्य शतद्वयेन (२००) भागमपहृत्यावाप्तं ११ जातं अवशेषम् १२५ । अवाप्त-
स्यास्य ११ द्वादशभिर्भागं न प्रयच्छति इति एतदेवावशेषं तस्माद्ग्रहेणैकादश
वर्षाणि दत्तानि भवन्ति । अवशेषं १२५ द्वादशभिर्गुणितं जातम् १५०० अस्य
शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्तं ७ जातमेवं सप्त मासाः । अथ मासशेषं १००
त्रिंशता (३०) गुणितं जातम् ३००० अस्य शतद्वयेन भागमपहृत्यावाप्तं १५
दिवसाः पंचदश इति । शेषस्याभावान् घटिकाभावाः । एवमागतमेवंविधाद्ग्रहा-
द्वर्षादि । वर्षाणि ११ मासाः ७ दिनानि १५ घटिका ० । अथ तदेव राश्यंश-
कलागुणितादितिन्यायेन प्रदर्श्यते । तद्यथा । राश्यादिग्रहः १ । ८ । ४५ अस्य
राशिभागलिप्ताः पृथक्पृथक्द्वादशहताः १२ । ६६ । ५४० अथ भूयो नवाहताः
१०८ । ८६४ । ४८६० अत्र लिप्तानामेतासां ४८६० पट्या भागे हृते लब्धम् ८१
अवशेषं ० लब्धमिदं घटिकाख्यं ८१ भागेषु ८६४ संयोज्य जातम् ६४५ अस्य
त्रिंशता भागे हृते लब्धम् ३१ अवशेषम् १५ एते दिवसाः । अथ लब्धमिदं
३१ राशिष्वेतेषु १०८ संयोज्यं जातम् १३६ अस्य द्वादशभिर्भागे हृते लब्धं
११ शेषम् ७ एते मासाः । लब्धस्यास्य ११ द्वादशभिर्भागं न प्रयच्छतीत्यत्र
एतदेवात्र शेषम् ११ एतानि ग्रहायुर्दायवर्षाणि ११ मासाः ७ दिनानि १५
घटयः ० । एतत्पूर्वकृतायुर्दाये संविहितमिति । एवं यवनेश्वरसत्याचार्यबाद-
रायणवराहमिहिरैरायुर्दायः प्रदर्शित इति ॥ १० ॥

भाषा—सत्याचार्य के मत से प्रत्येक ग्रह की कलात्मक वनाकर उसमें २०० के
भाग देने से लब्धनवांश संख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से भाग देकर जो शेष
बचे उतने वर्ष और शेष कला पर से मासादिक साधन करे । इस प्रकार उस ग्रह का
वर्षादि आयुर्दाय होता है ॥ १० ॥

इसकी उपपत्ति (युक्ति) यह है कि १ राशि की कला १८०० का नवांश २००
कला १ नवमांश प्रमाण है । इससे अनुपात हुआ कि यदि २०० कला में १ नवांश हो
तो इष्ट ग्रह की कला में कितने ? इस प्रकार भुक्त नवांश संख्या—कलात्मक ग्रह,
२००
नवांश संख्या यदि १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित कर लेना चाहिये, क्योंकि भुक्त
नवांश राशितुल्य वर्ष होता है । राशियाँ १२ ही हैं । शेष कला से अनुपात हुआ कि
२०० कला में १२ मास तो शेष कला में क्या ? इस प्रकार शेष कला को १२ से
गुनाकर २०० के भाग देने से लब्धि मास, पुनः शेष को ३० से गुनाकर २०० के भाग
देकर लब्धि दिन, फिर शेष को ६० से गुनाकर २०० के भाग देने से लब्धि घटी
समझन चाहिये, उदाहरण आगे (१२) श्लोक में देखिये ॥ १० ॥

एवमागतस्यायुर्दायस्य सत्याचार्यमतेनैव कर्मविशेषार्थं वंशस्थेनाह—

स्वतुङ्गक्रोपगतैस्त्रिसङ्गुणं द्विरुत्तमस्वांशकभन्निभागैः ।

इयान्विशेषस्तु भदत्तभाषिते समानमन्यत्प्रथमेऽप्युदीरितम् ॥ ११ ॥

स्वतुंगवक्रेति ॥ स्वतुंगस्थैः स्वोच्चगतैर्ग्रहैः वक्रोपगतैः विपरीतगत्या स्थितश्च यत्स्वदत्तमायुस्तत्त्रिसंगुणं कार्यम् । द्विरुत्तमेति । उत्तमांशोपगतैः वर्गोत्तमांश-स्थितैः स्वांशकस्थितैः स्वनवमभागगतैः स्वभस्थैः स्वराशुपगतैः स्वरत्रिभागैः स्वद्रेष्काणस्थैः एतैः यद्वत्तमायुः तद्वत्त्रिसंगुणं कार्यम् । इयान्विशेष इति । भदत्त-राशेन सत्याचार्योऽभिधीयते यस्मात्तन्मतमिह प्रमाणीक्रियते । पूर्वोक्तविधिना मय्ययवनमणित्वादिमतेनायुर्दयः कृतः । यस्माद्भदत्तभाषिते सत्याचार्यकृते इयानेतावान्विशेषः । यदेतत्स्वतुंगवक्रोपगतैस्त्रिसंगुणमिति तत्सत्योक्तमेव समानमन्यदिति । अन्यद्यच्छेषं तत्प्रथमेऽप्युदीरितम् । प्रथमे मय्ययवनादिमते यदुदीरितमुक्तं तत्समानमत्रापि तत्तुल्यम् । एतदुक्तं भवति । सत्याचार्यमतेना-युर्दयं कृत्वा वक्रवर्ज्यं शत्रुक्षेत्रगतस्य त्र्यंशं पातनीयं शुक्रसौरिवर्ज्यम् अस्तगत-स्याद्धं पातनीयं सर्वार्धत्रिचरणेत्यादिचक्रपातापहानिः कार्या ॥ ११ ॥

भाषा—सत्याचार्य के मत से आयुर्दय का साधन करके, जो ग्रह अपने उच्च में हो या वक्र हों उसके आयुर्दय को त्रिगुणित कर देना चाहिए, जो ग्रह अपने वर्गोत्तम नवांश में या अपने द्रेष्काण में हो उसके आयुर्दय को द्विगुणित कर देना चाहिये । इतनी क्रिया सत्याचार्य के मत में अन्य आचार्यों से विशेषता है । और अन्य क्रिया (शत्रु गृहगत का तृतीयांश घटाना, अस्तङ्गत का षाष्ठा घटाना, एवं चक्रार्ध हानि, जो कही गई है वे सब क्रिया) समान ही है अर्थात् भदत्त (सत्याचार्य) के मत में भी समान ही समझना चाहिये ॥ ११ ॥

एवं सत्याचार्यमतेन ग्रहायुर्दयमुक्त्वाऽधुना लग्नायुर्दयकरणं क्रूरोदये पाप-हानिः प्राप्ता तदपवादार्थमिन्द्रवज्रयाऽऽह—

किन्त्वत्र भांशप्रतिमं ददाति वीर्यान्विता राशिसमं च होरा ।

क्रूरोदये योपचयः स नात्र कार्यं च नाब्दैः प्रथमोपदिष्टैः ॥१२॥

किमिति ॥ अत्रास्मिन्सत्यमतायुर्दये होरा लग्नं भांशप्रतिमं ददाति । एतदुक्तं भवति । मेषादेरारभ्य यावत्संख्योऽस्य राशेः सम्बन्धी नवांशको लग्नेन भुक्तस्तावन्ति संख्यानि वर्षाणि लग्नायुर्दयो भवति । शेषाद्भागादिकान्नवांशकात् त्रैराशिकेन मासाद्यानयितव्यम् । एतदुक्तं भवति । सत्योक्ते ग्रहमिष्टं लिप्तीकृत्ये-त्येवं लग्नायुर्दयः कर्तव्यः । एवं कृत्वा यदि वीर्यान्विता होरा भवति । तदा राशिसमानानि राशितुल्यानि वर्षाणि प्रयच्छतीति । “होरास्वामिगुरुज्ञवीक्षित-युता नान्यैः” इति न्यायेन यदि वीर्यान्विता बलवती होरा लग्नं भवति तदा राशिसमं ददाति तत्तुल्यानि वर्षाणि प्रयच्छति । भागादिकात्त्रैराशिकेन मासा-द्यानयितव्यं कथमुच्यते । भागाश्च लिप्तापिंडीकृत्य द्वादशभिः संगुण्याष्टा-दशभिः शतैः भागमपहृत्यावाप्तं मासाः । अवशेषं त्रिंशता संगुण्य तेनैवच्छेदेन भागमपहृत्यावाप्तं दिवसाः । तदेव शेषं षष्ठ्या संगुण्य तथैव

घटिकाः । पुनरपि शेषं पष्ठ्या संगुण्य तथैव चषकाः । लब्धं मासादि तत्रैव योजयेदेवं लग्नायुर्दायो भवति । वीर्यान्वितस्य लग्नस्य यत्कर्म तद्वीर्यवर्जितस्य च न कर्तव्यम् । अत्र च वादरायणः । “होरादायोऽप्येवं वलयुक्तान्यानि राशि-तुल्यानि । वर्षाणि संप्रयच्छत्यनुपाताच्चांशकादि फलम् ॥” एतच्चाचार्यवराह-मिहिरेण स्वल्पजातकेऽग्निनष्टयैवाभिहितम् । क्रोदय इति । मययवनादि-मतायुर्दाये क्रोदये क्रूरे लग्नगते “सार्द्धोदितोदितनवांशहतात्समस्तात्” इति न्यायेन यदायुपोपचयः क्रियते तदन्नास्मिन्सत्यमतायुर्दाये न कर्तव्यम् अन्य-त्सर्वं कर्तव्यम् । कार्यं च नावदैरिति प्रथमोपदिष्टैः पूर्वकथितैरवदैः नवतिथि-विषयेति येऽव्दा यवनवादरायणाचार्यमतेन पठिता जीवशर्ममतेन च ग्रहदायं परमायुषः स्वरांशमिति तैरवदैर्ह्यैराशिकमुक्तं तदिह न सम्भवति । यथाऽऽदि-त्यस्य द्वादशशकानामंशकानामेकोनविंशत्यव्दा भवन्ति तदैकस्मिन्नंशके किमिति सत्यायुर्दाये न कर्तव्यम् ॥ १२ ॥

भाषा—सत्याचार्य के मत से लग्न में जितनी राशि के नवांश भुक्त हुए हों उतने वर्ष की आयु होती है किन्तु यदि लग्न बलवान हो अर्थात् स्वामी या बुध गुरु से युत दृष्ट हो तो भुक्त राशि के तुल्य वर्षादि आयु और भी देती है । तथा लग्न में पापग्रह होने से जो अन्य (मय आदि) आचार्य के मत में अपचय (सार्द्धोदितोदित इत्यादि विधि से ह्रास) कहा गया है वह सत्याचार्य के मत में नहीं करना । तथा प्रथम कहे हुए (नव तिथि, या परमायुर्दाय के सप्तमांश ग्रह पिण्ड) वर्षों से भी लग्नायुर्दाय नहीं करना, इतना सत्याचार्य के मत में विशेष (दूसरे आचार्यों के मत से भेद) है ॥ १२ ॥

उदाहरण—पूर्व लिखित स्पष्ट सूर्य ०६।४९।४० की कला ४०९।४० में २०० के भाग देने से लब्धि २, वारह से कम है इसलिये ये ही वर्ष २ हुए । शेष ९।४० को १२ से गुना करके ११६।० इसमें २०० के भाग देने से लब्धि ० मास । फिर शेष ११६ को ३० से गुना करके २०० के भाग देकर लब्धि १७ दिन, फिर दिन शेष ८० को ६० से गुना कर २०० से भाग देकर लब्धि २४ घटी इस प्रकार सूर्य का वर्षादि आयुर्दाय २।०।१७।२४ हुआ । एवं चन्द्रमा के अस्तङ्गत होने के कारण ३।८।४।४२।३६ के आघा १।१०।२।२१।१८ । मंगल का १।०।०।४।८।३६। बुध का त्र्यंशोन करने से ६।१०।८।५४।०। गुरु का दशमांशोन ६।६।६।४३।४५। शुक्र का द्वादश स्थान में होने के कारण आयुर्दाय ७।१०।२४।१२।३६ के आघा ३।११।१२।६।१८ करके इसमें शत्रु-ग्रह में होने के कारण तृतीयांश घटाने से २।७।१।८।४।१२ पुनः शुक्र स्वोच्च में है इसलिये त्रिगुणित करने से शुक्र का स्पष्टायुर्दाय ७।१०।२४।१२।३६ तथा शनि का ८।५।४।३९।० और लग्न का ६।४।२६।२२।१२ गुरु वर्गोत्तम नवांश (गुरु राशि में वृश्चिक का नवांश) में है अतः उसकी आयु को हूना करने से स्पष्टायु १३।०।१९।२७।३० तथा सूर्य स्वोच्च में है अतः उसके साधित आयु को त्रिगुणित करने से ६।१।१२।१२ यह स्पष्टायुर्दाय हुआ । इस प्रकार सत्याचार्य के मत से लग्न सहित ग्रहों

के आयुर्दय का योग जातक का आयुर्दय ६२।५।२१।१८।३०।

ग्रह प्रदत्त-अंशायुर्दय चक्र—

| | र. | च. | मं. | बु. | बृ. | शु. | श. | ल. | योग |
|-----|----|----|-----|-----|-----|-----|----|----|-----|
| व. | ६ | ३ | १० | ६ | १३ | ७ | ८ | ६ | ६२ |
| मा. | १ | ८ | ० | १० | ० | १० | ५ | ४ | ५ |
| दि. | २१ | ४ | ० | ८ | १९ | २४ | ४ | २६ | २१ |
| घ. | १२ | ४२ | ४८ | ५४ | २७ | १२ | ३९ | २२ | १८ |
| प. | ० | ३६ | ३६ | ० | ३० | ३६ | ० | १२ | ३० |

इस प्रकार अंशायु आनयन में सरल प्रकार यह हो सकता है कि—यदि १२ राशि में १०८ नवांश होते हैं तो ग्रह के भुक्त राश्यादि में क्या ? इस प्रकार त्रैराशिक से नवांश संख्या = $\frac{\text{राश्यादिग्रह} \times १०८}{१२}$, इससे सिद्ध हुआ कि राश्यादिग्रह को १०८

से गुना करके तथा विकलादि सवर्णन करके राशि स्थान में १२ के भाग देने से लब्धि तुल्य वर्ष, यदि १२ से अधिक लब्धि हो तो उसे १२ से तष्टित कर शेष को वर्ष समझे, और शेष राश्यादि को क्रम से मासादिक जानना चाहिये। इसलिये यही प्रकार लघुजातक में आचार्य ने स्वयं भी कहा है। यथा—

“रादयंशकला गुणिता द्वादश नवभिर्ग्रहस्य भगण्यः ।

मण्डलभागविशुद्धेऽवदाः स्युः शेषात् मासाद्याः ॥” स्पष्टार्थ

अथवा उपरिर्दिष्ट अनुपात से यह भी सिद्ध होता है कि राश्यादि ग्रह को केवल ९ से गुना करके विकलादि को सवर्णन कर राशिस्थान में १२ से अधिक हो तो १२ से तष्टित करके शेष तुल्य वर्ष और शेष अंशादि को २ से गुना कर ५ के भाग देने से लब्धि मास, पुनः शेष को ६ से गुना करने से दिनादि होते हैं ।

यथाः—स्पष्ट सूर्य राश्यादि ०।६।४९।४० इसको १०८ से गुणा करने से ०।६४८।५२९२।४३२० से सवर्णन करने से २४।१७।२४।० राशि के स्थान में १२ के भाग देने से लब्धि २ वर्ष । शेष ० । १७ । २४ मासादि पूर्व तुल्य ही हुआ ।

दूसरे प्रकार से राश्यादि सूर्य को केवल ९ से गुना करने से ०।५४।४४१।३६० सवर्णन करने से राश्यादि २।१।२७।० राशितुल्य वर्ष = २ । शेष अंशादि को २ से गुनाकर २।५४ इसमें ५ से भाग देने से लब्धि ० मास, फिर शेष को ६ से गुना करने से दिनादि १७।२४ पूर्व तुल्य हुआ ॥ १२ ॥

अथ मयादिसतमुपन्यस्य जीवशर्ममतं चोपन्यस्य सत्यमतस्यैवाङ्गीकरण-
मिन्द्रवज्रयाऽऽह—

सत्योपदेशो वरमत्र किन्तु कुर्वन्त्ययोग्यं बहुवर्गणाभिः ।

आचार्यकत्वं च बहुव्रतायामेकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम् ॥१३॥

सत्योपदेश इति ॥ अत्रास्मिन्मतत्रये सत्योपदेशो वरं श्रेष्ठ इत्यर्थः ।
किन्तु तदप्यन्ते बहुवर्गणाभिः बहुभिः गुणनाभिरयोग्यं कुर्वन्ति विनाशयन्ति ।
कास्ताः गुणनाः । स्वतुङ्गवक्रोपगतैस्त्रिसङ्ख्युणमित्यादिकाः । तत्र यदि स्वगृहे
ग्रहो भवति तदा द्विगुणमायुः कुर्वन्ति । स एव स्वगृहशके यदि भवति तदा
भूयोऽपि द्विगुणं कुर्वन्ति । स एव स्वद्रेष्काणे यदा भवति तदा भूयोऽपि
द्विगुणं वर्गोत्तमांशे स एव वक्रो यदि भवति तदा भूयस्त्रिगुणं कुर्वन्ति । स एव
स्वोच्चस्थो भवति तदा भूयोऽपि त्रिगुणं कुर्वन्ति । एवमन्यवस्था । अनेनान्यवस्था-
प्रसङ्गेन सत्योक्तमप्यायुर्दोयमयुक्तं बहुवर्गणाभिः कुर्वन्ति । तथा च मयः ।
“वर्गोत्तमे स्वराशौ द्रेष्काणे स्वे नवांशके द्विगुणम् । वक्रोच्चगते त्रिगुणं द्विगुणं
कार्यं यथासंख्यम् ॥” तथा च सारावल्याम् । “बहुतादनसम्प्राप्तौ यां करोत्ये-
कवर्गणाम् । वराहमिहिराचार्यः सा न दृष्टा चिरन्तनैः” इति । एतदप्ययुक्तम् ।
तदाऽत्र किं कार्यमित्याह । “आचार्यकत्वं तु बहुव्रतायाम्” इति । एतदाचार्य-
कत्वमत्रागमः । बहुव्रतायां प्राप्तायामेकं तु यद्भूरि बहुतरं गुणनं तदेव कार्य-
मिति । बहुषु गुणनासु प्राप्तास्वेकैव क्रियते इति । बहुवारं यत्र द्विगुणं प्राप्तं
तत्र सकृदेव द्विगुणमायुः कर्तव्यम् । यत्र द्विगुणत्वं त्रिगुणत्वं च प्राप्तं तत्र
सकृदेव त्रिगुणं कर्तव्यम् । यत्र वारद्वयं त्रिगुणत्वं तत्र सकृदेव त्रिगुणं
कर्तव्यम् । “एकं तु यद्भूरि तदेव कार्यम्” इति वचनात् । स्वल्पजातकेऽप्यु-
क्तमाचार्येण । “वर्गोत्तमे स्वद्रेष्काणे स्वनवांशके सकृद्विगुणम् । वक्रोच्चयोस्त्रि-
गुणितं द्वित्रिगुणत्वे सकृत्त्रिगुणम् ॥” इति । चक्रपातं वर्जयित्वा बहुवर्गणा-
न्यायेनैतदेव कर्म शत्रुक्षेत्रस्थो नीचस्थश्च यदा ग्रहो भवति अस्तं गतो वा तदा
सकृदेवा पहानिः कार्या । नीचेऽतोऽर्द्धं ह्रस्वतीत्यत्रापि अनुवर्तनीयम् । उक्तं
च स्वल्पजातके । “शत्रुक्षेत्रे ष्यंशं नीचेऽर्द्धं सूर्यलुप्रकिरणाश्च । क्षपयन्ति
स्वाहायान्नास्तं यातौ रविजशुकौ ॥” इति । एवं कृतस्य सत्याचार्यमतस्य स्पष्टता
भवतीत्याचार्यस्य मतम् । यत्रापहानिः प्राप्ता तत्र सकृदेवापहानिं कृत्वा
सकृदपि गुणना कार्या । किं त्वपहानौ कर्तव्यायां चक्रपातापहानिं कृत्वा ततः
शत्रुक्षेत्रस्थस्यापहानिः सकृदेव कर्तव्या ततः सकृदेव गुणना कार्या । अत्र च
भगवान्गार्गिः । “राशितुल्यांशसंख्यानि ग्रहोऽर्द्धानि प्रयच्छति । लग्नश्च
सबलोऽन्यानि भुक्तराशिसमानि तु ॥ मासाद्यानयनं कार्यमनुपातादतः परम् ।
सर्वाद्धं त्रिचतुर्थांशान्वामं पञ्च चतुः समित् ॥ हरन्ति पापाः स्वाहायात्तद्ध-
मितरे ग्रहाः । व्ययाश्चक्रापहानिस्तु कथितेयं तथा ध्रुवम् ॥ एकस्वेकक्षेत्रेऽप्येव

करोति बलवान्प्रहः । शशुक्षेत्रगतस्त्रयंशं नीचेऽर्द्धं सूर्यगतस्तथा ॥ हन्ति स्वादायात्र-
विग्री न सितादित्यनन्दनौ । न चावनिमुतश्चांशं शशुक्षेत्रगतस्तथा ॥ ध्रुवापहानिः
कर्तव्या ततोऽन्यासु बहुष्वपि । प्राप्तास्वेकैव कर्तव्या या स्थात्तासु महत्तरा ॥
ततोऽपि गुणना कार्याऽप्येकैव महती सकृत् । द्वाभ्यां वर्गोत्तमे स्वांशे
स्वद्रेष्काणे स्वके ग्रहे ॥ त्रिभिर्वक्रगतस्याथ स्वोच्चराशिगतस्य च । ग्रहदायो
भवत्येवं शोधयत्क्षेपकृतस्तु यः ॥” अत्र यद्यप्याचार्येणांशायुः प्रमाणीकृतं
तथापि लग्नो यदि सम्यग्बली भवति तदांशायुः कर्तव्यम् । अथार्को बलवा-
स्तदा पिण्डायुः । तथा च मणित्थः । “विलग्ननेऽतिबलोपेते शुभद्वेष्टश-
सम्भवः । रवौ पिण्डोद्भवं कुर्यादिति त्रयुश्चिरन्तनाः ॥” तथा च साराचल्यम् ।
“अंशोद्भवं विलग्नान्तिपिण्डार्थं भानोर्निसर्गजं चन्द्रात्” इति । अन्येऽप्येय-
माहुः । यथा अंशायुः पिण्डायुषो द्वे अपि कार्ये । द्वाभ्यामपि दशान्तर्दशाविभाग-
परिकल्पना कार्या । तत्र यदल्पं तस्यान्तिममन्तर्दशा सैव यद्यधिकस्य तत्कालं
वर्तते तदाधिकमायुर्जायते । शशुक्षेपे चेतदा तत्रैव मरणं मित्रदशा चेतदापि
जीवति मध्यमदशा चेतदा पीडा भवति ततोऽपि जीवति । अस्माकं सत्याचार्य-
मतमभिमतमिति ॥ १३ ॥

भाषा—इन (मयादि, जीवशर्मा और सत्याचार्य) तीनों के मत में सत्याचार्य का
ही मत कुछ अच्छा है । परन्तु सत्याचार्य के मत में भी लोग बहुवर्गणा (‘स्वतुङ्गव-
क्रोपगतैः’ इत्यादि जो जो गुणना प्राप्त होती है उन सब क्रिया) को करके अयोग्य
(अनुचित) कर डालते हैं । आचार्यन्ता (पाण्डित्य) तो यह है कि—बहुवर्गणा प्राप्त हो
तो जो बड़ी गुणना हो वह एक ही और एक बार ही करना चाहिये ॥ १३ ॥

विशेष अर्थ—अभिप्राय यह है कि—सत्याचार्य के मत से आयुर्दाय साधन करके
जो ग्रह वक्र हो और उच्च में भी हो, उसकी आयु को लोग दो बार त्रिगुणित करते
हैं वह अयुक्त है । वहाँ एक ही बार त्रिगुण करना चाहिये । एवं जहाँ द्विगुणत्व और
त्रिगुणत्व दोनों प्राप्त हो वहाँ केवल त्रिगुण ही करना चाहिए । एवं जहाँ त्र्यंश और
अर्ध हानि दोनों प्राप्त हो वहाँ केवल अर्ध हानि करना चाहिए; दोनों नहीं । यह बराह-
मिहिर का मत है ॥ १३ ॥

अथ यस्मिन्योगे जातस्यायुःप्रमाणं न ज्ञायते तद्योगज्ञानं पुष्पिताप्रयाऽह—
गुरुशशिसहिते कुलीरलग्ने शशितनये भूगुजे च केन्द्रयाते ।

मवरिपुसहजोपगैश्च शेषैरमितमिहायुरनुक्रमाद्विना स्यात् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

आयुर्दायाध्यायः सप्तमः (१) ॥ ७ ॥

(१) अत्र विशेषः—“नक्षत्रायुः कलौ युगे” इति प्राचीनवचनान्नक्षत्रायुषः प्राधा-
न्यात्पुनोत्कारार्थं संक्षेपेण नक्षत्रायुरानयनं प्रदर्शयतेः—

गुर्विति ॥ कुलीरलग्ने कर्कटोदये गुरुशशिसहिते जीवचंद्रयुक्ते तथा शशितनये बुधे भृगुजे च शुक्रे केंद्रयाते कंटकगते शेषैः परिशिष्टैः रविभौम-सौरैः भवरिपुसहजोपगतैः भवस्थानमेकादशं रिपुस्थानं पष्ठं सहजस्थानं तृतीय-मेतेषु भवरिपुसहजेषु उपगतैः स्थितैः इहास्मिन्योगे जातस्यानुक्रमाद्विना गणितकर्मातिरेकापि विनाऽमितमपरिमितायुः स्याद्भवेत् । एतदुक्तं भवति । यदा कर्कलग्नं भवति तत्रैव चंद्रजीवौ व्यवस्थितौ भवतः । बुधशुक्रौ सहितौ पृथक्स्थौ वा लग्नचतुर्थसप्तमदशमस्थानानामन्यतमे यथासंभवं भवतः ।

नक्षत्रस्य प्रथमचरणादौ जातानां विशत्यधिकशतं परमायुर्भवति । तथा द्वितीयचर-णादौ समुत्तरानां वर्षशतमायुर्भवति । एवं तृतीयचरणादौ जन्मवतामशीतिवर्षमितमायु-र्भवति । चतुर्थचरणादौ जातानाञ्च षष्टिवर्षमितमायुर्भवति । तथा च गौरीजातकोक्तं पद्यम्—

“प्रथमांशकजातानां परमायुः प्रकीर्तितम् ।

द्वितीयांशकजातानां शतञ्च परिकीर्तितम् ॥

समाशीतिस्तृतीयांशे वर्षषष्टिश्चतुर्थके ॥” इति ॥

एवं प्रथमचरणादेर्द्वितीयचरणादौ परमायुःषडंशसमोऽपचयो दृश्यते । तावानेव द्वितीयचरण-देस्तृतीयचरणादौ । तथा तृतीयचरणादेश्चतुर्थचरणादावपि परमायुःषडं-शतस्य एवापचयः स्यादतो मध्ये भयातप्रमाणतोऽनुपातेनेष्टायुः साध्यम् । तत्र च भभोग-मानं स्थूलं षष्टिमितं प्रकल्प्यानुपातो—यदि पञ्चदशघटीमितेन भयातप्रमाणेन परमायुःषडं-शतस्योपचयो भवति तदेष्टभयातघटीप्रमाणेन कियानिति $\frac{१२० \times \text{भया}}{६ \times १५} = \frac{१२० \times \text{भया}}{९०}$ लब्धमपचयमानम् । एतेन हीनं परमायुःप्रमाणमवशिष्टमिष्टस्पष्टमायुः स्यादतोऽत्र गौरी-जातकोक्तपद्ये—

“परमायुःप्रमाणेन गुणयेद् गतनाडिकाः ।

नक्षत्रस्य हरेद्भागं नवत्याप्तं विशोधयेत् ॥

परमायुषि पुंसश्च शेषमायुः स्फुटं भवेत् ।

अतोऽनुपाततः कार्या ग्रहस्य च दशास्तथा ॥” इति ॥

अस्यार्थः—नक्षत्रस्य (जन्मनक्षत्रस्य) गतनाडिकाः (भयातघटिकाः) परमायुःप्रमाणेन (विशत्यधिकशतेन) गुणयेत् (गणक इति शेषः) नवत्या भागं हरेत्, आप्तं (लब्धं) परमायुषि (विशत्यधिकशतमिते) विशोधयेत्, शेषं पुंसः (पुरुषस्य) स्फुटमायुर्भवेत् । तथाऽऽमादनुपाततो ग्रहस्य दशाः कार्या (गणकेनेति शेषः) ।

अत्रोदाहरणम्—कस्यचिजन्मसमये भयातघटीप्रमाणम्=२० । १५ । तत् उप-रोक्तपद्यानुसारेण परमायुःप्रमाणम्=१२०, भयातघटीभिर्गुणितम् २४०० । १८०० । सवर्णिते जातम्=२४३० । ० नवत्या विभाजिते लब्धं वर्षप्रमाणम् २७ । ० इदं परमायुःप्रमाणाद्विशोध्य जातम् १२०-२७=९३ इष्टायुर्वर्षमानम् इति ।

परिशेषाः आदित्यांगारकशनैश्चराः पृथक्सहिता वा यथासंभवमेकादशपञ्च-
तृतीयगाः भवन्ति तदा ईदृग्योगे यो जातः तस्यामितप्रमाणमायुर्भवति । अनु-
क्रमाद्गणितागतं विनैव अयमर्थः । एवंविधे योगे दृष्टे आयुर्दायगणना न
कर्तव्या यस्मात्तस्यासंभव इति । अतोऽन्यथाजातस्य यथागतेनायुषाऽद्वयमेव
भवितव्यम् । नायुःपिण्डस्यार्वाकृतस्य मृत्युर्भवति न चायुःपिण्डममतिक्रम्य तेन
जीवितव्यमिति । यस्मिन्योगे जातस्यानाचारस्येवायुषो ध्वंसो भवति इति ।
तथा च स्मृतिपूक्तम् । पारदारमनायुष्यमित्येवमादिकैर्दोषैर्न जीवति । एतद्योगे
जातस्यायुर्वेदोक्तविधिसेवितै रसायनैः प्रयोगैर्यथाभिहितैर्दोर्घायुरवाप्नोतीति ॥१॥
इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतावायुर्दायाध्यायः सप्तमः ॥७॥

भाषा—चन्द्रमा और गुरु से युक्त कर्क लग्न हो, बुध शुक्र दोनों केन्द्र स्थान में
हो और शेष ग्रह (शनि, रवि, मङ्गल) लग्न से ११।६।३ इन स्थान में एक साथ
या पृथक् पृथक् भी हो तो गणितक्रम को छोड़कर उस जातक का आयुर्दाय प्रमाण-
रहित समझना चाहिये ॥ १४ ॥

विशेष अर्थ—भाव यह है कि इस प्रकार के सुयोग में जन्म लेनेवाला सुकर्म
करनेवाला होता है, इसलिये उसका आयुर्दाय बढ़ जाता है । इससे यह भी सिद्ध होता
है कि इससे विपरीत योग में उत्पन्न जातक कुकर्मरत (पापी) होता है उससे आयु
की हानि भी होती है । कहा भी है कि—“पुण्याचारादायुषो वृद्धिरेव पापाचारात्
तस्य हानिर्भूवा स्यात्” ॥ १४ ॥

अथ दशान्तर्दशाध्यायः ८ ।

अथातो दशान्तर्दशाध्यायो व्याख्यायते । परिज्ञातसमस्तायुषः पुरुषस्य
जीविताभ्यन्तरे स्थितयोः सुखदुःखयोः परिच्छेदः क्रियते । तत्र च शोधयन्ते प-
विशुद्धमायुर्यावत्प्रमाणं येन ग्रहेण दत्तं तावत्प्रमाणैव तस्य संवन्धिनी दशा
भवति । तत्र दशाक्रमो न ज्ञायते तज्ज्ञानं मालिन्याद्—

उदयरविशशाङ्कप्राणिकेन्द्रादिसंस्थाः

प्रथमवयसि मध्येऽन्त्ये च दद्युः फलानि ।

न हि न फलविपाकः केन्द्रसंस्थाद्यभावे

भवति हि फलपक्तिः पूर्वमापोक्लिमेऽपि ॥१॥

उदयेति ॥ उदयो लग्नं तनुः रविरादित्य आत्मा शशाङ्कश्चन्द्रो मनः
एषामुदयरविशशाङ्कानां मध्याद्यः प्राणी बलवांस्तद्वलवशात्तस्य सम्बन्धिनी
प्रथमा दशा भवति प्राधान्याद्देहवताम् । तथा च यवनेश्वरः । “निशाकरा-
दित्यविलग्नमध्ये तत्कालयोगादधिकं बलं यः । विमर्ति तस्यादिदशेष्ट्यते सा
शेषास्ततः शेषबलक्रमेण ॥” इति । उदयश्च रविश्च शशाङ्कश्चोदयरविशशाङ्काः
उदयरविशशाङ्कानां प्राणी उदयरविशशाङ्कप्राणी उदयरविशशाङ्कप्राणी च

केन्द्रादिसंस्थाश्चोदयरविशशांकप्राणिकेन्द्रादिसंस्थाः एवमेषां मध्याद्येन प्रथमा दशा दत्ता तस्यैव केन्द्रादिसंस्थाः केन्द्रपणफरापोक्लिमेषु स्थिता ग्रहाः वीर्या-पचयक्रमेण दशा दद्युः । एवं लग्नार्कशशांकानां मध्यादेकस्य बलवतो दशा आदौ परिकल्प्या । ततस्तस्य केन्द्रस्थास्तेषां दशाः परिकल्प्याः । तैः केन्द्रस्थैः प्रथमवयसि फलं दत्तं भवति । यदुक्तम् । “प्रथमवयसि मध्येऽत्ये च दद्युः फलानि” इति तथा च यवनेश्वरः । “पूर्वे तु केन्द्रोपगताः फलन्ति मध्ये वयः पणफरं निविष्टाः । आपोक्लिमस्थाः फलदा वयोऽत्ये यथाबलं स्वं समुपैति पूर्वम् ॥” अथ यदि केन्द्रस्था ग्रहा न भवन्ति तदा कः प्रथमे वयसि फलं प्रयच्छतीत्याह । न हि न फलविपाक इत्यादि । केन्द्रस्थाद्यभावे केन्द्रस्थानां ग्रहाणामभावे असंभवे सति प्रथमे वयसि यः फलविपाकः स न हि न । यतो द्वौ नञौ प्रकृतमर्थं गमयतः । पणफरस्थानामप्यभावे मध्ये वयसि फलविपाको न हि न । आपोक्लिमस्थानामभावेऽत्ये वयसि फलविपाको न हि न । एतदुक्तं भवति । यदा केन्द्रस्था ग्रहा न भवन्ति तदा पणफरस्थाः पूर्वं फलं प्रयच्छन्ति तत आपोक्लिमस्थाः । अथ केन्द्रस्थाः पणफरस्थाश्च न भवन्ति तदा सर्वस्मिन्नेव वयसि आपोक्लिमस्थाः फलं प्रयच्छन्ति । यत् उक्तम् । “भवति हि फलपक्तिः पूर्वमापोक्तिमेषु” इति । एवमापोक्लिमस्थानामभावे प्रथमं केन्द्रस्थाः फलं प्रयच्छन्ति ततः पणफरस्थाः । यदा आपोक्लिमस्था न भवन्ति न च पणफरस्थास्तदा सर्वस्मिन्नेव वयसि केन्द्रस्थाः फलं प्रयच्छन्ति । एतदुक्तं भवति । “लग्नार्कशशांकानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत्प्रथमा” । प्रथमां दशां कल्पयित्वा ततस्तत्केन्द्रगानां सर्वेषां कल्पनीयाः । तेषां परिकल्प्य पणफरस्थानां परिकल्पनीयास्ततः परमापोक्लिमस्थानां केन्द्रस्थानामभावे प्रथमं दशापतेरनंतरं पणफरस्थानां कल्पनीयास्ततः आपोक्लिमस्थानां केन्द्रस्थानामभावे पणफरस्थानामभावे आपोक्लिमस्थानामेव कल्पनीयाः । अथ केन्द्रस्था भवन्ति पणफरस्था न भवन्ति आपोक्लिमस्था एव भवन्ति तदा केन्द्रस्थानां कल्पयित्वा आपोक्लिमस्थानामेव कल्पनीयाः । अथ केन्द्रस्था एव केवलं भवन्ति तदा तेषामेव कल्पनीयाः । अथ पणफरस्था एव भवन्ति तदा पणफरस्थानामेव कल्पनीयाः । अथापोक्लिमस्था भवन्ति तदा तेषामेव कल्पनीयाः । तथा च स्वल्पजातके उक्तम्—

“लग्नार्कशशांकानां यो बलवांस्तद्दशा भवेत् प्रथमा ।

तत्केन्द्रपणफरापोक्लिमोपगानां बलाच्छेषाः ॥” ॥ १ ॥

भाषा—लग्न, रवि और चन्द्रमा इन तीनों में जो अधिक बली हो आरम्भ में प्रथम उसी की दशा होती है । फिर उससे केन्द्र स्थित ग्रहों की दशा होती है । उसके बाद मध्यकाल में प्रथम दशाप्रद से पणफर स्थान में स्थित ग्रहों की दशा होती है । उसके बाद अन्त समय में प्रथम दशाप्रद से आपोक्लिम स्थान स्थित ग्रहों की दशा होती है । अगर केन्द्र या पणफर में ग्रह नहीं हो तो ‘प्रथम और मध्य समय में फल

नहीं होगा' ऐसा नहीं समझना चाहिये अर्थात् उस हालत में मध्य और अन्त वयन (समय, में आपोविलम्ब (३।६।१।१२) स्थान में ग्रहों की दशा होती है ॥ १ ॥

अथ दशाकालप्रमाणं केन्द्रस्थानानामपि दशाक्रमज्ञानमिद्वयञ्चयाह—

आयुः कृतं येन हि यत्तदेव कल्प्या दशा सा प्रबलस्य पूर्वम् ।

साम्ये बहूनां बहुवर्षदस्य तेषां च साम्ये प्रथमोदितस्य ॥ २ ॥

आयुः कृतमिति ॥ शोध्यत्वेपविशुद्धमायुर्यावद्वर्षप्रमाणं येन ग्रहेण दत्तं नदेव तस्य ग्रहस्य संबंधिनी दशा कल्प्या परिकल्पनीया । तत्र लग्नाकर्शशांकाणां यो बलवांस्तद्दशा भवेत्प्रथमेति न्यायेन तद्दशां प्रथमं कल्पयित्वा ततस्तत्केन्द्र-
गानां मध्यात्सैव दशा प्रबलस्यातिबलस्य पूर्वं प्रथमं कल्प्या । अनन्तरं यस्मादून-
बलस्य एवं क्रमेण यथा ऊनबला भवन्ति तथा पश्चात्तदीयदशाः कल्पनीयाः ।
एवं केन्द्रस्थानां दशाः परिकल्प्याः पणहरस्थानाम् । पणफरस्थानाम् अनेनैव
क्रमेण परिकल्प्याः । तत आपोक्लिमस्थानाम् अनेनैव क्रमेणेति । साम्ये
बहूनामिति । केन्द्रस्थानां बहूनां ग्रहाणां बलसाम्ये सति बहुवर्षदस्य
बहूनि वर्षाणि येन दत्तानि तस्य प्रथमं दशा परिकल्प्या । नन्वत्र कथं
ग्रहाणां बलसाम्यं भवति । यदि द्वावपि सुहृत्त्रिकोणोच्चगतौ भवतस्तदा
नैसर्गिकेण बलेन योऽधिकः स एव बली स्यात् । अस्त्वेतत् । किंतु
स्थानदिक्चेष्टाकालबलग्रहदर्शनादिबलानि यावद्गणितविधिनैकीक्रियन्ते ताव-
द्गतसाम्यं भवति । ग्रहाणां यथा सामान्येनोदाहरणम् । यदि शनैश्चरो
बलप्रयेण संयुक्तो भवति भौमो बलद्वयेन तदा तत्र भौमस्य निसर्ग-
बलत्वाद्वलसाम्यं भवति । एवं सर्वेषामपि ज्ञेयम् । तेषां च साम्ये
प्रथमोदितस्येति । तेषां वर्षाणां साम्ये वर्षमानतुल्येऽपि प्रथमोदितस्य दशा
परिकल्प्या । प्रथममादावर्कमंडलाद्य उदित उद्गतस्तस्य यदा बलसाम्यं भवति
तदा बहुवर्षदेऽपि ग्रहे स्थिते बलाधिकस्यैव पूर्वं दशा परिकल्प्या । तेषां च
बलसाम्ये प्रथमोदितस्येत्यत्र द्विविध उदयः । प्रत्यहं चक्रभ्रमवशादेकः आदित्य-
विप्रकर्षेणापरः । तत्रेहादित्यविप्रकर्षेण उदयो गणितस्कंधोक्तकालांशकवशा-
ज्ज्ञेयः । अत्र च भगवान् गार्गीः ।

“बली लग्नेंदुसूर्याणां दशामाद्यां प्रयच्छति ।

तस्मात्तः प्रयच्छति केन्द्रादिस्थाः क्रमेण तु ।

तत्रापि बलिनः पूर्वं तत्साम्ये बहुदायकः ।

तत्साम्येऽपि प्रयच्छन्ति ये पूर्वं रविचिच्युताः ॥” ॥ २ ॥

भाषा—पूर्वविधि से जिस ग्रह की जितनी आयु (वर्षादि) हो उतनी ही उस ग्रह की दशा समझनी चाहिये । वह दशा भी बलक्रम से अर्थात् बली ग्रह की प्रथम दशा होती है । यदि २ या अधिक ग्रह बल की समता हो तो उनमें जिसके अधिक वर्ष हो

प्रथम उसी की दशा समझनी चाहिए। यदि वर्ष में भी तुल्यता हो तो सूर्य सान्निध्य-
वश से अस्त के बाद जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसकी पहिले दशा होती है ॥२॥

विशेष अर्थ—गार्गिवचन—संस्कृत टीका में देखिये। अर्थ स्पष्ट है।

यहाँ यह कहा गया है कि बल में और वर्ष में समता हो तो रवि सान्निध्यवश
जिसका प्रथम उदय हुआ हो उसकी प्रथम दशा समझनी चाहिये। किन्तु यदि
रवि सान्निध्य से उदय में भी समता हो तब उन दोनों में प्रथम दशा किसकी
होगी ? इसका निर्णय नहीं कहा गया है। इसलिये वहाँ नीलकण्ठोक्त निर्णय ("अल्प-
गतेस्तु पूर्वा" जिसकी अल्पगति हो अर्थात् जिसकी ऊपर कक्षा हो उसकी दशा प्रथम
होती है) इसके अनुसार दशा समझनी चाहिये। क्योंकि कक्षा में तुल्यता नहीं हो
सकती है ॥ २ ॥

उदाहरण क्रम पूर्व दिखलाया गया है। स्पष्टार्थ अंशायुदयि चक्र—

| दशेश | रवि | चन्द्र | लग्न | शनि | गुरु | शुक्र | मङ्गल | बुध |
|----------------|------|--------|------|------|------|-------|-------|------|
| | ६ | ३ | ६ | ८ | १३ | ७ | १० | ६ |
| दशावर्षादि | १ | ८ | ४ | ५ | ० | १० | ० | १० |
| | २२ | ४ | २६ | ४ | १९ | २४ | ० | ८ |
| | १२ | ४२ | २२ | ३९ | २७ | १२ | ४८ | ५४ |
| | ० | ३६ | १२ | ० | ३० | ३६ | ३६ | ० |
| संवत् | १९७५ | १९७८ | १९८५ | १९९३ | २००६ | २०१४ | २०२४ | २०३१ |
| | १ | १० | ३ | ८ | ८ | ७ | ७ | ५ |
| राश्यादिसूच्यं | २९ | ३ | ० | ४ | २४ | १८ | १९ | २८ |
| | १ | ४४ | ६ | ४५ | १२ | २५ | १४ | ५ |
| | ४० | १६ | २८ | २८ | ५८ | ३४ | १० | १० |

एवं दशाव्यवस्थायां प्राप्तायामंतर्दशापाकमहज्ञानं वसंततिलकेनाह—

एकर्त्तगोऽर्द्धमपहत्य ददाति तु स्वं त्र्यंशं त्रिकोणगृहगः स्मरगः स्वरांशम्।
पादं फलस्य चतुरस्रगतः सहोरास्त्वेवं परस्परगताः परिपाचयन्ति ॥३॥

एकर्क्षगोऽर्द्धमिति ॥ दशापत्तिना सहैकर्क्षगो ग्रहः एकस्मिन् राशौ व्यवस्थितः दशापत्तिदत्तान्तर्दशाकालस्य यदर्द्धं तदपहृत्य स्वैरात्मीयैर्दशागुणैः परिपाचयति । त्र्यंशमिति । त्र्यंशं त्रिकोणगृहगः दशापतेस्त्रिकोणगृहगो नवपंचमस्थानयोरन्यतमस्थितो दशापत्तिदत्तान्तर्दशाकालात्त्र्यंशं तृतीयभागमपहृत्य स्वैरात्मीयैर्दशागुणैः परिपाचयति । स्मरगः स्वरांशमिति । दशापतेः स्मरगः सप्तमस्थानस्थः दशापत्तिदत्तान्तर्दशाकालात्स्वरांशं सप्तमभागमपहृत्य स्वैर्दशागुणैः परिपाचयति । पादं फलस्येति । चतुरस्रगोऽष्टमचतुर्थस्थानस्थो दशापत्तिदत्तान्तर्दशाकालात्पादं चतुर्थभागमपहृत्य स्वैर्दशागुणैः परिपाचयति । सहोरा, होरा लग्नं तथा सहिताः परस्परमन्योन्यमनेन प्रकारेण व्यवस्थिताः स्वैः स्वैर्दशागुणैः परिपाचयन्ति । एतदुक्तं भवति । यथा दशापतेः सकाशादेकर्क्षादिस्थो ग्रहो यथास्वं पठितमंशं परिपाचयति । तथा लग्नमपि पाचयति । अत्र दशापतेः प्रथममंशपरिकल्पनां कृत्वा पश्चादेकर्क्षादिस्थितानां कर्तव्याः । यस्माद्दशापतेर्यो भाग आगच्छति तदनुसारेणार्द्धादयो भागाः परिशेषाणां भवन्ति । अथैकस्मिन् स्थाने यदा बहवो ग्रहा भवन्ति तदा तेषां मध्ये यो बलवान्स एवैकः परिपाचयति । नान्ये । कथमेतदवगम्यते । उच्यते । एकवचननिर्देशात् “एकर्क्षगोऽर्धमपहृत्य ददाति तु स्वम्” इत्याद्येकवचनात् । न केवलं मिहिराचार्येणैकवचननिर्देशः कृतो यावत्स्वल्पजातकेऽपि तथा चोक्तम् “एकर्क्षगोऽर्द्धं त्र्यंशं त्रिकोणयोः सप्तमे तु सप्तांशम् । चतुरस्रयोस्तु पादं पाचयति गतो ग्रहः स्वगुणैः” इति न केवलं यावद्गर्गादीनामप्येकवचननिर्देशोऽस्ति । तथा च भगवान्नागिः । “एकर्क्षोऽवस्थितश्चाद्धं त्रिभागं तु त्रिकोणगः । सप्तमस्थः स्वरांशं तु पादं तु चतुरस्रगः ॥ लग्नेन सहिताः सर्वे ह्यन्योन्यफलदायकाः ।” यवनेश्वरश्चाप्येवम् । “कालोऽर्धभागैकगृहाश्रितस्य तदर्धभागं लभते चतुर्थे । त्रिभागभागी च त्रिकोणसंस्थस्तदर्धभाक्स्याच्च पृथक् त्रिकोणे । स्यात्सप्तमे सप्तमभागभागी स्थितो ग्रहश्चरवशाद्ग्रहस्य ।” एवं सर्वत्रैकवचननिर्देशः । तस्मादेवं ज्ञायते । यत् एक एवांशहारो भवति न सर्व इति । तथा च सत्यः । अर्धं तृतीयमर्धात्तथाद्धं स्वाच्च सप्तमं भागम् । एकर्क्षनवपंचमचतुर्थनिधनाद्यसप्तानाम् ॥ दृष्टग्रहा प्रहाणां स्वदशास्वन्तर्दशाख्यानाम् । फलकालान्मिश्रविधं क्रमेण भेदाश्च तेऽप्येवम् ॥ एकर्क्षगेषु बलवान्भागहरो मित्रतो रिपोर्वापि । मित्रे च पुष्टफलं तस्मिन्काले रिपुर्नैवम् ॥” तथा च यमः । “एकर्क्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण । एकः स एव हर्ता नान्ये तत्र स्थिता विहगाः ॥” इति । लग्नेऽपि यत्रांशपहारित्वं प्राप्तं तत्र च लग्ने यदा ग्रहः स्थितो भवति तदा लग्नग्रहयोर्यो बलवान्स एवैकः पठितमंशमपहरति नेतर इति अन्ये सर्वेषामेकादिराशिगानामन्तर्दशाभागमिच्छन्ति । अन्ये पुनः एकमेव भागं गृहीत्वा तद्भागस्यैकर्क्षगानां भागीकृत्य तद्भागमिच्छन्ति ॥ ३ ॥

भाषा—(सम्पूर्ण आयु का मालिक दशापति होता है इसलिये उसका भाग पूरा

$\frac{3}{4}$ है) दशापति के साथ में जो ग्रह हो उनमें सबसे बली केवल एक ग्रह आधा $\frac{1}{2}$ का पाचक (अन्तर्दशाधिप) होता है। एवं त्रिकोण (१।५) में रहने वाले में बली एक ग्रह तृतीयांश $\frac{1}{3}$ का अन्तर्दशाधिप होता है। दशापति से सप्तम स्थान में स्थित एक ग्रह सप्तमांश $\frac{7}{10}$ का पाचक होता है। एवं चतुरस्र (४।८) स्थान में स्थित ग्रहों में केवल एक बली ग्रह चतुर्थांश $\frac{1}{4}$ का पाचक होता है। इस प्रकार लग्न सहित सब ग्रह परस्पर इन स्थानों में पड़ने से अपने अपने गुणानुसार अन्तर्दशापति होकर फल देते हैं ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ साथ में या त्रिकोण आदि में स्थित ग्रहों में केवल एक ही ग्रह पाचक होता है, ऐसा अर्थ एकवचन निर्देश से किया गया है। तथा अन्य आचार्यों का वाक्य भी स्पष्ट है कि—

“एकक्षोपगतानां यो भवति बलाधिको विशेषेण ।

एकः स एव हर्ता नान्ये तत्र स्थिता विहगाः ॥”

अर्थात्—एक स्थान में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो सबसे बली हो केवल वही एक ग्रह अपने अंश का अपहरण कारक (पाचक) होता है, सब नहीं। इससे सिद्ध होता है कि—यदि दशापति से १:५।१।४।८।७ इन स्थानों में कोई ग्रह नहीं हो तो उस ग्रह की दशा में दूसरे ग्रह की अन्तर्दशा नहीं होगी। अर्थात् स्वयं दशापति और अन्तर्दशापति भी होगा ॥ ३ ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की दशा में अन्तर्दशा विचार करना है तो सूर्य के साथ लग्न चन्द्रमा, शनि ये तीन हैं, इनमें चन्द्रमा बली है इसलिये चन्द्रमा आधा $\frac{1}{2}$ का पाचक हुआ। तथा सूर्य से त्रिकोण वा सप्तम में ग्रह नहीं है। केवल अष्टम में गुरु है अतः वह चतुर्थांश $\frac{1}{4}$ का पाचक हुआ। इस प्रकार सूर्य की दशा में सूर्य $\frac{1}{2}$, चं० $\frac{1}{4}$, गु० $\frac{1}{4}$ अन्तर्दशा पाचक हुए ॥ ३ ॥

अथ दशापरिकल्पनाज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

स्थानान्यथैतानि सर्वाण्ययित्वा सर्वाण्यधश्छेदविवर्जितानि ।

दशाब्दपिण्डे गुणका यथांशं छेदस्तदैक्येन दशाप्रभेदः(१) ॥ ४ ॥

(१) अत्रोपपत्तिः—“एकक्षगोर्द्धमपहृत्य ददाति तु स्वम्” इत्यादि पद्यानुसारेण दशापतिना सहैकक्षगो ग्रहो दशापतिदत्तान्तर्दशाकालस्यार्द्धपाचको भवति । तथा दशापतेस्त्रिकोणगतो ग्रहस्तदत्तान्तर्दशाकालस्य तृतीयांशपाचको भवति । एवं चतुरस्रगतग्रहश्चतुर्थांशपाचको भवति । सप्तमस्थस्तु सप्तमांशपाचको भवति ! तत्र प्रथमं दशापतेरंशपरिकल्पनां कृत्वाऽन्तरमेकक्षादिस्थितानां ग्रहाणां कार्याः । यतो दशापतेर्यो भागः समागच्छति तदनुसारेणैवार्द्धादयो विभागा एकक्षगादीनां भवन्ति । अतः सर्वेषामंशानां योगं कृत्वाऽनुपातेन पृथक् पृथक् ग्रहाणामन्तर्दशामानानि साध्यानि तद्यथा—यदि सर्वांशयोगेन मूलदशापतिवर्षप्रमाणं लभ्यते तदा पृथक् पृथक्शेन किमिति पृथक् पृथक् ग्रहाणामन्तर्दशामानानि स्युः ।

मूलदशापतिदायस्यास्य ४।०।०।० एकगुणस्य चतुर्भिर्भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० एषा त्रिकोणस्थस्यांतर्दशेति । एव मूलदशापतिदत्तांतर्दशाकाल त्रिकोणस्थेन ग्रहेण त्रिभागमपहृत्य पाचितं भवति । अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगः जातः ४।०।०।० सैव मूलदशेति । अथ दशापतेः श्रवणार्थमयोरेकस्मिन् स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति, न द्वितीये न च दशापतिना सह न त्रिकोणयोः न सप्तमे तदा न्यासः १ । १ । १ परस्परच्छेदहता ३ । १ । १ छेदहीनौ ४।१ एतौ गुणकारौ एकीकृतौ ५ एष भागहारः मूलदशापतेः दायः २।०।०।० अस्य चतुर्गुणस्य २०।०।०।० पञ्चभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।०।० अयं मूलदशापतेरन्तर्दशाकालः । अथ मूलदशापतिदायस्यास्य २।०।०।० एकगुणस्य पञ्चभिर्भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० एषा चतुरस्रस्थांतर्दशेति । एवं मूलदशापतिदत्तांतर्दशाकालाच्चतुरस्रस्थेन पादमपहृतं भवति । अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगः २।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । अथ दशापतेः सप्तमे स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति न दशापतिना सह न त्रिकोणे न चतुरस्रयोस्तदा न्यासः १ । १ । १ परस्परच्छेदहतावेतौ ३ । १ । १ छेदहीनौ ७।१ एतौ गुणकारौ एकीकृतौ ८ एष भागहारः । दशापतेः दायः ८।०।०।० अस्य सप्तगुणस्या—(५६)—ष्टभिः भागमपहृत्यावाप्तं वर्षादि ७।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि मूलदशापतेः दायः ८।०।०।० अस्यैकगुणस्याष्टभिः भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० इयं मूलदशापतेः सप्तमस्थानस्थस्यांतर्दशा । एव मूलदशापत्यंतर्दशाकालात्सप्तमो भागः सप्तमस्थेन ग्रहेण पाचितो भवति । अस्यांतर्दशाकालद्वयस्य योगः ८।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । एवमेकस्मिन् दशापतेकल्पाः । अत्रादौ मूलदशापतेरन्तर्दशा भवति तदनन्तरमंशहरस्य । अथ दशापतिना सहैकस्मिन्नाशौ कश्चिद्ग्रहो भवत्यपरश्च नवमपञ्चमयोर्मध्यादेकस्मिन्भवति न द्वितीये, नान्येषु स्थानेषु, न चतुरस्रयोः, न सप्तमे तदा न्यासः १ । १ । १ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः १ । ३ । १ छेदहीनाः ६।३।२ एते गुणकाराः एकीकृताः ११ एष भागहारः । अथ दशापतिदायः ११।०।०।० अस्य षड्गुणस्यैकादशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ६।०।०।० एवं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य ११।०।०।० त्रिगुणस्यैकादशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ३।०।०।० इयमर्द्धपाचकस्यांतर्दशा । पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य ११।०।०।० द्विगुणस्यैकादशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् २।०।०।० इयं त्रिकोणावस्थितस्यांतर्दशा । अत्र दशापतेः यदूर्ध्वं तदेकगुहावस्थितः पाचयति त्रिभागं च त्रिकोणगः । अन्तर्दशात्रयस्यास्य योगः ११।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । अथ दशापतिना सहैकस्मिन्नाशौ कश्चिद्भवत्यपरश्चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिन् द्वितीये न चान्येषु स्थानेषु न त्रिकोणयोः न सप्तमे तदा न्यासः १ । १ । १ एते परस्परच्छेदहता जाताः ६ । ४ । १ छेदहीनाः ८।४।२ एते गुणकाराः एकीकृताः १४ एष भागहारः । अथ दशापतिदायस्यास्य १४।०।०।० अष्टगुणस्य चतुर्दशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् ८।०।०।० इयं मूलदशापतेर-

न्तर्दशा । पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य १४।०।० चतुर्गुणस्य चतुर्दशभिः
भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।० इयमर्द्धपाचकस्यान्तर्दशा । पुनरपि मूलदशापति-
दायस्यास्य १४।०।० द्विगुणस्य चतुर्दशभिः भागमपहृत्यावाप्तम् २।०।०
इयं चतुर्थभागपाचकस्यान्तर्दशा । अत्र दशापतेः यद्वर्द्धं तदेकगृहावस्थितः
पाचयति । चतुर्भागं चतुरस्रगतः । अन्तर्दशात्रयस्यास्य योगः १४।०।० जाता
सैव मूलदशेति । अथ यत्र दशापतिना सदैकस्मिन्नाशौ कश्चिद्वत्परश्च
सप्तमे नान्येषु स्थानेषु तदा न्यासः १।१।७ एते परस्परच्छेदहता जाताः
१४।११।३ छेदहीनाः १४।७।२ एते गुणकाराः एकीकृताः २३ एष भागहारः ।
अथ दशापतिदायस्यास्य २३।०।० चतुर्दशगुणस्य त्रयोविंशत्या भागमपहृत्या-
वाप्तम् १४।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य
२३।०।० सप्तगुणस्य त्रयोविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ७।०।० इयं पाचक-
स्थेन सहावस्थस्यान्तर्दशा । पुनरपि मूलदशापतिदायस्यास्य २३।०।० द्विगुणस्य
त्रयोविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् २।०।० इयं सप्तभागपाचकस्यान्तर्दशा ।
अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगो जाता २३।०।० सैव मूलदशेति । अथ दशापतेस्त्रि-
कोणयोरपि प्रहो व्यवस्थितः नान्येषु स्थानेषु तदा न्यासः १।१।३ एते राशयः
परस्परच्छेदहता जाताः १।३।३ छेदहीनाः ६।३।३ एते गुणकाराः एकीकृताः
१५ एष भागहारः । दशापतिदायस्यास्य ५।०।० नवगुणस्य पञ्चदशभिः
भागमपहृत्यावाप्तम् । ३।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि मूलदशा-
पतिदायस्यास्य ५।०।० त्रिगुणस्य १५।०।० पञ्चदशभिः भागमपहृत्या-
वाप्तम् १।०।० इयं त्रिकोणस्थस्यान्तर्दशा । द्वितीयस्यैवैव । अस्यान्त-
र्दशात्रयस्य योगः ५।०।० जाता सैव मूलदशेति । अथ दशापतेस्त्रिकोणयोः
मध्यादेकस्मिन्कश्चिद्वर्द्धो व्यवस्थितः चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिन्नपि नान्येषु
स्थानेषु तदा न्यासः १।१।१ एते परस्परच्छेदहता जाताः १।१।१
छेदहीनाः १२।४।३ एते गुणकाराः एकीकृताः १६ एष भागहारः । अथ
दशापतिदायस्यास्य १६।०।० द्वादशगुणस्यैकोनविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम्
१२।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि दशापतिदायस्यास्य १६।०।०
चतुर्गुणस्यैकोनविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।० इयं त्रिकोणभागपाचक-
स्यान्तर्दशा । पुनरपि दशापतिदायस्यास्य १६।०।० त्रिगुणस्यैकोनविंशत्या
भागमपहृत्यावाप्तम् ३।०।० इयं चतुर्भागपाचकस्यान्तर्दशा । अस्यान्तर्दशा-
त्रयस्य योगः १६।०।० जाता सैव मूलदशेति । अथ यत्र दशापतेस्त्रिकोणयोर्म-
ध्यादेकस्मिन्स्थाने कश्चिद्वर्द्धोऽन्यः सप्तमे तदा न्यासः १।१।७ एते राशयः
परस्परच्छेदहता जाताः ३।१।१ छेदहीनाः २१।७।३ एते गुणकाराः एकी-
कृताः ३१ एष भागहारः । दशापतिदायस्यास्य ३१।०।० एकविंशत्या संगुणि-
तस्यैकत्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् २१।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा ।
पुनरपि दशावर्षाणि ३१।०।० सप्तभिः सङ्गुण्यैकत्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम्

७।०।०।० इयं त्रिभागपाचकस्यान्तर्दशा । पुनरपि दशावर्षाणि ३१।०।०।० त्रिभिः सङ्गुण्यैकत्रिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ३।०।०।० इयं सप्तमभागपाचकस्यान्तर्दशा । अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः ३१।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । यत्र दशापतेः चतुरस्रयोः द्वयोरेव ग्रहौ स्थितौ नान्यत्र तदा न्यासः १।१।१।१ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः १६।१६।१६ छेदहीनाः १६।१६।१६ एते गुणकारा एकीकृताः २४ एष भागहारः । तुल्यदशापतिवर्षाण्येतानि ६।०।०।० षोडशभिः सङ्गुण्य ६६।०।०।० चतुर्विंशत्या (२४) भागमपहृत्यावाप्तम् ४।०।०।० इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि दशापतेः दायस्यास्य ६।०।०।० चतुर्गुणस्य चतुर्विंशत्या भागमपहृत्यावाप्तम् १।०।०।० इयं चतुर्थभागपाचकस्यान्तर्दशा । द्वितीयस्याप्येवैव । अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः ६।०।०।० सैव मूलदशेति । अथ यत्र दशापतेश्चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिन्कश्चिद्ग्रहो भवति सप्तमेऽन्यस्तदा न्यासः १।१।१।१ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः ३६।३६।३६ छेदहीनाः २८।७।४ एते गुणकाराः एकीकृताः ३६ एष भागहारः । अथ मूलदशापतिवर्षाणि ३६।०।०।० एतान्यष्टाविंशत्या सङ्गुण्यैकोनचत्वारिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् । २५।१०।४।३ इयं मूलदशापतेरन्तर्दशा । पुनरपि दशावर्षाणि ३६ सप्तभिः सङ्गुण्यैकोनचत्वारिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ६।५।१६।६ इयं चतुर्भागपाचकस्यान्तर्दशा । पुनरपि दशावर्षाणि ३६ चतुर्भिः सङ्गुण्यैकोनचत्वारिंशता भागमपहृत्यावाप्तम् ३।८।१५ इयं सप्तमभागपाचकस्यान्तर्दशा । अस्यान्तर्दशात्रयस्य योगः ३६।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । एवं त्रिविकल्पाः । अथ यत्र दशापतिना सहैकराशौ कश्चिद्व्यवस्थितो द्वयोरपि त्रिकोणयोः तदा न्यासः १।१।३।३ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः १६।१६।१६ छेदहीनाः १८।६।६ एते गुणकाराः एकीकृताः ३६ एष भागहारः । अथ मूलदशापतिवर्षाणि १३।०।०।० अतः प्राग्वदन्तर्दशान्यासः अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६ | ३ | २ | २ |
| ० | ० | ० | ० |
| ० | ० | ० | ० |
| ० | ० | ० | ० |

१३।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । अथ यत्र दशापतिना सहैकराशौ कश्चिद्व्यवस्थितः त्रिकोणयोर्मध्यादेकस्मिन्कश्चिद्व्यवस्थितश्चतुरस्रयोर्मध्यादेकस्मिन्नेव नान्यत्र तदा न्यासः १।१।३।३ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः ३६।३६।३६ छेदहीनाः २४।१२।८ एते गुणकाराः एकीकृताः ५० एष भागहारः । मूलदशा ३६।०।०।० अतः प्राग्वत्तस्रोऽन्तर्दशाः १७।३।०।४।८।२०।२४।१५।३।३६।४।३।२५।१२ अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य (१) योगः ३६।०।०।० जाता सैव मूलदशेति । अथ दशापतिना सहैकस्मिन्नाशौ कश्चिद्व्यवस्थितस्त्रिकोणयोः मध्यादेकस्मिन्नन्यः सप्तमे व्यवस्थितो नान्यत्र तदा न्यासः १।१।३।३ एते राशयः परस्परच्छेदहता जाताः

४२/४३/१४५/४६ छेदहीना: ४२/२११४५ एते गुणकाराः एकीकृताः नरे एष
भागहारः । मूलदशावर्षाणि १६।०।० अतः प्राग्भवतस्त्रोऽन्तर्दशा आनीताः

| | | | |
|---|---|---|---|
| 7 | 8 | 2 | 1 |
| 1 | 0 | 5 | 3 |
| 8 | 1 | 9 | 2 |
| 9 | 2 | 3 | 4 |

अस्यान्तर्दशाचतुष्टयस्य योगः १६।०।०० जाता सैव मूलदशेति ।

अथ दशापतिना सहैकस्मिन्तारौ कश्चिद्व्यवस्थितः अन्यौ

द्वयोश्चतुरस्रयोस्तत्र न्यासः १।१।१।१ एते पदस्परच्छेदहताः

३३।३३।३३।३३ वेददीनाः ३२।१६।१० एते गुणकाराः एकीकृताः ६४ एष
भागहारः । मूलदशा ३६।०।०० अतः प्राग्वच्चतस्रोऽतर्द्धाः अस्यान्तर्द्धाचतुष्ट-

| | | | |
|---|---|---|---|
| 8 | 0 | 0 | 0 |
| 2 | 0 | 3 | 0 |
| 2 | 0 | 0 | 0 |
| 2 | 0 | 0 | 0 |

यस्य योगः ३६।०।०२ जाता सैव मूलदशेति । अथ च

द गपतिना सहैकस्मिन्नाशौ कश्चिद्ब्यवस्थितोऽन्यश्चतुरस्रयोः

० ० ० ० म आदेकस्मिन्नन्यः सप्तमे तदा न्यासः ११११७ एते परस्पर
छेदहता जाताः ५१६६११६ छेदहीनाः ५६१२११८ एते गुणकाराः

एकीकृताः १०६ ष भागहारः । मूलदशा ३६।०।०। प्रतः प्राग्वच्चतुर्दशदशाः

नाना भैरव मन्त्रकोवि उ०।०।०।० ब्रह्म मन्त्र ि कोमयोः कृषिचन्द्रमहः शिव

चतुरस्रयोः मध्यादेकस्मिंस्तदा न्यासः १ १ १ १ १ एते परस्परज्ज्ञेयहता जाता

ॐ दहीनाः ३६१२१२६ एते गुणकाराः एकीकृताः ६६ एष

भागहारः । मूलदशा २३।०।०० अतः प्राग्वच्चतस्रोऽतर्देशाः १२।०।००।४।००

| दशानाम | वर्ष | मास | दिन | द० |
|-------------|------|-----|-----|----|
| प्र० दशामान | १७ | ३ | १० | ४८ |
| द्वि० दशा० | ८ | ७ | २० | २४ |
| तृ० दशा० | ५ | ९ | ३ | ३६ |
| च० दशा० | ४ | ३ | २५ | ११ |
| दशानावर्ष | ३६ | .. | .. | .. |

[illegible]

२० ६ ५ २ भागहारः । मूलदत्ता ३६०००० जाताः प्राप्यजनसोऽतर्द्धाः
३० ११ २११ अक्ष्यन्तर्द्धाः पतुष्टय्य योनाः ३६०००० जाताः सैव मूलदशेति ।
७१२ १६२२ अथ यत्र दूरापतेष्वनुरसयोः द्वयोरपि ग्रहः स्थितः सप्तमे च
५१ ३५ ५३

तदा न्यासः १।३।३।७ एते परमरश्चन्द्रेन्द्रता जाताः ११३।११३।११३।११३ छेद-
हानाः ११२।२।२।२।१६ एते गुणकाराः एकीकृताः १८४ एष भागहारः । मूलदशा
३६।०।० अतः प्राग्बन्धनलोपदर्शनाः २१।१०।२।४२।५।५२।२।१०।५।५२।२।
१०।३।१।१६।८ अस्यान्तर्द्देशचतुष्टयस्य योगः ३६।०।० ताता सैव मूलदशेति ।
एवं चतुर्विकल्पाः । अथ पञ्चविकल्पेषु न्यासादेव ग्रहात्स्थानं बोद्धव्यम् ।
न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन २४ हताः गुणकाराः २४।१२।८।८ भागहारः ५८ ।
न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन ४२ गुणकाराः ४२।२१।१४।१४।६ भागहारः ६७ ।
न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन २४ गुणकाराः २४।१८।८।६ भागहारः ५६ ।
न्यासः १।३।३।७ छेदेनानेन ५६ गुणकाराः ५६।२८।१४।१४।८ भागहारः १२० ।
न्यासः १।३।३।७ छेदेनानेन ८४ गुणकाराः ८४।२८।२८।२१।१२ भागहारः
१८७ । न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन ८४ गुणकाराः ८४।२८।२८।२१।१२ भाग-
हारः १७३ । एवं पञ्चविकल्पाः । अथ षड्विकल्पाः । न्यासः १।३।३।३।७
छेदेनानेन २५२ गुणकाराः २५२।१२६।४८।४९।३६ भागहारः ६४५ । न्यासः
१।३।३।३।७ छेदेनानेन १६८ गुणकाराः १६८।४८।४९।४२।४२।२४ भागहारः
४१६ । न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन ६६ गुणकाराः ६६।४८।३२।३२।२४।२४
भागहारः २५६ । न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन ६६ गुणकाराः ६६।४८।३२।३२।
२४।२४ भागहारः २५६ । न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन ८४ गुणकाराः
८४।२८।२८।२१।१२ भागहारः १६४ । इति जाताः षड्विकल्पाश्चत्वारः । अथ
सप्त विकल्पाः । न्यासः १।३।३।३।७ छेदेनानेन १६८ गुणकाराः १६८।४८।
४९।४२।४२।२४ भागहारः ४७० । एवं यावतो दायहारा भवन्ति तावदेव
तत्कर्म उपपद्यते । यावन्तो न भवन्ति तावत्कर्म नोपपद्यत इति । एकविकल्पो
नास्ति । द्विविकल्पाश्चत्वारः ४ । त्रिविकल्पाः सप्त ७ । चतुर्विकल्पा नव ९ ।
पञ्चविकल्पाः सप्त ७ । षड्विकल्पाश्चत्वारः ४ । सप्तविकल्प एकः । एवं

त्रिंशद्विकल्पाः ३२ । यत्र बह्वः पाचका भवन्ति तत्र प्रथमं मूलदशापतिरे-
 शान्तर्दशापाचको भवति । ततः परं य एव दशाविभागक्रमः स एवान्तर्दशा-
 वेभागक्रमः, यस्यादौ दशापाचकत्वं तस्यैवान्तर्दशापाचकत्वम् । यस्य पश्चात्तम्य
 श्चादिति । दशाक्रमपाचने यस्यान्तर्दशापाचकत्वं न प्राप्तं तस्य न वक्तव्यम् ।
 तदनन्तरं यस्य प्राप्तं तस्यैव वक्तव्यम् । अत्रान्ये मूलदशापतेरन्तर्दशां दत्त्वा
 ततः परमेकैर्गस्थ ददाति । ततस्त्रिकोणगतस्य ततः सप्तमस्य । त्रिकोणचतु-
 रस्योर्यदा ग्रहौ तदा द्वौ तयोर्वलाधिको यस्तस्यादौ, तच्चायुक्तम् । यस्माद्भग-
 नान्नाभिः । “आदावन्तर्दशापाको भवत्येव दशापतेः । ततः परं तु वक्तव्यं
 दशापाकक्रमेण तु ॥” ॥ ४ ॥

भाषा—पूर्वश्लोकानुसार जितने अन्तर्दशा पाचक का स्थान (अर्थ भाग) प्राप्त हो
 उन सब भागों का “अन्योन्यहराभिहती हरांशौ” इत्यादि विधि से समच्छेद करके
 नीचे छेदों को त्याग कर देना, तथा ऊपर जो अंश पृथक् पृथक् हो उन सबों को
 दशावर्ष के गुणक समझे, तथा सब अंशों के योग को भाजक कल्पना करके अन्तर्दशा
 साधन करे । अर्थात् पृथक् पृथक् अंशों से दशा वर्ष को गुनाकर भाजक (अंश योग)
 से भाग देकर लब्धि वर्षादि अन्तर्दशा होगी ॥४॥

उदाहरण—जैसे सूर्य की दशा में अन्तर्दशापाचक इनका परस्पर हर में अंश को
 गुना करने से समच्छेद हुआ । अब यहाँ नीचे छेदों को त्याग कर देने से अं. ४।२, १

| | सू. | च. | गु. |
|-----|-----|----|-----|
| अं. | १ | १ | १ |
| छे. | १ | २ | ४ |

| | सू. | च. | गु. |
|-----|-----|----|-----|
| अं. | ४ | २ | १ |
| छे. | ४ | ४ | ४ |

इनको गुणक और इन अंशों के योग ७ को भाजक मानो । सूर्य दशावर्ष ६।१२२।
 १२।० को सूर्य के गुणक (४) से गुना करके २४।६।२८।४८।० इसमें भाजक (७) के
 भाग देकर लब्धि वर्षादि सूर्य की अन्तर्दशा ३।६।४।६।५१ इतनी हुई । फिर सूर्यदशा
 वर्ष को २ से गुनाकर ७ से भाग देकर लब्धि वर्षादि १।९।२।१३।२६ यह सूर्यदशा
 में चन्द्रमा की अन्तर्दशा हुई । इसी प्रकार दशावर्ष को गुरुके गुणक १ से गुनाकर उसमें
 ७ के भाग देने से लब्धि वर्षादि ०।१०।१६।१।४३ यह गुरु की अन्तर्दशा हुई ।
 इस प्रकार अन्तर्दशा एवं चन्द्रदशा में अन्तर्दशा पाचक क्रम से इस पर से
 पूर्ववत् समच्छेदादि करके अन्तर्दशा समझना चाहिये । एक लग्न की दशा में अन्तर्दशा
 पाचक क्रम से ल. र. गु. । तथा शुक्र की दशा में अन्तर्दशा क्रम से इनका समच्छेद
 करने से शुक्र की दशा के गुणक क्रम से १२।६।४।३ तथा इन सबों का योग २५ यह
 भाजक हुआ, इनसे शुक्र की दशावर्षादि को गुना भाग द्वारा अन्तर्दशा जानना । इस
 कार अन्य ग्रहों की भी अन्तर्दशा समझना चाहिए । इस उदाहरण की कुण्डली देखिये ।
 गल के साथ में या त्रिकोण, चतुरस्र और सप्तम में कोई ग्रह नहीं है, इसलिये मंगल

की समस्त दशा में मंगल ही अन्तर्दशापति भी होगा। इत्यादि श्लोकानुसार पुनः अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर्दशा भी समझना चाहिये ॥४॥

चक्र—

| दशेश | सूर्य | चन्द्र | गुरु |
|---------|-------|--------|------|
| वर्ष | ३ | १ | ० |
| मास | ६ | ९ | १० |
| दिन | ४ | २ | १६ |
| घटी | ६ | ३ | १ |
| पल | ५१ | २६ | ४३ |
| संवत् | १९७२ | १९७४ | १९७५ |
| सू. रा. | ६ | ३ | १ |
| अं. | १० | १२ | २९ |
| क. | ५६ | ५९ | १ |
| वि. | ३१ | ५७ | ४० |

| चं. | र. | गु. |
|-----|----|-----|
| १ | १ | १ |
| १ | २ | ४ |

| शु. | बु. | गु. | मं. |
|-----|-----|-----|-----|
| १ | १ | १ | १ |
| १ | २ | ३ | ४ |

| शु. | बु. | गु. | मं. |
|-----|-----|-----|-----|
| १२ | ६ | ४ | ३ |
| १२ | १२ | १२ | १२ |

इसकी उपपत्ति यह है कि—यदि सब अंश योग में समस्त दशा प्रमाण तो अलग-अलग अंश में क्या ? इस प्रकार त्रैराशिक से अलग अलग अन्तर्दशा प्रमाण

दशा प्र० × पृ अं उपपन्न होता है ॥४॥
अंशयो

एवं दशान्तर्दशाविभागे ज्ञाते कस्य सम्बन्धिनो दशान्तर्दशा वा शुभफला भवति कस्याशुभफलेत्येतन्न ज्ञायते। तदर्थं दशादेः स्वफलानुरूपाः संज्ञा वैतालीयेनाह—

सम्यग्बलिनः स्वतुङ्गभागे सम्पूर्णा बलवर्जितस्य रिक्ता ।

नीचांशगतस्य शत्रुभागे ज्ञेयानिष्टफला दशा प्रसूतौ ॥ ५ ॥

सम्यग्बलिन इति ॥ प्रसूतौ पुरुषस्य जन्मकाले यो ग्रहः सम्यग्बलवान् भवति पूर्वोक्तैर्वलैः सर्वैर्युक्तो भवति तत्सम्बन्धिनो सम्पूर्णा नाम्नी दशा भवति । न केवलं यावत्स्वतुङ्गभागेऽवस्थितस्य परमोच्चभागगतस्यैव सम्पूर्णा नाम्नी दशा भवति । सम्यग्बलिन इत्युक्त्वा पुनः स्वतुङ्गभागे इत्यनेनैतज्ज्ञापयति । तथा परमोच्चगतो ग्रहोऽन्यैः बलकारणैर्युक्तो न भवति तथापि तस्य सम्बन्धिनो दशा सम्पूर्णैव । सम्पूर्णायां दशायामन्तर्दशायां च काले शरीरारोग्यधनवृद्धिभिः पुरुषोऽभिवर्द्धते । अथ समस्तबलैर्युक्तो न भवति किञ्चिद्बलस्तदा तस्य सम्पूर्णनाम्नी दशा भवति । अथ परमोच्चगतो न भवति

केवलमेवोच्चराशिगतो भवति तदा तस्य दशा पूर्णैव भवति । पूर्णायां च दशायां काले धनलाभमवाप्नोति । तत्रारोग्यम् । बलवर्जितस्य ग्रहस्य रिक्ता-
नाम्नी दशा भवति । यश्च नीचराशौ स्थितस्तस्य गिक्ते च रिक्तादशाकालेऽन्त-
र्दशाकाले धनहानिमिहाप्नोति । नीचांशगतस्येति । नीचांशे नीचराशिनयभागे
यो ग्रहो नतः स्थितो भवति यश्च शत्रुभागे शत्रुनवांशे च स्थितस्तस्य दशा-
निष्ठफला ज्ञेया ज्ञातव्या । अनिष्ठफलदशान्तर्दशाकाले धनहानिमनारोर्दं च
प्राप्नोति । अत्र च भगवान्नागिः । “सर्वैर्वलैरुपेतस्य परमोच्चगतस्य च ।
सम्पूर्णाख्या दशा ज्ञेया धनारोग्यविबर्धिनी ॥ सर्वैर्वलैर्विहीनस्य नीचराशि-
गतस्य च । रिक्ता नाम दशा ज्ञेया धनारोग्यविनाशिनी ॥ स्वोच्चराशिगत-
स्याथ किञ्चिद्वलयुतस्य च । पूर्णा नाम दशा ज्ञेया धनवृद्धिकरी शुभा ॥ यः
स्यात्परमनीचस्थस्तथा चारिनवांशके । तस्यानिष्ठफला नाम व्याध्नतथविब-
र्धिनी ॥” ॥५॥

भाषा—जन्म समय में जो ग्रह स्थानादि सब बलों से युक्त हो तथा अपने परमोच्च
में हो उस ग्रह की सम्पूर्णा नाम की दशा होती है । जिसमें सब प्रकार से सुख पल
होता है । तथा जो ग्रह स्थानादि सब बलों से हीन हो अपने परमनीच में हो या
शत्रुनवांश में हो उस ग्रह की दशा रिक्ता नाम की होती है वह सब प्रकार से अशुभ पल
देती है ॥५॥

विशेष अर्थ—ग्रहों की मुख्यतया ४ प्रकार (स्थान, चेष्टा, काल और दिशा
सम्बन्धी) बल होते हैं । इन चारों प्रकार के बल से युक्त होने पर सम्यग् बली
कहलाता है । और चारों बल से रहित निर्बल (कमजोर) कहलाता है । इससे सिद्ध
होता है कि यदि चारों बल से युक्त होकर परमोच्च में हो तो सम्पूर्ण शुभ फल, ३
बल से युक्त हो तो ३ चरण, २ बल से युक्त हो तो २ चरण (आधा १) और १ बल
से युक्त हो तो १ चरण शुभ फल होता है । जैसे गार्गिका वचन संस्कृत टीका में देखिये ।

अथ दशान्तर्दशासंज्ञाः पुनरपीन्द्रवज्रयाह—

अष्टस्य तुङ्गादवरोहिसंज्ञा मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे ।

आरोहिणी निम्नपरिच्युतस्य नीचारिभांशेष्वधमा भवेत्सा ॥ ६ ॥

अष्टस्येति । तुङ्गात्परमोच्चाद्विषयस्य च्युतस्यावरोहिसंज्ञा । अवरोहिणी
नाम्नी दशा ज्ञेया । दशापरमोच्चभागादारभ्य यावत्परमनीचभागादि अत्रान्तरे
यद्वाशिपट्कं तत्रावस्थितेन ग्रहेण या दत्ता दशांतर्दशाद्या सावरोहिणी संज्ञा
भवति । यस्मात्परमोच्चात् अष्टः प्रत्यहमधोऽवतरतीति विकल्प्यते । यावत्परम-
नीचमिति । अवरोहिसंज्ञा दशाऽधमफला भवति । यस्माद्वदयति । “संज्ञानु-
रूपाणि ५ लान्यथैषाम्” इति । “मध्या भवेत्सा सुहृदुच्चभागे” इति । सैवाव-
रोहिणी यत्र तत्र राशौ व्यवस्थितेन सुहृद्भागेन मित्रांशकस्थेन दत्ता दशा मध्या
नाम्न्येव भवति । एवं यत्र तत्र राशौ अर्थादेव स्वांशकस्थेन दशा मध्यैव ।

एवं यत्र तत्र राशौ स्वोच्चनवांशकस्थेन दशा मध्येव । आरोहिणीनाम्नी
दशा भवति । परमनीचान्तभागादारभ्य यावत्परमोच्चभागादिरत्रान्तरे द्वा-
शिपटकं तत्रावस्थितेन ग्रहेण वा दत्ता दशान्तर्दशा वा सा रोहिणीनाम्नी दशा
भवति । यस्मात्परमनीचादिष्टः ग्रहः सावदारोहतीति ग्रहः परिकल्प्यते ।
यावत्परमोच्चस्थितिः । आरोहिणी श्रेष्ठफला भवति । नीचारिभांश इति ।
लैव्यारोहिणी यत्र तत्र राशौ स्वनीचराश्यंशोपगतेन दत्ताधमा नाम्नी दशा
भवति । एवं यत्र तत्र राशावरिभांशकस्थेन शत्रुनवांशकस्थेन दत्ताधमैव दशा
भवति । पूर्वं शत्रुनवांशकस्थेन दत्तानिष्टफलेत्सुखमश्रुताः सैवाधमेति । तत्कि-
मेतदित्यत्रोच्यते । अवरोहिणी शत्रुनवांशकस्थेन दत्तापि अनिष्टफला ज्ञेया ।
आरोहिण्यधमा । अतयोः कः फलभेदः ? अत्रोच्यते । अनिष्टफला फलम-
शुभं प्रयच्छति । अधमाशुभमेवाप्नुयति । एवमवरोहिणी संज्ञा यदाधमसंज्ञा
भवति तदा सैवानिष्टफलसंज्ञा लभ्यते । आरोहिणी यदा मध्यसंज्ञा भवति तदा
सैव पूर्णेति संज्ञा ज्ञेया । अत्र च भगवान्नामिः—

उच्चनीचान्तरस्थस्य दशा स्यादवरोहिणीः ।

तस्यामल्पमवाप्नोति फलं क्लेशाच्छुभं हरः ॥

मित्रोच्चत्मांशकस्थस्य मध्या मध्यफला तु सा ।

नीचोच्चमध्यगस्योक्ता श्रेष्ठा चारोहिणी दशा ॥

सैवाधमाख्या भवति नीचराश्यंशगस्य तु ।

अवरोहिणी चेदधमा भवेत्कष्टफला तदा ॥

आरोहिणी मध्यफला सम्पूर्णा परिकीर्त्तिता ॥ इति ॥ ६ ॥

भाषा—जो ग्रह अपने परमोच्च भाग से आगे और नीच से पीछे हो उस ग्रह की
दशा अवरोहिणी कहलाती है । वह नीचाभिमुख गति होने के कारण अशुभ होती है ।
किन्तु ग्रह यदि मित्र राशिनवांश में हो वा अपनी उच्चराशि के नवांश में हो तो अव-
रोहिणी दशा भी मध्य फल देने वाली होती है । तथा जो ग्रह अपने परम नीच से
आगे और उच्च से पीछे हो उसकी दशा आरोहिणी कहलाती है, वह उच्चाभिमुखगति
होने के कारण शुभ होती है । किन्तु यदि नीच राशि के नवांश में वा शत्रुराशि नवांश
में ग्रह हो तो आरोहिणी दशा भी अशुभ फल देती है । इससे सिद्ध होता है कि यदि
ग्रह अपनी नवांश या उच्चराशि के नवांश में हो तो आरोहिणी दशा विशेष शुभप्रदा
होती है ॥ ६ ॥

अथ दशान्तर्दशासंज्ञाः पुनरप्युपजातिकयाह—

नीचारिभांशे समवस्थितस्य शस्ते गृहे मिश्रफला प्रदिष्टा ।

सञ्ज्ञानुरूपाणि फलान्यथैषां दशासु वक्ष्यामि यथोपयोगम् ॥ ७ ॥

नीचेति । शस्तानि गृहाणि स्वोच्चमूलत्रिकोणात्मक्षेत्रमित्रक्षेत्राणि तेष्व-
वस्थितेन नीचराश्यंशके समवस्थितेन वा ग्रहेण दत्ता या दशान्तर्दशा वा सा

मिश्रफलानामन्येव । मिश्रफला शुभमशुभं च फलं प्रयच्छति । व्याधिसमेतमर्था-
गममेवमादिशेत् । अर्थादेवाशस्तराशिगेन अशस्ताः शत्रुनीचराशयः तत्त्येन
स्वोच्चमित्रमूलत्रिकोणात्मवर्गोत्तमनवांशकस्थेनापि दत्ता मिश्रफलैव भवति ।
संज्ञानुरूपणि स्वनामसदृशानि फलानि स्वान्तर्दशासु च ज्ञेयानि । तथा ।
सम्पूर्णात्यन्तश्रेष्ठफलप्रदा पूर्णा श्रेष्ठफलप्रदा अधमा शुभाल्पफलदा रिक्तार्थाप-
हारिणो अनिष्टफलदात्यन्तमशुभकारिणो मिश्रफला शुभमशुभं च फलं प्रय-
च्छति । अथेपां दशास्थितिः । अथ शब्द आनन्तर्ये । एवमादित्यपूर्वाणां ग्रहाणां
दशासु यथोपयोगमुत्तरत्र वदयामि । यथा येनैव प्रकारेणैव युज्यते तथा तत्कथ-
यिष्यामि । कस्यान्तर्दशायां किं फलमुपयुज्यते इति ॥ ७ ॥

भाषा—जो ग्रह प्रशस्त (उच्च आदि) राशि में और नीच या शत्रु राशि के
नवांश में हो तो उसका मिश्र (शुभ अशुभ दोनों प्रकार का) फल होता है । अब
आगे इसी प्रकार इन (लग्न सहित ग्रहों) के फल अपनी-अपनी दशा में संज्ञा सदृश
होते हैं वे यथोपयुक्त कहते हैं ॥७॥

विशेष अर्थ—भावार्थ यह है कि—राशि और नवांश दोनों की स्थिति से ग्रहों की
दशा शुभ, मध्य या अशुभ मध्य या अशुभ समझकर फल कहना चाहिये ।

जैसे भगवान् गार्गी का वचन—छठे श्लोक की संस्कृत टीका में देखिये ॥७॥

अथ लग्नदशायां शुभाशुभज्ञानं वैतालीयेनाह—

उभयेऽधममध्यपूजिता द्रेष्काणैश्चरमेषु चोत्क्रमात् ।

अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमाद्धोरायः परिकल्पिता दशा । ८ ॥

उभय इति ॥ उभये द्विस्वभावे राशौ लग्नगते द्रेष्काणक्रमेणाधममध्यपूजिता
दशा ज्ञेयाः । प्रथमद्रेष्काणे जातस्याधमाऽशोभनानिष्टफला । द्वितीये द्रेष्काणे
मध्यमा मिश्रफला । तृतीये द्रेष्काणे पूजिता श्रेष्ठफला । चरमे चरराशानुक्रमेण
वैपरीत्येन तेन प्रथमद्रेष्काणे जातस्य पूजिता, द्वितीये मध्यमा, तृतीयेऽधमा-
निष्टफला । अशुभेष्टसमाः स्थिरे क्रमादिति । स्थिरे स्थिरराशौ प्रथमद्रेष्काणे
शुभा । द्वितीये द्रेष्काणे इष्टा श्रेष्ठा । तृतीये द्रेष्काणे समा मध्यफला । एवं
होरायाः लग्नस्य दशा परिकल्पिता उक्ता इति ॥ ८ ॥

भाषा—द्विस्वभावराशि लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण हो तो अशुभ, द्वितीय द्रेष्काण
हो तो मध्यम, तृतीय द्रेष्काण हो तो शुभ फल देनेवाली लग्न की दशा होती है ।
चर लग्न में इसका उल्टा अर्थात् प्रथम द्रेष्काण में शुभ, द्वितीय में मध्यम, तृतीय
द्रेष्काण में अशुभ फलप्रद लग्न की दशा होती है । स्थिर लग्न में प्रथम द्रेष्काण में
अशुभ, द्वितीय द्रेष्काण में श्रेष्ठ, तृतीय द्रेष्काण में मध्यम फल देनेवाली लग्नदशा
समझनी चाहिये ॥८॥

अथ नैसर्गिकाणां ग्रहाणां दशाकालं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

एकं द्वौ नवविंशतिर्धृतिऋती पञ्चाशदेषां क्रमा-

चन्द्रारेन्दुजशुकजीवदिनकृद्देवाकरीणां समाः ।

स्वैः स्वैः पुष्टफला निसर्गजनितैः पक्तिर्दशायाः क्रमा-

दन्ते लग्नदशा शुभेति यवना नेच्छन्ति केचित्तथा ॥ ६ ॥

एकमिति ॥ एकाद्याः समाः एकादीनि वर्षाणि चन्द्रादीनां यथाभिहितानि नैसर्गिकाणि । तद्यथा । जन्मसमयादारभ्यैकाद्याः समाः संवत्सराः । एकश्चन्द्रस्य ततः परं द्वावारस्याङ्गारकस्य । एवं त्रयः । ततः परं नवेन्दुजस्य बुधस्य । एवं द्वादश । ततः परं विंशतिः शुकस्य । एवं द्वात्रिंशत् । ततः परं धृतयोऽष्टादश जीवस्य गुरोः एवं पञ्चाशत् । ततः परं कृतिसंख्या विंशतिः दिनकृतः सूर्यस्य । एवं सप्ततिः । ततः परं पञ्चाशत् देवाकरेः सौरस्य । एवं विंशत्यधिकं वर्षशतम् (१२०) । एतेषु निसर्गदशाधिपेषु ग्रहेषु बलवत्सूपचयस्थितेषु च तद्दशासु शोभनानि दशाफलानि भवन्ति । हीनबलेष्वनुपचयस्थेष्वशोभनानि । एतच्च सर्वदा चिन्त्यं, यतो निसर्गदशास्त्विति संवाद इति । तथा च यवनेश्वरः । “स्तन्योपभोगः शशिनो वयः स्वं भौमस्य विद्यादशानानुजन्म । यौधं तु शिक्षाप्रदकालमाहुरामैथुनेच्छाकुलितप्रवृत्ति ॥ शोकं युवत्वं विधिपूर्वदृष्टमामध्यमाद्देवगुरो वदन्ति । रवेवेयोऽर्द्धात्परमन्यदस्मात्सौरैर्जरा दुर्भगकालमाहुः ॥” इति । नैसर्गिकस्य दशाकालस्य प्रयोजनमाह । स्वैः स्वैरिति । तत्र यस्य ग्रहस्य सम्बन्धिनी पूर्वविधिना कृता दशान्तर्दशा वा सा यदि नैसर्गिकसमाभिः निसर्गकथितवर्षैः स्वैः स्वैः आत्मीयैः युज्यते, स्वदशाकालेन समकालं भवति तदा यावत्कालं तस्य दशा युक्ता भवति निसर्गवर्षसमयं यदि प्राप्नोतीत्यर्थः । कालद्वयस्यैक्यमुद्वहति तदा यावत्कालं तस्य सम्बन्धिनो दशान्तर्दशा भवति । तस्याः पुष्टफला पक्तिः भवति । तस्याः पुष्टा परिपूर्णफला पक्तिः पाको भवति । क्रमात्परिपाटया यावद्वर्तते तावच्छुभफलेत्यर्थः । अत्र केचिद्वदन्ति । पूर्वविधिना जाता शुभा तदा शुभफलमत्यर्थं प्रयच्छत्यन्यथाशुभा तदाशुभमत्यर्थमिति । एतच्चायुक्तम् । यस्माद्यवनेश्वरः । “श्रेष्ठा दशा स्वे वयसि ग्रहस्य” इति । तथा च सत्यः । “एकाद्विकः शशी त्र्यद्विकः कुजो द्वादशाद्विकः सौम्यः । द्वात्रिंशद्भृगुपुत्रो गुरुस्तु कथितः शतस्यार्द्धम् (५०) ॥ सप्तत्यब्दः सूर्यो विंशत्यधिकः शनैश्चरोऽब्दशतः । वयसोऽन्तराणि चैषां स्वदशानैसर्गिकः कालः ॥ स्वं स्वं वयसः सप्तशं ग्रहः समासाद्य देहिनां कालम् । रक्षणापोषणचेष्टास्वभावदाः स्युर्यथासंख्यम् ॥” अथ लग्नदशानैसर्गिककालं पुराणयवनमतेनाह । अन्ते लग्नदशेति । विंशत्यधिकाद्वर्षशतादूर्ध्वं यदि कस्यचिदायुषः कालो भवति तदा स कालः सर्व एव लग्नस्य नैसर्गिको भवति । तस्मिन्काले पुराणयवनानां मतेन लग्नदशा शोभना भवति । विंशत्यधिका-

द्वर्षशतादूर्ध्वमित्येतन्कुतोऽवगम्यते । उच्यते । तदूर्ध्वकालस्यान्यग्रहपरिपृहीत-
त्वात् लग्नस्यानवकाशादेव । अथान्यः कश्चिदाह । यथा ननु विंशत्यधिकद्विप-
शतादधिकं यस्यायुर्नास्ति किं तस्य लग्ननैसर्गिको दशाकालो नास्ति ? उच्यते ।
नास्त्येव न केवलं यावद्वर्षसप्ततेरभ्यधिकं यस्यायुर्नास्ति तस्य रानैश्वरसम्बन्धी
नैसर्गिको नास्ति । यस्य पञ्चाशतौऽधिकं नास्ति तस्यादित्यस्य किमपि नास्ति ।
एदमन्येषामपि योज्यम् । ननु विंशत्यधिकं वर्षशतं परमायुरत ऊर्ध्वं जीविना-
भावात्को लग्नस्य नैसर्गिको दशाकालः । उच्यते । पूर्वमेव व्याख्यातम् । यथा-
विंशत्यधिकं वर्षशतं परमायुः त्रैराशिकार्थमश्वार्दीनामायुर्ज्ञानार्थं प्रदर्शितम् ततः
तावत्प्रमाणादायुः परं सम्भवतीति । तथा च । यथा मीनलग्ने बलवति मीनांश-
कान्ते च कश्चिज्जातो भवति, सर्वे च ग्रहाः यत्र तत्र राशौ मीनांशकावस्थिता
भवन्ति केचिदुच्चगदाः, केचिच्च वक्रितास्तदा मीनलग्नो द्वादशवर्षाणि
ददाति । स एव बलयुतस्तदान्यानि द्वादश वर्षाणि ग्रहैकैको मीनांशकान्त-
स्थत्वाद्द्वादश वर्षाणि ददाति । तानि च वक्रोच्चस्थत्वात्त्रिगुणानि पट्त्रिंश-
द्ववति । आदित्यवर्ज्यम् । आदित्यस्य भेषमध्यमांशकस्थितस्य सप्तविंशति-
वर्षाणि भवन्ति । एवं चन्द्रादीनां पर्याणां शतद्वयं षोडशाधिकं भवति ।
आदित्यस्य सप्तविंशतिः, लग्नस्य चतुर्विंशतिः एवमेकीकृतं शतद्वयं सप्तषष्ठ्य-
धिकं भवति । नन्वेतावत्प्रमाणं कालं कश्चिज्जीवमानो न दृश्यते योगस्याति-
दुर्लभत्वात् । उच्यते । कश्चित् दृश्यत एव जन्त्वादिकः । नेच्छन्ति केचित्तर्थात् ।
तां लग्नदशामन्ते केचिदाचार्याः श्रुतकीर्तिप्रभृतयः तथा तेनैव प्रकारेण शुभ-
मिति नेच्छन्ति । नो वाञ्छन्तीत्यर्थः । यस्मादवलत्वे लग्नस्य वयोऽस्ते तद्दशा
भवति साशुभा । आचार्येण लग्नदशायां शुभाशुभत्वं बलवशात्प्रोक्तम् ।
द्रेष्काणवशादुक्तम् । उभयेऽधममध्यमपूजिता इति । यस्माद्बलहीनस्यापि
लग्नस्य वयोऽस्ते दशाद्रेष्काणवशाच्छुभा भवति तस्माद्ये आचार्या अन्ते लग्न-
दशां नेच्छन्ति ते निष्कारणमेव नेच्छन्ति । ननु किमागमग्रन्थानां कारणेन ।
उच्यते । य एवाचार्या अन्ते लग्नदशां नेच्छन्ति त एवागमास्त्यक्त्वा अया-
दर्शितकारणमुपन्यस्य नेच्छन्ति । तेन कारणेन दोष उक्तः । तथा च श्रुत-
कीर्तिः । “अन्ते लग्नदशा शुभेति यवना नैतद्ब्रूनां मतं तस्मिन्हीनबले यतोऽन्य-
समये सा श्लाघ्यते ।” एतत् श्रुतकीर्तिना कारणमुपन्यस्तं तच्च दृष्टमन्ते
नैसर्गिके लग्नदशाकालेऽन्तर्दशा शुभेवेत्यवगन्तव्यम् ॥ ६ ॥

भाषा—जन्म समय से आरम्भ होकर १ वर्ष तक चन्द्रमा का, उसके बाद २ वर्ष
मंगल का, उसके बाद ९ वर्ष तक बुध का, उसके बाद २० वर्ष तक शुक का, उसके
बाद १८ वर्ष तक बृहस्पति का, उसके बाद २० वर्ष तक सूर्य का, उसके बाद ५०
वर्ष तक शनि का दायकाल होता है । इस प्रकार सातों ग्रह का १२० वर्ष पर्यन्त
नैसर्गिक दशा होती है । इससे अधिक जिसकी आयु होती है उसके लिये शनि के
बाद जीवन पर्यन्त अन्त में लग्न की दशा होती है, वह शुभ होती है, ऐसा यवनों का

कथन है। किन्तु अन्य आचार्य का मत है कि अन्त में जो लग्न की दशा होती है वह सदा शुभ ही नहीं होती, अर्थात् द्रेष्काण वश शुभ अशुभ दोनों हो सकती है ॥२॥

विशेष अर्थ—कोई कहते हैं कि “जब परमायु १२० वर्ष तक ही कही गई है तो उनके बाद लग्न की दशा कैसे प्राप्त हो सकती है” परन्तु ऐसा कहना असङ्गत है, क्योंकि सत्याचार्य आदि के मत से ग्रहस्थिति वश २०० से भी अधिक आयु हो सकती है। १२० वर्ष से अधिक कितने मनुष्य जीते देखे गये हैं। तथा कितने जन्म २०० वर्ष से भी अधिक जीते हैं। उनकी नैमगिक दशा अन्त में लग्न की होगी। मान लिया जाय किसी मनुष्य का जन्म मीन लग्न के अन्तिम नवांश में हो और ग्रह भी अपने अपने उच्च में अथवा वक्र होकर किसी राशि के मीन नवांश में हो। किन्तु सूर्य न वक्र हो सकता है और न उच्च में मीन के नवांश में जा सकता है। इसलिये वह मेष के अन्तिम नवांश में हो, तथा सब ग्रह चक्र पूर्वार्ध में ही हो, और लग्न अपने स्वामी और गुरु बुध से वीक्षित युत हो तो इस हालत में सत्याचार्य के मत से सूर्य का आयुर्दाय त्रिगुणित करने से २७ वर्ष और ग्रहों के वक्र होने तथा उच्च में रहने के कारण १२, १२ वर्ष के त्रिगुणित ३६, ३६ वर्ष आयुर्दाय होंगे। तथा लग्न मीन के नवांश में होने के कारण १२ वर्ष तथा वलयुत होने के कारण और राशितुल्य १२ वर्ष एवं लग्नायु २४ वर्ष, सबका योग—सूर्य २७ + चन्द्र ३६ + मङ्गल ३६ + बुध ३६ + गुरु ३६ + शुक ३६ + शनि ३६ + लग्न २७ = ३६७ वर्ष आयुर्दाय हुआ। इसलिये “अन्ते लग्नदशा” यह कहना सङ्गत ही है ॥९॥

अथ दशान्तर्दशाशुभाशुभज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

पाकस्वामिनि लग्ने सुहृदि वा वर्गेऽस्य सौम्येऽपि वा

प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशषड्दशमेषु वा पाकपे ।

अमत्रोद्योपचयत्रिकोणमदने पाकेश्वरस्य स्थित-

अन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा ॥१०॥

पाकस्वामिनीति ॥ सौर-सावन-चान्द्र-नाक्षत्राणि चत्वारि मानानि । तत्र सौरमानं रविभरणभोगः । यावता कालेनाकोऽंशमेकं भुङ्क्ते तत्सौरं दिनम् । यावता कालेन राशिः दशकं भुङ्क्ते तत्सौरं वर्षम् । तच्च पञ्चषष्ठ्यधिकैस्त्रिभिः शतैः दिनानां घटिकापञ्चदशकेन सार्द्धेन भवति । सावनमुदयादुदयः । अर्कोदयात्पुनरेवाकोदयः सावनमहोरात्रम् । तच्च षष्टिघटिकमहोरात्रम् । अहोरात्रत्रिंशन्मासः । मासा द्वादश वर्षम् । एवं षष्ठ्यधिकैस्त्रिभिः शतैः दिनानां सावनं वर्षं चान्द्रं तिथिभोगः । तच्च स्वमानेन षष्ठ्यधिकं शतत्रयं भवति । सावनेन मीयमानं शतत्रयं चतुःपञ्चाशदधिकं दिनानां तच्च वर्षं भवति । एवं सौरसावनचान्द्राणि त्रीणि मानानि प्रत्येकं स्वमानेन षष्ठ्यधिकं शतत्रयं भवति । नाक्षत्रं चन्द्रनक्षत्रभोगः । तच्च दिनानां सप्तविंशत्या

मासो भवति । शतत्रयेण चतुर्विंशत्यधिकेन दिनानां वर्षमुक्तम् । “रव्यंश-
भोगोऽहोरात्रः सौरश्चान्द्रमसस्मितिः । चन्द्रनक्षत्रभोगस्तु नाक्षत्रः परिकीर्तितः ॥
स सावनो ग्रहर्क्षाणामुदयादुदयावधि । नाक्षत्रमाने मासः स्यात्सप्तविंशतिवा-
सराः ॥ शेषमानेषु निर्दिष्टा मासस्त्रिंशद्दिनात्मकः ॥” इति तस्मात्सावनमानेना-
युर्द्वयगणना कार्या । यस्माच्चोध्यक्षेपविशुद्धमायुः कर्तव्यम् । तच्च सावन-
मानम् । सौरमानेन संक्रान्त्यवधिको मासः । सावनस्त्रिंशद्वात्रः । चान्द्रोऽमा-
वास्यान्तिकः । नाक्षत्रो रेवत्यन्तिकः । सौरमधिमासयुतं चान्द्रं भवति । चान्द्र-
मूनरात्रोऽनं सावनं भवति । चान्द्रशब्देन नाक्षत्रम् । उक्तं च । “युगवर्षमास-
पिण्डं रविमानं साधिमासकं चान्द्रम् । अवमविहीनं सावनमैन्दवमव्दान्वितं
वर्षम् ॥” इति । एवं शोध्यक्षेपविशुद्धं सावनमानेनायुर्द्वयविधिः । तथा च
मयूरचित्रके भगवान्गार्गिः । “आयुर्द्वयविभागश्च प्रायश्चित्तक्रियां तथा ।
सावनेनैव कर्तव्याः सत्राणामप्युपासनम् ॥” (१) नन्वर्कोदयादारभ्यार्कोदयं
यावदहोरात्रं तत्पुलिशतन्त्रे सौरमहोरात्रं पठ्यते । “वसुसप्तैरुपनवमुनिनगति-
थयः शतगुणाश्च सौरेण ॥” इति । एतच्च पुलिश एव जानाति । यस्मात्पुलि-
शतन्त्रे वर्जयित्वा सर्वसिद्धान्तेषु तन्त्रेषु सौरमानमधिमासयुक्तं चान्द्रं भवति ।
चान्द्रमवमरात्रोऽनं सावनं भवति । एवं शोध्यक्षेपविशुद्धं सावनमानं सर्वसं-
हितासु चार्कोदयादारभ्यार्कोदयं यावदहोरात्रं तत्सावनमहोरात्रमिति संज्ञा ।
तथा च भगवान्पराशरः । “सावनमहोरात्रम् ॥” गार्गिश्च । “सावनेन स्मृतो
मासस्त्रिंशदुष्णकरोदयः ॥” तथा च श्रीभट्टब्रह्मगुप्तः । “सावनमुदयादुदयः”
इति । एवं पुरुषस्य जन्मसमये सावनमहर्गणं कृत्वा तस्मात्तिथिनक्षत्रच्छेदं
तात्कालिकं ग्रहलग्नादिकं कृत्वा तथा दशान्तर्दशाः कर्तव्याः । तत आगामिदशा-
फलं वक्तव्यम् तत्र प्रथमजन्मनि अहर्गणं तात्कालिकं कृत्वा ततस्तत्रान्तर्दशा-
कालं वर्षादिकं दिनीकृत्य योजयेद्वर्षाणि द्वादशभिः संगुण्य तेषु मासान्संयोज्य
त्रिंशता पुनः संगुण्य तेषु दिनानि क्षिपेत् । एवं कृते दशाकालो दिनरूपो
भवति । तच्च तात्कालिके जन्माहर्गणे सविकले सविकलं संयोज्याहर्गणो
भवति । तत्राद्यो यदष्टिकादिः कालो भवति तस्यातोत्तरेष्वाम्नात्परतो गणना
कार्या । तस्मादिष्टदिनमानमानयेदनेनाचार्यसूत्रेण । “युगणोऽधो भवगुणितो
द्विनवरसाम्नावमाधिकाश्चान्द्रः । चान्द्रोऽधरर्तुवेदा नागाप्ता अधिमासदिनैर्ही-

(१) श्रीमद्भास्कराचार्यरपि सिद्धान्तशिरोमणौ :—

“यत्कृच्छ्रभूतकचिकित्सितवासराद्यन्तसावनात्” इत्युक्तम् ।

श्रीपतिरपि—“प्रायश्चित्तं सूतकाद्यं चिकित्सा

यज्ञाद्येवं कर्म वारादिकं च ।

शास्त्रे त्वस्मिन् खेचराणां च चारा

विज्ञातव्याः सावनाद्भास्करीयात् ॥” इति ।

नाः ॥” इति । एतत्त्वण्डलाश्रयणेनैव भवति । कोऽसौ रविद्युगण इत्याह ।
 “शाकौऽगवमुशरोनोऽर्कगुणश्चैत्रादिनासंयुक्तः । त्रिंशद्गुणमिति धियुतः”
 इति । अस्य षष्ठ्यधिकेन शतत्रयेण भागमपहृत्यावाप्तं करणाद्याः । शेषास्त्रि-
 षड्दशाश्चैत्रसिताद्या मासाः । शेषा वर्तमानमासे सिताद्यास्तितथ्यः । करणादे-
 ष्ढगवमुशरान्संयोज्यातीतः शककालो भवति । तस्मिन्श्चाके तस्मिन्मासे
 तस्मिन्दिने सोऽहर्गण इति । तत्रैव दशाप्रवेशः पुनरप्यन्यन्तर्दशाकालं दिनी-
 कृत्य तस्मिन्योजयेत् । एवं यावन्तोऽतर्दशा भवन्ति तावन्तोऽनेनैव प्रकारेण
 योजनीयाः । ततो ग्रहान् लग्नं च गणयेत् । अथवा न्येन प्रकारेण कालानयनम् ।
आदित्ये क्रियमाणे यावन्तो गतलग्ना भवन्ति तान्तः करणप्रारम्भादारभ्य
गताद्याः तेषु करणपरिणतशककालं संयोज्येष्टशककालो भवति । वर्तमाने
वर्षे यावन्तो राशयः स्फुटार्केण भवन्ति तावन्तो मासाः सूर्यभोगातीताः ।
 शुक्लपक्षं कृष्णपक्षं वा तिथिनक्षत्रं चन्द्रार्काभ्यां ज्ञायत एव । पाकस्वामि-
 नोत्थादि । यस्य ग्रहस्यान्तर्दशाप्रवेशः स पाकस्वामी । तावच्चासौ पाकस्वामी
 यावत्तस्यान्तर्दशा । स च पाकस्वान्यन्तर्दशाप्रवेशकाले लग्नगो यदि
 भवति तदा तस्य सम्बन्धिन्यन्तर्दशा प्रारब्धा शुभदा शोभनफलदा भवति ।
 अथवा तत्कालं पाकस्वामिनो यत्सुहृन्मित्रं तस्मिन्नपि दशाप्रवेशकाले लग्नगो
 शोभना दशा वक्तव्या । अथवास्य दशापतेः पूर्वं व्याख्यातो यो वर्गः तस्मि-
 न्नपि लग्नगो शोभना । अथवा न्यस्मिन्सौम्ये शुभग्रहे तत्काललग्नगो प्रारब्धा
 शोभनैव । अथवा पाकपे दशाधिपतौ ग्रहे तात्कालिकलग्नान् त्रिदशषड्भाभेषु
 तृतीयषड्दशैकादशस्थानानामन्यतमस्थे शोभनैव दशा वक्तव्या । यद्यप्यत्र
 सामान्येनोक्तं प्रारब्धा शुभदा दशा तथापि “शत्रुविशत्रुदशायां प्राप्नानिष्ट-
 फलप्रदा । अधिमित्रोऽपि मित्रस्य दशां प्राप्नोति शोभनः ॥ समः समदशामेत्य
 यथोक्तफलदा हि सः ।” एतदपि चिन्तनीयम् । अनेन प्रकारेण यदि शुभफल-
 दान्तर्दशायां किमप्यनवरतमेव सर्वकालं शुभफलावाप्तिर्भवति । किं वा कस्मि-
 न्श्चित्कस्मिन्श्चिद्दिवसे एवमशुभायामन्तर्दशायामशुभफलावाप्तिरित्युभयत्र सन्दे-
 हनिरासार्थमाह । मित्रोच्चोपचयेत्यादि । पाकेश्वरस्य दशापतेः प्रतिराशौ सञ्च-
 रतः तत्काले यो ग्रहो मित्रं तत्क्षेत्रस्थितश्चन्द्रमा यदा भवति तदा सत्फलबोध-
 नानि कुरुते शुभफलानि प्रकटीकरोति । अत्र यस्मिन्नहनि यस्मिन्गृहे चारव-
 शाच्चन्द्रमा भवति तस्य गृहस्य योऽधिपतिर्भवति स चेत्तस्मिन्नहनि पाकप-
 तेस्तात्कालिकं मित्रं भवति तदा चन्द्रमाः पाकपतेर्मित्रक्षेत्रस्थो ज्ञेयः । तथा
 पाकपतेः स्वोच्चस्वराशिरस्थः सत्फलबोधनानि कुरुते । न केवलं यावत्पाकपते-
 रूपचयस्थानगतोऽपि त्रिषडेकादशदशमस्थानानामन्यतमस्थानस्थस्त्रिकोणगोऽ-
 पि नवपञ्चमस्थानगतोऽपि तथा मनदस्थः सप्तमे च स्थितः एतेषु निर्दिष्टस्था-
 नेष्वन्यतमस्थानस्थश्चन्द्रमाः शुभफलायां दशायां सत्फलबोधनानि कुरुते । न
 ज्ञायते तेषां फलानामित्यत्रोच्यते । मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदनेऽस्मिन्स्थाने

पाकेश्वरश्चन्द्रमाः स्थितः स राशिः जन्मनि यो भाव आसीत्तदुद्भूतं सत्फलं बोधयति । विशेषेण तथा दशापठितमिति । अतोऽस्मादुक्तप्रकारादन्यथा पाक-पतेस्तत्कालं शत्रुग्रहे नीचराशौ वा दशापतिना सहैकराशौ स्थितस्तथा द्वितीय-चतुर्थ्याष्टमद्वादशस्थानानामन्यतमस्थानस्थो भवति तथा शुभफलानां दशायां पापानि फलानि प्रकटोक्तरोति । अनिष्टसप्त्यष्टवर्गोद्भूतं च मिश्रदशायां मित्रो-च्चोपचयादिषु सत्फलबोधनानि कुरुते । शत्रुनीचादिषु अशुभफलानामिति । तथा च भगवान्गार्गिः । “यद्राशिसंस्थः रातांशुः शुभकृत्परिकीर्तितः । स राशिर्जन्मकाले तु यो भावस्तत्कृतं च तत् ॥ शरीरादिकृतं सौख्यं वक्ष्यं बलयोगतः । अनिष्टराशिसंस्थस्तु तद्भावानामशोभनः ॥” इति ॥ १० ॥

भाषा—पाकस्वामी (दशापति) यदि लग्न में हो अथवा दशापति के मित्र लग्न में हो, अथवा पाकपति के या उसके मित्र के वर्ग (राशि होरादि) या शुभ वा शुभ ग्रह के वर्ग (राशि होरादि) लग्न में हो, अथवा शुभमित्र के वर्ग में दशापति हो तथा लग्न से ३, ६, १०, ११ स्थान में दशापति हो तो ऐसे समय (लग्न) में आरम्भ हुई दशा शुभफल देनेवाली होती है । इसके अन्यथा स्थानादि वश मध्य फल वा अशुभ फल देनेवाली दशा होती है । चन्द्रमा प्रतिक्षण सत्त्वारवश जब जब दशापति के मित्र राशि, उच्चराशि या दशापति से उपचय (३, ६, १०, ११) स्थान में जाता है तब तब शुभ फल देता है । अन्यथा (अर्थात् जब दशापति के शत्रु नीच राशि में तथा उपचय से भिन्न स्थान में चन्द्रमा जाता है तब) अशुभ फल करता है ॥ १० ॥

विशेष अर्थ—जिस समय दशा आरम्भ हो उस समय में स्पष्ट ग्रह और लग्न सावन करके इस प्रकार दशा के शुभाशुभ फल समझना चाहिये । दशाारम्भ समय जानने का सयुक्तिक प्रकार और स्पष्ट उदाहरण—केशवीय जातक पद्धति की मेरी टीका (सर्वमनोरमा) में देखिये । दशावर्षादि सावन मान से ग्रहण किया जाता है । यथा भगवान्गार्गि का वचन—

“आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रियास्तथा ।

सावनेनैव कर्तव्या सत्राणामप्युपासनम् ।” स्पष्टार्थ ॥

प्रथम दशापति की दशा जन्म समय से ही आरम्भ होती है । इसलिये जन्मकालिक ग्रह और लग्नादि भाव ही दशाारम्भकालिक भी होते हैं । उसके बाद अन्य ग्रहों के दशा-न्तर्दशाारम्भ समय जान करके ही उक्त रूप से फल विचार करना चाहिये । जैसे दर्शित उदाहरण में प्रथम सूर्य की दशा है । जन्मकालिक लग्न ही दशाारम्भकालिक लग्न हुआ । अब सूर्य की दशा कैसी होगी ? यह विचार करना है तो, जन्मकुण्डली देखिये । यहाँ दशापति सूर्य अपने मित्र राशि में पड़ा है इसलिये “पाकस्वामिनि लग्नमे” इसके अनुसार सूर्य की दशा जातक के लिये अत्यन्त शुभ फल देने वाली सिद्ध हुई । अर्थात् जन्म समय से सूर्य की दशा (६।१।२२।१२) पर्यन्त जातक को सब प्रकार से सुख की प्राप्ति होगी, ऐसा सिद्ध होता है । तथा चन्द्रमा जन्म समय दशापति के उच्च में है अतः यह (जन्म का) समय जातक के लिए अत्यन्त शुभप्रद हुआ । इस प्रकार

आगे भी चन्द्रमा जिस जिस समय सूर्य के मित्र राशि, उच्च राशि या उपचय स्थान में प्राप्त होगा उस उस समय में विशेष रूप से सुख लाभ समझना चाहिये। वहाँ चन्द्रमा जिस राशि में हो वह जन्म समय जिस भाव में पड़ा हो उस भाव सम्बन्धी शुभ फल कहना चाहिये। जिस समय चन्द्रमा सूर्य से अशुभ स्थान में पड़े वह चन्द्र स्थान जन्म समय जिस भाव में हो उस भाव सम्बन्धी अशुभ फल उस समय जातक का समझना चाहिये ॥ १० ॥

अथान्तर्दशकाले चन्द्राक्रान्तराशिवशेन शुभज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

प्रारब्धा हिमगौ दशा स्वगृहे मानार्थसौख्यावहा

कौजे दूषयति स्त्रियं बुधगृहे विद्यासुहृद्वित्तदा।

दुर्गारण्यपथालये कृषिकरी सिंहे सितर्क्षेऽन्नदा

कुस्त्रीदा मृगकुम्भयोर्गुरुगृहे मानार्थसौख्यावहा ॥ ११ ॥

प्रारब्धा हिमगाविति ॥ यस्य तस्य ग्रहस्यान्तर्दशाप्रवेशसमये (१) हिमगौ चन्द्रे स्वगृहे आत्मीयक्षेत्रस्थे, कर्कटगे प्रारब्धा प्रविष्टा तदा सौख्यार्थमानावहा भवतीति सौख्यं सुखभावः, अर्थो धनं, मानं पूजामावहति करोति। कौजे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकयोरन्यतमे व्यवस्थिते चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा स्त्रियं दूषयति। परपुरुषकृतं स्त्रीदोषमुत्पादयति। बुधगृहे मिथुनकन्ययोरन्यतमस्थे चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा विद्यासुहृद्वित्तदा विद्या शास्त्रानुरतिः, सुहृदो मित्राणि, वित्तं धनं ददाति। सिंहस्थे चन्द्रे दुर्गेश्वरण्येषु, पथि च मार्गे, आलये च गृहसमीपे एतेषु स्थलेषु कृपिं करोति। सितर्क्षे शुक्रराशौ वृषतुल्योरन्यतमस्थे चन्द्रेऽन्नदा मिष्टभोज्यप्रदा भवति। मृगकुम्भयोर्मकरघटयोरन्यतमस्थे चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा कुस्त्रीदा कुत्सितां स्त्रियं ददाति। गुरुगृहे जीवक्षेत्रे धन्विमीनयोरन्यतमस्थे चन्द्रे प्रवृत्तांतर्दशा मानार्थसौख्यावहा मानं पूजा, अर्थो धनं, सौख्यं सुखभावः, एतान्यावहति ददाति। एवं शुभदशा शुभकालप्रवृत्ता शुभतरा भवति। एवं शुभाशुभकालप्रवृत्ता मध्या। अशुभा शुभकालप्रवृत्ता मध्या। अशुभाऽशुभकाल-प्रवृत्ता अशुभतरा। मध्या शुभकालप्रवृत्ता शोभना। मध्या अशुभकालप्रवृत्ता अशोभना। एवं शुभाशुभत्वकरणानि यान्युक्तानि तानि विख्यातांतर्दशानां शुभाशुभं व्यामिश्रफलत्वं परिकल्पनीयमिति ॥११॥

भाषा—दशारम्भ काल में चन्द्रमा कर्क में हो तो उसमें मान (आदर), धन और सब प्रकार के सुख होते हैं। मङ्गल के घर (मेष या वृश्चिक) में चन्द्रमा हो तो स्त्री

(१) दशांतर्दशाप्रवेशकालिकार्कतदासन्नपङ्क्त्यर्कयोरन्तरकालः षष्ट्या सङ्गुण्य पङ्क्त्यर्कगतिकलाभिर्विभज्य लब्धघट्यादिभिः पङ्क्तिस्थदिनादिकालः संस्कृतः (पंचत्य-कर्कदशाप्रवेशकालिकार्कं ऽधिके युक्तः, अल्पे हीनः सन्) दशान्तर्दशाप्रवेशसमयः स्फुटो भवति। तत्र सलग्नान् ग्रहान् प्रसाध्य फलं वाच्यम्।

में दोष (क्लेश या अपवाद) होता है। मिथुन या कन्या में चन्द्रमा हो तो विद्या, मित्र और धन का लाभ होता है। सिंह में चन्द्रमा हो तो उस दशा-समय में दुर्ग, जंगल, मार्ग और घर के समीप में भी खेती करने से लाभ होता है। शुक्र की राशि (वृष, तुला) में चन्द्रमा हो तो अन्न (सुभोजन आदि) का लाभ होता है। मकर या कुम्भ में चन्द्रमा हो तो दुष्ट स्त्री से संग होता है और गुरु राशि (धनु, मीन) में चन्द्रमा हो तो प्रारम्भ हुई दशा में मान, धन और सुख लाभ होता है ॥११॥

अथार्कदशायां शुभाशुभ क्लृप्तप्रदर्शनं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सौर्या स्वन्नखदन्तचर्मकनकक्रौर्याध्वभूपाहवै-

स्तैक्ष्ण्यं धैर्यमजस्रमुद्यमरतिः ख्यातिः प्रतापोन्नतिः ।

भार्यापुत्रधनारिश्चद्रुतभुग्भूपोद्भवा व्यापद-

स्त्यागी पापरतिः स्वभृत्यकलहो हृत्क्रोडपीडामयाः ॥१२॥

सौर्यामिति ॥ सूर्यस्येयं दशा सौरो तस्यां दशायामन्तर्दशायां वा नखदन्त-चर्मकनकक्रौर्याध्वभूपाहवैः कारणभूतैः स्वं धनं प्राप्नोति । नखं सुगन्धिद्रव्यं प्राणिकरजं वा दन्तो हस्तिदन्तादिः चर्म व्याघ्रादीनां कनकं सुवर्णं क्रौर्यं क्रूरता अध्वा मार्गः भूपो राजा आहवः संग्रामः एतैर्वनं प्राप्नोति । तैक्ष्ण्यमुग्रस्वभावता धैर्यं शुभाशुभफलप्राप्तौ हर्षविषादैरनभिभवः अजस्रमनवरतमुद्यमरतिः उद्योगपरत्वं ख्यातिः कीर्तिः प्रतापोन्नतिः प्रतापेन शौर्येणोन्नतिः शत्रूणां मन्य-शत्रुनिग्रहजनिता भीतिः । एतान्यादित्यशुभदशायां पुरुषस्य भवन्ति । अथा-शुभदशायां भार्या जाया, पुत्राः सुताः, धनं वित्तमरिः शत्रुः, शस्त्रमायुधादि, हुतभुगग्निः, भूपो राजा एभ्य उद्भूता उत्पन्ना व्यापदो विशेषेणापदो भवन्ति । त्यागी त्यागशीलता भवति । शुभदशायां शुभस्थाने त्यागी । अशुभदशायां चाशुभत्वादशुभस्थाने त्यागी भवति । पापरतिः पापासक्तश्च भवति । स्वभृत्य-कलहः आत्मीयैर्भृत्यैः सह कलहो भवति । हृत्क्रोडपीडने भवतः हृत् हृदयं, क्रोडमुदरं हृदयोदरपीडा । आमयाः रोगाश्चास्य भवन्ति । मिश्रायामुभयमपि । इति सूर्यदशान्तर्दशाफलम् ॥ १२ ॥

भाषा—शुभ स्थान स्थित सूर्य की दशा अन्तर्दशा में नख (सुगन्धि द्रव्य वा व्याघ्र नख), हाथी के दाँत, मृग व्याघ्रादि चर्म, सोना, क्रूरकर्म, मार्ग (राजमार्ग बनवाने का अधिकार) राजा और संग्राम से धन का लाभ होता है । तथा हृदय में कठोरता, धैर्य, सतत उद्योग में प्रेम, कीर्ति और प्रताप की वृद्धि होती है । अशुभ स्थान में सूर्य हो तो स्त्री, पुत्र, धन, शत्रु, शस्त्र, अग्नि और राजा से अनेक प्रकार की आपत्ति होती है । एवं त्याग (अधिक खर्च), पाप में प्रेम, अपने नौकरों से कलह और हृदय पेट में पीड़ा और रोग होता है । अर्थात् जब सूर्य मध्यम स्थान में हो तो

उसकी दशा में (अर्थात् मिश्र दशा में) मिश्र (शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के) फल होते हैं ॥१२॥

जैसे दर्शित उदाहरण में—सूर्य और शुक्र उच्च में हैं तथा ये दोनों अपने अपने उच्चराश से पीछे हैं, इसलिये आरोहिणी दशा हुई अतः दोनों की दशा अत्युत्तम फल देनेवाली होगी। एवं मंगल अपने उच्च से आगे और नीच से पीछे है अतः अवरोहिणी नाम की दशा हुई, तथा मंगल सम के स्थान में हैं इसलिये मंगल की दशा साधारण रूप से अशुभ फल को ही देगी। इसी प्रकार और ग्रहों का विचार करना चाहिये ॥१२॥

अथ चन्द्रदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलश्रीक्रीडितेनाह—

इन्दोः प्राप्य दशां फलानि लभते मन्त्रद्विजात्युद्भवा-

नीलुक्षीरविकारवस्त्रकुसुमक्रीडातिलान्नश्रमैः ।

निद्रालस्यमृदुद्विजामररतिः स्त्रीजन्म मेधाविता

कीर्त्यर्थोपचयक्षयौ च बलिभिर्वैरं स्वपक्षेण च ॥ १३ ॥

इन्दोरिति ॥ इन्दोश्चन्द्रमसो दशां वयोऽवस्थां प्राप्य लब्ध्वा मन्त्रद्विजात्युद्भवानि फलानि लभते । मन्त्रः शैववैष्णवादिश्राणक्यविहितो वा वैदिको वा द्विजातयो ब्राह्मणाः एभ्य उद्भूतानि उत्पन्नानि न केवलं यावद्विषयविकाराद्गुण्डादिकात्क्षीरविकारादध्यादिकाद्वस्त्रेभ्योऽम्बरेभ्यः, कुसुमेभ्यः पुष्पेभ्यः, क्रीडायाः क्रोडाभ्यः, तिलेभ्यः अन्नाच्छमाच्च व्यायामात्, एतैः शुभदशायां शुभानि फलानि प्राप्नोति । अथाऽशुभायामशुभदशायां निद्रालस्यमृदुद्विजामररतिरिति । निद्रायामालस्ये च रतिरासक्तिर्भवति । मृदुद्विजामररतिर्भवति मृदुः क्षमावान्, द्विजानां ब्राह्मणानाममराणां देवानां चाराधने रतिरासक्तिर्भवति । स्त्रीजन्म कन्याप्रसूतिः, मेधाविता बुद्धिवृद्धिः, कीर्तिः यशः, अर्थानां धनानामुपचयक्षयौ । शुभदशायामुपचयः प्राप्तिरशुभायां क्षयः नाशः । अशुभायां बलवद्विर्वीर्यवद्विः स्वपक्षेणात्मीयबन्धुवर्गेण च सह वैरं भवति । मिश्रायामुभयमपि । इति चन्द्रदशान्तर्दशाफलम् ॥ १३ ॥

भाषा—चन्द्रमा की दशा अन्तर्दशा समय में मन्त्र (आगम और निगमोक्त) द्वारा तथा ब्राह्मणों के द्वारा फल लाभ, तथा गुड़, चीनी, दूध, दही, घृत, वस्त्र, पुष्परस, जूआ आदि खेल, तिल अन्न और श्रम से भी शुभ अशुभ फल मिलता है । निद्रा, आलस्य, दया, देव ब्राह्मणों में प्रेम, कन्या का जन्म, बुद्धि में वृद्धि, कीर्ति और धन का उपचय (बुद्धि) तथा क्षय, बलवान् शत्रु और आत्मीय जनों से भी शत्रुता होती है ॥१३॥

विशेष अर्थ—इसमें जो शुभफल कहे गये हैं वे शुभ स्थान स्थित बली चन्द्रमा की दशा में, और जितने अशुभ फल कहे गये हैं वे अनिष्ट स्थान स्थित क्षीण चन्द्रमा की दशा में समझना चाहिये ॥१३॥

अथ भौमदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—
 भौमस्यारिविमर्दभूपसहजक्षित्याविकाजैर्धनं
 प्रद्वेषः सुतमित्रदारसहजैर्विद्वद्गुरुद्वेष्टता ।
 तृष्णासृज्वरपित्तभङ्गजनिता रोगाः परस्त्रीकृताः
 प्रीतिः पापरतैरधर्मनिरतिः पारुष्यतैर्दण्ड्यानि च ॥ १४ ॥

भौमस्येति ॥ भौमस्य क्षितिजस्य दशायां कैर्धनं भवति, अरिविमर्दनेन शत्रुप्रमथनेन । भूपो राजा सहजाः भ्रातरः क्षितिः भूः अविकाजैः ऊर्णाविकार-सम्भूतैः, आजैश्छागसम्भूतैः एतैः अरिविमर्दादिभिः धनं प्राप्नोति एतच्छुभ-दशायाम् । अथाशुभायां दशायां सुताः पुत्राः, मित्राणि सुहृदः, दाराः कलत्रं, सहजाः भ्रातरः, एतैः सह प्रद्वेषः वैरम् । विद्वद्भिः पण्डितैः, गुरुभिः गौरवसहि-तैश्च सह द्वेष्टता अप्रतीतिः । तृष्णा तृट्, असृग्मुधिरं, ज्वरः प्रसिद्धो रोगः, नित्तं धातुप्रसिद्धं, भंगः अवयवादेः स्फोटनम् एतैः जनिता उत्पादिता रोगा भवन्ति परस्त्रीणामिष्टता बाल्लभ्यम् । अन्ये रोगाः परस्त्रीप्रसङ्गेन प्रहारादिकाः अतिप्रसङ्गाद्धानुत्पद्यकृता वा । अथवा तत्कृतमूलकर्मोद्भवा भवन्ति । तथा पापरतैः अधसक्तैः सह प्रीतिर्भवति । अधर्मे निरतिः आसक्तिर्भवति । पारुष्यं वचनपरुषता कर्कशता, तैर्दण्ड्यमुग्रस्वभावता । मिश्रायामुभयमपि । इति भौम-दशान्तर्दशाफलम् ॥ १४ ॥

भाषा—मङ्गल की शुभ दशा में शत्रुओं को पराजित करके, तथा राजा, सहोदर, भूमि, भेड़, बकरे आदि से धन मिलता है । अशुभ मङ्गल की दशा में पुत्र, मित्र, स्त्री, सहोदर से द्वेष, विद्वान् और गुरुजनों में अभक्ति, तृष्णा, शोणित विकार, ज्वर, पित्त, अंग-भंग आदि अन्य रोग, पर-स्त्री से मैत्री, पापियों से प्रेम, अधर्म में प्रवृत्ति, कठोर और उग्रता होती है । मध्यम स्थान स्थित मङ्गल की दशा में मध्यम (दोनों प्रकार का) फल समझना चाहिए ॥ १४ ॥

अथ बुधदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—
 बौध्यां दौत्यसुहृद्गुरुद्विजधनं विद्वत्प्रशंसा यशो
 युक्तिद्रव्यसुवर्णवेसरमहीसौभाग्यसौख्याप्तयः ।
 हास्योपासनकौशलं मतिचयो धर्मक्रियासिद्धयः
 पारुष्यं श्रमवन्धमानसशुचः पीडा च धातुत्रयात् ॥ १५ ॥

बौध्यामिति ॥ बुधस्येयं दशा बौधी, तस्यां दौत्येन दूतत्वेन, सुहृद्भ्यो मित्रेभ्यः, गुरुभ्यः पूजार्हेभ्यः, द्विजेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः धनं प्राप्नोति । विद्वद्भ्यः पण्डितेभ्यः, प्रशंसा स्तुतिः, यशश्च कीर्तिर्भवति । युक्तिद्रव्यं रीतिकांस्यादि । सुवर्णं कनकम् । वेसरः अश्वविशेषः । महीभूः । सौभाग्यं सर्वजनबाल्लभ्यम् ।

सौख्यं सुखभावः । एषामाप्तयो लाभा भवन्ति । हास्यं परोपहासः, उपासना सेवा अनयो कौशलं तज्ज्ञता । मतिचयः बुद्धिवृद्धिः । धर्मक्रियासिद्धयः धर्म-युक्तानां क्रियाणां सिद्धयो भवन्ति । एतच्छुभदशायाम् । अथाशुभदशायां पारुष्यमित्यादि । पारुष्यं वचनपरुषता । श्रमः खेदः । बन्धः बन्धनम् । मान-सशुचः । शोकश्चित्तदौस्थ्यमेते भवन्ति । धातुत्रयात्पीडा वातपित्तश्लेष्माणां त्रयाणां दोषाणां प्रकोपात्पीडा व्याधिश्च जायते मिश्रायामुभयमपि । इति बुधदशान्तर्दशाफलम् ॥ १५ ॥

भाषा—शुभस्थानस्थ बुध दशा में दूतक्रिया से, मित्र, गुरुजन और ब्राह्मणों के द्वारा धन लाभ, विद्वानों के द्वारा प्रशंसा, सुयश, कांसा पीतलादि द्रव्य, सुवर्ण, घोड़े, पृथ्वी, सोभाग्यवृद्धि और सब प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है । दूसरों के मनोरंजन और उपासना (सेवा) में कुशलता, बुद्धि की वृद्धि और धर्मकार्य में सिद्धि होती है । अशुभस्थानस्थ बुधदशा में कठोरता, परिश्रम, बन्धन, मानस शोक और कफ, पित्त, वातजन्य पीडा होती है ॥ १५ ॥

अथ जीवदशायां शुभाशुभफलं सार्दूलदिग्निर्दिष्टेनाह—

जैव्यां मानगुणोदयो मतिचयः कान्तिप्रतापोन्नति-
र्माहात्म्योद्यममन्त्रनीतिनृपतिस्वाध्यायमन्त्रैर्धनम् ।

हेमाश्वत्थमजकुञ्जराभ्रचयः प्रीतिश्च सद्भूमिपैः

सूक्ष्मोहागहनाश्रमः श्रवणरुग्वैरं विधर्माश्रितैः ॥ १६ ॥

जैव्यामिति ॥ जीवस्येयं दशा जैवी, तस्यां जैव्यां मानगुणोदयः मानः पूजा, गुणा विद्याशौर्यादयः एषामुदयः प्रादुर्भावः । मतिचयः बुद्धिविवृद्धिः । कान्तिः कमनीयता । प्रतापोन्नतिः प्रतापेन पुरुषार्थेन उन्नतिः । प्रभावः शत्रूणां भीतिः । माहात्म्यं परोपकारशीलता । केचिद्गर्वमाहुः । उद्यमः उत्थानशीलता । मन्त्रैर्वैदिकैरन्यैर्वा । नीतिनृपतिस्वाध्यायमन्त्रैर्धनम् । नीत्या चाण-क्योक्त्याऽन्येन नीतिशास्त्रेण वा । नृपती राजा तदाराधनेन स्वाध्यायेन पाठेन । मन्त्रेण मन्त्रजाप्येन । एतैः धनं वित्तं प्राप्नोति । हेम सुवर्णम् । अश्वस्तुरगः । आत्मजाः पुत्राः, कुञ्जरः हस्ती, अंबराणि वस्त्राणि एषां चयो बाहुल्यम् । सद्भूमिपैः गुणवद्भिः नृपैः सह प्रीतिः स्नेहं प्राप्नोति । एतच्छुभदशायाम् । अथा-शुभायां सूक्ष्मोहेत्यादि । सूक्ष्मं वस्तु गहनात्मकं चोहयतस्तर्कयतः श्रमः खेदो भवति । यत्सूक्ष्ममतिखेदसहं गहनं गूढं तदूहयत इत्यर्थः । श्रवणरुक्कार्णरोगः । वैरं विधर्माश्रितैः धर्मबाह्यैः पुरुषैः सह वैरम् । मिश्रायामुभयमपि । इति गुरोर्दशान्तर्दशाफलम् ॥ १६ ॥

भाषा—शुभस्थानस्थित गुरु की दशा में लोक में सम्मान और गुणों की वृद्धि, बुद्धि में वृद्धि, कान्ति, पराक्रम से उन्नति, परोपकार, उद्योग, मन्त्र (सद्बिचार),

नीति, राजा, पाठ, और मन्त्र जप के द्वारा धन लाभ होता है। सुवर्ण, वस्त्र, घोड़ा, हाथी, और पुत्र इन सबों की वृद्धि, राजा से प्रीति होती है। अशुभ गुरु की दशा में सूक्ष्म विषयों के विचार में तर्क करने से परिश्रम, कर्ण रोग, और अधर्मियों से प्रीति होती है ॥ १६ ॥

अथ शुक्रदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शौक्रयां गीतरतिप्रमोदसुरभिद्रव्यान्नपानाम्बर-

स्त्रीरत्नद्युतिमन्मथोपकरणज्ञानेष्टमित्रागमः ।

कौशल्यं क्रयविक्रये कृषिनिधिप्राप्तिर्धनस्यागमो

वृन्दोर्वीशनिषादधर्मरहितैर्वैरं शुचः स्नेहतः ॥ १७ ॥

शौक्रयामिति ॥ शुक्रस्येयं दशा शौक्री, तस्यां शौक्रयाम् । गीतरतेः गीता-सक्तेः, प्रमोदस्य हर्षस्य, सुरभिद्रव्याणां सुगन्धद्रव्याणामन्नस्य भोजनस्य पानस्या-सवस्यांवराणां वस्त्राणां स्त्रीणां योपितां रत्नानां मणानां द्युतेः कान्तेः मन्म-थोपकरणानां कामोपभोग्यानां शय्यादीनां विज्ञानस्य योगशास्त्रस्येष्टानां प्रियाणां मित्राणां सुहृदामागमा लब्धयो भवन्ति । कुशलः शिक्ततः कुशलस्य भावः कौश-ल्यं कुशलः श्रेयतो वा कौशल्यमभीष्टक्रियासु श्रेष्ठत्वम् । क्रयविक्रये क्रयो यदि-च्छति क्रेतुं तत्क्रयः विक्रयो यदिच्छति विक्रेतुं तद्विक्रयः । कृषिः कर्षणम् । निधिः निधानं परैर्यद्वित्तं भूमावधः स्थाप्यते स निधिस्तत्प्राप्तिर्लाभः । एते भवन्ति एतच्छुभदशायाम् । अथाऽशुभदशायां वृन्दोर्वीशेति । वृन्देन बहुभिः सह उर्वीशेन राज्ञा निषादानामन्याजीविनां प्राणिघातिनां धर्मरहितः पापासक्तैः एतैः सह वैरं प्राप्नोति । शुचः स्नेहतः स्नेहाच्छुचः शोका भवन्ति । यत्र स्नेहस्तदुद्भवान् शोकान्प्राप्नोति । मिश्रायामुभयमपि । इति शुक्रदशांतर्दशाफलमिति ॥ १७ ॥

भाषा—शुभस्थान स्थित शुक्र की दशा में गीत में आसक्ति होने से हर्ष, सुगन्धित द्रव्य, सुभोजन, पान (पेय पदार्थ), वस्त्र, स्त्री, रत्न, कान्ति (सौन्दर्य), सुरतोप-भोग्य (शय्यादि) ज्ञान और इष्ट मित्रों के समागम होते हैं । क्रय-विक्रय में पटुता, खेती से लाभ, निधि (भूमिस्थ द्रव्य) की प्राप्ति, अन्य प्रकार से भी धन का लाभ होता है । और अशुभ स्थान स्थित शुक्र की दशा में जनसमूह, राजा, निषाद (अन्त्यज चण्डाल जाति) और अधर्मियों के साथ वैर तथा स्नेह करने के पश्चात् उससे शोक होता है ॥ १७ ॥

अथ शनैश्चरदशायां शुभाशुभफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सौरीं प्राप्य खरोष्ट्रपक्षिमहिषीवृद्धाङ्गनावाप्तयः

श्रेणीग्रामपुराधिकारजनिता पूजा कुधान्यागमः ।

रत्नेष्मेष्ण्यानिलकोपमोहमलिनव्यापत्तितन्द्राश्रमा-

न्भृत्यापत्यकलत्रमर्त्सनमपि प्राप्नोति च व्यङ्गताम् ॥ १८ ॥

सौरीमिति ॥ सौरीं शनैश्चरदशां प्राप्य खराः गर्दभाः, उष्ट्राः करभाः, पक्षिणः श्येनादयः, महिषी प्रसिद्धा वृद्धाङ्गना वृद्धा स्त्री एषामाप्तयः लाभा भवन्ति । बहुसमानजातीयानां संगः श्रेणी तस्या अधिकारे नियुज्यते । ग्रामे पुरे वा श्रेणी-ग्रामपुराधिकारजनितां तदुत्पन्नां मानतां प्राप्नोति । कुधान्यानां कोद्रवादीनामागमः लाभः । एतच्छुभदशायां । अथाशुभदशायां श्लेष्मेर्ष्येति । श्लेष्मणा कफेन । ईर्ष्याया मत्सरत्वेन । अनिलेन वायुना । कोपेन क्रोधेन, मोहेन चित्तभ्रमेण । मलिनतया मलीमस्त्वेन व्यापत्तिः विपत् तन्त्रा निद्रालस्ययोरन्तरे वर्तते । तस्या लक्षणम् । “हृदये व्याकुलीभावो वाचश्चेन्द्रियगौरवम् । मनोबुद्धयप्रसादश्च तन्द्राया लक्षणे विदुः ॥” श्रमः खेदः एतान्प्राप्नोति । भृत्येभ्यः कर्मकरेभ्यः । अपत्येभ्यः पुत्रदुहितृभ्यः । कलत्रेभ्यो भार्याभ्यः भर्त्सनं तर्जनं प्राप्नोति । व्यंगतामङ्गच्छेदं व्याधिना तद्वारणं वा । मिश्रायामुभयमपि । इति शनिदशांतर्दशाफलम् ॥ १८ ॥

भाषा—शुभस्थानस्थित शनि की दशा में गदहा, ऊँट, पक्षी, भैंस, वृद्धा स्त्री का संग, जन समाज, गाँव, नगर (शहर) के अधिकार से आदर, और कोदो, मनुआ, बाजरा आदि कुधान्य की प्राप्ति होती है । अशुभ शनि की दशा में कफ, ईर्ष्या, वायु, प्रकोप, मोह, मलिनता से विपत्ति, तन्द्रा, श्रम, तथा नौकर, सन्तान और स्त्री से भी अनादर, तथा अंग भङ्गता की प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

अथैकस्मिन्वृत्ते दशासु शुभान्यशुभानि च फलान्युक्तानि तेषां विभागं लग्नदशाफलं चोपजातिकयाह—

दशासु शस्तासु शुभानि कुर्वन्त्यनिष्टसञ्ज्ञास्वशुभानि चैवम् ।

मिश्रासु मिश्राणि दशाफलानि होराफलं लग्नपतेः समानम् ॥ १९ ॥

दशास्त्विति ॥ शुभाशुभं व्यामिश्रत्वं दशासु पूर्वमेवोक्तम् । तथा जन्मकाले उपचयराशिस्था निर्मलमूर्त्यः । स्पष्टगतयश्च ये ग्रहास्तेषामपि दशाः शुभाः । ये चापचयस्था हता रूक्षाः स्वल्पमूर्त्यस्तेषामपि दशा अशुभाः । तथा च यवनेश्वरः । “निशाकरादित्यविलग्नभानां तत्कालयोगादधिकं बलं यः । विभर्ति तस्यादिदशेष्यते सा शेषास्ततः शेषबलक्रमेण ॥ वयोऽधिको यः प्रथमोदितो वा ग्रहः स पूर्वं पठितो दशेशः । बलाधिकश्चेद्यदि केन्द्रसंस्थः पूर्वं सशेषास्तु यथा प्रदिष्टाः ॥ श्रेष्ठा दशा स्वे वयसि ग्रहस्य स्वोच्चाश्रिता कालबलाश्रिता च । मूलत्रिकोणात्स्वगृहाच्च मध्या मित्राश्रिता जन्मगृहाश्रिता वा ॥ नीचारिभांशोपगताऽजिताद्वा गृहात्परिध्वस्तविवर्णरूक्षात् । जन्मेशशत्रोर्निधनारिभेशाद्या पठ्यते सा बहुदोषदा स्यात् ॥” एवं शस्तासु शोभनासु दशासु ग्रहाः शुभान्येव फलानि कुर्वन्ति । दशाफलप्रवृत्ते यानि शुभान्यशुभान्यभिहितानि तान्येव भवन्ति । नेतराणि अनिष्टसञ्ज्ञास्वशुभदशासु अशुभान्यनिष्ठानि एव भवन्ति । मिश्रासु दशासु मिश्राण्येव दशाफलानि भवन्ति । एतच्च प्रतिस्मृत्रमस्माभिश्च व्याख्या-

तम् । तथा च सत्यः । “जन्मन्युपचयभवनेषु संस्थिताः सव्यगाः सुसूतिधराः । श्रेष्ठं फलं विदध्युर्ग्रहाः क्रमास्त्वां दशां प्राप्य ॥ अन्यैर्निहिता रुक्षाल्पमूर्तयो ह्यप-
चयर्क्षसंस्थाश्च । स्वदशाभिहितं नेष्टं ग्रहाः प्रयच्छन्ति लोकेषु ॥ होराफलं लग्न-
पतेः लग्नाधिपस्य समानं तुल्यं वक्तव्यम् । यथा मेषलग्नजातस्य भौमदशाफलं
वृषलग्नजातस्य शुक्रदशाफलम् । एवमन्येष्वपि वक्तव्यम् । किन्तु द्रेष्काणवशा-
च्छुभायां लग्नदशायां शुभफलमशुभायामशुभम् । मिश्रायामुभयमपि । अथ ये
पूर्वं दशारिष्टा उक्तास्तेषामिमे भङ्गाः प्रोक्ताः । तथा च सारावल्याम् । “प्रवेशे
बलवान्वेष्टः शुभैर्वा सन्निरीक्षितः । सौम्याधिमित्रवर्गस्थो मृत्युकृन्न भवेत्तदा ॥
अन्तर्दशाधिनाथस्य विबलस्य दशा यदा । विबला स्यात्तदा भङ्गो न बाध्या तस्य
च ध्रुवम् ॥ युद्धे च विजयी तस्मिन्ग्रहयोगे शुभो यदि । दशायां न भवेत्कष्टं
स्वोच्चादिषु च संस्थिते ॥” इति ॥ १६ ॥

भाषा—ऊपर ग्रहों के शुभाशुभ दशा फल जो कहे गये हैं, उनमें ग्रह अपनी
शुभदशा में शुभ फल, अशुभ दशा में अशुभ फल देते हैं । मध्यम दशा में मिश्र (शुभ-
अशुभ दोनों प्रकार के) फल देते हैं । क्योंकि दशा में संज्ञानुसार ही फल होते हैं ।
और लग्न दशा का फल लग्नेश के स्थिति वश समझना चाहिए । अर्थात् लग्न
शुभ स्थान में हो तो शुभ, अशुभ स्थान में हो तो अशुभ फल होता है ॥ १९ ॥

अथान्येषामपि फलानां दशास्वतिदेशार्थं शालिन्याह—

संज्ञाध्याये यस्य यद्द्रव्यमुक्तं कर्माजीवो यश्च यस्योपदिष्टः ।

भावस्थानालोकयोगोद्भवं च तत्तत्सर्वं तस्य योज्यं दशायाम् ॥२०॥

संज्ञाध्याय इति ॥ यस्य ग्रहस्य संज्ञाध्याये यद्द्रव्यं ताम्रं स्यान्मणिहे-
मेत्यादिना ग्रन्थेनोक्तं कथितं तस्य तद्द्रव्यस्य शुभदशायां प्राप्तिः योज्या ।
अशुभदशायां हानिः । तथा यश्च कर्माजीवो यस्य ग्रहोपदिष्टो जातकेऽभि-
हितः । अर्थाप्तिः पितृपितृपत्नीत्यादि । तस्य ग्रहदत्तस्य कर्माजीवस्य तदन्तर्द-
शायामेवाभिर्भवति । भावफलं वक्ष्यति । शूरः स्तब्ध इत्यादि । तथा प्रथितश्च-
तुरोऽटन इत्यादि । तथा मेषे सखस्तिमिरनयन इत्यादि । अवलोकनफलं
दृष्टिफलम् । चन्द्रे भूपवुधौ इत्यादि । योगोद्भवं नाभसयोगान्मुक्त्वा सर्वयोगेषु
योगकर्तृभ्यो ग्रहेभ्यो मध्याद्यो बलीयान्स स्वदशायामेव फलं ददाति । नाभ-
सयोगाः सकलदशास्वपि फलप्रदाः ॥ वक्ष्यति च । “इति निगदिता योगाः
सार्द्धं फलैरिह नाभसा नियतफलदाश्चिन्त्या ह्येते समस्तदशास्वपि ।” इति ।
एवमादि यद्यदुक्तं तत्सर्वं निरवशेषम् । तस्य ग्रहस्य दशायां योज्यमिति ॥२०॥

भाषा—पूर्व संज्ञाध्याय में जिस ग्रह के जो जो द्रव्यादिक कहे गये हैं तथा जिस
ग्रह के जो कर्माजीव आगे कहे जायेंगे, एवं जिस ग्रह के भाव और स्थान सम्बन्धी
दृष्ट और योग के फल जो कुछ कहे जायेंगे वे सब ग्रह की दशा में ही समझनी चाहिये

अर्थात् जब ग्रह की शुभ दशा होनी है तब उन द्रव्यादि और जीविका आदि का लाभ तथा अशुभ दशा में उसकी हानि होती है ॥ २० ॥

अथ यस्य जातस्य जातकमप्यगणितं यस्य शरीरच्छायां दृष्ट्वा प्रहदशाज्ञान-
मिन्द्रवज्रयः॥३६—

छायां महाभूतकृतां च सर्वेऽभिव्यञ्जयन्ति स्वदशामवाप्य ।

कम्ब्वग्निवाय्वम्बरजान्गुणांश्च नासास्यदृक्त्वक्छ्ववणानुमेयान् ॥२१॥

छायां महाभूतकृतमिति ॥ पूर्वमुक्तं शिखिमुखपयोमरुद्गणानां वशिन्तो भूमिसुतादयः क्रमेणेति । तत्रादित्यचन्द्रौ बह्वयस्नुप्रसिद्धावेव । यः कश्चिद्ग्रहः स्वदशामात्मीयदशामवाप्य महाभूतकृतां छायामभिव्यञ्जयति प्रकटीकरोति । छायाशब्देन शरीरशोभाऽभिधीयते । शरीरकांतिरित्यर्थः । तथा च सच्छा-
योऽयं विच्छाद्योऽयं वर्तते इत्यभिधीयते । एवमात्मीयदशायां पृथिव्यादि-
महाभूतकृतां शरीरच्छायां व्यञ्जयति प्रकटीकरोति । सा च कम्ब्वग्निवाय्वम्बर-
जान्गुणान्कुः पृथिवी, अम्बुर्दक्षः, अग्निर्हुताशनः, वायुः अनिलः, अंबरमाका-
शमेभ्यो जातोऽन्ना सा छाया तद्गुणान्करोति । तांश्च यथासंख्यं नासास्य-
दृक्त्वक्छ्ववणानुमेयान् पार्थिवं गुणं गन्धमभिव्यञ्जयति । नासानुमेयं घ्राणेनो-
पलभ्यते । अथाप्यं गुणं रसमभिव्यञ्जयति । तच्चास्यानुमेयम् । आस्यशब्देनेह
जिह्वा ज्ञेया । तथा रसस्योपलब्धेः आस्यग्रहणं चात्र वृत्तानुरोधात्कृतम् । आग्नेयी
आग्नेयं गुणं रूपमभिव्यञ्जयति । दृष्ट्याऽनुमेयम् । वायवी वायव्यं स्पर्शगुणम-
भिव्यञ्जयति । त्वगनुमेयं स्पर्शनोपलभ्यते । नाभसी नाभसं गुणं शब्दमभि-
व्यञ्जयति । श्रवणानुमेयं कर्णोपलभ्यम् । एतदुक्तं भवति । यदा शुभगन्धः पुरुषो
भवति तदास्य बुधकृता पार्थिवी छाया ज्ञेया । यदा मिष्टरसभोजी भवति
तदाऽस्य चन्द्रशुक्रकृता छाया ज्ञेया । यदाऽतीव रूपवान्सुकान्तः पुरुषो भवति
तदा सूर्यभौमकृता आग्नेयी छाया ज्ञेया । यदा स्पर्शनं मृदुर्भवति तदा शनैश्चर-
कृता वायवी छाया ज्ञेया । यदाऽस्य वचनं कर्णयोः सुखकरं भवति तदा
जीवकृता नाभसी छाया विशेषलक्षणमाचार्येण संहितायामभिहितम् । तथा
च । “छाया शुभाशुभफलानि निवेदयन्ती लक्ष्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणज्ञैः ।
तेजोगुणान्वहिरपि प्रविकारायन्ती दीपप्रभा स्फटिकरत्नघटस्थितैव ॥ स्निग्ध-
द्विजत्वङ्मखरोमकेशा छाया सुगन्धा च महीसमुत्था । तुष्टयर्थलाभाभ्युदया-
न्करोति धर्मस्य चाहन्त्यहनि प्रवृद्धिम् ॥ स्निग्धा सित्ता च हरिता नयनाभिरामा
सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान्करोति । सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या छाया
फलं तनुभृतां शुभमाददाति । चण्डा धृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्तं तेजो विक्रमैः
सप्रतापैः । आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य धत्ते ॥
मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था जनयति बधवन्धं व्याध्यनर्थार्थ-
नाशम् । स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्ताऽत्युदारा निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां
स्वच्छवर्णा ॥” ॥ २१ ॥

भाषा—सब ग्रह अपनी अपनी दशा में अपने अपने महाभूत (तत्त्व) सम्बन्धिनी छाया (मुखादि शारीरिक कान्ति) को प्रकट करते हैं। तथा—नाक, मुख, दृष्टि और कान के द्वारा ग्राह्य क्रम से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के गुण (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द) को भी अपनी अपनी दशा में प्रकट करते हैं ॥२१॥

विशेष अर्थ—भाव यह है कि संज्ञाध्याय में जिन ग्रहों के “शिखिभूखपयोमरुद्” इत्यादि जो महाभूत (तत्त्व) कहे गये हैं उनकी छाया (तत्तदङ्गशोभा) को और उन तत्त्वों के गुणों को भी अपनी अपनी दशा में प्राप्त करते हैं। जैसे रवि और मङ्गल का महाभूत अग्नि है, और अग्नि की छाया नेत्र हैं तथा उसका गुण रूप है। इसलिये शुभद रवि या मङ्गल की दशा अन्तर्दशाकाल में नेत्र में नीरोगता और अच्छे अच्छे रूप के दर्शनों से सुख होते हैं। एवं बुध का तत्त्व पृथ्वी है, उसकी छाया नाक की शोभा है तथा गुण गन्ध है, इसलिये बुध की शुभदशा में नाक की शोभा, नीरोगता रहती है तथा अच्छे सुगन्धि द्रव्य के लाभ से सुख होता है। और गुरु का तत्त्व आकाश है उसकी छाया कान की कान्ति है और गुण शब्द है इसलिये गुरु की शुभ दशा में कान नीरोग और अच्छे अच्छे शब्द सुनने से सुख; अशुभ दशा में कान में रोग और दुःशब्द से क्लेश होता है। एवं शुक्र और चन्द्र का महाभूत जल है उसकी छाया (मुख जित्वा) है और गुण रस है अतः शुक्र और चन्द्र की शुभदशा में मुख में स्वच्छता और अनेक प्रकार के सुरस भोजन से सुख होता है। अशुभ दशा में मुख में रोग और कुरस भोजन से क्लेश होता है। तथा शनिका महाभूत वायु है, उसका गुण स्पर्श है तथा छाया (त्वचा की कान्ति) है अतः शनि की दशा अन्तर्दशा समय में त्वचा की शोभा बढ़ती है और उत्तम स्पर्श (माला, दुकूलवस्त्र, भूषण, युवती इत्यादि) से सुख होता है। अशुभ दशा में चर्म रोग और दुःस्पर्श (शस्त्रादि घात) से दुःख होता है। इसलिये जिनकी जन्मकुण्डली हो उनकी ग्रह दशा समझकर तत्तत् काल में उक्त फल कटना चाहिए और जिनका जन्म समय अज्ञात हो उनकी उक्त फल की प्राप्ति तत्कालिक ग्रहदशा का अनुमान करना। जो स्वयं आगे श्लोक में कहते हैं ॥२१॥

अत्र च वायवीं छायां वर्जयित्वा सर्वास्वेव छायासु शुभमशुभं फलमुक्तं तत्कथम्? शुभफलेयमशुभफलेयमिति यद्वशाज्ज्ञायते तज्ज्ञानार्थमन्तरात्मनः स्वरूपं मालिन्याह—

शुभफलददशायां तादृगेवान्तरात्मा

बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागमं च ।

कथितफलविपाकैस्तर्कयेद्वर्त्तमानां

परिणमति फलोक्तिः स्वप्नचिन्तास्ववीर्यैः ॥ २२ ॥

शुभफलदेति ॥ शुभफलं ददाति यः स शुभफलदः शुभफलदस्य ग्रहस्य या दशा तस्यामन्तरात्मा स्वदेहस्थः परमात्मा चित्स्वरूपः तादृगेव शुभो भवति। पुरुषस्य तस्य च छाया दर्शितग्रहदशाकाले बहुविधमनेकप्रकारं सौख्यं

सुखभावमर्थागमं धनलाभं च जनयत्युत्पादयति । अर्थादेवाशुभदशायां पुरुष-
स्यान्तरात्माऽप्यशुभो भवति । तत्र ज्ञाया दर्शितग्रहजाता तादृगेव फलदा सा
चासौख्यमनर्थागमं च बहुप्रकारं जनयति । मिश्रायां मिश्रं च । यात्रायां च
वृद्ध्यति । “निमित्तानुचरं सूक्ष्मं देहेन्द्रियमहत्तरम् । तेजो ह्येतच्छरीरस्थं
त्रिकालफलविन्नुणाम् ॥ प्रीतये न मनो नार्थे नासिद्धावभिनन्दति । तस्मा-
त्सर्वात्मना यातुर्नुमेयं यथा मनः ॥ शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि
स्युरेकतः । एकतश्च मनःशुद्धिस्तद्विशुद्धिर्जयावहा ॥” इति । कथितफलविपाकै-
रिति । ग्रहाणां दशासु यानि फलानि शुभान्यशुभानि वा कथितान्युक्तानि
तानि यः पुरुषो भुङ्क्ते । तस्य पुरुषस्य तद्ग्रहदशा वर्तते इति ज्ञेयम् । एतदुक्तं
भवति । यादृशं फलं शुभमशुभं वा पुरुषस्योपलभ्यते । तच्च यस्य ग्रहस्य
दशायां पठितम् सा तस्य दशा नरस्य वर्तते इति ज्ञेयम् । एवं वर्तमानां दशां
तर्कयेल्लक्षयेदित्यर्थः । एव द्वाव्यावशान्तरात्मवर्शन फलपक्ववशेन वा
गणितस्य जातकस्य वर्तमानां दशां वदेत् । अथ सौरदशायामशुभायां व्यङ्ग्यत्व-
मुक्तं न च शुभायाम् । अशुभायामप्यनेकेषां व्यङ्ग्यत्वं दृष्टम् । शुक्रदशायां
शुभायां निधिप्राप्तिरुक्ता न च साऽपि दृष्टा तदर्थमाह । परिणमति फलोक्ति-
रिति । अवीर्यैः बलहीनैः ग्रहैः फलानि यानि शुभान्यशुभानि वा दत्तानि
तत्फलोक्तिः फलप्राप्तिः स्वप्ने स्वप्नावस्थायां परिणमत्यनुभूयते । चिन्तायां
मनोरथेन वेति केचिच्च—“शुभदशायां तादृगेवांतराख्या—” इति पठन्ति ।
पठित्वेवं व्याचक्षते । यथा शुभायां दशायामन्तराख्यान्तर्दशा शुभा यदि
भवति तदा बहु जनयति पुंसां सौख्यमर्थागममिति । अर्थादेवाशुभायां दशा-
यामशुभातर्दशासौख्यमनर्थागमं च बहु जनयति । अनेन व्याख्यानेन शुभाया-
मशुभायां च शुभाशुभानि भवन्ति मिश्रफलं प्रयच्छति न वैतदुच्यते ।
यस्मादुक्तम् । “एकैर्गोऽर्द्धमपहृत्यान्तर्दशापतिरेव स्वं फलं ददातीति ज्ञेयम् ।
अन्यथाऽपहृत्येति निरर्थकं स्यादिति । तस्मात्पूर्वपाठः श्रेयान् द्वितीयः प्रमाद-
पाठः । प्रथमपाठेन विना ज्ञायां शुभाशुभत्वमनुमातुन्न शक्यत इति ॥२२॥

भाषा—शुभग्रह की दशा में अन्तरात्मा (स्वहृदयस्थ ईश्वर) भी उसी प्रकार
(शुभ होकर) मनुष्यों को सब प्रकार के सुख और धन लाभ कराते हैं । “अब जिसका
जन्मसमय अज्ञात हो उसकी दशा समझने की रीति कहते हैं ।”—जिस ग्रह के जो
फल कहे गये हैं, उन फलों से ग्रह की वर्तमान दशा का अनुमान करना चाहिये । तथा
जो ग्रह निर्बल रहता है उसका दशाफल (शुभ वा अशुभ) स्वप्न में अथवा चिन्ता
(मनोरथ करने) में प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

जैसे—किसी को वर्तमान समय में नित्य अच्छे भोजन मिल रहे हैं । तो यहाँ
अनुमान करना चाहिये कि रस जल का गुण है और जल शुक्र का तत्त्व है इसलिये
इस समय शुक्र की दशा वर्तमान है, इत्यादि । एवं मान लो कि किसी को शत्रु-
थान स्थित पापग्रह की अवरोहिणी दशा है वह ग्रह प्रबल है तो उसे सहाहा निः

और क्लेश होगा। यदि अच्छे स्थान स्थित ग्रह की आरोहिणी नामक शुभ अन्तर्दशा प्राप्त हो जय तो उत्रे उस निर्बल ग्रहकृत शुभ दशा फल स्वप्न में या मनोरथ करने ही में मिल जायगा। जैसे दृष्टान्त है कि एक आदमी को प्रबल अशुभ ग्रह की दशा थी इसलिये यत्न करने पर भी उसे धन या सुख नहीं मिलता था। एक समय किसी निर्बल शुभग्रह की १ महीने की अन्तर्दशा आ गई, उस किसी महाजन ने उसे आठ आने रोज पर एक स्थान से दूसरे स्थान प्रतिदिन एक घड़ा घृत पहुँचाने का काम दे दिया, उसने बड़ी प्रसन्नता से काम आरम्भ किया और घृत का घड़ा रटाकर पहुँचाने लगा, रास्ते में सोचने लगा कि—आठ आने मजदूरी मिलेगी, उसमें ४ आने के चावल, दाल सब्जी वगैरह खरीद कर पेट भर खाऊँगा। और चार आने रोज बचाऊँगा। ऐसे एक महीने तक साढ़े सात रुपये बचेंगे, फिर यदि मजदूरी छूट भी जायगी तो उसी रुपये से कोई व्यापार करूँगा क्योंकि सुनते हैं कि लोग एक रुपये के व्यापार से लक्ष-पति बन जाते हैं। तो क्या हम ७ सात रुपये से हजारपति भी न बनेंगे। तब उससे भी अधिक रुपये जमा कर मैं एक घोड़ा खरीदूँगा और उसपर जिन देकर घों चढ़ूँगा।’ उस इतना सोचते ही वह उछल पड़ा उसके मत्थे पर से घृत का घड़ा ही गिर पड़ा, उसे एक दिन की मजदूरी से भी हाथ धोना पड़ा। क्योंकि अन्तर्दशापति निर्बल था, दशापति प्रबल था, इसलिये उसे प्रत्यक्ष सुख या धन नहीं होने दिया। निर्बल शुभग्रह की अन्तर्दशा तक मन में ही सुख और धन लाभ का अनुभव कर लिया ॥ २२ ॥

अथैकग्रहदत्तयोः फलयोः सदृशयोर्नाशो भवति भिन्नदत्तानां बहूनामपि पक्तिरेव भवतीत्येतद्वसन्ततिलकेनाह—

एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे

नाशं वदेद्यधिकं परिपच्यते तत् ।

नान्यो ग्रहः सदृशमन्यफलं हिनस्ति

स्वां स्वां दशामुपगताः स्वफलप्रदाः स्युः ॥२३॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

दशाऽन्तर्दशा(१)ध्यायोऽष्टमः ॥८॥

एकग्रहस्येति । सर्वास्येव फलानि नाभिसवर्ज्यं स्वदशायां ग्रहः प्रयच्छती-
त्युक्तं तत्रैकेन ग्रहेण यदाऽसदृशं विरुद्धे फलद्वयं दत्तं भवति तस्मिन्सदृशे
तुल्ये द्वयोः फलविरोधे सति नाशो भवति । तस्य फलद्वयस्य वदेद् ब्रूयात् ।
कीदृशं तद्विरुद्धमित्यत्रोच्यते । यथा कश्चिद्ग्रहः कयाऽपि युक्त्या दशाफलादिना
सुवर्णदो भवति स एवान्यया युक्त्या अष्टवर्गफलयोगफलदृष्टिफलभावफलानाम-
न्यतमेन सुवर्णापहारी भवति तदा फलद्वयेऽपि सुवर्णसम्बन्धोऽस्तीति सादृश्यं
स्वर्णदानापहारिणाविति विरोधः । एवमेकस्य ग्रहस्य सदृशफलयोः विरोधे

नाशं वदेत् । न सुवर्णलाभो न चापहानिरिति । यदधिकं परिपच्यते तत् । एकेनापि ग्रहेण फलद्वयं दत्तमन्यरूपं तयोर्मध्यादधिकं तत्परिपच्यते भवति । यथा कश्चिद्ग्रहो निर्दिष्टप्रकारद्वयेन सुवर्णदः, स एव प्रकारेणैकेन सुवर्णपहारी, तदा द्वयोरधिकत्वात्तद्दानस्य सुवर्णं ददात्येव नापहरति । अथवा प्रकारद्वयेन सुवर्णपहारी प्रकारेणैकेन सुवर्णदः तदाऽपहरणस्याधिकत्वादपहरत्येव अथवा । सुवर्णपहारी रूप्यदश्च तथापि द्वे असदृशे असदृशत्वादधिकं परिपच्यते । सुवर्णपहारी रूप्यदश्च भवति इति केचित् । नान्यो ग्रह इति । अन्येन ग्रहेण दत्तं सदृशं विरोध्यपि फलं नान्यो ग्रहोऽपि हिनस्त्यपहरति । यथा कश्चिद्ग्रहः सुवर्णदो भवत्यन्यश्च सुवर्णपहारी तदा तत्र सुवर्णदः स्वदशायां सुवर्णं ददाति । स्वदशायां सुवर्णपहारी चापहरति । अनेनेनदुक्तं भवति । यथैकग्रहस्य सदृशफलयोः विरोधे समग्रजन्मान्तरेऽपि फलनाशं वदेत् अन्यत्र विरुद्धयोरपि फलयोः नाशं न वदेत् । यतः सुवर्णदो ग्रहः स्वामात्मीयां दशामुपगतः प्राप्तः सुवर्णलाभं करोति, सुवर्णपहारी स्वदशाभ्युपगतः प्राप्तः सुवर्णमपहरति । एतदष्टकवर्गफलं विनाशयतस्तत्र कस्य ग्रहस्य फलसदृशयोरपि तुल्यसंख्ययोः फलयोर्नाशो भविष्यति । यथा भविष्यति तथा तत्रैव प्रतिपादयिष्याम इति ॥ २३ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ

दशान्तर्दशाध्यायोऽष्टमः ॥ ८ ॥

भा०—यदि किसी एक ग्रह में शुभ और अशुभ बल तुल्य होने से शुभ और अशुभ दोनों फल तुल्य हो तो दोनों का नाश हो जाता है, अर्थात् उस ग्रह का न तो शुभ फल और न अशुभ फल ही होता है । यदि फल में न्यूनाधिकता हो तो जो अधिक हो वही फल मिलता है । किन्तु अन्य ग्रह किसी दूसरे ग्रह के तुल्य विरुद्ध फल को नाश नहीं करता है किन्तु अपनी-अपनी दशा में अपने-अपने फल को देता ही है ॥ २३ ॥

वि०—इसका भावार्थ हुआ कि कोई एक ही ग्रह षड्वर्ग विचार से ३ शुभवर्ग में और ३ पापवर्ग में पड़ा हो तो दोनों शुभ अशुभ तुल्य होने से नष्ट हो जायगा । यदि चार शुभवर्ग हो और २ पापवर्ग हो तो अधिक होने के कारण शुभ फल ही देगा, किन्तु पूर्णफल का तृतीयांश शुभ फल देगा ऐसा समझना चाहिए । जिसके केवल शुभ ही के षड्वर्ग हो वह पूर्ण पाप फल ही देगा । किन्तु यदि किसी भी कुण्डली में ३ ग्रह शुभ-फल देनेवाले और ३ अशुभ फल देनेवाले हों तो तुल्य होने से फल का नाश नहीं होगा । सब अपनी-अपनी दशा में अपना-अपना फल देंगे ऐसा समझना चाहिये ॥ २३ ॥

अथाष्टवर्गाध्यायः ६ ।

अथाष्टवर्गाध्यायो व्याख्यायते । तत्रान्तर्दशाफलमिति पूर्वमेवोक्तं तत्प्रदर्शयितुं स्थिरस्याष्टकवर्गफलस्यावसरः । लग्नाष्टमाः सर्वे एव ग्रहास्तेभ्यः सकाशादेकैकस्य ग्रहस्य चारवशाद्वाशौ विचरतः शुभाशुभं फलमष्टकवर्गे निरूप्यते । तत्राशवेवार्काष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्वादर्कः प्रथमायबन्धुनिधनद्वयाज्ञातपोद्यूनगो

वक्रात्स्वादिव तद्वदेव रविजाच्छुक्रात्स्मरान्त्यारिषु ।

जीवाधर्मसुतायशत्रुषु दशत्रयायारिगः शीतगो-

रेष्वेवान्त्यतपःसुतेषु च बुधाच्छुक्रात्सबन्ध्वन्त्यगः ॥ १ ॥

स्वादर्क इति ॥ यत्र राशौ जन्मसमये पुरुषस्यादित्यः स्थितः स एव तस्य स्वस्थानमुच्यते । एवमन्येषामपि प्रहाणां ज्ञेयम् । यो यत्र व्यवस्थितः स एव तस्य स्वस्थानं तस्मात्स्वादर्कः प्रथमायबन्धुनिधनद्वयाज्ञातपोद्यूनगः प्रथमैकादशचतुर्थाष्टमद्वितीयदशमनवमसप्तमेषु ११११४।८।२।१०।६।७ एतेषां स्थानानां संज्ञाः प्रागेव व्याख्याताः । अतः पुनर्नोच्यन्ते । एषामङ्गन्यास एव व्याख्यानमिति सर्वत्र ज्ञेयम् । एतेषु स्थानेषु गतः स्वात्स्थानादर्कः सूर्यः शुभः इष्टफलदः अर्थादेवान्यस्थानेष्वशभ अनिष्टफलदः । यतो वक्ष्यति । “इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यत्” इत्येवं सर्वत्र ज्ञेयम् । वक्रात्स्वादिव वक्रादङ्गारकात्स्वादात्सीयस्थानादिव शुभः । येष्वेव स्वस्थानात्तेष्वेवाङ्गारकात् ११११४।८।२।१०।६।७ एतेष्वर्को भौमाच्छुभः । तद्वदेव रविजात् रविजात्सूर्यपुत्रात्तद्वदेव । येष्वेव स्थानेषु स्वाच्छुभस्तेष्वेव सौरात् ११११४।८।२।१०।६।७ एतेषु सौरादर्कः शुभ इति सर्वत्रानुवर्तते । शुक्रात्स्मरान्त्यारिषु स एवार्कः सप्तमद्वादशषष्ठेषु शुक्राच्छुभः ७।१२।६ जीवाधर्मसुतायशत्रुषु जीवाद्बृहस्पतिस्थानात् धर्मसुतायशत्रुषु नवपञ्चमैकादशषष्ठेषु शुभः ६।५।११।६ दशत्रयायारिगः शीतगोः शीतगोश्चन्द्रादशत्रयायारिगः दशमचतुर्थैकादशषष्ठगः शुभः १०।३।११।६ एतेष्वेवान्त्यतपःसुतेषु च बुधाच्छुभः । एष्वेव प्रागुक्तेषु चन्द्रस्थानेषु दशत्रयायारिषु चशब्दात्तथान्त्यतपःसुतेषु बुधाच्छुभः १०।३।११।६।१२।६।५ लग्नात्सबन्ध्वन्त्यगः सहशब्देन प्रागुक्तानि चन्द्रस्थानान्यनुकृत्यन्ते तेनान्त्यतपःसुतस्थानानीति सर्वत्र परिभाषा । तेनैतेषु चन्द्रस्थानेषु दशत्रयायारिषु सबन्ध्वन्त्येषु चतुर्थद्वादशसहतेषु गतो लग्नादुदयाच्छुभः १०।३।११।६।१।१२। तथा च सत्यः । “स्वात्स्थानादिवसकरस्तृतीयषष्ठान्त्यभत्रिकोणानि ।” हित्वेष्टः ३।६।१२।५ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरदर्शितानि स्थानानि जातानि ११११४।८।२।१०।६।७ सौरस्य तु सहजारिसुतान्त्यसंज्ञानि । हित्वेष्ट इत्यनुवर्तते ३।६।५।१२ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरदर्शितानि स्थानानि जातानि ११११४।८।२।१०।६।७ चन्द्रादशमैकादशचतुर्थषष्ठपगः शुभः सूर्यः १०।११।३।६ जीवात्रिकोणयोः षष्ठस्तथैकादशश्चेष्टः ६।५।६।११ प्रथमद्वितीयसप्तमचतुर्थनिधनगतान्विना राशीन्साम्यादिष्टः सूर्यः १२।७।४।८ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरप्रदर्शितानि स्थानानि जातानि १०।३।११।६।१२।६।५ कुजस्तु सहशोऽर्कपुत्रेण ११११४।८।२।१०।७ दशमैकादशषष्ठचतुर्थगोऽत्यश्चतुर्थगो लग्नात् १०।११।६।३।१२ ४ शुक्रस्थानाद्रविः षट्सप्तमद्वादशेषु भवतीष्टः ६।७।१२ तथा च सूक्ष्मजातके । “केन्द्रा-

याष्टद्विनवस्वर्कः स्वादाकिंभौमयोश्च शुभः । पट्सप्तान्त्येषु सितात्पडायधीधर्मगो
जीवात् उपचयगोऽर्कश्चन्द्रादुपचयनवमान्त्यधीयुतः सौम्यात् । लग्नादुपचय-
बन्धुव्यवस्थितः शोभनः प्रोक्तः ॥” इति आदित्याष्टकवर्गः ॥ १ ॥

भाषा—जन्म लग्न कुण्डली में सूर्य जिस स्थान में हो वहाँ से ११११४८१२१०
१११७ इन स्थानों में शुभ है । अर्थात् वे स्थान शुभ होते हैं । इनसे अन्य स्थान अशुभ
होते हैं । मंगल से भी इन्हीं ११११४८१२१०११७ में और शनि से भी इन्हीं स्थानों
में सूर्य शुभ होता है । शुक्र से ७१२१६ इन स्थानों में सूर्य शुभ । गुरु से ९५१११६
इन स्थानों में, चन्द्र से १०३१११६ में शुभ होता है । बुध से १०३१११६१२११५
में और लग्न से १०३१११६१४१२ में सूर्य शुभ होता है । अर्थात् उक्त स्थान से
अन्य स्थान में अशुभ फल देता है । १॥

अथ चन्द्राष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

लग्नात्पट्त्रिदशायगः सधनधीधर्मेपु चाराच्छशी
स्वात्सास्तादिषु साष्टसप्तसु रवेः षट्त्रयायधीस्थो यमात् ।
धीत्रयायाष्टमकण्टकेषु शशिजाज्जीवाद्ध्ययायाष्टगः
केन्द्रस्थश्च सितात्तु धर्मसुखधीत्रयायास्पदानङ्गगः ॥ २ ॥

लग्नात्पडिति ॥ लग्नात्पट्त्रिदशायगः शशी चन्द्रः लग्नादुदयात्पट्त्रिद-
शायगः पष्ठतृतीयदशमैकादशेषु स्थानेषु शुभः ६३१०११ सधनधीधर्मेपु
चाराच्छशी । सहशब्देन प्रागुक्तान्येव स्थानान्यनुक्षिप्यन्ते । शशी चन्द्रः
आराद्धौमादेष्टेव षट्त्रिदशायेषु धनधीधर्मसहितेषु द्वितीयपञ्चमनवमयुक्तेषु
शुभः ६१११०११२१५६ स्वात्सास्तादिषु आत्मीयस्थानादेष्टेव षट्त्रिदशायेषु
सास्तादिषु सप्तमप्रथमसहितेषु शुभः । शशी ६३१०१११७१ साष्टसप्तसु
रवेरादित्यादेष्टेव स्थानेषु साष्टसप्तसु अष्टमसप्तमसंयुक्तेषु ६३१०१११८७
शुभः । पट्त्रयायधीस्थो यमात् यमात्सौरात् पट्त्रयायधीस्थः पष्ठतृतीयैकादश-
पञ्चमस्थानस्थः शुभः ६३१११५ धीत्रयायाष्टमकण्टकेषु शशिजात् शशिजाद्-
बुधाद् बुधस्थानाद्धीत्रयायाष्टमकण्टकेषु पञ्चममृतीयैकादशाष्टमकेन्द्रेषु शुभः ।
शशी ५३१११८११४७१० जीवाद्ध्ययायाष्टगः केन्द्रस्थश्च जीवाद्गुरुस्थाना-
द्ध्ययायाष्टगः केन्द्रस्थश्च द्वादशैकादशाष्टमकेन्द्रस्थश्च शुभश्चन्द्रः १२१११८११४
७१० सितात्तु धर्मसुखधीत्रयायास्पदानङ्गगः सिताच्छुक्राद्धर्मसुखधीत्रयायास्प-
दानङ्गगेषु नवमचतुर्थपञ्चममृतीयैकादशदशमसप्तमेषु शुभः ६४१५३१११०७
तथा च सत्यः । “षष्ठैकादशसप्तममृतीयदशमादिसंस्थितश्चन्द्रः । स्वादिष्टः
६१११७३१०१ सौरस्य तु सहजारिसुतायसंस्थितश्च शुभः ३६१५११ । रिपु-
निधनसहजसप्तमदशमैकादशसंस्थितः सूर्यात् ६१८३७१०११ लग्नात्तृतीयदश-
मारिताभसंस्थितः शुभश्चन्द्रः ३१०६११ । भ्रातृसुतकर्मधनलाभधर्मरिपु-
राशिगः कुजादिष्टः ३५११०२१११६६ जीवात्तृतीयषष्ठद्विनवमसुतवर्जितेष्विष्टः

३।६।२ ६।५ । एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १२।११।८।१।४।७।१० । प्रथमद्वितीयषष्ठाष्टमांत्यवर्ज्येषु भार्गवादिष्टः १।२।६।८।१२। एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि ३।४।५।७। ६।१०।११ । षष्ठ्यधनपञ्चमनवमपरिचमवर्ज्येषु बुधात्प्रशस्तश्च ६।२।५ ६।१ । एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।३।४।७। ८।१०।११ । तथा च सूक्ष्मजातके । “शश्युपचयेषु लग्नात्साद्यमुनिः स्वात्कुजात्सनवधीस्थः । सूर्यात्साष्टमरगक्षिपडायमुतेषु सूर्यमुतात् ॥ ज्ञात्केन्द्रत्रिसुतायाष्टमगो गुरोर्व्ययभवाष्टकेन्द्रेषु । त्रिचतुःसुतनवदशसप्तमायगश्चन्द्रमाः शुभः शुक्रात् ॥” इति चन्द्राष्टकवर्गः ॥ २ ॥

भाषा—लग्न से ६।३।१०।११। इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है । मङ्गल से ६।३।१०।११।२।५।९ इन स्थानों में शुभ होता है । अपने अधिष्ठित स्थान से ३।६।१०।११।७।१ इनमें, सूर्य से ६।३।१०।११।८।७ में, क्षनि से ६।३।११।५ में, बुध से ५।३।८।१।४।७।१० में, गुरु से १२।११।८।१।४।७।१० इन स्थानों में । और शुक्र से ९।४।५।३।११।१०।७ इन स्थानों में चन्द्रमा शुभ होता है । उक्त स्थानों से भिन्न स्थानों में अशुभ फल होता है ॥२॥

अथ भौमाष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वक्रस्तूपचयेष्विनात्सतनयेष्वाद्याधिकेषूदया-

चन्द्रादिग्विफलेषु केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः स्वाच्छुभः ।

धर्मायाष्टमकेन्द्रगोऽर्कतनयाज्ज्ञात्षट्त्रिधीलाभगः

शुक्रात्षड्व्ययलाभमृत्युषु गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु ॥ ३ ॥

वक्रस्तूपचयेष्विनादिति ॥ वक्रोऽगारकः इनादादित्यादुपचयेषु त्रिषडेकादशदशमेषु सतनयेषु पञ्चमस्थानसहितेषु शुभः ३।६।११।१०।५ । आद्याधिके-पूदयाद्वक्रः । उदयाह्नगनादेष्ट्वेवोपचयेष्वाद्याधिकेषु प्रथमस्थानयुक्तेषु शुभः ३।६।११।१०।१ । चन्द्रादिग्विफलेषु चन्द्रस्थानादेष्ट्वेवोपचयेषु दिग्विफलेषु दशमस्थानवर्जितेषु तेन दशमस्थानेन शुभं नाप्यशुभं फलं करोतीत्यर्थः । ३।६।११ एतेषु शुभः । केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः स्वाच्छुभः स्वादात्मीयस्थानात्केन्द्रनिधनप्राप्त्यर्थगः केन्द्राष्टमैकादशद्वितीयगः शुभः १।४।७।१०। ८।११।२ । धर्मायाष्टमकेन्द्रगोऽर्कतनयात् सौराद्धर्मायाष्टमकेन्द्रगः नवमैकादशाष्टमकेन्द्रगतः शुभः ६।११।८।१।४।७।१० । ज्ञात्षट्त्रिधीलाभगः ज्ञाद्विषात्षट्त्रिधीलाभगः षष्ठ्यतीतपञ्चमैकादशगतः शुभः ६।३।५।११ । शुक्रात् षड्व्ययलाभमृत्युषु शुक्रस्थानात् षष्ठ्यादशैकादशाष्टमेषु शुभः ६।१२।११।८ । गुरोः कर्मान्त्यलाभारिषु गुरोः जीवादशमद्वादशैकादशषष्ठेषु शुभः १०।१२।११।६ । तथा च सत्यः । “द्वादशपञ्चमनवमवृत्तीयषष्ठान्विना कुजस्तिवष्टः ।” स्वस्था-

नात् १२।५।६।३।६ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।४।७।१०।११।२। सौरस्य तु नवमाभ्याधिकेषु अनर्थेषु एष्वेव द्वितीयस्थानं विना नवमाभ्याधिकेषु १।१।८।६।१।४।१०। भौमस्तृतीयपञ्चम-दशमैकादशरिपुस्थितः सूर्यात् । इष्टः ५।१०।११।६ चन्द्रान्मध्यमदशमषष्ठसह-जलाभेषु १।०।३।६।११ दशमैकादशपञ्चमस्तृतीयगः कुजो भूमिजः पूजितो गुरुस्था-नात् १।०।११।६।१२ । पञ्चैकादशपञ्चमस्तृतीयगः शुभः सौम्यात् ६।११।५।३ अन्त्यायाष्टमपष्ठगः कुजः पूजितः शुक्रात् १।२।११।८।६ । प्रथमैकादशदशरिपु-सहजोपगतश्च होरायाः १।११।१०।६।३ तथा च स्वल्पजातके । “भौमः स्वादा-यस्वाष्टकेन्द्रगस्तृतीयपट्सुतेषु बुधात् । जीवाहशायशत्रुव्यये विनादुपचयसुतेषु ॥ उदयः दुर्गचयतनुषु त्रिपडायेष्विदुतः समो दशमः । चन्द्रस्थानादुपचयेषु दशमवर्जितेषु शुभः ॥ दशमे शुभोऽपि न भवति । ३।६।११ भृगुर्तोऽत्यष्ट-ष्टायेषु १२।६।८।११ । अस्तितात्केन्द्रायनवदसुषु १।४।७।१०।११।६।८ । इति भौमः षट्कवर्गः ॥ ३ ॥

भाषा—मंगल, सूर्य से ३।६।११।१०।५ स्थानों में शुभ होता है । लग्न से ३।६।१०।११।१ स्थानों में । चन्द्रमा से ३।६।११ में, अपने अधिष्ठित स्थान से १।४।७।१०।८।११।२ में, बनि से ९।११।८।१।४।७।१० में, बुध से ६।३।५।११ में, शुक्र से ६।१२।११।८ में और गुरु से १।०।१२।११।६ स्थानों में शुभ है । शेष स्थानों में अशुभ है ॥ ३ ॥

अथ बुधस्याष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

द्वयाद्यायाष्टतपःसुखेषु भृगुजात्सन्ध्यात्मजेष्विन्दुजः

साज्ञास्तेषु यमारयोर्व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगो वाक्पतेः ।

धर्मायारिसुतव्ययेषु सवितुः स्वात्साद्यकर्मत्रिगः

पट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु हिमगोः साद्येषु लग्नाच्छुभः ॥ ४ ॥

द्वयाद्यायाष्टतप इति ॥ इन्दुजो बुधः भृगुजाच्छुक्रात् द्वयाद्यायाष्टतपः-सुखेषु द्वितीयप्रथमैकादशाष्टमनवमचतुर्थेषु तृतीयपञ्चमशुक्लेषु शुभः २।१।११।८।६।४।३।५ । साज्ञास्तेषु यमारयोः एष्वेव द्वयाद्यायाष्टतपःसुखेषु साज्ञास्तेषु दशमसप्तमसहितेषु यमारयोः शनैश्चराङ्गारकयोः यमात् २।१।११।८।६।४।१०।७ आराच्च शुभः २।१।११।८।६।४।१०।७ । व्ययरिपुप्राप्त्यष्टगो वाक्पतेः । वाक्पतेः जीवात् द्वादशषष्ठैकादशाष्टमगतः शुभः १।२।६।११।८ । धर्मायारिसुतव्ययेषु सवितुः सूर्यान्नवमैकादशषष्ठपञ्चमद्वादशेषु शुभः ६।११।६।५।१२। स्वात्साद्य-कर्मत्रिगः । स्वादात्मीयस्थानादेष्वेव धर्मादिषु स्थानेषु साद्यकर्मत्रिकेषु प्रथम-दशमस्तृतीयसहितेषु गतः शुभः ६।११।६।५।१२।१।१०।४। षट्स्वायाष्टसुखास्पदेषु हिमगोश्चन्द्रात् षष्ठद्वितीयैकादशाष्टमचतुर्थदशमेषु शुभः ६।२।११।८।४।१०

साद्येव प्रथमस्थानसहितेषु लग्नाच्छुभः ६।२।११।८।१।०।१। तथा च सत्यः ।
 “स्वात्स्थानाच्चरितनयो द्विनोप्रसप्तमचतुर्थनिधनानि हित्वेष्टः २।७।४।८। एतानि
 वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।३।५।६।
 ३।१०।११।१२। सूर्यस्य तु लाभारिसुतान्यनवमस्थः ११।६।५।१२।६। सुतसहज-
 वप्रश्नश्चिन्तितेषु मण्डलेषु बुधस्तिष्ठः । सौरारभ्यां स्थानादाकल्पाच्छास्त्र-
 निबन्धेन ५।३।६।१२ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि
 जातानि १।१।४।२।८।६।१०। लग्नाच्छुक्रो येषु प्रशस्यते तेषु चन्द्रजस्तस्य ।
 येषु स्थानेषु लग्नाच्छुक्रः शुभस्तेष्वेव स्थानेषु शुभस्थानाद्बुधः शुभो भवति ।
 शुक्राष्टवर्गः पठ्यते । लग्नादिष्टः शुक्रो रिपुसप्तमदशमश्चिन्तितानि हित्वा ६।७।
 १०।१२। एतानि स्थानानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि
 जातानि १।२।३।४।५।६।११। एतेषु स्थानेषु शुक्रस्थानाच्छुभो बुधः । अन्त्यो-
 पान्त्याष्टमशत्रुभेषु जीवाद्बुधः श्रेष्ठः १२।११।८।६। दशमस्वलाभषष्ठाष्टमेषु
 चन्द्राद्बुधश्चतुर्थे च १०।२।११।६।८। लग्नाच्चेष्टो घनान्यनवमसुतसहज-
 त्रय्येषु ७।१२।६।५।३ एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि
 जातानि २।६।१०।११।८।४।१। एतेषु लग्नाच्छुभः । तथा च स्वल्पजातके
 “सौम्योऽन्त्यषरनवायामजेष्विना—(१२।६।६।११।५) त्वात्त्रितनु (३।१)
 दशयुतेषु (१०) । चन्द्राद्विरिपुदशायाष्टमुखगतः (२।६।१०।११।८।४।१)
 सादिषु विलग्नान् ॥ प्रथमसुखायद्विनिधनधर्मेषु (१।४।११।२।८।६) सितात्त्रि-
 धीसमेतेषु (३।५) । साशास्मरेषु (१०।७) सौरारयोर्व्ययायरिपुत्रसुषु
 (१२।११।६।८) गुरोः ॥” इति बुधस्याष्टकवर्गः ॥ ४ ॥

भाषा—शुक्र से ३।५।२।१।११।८।४ इन स्थानों में बुध शुभ फल देता है । शनि
 और मंगल से १०।७।२।१।११।८।४ में, गुरु से १२।६।११।८ में, सूर्य से ९।११।६।५।
 १२ में, अपने आश्रित स्थान से १।१०।३।९।११।६।५।१२ में, चन्द्रमा से ६।२।११।८
 ४।१० में और लग्न से १।६।२।११।८।४।१० में बुध शुभ है । अन्य स्थानों में अशुभ
 है ॥ ४ ॥

अथ जीवस्याष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

दिवस्वाद्याष्टमदायबन्धुषु कुजात्स्वात्सत्रिकेष्वाङ्गिराः

सूर्यात्सत्रिनवेषु धीस्वनवदिग्गभाभारिगो भार्गवात् ।

जायायार्थनवात्मजेषु हिमगोर्मन्दात्त्रिषड्धीव्यये

दिग्धीषट्स्वमुखायपूर्वनवगो ज्ञात्सस्मरश्चोदयात् ॥ ५ ॥

दिगिति ॥ दिक्स्वाद्याष्टमदायबन्धुषु कुजादङ्गिरा इति । अङ्गिरा जीवः
 कुजादङ्गारकादशमद्वितीयप्रथमाष्टमसप्तमैकादशचतुर्थेषु शुभः १०।२।१।८।७।
 ११।४। स्वात्सत्रिकेष्वाङ्गिराः स्वादात्मीयस्थानादङ्गिराः गुरुः पूर्वोक्तेषु दिक्स्वा-
 द्यादिषु सत्रिकेषु तृतीयस्थानसहितेषु शुभः । १०।२।१।८।७।११।४।३। सूर्यात्स-

त्रिनवेषु गुरुः शुभः । सूर्यादादित्यादेष्ट्वेव स्थानेषु प्रागुक्तेषु सप्तपत्नीयेषु
तृतीयनवमस्थानाधिकेषु शुभः १०२।१।८।११।४।३।६ धीस्वनवदिग्गजाभा-
रिगो भार्गवात् । भार्गवाच्छुक्रात्पञ्चमद्वितीयनवमदशमैकादशषष्ठेषु शुभः
१०३।६।१०।११।६। जायार्थनवमात्मजेषु हिमगोः । हिमगोश्चन्द्रात्सप्तमैकादशद्वितीय-
नवमपंचमेषु शुभः ७।११।२।६।५ मन्दात्त्रिषड्वीच्यये मन्दात्सौरात्तृतीयषष्ठ-
पञ्चमद्वादशेषु शुभः ३।६।५।१२। दिग्घोषट्स्वसुखायपूर्वनवगो ज्ञाद्बुधाद्दश-
मपञ्चमपष्टद्वितीयचतुर्थैकादशप्रथमनवमेषु शुभः १०५।६।२।४।११।१।६। सस्म-
रश्चाद्यात् । उदयाल्लभादेष्ट्वेव स्थानेषु सस्मरेषु सप्तमस्थानसहितेषु शुभः
१०५।६।२।४।११।१।६।७ तथा च सत्यः । “येषु बुधस्य शशाङ्कतेषु गुरुः
पुष्कलः स्वकात्स्थानात् ।” चन्द्राष्टकवर्गः पठ्यते । षष्ठधननवमपञ्चमवर्ज्येषु
बुधात्प्रशस्तश्च ६।२।६।१२। एतानि स्थानानि वर्जयित्वा जातानि १।३।४।५।७।
८।१०।११। अत्र पञ्चमद्वितीययोः स्थानयोः वराहमिहिरेण सह भेदः । अत्र च
वराहमिहिरेण यवनेश्वरमतमङ्गीकृत्य द्वितीयस्थानस्य शुभत्वमङ्गीकृतम् । तथा
च यवनेश्वरः । “स्वस्थानतः स्थानसुतार्थमानप्राप्तिं द्वितीये च गुरुः करोति ।”
एवं द्वितीये च शुभो विवादैन्याध्वगदस्त्रिकोणे तस्मात्पञ्चमे न शुभः । एष्ट्वे-
वार्कादिष्टो नवमाभ्यधिकेषु भवनेषु १।३।४।५।७।८।१०।११ अत्रापि पञ्चम-
द्वितीययोः वराहमिहिरेण यवनेश्वरमतमङ्गीकृतम् । तथा च यवनेश्वरः । “स्थाने
रवेर्बुद्धिसुहृद्वनामि करोति जीवो धनदो द्वितीये ।” एवं द्वितीये शुभत्वाद्वरा-
हमिहिरेणाङ्गीकृतम् । रुद्राजपोडाध्वकृदिद्रसूरिः स्यात्पञ्चमे तस्मात्पञ्चमे न
शुभः । आत्मसदृशेषु सहजभवनं विना कुजाच्च गुरुरिष्टः १।४।५।७।१०।११
अत्रापि पञ्चमद्वितीययोः वराहमिहिरेण सह भेदः । अत्रापि यवनेश्वरः । “गुरुः
कुजस्थानगतोऽरिहंता द्वितीयगस्तु ह्यतिहर्षदाता ।” तस्माद्वराहमिहिरेण द्वितीय-
स्थानमङ्गीकृतम् । जामित्रगो व्याध्यरिशोककारी । एवं सप्तमस्थानं नाङ्गीकृतम् ।
द्वादशरिपुपञ्चमतृतीयसंज्ञे शुभः सौरात् १२।६।५।३ दशमैकादशनवमद्वितीय-
षट्पञ्चमेषु भृगोः । इष्टः (१०।११।६।२।६।५) चन्द्राज्जामित्रनवमसुतलाभको-
शर्त्तेषु गुरुः शुभः (७।६।५।११।२) प्रथमद्वितीयपञ्चमचतुर्थधर्मारिताभदश-
मस्थः सौम्याद्गुरुरिष्टः (१।२।५।४।६।११।१०) । जीवो लग्नादेवमिष्टः सजा-
मित्रः १।२।५।४।६।११।१०।७ । तथा च स्वल्पजातके । “जीवो भौमाद्बुद्ध्या-
याष्टकेन्द्रगोऽ- (२।११।८।१।४।७।१०) कर्तसधर्मसहजेषु २।११।८।१।४।७।१०।६।३
स्वात्सत्रिकेषु २।११।८।१।४।७।१०।३ शुक्रान्नवदशलाभस्वधीरिपुषु ६।१०।११।२
५।६ ॥ शशिनः स्मरत्रिकोणार्थलाभग- (७।६।५।२।११) — क्षिरिपुधीच्ययेषु
यमात् (३।६।५।१२) नवदिकसुखाद्यधीस्वायशत्रुषु ज्ञात्- (६।१०।४।१।५।२।११।६)
सकामगो लग्नात् ६।१०।४।१।५।२।११।६।७ ॥” इति जीवाष्टकवर्गः ॥ ५ ॥

भाषा—बृहस्पति जन्मकुण्डली स्थित—मंगल से १०।२।१।८।७।११।४ में शुभ
होता है । अपने आश्रित स्थान से १०।२।१।८।७।११।४ में, सूर्य से १०।२।१।८।७

११।४।३।१। स्थानों में, शुक्र से ५।२।३।१।०।११।६ में, चन्द्रमा से ७।११।२।१।५ में, शनि से ३।६।५।१।२ में, बुध से १।०।५।६।०।४ ११।१।२ में, लग्न से १।०।१।६।२।४।११ १।९ स्थानों में गुरु शुभ है। दोष स्थानों में अशुभ समझना चाहिये ॥५॥

अथ शुक्रस्याष्टकवर्गः शार्दूलविक्रीडितेनाह—

लग्नादासुतलाभरन्ध्रनवगः सान्त्यः शशाङ्कात्सितः

स्वात्साज्ञेषु सुखत्रिधोनवदशच्छिद्राप्तिगः सूर्यजात् ।

रन्ध्रायव्ययगो रवेर्नवदशप्राप्त्यष्टधोस्थो गुरो-

ज्ञाद्द्वित्र्यायनवारिगः त्रिनवषट्पुत्रायसान्त्यः कुजात् ॥ ६ ॥

लग्नादिति ॥ सितः शुक्रः लग्नादासुतलाभरन्ध्रनवगः शुभः । लग्नात्प्रभृति सुतस्थानं पञ्चमं यावत्तथा लाभरन्ध्रनवगः सितः शुभः । तेषु प्रथमद्वितीय-तृतीयचतुर्थपञ्चमैकादशाष्टनवमेषु लग्नाच्छुक्रः शुभः । (१।२।३।४।५।११।०।६) । सान्त्यः शशाङ्काच्चन्द्रादेव स्थानेषु सान्त्येषु सव्ययेषु द्वादशस्थानाधिकेषु शुभः (१।२।३।४।५।११।०।६।१२) । स्वात्साज्ञेषु स्वात्मीयस्थानादेष्वेव स्थानेषु साज्ञेषु, दशमस्थानाधिकेषु शुभः (१।२।३।४।५।११।०।६।१०) । सुखत्रिधोनव-दशच्छिद्राप्तिगः सूर्यजात् । सौराच्चतुर्थतृतीयपञ्चमनवमदशमाष्टमैकादशेषु शुभः (४।३।४।६।१०।०।११) । रन्ध्रायव्ययगो रवेः । रवेरादित्यादष्टमैकादश-द्वादशेषु शुभः (०।११।१२) । नवदशप्राप्त्यष्टधोस्थो गुरोः । (६।१।०।११।०।५) । ज्ञाद्द्वित्र्यायनवारिगः । ज्ञाद्विधात्पञ्चमवृत्तीयैकादशनवमषष्ठेषु शुभः (५।३।११।६।६) । त्रिनवषट्पुत्रायसान्त्यः कुजात् । कुजाद्भौमात्तृतीयनवमषष्ठपञ्चमै-कादशेषु सान्त्येषु अन्यत्वेन द्वादशेन सहितेषु स्थानेषु शुक्रः शुभः (३।६।६।५।११।१२) । तथा च सत्यः । “स्वस्थानाद्भृगुतनयः षट्सप्तमपञ्चमेतरेष्विष्टः (६।७।१२) ।” एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।२।३।४।५।६।१०।११ । “रिपुसप्तकर्मवर्ज्येषु सितश्चन्द्रात् पुष्कलो नृणाम् ६।७।१० ।” एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि जातानि १।२।३।४।५।६।०।११।१२ । “अन्त्योपान्त्याष्टमगः सूर्यादिष्टस्तु भार्गवः कथितः १२।१।१।० । भौमादन्त्योपान्त्यवृत्तीयनवमसुतशत्रुगश्च १२।१।१।३।६।५।६ ॥ दशमैकादशनिधनत्रिकोणसंस्थो भृगुर्ज्वात् (१०।११।०।५।६) । सौम्यात् सुतधर्मलाभसहजारिसंज्ञेषु (५।६।११।३।६) ॥ लग्नादिष्टः शुक्रो रिपुसप्तम-दशमपञ्चमान् हित्वा (६।५।१०।१२) ” एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराह-मिहिरपठितानि स्थानानि जातानि १।२।३।४।५।६।११ । “आद्यद्वितीयरिपु-सप्तमान्त्यवर्ज्येषु सौराच्च (१।२।६।७।१२) ” एतानि वर्जयित्वा तान्येव वराहमिहिरपठितानि स्थानानि जातानि (३।४।५।६।१०।११) तथा च स्वल्पजातके “शुक्रो लग्नादासुतनवाष्टलाभेषु (१।२।३।४।५।६।०।११) सव्यय-

अन्दात् । स्वात्साक्षे रविसुनात्रिधीसुखामिनवकर्मन्ध्रेषु ॥ वस्वन्त्यायेष्व-
कर्त्तव्यदिग्भाषाष्टयोस्थितो जीवान् । ज्ञात्रिसुतनवायारिष्वायसुतापोक्लिमेपु
कुजात् ॥” इति शुक्राष्टकवर्गः ॥ ६ ॥

भाषा—शुक्र लग्न से १२।३।४।५।११ ८।९ स्थान में शुभ होता है । चन्द्रमा से
१२।३।४।५ ११।८।९।१२ में, अग्ने आश्रित स्थान से १२ ३।४।५।११।८।९।१०
स्थानों में, घनि से ४।३।५।९।१०।८।११ में, रवि से ८।११।१२ में, गुरु से ९।१०।११।
८।९ में, बुध से ५।३।११।६।६ में, और मंगल से ३।३।६।२।११।१२ स्थानों में शुक्र
शुभ होता है । अन्य स्थानों में अशुभ होता है ॥६॥

अथ सौरस्याष्टकवर्गं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मन्दः स्वात्रिसुतायशत्रुषु शुभः साज्ञान्त्यगो भूमिजात्

केन्द्रायाष्टधनेष्विनादुपचयेष्वाद्ये सुखे चोदयात् ।

धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु बुधाच्चन्द्रात्रिषड्भगः

षष्ठायान्त्यगतः सितात्सुरगुरोः प्राप्त्यन्त्यधीशत्रुषु ॥ ७ ॥

मन्दः स्वात्रिसुतायशत्रुषु शुभ इति ॥ मन्दः सौरः स्वादात्मीयस्थाना-
त्तृतीयपञ्चमैकादशषष्ठस्थानेषु शुभः । साज्ञान्त्यगो भूमिजात् । भूमिजाद्वैमा-
देवेष्वेव प्रागुक्तेषु साज्ञान्तेषु गतः दशमद्वादशसहितेषु शुभः ३।५।११।६।१०।१२
केन्द्रायाष्टधनेष्विनात् । इनात्सूर्यात् केन्द्रैकादशाष्टमद्वितीयेषु शुभः (१।४।७।
१०।११।१२) । उपचयेष्वाद्ये सुखे चोदयात् । उदयाल्लग्नान्तृतीयषष्ठदशमै-
कादशप्रथमचतुर्थेषु शुभः (३।६।१०।११।१४) । धर्मायारिदशान्त्यमृत्युषु
बुधात् । बुधाद्वुवस्थानान्तवमैकादशषष्ठदशाष्टमेषु शुभः (६।११।६।१०।८) ।
चन्द्रात्रिषड्भगः । चन्द्रस्थानात्तृतीयषष्ठैकादशेषु शुभः (३।६।११) । षष्ठा-
यान्त्यगतः सितात् । शुक्रस्थानात् षष्ठद्वादशैकादशेषु शुभः (६।१२।११) ।
सुरगुरोः प्राप्त्यन्त्यधीशत्रुषु सुरगुरोः जीवादेकादशद्वादशपञ्चमषष्ठेषु शुभः
(११।१२।५।६) तथा च सत्यः । “एकादशपञ्चमषष्ठगोऽर्कजः स्वाच्छुभस्तृतीये
च (११।५।६।३) । स्थानान्निशाकरस्य तु पञ्चमवर्ज्यैष्वथैवैव (११।३।६) ॥
येष्वात्मनो रविस्तेषु भास्करस्तादृशो रविस्थानात् ॥” आदित्याष्टकवर्गः पठ्यते ।
“स्वात्स्थानाद्विसकरस्तृतीयषष्ठान्त्यभत्रिकोणानि । हित्वेष्टः (३।६।१२।५।६)”
एतानि हित्वा जातानि १।२।४।६।१०।११।८ । अत्र वराहमिहिरादभ्यधिकं नवमं
स्थानं तच्च यवनेश्वरविरोधित्वाद्गराहमिहिरेण नोक्तम् । तथा च यवनेश्वरः
“पापप्रवृत्तिं नवमे विधत्ते” इति जीवादिष्टः । षट्पञ्चमपञ्चमैकादशस्थश्च
(६।५।१२।११) ‘आतृसुतविजयलाभान्त्यकर्मगः पुष्कलो नृणाम् । भौमस्था-
नात्सौरिः (३।५।६।११।१२।१०) षष्ठान्त्योपाप्त्यगः शुक्रात् (६।१२।११) ॥”
दशमैकादशषष्ठाष्टमान्त्यनवमोऽर्कजः सौम्यात् (१०।११।६।८।१२।६) । स्था-

नादिष्टो लमाच्छुभस्तु लग्नाद्यथा सूर्यः ॥” आदित्याष्टकवर्गः पठ्यते ।
 “दशमैकादशपञ्चमवृत्तीयगो लग्नगश्चतुर्थगश्च लग्नात् (१०।११।१।१।४) ।
 तथा च स्वल्पजातके । “स्वात्सौरस्त्रिसुतायारिगः (३।२।११।६) कुजादन्त्य-
 कर्मसहिनेषु (३।२।११।६।१२।१०) । स्वायाष्टकेन्द्रगोर्काऽ-(२।११।१।१।४।७।
 १०)-च्छुक्रापठान्त्यलाभेषु (६।१२।११) ॥ त्रिपढायगः शशाङ्का-(३।६।११)-
 दुदयात्ससुखाद्यकर्मगोऽ-(३।६।११।४।१।१०) थ गुरोः । सुतषड्व्ययायगो
 (२।६।१२।११) ज्ञाद्व्ययायरिपुदिङ्मयाष्टस्थः (१२।११।६।१०।६।८) ॥” इति
 सौरशष्टकवर्गः ॥ ७ ॥

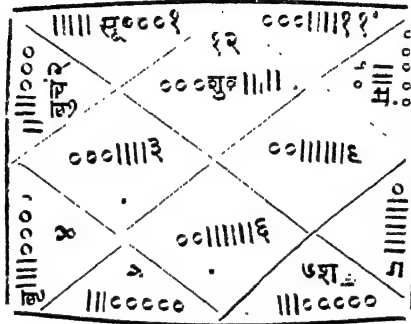
भापा—शनि अपने आश्रित स्थान से ३५।११।६ स्थान में शुभ होता है । मंगल से ३५।११।६।१०।१२ में, सूर्य से १।४।७।१०।११।८।१२ में, लग्न से ३६।१०।११।१।४ में, बुध से ९।१।५।१०।१२।८ में, चन्द्रमा से ३६।११ में, शुक से ६।११।१२ में और वृहस्पति से ११।१२।५।६ स्थानों में शनि शुभ होता है और शेष स्थानों में अशुभदायक होता है ॥७॥

अथाष्टकवर्गफलनिरूपणार्थं मालिन्याह—

इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषादधिकफलविपाकं जन्मभात्तत्र दद्युः ।
उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्टमिष्टं त्वपचयगृहनीचारातिगैर्नेष्टसम्पत् ॥८॥
इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातकेऽष्टकवर्गाध्यायो नवमः ॥९॥

इति निगदितमिति ॥ इत्यनेनोक्तेन प्रकारेण यन्निगदितमुक्तं तदिष्टं
नेष्टमन्यत् । यदन्यं न गदितं तत्सर्वमनिष्टमशोभनम् । एतदुक्तं भवति ।
“स्वादर्कः प्रथमाऽवधुनिधन” इत्यनेन पाठेन यान्युक्तानि स्थानानि तेषां श्रेष्ठं
फलम् । विशेषादधिकफलविपाकमेवमिष्टानिष्टयोः फलयोः विशेषात्संशो-
धनादधिकमिष्यते । तत्फलविपाकं भवति एतज्जन्मभात् जन्मकाले यत्र स्थाने
ग्रहाः स्थिताः तस्मात्स्थानाच्छुभाशुभानि फलानि प्रयच्छन्ति, न तथा तत्काला-
क्रान्तराशितः । एतदुक्तं भवति । यानि शुभस्थानान्याचार्येण पठितानि तानि
बिन्दूपलक्षितानि कार्याणि । यान्यशुभानि तानि रेखोपलक्षितानि कार्याणि ।
तदिष्टानिष्टयोः विशेषमन्तरं कृत्वाऽवशिष्टस्य फलस्य पत्तिरिति । यत्र विद्वष्टकं
जातं तत्र शुभफलं संपूर्णम् । यत्र च षड् बिद्वस्तत्र पादोनफलम् । यत्र च
बिन्दुचतुष्टयं तत्रार्द्धं फलम् । यत्र बिन्दू द्वौ तत्र पादफलम् । अशुभफलस्यैवं
रेखाभिः कल्पना कार्या । तत्र चानिमिषपरमांशके विलग्न इत्यत्र प्रयोगे
जातस्याङ्गारकस्याष्टकवर्ग उदाहृते । तत्राचार्यपठितानि स्थानानि बिन्दूप-
लक्षितानि कार्याणि । अपठितानि अशुभानि स्थानानि रेखोपलक्षि-
तानि कार्याणि । तद्यथा ग्रहसंस्था । मीनलग्नगतः शुक्रः मेघे । द्वितीयस्थानस्थो-
ऽर्कः । तृतीये वृषे चन्द्रबुधौ । पञ्चमस्थाने कर्कटस्यो जीवः । अष्टमे तुलायां
शनैश्चरः । एकादशे मकरस्यो भीमः अनया ग्रहसंस्थया प्रदर्शयते न्यासः ।

“वक्रन्तूपचयेष्विनात्सतनयेष्वद्याधिकेपूद्याइन्द्रादिग्विफलेषु केन्द्रनिधनप्रा-
प्त्यर्थगः स्वाच्छुभः । धर्माष्टमकेन्द्रगोऽर्कतनयाच्चात्पटत्रिषीलाभगः शुक्रात्
पङ्क्ययलाभमृथुषु गुरोः कर्माचलाभारिषु ॥” अष्टकुण्डलिका-न्यासः । अथ
शुभाशुभफलविशेषः क्रियते । यत्र संप रेखापञ्चकं, बिन्दुत्रयं च जातम् । रेखात्रयं



बिन्दुत्रयं चापास्य द्वे रेखे जाते । तस्मादेवंविधे योगे जातस्य सदैव चारवशान्मेव-
स्थोऽङ्गारकोऽष्टभागद्वयेनाशुभः । वृषे रेखापञ्चकं बिन्दुत्रयं जातम् । रेखात्रयं बिन्दु-
त्रयं चापास्य द्वे रेखे जाते । तस्माद्वृषस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेनाशुभो भवति ।
मिथुने रेखापञ्चकं बिन्दुत्रयं चापास्य द्वे रेखे जाते । तस्मान्मिथुनस्थो भौमोऽष्ट-
भागद्वयेनाशुभो भवति । कर्कटे बिन्दुचतुष्टयं रेखाचतुष्टयं च जातम् तत्र न
किञ्चिदवशिष्यते । तेन तत्स्थानं न शुभं नाप्यशुभम् । समत्वान्मध्यमः । सिंहे
बिन्दुपञ्चकं, रेखात्रयं च जातम् । रेखात्रयं बिन्दुत्रयं चापास्य बिन्दुद्वयं जातम् ।
तस्मात्तस्य सदैव सिंहस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेन शुभो भवति । कन्यायां रेखा-
षट्कं बिन्दुद्वयं च जातम् । बिन्दुद्वयं रेखाद्वयं चापास्य रेखाचतुष्टयं जातम् ।
तस्मात्कन्यास्थो भौमोऽष्टभागचतुष्टयेनाशुभः । तुलायां रेखात्रयं बिन्दुपञ्चकं
च जातम् । तत्र रेखात्रयबिन्दुत्रयं चापास्य बिन्दुद्वयं जातम् । तेन तुलास्थो
भौमोऽष्टभागद्वयेन सदैव शुभः । वृश्चिके रेखासप्तकं, एको बिन्दुर्जातस्तत्र
बिन्दुं रेखाञ्चापास्य रेखाषट्कं जातम् । तस्माद्वृश्चिकस्थो भौमोऽष्टभाग-
षट्केनाशुभः । धनुषि रेखाषट्कं बिन्दुद्वयं च जातम् । तत्र रेखाद्वयं बिन्दुद्वयं
चापास्य रेखाचतुष्टयं च जातम् । एवमष्टचतुष्टयेन धन्विस्थो भौमो सदै-
वाशुभः । मकरे रेखात्रयं बिन्दुपञ्चकं च जातम् । तत्र रेखात्रयं बिन्दुत्रयं
चापास्य बिन्दुद्वयं जातम् । तेन मकरस्थो भौमोऽष्टभागद्वयेन शुभः । कुम्भे
रेखाचतुष्टयं बिन्दुत्रयं च जातम् । अत्र चन्द्रस्थानात् दशमस्थानं भौमस्य
समत्वादष्टमो बिन्दुर्न जातस्तस्माद्रेखात्रयं बिन्दुत्रयं चापास्य एका रेखा
जाता । तस्मात्कुम्भस्थोऽष्टमभागेनैकेनाशुभः । मीने रेखापञ्चकं बिन्दुत्रयं
च जातम् । रेखात्रयं बिन्दुत्रयं चापास्य रेखाद्वयं च जातम् । तस्मान्मीनस्थो

भौमोऽष्टभागद्वयेनाशुभः । आस्यतो शुद्धौ स्थापना । एवं शुभाशुभान्येको-
 कृत्याष्टौ फलानि भवन्ति तेषां संशोधनं कृत्वा यद्वशिश्यते तद्विशेषम् । यत्र
 रेखाचतुष्टयं विन्दुचतुष्टयं च भवति तत्र समन्वान्मध्यस्यो ग्रहो भवति ।
 यत्र रेखाष्टकं तत्रातीवाशुभः । यत्र विन्दुष्टकं तत्रातीव शुभः । एवं जन्मका-
 लाक्रान्तराशिवशेन सर्वग्रहाणामष्टकवर्गः कार्यः । तथा च बादरायणः ।
 “एकेन यः शुभः स्यात्पङ्क्तिभिः स्थानैः स पापदो भवति । यस्तु चतुभिर्नेष्टः
 सर्वफले कल्पनाप्येवम् ॥” ननु पूर्वमुक्तम्, “एकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोधे
 नाशं वदेष्वधिकं परिपच्यते तत्” । इति निगदितमिष्टं नेष्टमन्यद्विशेषात्”
 इति पुनरुक्तम् । अष्टवर्गं विना यदुक्तमेकग्रहस्य सदृशे फलयोर्विरोध इति तत्र
 सदृशयोः फलयोर्विरोधे नाशो विज्ञेयः । यथा स एव ग्रहः कयापि युक्त्या
 सुवर्णदो भवति स एव युक्त्यन्तरेण सुवर्णापहारी तदा न सुवर्णदो भवति ।
 न सुवर्णापहारी चेति । यदधिकं परिपच्यते तत् तत्रापि यदि कारणद्वयेन
 सुवर्णापहारी भवति । कारणेनैकेन सुवर्णदस्तथापि सुवर्णापहारी भवति ।
 न सुवर्णदः । अथ कारणद्वयेन सुवर्णदः कारणेनैकेन सुवर्णापहारी तथापि
 कारणद्वयस्याधिक्यात्सुवर्णद एव । एवं तत्र सदृशे फलद्वयोर्विरोधे नाशं वदे-
 न्नासदृशयोः । इह तु पुनः सदृशोऽपि फलद्वयोर्विरोधे नाश एवेति । तद्यथा ।
 बादरायणयवनेश्वरादिभिरष्टकवर्गोऽभिहितम् । अस्य ग्रहस्य स्थानादयं ग्रहः
 स्वस्मिन्स्थानं तिष्ठमान इमानि शुभान्यशुभानि फलानि प्रयच्छतीति । तत्रा-
 सदृशान्यपि यदि तानि फलानि भवन्ति तथापि तेषां शुभाशुभविरोधादेव
 नाशं वदेत् । विशेषादधिकफलविपाकं जन्मभात्तत्र दृशरिति । यथा कश्चिद्ग्रहः
 केनचित्कारणेन सुवर्णदो भवत्यग्रेण रूप्यापहारी च तथाप्यसदृशयोरपि
 फलयोर्विरोधे दानहरणात्मके न शुभो नाप्यशुभ इति कल्पनीयः । एवं स्थाना-
 ष्टकाद्यत्र स्थाने बहुभिः शुभो भवत्यल्पेनाशुभः तत्र शुभाशुभफलविशेषं
 कृत्वा शुभमेकं कल्पनीयम् । अनेनैव प्रकारेण स्थानसंज्ञामात्रेण स्थानशुभा-
 शुभत्वमेवोक्तं न पृथक्फलनिर्देशो यवनेश्वरादिवत् यद्येवं चाष्टवर्गं प्रधानं
 तत्संहितायां गोचरफले चन्द्रस्थानात् किमिति पृथक्फलनिर्देशो वराहमिहिरेण
 कृतः । जन्मन्यायासदोऽर्क इत्येवमादि । अत्रोच्यते । तस्मादष्टकवर्गफलविशे-
 षाद्यदातिरिच्यते तदेव वक्तव्यमिति । तदेव पूर्वं प्रत्ययनार्थमतिप्रसिद्धत्वाद्-
 गोचरस्यान्यमतमेवाङ्गीकृतवोक्तम् । तथा च यात्रायां तेनैवोक्तम् । “यस्य गोचर-
 फलप्रमाणता तस्य वैधक्यमिष्यते न वा । प्रायशो न बहुसम्मतं त्विदं स्थूल-
 मार्गफलदो हि गोचरः ॥” इति । यवनेश्वरेणापि पृथक्पृथक्फलनिर्देशं कृत्वा
 तदेवाष्टकवर्गमङ्गीकृतम् । तथा च तद्वाक्यम् । “फलाष्टवर्गे शुभपापलक्षे समान-
 कल्पावफलौ प्रदिष्टौ । ज्यायांस्तु यस्तस्य फलं विधाय यात्राविधाने च समुद्भवे
 च ॥” पृथक्फलनिर्देशं कृत्वा बादरायणोऽप्यष्टकवर्गमेवाह । “कष्टश्रेष्ठे तुल्य-

२०२ये फले चेत्यतां नाशः फलयोस्तत्र वाच्यः (१) । वाच्या पक्षिर्योऽतिरि-
क्तस्तयोः स्यात्स्थाने स्थाने कल्पनेयं प्रदिष्टा ॥” उपचयगृहमित्रस्वोच्चगैः पुष्ट-
मिष्टमिति । लग्नाच्चन्द्राद्वा यान्युपचयस्थानानि तथा मित्रक्षेत्राणि स्वोच्चं च
एतानि शुभस्थानानि शुभस्थानोपलक्षणानि । उल्लक्षणत्वात्स्वक्षेत्रं मूलत्रिकोणं
च गृह्यते । तत्र लग्नाच्चन्द्राद्वोपचयगतो ग्रहः स्वक्षेत्रस्थो मूलत्रिकोणस्थश्च तदा
शुभं फलं प्रयच्छति । अत्र च श्रीदेवकीर्तिः । “लग्नादुपचयसंस्थश्चन्द्राद्वा स्वगृह-
मूलतुङ्गस्थः । मित्रक्षेत्रगतो वा फलमतिशयितः शुभं दद्यात् ॥” लग्नाच्चन्द्राद्वा
यान्युपचयस्थानानि तथा शत्रुक्षेत्रनोचानि च तान्यशुभानि । तेषु स्थितो ग्रहो
यदा शुभफलं प्रयच्छति तदप्यतिनिकृष्टमिति । अर्थादेव शुभगृहस्थः शुभं
फलं प्रयच्छति, अगुभगृहस्थश्च शुभमल्पम् । किमेवंविधेषु स्थानेषु ग्रहस्य जन्म-
काले स्थितिरन्वेष्ट्या किं वा चारवशात्फलकल्पनेति । उच्यते । जन्मकालि-
लिकमेव तत् । तत्रान्तर्दर्शनतः । तथा च देवकीर्तिः । “उपचयराशौ नीचे
शत्रुक्षेत्रे च जन्मकाले स्यात् । यस्तु स दद्यात्पापं फलमतिशयितो यथा-
कालम् ॥” यवनेश्वरश्च । “यस्तु स्वनीचारिगृहोपगोऽन्यजितोऽरिदृष्टोऽल्पतनु-
र्विवर्णः । सूतावभूजन्मपतौ बलस्थे स जन्मगो बन्धकलो निरुक्तः ॥ ईषत्सुहृ-
त्स्वोच्चभृदिष्टदृष्टो मित्रर्क्षजन्मोपचये बलीयान् । यो जातकेऽभूत्स तु जन्मसंस्थो
दद्याच्छुभं न त्वशुभोऽप्यनिष्टम् ॥” तथा च सत्यः । “जन्मन्युपचयभवने
एको ग्रहो ह्युपचयेषु पुष्टफलः । अपचयभवनोपेताः पीडास्थाने ह्युपचयाय ॥”
फलकाले तु पुनश्चन्द्रवर्ज्यमन्यो ग्रहो बलवानेव शुभमशुभं वा पुष्टं फलं प्रय-
च्छतीति । चन्द्रः शुभोऽपि बलरहितः पापफलो भवति । अत्र च श्रीदेवकीर्तिः ।
“पुष्टमपुष्टं स्वकलं दद्यत्सबलो बलेन हीनस्तु । ग्रह इव सर्वश्चन्द्रः कष्टफलो
बलविहीनश्च ॥” तथा च सत्यः । “स्नेहवपुरंशुबलैर्विवर्जितः शत्रुभेऽरिसिंहः ।
ग्रह इव फलमनुदद्याच्चन्द्रस्तु यदीदृशः कष्टः ॥” वराहमिहिरोऽप्यबलानां
ग्रहाणां फलदाने असमर्थानां यात्रायामाह । “नीचस्था ग्रहविजिता व्यभिभूता
विरश्मयो ह्रस्वाः । भुजगा इव मन्त्रहता भवन्ति कार्याक्षमा लग्ने ॥” यात्रायां
यवनेश्वरोऽपि । “स्ववर्गसंस्था बलिनो विशेषाद्ग्रहा यथोद्दिष्टफलप्रदाः स्युः ।
नीचे जिताश्चारिगृहेऽल्पवीर्यास्ते घनं त्यनिष्टेष्टफलप्रवृत्तिम् ॥” तत्र शास्त्रेषु

(१) इह द्वितीयपदे पञ्चमाक्षरस्य ह्रस्वत्वदोषात्—

“स्यातां नाशस्तत्र वाच्यस्तयोहि” इति पाठः साधुः ।

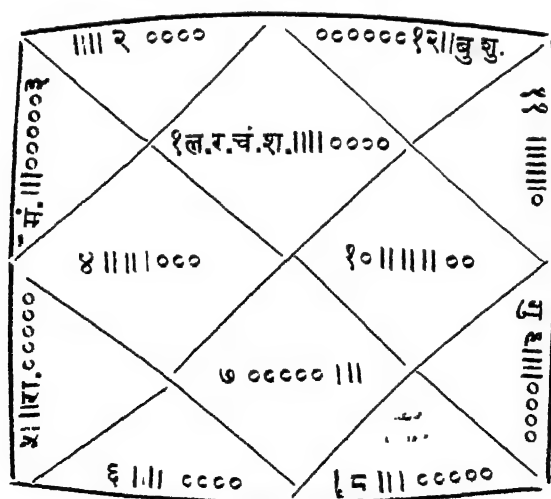
यानि वाक्यान्पुष्पादिसंस्थानां शुभाशुभफलप्रवृत्तिप्रदर्शकानि नीचारिस्थानानाम-
शुभफलप्रदर्शकानि तानि जन्मसमये ज्ञेयानि । यानि च शुभानामशुभानां वा
फलानि ग्रहवशेनैव पुष्टिप्रदर्शकानि तानि चारवशात्फलदानकाले ग्रहस्य
ज्ञेयानीति ॥ ८ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां वृहज्जातकविधुतादष्टकवर्गाध्यायोः

नवमः समाप्तः ॥ ६ ॥

भाषा—इस प्रकार जिस ग्रह के लिये जहाँ जहाँ से जो स्थान कहे गये हैं वे
स्थान शुभ और उनसे भिन्न स्थान अशुभ समझना चाहिये । इस प्रकार जन्मकुण्डली
में जो ग्रह जहाँ हो वहाँ से शुभ और अशुभ स्थान में चिह्न लगाकर शुभ और अशुभ
दोनों में जो अधिक हो वही फल उस स्थान में ग्रह चारवश जाने पर देते हैं । यदि
वह स्थान जातक के जन्मराशि से उपचय (३।६।१०।११), अथवा वह अपना उच्च
का गृह, अथवा मित्र का गृह हो तो शुभ फल की वृद्धि होती है और अशुभ फल की
हानि होती है । यदि चारवश नीच, या दशु का गृह हो तो अशुभ फल की वृद्धि और
शुभ फल की हानि समझनी चाहिये ।

उदाहरण—जन्म कुण्डली देखिये । सूर्य मेष में हैं, इसलिये “स्वादर्कः” इत्यादि
श्लोक के अनुसार सूर्य से १।११।४।८।२ १०।९।७ ये स्थान शुभ हैं । इसलिये इनमें
शुभ चिह्न रेखा (।) और अन्य स्थान में अशुभ चिह्न (०) लगायें । फिर चन्द्रमा से



३।६।१०।११ में शुभ चिह्न रेखा, शेष स्थान में अशुभ चिह्न बिन्दु । एवं मङ्गल से
१ २।४।७।८।९।१०।११ इनमें शुभ स्थान रेखा, शेष स्थान में बिन्दु । फिर बुध से
३।५।६।९।१०।११।१२ स्थान में रेखा, शेष स्थान में बिन्दु, गुरु से ६।७।१२।४।८।९।
११ इन शुभ स्थान में रेखा, शेष में बिन्दु, शुक से ६।७।१२ इन शुभ स्थान में रेखा,

शेष में बिन्दु । कृति से १।२।४।७।८।९।१०।११ इन शुभ स्थान में रेखा और शेष स्थान में बिन्दु । लग्न से ३।४।६।१०।११।१२ इनमें शुभ चिह्न रेखा और शेष स्थान में बिन्दु चिह्न करने से सूर्याष्टकवर्ग चक्र बन गया । यहाँ प्रत्येक स्थान में रेखा और बिन्दु दोनों मिलकर आठ आठ चिह्न हैं । इनमें शुभबोधक रेखा और अशुभबोधक बिन्दु चिह्न है । जिनमें अधिक रेखा पड़ी है वे शुभ-फलद हैं । जिनमें अधिक बिन्दु पड़े हैं वे अशुभ फल स्थान हुए । जैसे यहाँ—सूर्य के अष्टवर्ग में रेखाबिन्दु लगाने से मेष और वृष में ४ रेखा और चार बिन्दु पड़े हैं इसलिये शुभ और अशुभ दोनों के अन्तर सून्य होने के कारण दोनों स्थान मध्यम हुए अर्थात् उसमें जब चारवश सूर्य जायगा तो मध्यम फल देगा या शुभ और अशुभ कुछ भी फल नहीं देगा । मिथुन में ५ बिन्दु और ३ रेखा है इसलिये दोनों के अन्तर करने से २ बिन्दु (अशुभ) बचते हैं । इसलिये जब मिथुन में जायगा तब तब अष्टमांश अर्थात् १ चरण अशुभ फल मात्र देगा । एवं कर्क में ५ रेखा और तीन बिन्दु है, दोनों के अन्तर करने से २ रेखा (शुभ) बचती है, इसलिये चारवश जब जब सूर्य कर्क में जायगा तब तब शुभ फल-दायक होगा । किन्तु मिथुन जन्म राशि से उपचय स्थान है इसलिये अशुभ फल होने पर भी अल्प अशुभ होगा । और कर्क अपचय स्थान है इसलिये वहाँ शुभप्रद होने पर भी शुभ फल में अल्पता होगी इसी प्रकार अष्टम स्थान में अधिक बिन्दु (अशुभ) हैं और अपचय स्थान है अतः उस राशि में सूर्य के जाने पर अधिक अशुभ फल होगा । एवं मकर और कुम्भ में अधिक शुभ है, ये दोनों उपचय स्थान हैं इसलिये इन दोनों में जब जब सूर्य जायगा तब तब पूर्ण रूप से शुभ फल देगा । इसी प्रकार सब ग्रहों के अष्टवर्ग चक्र बना कर देखना । जिस स्थान में अधिक शुभ चिह्न पड़े उस स्थान में चारवश जब जब ग्रह जायगा तब तब शुभ तथा जब जब अधिक अशुभ चिह्न वाले राशि में जायगा तब तब वह ग्रह अशुभ फलदायक होगा ॥ ८ ॥

विशेष अर्थ—कोई शुभ स्थान में बिन्दु और शुभ स्थान में ही रेखा चिह्न करके अष्टवर्ग चक्र बनाते हैं । यहाँ अधिक बिन्दु से ही शुभ फल समझना चाहिये ।

आचार्य वराहमिहिर ने ग्रहों के गोचर फल ज्ञानार्थ लग्न सहित-अष्टक में केवल ग्रहों के ही अष्टकवर्ग शुभाशुभ स्थान को कहा है । महर्षि पराशर आदि ने लग्न का भी अष्टकवर्ग शुभाशुभ स्थान कहे हैं । इसलिये आयु आदि विचार में उपयुक्त होने के कारण मैं ज्योतिष प्रेमियों के उपकारार्थ यहाँ लग्न का अष्टकवर्ग लिख देता हूँ । बृहत् पराशर अष्टकवर्गध्याय श्लो० ६६-६८ देखिये । उसी के अनुसार ॥ ८ ॥

| सूर्य | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि | लग्न |
|-------|--------|------|-----|----------|-------|-----|------|
| ३ | ३ | १ | १ | १ | १ | १ | ३ |
| ४ | ६ | ३ | ३ | २ | २ | ३ | ६ |
| ६ | १० | ६ | ४ | ४ | ३ | ४ | १० |
| १० | ११ | १० | ६ | ५ | ४ | ६ | १२ |
| ११ | १२ | ११ | ८ | ६ | ५ | १० | ० |
| १२ | ० | ० | १० | ७ | ८ | ११ | ० |
| ० | ० | ० | ११ | ९ | ९ | ० | ० |
| ० | ० | ० | ० | १० | ० | ० | ० |
| ० | ० | ० | ० | ११ | ० | ० | ० |

अथ कर्माजीवाध्यायः १० ।

अथातः कर्माजीवाध्यायो व्याख्यायते । अनेन पुरुषेण कथं धनमर्जयि-
स्यमित्यध्यायेऽस्मिन्निरूप्यते । अत्र च प्रकारद्वयेन धनदाता ग्रहो भवति
लग्नाचन्द्रभाच्च, यो दशमस्थो ग्रहः स धनदाता भवति । अथ लग्नचन्द्रयोर्द-
शमस्थाने शून्ये भवतस्तदा लग्नचन्द्रादित्यानां ये ये दशमराशयस्तेषां येऽधि-
पतयस्ते येषु नवांशकेषु पुरुषस्य जन्मकाले स्थितास्तेषां नवांशकानां ये ग्रहा
अधिपतयस्ते ग्रहाः धनदातारो भवन्ति । किन्तु लग्नाचन्द्राच्च ये दशमा ग्रहाः
ते अनेन प्रकारेण धनदातारो भवन्ति । किन्तु भेन्द्रार्कस्पदपतिगांशनाथा
अनेन प्रकारेणेति । तत्रादावेव लग्नाचन्द्राच्च दशमस्थो ग्रहो येन प्रकारेण धनं
ददाति तथा भेन्द्रार्कस्पदपतिगांशनाथा येन प्रकारेण धनप्रदास्तत्प्रकारद्वय-
प्रदर्शनं प्रहर्षिष्याह—

अर्थाप्तिः पितृपितृपत्तिशत्रुमित्रभ्रातृस्त्रीभृतकजनादिवाकराद्यैः ।

होरेन्द्रोर्दशमगतैर्विकल्पनोधा भेन्द्रार्कस्पदपतिगांशनाथवृत्त्या ॥ १ ॥

अर्थाप्तिरिति ॥ होरेन्द्रोः लग्नचन्द्रयोः दिवाकराद्यैः सूर्याद्यैः ग्रहैः दशम-
गतैः दशमस्थानाश्रितैः पित्रादिभ्योऽर्थाप्तिः धनप्राप्तिः विकल्पनोधा विचिन्त्या ।

तत्र पुरुषस्य जन्मसमये लग्नाच्चन्द्राद्वा यद्यादित्यो दशमस्थो भवति तदा पितृतोऽर्थाभिर्भवति । एवं चन्द्रे लग्नादशमगते पितृपत्नितः मातुः सकाशात् । भौमे लग्नचन्द्रयोर्देशमे सति शत्रूतः रिपुतः । बुधे मित्रान् सुहृदः । गुरौ भ्रातृतः सहजात् । शुके स्त्रीतः योषितः । सौरै भृतकजनात्कर्मकारान् सेवकादित्यर्थः । अथ कश्चिल्लग्नदशमे भवत्यपरश्चन्द्रात्तदा स्वस्यां स्वस्यामन्तर्दशायां द्वावपि स्वाभिहितफलप्रदौ भवतः । न केवलम् यावच्चन्द्रालग्ननाच्च बहवोऽपि यदि दशमस्था भवन्ति तदा सर्व एव स्वस्यां स्वस्यामन्तर्दशायां स्वस्वप्रकारेण धनप्रदा भवन्ति । अथ लग्नाच्चन्द्राद्वा न कश्चिद्दशमो भवति तदा कोऽर्थप्रदो भवति ? अत उक्तम् । भेद्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या । भं लग्नम्, इन्दुश्चन्द्रः, अर्कः आदित्यः, भं चेंदुश्चार्कश्च भेद्वर्काः तेभ्यः प्रत्येकस्यास्पदाख्यो यो राशिः दशम इत्यर्थः । तस्य योऽधिपतिः ग्रहः सः यस्मिन्नवांशके गतः स्थितस्तस्य यो नाथः स्वामी तस्य या वक्ष्यमाणा वृत्तिः तथा वृत्त्या तस्य धनप्रदो भवति एवं लग्नाच्चन्द्राच्च यदा दशमस्था ग्रहा भवन्ति तदा लग्नचन्द्रयोर्यो बलवांस्तस्य यो दशमः स एवार्थप्रदो भवति । भेद्वर्काणां यो बली तस्यास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या एक एवार्थप्रदो भवतीति । तदयुक्तम् । यस्मादत्र बलग्रहणं नास्ति तस्मादेवं ज्ञायते सर्वेभ्य एव भवति । पुरुषस्य बहुप्रकारधनागमदर्शनादिति । तथा च भगवान्गार्गिः । “उद्याच्छशिनो वापि ये ग्रहा दशमस्थिताः । ते सर्वेऽर्थप्रदा ज्ञेयाः स्वदशासु यथोदिताः ॥ लग्नार्करात्रिनाथेभ्यो दशमाधिपतिग्रहः । यस्मिन्नवांशे तत्कालं वर्तते तस्य यः पतिः ॥ तद्वृत्त्या प्रवदेद्विक्तं जातस्य बहवो यदा । भवन्ति वित्तदास्तेऽपि स्वदशासु विनिश्चितम् ॥” इति ॥ १ ॥

भाषा—यदि लग्न या चन्द्रमा अथवा दोनों से दशम स्थान में जो ग्रह हो उनके अनुसार धन लाभ समझना चाहिये । जैसे—दशम में सूर्य हो तो पिता से, चन्द्रमा हो तो माता से, मंगल हो तो शत्रु से, बुध हो तो मित्र से, गुरु हो तो भाई से, शुक्र हो तो स्त्री से और शनि दशम स्थान में हो तो नौकरों के द्वारा धन लाभ कहना चाहिए । यदि लग्न या चन्द्रमा से दशम स्थान में कोई ग्रह नहीं हो तो लग्न, चन्द्रमा और रवि इन तीनों स्थान से दशम भाव के स्वामी जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह की वृत्ति (व्यापार) से धन लाभ समझना चाहिये । जो आगे श्लोक में कहते हैं ॥ १ ॥

उदाहरण—जैसे वतलाये हुये उदाहरण में लग्न और रवि तथा चन्द्रमा एक ही स्थान में हैं, अतः तीनों से दशम स्थान (मकर) में कोई ग्रह नहीं है, अतः इन ही तीनों से दशम भाग (मकर) का स्वामी स्पष्ट शनि (०१२८।१।१५) ये धन के नवांश में हैं, अतः नवांश पति गुरु हुआ । इसलिये आगे कहे हुए—“जीवांशे द्विजविवुधाकरादि धर्मैः” इत्यादि के अनुसार ब्राह्मण और देवों की कृपा, खनिज पदार्थ सुवर्णादि द्रव्य द्वारा, आदि पद से अनेको रथल-जल सम्बन्धी व्यापार और धर्मानुष्ठान से धन का लाभ समझना चाहिये ॥ १ ॥

“भेद्वर्कास्पदपतिगांशनाथवृत्त्या” इति यदुक्तमधुना तां वृत्तिं प्रहर्षिणी-
द्वयेनाह—

अर्कांशे तृणकनकोर्णभेषजाद्यैश्चन्द्रांशे कृषिजलजाङ्गनाश्रयाच्च ।

धातवग्निप्रहरणसाहसैः कुजांशे सौम्यांशे लिपिगणितादिकाव्यशिल्पैः ॥ २ ॥

अर्कांश इति ॥ भेद्वर्कास्पदपतिगांशनाथोऽर्कः यदा भवति तदा तृणैः
सुगन्धैः, कनकेन सुवर्णेन च ऊर्ण्या आविकलोम्ना, भेषजेन औषधेन आदि-
शब्दाद्विषक्रियया रोगिणां परिचर्यया च धनमाप्नोति । अथ चन्द्रांशो
भवति तदा कृष्या कर्षणेन, जलजैः शंखशुक्ताप्रवालादिभिः, अङ्गनाभिः
स्त्रीभिः । जलजानां क्रयविक्रयः । अङ्गनानां समाश्रयणैरेतैः धनमाप्नोति । अथ
कुजांशो भौमनवांशो यदा भवति तदा धातुभिः मृत्तिकादिभिः पक्वाभिः
सुवर्णरूप्यताम्रादीनि भवन्ति ताभिः प्राप्नोति । अथवा धातुभिः मनःशिला-
हरितालहिङ्गुलकाञ्चनप्रभृतिभिः, अग्निनाऽग्निक्रियया, प्रहरणैः खड्गचक्रकुन्त-
चापतोमराद्यैः, साहसैः असमीक्षितकार्यकरणैरथवा स्ववशक्रियारम्भैः धन-
माप्नोति । अथ सौम्यांशो बुधनवांशको यदा भवति तदा लिपिगणितादि-
काव्यशिल्पैः धनमाप्नोति । लिप्यक्षरविन्यासेन गणितेन आदिग्रहणाद्व्या-
ख्याननेन यन्त्रादिप्रयोगैः काव्यक्रियया शिल्पैः चित्रपुस्तकपत्रच्छेदबाणमाल्य-
रचनागन्धयुक्तिप्रभृतिभिः धनमाप्नोति ॥ २ ॥

भाषा—पूर्वकथित लन चन्द्र वा सूर्य से दशम भाव का स्वामी यदि सूर्य के
नवमांश में हो तो तृण (घास, सुगन्धि आदि), सोना, ऊन, ऊनी कपड़े, औषध आदि
से धन लाभ होता है । दशमेश यदि चन्द्र के नवांश में हो तो खेती, जलोत्पन्न वस्तु
(शंख, मोती आदि) के व्यापार और स्त्रियों के आश्रय से धन लाभ होता है ।
मंगल के नवांश में हो तो धातु (ताँबा, पीतल, सुवर्ण आदि अथवा हरिताल आदि)
से अग्निकर्म, प्रहरण (अस्त्र, बाण, खड्ग आदि के प्रहार) द्वारा और साहस (दुष्कर
कार्य में प्रवृत्त होने) से धन का लाभ होता है । बुध के नवांश में हो तो लेख,
गणना, कविता, चित्रकारी आदि कर्म से धन की प्राप्ति होती है ॥ २ ॥

अथ जीवांशे द्वितीयग्रहर्षिण्याह—

जीवांशे द्विजविवुधाकरादिधर्मैः काव्यांशे मणिरजतादिगोमहिष्यैः (१) ।

सौरांशे श्रमवधभारनीचशिल्पैः कर्मेशाध्युषितनवांशकर्मसिद्धिः ॥ ३ ॥

जीवांश इति ॥ जीवांशे द्विजविवुधाकरादिधर्मैरिति । अथ जीवांशको
यदा भवति तदा द्विजेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः, विबुधेभ्यो देवेभ्यः पण्डितेभ्यो वा,
आकरेभ्यः सुवर्णादीनां लवणादीनां अङ्गनादीनां गजादीनां च समुत्पत्ति-
स्थानेभ्यः । आदिग्रहणात्क्रियावादेन । धर्मैः यज्ञदानोपवासतीर्थगुरुसेवना-

दिभिः धनमाप्नोति । अथ शुक्रनवांशको यदा भवति तदा मणिभिः वज्र-
मरकतपद्मरागेन्द्रनीलप्रभृतिभिः, रजतेन रूप्येण आदिग्रहणात्सर्वैर्लोहैः गोभिः
तथा महिषकर्मणि महिषेभ्यो वा साधुः महिष्यै श्रेष्ठमहिष्यैः धनमाप्नोति ।
अथ सौरांशको यदा भवति तदा श्रेमेण अध्वगमनादिकेन वधेन च वध्य-
यातितया अथवा स्वशरीरताडनाद्येन भारवाहनेन नीचशिल्पैः स्वकुलानुचितैः
कर्मभिः धनमाप्नोति । एवं जातककालवशात्पुरुषस्य धनागमं ज्ञात्वा कालानु-
कालं कर्मेशचारवशात् कर्मसिद्धिमाह । कर्मशाध्युषितनवांशकर्मसिद्धिः ।
कर्मणि ईशः कर्मेशः लग्नादशमराशिः तदधिपः कर्मेशः स चारवशाद्यस्मिन्न-
वांशके अध्युषितो भवति व्यवस्थितो भवति तस्य यः स्वामी तस्य यानि
कर्माणि अर्कांशे तृणकनकोर्णभेषजाद्यैरित्यादीनि तत्समानानां सिद्धिर्भवति ।
तानि प्रारब्धानि सिद्ध्यन्तीति । अत्र केचित्कर्मशाध्युषितसमानकर्मसिद्धिरिति
पठन्ति । अत्र च नवांशग्रहणं नास्ति प्रकृतत्वात्प्रागनुवृत्तः । नवांशको व्याख्या-
यते । तथा च भगवान्गार्गिः । “लग्नकर्मधिपो यस्मिन्नवांशे वर्तते ग्रहः ।
चारक्रमेण तत्तुल्यां कर्मणां सिद्धिमादिशेत् ॥” ज्ञातजातकस्येदं क्रियाश्रयं कर्म
कर्मेशाध्युषितनवांशकपतिकर्मणां यथादर्शितानां प्रारब्धानां कालानुकालं
सिद्धिर्वक्तव्या नान्येषामिति ॥ ३ ॥

भाषा—यदि दशमेश गुरु के नवांश में हो तो ब्राह्मण, देवता वा पण्डितों के द्वारा
तथा आकर (सुवर्ण, लवण, कोयला आदि खान की वस्तु) आदि शब्द से हाथी, घोड़े,
यज्ञ दानादि क्रिया से धन लाभ होता है । शुक्र के नवांश में हो तो मणि (मरकत-
पद्मराग आदि रत्न) चाँदी आदि द्रव्य, और गाय, भैंस से, शनि के नवांश में हो तो
परिश्रम, हिंसाकर्म, भार ढोने, नीच कर्म, अपने कुल से निन्दित कर्म के द्वारा धन
लाभ होता है । ऊपर कथित तीनों (लग्न, चन्द्र, रवि) से दशमेश में कर्मेश के
(लग्न से जो दशमेश हो उसके) आश्रित नवांशोक्त कर्म में विशेषकर सिद्धि
होती है । ३ ॥

अथ धनागमज्ञानं प्रहर्षिण्याह—

मित्रारिस्वगृहगतैर्ग्रहैस्ततोऽर्थं तुङ्गस्थे बलिनि च भास्करे स्ववीर्यात् ।
आयस्थैरुदयधनाश्रितैश्च सौम्यैः सञ्चिन्त्यं बलसहितैरेकधा स्वम् ॥४॥

मित्रारिस्वगृहगतैरिति ॥ चन्द्रलग्नयोः ये दशमगा ग्रहास्तदभावे च ये
भेन्द्रर्कास्पदपतिगांशनाथाः ते च यदि जन्मकाले मित्रगृहस्थिता भवन्ति तदा
स्वान्तर्दशाकाले मित्रगृहे स्थिता भवन्ति ततस्तस्मादेव मित्रात् मित्रतः फलप्रदा
भवन्ति । अथारिगृहस्थाः शत्रुगृहा भवन्ति तदारित एव । अथ स्वगृहस्था-
स्तदा स्वगृहादेव धनप्रदा भवन्ति । तुङ्गस्थे बलिनीति । यस्य पूर्वविधिना
भास्करः सूर्यो धनप्रदो ज्ञातः तस्मिस्तुङ्गस्थे लुचवगे मेषप्राप्ते बत्कालीनैर्बलैः
कालबलाद्यैर्युक्तैस्तदा स पुरुषः स्ववीर्याद्धर्ममर्जयति । स्वविक्रमाजितधनो

भवतीत्यर्थः । आर्यस्थैरिति । सौम्यः शुभग्रहः जन्मन्यायसंस्थैरेकादशस्थानगतैः उदयधनाश्रितैश्च लग्नगैः द्वितीयस्थानगतैर्वा तैश्च बलसहितैः वीर्यैर्बद्धिः जातः अनेकधा बहुभिः प्रकारैः स्वं धनं प्राप्तेतीति । सञ्चिन्त्यं निश्चयः कार्यः येन येन प्रकारेण धनार्जनमाकाङ्क्षते तेन तेन प्रकारेणायत्नादेवाप्नोतीत्यर्थः । तथा च भगवान्गार्गिः—“धनदा जन्मसमये मित्रारिस्वगृहोपगाः । यस्य तस्य धनं दद्युर्मित्रारिस्वगृहोद्भवम् ॥ धनदो भास्करो भस्य तुङ्गे बलसमन्वितः । भवेज्जन्मनि यस्य स्याद्विज्जमात्मोद्यमार्जितम् ॥ लाभार्थलग्नगैः सौम्यैरेन येनैव कर्मणा । धनार्जनं प्रार्थयते तेनायत्नात्समश्नुते ॥” इति ॥ ४ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ कर्माजीवा-

ध्यायो दशमः ॥ १० ॥

भाषा—पूर्वोक्त लग्न, चन्द्र और सूर्य से दशम भाव के स्वामी यदि मित्र के घर में हो तो मित्र के द्वारा, शत्रु के घर में हो तो शत्रु के द्वारा, अपने घर में हो तो अपने ही द्वारा धन का लाभ होता है । यदि बलवान् सूर्य अपने उच्च (मेघ) में हो तो स्वबाहु बल से धन लाभ होता है । तथा बलवान् शुभ ग्रह यदि एकादश, लग्न या धनभाव में हो तो अपने ही प्रकार से उसे धन लाभ होता है । यथा भगवान् गार्गि का वचन—संस्कृत टीका में देखिये ॥ ४ ॥

अथ राजयोगाध्यायः ११

अथातो राजयोगाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव यवनानां जीवशर्मणश्च मतं वैतालीयेनाह—

प्रादुर्यवनाः स्वतुङ्गैः क्रूरैः क्रूरमतिर्महीपतिः ।

क्रूरैस्तु न जीवशर्मणः पक्षे क्षित्यधिपः प्रजायते ॥ १ ॥

प्राहुरिति ॥ “त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः ।” इति सर्वजातकेषु प्रसिद्धं तत्रैतावद्यवनानां मतभेदः । यस्य जन्मसमये क्रूरैः पापग्रहैः स्वतुङ्गैः स्वोच्चस्थैर्जातो महीपती राजा भवति । किंतु क्रूरमतिः पापबुद्धिरिति प्राहुः कथयन्ति । अर्थादेव सौम्यैरुच्चगतैर्मिश्रस्वभावो राजा इति । एष एवार्थो मणित्थेनाभिहितः । तथा च तद्वाक्यम् । “पापैः पापमतिः स्वोच्चगतैर्धर्मवांस्तथा सौम्यैः । व्यामिश्रैर्मिश्रमतिः पृथ्वीशो जायते मनुजः ॥” क्रूरैस्त्विति । जीवशर्मणः पक्षे तन्मते क्रूरैरुच्चगतैः क्षित्यधिपो न राजा प्रजायते । किंतु राजा तुल्यो धनवान् भवति । तथा च तद्वाक्यम् । “पापैरुच्चगतैर्जाता न भवन्ति नृपा नराः । किंतु विचिन्तितस्ते स्युः क्रोधिनाः कलहप्रियाः ॥” इति । वराहमिहिरस्य यवनेश्वरमतमभिप्रेतम् । सामान्येनैव स्वल्पजातकेऽभिहितम् । “त्रिप्रभृतिभिरुच्चस्थैर्नृपवंशभवा भवन्ति राजानः । पञ्चादिभिरन्यकुलोद्भवाश्च तद्वत्त्रिकोणगतैः ॥” इति ॥ १ ॥

भा०—यदि सब पापग्रह उच्च स्थान में हों तो क्रूर बुद्धिवाला राजा होता है, ऐसा

यवनचार्यों का कहना है । किन्तु पापग्रहों के उच्च में होने पर भी राजा नहीं होता है, ऐसा जीवशर्मा का कथन है ॥ १ ॥

वि०—यवनों का मत है कि पापग्रह भी यदि ३ से अधिक स्वोच्च में हो तो राजा होता है । परन्तु क्रूर बुद्धिवाला अर्थात् शुभग्रह अधिक स्वोच्च में हो तो सुबुद्धि राजा और मिश्रग्रह ३ से अधिक उच्चगत हो तो मिश्रबुद्धिवाला राजा होता है । किन्तु जीवशर्मा का मत है कि पापग्रह के उच्च में होने से केवल घनवान् होता है, राजा नहीं होता है ॥ १ ॥

अथ द्वात्रिंशद्वाजयोगान्वसन्ततिलकेनाह—

वक्रार्कजार्कगुरुभिः सकलैस्त्रिभिश्च स्वोच्चेषु षोडश नृगाः कथितैकलग्ने ।
द्व्येकाश्रितेषु चतथैकतमे विलग्नस्वोच्चेषु शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः २

वक्रार्कजेति ॥ वक्रोऽगारकः, अर्कजः सौरः, अर्कः सूर्यः, गुरुर्जीवः एतैः वक्रार्कजार्कगुरुभिः भौमशानिसूर्यजीवैः सकलैः सर्वैश्चतुर्भिरपि स्वोच्चेषु स्थितैः कथितैकलग्ने एषां कथितग्रहाणां चतुर्णां मध्यादेकैस्मिल्लग्नगते चत्वारो राजयोगा भवन्ति । तथा त्रिभिश्च एषामेव मध्यात् त्रिभिः स्वोच्चगतैः तेषु मध्यादेकैस्मिन् लग्नगो कथितैकलग्ने द्वादश राजयोगा भवन्ति । एवं षोडश । द्व्येकाश्रितेष्विति । एतेषां मध्याद्द्वाभ्यामुच्चगताभ्यामनयोर्मध्यादेकस्मिल्लग्नगते शशिनि चन्द्रे स्वोच्चेत्रगेकैर्कटस्थे तेषामेव वक्रार्कजार्कगुरुणां मध्याद्ग्रहद्वये स्वोच्चाश्रिते तदेकतमे विलग्नगो द्वादश राजयोगा भवन्ति । एकाश्रितेषु च तेषामेव मध्यादेकस्मिन्नुच्चाश्रिते तस्मिन्नेव विलग्नगो स्वोच्चेत्रगते चन्द्रमसि चत्वारो राजयोगा भवन्ति । एवं षोडश, श्लोकपूर्वाक्तेः सह द्वात्रिंशत् । तद्यथा—

मेषेऽर्कः, कर्कटे जीवः, तुले सौरः, मकरे कुजः, शेषा यथेष्टम् । ईदृश्यां ग्रहसंस्थायां मेषलग्नगते एको योगः । कर्कटे द्वितीयः, तुले तृतीयः, मकरे चतुर्थः । एवं वक्रार्कजार्कगुरुभिः सकलैः स्वोच्चेषु तदेकतमे लग्ने चत्वारो राजयोगाः ।

अथ त्रिभिः तद्यथा—मेषेऽर्कः, कर्कटे जीवः, तुले सौरः, शेषा यथेष्टम् । ईदृश्यामपि ग्रहसंस्थायां मेषलग्ने एको योगः । कर्कटे द्वितीयः, तुले तृतीयः पूर्वैः सह सप्त । अथ मेषेऽर्कः, कर्कटे जीवः, मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम् । ईदृश्यां च ग्रहसंस्थायां मेषलग्ने एको योगः, कर्कटे द्वितीयः, मकरे तृतीयः पूर्वैः सह दश । अथ मेषेऽर्कः, तुले सौरः, मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम् । ईदृश्यां च ग्रहसंस्थायां मेषलग्ने एको योगः, तुले द्वितीयः, मकरे तृतीयः एवं त्रयोदश । अथ कर्कटे जीवः तुले सौरः मकरे भौमः, शेषा यथेष्टम् । ईदृश्यां च ग्रहसंस्थायां कर्कटे एकः, तुले द्वितीयः, मकरे तृतीयः एवं षोडश राजयोगाः । चतुर्भिः त्रिभिः स्वोच्चगतैः तदेकतमे विलग्नस्वोच्चेषु इति गतम् ।

द्वयेकाश्रितेष्वित्यादियोगेषु यावत्कर्कटे चन्द्रमा न भवति तावद्योगा एव न भवन्ति । तद्यथा । द्वायाश्रितेषु स्वज्ञेयगते च चन्द्रे द्वादश राजयोगा व्याख्यायन्ते । तद्यथा । मेषेऽर्कः, कर्कटे चन्द्रजीवौ शेषा यथेष्टम् । ईदृश्यां च प्रदंसस्थायां मेषलग्ने एको योगः । कर्कटे द्वितीयः । अथ मेषेऽर्कः, कर्कटे चन्द्रः, तुले सौरः, शेषा यथेष्टम् । तदा मेषे तृतीयः । तुले चतुर्थः । अथ मेषेऽर्कः, कर्कटे चन्द्रः, मकरे भौमः शेषा यथेष्टम् । तदा मेष पञ्चमः । मकरे षष्ठः । अथ कर्कटे चन्द्रजीवौ तुले सौरः शेषा यथेष्टम् । तदा कर्कटे सप्तमः । तुलेऽष्टमः । अथ कर्कटस्थौ चन्द्रजीवौ मकरे भौमः शेषा यथेष्टम् । तदा कर्कटे नवमः । मकरे दशमः । अथ तुले सौरः मकरे भौमः कर्कटे चन्द्रः शेषा यथेष्टम् । तदा तुले एकादश । मकरे द्वादश । द्वायाश्रितेष्विति गतम् ।

अथैकाश्रितेषु कर्कटस्थे चन्द्रे मेषस्थेऽर्के मेषलग्ने एकः । कर्कलग्ने तद्गत-योश्चन्द्रजीवयोः द्वितीयः कर्कटस्थे चन्द्रे तुलास्थे सौरे तस्मिन्नेव लग्ने तृतीयः । कर्कटस्थे चन्द्रे मकरस्थे भौमे ततस्तस्मिन्नेव लग्ने चतुर्थः । एवं पूर्वैर्द्वादशभिः सह षोडश । अल कपूर्वोक्तेः षोडशभिः सह द्वात्रिंशद्राजयोगा व्याख्याताः ॥ २ ॥

भा०—मंगल, शनि, रवि और गुरु ये चारों या इनमें ३ अपने-अपने उच्च में हों तथा इन्हीं में एक लग्न में हो तो १६ प्रकार के राजयोग होते हैं । तथा इनमें दो या १ उच्च में हो और १ लग्नगत हो एवं चन्द्रमा अपनी राशि (कर्क) में हो तो १६ प्रकार के राजयोग होते हैं ॥ २ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशद्राजयोगाननुष्टु माह—

वर्गोत्तमगते लग्ने चन्द्रे वा चन्द्रवर्जितैः ।

चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृरा द्वाविंशतिः स्मृताः ॥ ३ ॥

वर्गोत्तमगते लग्न इति ॥ लग्ने जन्मकाञ्जिके लग्ने वर्गोत्तमगते स्वनवांशकस्थ इत्यर्थः । तस्मिन् चन्द्रवर्जितैर्न्यग्रहैश्चतुराद्यैः दृष्टे चतुर्भिः पंचभिः षड्भिर्वावलोकिते द्वाविंशतिराजयोगाः स्मृताः उक्ताः । अत्र लग्ने चन्द्रेण दृश्यमाने न योगभंगः किंतु पश्यतां मध्ये न गण्यते । स तु पश्यतु मा वा पश्यतु अन्यैश्चतुरादिभिर्ग्रहैर्दृष्टे राजयोगा भवन्ति । एवं वर्गोत्तमगते लग्ने द्वाविंशति-योगाः । एवं चन्द्रे वर्गोत्तमंशस्थे चतुराद्यैर्ग्रहैः दृष्टे द्वाविंशतियोगा भवन्ति । एवं चतुश्चत्वारिंशत् । अत्र लग्ने चन्द्रे वा चतुर्भिर्दृश्यमाने पंचदश विकल्पा भवन्ति । पंचभिः दृश्यमाने षट्, षड्भिरेकः एवं द्वाविंशतिः । तद्यथा । लग्ने चन्द्रे वा रविभौमबुधगुरुभिः दृश्यमाने एको योगः । रविभौमबुधसितैः द्वितीयः । रविभौमबुधसौरैः तृतीयः । रविभौमजीवसितैश्चतुर्थः । रविभौमजीवसौरैः पंचमः । रविभौमशुकसौरैः षष्ठः । रविबुधजीवशुकैः सप्तमः । रविबुधजीवसौरैरष्टमः । रविबुधशुकसौरैर्दशमः । भौमबुधजीवशुकैरेकादशः । भौमबुधजीवसौरैर्द्वादशः । भौमबुधशुकसौरैश्चयोदशः । भौमजीवशुकसौरैः पंचदशः । एवं चतुर्भिर्वि विकल्पैः पंचदश । अथ पंच विकल्पाः । रविभौम-

बुधजीवशुक्रैरेकः । रविभौमबुधजीवसौरैर्द्वितीयः । रविभौमबुधशुक्रसौरैश्चतुर्थः । रविबुधजीवशुक्रसौरैः पंचमः । भौमबुधजीवशुक्रसौरैः षष्ठः । एवं पंचविकल्पैः षट्पूर्वोक्तैः पंचदशभिः सहैकविंशतिः, रविभौमबुधजीवशुक्रसौरैः षड्भिरेकः एवं द्वाविंशतिः । लग्नाच्चंद्राच्चैवमेवं चतुश्चत्वारिंशत् । परमार्थेनैतद्योगद्वयमेव । तथा । वर्गोत्तमगते । चंद्रे चतुराद्यैर्दृष्टे एकः । लग्ने द्वितीयः । संख्याप्रदर्शनं गणितप्रदर्शनार्थम् । अत्रैव चंद्रमसो यदि राशौ वर्गोत्तमावस्थिति निरूप्य गणितं क्रियते तदैतेषामेव योगानां

उदाहरण एक में देखिये—

| स्वोच्चस्थ लग्नमें | स्वोच्च र मे |
|-----------------------|--------------|
| १ मं. | श. र. गु. |
| २ श. | मं. र. गु. |
| ३ र. | श. मं. गु. |
| ४ गु. | मं. श. र. |
| ५ मं. | श. र. |
| ६ मं. | श. बु. |
| ७ मं. | र. गु. |
| ८ श. | मं. र. |
| ९ श. | म. गु. |
| १० श. | र. गु. |
| ११ र. | मं. श. |
| १२ र. | मं. गु. |
| १३ र. | श. गु. |
| १४ गु. | र. श. |
| १५ गु. | र. मं. |
| १६ गु. | मं. श. |

चतुःषष्ट्यधिकं शतद्वयं सम्भवति । एवं प्रत्येकमस्मिन् लग्ने वर्गोत्तमस्थे चतुःषष्ट्यधिकमेव योगशतद्वयम् । एवं चंद्रलग्नयोगानामेकीकृतानां पंचशतान्यष्टाविंशत्यधिकानि भवन्ति । तथा च मांडव्यः । “विलग्नभवनं गते बलयुते च वर्गोत्तमे चतुःप्रभृतिभिर्ग्रहैः शशिनि वा समालोकिते । स संभवति पार्थिवः खलु कृपाणपाणी रणे कदाचिदपि वीक्षते रिपुजनो न यस्याननम्” ॥ ३ ॥

भा०—यदि लग्न अथवा चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो उस पर चन्द्रमा को छोड़कर अन्य ४ या ५ या ६ ग्रहों की दृष्टि हो तो दोनों स्थिति में २२, २२ राजयोग के भेद होते हैं ॥ ३ ॥

चक्र देखिये । ४ ग्रहों की दृष्टि से १५ भेद, ५ ग्रहों की दृष्टि से ६ भेद और ६ ग्रहों की दृष्टि से १ ही भेद, इस प्रकार २२ भेद हुए । एवं चन्द्रमा पर दृष्टि से २२, दोनों मिल कर ४४ राजयोग होते हैं ॥ ३ ॥

वर्कस्थ चन्द्र में १६ योग यथा-वर्गोत्तमगत लग्न पर ग्रहदृष्टि से २२ भेद—

| | | |
|----|-----|-----|
| १ | मं. | र. |
| २ | मं. | श. |
| ३ | मं. | गु. |
| ४ | श. | र. |
| ५ | श. | मं. |
| ६ | श. | गु. |
| ७ | र. | मं. |
| ८ | र. | श. |
| ९ | र. | गु. |
| १० | गु. | र. |
| ११ | गु. | म |
| १२ | गु. | श. |
| १३ | मं. | × |
| १४ | श. | × |
| १५ | र. | × |
| १६ | गु. | × |

| | |
|----|-----------------------|
| १ | र. म. बु. गु. |
| २ | र. मं. बु. शु. |
| ३ | र. म. बु. श. |
| ४ | र. मं. गु. शु. |
| ५ | र. म. गु. श. |
| ६ | र. म. शु. श. |
| ७ | र. म. गु. शु. |
| ८ | र. मं. गु. श. |
| ९ | र. बु. गु. शु. |
| १० | र. बु. गु. श. |
| ११ | र. बु. शु. श. |
| १२ | म. बु. गु. शु. |
| १३ | मं. बु. गु. श. |
| १४ | म. बु. शु. श. |
| १५ | बु. गु. शु. श. |
| १६ | र. म. बु. गु. शु. |
| १७ | र. मं. बु. गु. श. |
| १८ | र. मं. बु. गु. श. |
| १९ | र. मं. गु. शु. श. |
| २० | र. बु. गु. शु. श. |
| २१ | मं. बु. गु. शु. श. |
| २२ | र. मं. बु. गु. शु. श. |

अथ शिखरिण्या पंचयोगानाह—

यमे कुम्भेर्केऽजे गवि शशिनि तैरेव तनुगै-

र्नृयुक्त्सिहालिस्थैः शशिजगुरुवक्रैर्नृपतयः ।

यमेन्दु तुङ्गेऽङ्गे सवितृशशिजौ षष्ठभवने

तुलाजेन्दुचेत्रैः ससितकुजजीवैश्च नरपौ ॥ ४ ॥

यम इति ॥ यमे सौर कुम्भस्थे अर्के सूर्यऽजे मेषस्थे सति शशिनि चंद्रे गवि वृषस्थिते तैरेव तनुगैः तेषां ग्रहाणामेकतमे तनुगे लग्नस्थे न केवलं यावच्छशिजगुरुवक्रैः बुधजीवभौमैः नृयुक्त्सिहालिस्थैः जाता नृपतयो राजानो भवन्ति । चकारोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः । तत्रैतज्जातम् । सौरः कुम्भे रविर्मेघे चंद्रो वृषे बुधो मिथुने जावः सिंहे भौमो वृश्चिके ईदृश्यां ग्रहसंस्थायां कुम्भलग्ने एको योगः मेषे द्वितीयः वृषे तृतीयः । यमेन्दू इति । सौचन्द्रौ तुंगे उच्चे न केवलं यावदंगे तनौ लग्ने इत्यर्थः । सवितृशशिजौ सूर्यबुधौ षष्ठभवने कन्यायां तुलाजेन्दुचेत्रैः तुला प्रसिद्धः अजो मेषः इन्दुचेत्रं कर्कटः एतैः यथासंख्यं ससितकुजजीवैः शुक्रभौमगुरुयुक्तैः नरपौ द्वौ राजयोगाविति तत्रैतज्जातम् । तुले सौरः वृषे चंद्रः कन्यायामर्कबुधौ तुले शुक्रः मेषे भौमः कर्कटे जीवः ईदृश्यां ग्रहसंस्थायां तुलालग्नौ एको योगः । वृषे द्वितीयः । पूर्वैस्त्रिभिः सह पंच । अत्र षष्ठभवने पञ्चराशौ लग्नत्वेचिदिच्छन्ति । एतदयुक्तम् । यस्मात्तलस्थे शुक्रे मीनस्थस्यार्कस्यासंभवः । तथा च बादरायणः । “तुलालग्नौ सितसौरौ मे भौमो गुरुः कुलीरगतः । कन्यायां रविशशिजौ जातो नृपतिर्वृषे सचंद्रे वा ॥” ॥ ४ ॥

भा०—कुम्भ में शनि, मेष में रवि, वृष में चन्द्रमा हो इन तीन में से कोई एक लग्न में हो तथा मिथुन में बुध, गुरु सिंह में, मङ्गल वृश्चिक में हो तो इन तीनों लग्न से ३ प्रकार के राजयोग होते हैं । एवं शनि और चन्द्रमा अपने-अपने उच्च में और इन्हीं दोनों में से कोई एक लग्न में हो और षष्ठ भाव में रवि बुध हो, शुक्र तुला में, अंगल मेष और गुरु कर्क में हो तो इन दोनों लग्न में २ प्रकार के राजयोग होते हैं ॥ ४ ॥

अथान्यद्राजयोगत्रयं शिखरिण्याह—

कुजे तुङ्गेऽर्केन्द्रोर्द्धनुषि यमलग्ने च कुपतिः

पतिर्भूमेश्चान्यः क्षितिमुतविलग्नौ सशशिनि ।

सचन्द्रे सौरेऽस्ते सुरपतिगुरौ चापधरगे

स्वतुङ्गस्थे भानाबुदयमृपयाते क्षितिपतिः ॥ ५ ॥

कुजे तुंगेऽर्केन्द्रोरिति ॥ कुजे भौमे तुङ्गस्थे उच्चस्थे मकरगते इत्यर्थः ॥ अर्केन्द्रोः सूर्यशशिनोः धनुषि चापे स्थितयोः यमलग्ने यत्र तत्र राशौ लग्ने

शनैश्चरे लग्नगते मकरस्थ इत्यर्थः । एवंविधे योगे जातः कुपतिः भूमीशः नृपती राजा भवति । यमलग्ने इति । मकरकुंभयोः अन्यतमे लग्ने इति व्याख्यातम् । यमस्य लग्ने यमलग्न इति । कैश्चित् यत्र तत्र राशावस्थिते सौरि लग्नगे इति व्याख्यातम् । तच्च वायुक्तम् । यस्माद्वादरायणः । “लग्ने सौरस्तुगे भौमश्चन्द्रादित्यौ चापं प्राप्तौ” इति । अस्माकं प्रथमा व्याख्या साध्वी प्रतिभाति । यस्मान्मांडव्यः । “आदित्यश्च निशाकरश्च भवतो वागीशराशौ यदा साद्धं भास्करिणा स्ववीर्यसहितः प्राप्तो मृगे मंगलः । प्राप्नोति प्रभवं तदा स सुकृती द्मापालचूडामणिस्त्रयं प्रतिपन्थिनो रणमुखे यस्मात्कृतांतादिव ॥” पतिर्भू-
मेश्चान्य इति । अस्मिन्नेव योगे क्षितिसुतोऽगारकः तस्मिन्स्वोच्चस्थे शशिना चन्द्रमसा युक्तेऽर्के धनुर्धरस्थे राजयोगः । तत्रैतज्जातम् । मकरलग्ने चन्द्रांगारक-
युते धनुर्धरगतेऽर्केऽन्यो द्वितीयो भूमेः पतिर्भवति, राजा इत्यर्थः । अत्र च वादरायणः । “भानुश्चापे सेंदुर्भौमस्तुंगप्राप्तो लग्ने वा स्यात् ॥” सचद्रे सौरिऽस्ते इति । सौरि शनैश्चरे सचद्रे शशियुक्ते तथाभूतेऽस्ते सप्तमस्थानगते तथा सुरपतिगुरौ जीवे चापधरगे धनुर्धरस्थे भानौ आदित्ये स्वतुंगस्थे स्वोच्चे मेषप्राप्ते उदयं लग्नमुपयाते प्राप्ते जातः क्षितिपती राजा भवति तत्रैज्जातम् । मेषे लग्ने तत्रैवार्कः धन्विनि जीवः तुलागतौ शशिसौरौ एवंविधे योगे जातो राजा भवत्येवं राजयोगाख्यः ॥ ५ ॥

भा०—यदि शनैश्चर के साथ लग्न में अपने उच्च (मकर) का मंगल हो और रवि गुरु दोनों धनु में हो तो ऐसे योग में जातक राजा होता है । तथा मकर लग्न में, चन्द्रमा के साथ मंगल हो तब भी राजा होता है । और अपने उच्च (मेष) गत-
रवि लग्न में हो तो चन्द्रमा के साथ शनि सप्तम भाव में हो तथा गुरु धनु में हो तब भी जातक राजा होता है ॥ ५ ॥

अथ शिखरिण्या राजयोगद्वयमाह—

वृषे सेन्दौ लग्ने सवितृगुरुतीक्ष्णांशुतनयैः

सुहृज्जायाखस्थैर्भवति नियमान्मानवपतिः ।

मृगे मन्दे लग्ने सहजरिपुधर्मव्ययगतैः

शशाङ्काद्यैः ख्यातः पृथुगुणयशाः पुङ्गलपतिः ॥ ६ ॥

वृषे सेंदौ लग्न इति ॥ वृषे गवि सेंदौ चंद्रयुक्ते लग्ने स्थिते सवितृगुरुती-
क्ष्णांशुतनयैः सूर्यजीवसौरैः यथासंख्यं सुहृज्जायाखस्थैः चतुर्थसप्तमदशम-
स्थितैः नियमान्निश्चयान्मानवपतिः राजा भवति । तत्रैज्जातम् । वृषे लग्नन्तत्रैव
चन्द्रः । सिंहेऽर्को वृश्चिके जीवः कुंभे सौरः एवंविधे योगे जातोऽवश्यं राजा
भवति । मृगे मंद इति । मृगे मकरे लग्ने तत्रस्थे मन्दे सौरि । सहजरिपुधर्म-
व्ययगतैः तृतीयषष्ठनवमद्वादशस्थैः शशांकाद्यैः चंद्रांगारकबुधजीवैः एवंविधे

योगे जातः स्यातः सर्वत्र विदितः । पृथुगुणयशा गुणाः शौर्यादयः विस्तीर्ण-
गुणकीर्तिः पुंगुलपतिः मनुष्यनाथो भवति । ननु शशांकाद्यैरित्युक्तं शुक्रः क
गच्छतु । उच्यते । यथासंख्यात्पंचमरनानस्थाविद्यमानत्वात् । शुक्रस्यादित्यपंचम-
त्वादनवकाशः । तत्रैतज्जातम् । मकरो लग्ने तत्रैव सौरः मीने चन्द्रः मिथुने
भौमः कन्यायां बुधः धनिनि जीवः शुक्रार्कौ यत्रतत्रस्थौ एवंविधे योगे जातो
राजा भवति । पृथुगुणयशाः । एवमत्र राजयोगौ द्वौ । तथा च मांडव्यः । “मृगे
लग्ने सौरस्तिमिदुगगतः शीतविरणः कुजो दुग्मे नार्या शशधरमुतश्चापधरगः ।
गुरुर्द्वयेज्यार्कावभिमतगतौ चारवशतः प्रसूतौ यस्यासौ भवति नरपः शक्र-
सदृशः ॥” ॥ ६ ॥

भा०—वृष लग्न में चन्द्रमा हो, चतुर्थ भाव (सिंह) में रवि, सप्तम स्थान में
गुरु, दशम स्थान (कुम्भ) में शनि हो तो जातक निश्चय राजा होता ही है तथा
मकर लग्न में शनि, तृतीय स्थान (मीन) में चन्द्रमा, षष्ठम स्थान में मङ्गल, नवम
में बुध, द्वादश में गुरु हो, रवि और शुक्र जिस किसी स्थान में हो, तो ऐसे योग में
भी जातक अत्यन्त गुणवान् और यशस्वी होता है ॥ ६ ॥

अथ शिखरिण्या राजयोगत्रयमाह—

हये सेन्दौ जीवे मृगमुखगते भूमितनये

स्वतुङ्गस्थौ लग्ने भृगुजशिशिजावत्र नृपती ।

सुतस्थौ वक्रार्कौ गुरुशशिसिताश्चापि हिबुके

बुधे कन्यालग्ने भवति हि नृपोऽन्योऽपि गुणवान् ॥ ७ ॥

हये सेंदाविति ॥ हये धनुषि जीवे गुरो सेंदौ सचन्द्रे स्थिते भूमितनयें-
गारके मृगमुखगते मकरस्थे “मृगार्द्धपूर्वो मकरो मृगार्द्धः” इति वचनात् ।
भृगुजशिशिजौ शुक्रबुधौ स्वतुंगस्थौ स्वोच्चप्राप्तौ यदि लग्ने भवतस्तदात्रा-
स्मिन्योगद्वये जातौ राजानौ भवतः । राजयोगद्वयमेतत् । तत्रैतज्जातम् ।
बृहस्पतौ सचन्द्रे धनिगते मकरगते भौमे एवंविधायां प्रहसंस्थायां मीनलग्ने
सशुके एको योगः । कन्यालग्ने सबुधे द्वितीयो योगः । सुतस्थाविति ।
वक्रार्कौ भौमसौरौ सुतस्थौ पंचस्थानगतौ तथा गुरुशशिसिताः जीवचन्द्रशुक्रा
हिबुके चतुर्थे स्थाने बुधे कन्यागते लग्ने जातोऽन्यो परोऽपि नृपो राजा गुण-
वान् भवति । तत्रैतज्जातम् । कन्या लग्नं तत्रैव बुधः मकरस्थौ शनिभौमौ
धनुर्धरस्था जीवचन्द्रशुक्राः यदा भवन्ति तदा जातो राजा गुणवान् भवति ।
एवं राजयोगास्त्रयः ॥ ७ ॥

भा०—यदि चन्द्रमा और गुरु धनुलग्न में हो, मकर में यदि मंगल हो, और शुक्र
या बुध अपने-अपने उच्च (मीन और कन्या) में होकर लग्न में हो तो इन दोनों
योग में जातक राजा होता है । तथा कन्या लग्न में बुध हो, पंचम भाव (मकर)

में मंगल और शनि हो, चतुर्थभाव (वनु) में गुरु, शुक और चन्द्र हो तो इस योग में गुणवान् राजा होता है । ७ ॥

अथ शिखरिण्या राजयोगत्रयमाह —

भूमे सेन्दौ लग्ने घटमृगमृगेन्द्रेषु सहितै-

र्यमाराकैर्योऽभूत्स खलु मनुजः शास्ति वसुधाब् ।

अजे सारे मूर्तौ शशिगृहगते चामरगुरौ

सुरेज्ये वा लग्ने धरणिपतिरन्योऽपि गुणवान् ॥ ८ ॥

भूमे सेन्दौ संहति ॥ भूमे मीने सेन्दौ सचन्द्रे लग्ने मीनलग्ने सचन्द्रे घटमृग-
मृगेन्द्रेषु सहितैर्यमाराकैः घटः कुम्भः मृगो मकरः मृगेन्द्रः सिंहः तेषु यथासंख्यं
यमाराकैः स्थितैः । तत्रैतज्जातम् । मीनो लग्नन्तत्रैव चन्द्रः स्थितः कुम्भे सौरः
मकरे भौमः सिंहेऽर्कः एवंविधे योगे जातः यः उत्तमः स मनुजो मनुष्यः
वसुधां शास्ति भूमिं परिपालयति, राजा भवतीत्यर्थः । खलु गन्धो वाक्यालंकारः ।
अजे सार इति । अजे मेषे सारे सभौमे मूर्तौ लग्नस्थिते तथा चामरगुरौ
जीवे शशिगृहगते कर्कटस्थे जातो नृपो राजा गुणवान्भवति । अथवा सुरेज्ये
बृहस्पतौ मेषस्थे जातोऽन्यः परो राजा गुणवान्श्च भवति । एवमत्र
राजयोगास्त्रयः ॥ ८ ॥

भाषा—चन्द्रमा सहित मीन लग्न हो, कुम्भ में शनि, मकर में मङ्गल, सिंह में
सूर्य हो तो ऐसे योग में जो जन्म लेता है वह निश्चित रूप से पृथ्वी का पालन करता
है । तथा मेष का मंगल लग्न में हो और कर्क में गुरु हो, अथवा कर्क का गुरु ही
लग्न में और मेष में मंगल हो तो इन दोनों लग्न में उत्पन्न मनुष्य गुणवान् राजा
होता है ॥ ८ ॥

अथ राजयोगं विद्युन्मालयाह —

कर्किणि लग्ने तत्स्थे जीवे चन्द्रसितज्ञेऽप्यप्राप्तैः ।

मेषगतेऽर्के जातं विन्ध्याद्विक्रमयुक्तं पृथ्वीनाथम् ॥ ९ ॥

कर्किणीति ॥ कर्किणि लग्ने कर्कटके लग्ने तत्स्थे तत्रैव व्यवस्थिते जीवे
गुरौ चन्द्रसितज्ञैः शशिशुकबुधैः आयप्राप्तैरेकादशस्थानस्थैः मेषगतेऽर्के आदित्ये
मेषस्थे जातं संभूतं पृथ्वीनाथं भूमिपतिं विक्रमयुक्तं प्रतापसहितं विन्ध्याज्वा-
नीयान् ॥ ९ ॥

भाषा—यदि कर्क लग्न में गुरु हो, तथा चन्द्रमा, शुक, बुध ये एकादश स्थान
(वृष) में हो और मेष में रवि हो तो बड़ा ही प्रतापी राजा समझना चाहिए ॥९॥

अथ द्रुतविलंबितेन राजयोगमाह—

मृगशुखेऽर्कतनयस्तनुसंस्थः क्रियकुलीरहरयोऽधिपयुक्ताः ।

मिथुनतौलिसहितौ बुधशुक्रौ यदि तदा पृथुयशाः पृथिवीशः ॥१०॥

मृगमुखेति ॥ अर्कतनयः सौरः मृगमुखे मकरगतः स च वनुसंस्थो लग्न-
प्राप्तः तथा क्रियकुञ्जीरहरयः मेघकर्किसिंहाः अधिपैः स्वनाथैः युक्ताः सहिताः
तथा मेघे भौमः, कर्कटे चन्द्रः, सिंहे सूर्य इत्यर्थः । तथा बुधशुक्रौ ज्ञासितौ
यथासंख्यं मिथुनतौलिसहितौ । तथा मिथुने बुधः तुले शुक्रः एवंविधो यदि
यागो भवति तदा जातः पृथुशः विस्तीर्णकीर्तिः पृथिवीशो राजा भवति ।
तत्रैतज्जातम् । मङ्गलो लग्नन्तत्रैव सौरः रेषे भौमः कर्कटे चन्द्रः सिंहोऽर्कः
मिथुने बुधः तुले शुक्रः एवंविधायां ग्रहसंस्थायां यत्रतत्रस्थे जीवे यदि जातो
भवति तदा पृथिवीशः पृथुशः भवति ॥ १० ॥

भाषा—यदि मकर स्थित शनि लग्न में हो, मेघ, कर्क, सिंह ये ग्रहने ग्रहने
स्वामी से संयुक्त हों, मिथुन में बुध, तुला में शुक्र हो तो अति यशस्वी राजा होता
है ॥ १० ॥

अथ राजयोगमनुष्टुभाह—

स्वोच्चसंस्थे बुधे लग्ने भृगौ मेघूरणाश्रिते ।

सजीवेऽस्ते निशानाथे राजा मन्दारयोः सुते ॥ ११ ॥

स्वोच्चेति ॥ बुधे स्वोच्चसंस्थे कन्यागते लग्नगे भृगौ शुके मेघूरणाश्रिते
दशमस्थानस्थिते निशानाथे चन्द्रे सजीवे बृहस्पतिसंयुक्तेऽस्ते सप्तमस्थानगते
मन्दारयोः शनिभौमयोः सुते पंचमे स्थितयोः जातो राजा भवति । तत्रैतज्जा-
तम् । कन्या लग्ने स बुधे मिथुनगते शुके गुरौ सचन्द्रे मीनस्थे मकरस्थयोः
शनिभौमयोः जातो राजा भवति । एते राजयोगाः प्रोक्ताः ॥ ११ ॥

भाषा—कन्या के १५ वें अंश पर बुध लग्न में हो, उससे दशवें स्थान में शुक्र,
सातवें में चन्द्रमा और गुरु, पञ्चम भाव में शनि, मंगल हो तो जातक राजा होता
है ॥ ११ ॥

एव राजवंशतोऽपि जातो राजा भवति वक्ष्यमाणेषु तु राजवंशज एव
राजा भवति । तच्च मालिन्याह—

अपि खलकुलजाता मानवा राज्यभाजः

किमुत ! नृपकुलोत्थाः प्रोक्तभूपालयोगैः ।

नृपतिकुलसमुत्थाः पार्थिवा वक्ष्यमाणै-

र्भवति नृपतितुल्यस्तेभ्यभूपालपुत्रः ॥ १२ ॥

अपीति ॥ अपिशब्दः सम्भावनायाम् । प्रोक्तभूपालयोगैः कथितराजयोगैः
खलकुलजाता नीचवंशोद्भवा अपि मानवाः पुरुषाः राज्यभाज नृपा भवन्ति
किमुत किपुनः नृपकुलोत्थाः राजवंशसंभूतास्तेऽवश्यं राजानो भवन्ति । वक्ष्य-
माणैः पुनः योगैः नृपतिकुलसमुत्थाः राजवंशजाः पार्थिवाः राजानो भवन्ति ।

तेषु वक्ष्यमाणेषु अभूपालवंशजः अराजपुत्रः नृपतुल्यो भवति । राजसम इत्यर्थः । न राजा । किमुत संभावनायाम् ॥ १२ ॥

भाषा—पूर्व कहे हुए योगों में नीच दरिद्र कुल में उत्पन्न मनुष्य भी राजा होता है, फिर राजकुलोत्पन्न भी बात ही क्या है ? तथा आगे कहे हुए योगों में केवल राजवंश में ही जन्म लेनेवाला राजा हो सकता है, अन्य वंशोत्पन्न मनुष्य राजा के समान होता है, किन्तु राजा (शासक) नहीं होता है ॥ १२ ॥

अथ राजयोगमौपच्छंदसिकेनाह—

उच्चस्वत्रिकोणगैर्वलस्थैरुपाद्यैर्भूपतिवंशजा नरेन्द्राः ।

पञ्चादिभिरन्यवंशजाता हीनैर्वित्तयुता न भूमिपालाः ॥ १३ ॥

उच्चस्वत्रिकोणगैरिति ॥ उपाद्यैः उपादिभिर्ग्रहैः स्वोच्चगतैः स्वत्रिकोणगतैः बलस्थैः कालादिबलोपेतैः जाता भूपतिवंशजाः नृपकुलजाता नरेन्द्रा राजानो भवन्ति । आदिग्रहणाच्चतुर्भिरपि पञ्चादिभिरन्यवंशजाता इति । पञ्चादिभिः ग्रहैः स्वोच्चस्थैः मूलत्रिकोणगैर्वा अन्यवंशजाता हीनकुलजा अपि राजानो भवन्ति । आदिग्रहणात्बलभिः सप्तभिरपि । हीनैर्वित्तयुता इति । त्रिभिरुच्चस्थैः मूलत्रिकोणगैर्वा हीनबलैः कालादिबलरहितैः राजकुलजा अपि राजानो न भवन्ति । किंतु राजतुल्या भवन्ति । एतैर्यथोक्तैः हीनैः वित्तयुताः सधना भवन्ति, न भूमिपालाः राजानः । एतदुक्तं भवति । एकेन ग्रहेण द्वाभ्यां वा स्वोच्चगाभ्यां मूलत्रिकोणस्थाभ्यां वा राजकुलजोऽपि राजा न भवन्ति किंतु धनवान् । एवं त्रिभिश्चतुर्भिर्वाऽन्यवंशजाता वित्तयुता भवन्ति, न राजानः । अत्र यदि ग्रहाः यथासंख्या उच्चस्थाः न भवन्ति । स्वोच्चगा मूलत्रिकोणस्थैः सह संख्यां संपादयन्ति तथापि यथोक्तफलदा भवन्ति । अथवोच्चगताः केवलं स्वत्रिकोणगता वा तथापि ॥ १३ ॥

भाषा—यदि ३ या ४ ग्रह बल (कालबल-दिग्बल) से युक्त होकर अपने उच्च या मूलत्रिकोण में हो तो राजवंशोत्पन्न राजा होता है । अन्य वंशोत्पन्न धनवान्-मात्र होता है । यदि ५ या ६ ग्रह उच्च त्रिकोण में हो तो ऐसे योग में अन्य वंशोत्पन्न भी राजा होता है । अल्प (२ वा १) ग्रह उच्च या मूलत्रिकोण में हो तो केवल धनवान् होता है, राजा नहीं होता है ॥ १३ ॥

अथान्यराजयोगं विद्युन्मालयाह—

लेखास्थेऽर्केजेन्दौ लग्ने भौमे स्वोच्चे कुम्भे मन्दे ।

चापप्राप्ते जीवे राज्ञः पुत्रं विद्यात्पृथ्वीनाथम् ॥ १४ ॥

लेखास्थ इति ॥ लेखायां तिष्ठतीति लेखास्थः तस्मिन् लेखाशब्देनोदय उच्यते । अर्के सूर्यं तत्स्थे लेखास्थे भूवृत्तादर्धोदिते न केवलं यावदजे मेषस्थे तत्रैव मेषलग्ने इदौ चंद्रे स्थिते भौमे कुजे स्वोच्चे मकरस्थे मंदे सौरे

कुम्भस्थे जीवे गुरौ चापप्राप्ते धनुर्धरगते एवंविधे योगे जातो राज्ञः पुत्रो नृप-
सुतो यदि भवति तदा तं भूमेर्नाथं विन्द्याज्जानीयात् । अन्यकुलजो धनवान् ।
अत्र केचित्प्रस्थेऽर्केऽर्जुनौ लग्ने इति पठन्ति । आदित्ये लेखास्थे सति सिंह-
गते सूर्ये चंद्रे मेषस्थे लग्ने तदपि न कश्चिद्विरोधो राजयोग एव भवति ॥१४॥

भाषा—उदयक्षितिज में सूर्य हो, मेषगत चन्द्रमा लग्न में, मङ्गल स्वोच्च (मकर),
में, शनि कुम्भ में, गुरु धनु में हो तो राजा के पुत्र को इस योग में राजा समझना
चाहिये ॥ १४ ॥

विशेष अर्थ—कोई यहाँ 'लेखा' शब्द से 'मिहिराशि' अर्थ कहते हैं । उस अर्थ से
भी राजयोग हो सकता है । परन्तु वहाँ "लेखस्थे-ज्जन्दौ लग्ने" ऐसा पाठ होना
चाहिये ॥ १४ ॥

अन्यराजयोगं विद्युन्मालयाह—

स्वर्क्षे शुक्रे पातालस्थे धर्मस्थानं प्राप्ते चन्द्रे ।

दुश्चिक्याङ्गप्राप्तिप्राप्तैः शेषैर्जातः स्वामी भूमेः ॥ १५ ॥

स्वर्क्षे इति ॥ स्वर्क्षे सिते आत्मीयराशौ स्थिते वृषतुल्योरन्यतमस्थे न
केवलं यावत्पातालस्थे लग्नाच्चतुर्थे धर्मस्थानं प्राप्ते नवमगते शेषैरन्यग्रहैः रवि-
भौमबुधगुरुसौरैः दुश्चिक्याङ्गप्राप्तिप्राप्तैः तृतीयलग्नैकादशस्थानस्थैः जातो
भूमेः पृथिव्याः स्वाम्यधिपतिर्भवति । तत्रैतज्जातम् । कुम्भे लग्ने वृषे शुक्रः तुले
चंद्रः शेषा ग्रहा यथासंभवं मेषकुम्भधन्विस्थाः । एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो
राजा भवति । अन्यकुलजो धनवान् । अथवा कर्कटो लग्नम्, तुले शुक्रः, मोने
चंद्रः, शेषाः ग्रहा यथासम्भवं कन्याकर्कटवृषस्थाः एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो
राजा भवत्यन्यकुलजो धनवान् ॥ १५ ॥

भाषा—शुक्र वृष या तुला में होकर चतुर्थ भाव में हो, चन्द्रमा नवम स्थान में
हो, शेष सब ग्रह २, १, ११ भाव में हो तो इस योग में उत्तर मनुष्य भूमिपति (राजा)
होता है ॥ १५ ॥

अथान्यराजयोगं नवमालिकयाह—

सौम्ये वीर्ययुते तनुयुक्ते वीर्याढ्ये च शुभे शुभयाते ।

धर्मार्थोपचयेष्ववशेषैर्धर्मात्मा नृपजः पृथिवीशः ॥ १६ ॥

सौम्य इति ॥ सौम्ये बुधे वीर्ययुक्ते कालादिबलैः युक्ते तथाभूते तनुयुक्ते
लग्नस्थे शुभे शुभगते शुभे शुभग्रहे गुरुसितयोरन्यतमे यथासम्भवं वीर्याढ्ये
च सबले शुभयाते धर्मस्थानगते नवमगत इत्यर्थः । शुभे सुखयात इति केचित्
पठन्ति । चतुर्थस्थानस्थ इत्यर्थः । अवशेषैः परिशिष्टग्रहैः यथासम्भवं धर्मा-
र्थोपचयेषु नवमद्वितीयत्रिषडैकादशदशमानामन्यतमस्थानस्थितैः एवंविधे
योगे जातो नृपजो राजपुत्रो राजा भवति । धर्मात्मा च । अन्य कुलजो
धनवान् ॥ १६ ॥

भाषा—बुध बली होकर लग्न में हो और अन्य शुभग्रह (गुरु या शुक्र या पूर्ण चन्द्र) बली होकर नवम भाव में हो, शेष ग्रह ९:२३:६।१०।११। में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न राजा का बालक ही धर्मात्मा राजा होता है ॥ १६ ॥

अथान्यद्राजयोगद्वयं वंशस्थेनाह—

वृषोदये मूर्तिधनाश्लिभागैः शशाङ्कजीवार्कमुतापरैर्नृपः ।

सुखे गुरौ खे शशितीक्ष्णदीधिति यमोदये लाभगतैर्नृपोऽपरैः ॥ १७ ॥

वृषोदय इति ॥ वृषोदये वृषलग्ने तथा शशाङ्कजीवार्कमुतापरैः चन्द्र-गुरु-सौरैरपरैश्च रविकुजबुधसितैः यथासंख्यं मूर्तिधनाश्लिभागैः लग्नद्वितीयषष्ठै-कादशस्थैः जातो नृपो राजा भवति । तत्रैतज्जातम् । वृषलग्ने सचन्द्रे मिथुनस्थे जीवे तुलास्थे सौरै मीनस्थैः रविकुजबुधसितैः जातो राजपुत्रो राजा भवति । अन्यकुलजो धनवान् । सुखे गुराविति । गुरौ जीवे सुखे चतुर्थस्थानस्थे खे दशमे शशितीक्ष्णदीधिति चन्द्रार्कौ यमोदये शनैश्चरे लग्नगते अपरैरन्यै-भौमबुधशुक्रैः लाभगतैरेकादशस्थैः जातो नृपो राजा भवति । तत्रैतज्जातम् । शनैश्चरो लग्ने चतुर्थे जीवः दशमे सूर्यचन्द्रौ भौमबुधशुक्रा एकादशे एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवति । अन्यकुलजो धनवान् भवति ॥ १७ ॥

भाषा—वृष लग्न हो, लग्न में चन्द्रमा, द्वितीय भाव में गुरु, षष्ठम भाव में शनि और शेष ग्रह (रवि, मंगल, बुध, शुक्र) एकादश भाव में हो तो जातक (राजपुत्र) राजा होता है । तथा चतुर्थभाव में गुरु हो, दशमभाव में चन्द्र रवि हो, लग्न में शनि और शेष ग्रह एकादश भाव में हो तो राजा होता है ॥ १७ ॥

अथान्यराजयोगद्वयं वसन्ततिलकेनाह—

मेघूरणायतनुगाः शशिमन्दजीवा

ज्ञारौ धने सितरवी हिबुके नरेन्द्रम् ।

वक्रासितौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्या

होरासुखास्तशुभखाप्तिगताः प्रजेशम् ॥ १८ ॥

मेघूरणायतनुगा इति ॥ शशिमन्दजीवाः चन्द्रसौरगुरवः यथासंख्यं मेघू-रणायतनुगा दशमैकादशलक्षस्थाः ज्ञारौ बुधभौमौ धने द्वितीयस्थाने सितरवी शुक्रार्कौ हिबुके चतुर्थे एवंविधे योगे जातो नरेन्द्रो नृपो भवति । तत्रैतज्जातम् । दशमे चन्द्रः एकादशे सौरः लग्ने जीवः द्वितीये बुधभौमौ चतुर्थे शुक्रार्कौ एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवत्यन्यकुलजो धनवान् । वक्रासिता-विति । वक्रासितौ भौमसौरौ शशिसुरेज्यसितार्कसौम्याः चन्द्रगुरुशुक्रसूर्यबुधः यथासंख्यं होरासुखास्तशुभखाप्तिगताः लग्नचतुर्थसप्तमनवमदशैकादशस्थाः भवन्ति तदा जातः प्रजेशो राजा भवति । तत्रैतज्जातम् । भौमसौरौ लग्नगतौ चतुर्थे चन्द्रः सप्तमे जीवः नवमे शुक्रः दशमे सूर्यः एकादशे बुधः एवंविधे योगे जातो राजपुत्रो राजा भवत्यन्यकुलजो धनवान् ॥ १८ ॥

भाषा — दशमभाव में चन्द्रमा, एकादश में शनि, लग्न में गुरु, द्वितीय भाव में बुध मंगल और चतुर्थ भाव में शुक्र रवि हो तो इस योग में जातक राजा होता है। तथा मंगल शनि लग्न में, चन्द्रमा चतुर्थ में, गुरु सप्तम में, शुक्र नवम भाव में, रवि दशम भाव में और बुध एकादश भाव में हो तो जातक भूगति (राजा) होता है ॥ १८ ॥

अथ राजयोगजातस्य कस्मिन्काले राज्यवाप्तिर्भविष्यति तत्तज्ज्ञानं स्वागतयाह—

कर्मलभ्युत्पादकदशायां राज्यलब्धिरथवा प्रबलस्य ।

शत्रुनीचगृह्यातदशायां छिद्रसंश्रयदशा परिकल्प्या ॥ १९ ॥

कर्मलभ्युत्पादकदशायामिति ॥ राजकर्तृणां ग्रहाणां मध्याद्यो ग्रहः कर्मणि लग्नादशमे स्थितः यश्च राजयोगकर्तृणां ग्रहाणां मध्याद्यो ग्रहः लग्नयुतो जन्मलग्नस्थः तस्याकदशायां तस्य सम्बन्धिनी या पाकदशान्तर्दशा वा भवति तत्र तस्य राज्यलब्धिर्भवति । अथ लग्नदशमयोः द्वयोःपि ग्रहौ भवतः तदा तयोर्द्वौ बलवान्स्तस्य दशायामन्तर्दशाकाले राज्यलब्धिः । अथ तत्र बहवो यदा भवन्ति तदा प्रबलस्य सर्वोत्तमबलस्यान्तर्दशाकाले अथवा प्रबलस्येति । अथ लग्नदशमौ यदा शून्यौ भवतस्तदा जन्मनि यः प्रबलः सर्वोत्तमबलस्तस्यान्तर्दशाकाले एव राज्यदः स्यात् । बहुष्वन्तर्दशासु यस्मिन्नन्तर्दशाकाले चारवशादतिबलवत्त्वं सम्भवति तस्यामेवान्तर्दशायां राज्यप्रदो भवति । शत्रुनीचगृहेति । लब्धराज्यस्यापि जन्मकाले शत्रुक्षेत्रस्थेन वा ग्रहेण यान्तर्दशा दत्ता तस्यां तस्मिन्बलवति राज्यहरणं वाच्यम् । यतः सा छिद्रदशा विबलेऽपि तस्मिन्नापद्भवति । सा च संश्रयदशा परिकल्प्या । तस्यामन्तर्दशायां संश्रयं कार्कम् । दैवयुक्तनृपसंश्रयगुणान्त्तन्मोक्षोऽपि । वक्ष्यति । च यात्रायाम् । “अरिकोपहतदशायां जन्मोदयनाथशत्रुपाके च । स्वदेशेशकारकदशाः संश्रयणीयो नरेन्द्र इति ॥” अत्र च भगवान्गार्गिः ।

“लग्नगः कर्मगो वा स्यादथवा प्रबलोऽपि यः ।

सः स्यात्स्यान्तर्दशाकाले राज्यदः प्रबलो यदा ॥

नीचारिगृहसंस्थस्य दशायां प्रबलस्य च ।

च्युतिर्बलविहीनस्य तन्मोक्षः परसंश्रयात् ॥” इति ॥ १९ ॥

भाषा—जन्म समय में दशम भाव या लग्न में जो ग्रह हो उसकी दशा में राज्य की प्राप्ति होती है । दशम या लग्न में बहुत ग्रह हों तो उनमें जो अधिक बलवान् हो उसकी दशा अन्तर्दशा में, यदि दशम स्थान या लग्न में कोई ग्रह नहीं हो तो सब ग्रहों में जो बलवान् हो उसकी दशा में राज्य लाभ सम्झना चाहिये । यदि दशम या लग्नगत ग्रह व.शु राशि या नीच राशि का हो तो उसकी दशा अन्तर्दशा में राज्य की हानि, अन्य राजाओं के संश्रय से राज्य प्राप्ति आदि कल्पना कर सम्झना चाहिये ॥ १९ ॥

विशेष अर्थ—लग्नेश और दशमेश में अथवा दशमेश नवमेश में परस्पर सहयोग दृष्टि आदि सम्बन्ध हो तो उसकी दशा में अवश्य राज्यलाभ होता है। स्पष्टार्थ लघु-पाराक्षरी देखिये ॥ १९ ॥

अथ भोगिनां शबरदस्युस्वामिनां च जन्मज्ञानं मालिन्याह—

गुरुसितबुधलग्ने सप्तमस्थेऽर्कपुत्रे

वियति दिवसनाथे भोगिनां जन्म विन्ध्यात् ।

शुभबलयुतकेन्द्रैः क्रूरमस्थैश्च पापै-

र्व्रजति शबरदस्युस्वाप्तितामर्थाभाक्च ॥ २० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

राजयोगाध्याय एकादशः ॥ ११ ॥

गुरुसितबुधलग्ने इति ॥ गुरुसितबुधाः जीवशुक्रसौम्याः एषामन्यतमे लग्नगते अर्कपुत्रे सौरे सप्तमस्थे दिवसनाथे सूर्ये वियति दशमस्थानगते एवं-विधे योगे भोगिनां जन्म भोगवतां विद्याउजातः सदैव भोगवान्भवति । तस्यार्थविहीनस्यापि यतः कुतश्चिद्भोगावाप्तिर्भवति । रविबुधसितलग्ने इत्यत्र कैश्चित् रविबुधसितानां सम्बन्धितलग्न इति व्याख्यातम् । सिंहवृषतुलामिथुन-कन्यालग्नेष्विति । यतो दशमस्थेऽर्के लग्ने बुधसितयोरवस्थानं न सम्भवति । आचार्येण वराहमिहिरेण पूर्वशास्त्रानुसारेणायं योगः कृतः । अत्र च भगवान्नाभिः । “जीवज्ञभागवैलङ्गने सप्तमस्थेऽर्कनन्दने । दशमस्थे रवौ जातो भोग-वान्पुरुषो भवेत् ॥” शुभबलयुतकेन्द्रैरिति । शुभग्रहसम्बन्धिनो राशयः ते च सबला यस्य केन्द्रगता भवन्ति तैस्तथाभूतैस्तथा पापैः क्रूरग्रहैः क्रूरमस्थैः पाप-राश्याश्रितैः यस्य जन्म भवति स शबराणां पुलिन्दानां दस्यूनां चौराणां स्वामित्वं व्रजति गच्छति । अर्थाभागे भाग्यवान् धनवांश्च भवति । शुभबल-युतकेन्द्रैरिति । अत्र शुभग्रहैः बलयुतैः केन्द्रगतैरिति कैश्चिद्व्याख्यातम् । तच्चायुक्तम् । यस्माद्भगवान्नाभिः ।

“पापक्षेत्रगतैः पापैः केन्द्रस्थैः सौम्यराशिभिः ।

सबलैर्यस्य जन्म स्यात्स्यादसौ दस्युनायकः ॥” इति ॥ २० ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तो राजयोगाध्याय एकादशः । ११ ।

भाषा—जिसी भी लग्न में बुध गुरु और शुक्र हो, सप्तम स्थान में शनि, दशम स्थान में रवि हो तो ऐसे योग में उत्तम मनुष्य भोगी (सुख भोगनेवाला) होता है । तथा शुभ राशिगत शुभ ग्रह केन्द्र में हो और पाप ग्रह क्रूर राशियों में जिस किसी स्थान में हो तो ऐसे योग में जन्म लेने वाला चोर डाकू आदि का सरदार होता है तथा धनी भी होता है ॥ २० ॥

अथ नाभसयोगाध्यायः १२ ।

अथातो नाभसयोगाध्यायो व्याख्यायते । नाभसयोगानां चत्वारो विकल्पः । तत्राकृतियोगा एको विकल्पः । आकृतियोगाः संख्यायोगा आश्रययोगाश्च विकल्पत्रयम् । आकृतियोगाः सङ्ख्यायोगा आश्रययोगा दलयोगौ चेति विकल्पचतुष्टयम् । तत्र विंशतिराकृतियोगाः । सप्तसंख्यायोगाः । त्रय आश्रययोगाः । द्वौ दलयोगौ । तत्र द्वित्रिचतुर्विकल्पजानां योगानां संख्याज्ञान-मौपच्छन्दसिकेनाह—

नवदिग्वसवस्त्रिकाग्निवेदैर्गुणिता द्वित्रिचतुर्विकल्पजाः स्युः ।

यवनैस्त्रिगुणा हि षट्शता सा कथिता विस्तरतोऽत्र तत्समासः ॥१॥

नवदिगिति ॥ नव प्रसिद्धाः दिक्छन्देन दश उच्यते वसवोऽष्टौ एते यथासंख्यं त्रिकाग्निवेदैः गुणिताः त्रिकशब्देन त्रय एव उच्यते अग्निशब्देन त्रयः वेदाश्चत्वारः एतैर्गुणिताः । तद्यथा । नवदिग्वसवः (६।१० ८) एते यथासंख्यं त्रिकाग्निवेदैः (३।३।४) एतैर्गुणिता जाताः (२७ ३०।३२) एते यथासंख्यं द्वित्रिचतुर्विकल्पजा भवन्ति । एतदुक्तं भवति । आकृतियोगा विंशतिः संख्यायोगाः सप्त एवमाकृतिसंख्याविकल्पद्वयेन सप्तविंशतियोगाः भवन्ति । आश्रययोगास्त्रयः । आकृतिसंख्या आश्रयकृतेन विकल्पत्रयेण त्रिंशत् (३०) दलयोगौ द्वौ । आकृतिसंख्या आश्रयदलयोगकृतेन विकल्पचतुष्केण द्वात्रिंशत् (३२) एवं द्वित्रिचतुर्विकल्पजा योगाः स्युः भवेयुरिति । यवनैस्त्रिगुणा हीति । पुराणयवनैः त्रिगुणा हि षट्शती कथिता । षण्णां शतानां समाहारः षट्शती सा च त्रिगुणा अष्टादशयोगशतान्यभिहितानोत्थः (१८००) । ननु स्फुजि-ध्वजेन किमुक्तम् । उच्यते । नाभसयोगानामानन्त्यम् । तथा च तद्वाक्यम् । “संस्थानसादृश्यमनन्तकं स्याद्द्रव्याणि नानाप्रकृतीनि दृष्ट्वा ।” इति कथं पुराणयवनैरष्टादशशतान्यभिहितानि । उच्यन्ते । आकृतियोगास्त्रयोविंशति-रैरभिहिताः संख्यायोगानां सप्तविंशत्यधिकं शतं भवति । एवं सार्द्धं शतं भवन्ति । तच्चैकैकं राशिं लग्नगतमधिकृत्योक्तम् । तस्मात्लग्नद्वादशकेनाष्टा-दशयोगशतानि भवन्ति । यस्मात्सार्द्धं शतं द्वादशहृतमष्टादशशतानि भवन्ति । एतेषामुत्पत्तिमध्यायान्ते प्रदर्शयिष्यामः । विदिताध्यायार्थस्य सुखावबोधत्वात् । एवं यवनैस्त्रिगुणा षट्शती विस्तरतः कथितोक्ता । अत्रास्मिञ्छास्त्रे तत्समासः तत्संक्षेपः क्रियते । विस्तरस्य समासोऽभिधीयत इति । पूर्वप्रदर्शिता द्वात्रिंश-देवाभिधीयन्ते । तत्फलेष्वन्यफलानां समानत्वात् । द्वात्रिंशत्स्वेव योगेष्वष्टा-दशयोगशतान्यन्तर्भवन्तीति ॥ १ ॥

भाषा—(इस द्वादश अध्याय में योगों के जो चार (४) विकल्प हैं उनमें)
२ विकल्प मिलाकर ३ × ९ = २७ सत्ताइस । तीन विकल्प मिलाकर ३ × १० = ३० तीस, चारों विकल्प मिलाकर ८ × ४ = ३२ बत्तीस योग मात्र कहे गये हैं । पुराण

यवनों ने तो इसके १८०० भेद कहे हैं। हमने यहाँ उन्हीं को संक्षेप में कह दिया है ॥ १ ॥

विशेष अर्थ—आकृति योग २०, संख्या योग ७, आश्रय योग ३ और दलयोग २, इनमें दो विकल्प मिलकर २७, तीन मिलकर ३०, एवं चारों मिलाकर ३२ बत्तीस होते हैं, जो आगे कहे गये हैं।

पुराण यवनाचार्यों के आकृतियोग २३ और ७ ग्रहों से एकद्विव्यादि विकल्प से “एकाद्येकोत्तरा अङ्का व्यस्ता भाज्याः कमस्थितैः । परः पूर्वेण संगुण्य तत्परस्तेन तेन च ॥” इत्यादि पाटीगणित रीति से, अथवा “पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनाऽन्ये प्रवदन्ति संख्याम् । इच्छाविकल्पैः त्रयशोऽभिनीय नीति निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः” इत्यादि बराहसहितोक्त भेद नयन विधि से एकादि सतपर्यन्त कुल भेद १२७ होते हैं। एवं संख्यायोग और आकृतियोग दोनों मिलाकर १५० भेद हुए। एक लग्न में यदि १५० तो १२ लग्न में कितने ? इस अनुपात से $१५० \times १२ = १८००$ योग के भेद होते हैं। किन्तु सबों का अन्तर्भाव बराहमिहिर कथित ३२ योगों में ही हो जाता है। इसलिये आचार्य यहाँ केवल मुख्य ३२ योग कहे हैं।

आश्रास्थ द्वादश राशि चक्र में (लग्नादि द्वादश भाव में) ग्रहों की स्थिति से जैसी जिसकी आकृति होती है उसी प्रकार के उसका फल भी होता है। इसलिये तदनुसार २० योग आकृति नाम से कहे गये हैं।

एवं चर, स्थिर और द्विस्वभाव के आश्रय से बनने के कारण ३ योग आश्रय नाम से कहे गये हैं। तथा केन्द्र में शुभ और पापग्रह की स्थिति से २ योग बनते हैं। इसलिये इन दोनों में प्रत्येक दल (अर्ध योग) कहे गये हैं।

तथा ग्रहों की १ आदि राशि संख्या में स्थिति से ७ योग संख्या नाम से व्यवहृत है।

नोट—ग्रन्थ विस्तार भय से सब योगों की आकृति न लिखलाकर कुछ योगों की आकृति ही यथास्थान दिखलाई है ॥ १ ॥

अथाश्रययोगत्रयं दलयोगद्वयं चौपच्छन्दसिकेनाह—

रज्जुर्मुशलं नलश्चराद्यैः सत्यश्चाश्रयजाज्ञगाद योगान् ।

केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यौ स्रक्सर्पौ कथितौ पराशरेश ॥ २ ॥

रज्जुर्मुशलमिति ॥ चराद्यैः चरस्थिरद्विस्वभावराशिग्रहसंयुक्तैः यथासंख्यं रज्जुर्मुशलं नलश्चेति योगत्रयं भवति । तद्यथेकस्मिंश्चरराशौ चरराशिद्वये चरराशित्रये चरराशिचतुष्के वा यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति स्थिरराशयो द्विस्वभावराशयश्च सर्वे शून्या भवन्ति तदा रज्जुर्नामयोगो भवति । एवमेकस्मिन्स्थिरराशौ राशिद्वये राशित्रये राशिचतुष्के वा यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति चरराशयो द्विस्वभावराशयश्च शून्या भवन्ति तदा मुशलं नाम योगो भवति ।

एवमेकस्मिन्निद्वस्वभावराशौ राशिद्वये राशित्रये राशिचतुष्के वा यदा सर्वे
 ग्रहाः भवन्ति चरराशयः स्थिरराशयश्च शून्या भवन्ति तदा नलाख्यो योगो
 भवति । एतानाश्रयजांस्त्रीन्योगान्सत्याचार्यो जगाद् उक्तवान् । केचित्सत्य-
 स्वाश्रयजानिहाह योगानिति पठन्ति । इहामिन्प्रकरणे आहोक्तवानिति । तथा
 च सत्यः । “सर्वे चरेषु, राशिषु यदा स्थिता योगमाह तं रज्जुम् । अनर्थाप्रियस्य
 सततं विदेशवासाथ्युक्तस्य ॥ सर्वे स्थिरेषु राशिषु यदा मुशलमाह त योगम् ।
 जन्मनि कर्मकराणां युक्तानामर्थमानाभ्याम् ॥ द्विशरीरेषु नल इति योगो
 हीनतिरिक्तदेहानाम् । निपुणानां पुरुषाणां धनसंचयभोगिनां भवति ॥” अत्र
 कैश्चिद्व्याख्यातम् । चरराशिचतुष्के सदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा रज्जुः
 स्थिरराशिचतुष्के मुशलं द्विःस्वभावराशिचतुष्के नल इति । तच्चाहुक्म् । य-
 स्माद्भगवान्गार्गिः । “एको द्वौ वा त्रयः सर्वे चरा युक्ता यदा ग्रहैः । चरयोग-
 स्तदा रज्जुः शीर्ष्याणां जन्मदो भवेत् ॥ स्थिराश्चेन्मुशलं नाम मानिनां जन्म-
 कृन्तृणाम् । द्विस्वभावो नलाख्यस्तु धनिनां परिकीर्तितः ॥” एवमाश्रययोगत्रयं
 व्याख्यातं सत्यमतेन । तथा च सत्यः । “चरराशिर्गैर्ग्रहेन्द्रैः स्थिरराशिर्गतै-
 स्तथा मुशलम् । द्विशरीरगतैर्योगो नलसंज्ञो मुनिभिरुद्दिष्टः ॥” अथ दलयोग-
 द्वयमुच्यते । केन्द्रैः सदसद्युतैरिति केन्द्रैः यथासंख्यं सदसद्युतैः सदग्रहैः
 सौम्यैर्युतैः दलाख्यो दलयोगः स्रग्माला नाम भवति । तथा केन्द्रैरसदग्रहैः
 पापग्रहयुक्तैः दलयोगः सर्पो नाम योगो भवति । एतदुक्तं भवति । येषु तेषु
 त्रिषु केन्द्रेषु सौम्यग्रहाः बुधगुरुशुक्राः यदा भवन्ति न कस्मिन्कश्चिकेन्द्रे पापो
 भवति तदा स्रङ्गनाम योगो भवति । अथ येष तेषु केन्द्रेषु पापाः सूर्यभौम-
 सौराः भवन्ति न कश्चिकेन्द्रे भवति सौम्यग्रहः तदा सर्पो नाम योगो भवति ।
 नन्वत्र योगद्वये केन्द्रैः सदसद्युतैर्दलाख्यावित्युक्त्या त्रिषु किमिति व्याख्यातम् ।
 यस्माच्छुक्लपक्षकृष्णपक्षयोश्चन्द्रस्य सौम्यत्वं पापत्वं च सम्भवति एवंस्थिते
 तदा सौम्याक्रान्तेषु त्रिषु केन्द्रेषु क्षीणश्चन्द्रमा यदा चतुर्थो भवति अथवा
 पापाक्रान्तेषु त्रिषु केन्द्रेषु क्षीणश्चन्द्रमा यदा चतुर्थो भवति तदापि स्रक्सर्पो
 योगौ भवतः । तच्चतुर्थं केन्द्रेषु किमिति न व्याख्यातम् । उच्यते नैवम् ।
 यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम् । “केन्द्रत्रयगैः पापतर्दैर्दलाख्या वहिश्च माला
 च ॥” अत्र सौम्यादयः पापास्त्रय इति कथं ज्ञायन्ते । यथानयोर्द्वयोर्मध्ये
 चन्द्रमास्तृतीयो न भवति । उच्यते । भगवता गार्गियोक्तम् । “त्रिकेन्द्रगैर्य-
 मारकैः सर्पो दुःखितजन्मदः । भोगिजन्मग्रहा माला तद्वज्जीवसितेन्दुजैः ॥”
 स्रग्योगः पापवर्जितकेन्द्रेषु सर्पः सौम्यवर्जितेष्विति कथं ज्ञायते । उच्यते ।
 बादरायणेनोक्तम् । “केन्द्रेष्वपापेषु सितज्जिवैः केन्द्रत्रिसंयैः कथयन्ति
 मालाम् । सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमारसूर्यैर्योगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ ॥” एतौ
 दलयोगौ । द्वौ स्रक्सर्पो कथितौ पराशरेणोक्तौ । न त्वन्यैरप्युक्तौ । उच्यते
 अन्यैर्नोक्तौ पराशरेणोक्ताविति स्वशास्त्रे बराहमिहिरेणोक्तौ तथा च मथित्वः ।

“केन्द्रत्रयगतैः पापैः सौम्यैर्वा दलसंज्ञितौ । द्वौ योगौ सर्पमालाख्यौ विनष्टेष्ट-
फलप्रदौ ॥” एवमाश्रययोगत्रयमपि अन्यैरुक्तमन्यैर्नोक्तम् । अन्यैरुक्तत्वाद्ब्राह्-
मिहिरेण शास्त्रे संगृहीतम् । एवं दलयोगद्वयं व्यख्यातम् ॥ २ ॥

भाषा—सब ग्रह चर राशि में हों तो रज्जुयोग, सब स्थिर राशि में हों तो मुनलयोग, और यदि सब द्विस्वभाव राशि में हों तो नलयोग होता है । इन तीनों को सदाचार्य आश्रययोग कहे हैं । एवं यदि शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक, ये तीनों) ३ केन्द्र में हो तो ये दो प्रकार के दलयोग होते हैं । इन दलयोग को पराशर क्रम से म.ला और सर्प नाम से कहे हैं । अर्थात् शुभग्रह से युत केन्द्र हो तो माला और पाप ग्रह से युत हो तो सर्प ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ चर आदि के स्थान में किसी ने चारों चर, चारों स्थिर, चारों द्विस्वभाव ऐसा अर्थ किया है । परन्तु वह मुनि-वचनों में विरुद्ध है । यथा भगवान् गार्गी—

एको द्वौ वा त्रयः सर्वे, चरा युक्ता ग्रहैर्यदा ।

चरयोगस्तदा रज्जुः शीष्पणां जन्मदो भवेत् ॥” इत्यादि ।

तथा दल योग में चन्द्रमा को शुभ और अशुभ दोनों से भिन्न समझकर छोड़ दिया गया है । क्योंकि चन्द्रमा में स्वाभाविक शुभत्व सर्वदा नहीं रहता है । पाप-साहचर्य से पापत्व आता है । यथा भगवान् गार्गी का वचन है—

“त्रिकेन्द्रगैर्यमाराकैः सर्पौ दुःखितजन्मदः ।

भोगिजन्मप्रदा माला तद्विजिवसितेन्दुर्जः” इति ॥

यहाँ भी केन्द्र में केवल शुभ या केवल पापग्रह से ही दल योग होता है । यथा वादरायण—

“केन्द्रेष्वपापेषु सितज्ञावीर्यः केन्द्रत्रिसंस्थैः कथयन्ति मालाम् ।

सर्पस्त्वसौम्यैश्च यमाऽऽर-सूर्ययोगाविमौ द्वौ कथितौ दलाख्यौ ॥” ॥ २ ॥

अथान्यैराचार्यैरेन प्रकारेणाश्रययोगत्रयं दलयोगद्वयं च व्याख्यातं तत्कारणमुपजातिकथाह—

योगा व्रजन्त्याश्रयजाः समत्वं यवाब्जवज्राण्डजगोलकाद्यैः ।

केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलौ दलाख्यावित्याहुरन्ये न पृथक्फलौ तौ ॥ ३ ॥

योगा व्रजन्तीति ॥ आश्रयजा योगा रज्जुमुशालनलाख्या आकृतियोगैः यवाब्जवज्राण्डजगोलकाद्यैः यवपद्मवज्रविहङ्गगोलकैः आदिग्रहणाद्गदाशक-
टाभ्यां च तथा संख्यायोगैः गोलकाद्यैः गोलकयुगशूलकेदारैः संख्यायोगैः आश्रयजा योगास्तुल्यतां समत्वं व्रजन्तीत्यतोऽन्यैर्नोक्ताः । तद्व्यतिरेकेणा-
ष्टाश्रययोगानामवकाशोऽस्तीति ब्राह्मिहिरेणोक्ताः यैश्च योगैः समतां यास्यन्ति । यत्र चैतेषामनवकाशस्तदध्यायान्ते व्याख्यास्यामः । केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलाविति । दलाख्यौ दलयोगौ द्वौ केन्द्रोपगैः प्रोक्तफलौ कथितफलौ केन्द्रोपगतैः ग्रहैः प्रोक्ते फले यथोः । केन्द्रत्रयगैः केन्द्रस्थानां शुभग्रहाणां शुभं

फलमुक्तमशुभानामशुभमिति । अत एवेमौ प्रोक्तफलौ कथितफलौ । उक्तं च वराहमिहिरेण । “केन्द्रत्रिकोणेषु शुभाः प्रशस्तास्तेष्वेव पापा न शुभप्रदाः स्युः ।” केन्द्रत्रिकोणैः शुभैः शुभं फलं भवतीति मत्ता नोक्ता । एवं केन्द्र-त्रयैः पापैः पापफलं भवतीति सर्वे नोक्तः । एवमन्ये अपरे आहुः कथयन्ति । तथा तौ न पृथक्फलावुक्तार्थात्वात् । यद्येवं तर्हि किमर्थं वराहमिहिरेणोक्ता-वित्यत्रोच्यते । नाभसयोगान्तर्भूतत्वात्समस्तदशास्वपि फलदौ भवतः । यदा केन्द्रोपगानां योगं विना फलमङ्गाक्रियते तदा स्वदशाभ्येव फलं प्रयच्छन्ति । एतच्च पराशरादीनां मतम् । तेषां मतं यथा नाभसयोगावेतौ समस्तदशास्वपि फलप्रदौ अतो न वराहमिहिरेणोक्तौ ॥ ३ ॥

भाषा—ये नीनो आश्रययोग—यव, कमल, वज्र, विहग, गोल इत्यादि योग जो आगे कहे जायेंगे, उन्हीं के सदृश (अर्थात् उन्हीं लक्षणों से युक्त होने के कारण उन्हीं योगों के अन्तर्गत्) होते हैं । तथा केन्द्रों में शुभाशुभ ग्रह होने से जो दो दल योग कहे गये हैं वे भी यवादि योग से पृथक् फल देनेवाले नहीं हैं ऐसा अन्य आचार्यों ने कहा है ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—जब अन्य कितने आचार्यों ने आश्रय और दल योग नहीं कहे तो फिर वराहमिहिर ने क्यों कहे ? इसका कारण स्वयं आगे कहेंगे ॥ ३ ॥

अथाकृतियोगान्पञ्च गदाशकटविहङ्गशृङ्गाटकहलाख्यान्वसन्ततिलकेनाह—
आसन्नकेन्द्रभवनद्वयगैर्गदाख्यस्तन्वस्तगेषु शकटं विहगः खबन्धवोः ।

शृङ्गाटकं नवमपञ्चमलग्नसंस्थैर्लग्नान्यगैर्हलमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४ ॥

आसन्तेति ॥ आसन्ने निकटवर्तिनि । केन्द्रभवनद्वये कण्टकराशियुग्मे यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा गदाख्यो योगो भवति । स च चतुः प्रकारः । लग्न-चतुर्थस्थैः सर्वग्रहैरेकः । चतुर्थसप्तमस्थैर्द्वितीयः । सप्तमदशमस्थैस्तृतीयः । दश-मलग्नस्थैश्चतुर्थः । तन्वस्तगेष्विति । तन्वस्तगेषु लग्नसप्तमगेषु सर्वग्रहेषु शकटं भवति । खबन्धवोः दशमचतुर्थयोः स्थितेषु सर्वग्रहेषु विहगाख्यो योगः । नवम-पञ्चमलग्नस्थैः सर्वग्रहैः शृङ्गाटकाख्यो योगो भवति । लग्नान्यगैर्हलमिति । लग्नं वर्जयित्वा यथासम्भवमन्ये सर्वे ग्रहाः परस्परं त्रिकोणगता भवन्ति तदा हल-मिति योगः तज्ज्ञाः होराशास्त्रपरिडिताः प्रवदन्ति कथयन्ति । स च त्रिप्रकारः । द्वितीयषड्दशमस्थैः सर्वग्रहैरेकः । तृतीयसप्तमैकादशस्थैर्द्वितीयः प्रकारः । चतु-र्थीष्टमद्वादशस्थैस्तृतीयः प्रकार इति ॥ ४ ॥

भाषा—समीपस्थ दो दो केन्द्र (यथा लग्न चतुर्थ, चतुर्थ सप्तम, सप्तम दशम, दशम लग्न) में सब ग्रह पड़े तो गदा नामक योग होता है । तथा लग्न सप्तम में सब ग्रह हो तो शकट, और दशम चतुर्थ में सब ग्रह हो तो विहग (पक्षी) योग होता है । तथा लग्न पञ्चम और नवम (इन त्रिकोण) में सब ग्रह हो तो शृङ्गाटक योग होता है । इस प्रकार लग्न से भिन्न (२, ३, इनमें किसी) स्थान से यदि परस्पर त्रिकोण में सब ग्रह पड़े तो हल नामक योग होता है ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—समीप के दो दो केन्द्र में ग्रहों के होने से पुराण यवनाचार्यों ने ४ नाम से चार योग बहे हैं। जैसे—(१) लग्न चतुर्थ में गदा। चतुर्थ सप्तम में शंख, सप्तम दशम में वज्र, दशम लग्न में सब ग्रह हो तो ध्वज नामक योग होता है। इसलिये उनके मत में अ कृति योग २३ होते हैं। बराहमिहिर ने इन चारों का नाम 'गदा' ही रक्खा है, इसलिये इनके मत में २० आकृति योग हैं ॥ ४ ॥

अथ वज्रयवकमलवापीसंज्ञं योगचतुष्टयं वैतालीयेनाह—

शकटाण्डजवच्छुभाशुभैर्वज्रं तद्विपरीतगैर्यवः।

कमलं तु विमिश्रसंस्थितैर्वापी तद्यदि केन्द्रबाह्यतः ॥ ५ ॥

शकटाण्डजेति ॥ शकटवच्छुभैः षडवस्थितैरण्डजवदशुभैश्च वज्रं भवति ः एतदुक्तं भवति। लग्नसप्तमयोः सौम्याश्चतुर्थदशमयोश्च पापा भवन्ति। नान्यत्र केचित्तदा वज्राख्यो योगो भवति तद्विपरीतगैर्यवः। त एव ग्रहा यदि विपरीतगता भवन्ति तदा यवाख्यो योगो भवति। शकटवदशुभाः अण्डजवच्छुभाः। एतदुक्तं भवति। लग्नसप्तमयोः पापाः स्थिताः चतुर्थदशमयोश्च शुभाः स्थितास्तदा यवाख्यो योगो भवति। कमलं त्विति। एतैरेव सौम्यपापैः विमिश्रसंस्थितैश्चतुर्ष्वपि केन्द्रेषु समवस्थितैः कमलाख्यो योगो भवति। तदेव कमलं यदि केन्द्रोबाह्यतो भवति तदा वापीसंज्ञा योगः। एतदुक्तं भवति। सर्वैरेव केन्द्रोबाह्यतः स्थितैः केन्द्राणि वर्जयित्वान्यत्र पणफरापोक्लिमेषु स्थितैस्तदेव कमलं वापीसंज्ञं भवति योगः। पणफरेषु चतुर्ष्वपोक्लिमेषु चतुर्विंति ॥ ५ ॥

भाषा—यहाँ बराहमिहिर का आशय है कि—सब शुभ ग्रह शकटवत् (लग्न और सप्तम में) हो तथा सब पाप ग्रह विहगवत् (दशम चतुर्थ में) हो तो वज्र योग होता है। इससे विपरीत अर्थात् सब पाप ग्रह लग्न सप्तम में और सब शुभ ग्रह दशम चतुर्थ में हो तो यव योग होता है। और पाप शुभ ग्रह दोनों मिलकर ही केन्द्र में हो तो मलयोग, और मिश्रित सर्व ग्रह यदि केन्द्र से भिन्न स्थान में (अर्थात् सब पणफर या आपोक्लिम में ही) हो तो दोनों ही दशा में वापी नामक योग होता है ॥ ५ ॥

विशेष अर्थ—इस प्रकार बराहमिहिराचार्य का आशय असङ्गत है। जो स्वयं आगे श्लोक में प्रकट करते हैं। इसलिये यहाँ वैकल्पिक अर्थ किया जाय तो प्राचीन आचार्य और बराहमिहिर के वाक्य सङ्गत हो जाते हैं। यथा—

सं०—“शकटाण्डजवच्छुभाशुभैः (शकटवच्छुभैः, अण्डजवदशुभैर्वास्थितैर्वज्रं वज्रयोगः) तद्विपरीतस्थितैर्यवो भवति। इति।

भाषा—शकटवत् (लग्न सप्तम में सब शुभ ग्रह, अथवा दशम चतुर्थ में सब पाप ग्रह हो तो वज्र योग) और इससे विपरीत अर्थात् लग्न सप्तम में सब पाप अथवा दशम चतुर्थ में सब शुभ ग्रह हो तो यव योग होता है। इस प्रकार अर्थ निर्दिष्ट होता है ॥ ५ ॥

(१) इसकी उपपत्ति—संक्षेप में यह है कि वज्रयोग में पूर्व और पश्चिम (१।७।) केन्द्र में सब शुभ ग्रह पड़ते हैं। इसलिये आदि (पूर्ववयस) और अन्त (पश्चिम वयस) में अपना शुभ फल देते हैं। इन्द्र के वज्र की आकृति ऐसी है कि उसके दोनों भाग (मूल और अग्र) में समान शक्ति रहती है। इसलिये आदि और अन्त में फल देने के कारण ही इसका नाम वज्र रखा गया।

(२) तथा मध्य केन्द्र (४।१०) में सब शुभ ग्रह के रहने से मध्य वयस में ही शुभ फल होता है। आदि अन्त में नहीं। इसलिये इसका नाम यव रखा गया है क्योंकि यव का मध्य भाग ही पुष्ट होता है। दोनों योगों के आचार्योक्त फलों के आगे १४ वें श्लोक में देखिये ॥ ५ ॥

अथ वज्रवयोः सम्भवोत्र न भवति तौ च मया पूर्वशास्त्रानुसारेण कृता-
वित्येतदनुष्ठुभाह—

पूर्वशास्त्रानुसारेण मया वज्रादयः कृताः ।

चतुर्थे भवने सूर्याज्ज्ञसितौ[१]भवतः कथम् ? ॥ ६ ॥

पूर्वशास्त्रानुसारेणेति । पूर्वशास्त्रानुसारेण पूर्वाचार्यैः मय्ययवनादिभिः
वज्राख्यो योगः कृतः यवाख्यश्च । तस्मान्मयापि कृतः । वज्रादय इति बहुवचन-
निर्देशोऽन्येषामेवम्प्रकाराणां प्रदर्शनार्थः । वज्रादयो योगा यद्यपि न सम्भवति
तथापि पूर्वशास्त्रानुसारेण मया कृता । तान्यनुसृत्य दृष्टेत्यर्थः । यतः सूर्यादा-
दित्याच चतुर्थे भवने चतुर्थराशौ पूर्वेण पश्चिमेन वा ज्ञसितौ बुधशुक्रौ कथं

[१] “तन्वस्तगेषु शकटं विहगः खञ्ज्वोः” इति पूर्वोक्तवचनेन यदि सर्वे ग्रहा
लग्नसप्तमस्थितास्तदा शकटो नाम योगः । यदा च सर्वे चतुर्थदशमस्थास्तदा विहगो
नाम योगः स्यात् । तथा च “शकटाण्डजवञ्छुभाशुभैर्वज्रं तद्विपरीतगैर्यवः” । एतेन
वचनेन यदि शुभग्रहा लग्नसप्तमयोः स्थितास्तथा चतुर्थदशमयोः पापग्रहाः स्युस्तदा
वज्रनामा योगः स्यात् । एवं लग्नसप्तमस्थेषु सर्वेषु पापग्रहेषु यदि सर्वे शुभग्रहाश्चतुर्थ-
दशमस्थितास्तदा यवो नाम योगोऽभिहितः प्राचीनाचार्यैः । परञ्चैतादृशानां योगानाम-
सम्भवत्वम् । यतो लग्नस्थे सूर्ये, चतुर्थेऽपि वा दशमे बुधशुक्रौ न भवितुमर्हतः । एवं
चतुर्थस्थे सूर्ये लग्नसप्तमयोर्बुधशुक्रौ कथञ्चिदपि नैव भवितुमर्हतः । यतो मध्यबुधशुक्रौ
मध्यमार्कतुल्यावेव । तथा स्पष्टबुधसूर्ययोः स्पष्टशुक्रसूर्ययोर्वा परमान्तरमेकराशितोऽधिकं
नैव भवितुमर्हति । यदि रविपरममान्दफलमृणं बुधशुक्रयोः परमफलद्वयं घनं, यदि वा
रवेः परमफलं घनं बुधशुक्रयोश्च फलद्वयं परमृणं तदा तदन्तरस्य परमत्वं स्यात् ।
तच्च गणितरीत्या रवेः परममन्दफलमंशादिकम् २।१।३१। तथा बुधपरमफलद्वययोगः
२।७।३३।३७ । रविरपरमफलेन सहितः २१।४।४।०८ एकराशितोरूप एव । अतः स्पष्ट-
सूर्यादग्रतः ५४तो वा किञ्चिदल्पेनैवैकराशिनान्तरितो बुधो भवितुमर्हति । एवं शुक्र-
स्यापि ज्ञेयम् तस्मात् सूर्याच्चतुर्थं भवने बुधशुक्रयोरसम्भवत्वाद्वाङ्मययोगयोरप्यसम्भव-
त्वमिति सयुक्तिकम् ।

भवतः । न कदाचिदर्कादयेऽस्तमये वा मध्याह्नाद्धरात्रयोः बुधशुक्रौ भवतः ।
आदित्ये मध्याह्नस्थेऽर्धरात्रस्थे वा तयोरुदयोऽस्तमयो वा न भवत्येव ॥ ६ ॥

भाषा—मय, यवन, मणित्य आदि पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ में देखकर मैंने भी वज्र
आदि योग के लक्षण कहे हैं । वास्तव में—वज्र और यव योग में तो सूर्य से चतुर्थ
स्थान में बुध और शुक्र पड़ते हैं यह किस प्रकार हो सकता है । अर्थात् इस प्रकार
का योग कभी हो ही नहीं सकता है ॥ ६ ॥

विशेष अर्थ—वराहमिहिराचार्य ने—“लग्नास्तगतैः सौम्यैः” इत्यादि पूर्वाचा-
र्योक्त वज्र, यव योग के लक्षण में विकल्प नहीं समझ कर मनमाना अर्थ किया कि—
‘लग्न सप्तम में बुध गुरु शुक्र और चतुर्थ दशम में शनि रवि मंगल हो तो वज्र योग
होता है’ इस प्रकार उनके मन में फिर आशंका हुई कि—‘यह योग किस प्रकार हो
सकता है ?’ क्योंकि इसमें तो सूर्य से चतुर्थ स्थान में बुध और शुक्र पड़ता है जो
सिद्धान्त गणित से सर्वथा असम्भव है । अतः सूर्य से बुध और शुक्र का परम अन्तर
२ राशि से अल्प ही सदा रहता है । इसी आशंका से इस विषय को यहाँ कह कर
अपने दोष को पूर्वाचार्यों के मध्ये मढ़ दिया । वराहमिहिर के समय में उनसे बढ़कर
कोई ज्योतिषी नहीं था, इसलिये इस बात को सबने मान लिया । उसके बाद भी
भट्टट्टेल आदि टीकाकारों ने भी इस पर ध्यान न देकर, वराहमिहिर के ही अर्थ का
समर्थन कर दिया ॥ ६ ॥

अथ यूपेषशक्तिदण्डाख्यं योगचतुष्टयमनुष्टुभाह—

कण्टकादिप्रवृत्तैस्तु चतुर्गृहगतैर्ग्रहैः ।

यूपेषुशक्तिदण्डाख्या होराद्यैः कण्टकैः क्रमात् ॥ ७ ॥

कंटकादीति ॥ होरा लग्नं तदाद्यैः केन्द्रैः क्रमात्परिपट्या लग्नकेन्द्रमादितः
कृत्वा चतुर्षु गृहेषु यथासम्भवं सर्वप्रहाणामवस्थानं भवति तदा यूपेषुशक्ति-
दण्डाख्याश्चत्वारो योगा भवन्ति । तद्यथा । लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थेषु चतु-
ष्वपि यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा यूपारूपो योगो भवति । अथ चतुर्थपञ्चम-
षष्ठसप्तमेषु चतुर्षु सर्वे एव ग्रहा भवन्ति तदेषुः शराख्यो योगः । अथ सप्तमा-
ष्टमनवमदशमेषु चतुर्षु सर्वे एव ग्रहा भवन्ति तदा शक्तियोगः । अथ दशमै-
कादशद्वादशलग्नेषु चतुर्षु सर्वे एव भवन्ति तदा दण्डयोग इति ॥ ७ ॥

भाषा—यदि लग्न से प्रारम्भ कर चतुर्थ पर्यन्त चारों स्थान में सब ग्रह हो तो
यूपयोग होता है, चतुर्थ से सप्तम पर्यन्त चारों राशि में सब ग्रह हो तो शर योग,
सप्तम से दशम पर्यन्त चारों घर में सब ग्रह हो तो शक्ति योग और दशम से लग्न
पर्यन्त चारों भाव में सब ग्रह हो तो दण्ड नामक योग होता है ॥ ७ ॥

अथ नौकूटच्छत्रचापाद्धचन्द्राख्यं योगपञ्चकमनुष्टुभाह—

नौकूटच्छत्रचापानि तद्वत्सप्तर्चसंस्थितैः ।

अर्द्धचन्द्रस्तु नावाद्यैः प्रोक्तस्त्वन्यर्चसंस्थितैः ॥ ८ ॥

नौकूटच्छत्रेति ॥ तद्वत्तेनैव प्रागुक्तेन प्रकारेण लग्नकेन्द्रादारभ्यैकस्मात्केन्द्रात्सप्तभिर्ग्रहैः सप्तर्क्षसंस्थितैः नौकूटच्छत्रचापसंज्ञयोगचतुष्टयं भवति । तद्यथा । लग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमेषु यदा सर्वे ग्रहास्तदा नौर्नाम योगो भवति । एवं चतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमनवमदशमेषु यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा कूटाख्यो योगो भवति । अथ सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशलगनेषु सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा छत्राख्यो योगः । अथ दशमैकादशद्वादशलग्नद्वितीयतृतीयचतुर्थेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा चापं चापाख्यो योगः । अर्द्धचन्द्र इति । नावाद्यैरेव योगैरन्यर्क्षसंस्थितैः अपरराशिष्ववस्थितैरर्धचन्द्राख्यो योगो भवति । नावाद्याः कण्टकेषूक्ताः तैश्चान्यर्क्षसंस्थितैः अपरराशिगतैः तेन पणफरेभ्यः आरभ्य निरन्तरं सप्तसु गृहेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्त्यापोक्लिमेभ्यो वा तदार्द्धचन्द्राख्यः स चाष्टप्रकारः । तद्यथा । द्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमे सप्तसु सर्वे ग्रहा यदा भवन्ति तदैकः । एवं तृतीयादिनवमान्तेषु द्वितीयः । पञ्चमादिष्वेकादशान्तेषु तृतीयः । षष्ठादिषु द्वादशान्तेषु चतुर्थः । अष्टमादिषु द्वितीयान्तेषु पञ्चमः । नवमादिषु तृतीयान्तेषु षष्ठः । एकादशादिषु पञ्चमान्तेषु सप्तमः । द्वादशादिषु षष्ठान्तेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदाऽष्टम इति ॥ ८ ॥

भाषा—पूर्वोक्त रीति से लग्न से आरम्भ कर सप्तम पर्यन्त सातों स्थान में सातों ग्रह हो तो नौका योग होता है, चतुर्थ से दशम पर्यन्त सातों स्थान में यदि सब ग्रह हो तो कूट योग, सप्तम से लग्न पर्यन्त सातों स्थान में ग्रह हो तो छत्र योग होता है और दशम से चतुर्थ पर्यन्त सातों स्थान में सब ग्रह हो तो चाप योग होता है । तथा केन्द्र से भिन्न (पणफर या आपोक्लिम) स्थान से आरम्भ होकर ७ स्थान पर्यन्त प्रति स्थान में सब ग्रह हो तो अर्धचन्द्र नामक योग होता है । ८ ॥

अथ समुद्रचक्राख्यौ द्वौ योगावनुष्ठुभाह—

एकान्तरगतैरर्थात्समुद्रः षड्गृहाश्रितैः ।

विलग्नदिस्थितैश्चक्रमित्याकृतिजसंग्रहः ॥ ९ ॥

एकान्तरेति ॥ अर्थाद्द्वितीयस्थानादारभ्यैकान्तरगतैर्ग्रहैः षड्गृहाश्रितैः षड्गृहादिषु व्यवस्थितैः सप्तभिर्ग्रहैः समुद्राख्यो योगो भवति । तद्यथा । द्वितीयचतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशेषु षट्सु यदा सप्त ग्रहा भवन्ति तदा समुद्राख्यो योगः । विलग्नदिस्थितैरिति । अनेनैव प्रकारेण विलग्नान्तगताभ्युत्पत्त्येकान्तरस्थैः षड्गृहेषु सप्तभिर्ग्रहैः स्थितैः चक्राख्यो योगो भवति । तद्यथा । लग्नतृतीयपञ्चमसप्तमनवमैकादशेषु षड्गृहेषु यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा चक्राख्यो योगो भवति । इत्येवं प्रकारेण आकृतिजानामाकारवशादुत्पन्नानां संग्रहो व्याख्यातः ॥ ९ ॥

भाषा—द्वितीय भाव से आरम्भ कर एक अन्तर करके छहो समभाव (२।४।६।

८।१०।१२) में यदि सब ग्रह हो तो समुद्र योग होता है । एवं लग्न से आरम्भ कर एकान्तर से छहो त्रिवम (१।३।५।७।९।११) भाव में सब ग्रह प्रतिस्थान में हो तो चक्र योग होता है । इस प्रकार आकृति योग का संग्रह यहाँ किया गया है ॥ ९ ॥

विशेष अर्थ—आकृति (आकार) के अनुसार जित्त योग का जो नाम रक्खा गया वह आकृति योग कहलाता है । यहाँ गदा से लेकर चक्र तक २० प्रकार के आकृति योग कहे गये हैं ॥ ९ ॥

अथ संख्यायोगसप्तकं शालिन्याह—

संख्यायोगाः स्युः सप्त सप्तर्चसंस्थैरेकापायाद्वल्लभी दामिनी च ।

पाशः केदारः शूलयोगो युगं च गोलश्चान्यानपूर्वमुक्तान्विहाय ॥१०॥

संख्यायोगा इति । सप्तभिर्ग्रहैः सप्तर्चसंस्थैः सप्तसु राशिषु गतैरेकापाया-
देकापगमात्क्रमात्सप्त संख्या योगाः स्युः भवेयुः । ते च वल्लभीपादयो गोलान्ताः ।
तद्यथा । येषु तेषु सप्तसु गृहेषु यदा सर्वे ग्रहा भवन्ति तदा वल्लभीनाम योगो
भवति । यदा षट्सु गृहेषु सप्त ग्रहा भवन्ति तदा दामिनीनाम योगो भवति ।
एवं पञ्चसु सप्त ग्रहाः पाशः पाशा यागः । चतुर्षु केदारः केदारा योगः । त्रिषु
शूलः शूलो योगः । द्वयोर्युग युगनाम यागः । एकस्मिन् राशौ सप्त ग्रहा यदा
भवन्ति तदा गोलः गोलनामा योगः । अन्यानपूर्वमुक्तान्विहाय पूर्वोक्तानन्या-
न्यागान्विहाय वर्जयित्वा एते योगाः भवन्ति । एतदुक्तं भवति । यथोक्तानां
योगानां मध्याद्यदि संख्यायोगस्य सदृश्यं भवति तदा संख्यायोगो नांगोकार्यः ।
स एव योगो ब्राह्म इति ॥ १० ॥

भाषा—यदि सात स्थानों में सातों ग्रह हो तो वल्लभी (वीणा) योग, तथा
६ स्थान में सातों ग्रह हो तो दाम योग, पाँच स्थान में सब ग्रह हो तो पाश योग, ४
स्थान में सब ग्रह हो तो केदार योग, ३ स्थान में सब ग्रह हो तो शूल, २ स्थान में
सब ग्रह हो तो युग नामक योग और एक ही स्थान में सब ग्रह हो तो गोल नाम योग
होता है । तथा इसी प्रकार ७ प्रकार के संख्या योग कहे गये हैं । किन्तु इस संख्या
योग में यदि पूर्व कथित ग्रह, इष आदि वा नौकूट आदि योगों का लक्षण हो तो वहाँ
संख्या योग नहीं समझकर पूर्वोक्त लक्षणवाला नौकूट आदि नामक आकृति योग ही
समझना चाहिये ॥ १० ॥

विशेष अर्थ—लग्न से सप्तम पर्यन्त सातों स्थान में ग्रह हो तो यहाँ संख्या योग
वल्लभी नामक होता है । तथा नौका नामक आकृति योग का लक्षण भी प्राप्त होता
है, अतः इस स्थिति से नौका योग ही समझना, वल्लभी नहीं, इत्यादि अन्यत्र भी
समझना चाहिये ॥ १० ॥

आश्रययोगत्रयजातानां दलयोगद्वयजातानां च फलं वसंततिलकेनाह—

ईर्ष्युर्विदेशनिरतोऽध्वरुचिश्च रज्ज्वां

मानो धनी च मुशले बहुकृत्यसक्तः ।

व्यङ्गः स्थिराढ्यनिपुणो नलजः स्रगुत्थो

भोगान्वितो भुजगजो बहुदुःखभाक् स्यात् ॥ ११ ॥

ईर्ष्युरिति ॥ ईर्ष्युः समत्सरः परद्विमतसरी, विदेशनिरतः परदेशाध्यासन-
शीलः, अध्वरुचिः सततमदनः । ननु विदेशनिरत एवाध्वरुचिः । तत्किमत्र
द्वयोर्ग्रहणम् । उच्यते । विदेशेऽप्यनेकप्रदेशाध्यासनशीलो भवति सततमदनो
न भवति । एवंविधो रज्ज्वां रज्ज्वाख्ये योगे जातो भवति । मानी गर्वितः,
धनी वित्तवान्, बहुषु कृत्येषु कार्येष्व्वासक्तः बहुकर्मारम्भशीलः एवंविधो
मुशलाख्ये योगे जातो भवति । व्यंगोऽगहोः विगतमंगं यस्य, स्थिरो दृढ-
निश्चयः, आढ्यो धनवान्, निपुः कार्येषु सूक्ष्मदृष्टिः । एवंविधो नलजो
नलाख्ये योगे जातो भवति । एवमाश्रययोगत्रयजातानां फलं व्याख्यातम् ।
स्रगुत्थो भोगान्वित इति ॥ स्रगुत्थः स्रग्योगे जातो भोगान्वितो भवति ।
भुजगजो भुजगाख्ये सर्पयोगे जातो बहुदुःखभाक् स्यात् नानाप्रकाराणां
दुःखानां भोक्ता भवति । केचिदत्र बहुवचनं पठन्ति । “व्यंगाः स्थिराढ्य-
निपुणा नलजाः स्रगुत्था भोगान्विता भुजगजा बहुदुःखभाजः” इति न
कश्चिदोपः । एवं दलयोगद्वयजातानां फलं व्याख्यातम् ॥ ११ ॥

भाषा—रज्जु योग में जन्म लेने वाला ईर्ष्यावान्, विदेश में रहने वाला,
अमणशील होता है । मुसलयोग में मानी, धनवान्, और अनेक कार्य को आरम्भ
करने वाला होता है । नल योग में अङ्गहीन, दृढ निश्चय और सब कार्यों में निपुण
होता है । मालायोग में भोगी और सर्पयोग में उत्पन्न मनुष्य दुःखभागी होता है ॥ ११ ॥

अथान्यो योग आश्रययोगश्च यदा समकालं यत्र दृश्यते तत्राश्रययोगस्य
निराकरणार्थमनुष्ठुभाह—

आश्रयोक्तास्तु विफला भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिताः ।

मिश्रा यैस्ते फलं दद्युरमिश्राः स्वफलप्रदाः ॥ १२ ॥

आश्रयोक्तास्त्विति ॥ यत्रान्यो योग आश्रययोगश्च भवति तत्राश्रययोगो-
ऽन्येन यवादिना मिश्रो भवति मिश्रितत्वाच्चाफलो भवति । स्वं फलं न
प्रयच्छति । एवमन्यैरपरैः विमिश्रिता निष्फला भवन्ति । यैश्च मिश्राः सादृश्यं
गतास्ते तत्र फलं दद्युः । केचिन्मिश्रा यैस्ते फलं तेषामिति पठन्ति । अमिश्रा-
श्चान्यैः यदा भवन्ति तदा स्वफलप्रदा आत्मीयं फलं ददति । तत्र चरराशौ
लग्नगते स्थिरद्विस्वभावस्थिरमिश्राः । स्थिरलग्ने चरद्विस्वभावगतैरमिश्राः ।
द्विस्वभावलग्ने चरस्थिरगतैरमिश्रा इति ॥ १२ ॥

भाषा—आश्रय (रज्जु, मुसल और नल) योग में यदि अन्य (बाहुति आदि)
योगों का लक्षण प्राप्त हो तो आश्रय योग का फल नहीं होता है, जिस अन्य योग के
लक्षण से युक्त होता है उसी योग का फल होता है । यदि अन्य लक्षणों से युक्त नहीं
होता है तब ही आश्रय योग अपना फल देता है ॥ १२ ॥

विशेष अर्थ—जैसे चारों चर में सब ग्रह हो और चर लग्न भी हो तो रज्जु का भी लक्षण प्राप्त होता है तथा कमलयोग का भी लक्षण प्राप्त होता है। इसलिये यहाँ कमल का ही फल होगा, रज्जु का नहीं। यदि चर में सब ग्रह हो और स्थिर या द्विस्वभाव लग्न हो तो उस हालत में रज्जु का फल होगा ॥ १२ ॥

अथ गदाशकटविहगशृङ्गाटकहलाख्येषु योगेषु जातानां स्वरूपं वसन्त-
तिलकेनाह—

यज्वार्थभाक् सततमर्थरुचिर्गदायां

तद्वृत्तिभुक् शकटजः सरुजः कुदारः ।

दूतोऽटनः कलहकृद्विहगे प्रदिष्टः

शृङ्गाटके चिरसुखी कृषिकृद्धलाख्ये ॥ १३ ॥

यज्वार्थभागिति ॥ यज्वा यजनशीलः, अर्थभागधनानां भाजनं, सततं सर्वकालमर्थरुचिः अर्थार्जनोद्यमशीलः एवंविधो गदाख्ये योगे जातो भवति । तद्वृत्तिभुगिति । तदिति शकटपरामर्शः । तद्वृत्तिभुक् शकटवृत्ति भुंक्ते । शकटाजीवी भवतीत्यर्थः । सरुजो व्याध्यर्दितः कुदारः कुत्तिसतभार्यः एवंविधः शकटजः शकटयोगे जातो भवति । दूतोऽटन इति । दूतः परसंदेशप्रापणार्थं परसकाशगामी, अटनः परिभ्रमणशीलः । ननु दूतेनाप्यवश्यमटनेन भवितव्यम् । उच्यते । परेच्छया गमनशीलो दूतः अयं पुनः स्वेच्छयाटनः तदुभय-
भागभवति । कलहकृत् कलहशीलः एवंविधो विहगाख्ये योगे जातो भवति । प्रदिष्टः उक्तः । चिरेण सुखी चिरसुखो, वयोऽन्ते सुखीत्यर्थः । एवंविधोः शृङ्गाटकाख्ये योगे भवति । अन्यैश्चिरसुखी चिरसुखी शृङ्गाटके व्याख्यातः । तच्चायुक्तम् । यस्माद्भगवान्गार्गिः । “लघ्नपञ्चमधर्मरथैर्योगः शृङ्गाटको मतः । वयोऽन्ते सुखिनां जन्म तत्र स्यात्स्वादुभाषिणाम् ॥” कृषिकृद्धलाख्ये । हलाख्ये योगे जातः कृषिकृद्भवति, कृषिं करोतीत्यर्थः ॥ १३ ॥

भाषा—गदायोग में उत्पन्न मनुष्य यज्ञ करनेवाला, धनवान्, सर्वदा धनोपार्जन में तत्पर होता है । शकटयोग में उत्पन्न मनुष्य शकट (गाड़ी) से आजीविका करने वाला, रोगी, दुष्ट स्त्री वाला होता है । विहग योग में दूत, भ्रमणशील और कलह-
करक होता है । शृङ्गाटक योग में वयस के अन्त में सुखी होता है । और हलयोग में उत्पन्न मनुष्य खेती करने वाला होता है ॥ १३ ॥

अथ वज्रेण्यवपद्मवापीजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

वज्रेण्यपूर्वसुखिनः (१) सुभगोऽतिशूरो

वीर्यान्वितोऽप्यथ यवे सुखितो वयोऽन्तः ।

विख्यातकीर्त्यमितसौख्यगुणश्च पद्मे

वाप्यां तनुस्थिरसुखो निधिकृन्न दाता ॥ १४ ॥

वज्रंऽत्यपूर्वसुखिन इति ॥ अन्त्ये वयोऽत्ये सुखिनः पूर्वे सुखिनश्च बाल्ये सुखी यौवने दुःखितो वृद्धत्वे पुनरेव सुखी भवतीत्यर्थाः । सुभगः सर्वजन-
वल्लभः अतिशूरोऽतीवसंग्रामधीरः एवंविधो वज्रख्ये योगे जातो भवति ।
वीर्यान्वितः पराक्रमयुक्तः । अथशब्दः पादपूरणे । वयोऽतः वयोमध्ये सुखी ।
अन्तःशब्दोऽत्र मध्यपर्यायः । एवंविधो यवाख्ये योगे जातो भवति । विख्यात-
कीर्तिः सर्वजनप्रसिद्धकीर्तिः । सा न तु किमत्र विख्यातकीर्तिरस्ति । उच्यते ।
अस्ति कचिच्च सा । यथा कीर्त्तिप्रापककर्मभिः शतैरपि परं प्रख्यातकीर्तिं न
प्राप्नोति । अमितसौख्यगुणः अपरिमितसौख्योऽपरिमितगुणश्च । गुणाः
विद्याशौर्यादयः, एवंविधः पद्माख्ये योगे जातो भवति । तनुस्थिरसुखं तनु
स्वल्पं स्थिरं चिरकालस्थायि सुखं यस्य स्वल्पसुखं बहुकालं भवतीत्यर्थाः ।
निधिकृन् भूमावर्थस्थापनशीलः न दाता कदर्यः एवंविधो वापीसंज्ञे योगे जातो
भवति ॥ १४ ॥

भाषा—वज्र योग में जन्म लेनेवाला जातक अन्त्य और आदि वयस में सुखी
होता है, अर्थात् युवावस्था में दुःखी रहता है, किन्तु सुन्दर, शूर और बलवान् होता
है । यव योग में उत्तम मनुष्य वयस के मध्य में सुखी होता है । कमल योग में जन्म
लेने वाला ख्यातकीर्ति, अतिशय सुख और बहुत गुणों से युक्त होता है । वापी योग में
जन्म लेने वाला थोड़ा किन्तु स्थिर सुख से युक्त, धन को गाड़ कर रखने वाला हो,
किन्तु किसी को एक पैसा देने वाला नहीं होता है । १४ ॥

अथ यूपशरशक्तिदंडाख्ये योगचतुष्टये जातानां स्वरूपं वसंततिलकेनाह—
त्यागात्मवान्क्रतुवरैर्यजते च यूपे हिंस्रोऽथ गुप्त्यधिकृतः शरकृच्छ्राख्ये ।
नोचोऽलसः सुखधनैर्वियुतश्च शक्तौ दण्डे प्रियैर्विरहितः पुरुषोऽन्त्यवृत्तिः १५

त्यागात्मवानिति ॥ त्यागी दाता आत्मवानप्रमादी क्रतुवरैर्यज्ञश्रेष्ठैर्यज्ञै-
र्यजते एवंविधो यूपारख्ये योगे जातो भवति । हिंस्रेति । हिंस्रो वधरुचिः,
गुप्त्यधिकृतः बन्धनपालः, शरकृन् शरकारः एवंविधश्च शराख्ये योगे जातो
भवति । नोच इति । नोचः अधमानामकुलोचितानां कर्मणां कर्ता, अलसः
क्रियास्वपटुः, सुखधनैर्वियुतो भोगवित्तविवर्जितः, निःसुखो निर्धनश्च एवं-
विधः शक्तौ योगे जातो भवति । प्रियैः पुत्रादिभिः विरहितः वर्जितः, अन्त्य-
वृत्तिः दासवृत्तिः, शूद्रवृत्तिरित्यर्थः । एवंविधो दंडाख्ये योगे जातः पुरुषो
भवति ॥ १५ ॥

भाषा—यूप योग में उत्पन्न होने वाला दानी, स्थिर बुद्धि और उत्तम २ यज्ञ
करने वाला होता है । शर योग में जन्म लेने वाला हिंसक, जेलखाना का मालिक

और शर बनाने वाला होता है । शक्ति योग में उत्पन्न जातक नीच, बालसी, सुख धन से हीन होता है । और दण्डयोग में उत्पन्न होनेवाला अपने प्रियजनों से हीन और नोकरी करने वाला होता है ॥ १५ ॥

अथ नौकूटचक्रार्मुकजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

कीर्त्या युतश्चलसुखः कृपणश्च नौजः

कूटेऽनृतप्लवनबन्धनपथ जातः ।

छत्रोद्भवः स्वजनसौख्यकरोऽन्त्यसौख्यः

शूरश्च कार्मुकभवः प्रथमान्त्यसौख्यः ॥ १६ ॥

कीर्त्या युतश्चलसुख इति ॥ कीर्त्या युतः ख्यातयशः, चलसुखः कदाचि-
त्सुखी कदाचिद्दुःखी, कृपणः अदाता चशब्दोऽत्र समुच्चयार्थः । एवंविधो
नौजः नावाख्ये योगे जातः प्राणो भवति । कूटेऽनृत इति । अनृते प्लवना
मतिर्यस्यासावनृतप्लवनः असत्याभिधायी असत्याभिभाषी च । बन्धनपः
केचित्कूटेऽनृतकृपणबन्धनपश्च जात इति पठन्ति । एवंविधः कूटाख्ये योगे
जातो भवति । इति कूटयोगः । छत्रोद्भव इति । स्वजनसौख्यकरः स्वजनेषु
सुख करोतीति स्वजनसौख्यकरः, अन्त्यसौख्यो वृद्धत्वे सुखितः एवंविधः
छत्राख्ये योगे जातो भवति । इति छत्रयोगः । कार्मुकभवः शूरश्च संग्रामप्रियः,
प्रथमान्त्यसौख्यः प्रथमे बाल्ये सुखी अन्त्ये वृद्धत्वे सुखी च एवंविधः कार्मु-
कभवः चापाख्ये योगे जातो भवति । इति चापयोगः ॥ १६ ॥

भाषा—नौका योग में जन्म लेने वाला कीर्ति से युक्त, चल सुख वाला (अर्थात्
कभी सुख, कभी दुःख) और कृपण होता है । कूट योग में उत्पन्न होने वाला मिथ्या-
भाषी और कारागार का मालिक होता है । छत्रयोग में जातक अपने परिवार को
सुख देने वाला और अन्त वयस में सुख पाने वाला होता है । और चाप (धनुष)
योग में जातक शूर और बाल्य तथा वार्धक्य वयस में सुखी होता है । अर्थात् मध्य
वयस में दुःखी होता है ॥ १६ ॥

अथार्द्धचन्द्रसमुद्रचक्रवल्लकोजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

अर्धेन्दुजः सुभगकान्तवपुः प्रधानस्तोयालये नरपतिप्रतिमस्तु भोगी ।

चक्रे नरेन्द्रमुकुटद्युतिरञ्जितांप्रिर्वीणोद्भवश्च निपुणः प्रियगीतनृत्यः ॥ १७ ॥

अर्धेन्दुज इति ॥ सुभगः सर्वजनप्रियः कान्तवपुः प्रदर्शनीयः प्रधानः सर्व-
जनपूज्यः एवंविधोऽर्धेन्दुजोऽर्द्धचन्द्राख्ये योगे जातो भवति । नरपतिप्रतिमः
राज्ञा तुल्यः भोगी भोगवान् एवंविधस्तोयालये समुद्राख्ये योगे जातो भवति ।
चक्रेति । नरेन्द्रा राजानः तेषां मुकुटाः किरीटाः चूडामणिरत्नानि तेषां द्युतिः
कान्तिः तथा रञ्जितौ छुरितावंग्रं पादौ यस्य, राजानस्तस्य पादयोः पतन्ति,
महाराजाधिराजो भवतीत्यर्थः । तपोज्ञानादियोगाद्वाज्ञां पूजनीयो वा एवंविध-

अक्राख्ये योगे जातो भवति । आकृतियोगविंशतिजातानां फलं व्याख्यातम् ।
अत्रैव भूपालसंख्यायोगानां फलं व्याख्यायते । वीण इवश्चेति । निपुणः
सूक्ष्मदृष्टिः, प्रियगीतनृत्यः गीतप्रियो नृत्यप्रियश्च एवविधो वीणोद्भवो वीणाख्ये
योगे जातो भवति ॥ १५ ॥

भाषा—अर्धचन्द्र योग में जन्म लेने वाला मनुष्य सर्वजनप्रिय, सुन्दर कान्तियुक्त
और प्रधान (सर्वमान्य) होता है । समुद्रयोग में उत्पन्न दरिद्रकुल का भी मनुष्य राजा
के समान और भोगी होता है । चक्रयोग में उत्पन्न मनुष्य राजाओं से वन्दनीय
(चक्रवर्ती राजा अथवा विशिष्ट ज्ञानयुक्त होकर राजाओं का गुरु) होता है । वीणा
योग में उत्पन्न मनुष्य सूक्ष्मबुद्धि और गान विद्या एवं नृत्य में प्रीति करने वाला
होता है ॥ १७ ॥

अथ दामिनीपशकेदारशूलजातानां स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

दातान्यकार्यनिरतः पशुपश्च दाम्नि पाशे धनार्जनविशीलसभृत्यबन्धुः ।
केदारजः कृषिकरः सुबहूपयोज्यः शूरः क्षतो धनरुचिर्विधनश्च शूले ॥ १८ ॥

दातान्यकार्येति ॥ दाता उदारः, अन्यकार्यनिरतः परोपकारसक्तः, पशुपः
पशुरक्षिता बहुपशुभागभवति । अथवा बहुपाठे बहूनां पालयिता रक्षयिता ।
प्रामाधिपतिरित्यर्थः । एवंविधो दाम्नि योगे जातो भवति । पाश इति ।
धनार्जने विशीलः धनार्जनविशीलः धनार्जनविशीलश्चासौ सभृत्यबन्धुश्च
धनार्जनविशीलसभृत्यबन्धुः स्वयमेव धनार्जने विशीलः असन्मार्गेण धनार्जनं
करोति । तथाभूता अस्य भृत्याः कर्मकरा बान्धवाश्च भवन्ति । एवंविधः
पाशाख्ये योगे जातो भवति । केदारज इति । कृषिकरः कृषिं करोति सुबहू-
पयोज्यः सुष्ठु शोभन कृत्वा बहूनानुपयुज्यते उपकरोति एवंविधः केदारजः
केदाराख्ये योगे जातो भवति । शूरः समरधीरः, क्षतः प्रहारितः, धनरुचिः
अर्थप्रियः । केचिद्वधरुचिरिति पठन्ति । विधनः दरिद्रश्च एवंविधः शूलाख्ये
योगे जातो भवति ॥ १८ ॥

भाषा—दामयोग में उत्पन्न होने वाला दाता, परोपकारी और पशुओं का पालन
करने वाला होता है । पाशयोगोत्पन्न नौकर और बन्धुवर्ग सहित धनसंग्रह करने में
शील रहित होता है अर्थात् वह लज्जा को त्याग करके अनीति से धन लाभ करता
है । केदारयोगोत्पन्न कृषि करने वाला और बहुतों का उपकारी होता है और शूल
योग में उत्पन्न मनुष्य युद्धप्रिय, शस्त्र द्वारा क्षत शरीर वाला, धन की इच्छा करने
वाला परञ्च सदा धनहीन होता है ॥ १८ ॥

अथ युगगोलयोजार्जितस्य स्वरूपं सर्वेषां च नाभसयोगानां समस्तदशासु
फलप्रदर्शनं हरिण्याह—

धनविरहितः पाखण्डी वा युगे त्वय गोलके

विधनमलिनोऽज्ञानोपेतः कुशिल्प्यलसोऽटनः ।

इति निगदिता योगाः सार्द्धं फलैरिह नाभसा

नियतफलदाश्चिन्त्या ह्येते समस्तदशास्वपि ॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके नाभसयोगाध्यायो

द्वादशः ॥ १२ ॥

धनविरहित इति ॥ धनविरहितः अर्थहीनः, पाखण्डी त्रयोमार्गव्यपेतः
एवविधो युगाख्ये योगे जातो भवति । वाशब्दोऽत्र चार्थः । अर्थहीनः पाखण्डी
च । अथशब्द आनन्तर्ये । विधोऽर्थहीनः, मलिनो मलोपेतशरीरः
मलिनवासा वा, अज्ञानोपेतः मूखः, कुशिली लोके निवृत्तशिल्पकर्ता, अलसः
क्रियास्वसमर्थः, अटनो भ्रमणशीलः । नन्वत्रालसोऽटनश्चेति विरुद्धम् ।
उच्यते । स्वरूपेणालसः तथाप्यतिवारिद्र्याद्भोजनक्रियामटनं विना सम्पाद-
यितुमशक्यत्वादटनः एवविधो गोलाख्ये योगे जातो भवति । एवं सप्तसु
संख्यायोगेषु शुभफलं व्याख्यातम् । इति निगदिता योगा इति । इत्येवंप्रकारा
नाभसयोगाः फलैः सार्द्धं सह निगदिता उक्ताः । इहास्मिन्नध्याये एते समस्त-
दशास्वपि नियतफलदाः सर्वकालफलप्रदाः चिन्त्या विज्ञातव्याः । ननु वज्रादि-
व्याद्यन्तसुखिता प्रदर्शिता तत्कथं समस्तदशास्वित्युक्तम् । उच्यते । तेषां
वचनाद्यथादर्शितकालः सुखदुःखयोर्भविष्यति । येषां कालविभागो नोक्तस्तेषां
समस्तदशास्वपि यथादर्शितसुखदुःखप्रदा भविष्यन्ति । ननु कस्यचित्समस्तं
जन्म सुखेन दुःखेन चैकरूपेण गच्छति ये च भोगिनः तेऽपि मानसैर्दुःखैरभि-
भूता भवन्ति येऽपि भिक्षाशिनस्तेऽपि कदाचिद्धर्माभितप्ता भवन्ति । शीतह्लासु
द्रुमच्छायासु सुखितमित्यात्मानं मन्यते । तस्मादेवमादिसुखं दुःखं सर्वेण
संसारिजातेन विपर्ययेणानुभूयते तत्कथं समस्तदशास्वपि योगाः फलप्रदा
भवन्ति । उच्यते । नैते योगा दशाष्टकवर्गफलहन्तारः । शुभमशुभं वा फलं
दशापतिर्ददात्यष्टकवर्गाश्रितमपि फलं च । अतो यथाकालं अपि समप्रजन्मनि
फलं ददत्येवं मिश्रफलानुभावो भोगिनां दरिद्राणां च सम्भवत्येव । एवं
तावन्नाभसयोगाध्यायो व्याख्यातः । अस्मिन्नध्याये यद्वक्तव्यं पूर्वं प्रतिज्ञातं
तदुच्यते । दलयोगाकृतियोगयोः समकालमुपस्थानं नास्ति तथा दलयोगैः
सहाश्रययोगानां तुल्यकालमुपस्थानं नास्त्येव । अथ दलयोगैः सह संख्यायोगा
युज्यन्ते यदा दलयोगैर्युज्यन्ते तदा दलयोगफलमेव भवति । अथाकृतियोगाः
संख्यायोगैर्युज्यन्ते तदाप्राकृतियोगफलं भवति यस्मात्संख्यायोगानामपवादः ।
अन्यान्पूर्वमुक्तान्विहाय आश्रययोगानामप्यपवादः । आश्रययोगास्तु विफला
भवन्त्यन्यैर्विमिश्रिता इति । तस्मात्संख्यायोगा आश्रययोगाश्चाभिभूयन्ते । अथा-
श्रययोगेन सह संख्यायोगस्यावस्थानं भवति तदा आश्रययोग एव भवति ।
नन्वाश्रययोगसंख्यायोगानां तुल्ये अपवादे आश्रययोगेन संख्यायोगः कथम-
भिभूयते । उच्यते । यदि संख्यायोगेनाश्रययोगस्यावस्थानं भवति, संख्यायोगो

भवति । तत्र यदि आश्रययोगेन भवति तदा आश्रययोगस्यावकाश एव सम्भवति । आश्रययोगेन संख्यायोगस्याने कृते अस्त्येवान्योऽवकाशः संख्यायोगस्य । किन्तु एकस्मिन्नाशौ यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा आश्रययोगेन संख्यायोगोऽभिभूयते तदा गोलकस्यानवकाशः, अवकाश एव न स्यात् । परिभाषा चेयम् । निरवकाशा हि विधयः सावकाशान्विधीन्वाधन्ते इति । अथैकैकं राशिलग्नतमधिकृत्य पुराणयवनमतेन यत्साद्धं योगशतमुक्तं तदधुना प्रदर्श्यते । तेषां तावत्त्रयोविंशतिराकृतियोगाः, विंशतिरेव वराहमिहिरेणाभिहिताः । किन्तु तेषां मध्याद्गदायोगेन चत्वारो योगा अभिहिताः । लग्नचतुर्थ्योः यदा सर्वे ग्रहाः भवन्ति तदा गदायोगः । चतुर्थसप्तमयोः शंखः । सप्तमदशमयोः बभ्रुकः । दशसप्तमयोः ध्वजः । तत्र पूर्वोक्ता विंशतिः शंख बभ्रुध्वजैः सह त्रयोविंशतिः भवन्ति । संख्यायोगानां सप्तविंशत्याधिकं शतमेवं साद्धं शतं (१५०) राशिद्व्यदशकेनाष्टादशजातानि भवन्ति (१८०) तत्र सप्तविंशत्यधिकस्य संख्यायोगशतस्योत्पत्तिः प्रदर्श्यते । तद्यथैषां विकल्पाः सप्त तत्रैकविकल्पाः सप्त । द्विकल्पा एकविंशतिः । त्रिविकल्पाः पञ्चत्रिंशत् (३५) । चतुर्विकल्पाः पञ्चाग्निः (३५) । पञ्चविकल्पा एकविंशतिः (२१) । षड्विकल्पाः सप्त । सप्तविकल्पा एकः । एतदेकीकृतं सप्तविंशत्यधिकं शतं भवति (१२७) । एतदेव वराहमिहिरेण विवाहपटले उक्तम् । “द्विज्यादियोगान्परिगृह्य कस्मान्नोक्तं शतं सत्रिगुणं विलगने ।” अथ विकल्पगणितं प्रदर्श्यते । तत्राचार्येण विकल्पगणितं संहितायामुक्तम् । “पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्ये प्रवदन्ति संख्याम् । इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥” इति । अत्र यावत्संख्यानां विकल्पाः क्रियन्ते तदन्तानेकाद्यानुपर्युपरि स्थापयेत् । तद्यथात्र सप्तग्रहैः एकाद्यानां सप्तान्तानां न्यासः ७।६।५।४।३।२।१ । अत्र पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्यमिति । पूर्वश्चासौ गतश्च पूर्वगतः तेन पूर्वेण गतेन युक्तमन्त्यमुपरिस्थं स्थानं विना तद्वर्जयित्वेत्यर्थः । प्रथममेकमधः स्थितं तयोर्द्वयोरुपरिस्थयोः क्षिपेत् । एवं तत्र त्रीणि रूपाणि जातानि तानि च स्वोपरि त्रिषु क्षिपेत् । एवं षट् जातानि स्वोपरि चतुर्षु क्षिपेत् । एवं तत्र दश रूपाणि जातानि तानि स्वोपरि पञ्चसु क्षिपेत् । तत्र पञ्चदश जातानि तानि स्वोपरि षट्सु क्षिपेत् । तत्रैकविंशतिर्जातानि अतः परं च कर्मणोऽभावात्तदुपरि सप्तैव स्थिताः । तदुक्तं स्थानं विनान्त्यं पुनरप्यधः प्रभृत्येवं कृत्वा पञ्चमे स्थाने पञ्चत्रिंशज्जाताः पुनरपि चतुर्थे पञ्चत्रिंशत् । पुनस्तृतीये एकविंशतिः । पुनः द्वितीये सप्त । प्रथमे एकैव ७।२१।३५।३५।२१।७।१ । अथवान्येन प्रकारेण संख्यानयनम् । “प्रतिलोमं निक्षिप्य चान्तिलोममधः क्षिपेत् । अनुलोमं समाहृत्याधःस्थेन विभाजयेत् ॥” न्यासः । अत्र सप्तानामधोरूपं छेदः । अनेन भागमपहृत्य १।६।५।४।३।२।१ लब्धं सप्त (७) एतैः द्वितीये स्थाने षट् संगुण्याधःस्थिताभ्यां द्वाभ्यां भागमपहरेत् । लब्धमेकविंशतिः (२१) । एतै-

मृतीयस्थपञ्च संगुण्य त्रिभिः भजेल्लब्धं पञ्चत्रिंशत् (३५) । एतैश्चतुर्थस्थान-
 म्पञ्चत्वारि सङ्कुण्य चतुर्भिः भजेल्लब्धं पञ्चत्रिंशत् (३५) । एभिः सङ्कुण्य
 पञ्चभिः विभज्यावाप्तमेकविंशतिः (२१) । एभिः द्वे सङ्कुण्य षड्भिः
 विभज्यावाप्तं सप्त । एभिरेकं सङ्कुण्य सप्तभिः विभज्यावाप्तमेक एव ।
 एवमेकद्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तविकल्पाः । एवं विकल्पगणितं कृत्वा यथेष्ट-
 संख्यानां व्याख्येयम् । अथैतेषां विकल्पानां लोष्टकप्रस्तारेणोद्धारः कर्तव्यः ।
 “इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ।” इति । यथेष्ट-
 संख्यानां विकल्पानामाद्याक्षराणि लिखेत् । तत्रैकविकल्पेष्वेकैकं लोष्टचिह्नं
 कृत्वा विकल्पानुत्पादयेत् । द्विविकल्पेष्वेकं स्थिरं लोष्टचिह्नं कृत्वा द्वितीयेन
 लोष्टचिह्नेन सह विकल्पानुत्पादयेत् । एवं त्र्यादिषु विकल्पेष्वेकं स्थिरं
 लोष्टचिह्नं कृत्वा न्यः चरलोष्टचिह्नैः सहान्यान्यविकल्पानुत्पादयेत् । एवं
 कृत्वा प्रथमस्थापासनं कार्यम् । नीते निवृत्तिरिति वचनात् । ततोऽन्यचिह्नं
 कृत्वा न्यसेत् । पुनरन्यनीतिरिति वचनात् । उक्तं च भट्टश्रीशङ्करेण । “वर्ण-
 संख्याककोष्टाख्यां क्षेपक्षो ज्ञेयसंख्यकः । ज्ञेयोक्त्यान्यत्र तत्पूर्वेस्तत्पूर्वश्चा-
 प्यनुक्रमात् ॥ नयेद्वामाद्यमन्यर्द्धाद्ये पूर्वे तां निरन्तरम् । ज्ञेयोऽन्यः पुनराद्याश्च
 कोष्ठनिष्ठावधिर्विधिः ॥” इति । तद्यथैकविकल्पाः । रविः । चन्द्रः । भौमः ।
 बुधः । गुरुः । शुक्रः । शनिः । एवमेकविकल्पाः सप्त (७) । अथ द्विविकल्पाः ।
 रविचन्द्रौ । रविभौमौ । रविवुधौ । रविजीवौ । रविशुक्रौ । रविसौरौ । एवमा-
 दित्येन सह षट् (६) । शशिभौमौ । शशिवुधौ । शशिजीवौ । शशिशुक्रौ ।
 शशिसौरौ । एवं चन्द्रेण सह पञ्च (५) । भौमबुधौ । भौमजीवौ ।
 भौमशुक्रौ । भौमसौरौ । एवं भौमेन सह चत्वारः (४) । बुधजीवौ, बुधशुक्रौ,
 बुधसौरौ । एवं बुधेन सह त्रयः (३) । जीवशुक्रौ । जीवसौरौ । एवं
 जीवेन सह द्वौ (२) । शुक्रसौरौ । एवं शुक्रेण सह एकः (१) । एवं द्विवि-
 कल्पाः एकविंशतिः । अथ त्रिविकल्पाः । रविचन्द्रभौमाः । रविचन्द्रबुधाः ।
 रविचन्द्रजीवाः । रविचन्द्रशुक्राः । रविचन्द्रसौराः । एवमादित्यचन्द्रयोः
 पञ्च (५) । रविभौमबुधाः । रविभौमजीवाः । रविभौमशुक्राः । रवि-
 भौमसौराः । एवमादित्याङ्गारकयोश्चत्वारः (४) । रविवुधजीवाः । रवि-
 बुधशुक्राः । रविवुधसौराः । एवमादित्यबुधयोश्च त्रयः (३) । रविजीवशुक्राः ।
 रविजीवसौराः । एवं द्वौ (२) । रविशुक्रसौराः । एवमेकः (१) ।
 एवमादित्येन सह त्रिविकल्पाः पञ्चदश (१५) । चन्द्रभौमबुधाः । चन्द्र-
 भौमजीवाः । चन्द्रभौमशुक्राः । चन्द्रभौमसौराः । एवं चन्द्रभौमयोश्चत्वारः
 (४) । चन्द्रबुधजीवाः । चन्द्रबुधशुक्राः । चन्द्रबुधसौराः, एवं त्रयः (३) ।
 चन्द्रजीवशुक्राः । चन्द्रजीवसौराः । एवं द्वौ (२) । चन्द्रशुक्रसौराः । एवमेकः
 (१) । एवं चन्द्रेण सह दश (१०) । भौमबुधजीवाः । भौमबुधशुक्राः ।
 भौमबुधसौराः । एवं त्रयः । भौमजीवशुक्राः । भौमजीवसौराः । एवं द्वौ (२) ।

भौमशुक्रसौराः । एवं भौमेन सह षट् (६) । बुधजीवशुक्राः । बुधजीवसौराः ।
 एवं द्वौ (२) । बुधशुक्रसौराः । जीवशुक्रसौराः एकः (१) । एवं त्रिविकल्पाः
 पञ्चविंशत् (३५) । अथ चतुर्विकल्पाः । रविचन्द्रभौमबुधाः । रविचन्द्रभौम-
 जीवाः । रविचन्द्रभौमशुक्राः । रविचन्द्रभौमसौराः । एवं चत्वारः (४) ।
 रविचन्द्रबुधजीवाः । रविचन्द्रबुधशुक्राः । रविचन्द्रबुधसौराः । एवं त्रयः (३) ।
 रविचन्द्रजीवशुक्राः । रविचन्द्रजीवसौराः । एवं द्वौ (२) । रविचन्द्रशुक्र-
 सौराः । एवमेकः (१) । रविभौमबुधजीवाः । रविभौमबुधशुक्राः । रवि-
 भौमबुधसौराः । एवं त्रयः (३) । रविभौमजीवशुक्राः । रविभौमजीव-
 सौराः । एवं द्वौ (२) । रविभौमशुक्रसौराः । एवमेकः (१) । रविबुध-
 जीवसौराः । एवं द्वौ (२) । रविबुधशुक्रसौराः । रविजीवशुक्रसौराः । एव-
 मादित्येन सह विंशतिः (२०) । चन्द्रभौमबुधजीवाः । चन्द्रभौमबुधशुक्राः ।
 चन्द्रभौमबुधसौराः । एवं त्रयः (३) । चन्द्रभौमजीवशुक्राः । चन्द्रभौमजीव-
 सौराः । एवं द्वौ (२) । चन्द्रभौमशुक्रसौराः । एकः (१) । चन्द्रबुधजीवशुक्राः ।
 चन्द्रबुधजीवसौराः । चन्द्रबुधशुक्रसौराः । चन्द्रजीवशुक्रसौराः । एवं चन्द्रेण
 सह दश (१०) । भौमबुधजीवशुक्राः । भौमबुधजीवसौराः । भौमबुधशुक्र-
 सौराः । भौमजीवशुक्रसौराः । एवं भौमेन सह चत्वारः (४) । बुधजीव-
 शुक्रसौराः । बुधेन सह एकः (१) । एवं चतुर्विकल्पाः पञ्चविंशत् (३५) ।
 अथ पञ्चविकल्पाः । रविचन्द्रभौमबुधजीवाः । रविचन्द्रभौमबुधशुक्राः ।
 रविचन्द्रभौमबुधसौराः । एवं त्रयः (३) । रविचन्द्रभौमजीवशुक्राः । रवि-
 चन्द्रभौमजीवसौराः । एवं द्वौ (२) । रविचन्द्रभौमशुक्रसौराः । रविचन्द्र-
 बुधजीवसौराः । रविचन्द्रबुधशुक्रसौराः । रविचन्द्रजीवशुक्रसौराः । रविभौम-
 बुधजीवशुक्राः । रविभौमबुधजीवसौराः । एवमादित्येन सह पञ्चदश (१५) ।
 चन्द्रभौमबुधजीवशुक्राः । चन्द्रभौमबुधजीवसौराः । चन्द्रभौमबुधशुक्रसौराः ।
 चन्द्रभौमजीवशुक्रसौराः । चन्द्रबुधजीवशुक्रसौराः । एवं चन्द्रमसा सह
 पञ्च । भौमबुधजीवशुक्रसौराः । एवं पञ्च विकल्पाः एकविंशतिः (२१) ।
 अथ षड्विकल्पाः । आदित्यचन्द्रभौमबुधजीवशुक्राः । रविचन्द्रभौमबुधशुक्र-
 सौराः । रविचन्द्रभौमगुरुशुक्रसौराः । रविभौमबुधजीवशुक्रसौराः । चन्द्र-
 भौमबुधजीवशुक्रसौराः । एवं षड्विकल्पाः । अथ सप्तविकल्पाः । रविचन्द्र-
 भौमबुधजीवशुक्रसौराः । सप्तविकल्पा एक एव (१) । एवं सप्तविंशत्यधिकं
 विकल्पशतम् (१२७) व्याख्यातम् ॥ १६ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ नाभसयोगाध्यायो द्वादशः ।

भाषा—युगयोग में धनहीन और वेदशास्त्र निन्दक होता है । और गोल योग में
 जन्म लेनेवाला निर्धन, मलिन शरीर, अज्ञानी, निन्दायुक्त कर्म करने वाला, आससी,
 (कार्य करने में अक्षम) और व्यर्थ घूमनेवाला होता है । इस अध्याय में फल सहित

जो नाभसयोग ३२ कहे गये हैं, ये समस्त दशा में (अर्थात् सर्वदा जीवन भर) निश्चित रूप से फलप्रद होते हैं ॥ १९ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ कहा गया है कि ये नाभसयोग समस्त दशा में फलप्रद होते हैं। किन्तु वज्रयोग का फल कहा गया है कि “पूर्व और अन्तिम वयस में सुखी होता है। एवं यव योग में मात्र मध्य वयस में सुखी होता है।” तो फिर समस्त दशा में नियत फलप्रद कैसे हुआ? इसका समाधान यह है कि जिस योग के लिये जो समय कहा गया है उस समय में उसका फल होता है। जिस योग का समय नहीं कहा गया है उसका फल सर्वदा होता है। क्योंकि ये योग सब ग्रहों के संबन्ध से होते हैं इसलिये सब ग्रहों की दशा में इन योगों का फल होना सम्भव है। जैसे माला योग में भोगी का जन्म लिखा है तो वह जीवन भर दरिद्र भी होकर भोग करने वाला होता है। तथा सर्पयोगोत्पन्न धनी भी हो तो भी सर्वदा क्लेशभागी बना रहता है। इत्यादि विचार कर समझना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ चन्द्रयोगाध्यायः ॥ १३ ॥

अथातश्चन्द्रयोगाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेवार्कात्केन्द्रपणफरापोक्तिमस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपज्ञानं मालिन्याह—

अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे

शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि ।

अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा

सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान्स्यात्सुखी च ॥ १ ॥

अधमसमवरिष्ठानीति ॥ विनयो नीतिः सुशीलता, वित्तं धनं, ज्ञानं विज्ञानं शास्त्रावबोधः, धीः बुद्धिः नैपुण्यं कार्येषु सूक्ष्मदर्शित्वम् अर्कादादित्यात्केन्द्रादिसंस्थे केन्द्रपणफरापोक्तिमसंस्थे शशिनि चन्द्रे जातस्य विनयवित्तज्ञानधीनैपुणान्यधमसमवरिष्ठानि निकृष्टमध्यमोत्तमानि भवन्ति । एतदुक्तं भवति । यस्यादित्याज्जन्मनि केन्द्रस्थश्चन्द्रमा भवति तस्यैतानि विनयादीन्यधमानि भवन्ति । अधमत्वमेतेषामभावः । यस्माद्यवनेश्वरः । “मूर्खान्दरिद्रांश्चपलान्विशीलशचन्द्रः प्रसूतेऽर्कचतुष्टयस्थः” यस्य जन्मसमये पणफरस्थश्चन्द्रः सूर्याद्भवति तस्यैतानि मध्यमानि भवन्ति । न चातिभवतीत्यर्थः । यस्य जन्मनि आपोक्तिमस्थश्चन्द्रो भवति तस्य विनयादीनि वरिष्ठानि भवन्ति । तथा च यवनेश्वरः । “कुर्याद्द्वितीये धनिनां प्रसूतिमापोक्तिमस्थे कुलजाग्रजानाम्” इति । अहनीत्यादि । चन्द्रे शशिनि स्वेऽधिमित्रांशकस्थे अहनि निशि च यथासंख्यं सुरगुरुसितदृष्टे जीवशुक्राभ्यामवलोकिते जातो वित्तवान् धनी सुखी भोगवांश्च स्याद्भवेत् । एतदुक्तं भवति । यस्याहनि दिवा जन्म भवति चन्द्रश्च यस्मिन्तस्मिन्नाशौ स्वनवांशकस्थो भवति स्वस्याधिमित्रांशके स्थितो वा सुरगुरुणा जीवेन दृष्टः

तदा स पुरुषो वित्तवान्मुखी च भवति । अथ यस्य निशि रात्रौ जन्म भवति चंद्रमाः स्वनवांशकस्थोऽधिमित्रनवांशकस्थो वा भवति शुक्रेण दृश्यते तदा जातो वित्तवान्मुखी च भवति । अत्राहनि निशि च चंद्रे स्वाधिमित्रांशके वा स्थिते यथासंख्यं सुरगुरुसितदृष्टे केचिद्ब्याचक्षते । अयुक्तमेतत् । यस्माद्भगवान्गार्गिः । “स्वांशेऽधिमित्रम्यांशे वा संस्थितो दिवसे शशी । गुरुणा दृश्यते तत्र जातो वित्तुखान्वितः ॥ निश्चयं भृगुणा दृष्टः शशी जन्मनि शस्यते । विपर्ययस्थे शीतांशौ जायंतेऽरुधना नराः ॥” इति । तथा च यवनेश्वरः । “स्वांशे शशी भार्गवदृष्टमूर्तिर्निशीश्वरोत्पत्तिकरः प्रदिष्टः । तदुत्तमोद्भूतिकरः स तु स्याद्दृष्टो दिवा देवपुरोहितेन” ॥ १ ॥

भाषा—चन्द्रमा यदि सूर्य केन्द्र (१।४।७।१०) स्थान में हो तो शील, धन, शाल्लजान, बुद्धि और कार्य निपुणता ये सब निकट—अधम (अल्प) होते हैं । यदि पणकर (२।१।८।११) स्थान में सूर्य हो तो उपरोक्त दिनय धन आदि मध्यम मान से होते हैं । यदि सूर्य से आपोक्लिप्त (३।६।१।१२) स्थान में चन्द्रमा हो तो जातक के उपरोक्त शील धन आदि उत्तम होते हैं । तथा चन्द्रमा अपने नवांश या अधिमित्र के नवांश में हो तथा दिन में गुरु से और रात्रि में शुक्र से दृष्ट हो तो जन्म लेनेवाला धनवान् और सुखी होता है ॥ १ ॥

अथाधियोगाख्यं योगं सफलं वसंततिलकेनाह—

सौम्यैः स्मरारिनिधनेष्वधियोग इन्दोस्तस्मिंश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्म । सम्पन्नसौख्यविभवा हतशत्रवश्च दीर्घायुषो विगतारोगमयाश्च जाताः ॥२॥

सौम्यैरिति ॥ इन्दोश्चंद्रात्सौम्यैः बुधगुरुसितैः स्मरारिनिधनेषु सप्तम-षष्ठाष्टमेषु त्रिषु स्थानेषु द्वयोर्वा स्थानयोरेकस्मिन्वा स्थाने सर्व एव भवन्ति तदाधियोगाख्यो योगो व्याख्यातो भवति । अत्र कैश्चित्पष्ठसप्तमाष्टमानां स्थानानां सौम्यग्रहत्रयस्यावस्थानादशून्यतायामधियोगो व्याख्यातः । तच्च-युक्तम् । यस्माच्छ्रुतकीर्तिः । “निधनं दूनं षष्ठं चंद्रस्थानाद्यदा शुभैर्युक्तम् । अधियोगः स प्रोक्तो व्यासकृतौ सप्तधा पूर्वैः ॥” व्यासकृतौ विस्तरकृतौ पूर्वैराचार्यैश्चिरन्तनैः च सप्तधा सप्तप्रकारः प्रोक्तः कथितः । तद्यथा । षष्ठे राशौ यदा सर्वे सौम्यग्रहाः भवन्ति तदैकः । सप्तमे द्वितीयः । अष्टमे तृतीयः । षष्ठसप्तमयोश्चतुर्थः । षष्ठाष्टमयोः पंचमः । सप्तमाष्टमयोः षष्ठः । षष्ठसप्तमाष्टमेषु सप्तम इति । एवमेवस्थितेषु सौम्येष्वधियोगः । अर्थादेवैवमवस्थितेषु पापैः पापः । मिश्रैर्मिश्रः । तथा च श्रुतकीर्तिः । “षट्सप्तमाष्टसंस्थैश्चंद्रात्सौम्यैः शुभोऽधियोगः स्यात् । पापः पापैरेवं मिश्रैर्मिश्रस्तथैवाक्तः ॥” अधियोगजातानां फलमाह । तस्मिंश्चमूपसचिवक्षितिपालजन्मेति । तस्मिन्न-धियोगे जातश्चमूपः सेनापतिर्भवति । सचिवो मंत्री वा भवति । क्षितिपालो

नृपालो राजा वा भवति । तेषां युगपदसंभवात्पृथक्त्वं व्याख्यातम् । तथा च बादरायणः । “शशिनः सौम्याः पष्ठे द्यूने वा निधनसंस्थिता वा स्युः । जातो नृपतिर्ज्ञेयो मंत्री वा सैन्यनायको वापि ॥” तेनैतदुक्तं भवति । बुधगुरुसितै-
रुत्क्रष्टवीर्यैः नृपो मध्यमवीर्यैः सचिवः हीनवीर्यैः सेनापतिः । एषामन्यतमा अपि । संपन्नसौख्यविभवाः अतिसौख्यैश्वर्यसंपन्नाः हतशत्रवः नष्टरिपवः, दीर्घायुषः चिरजीविनः, विगतरोगभयाः स्वस्थदेहा निर्भयाश्च एवंविधे योगे जाता भवन्ति । केषांचिन्मते राजयोग एव । तथा च सारावल्याम् । “द्यून् षष्ठमथाष्टमं शिशिररोगः प्राप्ताः समस्ताः शुभाः क्रूराणां यदि गोचरे न पतिताः सूर्यालयाद्दूरतः । भूपालः प्रभवेत्स यस्य जलधेर्वेलावनांतोद्भवैः सेना मत्तक-
रीन्द्रानसल्लिलं भृंगैर्मुहुः पीयते ॥” तथा च मांडव्यः । “अमित्रं यामित्रं निधनमथवा शीतरुचितो गताः सर्वे सौम्यास्तमिह जनयेयुर्नरपतिम् । घृतेनै-
वासेकं गतवति विषादाश्रुपयसा प्रतापाग्निर्यस्य ज्वलति हृदये शत्रुषु भृशम् ॥” ॥ २ ॥

भाषा—चन्द्रमा से ६, ७, ८ इन स्थानों में सब शुभग्रह (बुध, गुरु, शुक) हो तो सेनापति या मंत्री अथवा राजा का जन्म होता है । अर्थात् शुभ ग्रह निर्बल हो तो सेनापति, मध्य बल हो तो मंत्री, पूर्णबली हो तो राजा का ही जन्म होता है । तथा इस योग में जन्म लेनेवाला सुख और विभव से सम्पन्न, शत्रुओं से रहित, दीर्घायु और नीरोग शरीरवाला होता है ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ किसी टोकाकार का मत है कि ६ ७।८ तीनों स्थान में तीनों ग्रह हो तभी अविशेष होता है किन्तु ऐसा अर्थ करने से अन्य आचार्यों के मत से विरोध होता है । यथा श्रुतीति आदि—

षट्सप्तमाष्टसंस्थैश्चन्द्रात् सौम्यैः शुभोऽधियोगः स्यात् ।

पापः पापैरेवं मिश्रं मिश्रस्तथैवोक्तः ॥ २ ॥

अथ सुनफानफादुरुधुराकेमद्गुमाख्यं योगचतुष्टयं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

हित्वा कं सुनफानफादुरुधुराः स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः

शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्गुमोऽन्यैस्त्वसौ ।

केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्गुमो नेष्यते

केचित्केन्द्रनवांशकेषु च वदन्त्युक्तिप्रसिद्धा न ते (१) ॥ ३ ॥

हित्वा कंमिति ॥ अथार्कमादित्यं हित्वा त्यक्त्वा यदान्यः कश्चिद्ग्रहो भौमादिकः शीतांशोश्चन्द्रात्स्वांत्योभयस्थो भवति द्वितीयद्वादशस्थौ वा द्वौ भवतस्तदा सुनफा-अनफा-दुरुधुराख्यं योगत्रयं भवति । एतदुक्तं भवति ।

(१) ‘वदन्त्युक्तिः प्रसिद्धा न सा’ इति पाठः समुचितः ।

अर्कं हित्वा यदाऽन्यो ग्रहः कश्चिच्चंद्राद्वितीयस्थाने भवति तदा सुनफानाम
योगो भवति । यदाकं वर्जयित्वा चंद्रात् द्वादशे कश्चिद्ग्रहो भवति तदा
अनफानाम योगो भवति । एवमर्कं वर्जयित्वा चंद्रात् द्वितीयद्वादशगौ ग्रहौ
भवतस्तदा दुरुधुरानाम योगो भवति । अत्र योगत्रयेऽप्यादित्यो द्वितीये द्वादशे
वा स्थाने भवति तदा न योगभंगकृद्भवति । किंतु योगकर्तृणां मध्ये न गण्यते ।
एतदुक्तं भवति । आदित्यो द्वितीये द्वादशे वा स्थाने भवतु, मा भवतु वा
भौमादिस्तत्रस्थो यथादर्शितयोगकर्ता भवति । एते योगा बहुभिराचार्यैः
पठिताः, अन्यथा केमद्रुम उक्तः । अस्माद्योगत्रयाद्यद्येकोऽपि योगो न भवति
तदा केमद्रुमाख्यो योगो भवति । एतदुक्तं भवति । भौमादीनां केन्द्रे शीतकरेऽ-
थवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते । अन्येषां गर्गादीनामेव मतम् । केन्द्रे जन्मलग्ने
केन्द्रे शीतकरे चन्द्रे वा भौमादिग्रहयुते भौमादिग्रहविरहितयोरपि चंद्राद्-
द्वितीयद्वादशस्थानयोः केमद्रुमो न भवति । केन्द्रे ग्रहयुत इत्यत्र कैश्चिच्चंद्रकेन्द्र-
मेव केदलं व्याख्यातं तच्चायुक्तम् । चन्द्रकेन्द्रे ग्रहयुते चन्द्रमसोऽपि योगो-
ऽन्तर्भवति शीतकरे ग्रहयुते इत्येतदपार्थक्यं स्यात् । अत्र च भगवान्नागिः ।
“व्ययार्थकेन्द्रगश्चंद्रादिना भानुं न चेद्ग्रहः । कश्चित्स्याद्वा विना चन्द्रं लप्ता-
त्केन्द्रगतोऽथवा ॥ योगः केमद्रुमो नाम तदा स्यात्तत्र गहितः । भवन्ति निन्दि-
ताचारा दारिद्र्यापत्तिसंयुताः ॥” तथा सारावल्याम् । “सुनफानफादुरुधुराः
क्रमेण योगा भवन्ति रविरहितैः । विज्ञान्त्योभयसंस्थैः कैरववनबान्धवा-
द्विहगैः ॥ एतेन यदा योगाः केन्द्रग्रहवर्जितः शशांकश्च । केमद्रुमोऽतिकष्टः
शशिनि च सर्वग्रहादृष्टे ॥” एवं “केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो
नेष्यते ॥” अन्ये आचार्या नेच्छन्ति । वराहमिहिरस्तु पुनरिच्छत्येव ।
यस्मिन्नर्थे तस्यैव तद्वाक्यम् । अन्यथा केमद्रुम इत्येवमुक्त्वा परमतमुक्तम् ।
अन्यैरसौ एवं “केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते ॥”
स्वल्पजातकेऽपि तेन सुनफानफादुरुधुराभावे केमद्रुम उक्तः । तथा च ।
“रविवर्ज्य द्वादशगैरनफा चन्द्राद्वितीयगैः सुनफा । उभयस्थितैर्दुरुधुरा
केमद्रुमसंज्ञकोऽतोऽन्यः ॥” सत्यस्यापि । “सुनफानफादुरुधुराभावे केमद्रुमः ॥”
तथा च । “सुनफात्वनफायोगौ दौरुधुरश्चन्द्रसंस्थितः क्षेत्रात् । प्राक्पृष्ठतो ग्रहे-
न्द्रैरुभयगतैस्तेषु रविवर्ज्यम् ॥ केमद्रुमोऽत्र योगोऽन्यथा भवेद्यत्र गहितं जन्म ॥”
केचित्केन्द्रनवांशकेष्विति । केचिदाचार्याः केन्द्रेषु केचिच्च नवांशकेष्वेतद्योग-
त्रयं वदन्ति । तथा चन्द्राद्द्वितीयद्वादशोभयस्थैर्ग्रहैः सुनफाद्या योगा व्या-
ख्याताः । तथा कैश्चिच्छ्रुतकीर्तिजीवशर्मप्रभृतिभिः केन्द्रवशान्नवांशकब-
शाच्च व्याख्याताः । एतदुक्तं भवति । ताराग्रहैश्चन्द्राच्चतुर्थस्थानस्थैः
सुनफा । दशमस्थानस्थैरनफा । चतुर्थदशमस्थितैः दुरुधुरा अतोऽन्यथा केमद्रुमः ।
तथा च श्रुतकीर्तिः । “चन्द्राच्चतुर्थैः सुनफा दशमस्थितैः कीर्तितोऽनफा विहगैः ।

उभयस्थितैर्दुरुधुरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः ॥” केचित्केन्द्रनवांशकेषु तु वदन्ति । यत्र तत्र राशौ यद्राशिसंबन्धिनवांशके चन्द्रमा भवति तस्माद्राशौ द्वितीयो राशिः तत्र यदि ताराग्रहो भवति तदा सुनफा । अथ चन्द्रनवांशकराशेः द्वादशे ताराग्रहो यदा भवति तदानफा । अथ चन्द्रनवांशकराशेः द्वितीये द्वादशे च यदा ग्रहौ भवतस्तदा दुरुधुरा । अतोऽन्यथा केमद्रुमः । तथा च चन्द्रनवांशकराशितो द्विद्वादशराशी यदि ग्रहरहितौ भवतः तदा केमद्रुमः । तथा च जीवशर्मा । “यद्राशिसंज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः । तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः ॥ द्वादशैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विद्वादशस्थितैः । प्रोक्तो दुरुधुरायोगोऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः ॥” उक्तिः प्रसिद्धा न ते येषामेवं विधं मतम् । तेषामुक्तिर्लोके न प्रसिद्धा तन्मतं वृद्धज्योतिषिकैर्नाङ्गीकृतमित्यर्थः ॥ ३ ॥

भा०—सूर्य को छोड़कर कोई भी ग्रह यदि चन्द्रमा से द्वितीय स्थान में हो तो सुनफा, यदि द्वादश स्थान में हो तो अनफा, यदि दोनों (द्वितीय और द्वादश) में हो तो दुरुधुरा नामक योग होता है । अन्यथा (अर्थात् द्वितीय वा द्वादश में कोई ग्रह नहीं हो तो) केमद्रुम योग होता है, ऐसा बहुतों का मत है । तथा कितने (श्रुतिकीर्ति, जीवशर्मा आदि) आचार्यों का मत है कि यदि लग्न से केन्द्र में या चन्द्रमा के साथ कुष्मादि ग्रहों में से कोई भी ग्रह हो तो केमद्रुम नहीं माना जाता है, अर्थात् केमद्रुम योग का भङ्ग हो जाता है । तथा कितने आचार्यों का मत है कि जिस प्रकार द्वितीय द्वादश स्थान में ग्रहवश सुनफादि योग होते हैं उसी प्रकार चन्द्रमा से केन्द्र (४११०) स्थान में ग्रह के होने से सुनफादि योग होता है । और कोई चन्द्र नवांश (चन्द्रमा जिस राशि के नवांश में हो उस राशि) से द्वितीय द्वादश स्थान में ग्रहों से सुनफादि योग मानते हैं । परन्तु उन लोगों का मत प्रसिद्ध (सर्वमान्य) नहीं है ॥ ३ ॥

यथा श्रुतिकीर्ति, जीवशर्मा आदि—

“चन्द्रास्तुतुर्थैः सुनफा दशमस्थितः कीर्तितोऽनफा विहगैः ।

उभयस्थितैर्दुरुधुरा केमद्रुमसंज्ञितोऽन्यथा योगः ॥”

“यद्राशिसंज्ञे शीतांशुर्नवांशे जन्मनि स्थितः ।

तद्द्वितीयस्थितैर्योगः सुनफाख्यः प्रकीर्तितः ॥

द्वादशैरनफा ज्ञेयो ग्रहैर्द्विद्वादशस्थितैः ।

प्रोक्तो दुरुधुरायोगोऽन्यथा केमद्रुमः स्मृतः ॥”

अथ सुनफानफादुरुधुराख्यं प्रकारज्ञानमिन्द्रवज्राह—

त्रिंशत्सरूपा सुनफानफाख्याः षष्टित्रयं दौरुधरे प्रमेदाः ।

इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥ ४ ॥

त्रिंशत्सरूपा इति ॥ सरूपान्निशदेकत्रिंशत् । एकत्रिंशत्सुनफाख्या योगाः ।

षष्टित्रयमशीत्यधिकं शतं दुरुधुराप्रभेदानामेषां पूर्ववद्विकल्पगणितम् । इच्छा-
विकल्पैरित्यादि । एतच्छ्लोके लोष्टुकप्रस्तारं पूर्वमेव नाभसयोगाध्याये
व्याख्यातम् । इच्छाविकल्पैः क्रमशः परिपाठ्यान्वयं लोष्टुकमभिनीय नीते
निवृत्तिः कार्या । पुनः भूयोऽन्यगोतिरित्यत्र स्थानान्तरे चालनम् । अथ सुन-
फादयो भौमबुधगुरुसितासितैः पञ्चभिर्निष्पाद्यन्ते । तस्मादिच्छाविकल्पाः
पञ्च तेषां न्यासः । अत्र प्राग्वत्पूर्वेण पूर्वेण गणितेन युक्तस्थानं विनान्त्यं
प्रवदन्ति संख्यामिति कृत्वा जातम् ५ । ४ । ३ । २ । १ । अथवा प्राग्वत्संस्थः
स्वसंख्या जाताः १ । ५ । ३ । २ । १ एवमेकविकल्पाः ५ द्विविकल्पाः १० त्रिविकल्पा
दश चतुर्विकल्पाः पञ्च पञ्चविकल्पा एकः । एवमेकत्रिंशत् । ५ । १० । १० । ५ । १ ।
तद्यथा । द्वितीये चन्द्राद्भौमः बुधः बृहस्पतिः शुक्रः सौरः । एवमेकविकल्पाः
पञ्च । अथ द्विविकल्पाः । भौमबुधौ १ भौमजीवौ २ भौमशुक्रौ ३ भौमसौरौ
४ बुधजीवौ ५ बुधशुक्रौ ६ बुधसौरौ ७ जीवशुक्रौ ८ जीवसौरौ ९ शुक्रसौरौ
१० । एवं द्विविकल्पाः दश । अथ त्रिविकल्पाः । भौमबुधजीवाः १ भौमबुध-
शुक्राः २ भौमबुधसौराः ३ भौमजीवशुक्राः ४ भौमजीवसौराः ५ भौमशुक्र-
सौराः ६ बुधजीवशुक्राः ७ बुधजीवसौराः ८ बुधशुक्रसौराः ९ जीवशुक्रसौराः
१० । एवं त्रिविकल्पा दश । अथ चतुर्विकल्पाः । भौमबुधजीवशुक्राः १ भौम-
बुधजीवसौराः २ भौमजीवशुक्रसौराः ३ भौमबुधशुक्रसौराः ४ बुधजीवशुक्र-
सौराः ५ एवं चतुर्विकल्पाः पञ्च । अथ पञ्चविकल्पाः । भौमबुधजीवशुक्रसौराः ।
एवं पञ्चविकल्पा एकः । एवमेकत्रिंशत् सुनफायोगाः उत्पादिताः । अनेनैव प्रका-
रेण द्वादशस्थैः अनफाभेदाः एकत्रिंशत् । अथ दुरुधुराविकल्पाः । एषां लोष्टु-
कप्रस्ताराभावात्स्वबुद्धयेच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीयेति न्यायेन व्युत्पत्तिः ।
एको द्वितीये । द्वितीयो द्वादशे । एको द्वादशे । द्वितीयो द्वितीये । तद्यथा ।
भौमबुधौ १ बुधभौमौ २ भौमजीवौ ३ जीवभौमौ ४ भौमशुक्रौ ५ शुक्रभौमौ
६ भौमसौरौ ७ सौरभौमौ ८ बुधजीवौ ९ जीवबुधौ १० बुधशुक्रौ ११ शुक्र-
बुधौ १२ बुधसौरौ १३ सौरबुधौ १४ जीवशुक्रौ १५ शुक्रजीवौ १६ जीवसौरौ
१७ सौरजीवौ १८ शुक्रसौरौ १९ सौरशुक्रौ २० । अथैको द्वितीये । द्वादशे द्वौ ।
द्वितीये द्वौ । द्वादशे चैकः । तद्यथा । भौमः बुधजीवौ १ बुधः जीवभौमौ २
जीवः शुक्रबुधौ ३ बुधः शुक्रभौमौ ४ भौमः बुधसौरौ ५ बुधः सौरभौमौ ६
भौमः जीवशुक्रौ ७ जीवः शुक्रभौमौ ८ भौमः जीवसौरौ ९ जीवः सौरभौमौ
१० भौमः शुक्रसौरौ ११ शुक्रः सौरभौमौ १२ बुधः भौमजीवौ १३ जीवः
भौमबुधौ १४ बुधः भौमशुक्रौ १५ भौमः शुक्रबुधौ १६ बुधः भौमसौरौ १७
भौमः सौरबुधौ १८ बुधः जीवशुक्रौ १९ जीवः शुक्रबुधौ २० बुधः जीवसौरौ
२१ जीवः सौरबुधौ २२ बुधः शुक्रसौरौ २३ शुक्रः सौरबुधौ २४ जीवः भौम-
बुधौ २५ भौमः बुधजीवौ २६ जीवः भौमशुक्रौ २७ भौमः शुक्रजीवौ २८ जीवः
भौमसौरौ २९ भौमः सौरजीवौ ३० जीवः बुधशुक्रौ ३१ बुधजीवौ ३२ जीवः

बुधसौरौ ३३ बुधः सौरजीवौ ३४ जीवः शुक्रसौरौ ३५ शुक्रः सौरजीवौ ३६
 शुक्रः भौमबुधौ ३७ भौमः बुधशुक्रौ ३८ शुक्रः भौमजीवौ ३९ भौमः जीव-
 शुक्रौ ४० शुक्रः भौमसौरौ ४१ भौमः सौरशुक्रौ ४२ शुक्रः बुधजीवौ ४३ बुधः
 जीवशुक्रौ ४४ शुक्रः बुधसौरौ ४५ बुधः सौरशुक्रौ ४६ शुक्रः जीवसौरौ ४७
 जीवः सौरशुक्रौ ४८ सौरः भौमबुधौ ४९ भौमः बुधसौरौ ५० सौरः भौम-
 जीवौ ५१ भौमः जीवसौरौ ५२ सौरः भौमशुक्रौ ५३ भौमः शुक्रसौरौ ५४
 सौरः बुधजीवौ ५५ बुधः जीवसौरौ ५६ सौरः बुधशुक्रौ ५७ बुधः शुक्रसौरौ
 ५८ सौरः जीवशुक्रौ ५९ जीवः शुक्रसौरौ ६० । एवमेकत्र जाताः ८० । अथैको
 द्वितीये । द्वादशे त्रयः । तद्यथा । भौमः बुधजीवशुक्राः १ बुधजीवशुक्राः भौमः
 २ भौमः बुधजीवसौराः ३ बुधजीवसौराः भौमः ४ भौमः बुधशुक्रसौराः ५
 बुधशुक्रसौराः भौमः ६ भौमः जीवशुक्रसौराः ७ जीवशुक्रसौराः भौमः ८
 बुधः भौमजीवशुक्राः ९ भौमजीवशुक्राः बुधः १० बुधः भौमजीवसौराः ११
 भौमजीवसौराः बुधः १२ बुधः भौमशुक्रसौराः १३ भौमशुक्रसौराः बुधः १४
 बुधः जीवशुक्रसौराः १५ जीवशुक्रसौराः बुधः १६ जीवः भौमबुधशुक्राः १७
 भौमबुधशुक्राः जीवः १८ जीवः भौमबुधसौराः १९ भौमबुधसौराः जीवः २०
 एवमेकत्र १०० । जीवः भौमशुक्रसौराः १ भौमशुक्रसौराः जीवः २ जीवः
 बुधशुक्रसौराः ३ बुधशुक्रसौराः जीवः ४ जीवः ४ शुक्रः भौमबुधजीवाः ५
 भौमबुधजीवाः शुक्रः ६ शुक्रः भौमबुधसौराः ७ भौमबुधसौराः शुक्रः ८ शुक्रः
 भौमजीवसौराः ९ भौमजीवसौराः शुक्रः १० शुक्रः बुधजीवसौराः ११ बुध-
 जीवशुक्राः सौरः १२ सौरः भौमबुधजीवाः १३ भौमबुधजीवाः सौरः १४
 सौरः भौमबुधशुक्राः १५ भौमबुधशुक्राः सौरः १६ सौरः भौमजीवशुक्राः १७
 भौमजीवशुक्राः सौरः १८ सौरः बुधजीवशुक्राः १९ बुधजीवशुक्राः सौरः २० ।
 एवमेकत्र १२० । अथ द्वितीये एको द्वादशे चत्वारः । चत्वारो द्वितीये द्वादशे
 चैकः । तद्यथा । भौमः बुधजीवशुक्रसौराः १ बुधजीवशुक्रसौराः भौमः २
 बुधः भौमजीवशुक्रसौराः ३ भौमजीवशुक्रसौराः बुधः ४ जीवः भौमबुध-
 जीवशुक्रसौराः ५ भौमबुधशुक्रसौराः जीवः ६ शुक्रः भौमबुधजीवसौराः ७
 भौमबुधजीवसौराः शुक्रः ८ सौरः भौमजीवशुक्राः ९ भौमबुधजीवशुक्राः
 सौरः १० एवमेकत्र १३० । अथ द्वौ द्वादशे द्वावेकः द्वितीये । तद्यथा । भौम-
 बुधौ जीवशुक्रौ १ जीवशुक्रौ भौमबुधौ २ भौमबुधौ जीवसौरौ ३ जीवसौरौ

भौमबुधौ ४ भौमबुधौ शुक्रसौरौः ५ शुक्रसौरौ भौमबुधौ ६ भौमजीवौ
 शुक्रबुधौ ७ शुक्रबुधौ भौमजीवौ ८ भौमजीवौ बुधसौरौ ९ बुधसौरौ भौम-
 जीवौ १० भौमजीवौ शुक्रसौरौ ११ शुक्रसौरौ भौमजीवौ १२ भौमशुक्रौ
 बुधजीवौ १३ बुधजीवौ भौमशुक्रौ १४ भौमशुक्रौ बुधसौरौ १५ बुधसौरौ
 भौमशुक्रौ १६ भौमशुक्रौ जीवसौरौ १७ जीवसौरौ भौमशुक्रौ १८ बुधजीवौ
 भौमसौरौ १९ भौमसौरौ बुधजीवौ २० । एवमेकत्र १५० । भौमसौरौ
 बुधशुक्रौ १ बुधशुक्रौ भौमसौरौ २ भौमसौरौ जीवशुक्रौ ३ जीवशुक्रौ
 भौमसौरौ ४ बुधजीवौ शुक्रसौरौ ५ शुक्रसौरौ बुधजीवौ ६ बुधशुक्रौ जीव-
 सौरौ ७ जीवसौरौ बुधशुक्रौ ८ जीवशुक्रौ बुधसौरौ ९ बुधसौरौ जीवशुक्रौ
 १० । एवमेकत्र १६० । द्वौ द्वितीये त्रयो द्वादशे द्वादशे द्वौ त्रयो द्वितीये च ।
 तद्यथा । भौमबुधौ जीवशुक्रसौरौः १ जीवशुक्रसौरौः भौमबुधौ २ भौमजीवौ
 बुधशुक्रसौरौः ३ बुधशुक्रसौरौः भौमजीवौ ४ भौमशुक्रौ बुधजीवसौरौः ५
 बुधजीवसौरौः भौमशुक्रौ ६ भौमसौरौ बुधजीवशुक्राः ७ बुधजीवशुक्राः भौम-
 सौरौ ८ बुधजीवौ भौमशुक्रसौरौः ९ भौमशुक्रसौरौः बुधजीवौ १० । एवमेकत्र
 १७० । बुधशुक्रौ भौमजीवसौरौः १ भौमजीवसौरौः बुधशुक्रौ २ बुधसौरौः
 भौमजीवशुक्राः ३ भौमजीवशुक्राः बुधसौरौ ४ जीवशुक्रौ भौमबुधसौरौः ५
 भौमबुधसौरौः जीवशुक्रौ ६ जीवसौरौ भौमबुधशुक्राः ७ भौमबुधशुक्राः
 जीवसौरौ ८ शुक्रसौरौ भौमबुधजीवाः ९ भौमबुधजीवाः शुक्रसौरौ १० ।
 एवमेकत्र १८० । एवं दुरुधुगयोगभेदः शतमशीत्यधिकं प्रदर्शितः ॥ ४ ॥

भाषा—पूर्वोक्त सुनफा और अनफा योग के ३१, ३१ भेद होते हैं । और दुरुधुग
 के $६० \times ३ = १८०$ भेद होते हैं । इनको समझने के लिये लोष्टुक प्रस्तार के द्वारा
 इष्टविकल्प से इष्ट भेद समझकर, फिर उसको छोड़कर क्रम से अन्य भेद का आनयन
 कर सब भेद समझना चाहिये ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—ग्रहों की स्थिति के अनुसार भेद समझने के लिये ज्योतिषशास्त्र के
 प्रसिद्ध दो प्रकार हैं । एक वराहमिहिर का और दूसरा भास्कराचार्य का ।

यथा वराहमिहिर—

“पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तः स्थानं विनाऽन्त्यं प्रवदन्ति संख्याम् ।

इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥”

अर्थ—जितने ग्रह या जितनी वस्तुओं के एक द्वित्र्यादि योग से भेद की संख्या
 जाननी हो तो उतने स्थानों में १ आदि अंक लिखे । उसमें अन्तिम अङ्कतुल्य एक ग्रह
 से भेद होता है । फिर (नीचे) दूसरी पंक्ति में ऊपर लिखित अंकों को पूर्व, पूर्व

को अग्रिम में जोड़कर लिखें, किन्तु अन्तिम अंक को छोड़कर अर्थात् अन्तिम अंक में पूर्व अंक न जोड़े, इसी प्रकार फिर उसके नीचे तीसरी पंक्ति बनावें एवं चौथी इत्यादि तब तक बनावे जब तक अन्तिम पंक्ति में केवल १ आ जावे। इसी प्रकार छन्दःशास्त्र में छन्दों के भेद और एकद्वयादिलगक्रिया जानने के लिये चक्र बनाते हैं, वह पताके की आकृति होने के कारण “पताका” कहलाती है। इनमें अन्तिम अंक एकद्वित्र्यादि भेद और सब का योग सम्पूर्ण भेद की संख्या होती है।

उदाहरण—जैसे मुनफादि योग में ‘रविचन्द्र को छोड़कर’ केवल कुजादि ५ ग्रहों की एकद्वयादि संयोगस्थिति से भेद जानना है, तो यहाँ १ से क्रम से ५ तक संख्या

| | | | | | |
|---|-----|-----|-----|-----|----------------|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | एक ग्रह से |
| १ | ३ | ६ | १० | ... | दो ग्रहों से |
| १ | ४ | १० | ... | ... | तीन ग्रहों से |
| १ | ५ | ... | ... | ... | चार ग्रहों से |
| १ | ... | ... | ... | ... | पाँच ग्रहों से |

प्रथम पंक्ति में लिखी, इनमें अन्तिम (५) अंक एक ग्रह से बने भेद की संख्या हुई। दूसरी पंक्ति में ऊपरवाले अंकों की ही पूर्व, पूर्व को अग्रिम में जोड़कर (४ स्थान तक अर्थात् अन्तिम को छोड़कर) रखने से अन्त में १० हुए यह २ ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। फिर

तृतीय पंक्ति में द्वितीय पंक्ति वाले अंकों को ही पूर्व पूर्व को अग्रिम अग्रिम में जोड़ने से अन्त में १० यह ३ ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। फिर चतुर्थ पंक्ति में इसी प्रकार (तृतीय पंक्ति वाले २ स्थान तक) के अङ्कों को पूर्व को अग्रिम में जोड़कर रखने से अन्तिम अङ्क ५ यह चार ग्रहों के योग से भेद संख्या हुई। इस प्रकार पञ्चम पंक्ति में ऊपरवाली (चतुर्थ) पंक्ति के अन्तिम अङ्क को छोड़कर पूर्वाङ्क १ ही बचा यह पाँचों ग्रह के योग से भेद संख्या हुई। तथा सब अन्तिमांकों का योग $५ + १० + १० + ५ + १ = ३१$ समस्त भेद हुए। इस प्रकार मुनफा और अनफा के भेद ३१ उपपन्न होते हैं। यही छन्दःशास्त्र में “खण्डमेरु” भी कहलाता है। इसी प्रकार को भास्कराचार्य ने अपनी पाटीगणित में और सरल कर दिया है। यथा—

“एकाद्येकोत्तरा अङ्का न्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः ।

परः पूर्वोण सद्गुण्यस्तत्परस्तेन तेन च ॥

एकद्वित्र्यादिभेदाः स्युरिदं साधारणं स्मृतम् ।” इति ॥

अर्थात् जितनी वस्तुओं के एकद्वित्र्यादियोगजनित भेद समझना हो उतने स्थान तक १ से आरम्भ कर व्यस्त (बाईं तरफ बढ़ाकर) एकोत्तर संख्या लिख कर उनमें क्रम से एकादि एकोत्तर संख्या से भाग देना, फिर पूर्व, पूर्व से अग्रिम को गुणाकर नीचे पंक्ति में क्रम से पृथक् पृथक् रखने से एकद्वित्र्यादि भेदों की संख्या होती है उन सबों का योग समस्त भेद की संख्या होती है उन सबों का योग समस्त भेद की संख्या होती है।

उदाहरण—जैसे ५ ग्रहों से एकद्वित्रयादि भेद संख्या जानने के लिये १ से ५ तक उत्क्रम से संख्या लिखकर उनमें १ से ५ तक अङ्कों के क्रम से भाग दिया अर्थात् सब के नीचे क्रम से १ आदि अङ्कों को भाजक (हर) रूप में लिखा । इनमें प्रथम $\frac{५}{१}=५$

| | | | | |
|---|----|----|---|---|
| ५ | ५ | ३ | २ | १ |
| ५ | १० | १० | ५ | १ |

यह एक ग्रह से उत्पन्न भेद संख्या हुई । फिर उस से अगले अङ्क को गुणा करने ($५ \times \frac{५}{२}=१०$ यह)

दो ग्रहों से भेद संख्या हुई । फिर इस १० से अग्रिम अङ्क को गुणा करने से ($१० \times \frac{३}{३}=१०$) यह तीन ग्रहों से संख्या भेद हुई । फिर इससे अग्रिम अंक को गुणा करने से ($१० \times \frac{२}{२}=५$) यह चार ग्रहों से भेद संख्या हुई । फिर इससे अग्रिम अंक को गुणा करने से ($५ \times \frac{१}{१}=५$) यह पाँचों ग्रह के योग से भेद संख्या हुई । सबका योग = ($५ + १० + १० + ५ + ५ = ३५$) पूर्व समान ही हुआ ।

अब दुरुधुरा योग के १८० भेद की उपपत्ति दिखलाते हैं । यथा—दुरुधुरा भी मंगलादि ५ ग्रहों से ही होती है । उनमें इतनी विशेषता है कि द्वितीय और द्वादश दोनों स्थानों में ग्रह की स्थिति रहती है इसलिये एक स्थान में किसी १ ग्रह को रख कर दूसरे स्थानों में शेष चार ग्रह को कुल भेद पूर्व रीति से चार ग्रह से भेद संख्याचक्र ($४ + ६ + ४ + १ = १५$) पन्द्रह होते हैं । अतः अनुपात हुआ कि एक ग्रह के साथ १५ भेद तो ५ ग्रहों से कितने ?— $१५ \times ५ = ७५$ ये एक स्थान से भेद हुए । इतने ही

| | | | | |
|---|---|---|---|---------------|
| ४ | ३ | २ | १ | |
| ४ | ६ | ४ | १ | भेद योग १५ |

फिर द्वितीय स्थान से ७५ अतः दोनों मिलकर $७५ + ७५ = १५०$ एवं एक स्थान में २ और द्वितीय में ३ तथा दोनों में २, २ ग्रहों से ३० कुल $१८० =$

६०×३ भेद हुए । इससे “षष्टित्रयं दौरुघरे प्रभेदाः” यह उपपन्न हुआ ॥ ४ ॥

अथ सुनफाऽनफयोर्योगजातस्य स्वरूपविज्ञानं मालिन्याह—

स्वयमधिगतवित्तः पार्थिवस्तत्समो वा

भवति हि सुनफायां धोधनख्यातिमांश्च ।

प्रभुरगदशरीरः शीलवान्ख्यातकीर्ति-

विषयसुखसुवेणो निर्धृतश्चानफायाम् ॥ ५ ॥

स्वयमिति ॥ स्वयमात्मनाधिगतमर्जितं वित्तं येन स्वबाह्वर्जितधनः पार्थिवो राजा भवति । तत्समो वा । यदि राजा न भवति तदा राजतुल्यः । धोधनख्यातिमान् बुद्धिवित्तकीर्तिभिर्युक्तः एवंविधः सुनफायां योगे जातो भवति । प्रभुरिति । प्रभुरप्रतिहृत्वाङ्गः, अगदशरीरो नीरुजदेहः अविद्यमाना गदा रोगा यस्य, शीलवान् दमविनयादिभिर्गुणैर्युक्तः, ख्यातकीर्तिः प्रथितयशाः जनविदितसद्गुणः, विषयसुखः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः विषयाः तत्सुखैर्युक्तः । ननु किं

विषयव्यतिरिक्तसुखमस्ति ? उच्यते । अस्ति । यद्योगिनां मनःसुखं सुवेषः अनुलोपनालंकारमाल्यसद्वस्त्रधारणशीलः निर्धृतः मनोदुःखविनिर्मुक्तः एवंविधोऽनफायां योगे जातो भवति ॥ ५ ॥

भाषा—सुनफायोग में जन्म लेनेवाला स्वबाहुबल से धन प्राप्ति करने वाला, राजा वा राजा के तुल्य बुद्धि धन और सुयश से युक्त होता है । अनफायोग में उत्पन्न मनुष्य, लोगों को वश में रखने वाला, रोग रहित, सुशील, विख्यात यश, विषय सुखों से युक्त, सुन्दर रूप युक्त और मानस चिन्ता से रहित होता है ॥ ५ ॥

अथ दुरुधुराकेमद्रुमयोगे जातयोः स्वरूपं वसंततिलकेनाह—

उत्पन्नभोगसुखभुग्धनवाहनाद्व्यस्त्यागान्वितो दुरुधुराप्रभवः सुभृत्यः ।

केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वाः प्रेष्ठ्याः खलाश्च नृपतेरपि वंशजाताः ६

उत्पन्नभोगसुखभुगिति ॥ यत्र तत्र यथा तथोत्पन्नभोगैः सुखानि भुंक्ते धनेन वित्तेन वाहनैरश्वादिभिराढ्यः, त्यागान्वितो दाता, सुभृत्यः शोभनभृत्य एवंविधो दुरुधुरायोगे जातो भवति । केमद्रुम इति । मलिनः मलिनवासाः, स्नानालसश्च दुःखितः शरीराद्यैः दुःखैरन्वितः, नीचः स्वकुलानुचिताधमकर्मकरः, निःस्वः दरिद्रः, प्रेष्ठ्यः दासकर्मकरः, खलः दुर्जनस्वभावः एषामुक्तार्थानामन्यतमेन युक्तो यदि नृपतेः राज्ञोऽपि वंशे कुले जातः तथाप्येवंविधः केमद्रुमजातो भवति । केचिदत्रैकवचनं पठन्ति । “केमद्रुमे मलिनदुःखितनीचनिःस्वः प्रेष्ठ्यः खलश्च नृपतेरपि वंशजातः ।” तथापि न कश्चिदोषः ॥ ६ ॥

भाषा—दुरुधुरा योग में उत्पन्न मनुष्य उपस्थित भोग और सुख को भोगनेवाला, धन, वाहनों से युक्त, दाता और इमानदार नौकरों को रखनेवाला होता है । और केमद्रुमयोग में राजवंश में भी उत्पन्न मनुष्य मलिन, दुःखी, नीच, निर्धन और दूसरों की सेवा करनेवाला होता है ॥ ६ ॥

एवं तावत्सुनफादिसामान्येन फलमभिधायेदानीं ग्रहवशाद्विशेषफलं वसंततिलकेनाह—

उत्साहशौर्यधनसाहसवान्महीजः

सौम्यः पटुः सुवचनो निपुणः कलासु ।

जीवोऽर्थधर्मसुखभाङ्गनृपपूजितश्च

कामी भृगुर्वहुधनो विषयोपभोक्ता ॥ ७ ॥

उत्साहेति ॥ उत्साहवान् बली नित्योद्यमशालः, शौर्यवान् रणप्रियः, धनवान् वित्तान्वितः, साहसवान्समीक्षितकार्यकारी यद्यत्कार्यं यदा काले त्वविचार्य करोति यः साहसिकः एवंविधो महीजोऽगारको यदि योगकर्ता भवति तदा जातो भवति । पटुः दक्षः, सुवचनः शोभनवाक्, कलासु निपुणः गीतवाद्यनृत्यचित्रपुस्तककर्मादिषु सूक्ष्मदृष्टिः यदि सौम्यो बहुधो योगकर्ता तदैवंविधो

जातो भवति । अर्थभाक् धनानां भाजनः, धर्मभाक् धर्मक्रियास्वनुरतः, सुखभाक् नित्यसुखितः, नृपपूजितः राज्ञां मान्यः, यदि जीवो बृहस्पतिः योगकरः तदैवविधो जातो भवति । कामी कामुकः स्त्रीलोलः, बहुधनः प्रभूतार्थः, विषयोपभोक्ता विषयाणामिन्द्रियार्थानामुपभोक्ता उपभोगशीलः तत्सुखान्वितः यदि भृगुः शुक्रो योगकरस्तदैवविधो जातो भवति ॥ ७ ॥

भाषा—सुनफा अनफा वा दुरुधुरायोग-कारक यदि मंगल हो तो जातक उत्साह, पराक्रम, धन और साहस से युक्त होता है । बुध हो तो पंडित, मृदुभाषी, कलाओं में कुशल होता है । बृहस्पति हो तो धनी धर्मपति, सुखी और राजमान्य होता है । शुक्र हो तो कामी, अत्यधिक धनों से युक्त और विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धजन्य) सुख को भोगनेवाला होता है ॥ ७ ॥

अथ शनैश्चरे योगकर्तरि पुरुषस्य स्वरूपं चंद्रमसि च दृश्यादृश्ये जातस्य स्वरूपज्ञानं पुष्पिताप्रयाह—

परविभवपरिच्छदोपभोक्ता रवितनयो बहुकार्यकृद्गणेशः ।

अशुभकृदुपोऽहि दृश्यमूर्तिर्गलिततनुश्च शुभोऽन्यथान्यदूहम् ॥८॥

परविभेति ॥ परार्जितानां विभवानामैश्वर्याणां परिच्छदानां गृहवस्त्रवाहनपरिवाराणामुपभोक्ता भवति बहुकार्यकृन्नानाविधानां कार्याणां कर्ता, गणेशः बहुगणस्वामी, गणाः संघाः तेषां प्रभुः एवविधो रवितनयः शनैश्चरो योगकरो यदि भवति तदा जातो भवति । अत्र योगत्रये सुनफानफादुरुधुराख्ये एकैकस्य ग्रहस्य फलमुक्तं द्वयादिसंभवे फलं द्वयादिकं वाच्यम् । अशुभकृदिति । उदुपश्चन्द्रोऽहि दिने दृश्यमूर्तिः दृश्यमानशरीरः अशुभकृदनिष्टफलकर्ता एतदुक्तं भवति । दिवा जन्मनि चंद्रमा दृश्ये चक्रार्द्धे स्थितः अशुभं फलं करोति । स पुरुषो दारिद्र्यादियुक्तो भवतीत्यर्थः । गलिततनुरदृश्यमूर्तिः शुभः । एतदुक्तं भवत्यदृश्ये चक्रार्द्धे स्थितः शुभकृज्जातः ऐश्वर्यादियुक्तो भवति । अन्यथान्यदूहम् । उक्तप्रकारादन्यथास्थे चन्द्रमसि लभ्यमानं स्वबुद्ध्या विकल्पनीयम् । एतदुक्तं भवति । रात्रौ जन्मन्यदृश्ये चक्रार्द्धे यस्य चन्द्रो भवति तस्याशुभं जन्म । यस्य दृश्ये चक्रार्द्धे चन्द्रो भवति तस्य शुभं जन्म भवतीत्यर्थः ॥८॥

भाषा—यदि शनि सुनफादियोग कारक हो तो दूसरों के वन, गृह, वस्त्रादि का भोग करनेवाला, बहुत कार्य करने वाला और बहुतों का मालिक होता है । अब चन्द्रमा का फल कहते हैं—यदि दिन में जन्म हो और चन्द्रमा दृश्य चक्रार्ध (सप्तमभोग्यांश, ८, ९, १०, ११, १२, भाव और लग्न के भुक्तांश) में हो तो अशुभ फलकारक होता है । यदि अदृश्य चक्रार्ध (लग्न के भोग्यांश २, ३, ४, ५, ६ और सप्तम भाव के भुक्तांश) में हो तो शुभ होता है । रात्रि में इससे भिन्न फल समझता । जैसे—रात्रि में दृश्यचक्रार्ध हो तो शुभ, अदृश्य चक्रार्ध में हो तो अशुभ होता है ॥ ८ ॥

अथ लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्योपचये सौम्यग्रहा भवन्ति तस्य फलं वसन्ततिलकेनाह—
लग्नादतीव वसुमान्वसुमाञ्छशाङ्कात्सौम्यग्रहैरुपचयोपगतैः समस्तैः ।
द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमांश्च तदनतायामन्येष्वसत्स्वपि फलोष्विदमुत्कटेन ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

चन्द्रयोगाध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

लग्नादिति ॥ यस्य जन्मनि लग्नात्सौम्यग्रहाः बुधजीवसिता उपचयगता भवन्ति सर्व एव स पुरुषोऽतीव वसुमान्त्यर्थं धनवान्भवति । यस्य शशाङ्काच्चन्द्राद्युपचये सर्व एव सौम्यग्रहाः भवन्ति सोऽपि धनवान् भवति । एवं समस्तैः त्रिभिरेतत्फलम् । द्वाभ्यां समः । यस्य लग्नाच्चन्द्राद्वा द्वौ ग्रहौ सौम्यावुपचयगतौ भवतः स समो मध्यधनो भवति । नातिबहुधनो भवतीत्यर्थः । तदूनतायां लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्यैकः सौम्यग्रहः उपचयगतो भवति सोऽल्पवसुमान्किञ्चिद्धनान्वितो भवति । अर्थादेव लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्योपचये न कश्चित्सौम्यग्रहो भवति स दरिद्रो भवति । यस्य लग्नचन्द्रयोर्द्वयोरपि सौम्यग्रहा उपचयस्थाः कयापि युक्त्या भवन्ति सोऽप्यतीव वसुमान्भवति । अन्येष्वसत्स्वपि फलोष्विति । अन्येष्वपरेष्वसत्स्वशोभनेष्वपि फलेषु सत्स्विदं फलमुत्कटेन बाहुल्येन भवति । यस्य लग्नाच्चन्द्राद्वा उपचयस्थाः सौम्यग्रहा भवन्ति तस्यान्ययोगमशुभमपि केमद्रुमादिफलमभिभूयेदं शुभमेव फलमुत्कटत्वेन प्राबल्येन भवतीति ॥ ६ ॥

इति भट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ चन्द्रयोगाध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

भाषा—लग्न से अथवा चन्द्र से यदि सब शुभ ग्रह (बुध, गुरु, शुक्र) उपचय स्थान में हो तो अत्यन्त धनवान् होता है, यदि दो शुभग्रह उपचय में हो तो मध्यम प्रकार का धनवान् होता है । यदि कोई एक ही शुभग्रह उपचय स्थान (३।६।१०।११) में हो तो अल्प धनयुक्त होता है । यह योग अशुभ (केमद्रुम आदि) योगों के रहने पर भी विशेष प्रबल होता है, अर्थात् उपचयस्थ शुभ ग्रह के रहने पर भी दारिद्र्य योग का नाश हो जाता है । यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों से उपचय स्थान में शुभ पड़े तो और भी प्रबल योग होता है ॥ ९ ॥

विशेष अर्थ—उपरिर्लिखित सुनकादि शुभयोग में जितने ग्रहों से योग होता है । उन सब ग्रहों के जो पृथक् फल कहे गये हैं, वे सब फल प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

अथ द्विग्रहयोगाध्यायः १४ ।

अथ द्विग्रहयोगाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादित्ये चन्द्रादियुक्ते जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

तिग्मांशुर्जनयत्युपेक्षसहितो यन्त्राश्मकारं नरं
भौमेनाघरतं बुधेन निपुणं धीकीर्तिसौख्यान्वितम् ।

क्रूरं वाक्पतिनान्यकार्यनिरतं शुक्रेण रङ्गायुधै-

लब्धस्वं रविजेन धातुकुशलं भाण्डप्रकारेषु वा ॥ १ ॥

तिग्मांशुरिति ॥ तिग्मांशुरादित्यः उपेशेन चन्द्रमसा सहितो युक्तः उषा रात्रिः उषाया ईशः उपेशः रात्रिनाथः नरं मनुष्यं यन्त्राश्मकारं जनयति । यन्त्राणि सहस्रधातिप्रभृतीन्यश्मानः पाषाणाः तत्क्रियासु तत्कर्मसु निरतं सक्तं तं करोति । एवं भौमेन सहैकाग्रशिगतोऽर्कोऽधरतं पापासक्तं जनयति । बुधेन क्रियासु निपुणं सूक्ष्मदृष्टिं धोकीर्तिसौख्यानित्वं धोबुद्धिः, कीर्तिः यशः, सौख्यं सुखं सुखभावः एतैरन्वितं संयुक्तं, वाक्पतिना गुरुणा क्रूरं विषमस्वभाव-मन्यकार्यनिरतं परकर्मतत्परं जनयति । शुक्रेण रङ्गायुधैः रङ्गावतरणक्रियया मल्लादिकयाऽयुधैः खड्गादिभिश्च लब्धस्वं प्राप्तार्थं जनयति । रविजेन शनैश्चरेण धातुषु तन्नाद्यत्पत्तिमृत्तिकासु गैरिकाद्यासु वा धातुषु कुशलं निपुणं भाण्ड-प्रकारेषु समुद्गादयस्तेषु कुशलं वा ॥ १ ॥

भाषा—जन्म समय में सूर्य यदि चन्द्रना से युत हो तो यन्त्र और पत्थर के काम करने वाला होता है, मंगल से युत सूर्य हो तो जातक पापी होता है । बुध से युत हो तो सब कार्य में निपुण और ज्ञान, यश, सुखों से युक्त होता है । गुरु से युत रवि हो तो क्रूर स्वभाव वाला और दूसरे का कार्य करने वाला होता है । शुक्र से युत सूर्य हो तो नृत्यगीत (फिल्म कम्पनी) या रणक्षेत्र तथा अस्त्रों से धन प्राप्त करने वाला होता है । यदि शनि से युत रवि हो तो धातु (ताँबा आदि) तथा आभूषणादिक कर्म में निपुण होता है ॥ १ ॥

अथ भौमादिदुक्ते चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कूटस्त्रयासवकुम्भपण्यमशिवं मातुः सवक्रः शशी

सज्ञः *प्रसृतवाक्यमर्थनिपुणं सौभाग्यकीर्त्यान्वितम् ।

विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं वित्तेश्वरं साङ्गिरा

वस्त्राणां ससितः क्रियादिकुशलं सार्किः पुनर्भूसुतम् ॥ २ ॥

कूट इति ॥ कूटं पण्यद्रव्याणां प्रतिरूपक्रियासक्तं स्त्रीपण्यं नारीविक्रयकम्, आसवपण्यं पानविक्रयं, कुम्भपण्यं घटविक्रयकम्, अशिवमश्वेयस्करम् मातुः जनन्याः एवंविधः शशी चन्द्रमाः सवक्रो वक्रेणाङ्गारकेण युक्तो नरं जनयति । सज्ञ इति । प्रसृतवाक्यं प्रियं वदम्, अर्थनिपुणमर्थेषु सूक्ष्मदृष्टिं, सौभाग्येन सर्वजनवल्लभेन कीर्त्या यशसान्वितं संयुक्तं सज्ञो बुधसहितः शशी नरं जनयति । विक्रान्तं शत्रुजेतारं, कुलमुख्यं वंशप्रधानम् अस्थिरमतिं चपलं, वित्ते-

* अत्र च्छन्दोभङ्गदोषत्वात् “प्रश्रितवाक्य”मिति पाठः समीचीनः । प्रश्रितवाक्यं विनीतवचनं—“निश्रुतविनीतप्रश्रिताः समाः” इत्यमरः ॥

श्वरं धनस्वामिनं, साङ्गिराः अङ्गिरसा गुरुणा संयुक्तः शशी नरं जनयति । वस्त्राणां क्रियादिकुशलं तन्तुवायकम् आदिप्रहणात्सीवनरञ्जनकं विक्रयेष्वपि कुशलं ससितः शुक्रेण संयुक्तः शशी नरं जनयति । क्रियादिकुशलं सर्वक्रियासु निपुणं सार्किः आर्किणा शनैश्चरेण युक्तः द्विःसंस्कृता पुनर्भूः तस्याः सुतं पुत्रं शशी नरं जनयति । पुनर्भूलक्षणम् । “परिणीता पतिं हित्वा सर्वार्णं कामतः श्रयेत् । अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः” ॥ २ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा मंगल से युत हो तो नकली द्रव्य, स्त्री, मादरा और घड़ा का विक्रय करनेवाला होता है, और माता को कष्ट देने वाला होता है । बुध से युत चन्द्रमा हो तो कोमल वचन बोलनेवाला, धनोपार्जन में चतुर, संभाग्य और सुयश से युक्त होता है । गुरु से युक्त चन्द्रमा हो तो पराक्रमी, कुल में श्रेष्ठ, चञ्चल बुद्धि, और पूर्ण धनवान् होता है । शुक्र से युत चन्द्रमा हो तो वस्त्रों की क्रिया (सूत कातना, कपड़ा बिनना आदि) में चतुर और शनि से युत हो तो पुनर्भू (दूसरा पति करनेवाली स्त्री) का पुत्र होता है ॥ २ ॥

अथाङ्गारके बुधादियुक्ते जातस्य स्वरूपं स्रग्धरयाह—

मूलादिस्नेहकूटैर्व्यवहरति वणिग्बाहुयोद्धा ससौम्ये

पुर्यध्यक्षः सजीवे भवति नरपतिः प्राप्तवित्तो द्विजो वा ।

गोपो मल्लोऽथ दक्षः परयुवतिरतो धृतकृत्सासुरेज्ये

दुःखार्तोऽसत्यसन्धः ससवितृतनये भूमिजे निन्दितश्च ॥ ३ ॥

मूलादिति ॥ ससौम्ये भूमिजे बधयुक्तेऽङ्गारके जातो वणिग्भवति । स च वणिग्मूलादिभिः व्यवहरति मूलादीनि मूलपुष्पवल्कलसारफलानि, स्नेहास्तैलादयः एतैर्व्यवहरति । कूटैश्च द्रव्यप्रतिरूपैः कृत्रिमैर्व्यवहरति । बाहुयोद्धा नियुद्धकुशलश्च भवति । एवं विधः ससौम्ये सौम्येन बुधेन युक्ते भूमिजे जातो भवति । पुर्यध्यक्षः नगराधिकृतः पुरि अध्यक्षः स्वामी अथवा नरपतिः राजा भवति । अथवा द्विजो ब्राह्मणः प्राप्तवित्तो लब्धधनः । केचित्प्राप्तविद्य इति पठन्ति । सजीवे गुरुसंयुक्ते भौमे जातो भवति । गोपः गोपालकः, मल्लः बाहुयोद्धा । अथशब्दः पादपूरणे । दक्षः चतुरः परयुवतिरतः परस्त्रीसक्तः, धृतकृत्कितवः सासुरेज्ये असुरैरीज्यः असुरेज्यः तेन असुरेज्येन शुक्रेण युक्ते भूमिजे जातः एवं विधो भवति । दुःखार्तः दुःखपीडितः, असत्यसन्धः असत्यैव सन्धा प्रतिज्ञा यस्य अनृतभाषी, निन्दितः कुत्सितोऽसूयया युक्तः ससवितृतनये सवितृतनयेन सौरेण युक्ते भूमिजे जातो भवति ॥ ३ ॥

भाषा—यदि मंगल बुध से युत हो तो जातक फल-मूल, तैल, धृत, कृत्रिम द्रव्यों के व्यवहार करनेवाला बनिया, मल्ल होता है । गुरु से युत हो तो ग्राम का स्वामी, राजा अथवा धनवान् ब्राह्मण होता है । शुक्रसे युत हो तो गोपालन करनेवाला,

पहलवान, चतुर, परब्रीगामी और जुझाड़ी होता है। शनि से युत हो तो दुःखी, मिथ्यावादी और लोक में निन्दित होता है ॥ ३ ॥

अथ बुधे जीवादियुक्ते जीवे च शुक्रादियुक्ते जातस्य स्वरूपं शार्दूल-
विक्रीडितेनाह—

सौम्ये रङ्गचरो बृहस्पतियुते गीतप्रियो नृत्यवि-

द्राग्मी भूगणपः सितेन मृदुना मायापदुर्लङ्गकः ।

सद्विद्यो धनदारवान् बहुगुणः शुक्रेण युक्ते गुरौ

ज्ञेयः श्मश्रुकरोऽसितेन घटकृज्जातोऽन्नकारोऽपि वा ॥ ४ ॥

सौम्ये रङ्गचर इति ॥ रङ्गचरो मल्लादिकः, गीतप्रियः गीतवल्लभः, नृत्य-
विन्नृत्यज्ञः एवंविधो सौम्ये बुधे बृहस्पतिना युक्ते जातो भवति । प्रशस्ता
वाग्यस्य स वाग्मी वचनक्रियया परप्रत्यायनसमर्थः, भूगणपः भुवश्च गणानां
संघानामधिपतिः एवंविधो बुधे सितेन शुक्रेण सहिते जातो भवति । मायापदुः
परवञ्चनदत्तः, लंघकः गुरुवचनातिक्रामी एवंविधो मृदुना शनैश्चरेण सहिते
बुधे जातो भवति । सद्विद्य इति । सद्विद्यः शोभनविद्यः, धनदारवान् वित्त-
कलत्रसंयुक्तः, बहुगुणः प्रभूतगुणैः शौर्यादिभिर्गुणैः एवंविधो गुरौ जीवे
शुक्रेण युक्ते जातो भवति । श्मश्रुकरो नापितः अथवा घटकृत्कुम्भकारः
अथवाअन्नकारः सूपकारः एवंविधोऽसितेन सौरेण युक्ते गुरौ जातो ज्ञेयो
विज्ञातव्यः ॥ ४ ॥

भाषा—बुध यदि गुरु से युत हो तो रणप्रिय, गीतप्रिय, नृत्य जाननेवाला होता
है । यदि शुक्र से युत हो तो बोलने में चतुर, पृथ्वीपति या जनसमूह का मांसिक
(नेता) होता है । शनि से युक्त हो तो दूसरों को उगनेवाला (खुफिया), गुरुजनों
की आज्ञा को न-माननेवाला होता है । यदि गुरु शुक्र से युत हो तो उत्तम विद्वान्,
धन, स्त्री और गुणों से युक्त होता है । शनि से युक्त गुरु हो तो नाई, कुम्भकार वा
रसोइयांवार होता है ॥ ४ ॥

अथ शुक्रे शनैश्चरयुक्ते जातस्य स्वरूपं द्विग्रहयोगफलं च पुष्पितामयाह—

असितसितसमागमेऽल्पचक्षुर्—युवतिसमाश्रयसम्प्रवृद्धवित्तः ।

भवति च लिपिपुस्तचित्रवेत्ता कथितफलैः परतो विकल्पनीयाः ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

द्विग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

असितेति ॥ अल्पचक्षुरल्पदृष्टिः युवतिसमाश्रयेण स्त्रीसंश्रयणेन सम्यक्
प्रवृद्धं वित्तं धनं यस्य स युवतिसमाश्रयसंप्रवृद्धवित्तः लिपिरक्षरविन्यासः,
पुस्तकलेखकर्म, चित्रमालेख्यम् एषां वेत्ता तज्ज्ञः एवंविधः असितसितः

समागमे शनैश्चरस्य शुक्रेण संयोगे जातः पुरुषः एवंविधो भवति । यदि राशिद्वये द्वौ ग्रहयोगौ भवतः तच्च द्विग्रहयोगद्वयस्यापि फलं वक्तव्यम् । अथ राशित्रये द्विग्रहयोगत्रयं भवति तदा द्विग्रहयोगत्रयस्यापि फलं वाच्यम् । कथितफलैरिति । द्वाभ्यां परतोऽपरेऽन्ये त्रयो ग्रहा यदैकगता भवन्ति तदा कथितफलैरुक्तफलैरेव विकल्पनीयाः तदा द्विग्रहयोगत्रयस्य फलं वाच्यम् । यद्यर्कचन्द्रभौमा एकराशिस्था भवन्ति तदार्कचन्द्रयोगे अफलमुक्तं यच्चादित्याङ्गारकयोगे फलं यच्च चन्द्राङ्गारकयोगे फलं तत्फलत्रयमपि वाच्यम् । एवं यथा सम्भवमन्यत्रापि ग्रहत्रयस्यैकराशिगतस्य फलं वक्तव्यम् । यद्येकराशौ त्रिग्रहयोगोऽन्यत्र त्रिग्रहयोगो वा भवतस्तदा सर्वाणि फलानि वाच्यानोति ॥ ५ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ द्विग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः ॥१४॥

भाषा—शनि और शुक्र के योग से जातक अल्प नेत्रवाला, स्त्री का आश्रय पाकर घनबुद्धि करनेवाला, लेख, पुस्तक और चित्रकारी जाननेवाला होता है । इस प्रकार जो दो ग्रहों के फल कहे गये हैं, उनके अनुसार ३।४।५।६। या ७ सातों ग्रहों के योग से सब फलों को समझना चाहिये ॥ ५ ॥

उदाहरण—जैसे सूर्य, चन्द्र और बुध तीनों ग्रहों का योग हो तो सूर्य चन्द्र के योगफल, और सूर्य बुध के योगफल तथा बुध चन्द्र के योगफल भी समझना चाहिए । एवं चार, पाँच आदि योग में भी विचार करना चाहिए ॥ ५ ॥

अथ प्रव्रज्यायोगाध्यायः ॥ १५ ॥

अथातः प्रव्रज्यायोगाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव चतुरादिभिरेकस्थैः ग्रहैः जातस्य प्रव्रज्यायोगं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

एकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैर्जाताः पृथग्वीर्यगैः

शाक्याजीविकमिज्जुवृद्धचरका निर्ग्रन्थवन्याशनाः ।

माहेयज्ञगुरुचपाकरसितप्राभाकरोनैः क्रमात्

प्रव्रज्या बलिभिः समाः परजितैस्तत्स्वामिभिः प्रच्युतिः ॥१॥

एकस्थैरिति ॥ एकस्मिन्यत्र तत्र राशौ चतुरादयो ग्रहा भवन्ति चत्वारः पञ्च षट् सप्त वा भवन्ति तैरेकस्थैश्चतुरादिभिः बलयुतैः वीर्यवद्भिः माहेयादिभिः जाताः सम्भूताः शाक्यादिकाः प्रवाजकाः भवन्ति । किन्तु चतुरादिभिः बलयुतैरेका प्रव्रज्या भवति । तदर्थमाह । पृथग्वीर्यगैः तैश्च बलिभिः वीर्यगैः सबलैः पृथक् पृथक् प्रव्रज्या भवति । एतदुक्तं भवति । चतुरादीनामेकस्थानां मध्याद्यद्येको बलवान् भवति तदा जातस्यैकैव प्रव्रज्या भवति । अथ चतुरादीनामेकस्थानां मध्यान्न कश्चिद्बली भवति तदा जातस्य प्रव्रज्या न भवति । अथ द्वौ बलिनौ भवतस्तदा जातस्य प्रव्रज्याद्वयमेव भवति । यदा बहवो बलिनस्तदा बहुधाः प्रव्रज्या भवन्ति । एवमेकस्थैश्चतुरादिभिर्बलयुतैः जाताः

प्रब्रज्याभाजो भवन्ति । यस्मादुक्तम् । प्रब्रज्या बलिभिः समाः । ताश्च पृथग्वीर्यगैः
माहेयादिभिः भौमाद्यैः शाक्याद्या भवन्ति । तद्यथा । चतुरादीनामेकस्थानां
मध्याद्यदा माहेयो भौमो बलवान्भवति तदा जातः शाक्यो रक्तपटो भवति ।
एवं ज्ञे बुधे बलवति आजीविको भवति आजीविकश्चैकदण्डी । गुरौ बलवति
भिजुः यतिर्भवति । क्षपाकरश्चन्द्रो यदा बलवांस्तदा वृद्धः वृद्धश्रावकः कापालिकः
वृत्तभंगभयाच्छ्रवकशब्दोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः । सिते शुके बलवति चरकः
चक्रधरः प्राभाकरिः सौरः तस्मिन्बलवति निर्ग्रन्थः नग्नः क्षपणकः प्रावरण-
रहित इत्यर्थः । इने आदित्ये बलवति वन्याशनः मूलफलाशनस्तपस्वी भवति ।
एवं क्रमात्क्रमशः परिपाठ्या एते प्रब्रज्यापर्यायाः । एते एवं कालक्रमाद्व्या-
ख्याताः । तथा च वङ्कालकाचार्यः । “तावसिञ्चो दिणणाहे चन्दे कावालिञ्चो
तहा भणिञ्चो । रत्तवडो भूमिसुवे सोमसुवे एअदण्डीआ । देवगुरु शुक्क
कोण क्कमेण जई चरअ खवणाई ।” अस्यार्थः । तावसिञ्चो तापसिकः,
दिणणाहे दिननाथे सूर्ये, चन्दे चन्द्रे, कावालिञ्चो कापालिकः, तहा भणिञ्चो
तथा भणितः, रत्तवडो रक्तपटः, भूमिसुवे भूमिसुते, सोमसुवे सोमसुते बुधे,
एअदण्डीआ एकदण्डी । देवगुरु बृहस्पतिः, शुक्क शुक्रः, कोणः शनैश्चरः,
क्कमेण क्रमेण, जई यतिः, चरअ चरकः, खवणाई क्षपणकः । अथ वृद्धश्रावक-
ग्रहणं माहेश्वराश्रितानां प्रब्रज्यानामुपलक्षणार्थम् । आजीविकग्रहणं नारायणा-
श्रितानाम् । तथा च वङ्कालके संहितान्तरे पठ्यते । “जलण हर सुगअ केसव
सूई बह्मण णग्ग मग्गेसु । दिक्खाणं णाअव्वा सूराइग्गहा क्कमेण णाह-
गआ ॥” जलण ज्वलनः साग्निक इत्यर्थः । हर ईश्वरभक्तः भट्टारकः, सुगअ
सुगतः, बौद्ध इत्यर्थः । केसव केशवभक्तः, भागवत इत्यर्थः । सूई श्रुतिमार्गगतः
मीमांसकः । ब्रह्मभक्तः वानप्रस्थः । णग्ग नग्नः क्षपणकः । मग्गेसु मार्गेषु ।
दिक्खाणं दीक्षाणाम् । णाअव्वा ज्ञातव्याः । सूराइग्गहा सूर्यादिग्रहाः । क्कमेण ।
णाहगआ नाथगताः । एवं चतुरादीनामेकस्थानां मध्याद्यावन्तो बलिनः तावन्त्य
एव प्रब्रज्या भवन्ति । तत्रापि प्रथमा वीर्याधिकस्य सम्बन्धिनी प्रब्रज्या
भवति । यस्मात्स्वल्पजातके उक्तम् । “चतुरादिभिरेकस्थैः प्रब्रज्यां स्वां स्वां ग्रहः
करोति बली । बहुवीर्यस्तावद्बुधः प्रथमा वीर्याधिकस्यैव ॥” तापसवृद्धश्रावक-
रक्तपटाजीविभिजुचरकाणां निर्ग्रन्थानां चेति । वीर्योपचयक्रमेणान्यासां क्रमः ।
एवं बलिभिः समाः प्रब्रज्याः बलिनो ग्रहस्य यादृश्येव तद्वलानुसारेण प्राप्नोति
परिपालयति ऊनबलस्य मनाङ् नाप्नोति पालयति । पराजितैस्तत्त्वामिभिः
प्रच्युतिरिति । शाक्यादिप्रब्रज्यास्वामिभिर्ग्रहैः पराजितैरन्यैर्ग्रहैः युद्धे विजितैः
प्रच्युतिः प्रब्रज्यात्यागः । तत्प्रब्रज्यां गृहीत्वा पुनस्त्यजति । एतदुक्तं भवति ।
चतुरादीनां मध्याद्यद्येको बलवान्भवति स च ग्रहयुद्धे अन्येन ग्रहेण जातक-
काले पराजितस्तदा प्रब्रज्यां गृहीत्वा पुनस्त्यजति त्यक्त्वा च प्रब्रज्यामनाश्रित्यैव
तिष्ठति । अथ चतुरादीनां मध्याद्बौ बहवो वा बलिनो भवन्ति ते च परा-

जितास्तदा तस्यावश्यमेव सर्वाभ्यः प्रव्रजाभ्यः च्युतिर्भवति । यस्माद्बलवद्ग्रह-
संख्यास्तेन प्रव्रज्याः कर्तव्याः । अन्यप्रव्रज्याधिपतिर्यद्यन्येन ग्रहेण जितो न
भवति तदा तामेव प्रव्रज्यामाश्रितो भ्रियते । अथ प्रव्रज्यादायको ग्रह एक एव
जितो न भवति तदा यावज्जीवं तामेव प्रव्रज्यामाश्रयति । अथ द्वौ ग्रहौ प्रव्र-
ज्यादायकौ तौ चापराजितौ तदा प्रथमप्रव्रज्यादायकान्तर्देशायां प्रथमां प्रव्रज्यां
गृहीत्वा तामेवाश्रित्य तावत्तिष्ठति । यावद्द्वितीयप्रव्रज्यादायकग्रहान्तर्देशा-
प्रवेशः । तत्र प्रथमां त्यक्त्वा द्वितीयामाश्रयति । एवं बहुप्रव्रज्यासु सम्भवे
योज्यम् । अत्र च सत्याचार्यः । “तेष्वधिकबली जीवस्त्रिदण्डिनं भार्गवश्चरक-
मुख्यम् । नग्नश्रमणं सौरो बुधस्तदा जीविकाचार्यम् ॥ वृद्धश्रावकमिन्दुर्दिवा-
करस्तापसं तपोयुक्तम् । वक्रः शाक्यः श्रवणं क्षेत्राश्रयजं गुणांश्चैतान् ॥ वीर्यो-
पेतोऽल्पतनावदीक्षिता भक्तिवादिनस्तेषाम् । अन्यैः पराजितश्चेत्प्रव्रज्याप्रच्युतिं
कुर्यात् ॥ यावन्तो वीर्ययुताः प्रव्रज्या भवन्ति तावन्त्यः । एकर्त्तवेषु नियमात्ते-
षामाद्या बलोपेतात् ॥” ॥ १ ॥

भाषा—यदि जन्मकुण्डली में एक राशि में बलयुक्त ४ (चार) या उससे अधिक
ग्रह हो तो प्रव्रज्या (वैराग्य) योग होता है अर्थात् वह मनुष्य प्रवाजक (गृहत्यागी)
होता है । उन ग्रहों में जितने ग्रह बली हों उतनी प्रव्रज्या होती है, उनमें भी प्रथम
प्रव्रज्या सबसे अधिक बली ग्रह की होती है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि
सब ग्रह निर्बल हो तो प्रव्रज्या नहीं होती है । जैसे मंगल बली हो तो शाक्य (पीला
वस्त्र ‘जीवर’ धारण करने वाला बौद्ध संन्यासी), बुध बली हो तो आजीविक (लोकायत
सम्प्रदाय का अनुयायी), बृहस्पति बली हो तो भिक्षु (यती), चन्द्रमा बली हो तो
वृद्धश्रावक (कपाली), शुक्र बली हो तो चरक (कृष्ण यजुर्वेद की शाखा का प्रचार
कर्त्ता वाला), शनि बली हो तो निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैनी) और रवि बली हो तो
वन्याशन (कन्द-मूल-फल से निर्वाह करने वाला) तपस्वी होता है । यदि प्रव्रज्या
कारक ग्रह दूसरे ग्रह से पराजित हो तो उस प्रव्रज्या को ग्रहण करके फिर त्याग देता
है ॥ १ ॥

विशेष अर्थ—एक राशि में जब भौमादि दो ग्रहों के अंश और कला तुल्य हो तो
युद्ध कहलाता है । उनमें जो उत्तर दिशा में रहता है वह जयी और दक्षिण दिशावाला
पराजित समझा जाता है । युद्ध में शुक्र दक्षिण में भी हो तो वही विजयी होता है ।
उत्तर और दक्षिण दिशा का ज्ञान ग्रहों के शर जानने से होता है । शर-ज्ञान का
प्रकार ग्रहलाघव या सिद्धान्त ग्रन्थों में देखिये ॥ १ ॥

अथास्वमितान्यजितान्यदृष्टानां ग्रहाणामपवादं वैतालीयेनाह—

रविलुप्तकुरैर्दीक्षिता बलिभिस्तद्गतभक्तयो नराः ।

अभियाचितमात्रदीक्षिता निहतैरन्यनिरीक्षितैरपि ॥ २ ॥

रविलुप्तकरैरिति ॥ चतुरादीनामेकस्थानां मध्याद्यावन्तो ग्रहा बलिन-
स्तावन्तः स्वप्रव्रज्यादायकास्तत्रापि बलिनं मध्ये यावन्तो रविलुप्तकराः सूर्य-
मण्डलगा अस्तमिता भवन्ति तैरदीक्षिता जाता भवन्ति । तावन्तः स्वकीयाः
प्रव्रज्या न प्रयच्छन्तीत्यर्थः । किंतु जाता नराः तद्गतभक्त्यस्तद्गतानां तत्प्रव्रज्या-
प्रविष्टानां मध्ये भक्ता भवन्ति । अत्र रविलुप्तकरत्वमुद्यास्तमयं गणयित्वाऽ-
न्वेष्यम् । शुक्रगुरुज्ञाकिंजुजाः कालांशैरुत्तरोत्तरैः नवभिर्दृश्यादृश्या दृक्कर्मणा
रवेः द्वादशभिर्दुरित्येवमादिकर्मणि कृते कदाचिदादित्येन सहैकराशिगतै-
रपि नास्तमितो भवति । कदाचित् द्वितीयराशिस्थोऽप्यस्तमितो भवति ।
एवमुद्यास्तमयमन्वेष्यास्तमितफलं वाच्यम् । अभियाचितमात्रदीक्षिता इति ।
बलिभिरित्यनुवर्तते । बलिभिर्निहतैः ग्रहयुद्धेऽन्यग्रहविजितैरन्यैश्च ग्रहैर्निरी-
क्षितैर्दृष्टैः अभियाचितमात्रदीक्षिताः दीक्षाप्रार्थनपरा भवन्ति । न च तां
प्राप्नुवन्ति । पूर्वमुक्तं पराजितैस्तत्त्वामिभिः प्रच्युतिरित्यस्यायमपवादः ।
तेनैतदुक्तं भवति । बलिग्रहो ग्रहयुद्धेऽन्येन विजितो भवति । न केनचिद्-
दृश्यते तदा तत्प्रव्रज्यां गृहीत्वा पुनस्त्यजति । अथ बली ग्रहः समागमनेन
ग्रहेण विजितो भवत्यन्येन च दृश्यते तदा प्रव्रज्यां प्रार्थ्यमानोऽपि न प्राप्नोति ।
यस्य च प्रव्रज्याप्रच्युतिः जाता तस्य तदवसाने बहुष्वन्तर्दशासु चारवशाद्य-
स्मिन्नन्तर्दशाकाले बलवान् भविष्यति तस्मिन्काले प्रव्रज्यां दास्यति । तथा
चोक्तम् । “दीक्षादानसमर्थो यो भवति तदा बलेन संयुक्तः । तस्यैव दशाकाले
दीक्षां लभते नरोऽवश्यम् ॥ यस्य च दीक्षाच्यवनं तस्यैव दशावसाने स्यात् ।
एवं जातककाले सञ्चिन्त्य बलाबलं वाच्यम् ॥” ॥ २॥

भाषा—पूर्वोक्त प्रव्रज्याकारक ग्रह अन्य प्रकार (उच्चादि) बल से युक्त होकर
भी यदि सूर्य के किरण सान्निध्यवश अस्त हो तो वह जातक परिव्राजक (गृहत्यागी)
होकर भी दीक्षा नहीं प्राप्त करता है । परन्तु उस प्रव्रज्या में उसकी पूरी भक्ति रहती
है । एवं यदि प्रव्रज्याकारक ग्रह दूसरे ग्रहों से पराजित हो अथवा दृष्ट हो तो प्रार्थना
करने पर भी दीक्षित नहीं होता है । अर्थात् उस आश्रम में रहता हुआ शिष्य बनने
की इच्छा करता हुआ भी शिष्य नहीं बनाया जाता है ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—सूर्य सान्निध्य से अस्त होने का ज्ञान ग्रहों के कालांश के ज्ञान से
होता है । जैसे—

“भास्करा नगभुवो गुणचन्द्र-भूभुवो दिविषदस्तिथयोब्जात् ।

प्राक्तनं निगदिताः समयांशा वक्रिणोर्भूगुविदोः क्षितिहीनाः ॥”

अर्थात्—१२, १७, १३, ११, ९ और १५ ये क्रम से चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति
शुक्र और शनि के कलांश हैं । यदि बुध और शुक्र वक्री रहते हैं तो १ अंश कम
कलांश होते हैं । जिस ग्रह का सूर्य से अन्तर अपने कलांश से कम हो तो उस ग्रह को
अस्त समझना चाहिए ॥ २ ॥

अथ चतुरादिभिरेकस्थैर्विना प्रब्रज्यायोगं शालिन्याह—

जन्मेशोऽन्यैर्यद्यदृष्टोऽर्कपुत्रं पश्यत्याकिर्जन्मपं वा बलोनम् ।

दीक्षां प्राप्नोत्याकिर्दृक्काणसंस्थे भोमाक्यंशे सौरदृष्टे च वन्द्रे ॥३॥

जन्मेश इति ॥ जन्मनि यस्मिन् राशौ चन्द्रः स्थितस्तस्य योऽधिपतिर्ग्रहः स जन्मेशः । स च यद्यन्यैर्ग्रहैरदृष्टो नावलोकितः न केनचिद्ग्रहेण दृश्यते तथाभूतोऽसावर्कपुत्रं शनैश्चरं पश्यति तदा जातस्य प्रब्रज्या भवति । सा च शनैश्चरकृता शनैश्चरजन्मेशयोः यो बलवांस्तदीयांतर्दशाकाले । उक्तं च । “यस्येक्षतेऽर्कपुत्रं जन्मभनाथो ग्रहैर्न संदृष्टः । तस्य हि दीक्षालाभो तद्वल-योगाद्दशाकाले ॥” पश्यत्याकिरिति । अथवाकिः सौरः सबलो जन्मराश्याधिपं बलोनं वीर्यरहितं पश्यति तथापि शनैश्चरोक्तप्रब्रज्यां वदति । उक्तं च । “शनिदृष्टे बलहीने जन्मनि नाथे वदेच्च निर्ग्रन्थम् ॥” दीक्षां प्राप्नोतीति । यत्र तत्र राशौ चन्द्रे शशिन्याकिर्द्रेष्काणसंस्थे सौरद्रेष्काणव्यवस्थिते न केवलं यावद्भौमाक्यंशे कुजसौरयोरन्यतरनवांशकस्थे तस्मिंश्च सर्वग्रहादृष्टे शनैश्चरे-णेक्षमाणे दीक्षां प्राप्नोति । शनैश्चरोक्तप्रब्रज्यां व्रजति । तथा च । “सौर-द्रेष्काणसंस्थो यदि भवति शशी तदंशसंस्थश्च । वक्रांशे वा दृष्टः सौरेण तु सर्वदर्शनविमुक्तः ॥ निर्ग्रन्थसंज्ञो योऽर्कपुत्रवीर्यानुसारेण । जन्माधिपतिः पापैरपि निरीक्षितस्त्वेक ईक्षते सौरः ॥” यस्य पुरुषस्य मूर्तौ नियता दीक्षिता भवति तस्य जन्माधिपतिं विबलं निरीक्षते । यस्य सूर्यजः सबलः सोऽपि खलु भाग्यहीनः प्रब्रज्यां प्राप्नुयाज्जातः मांशे कौजे वांशे शशी स्थितः कृष्णजे द्रेष्काणे वा अंशाधिपानुरूपे काले दीक्षाप्रदो भवति । अत्र योगत्रयेऽपि पूर्वपवादो अनुवर्तनीयाः ॥ ३ ॥

भाषा—यदि जन्मराशि का स्वामी दूसरे ग्रहों से अदृष्ट होकर शनि को देखता हो अथवा निर्बल जन्मराशिपति को शनि देखता हो; अथवा चन्द्रमा यदि मंगल के द्रेष्काण में या मंगल वा शनि के नवांश में चन्द्रमा हो तो इन योगों में भी दीक्षा प्रवाजक होकर प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—बली प्रब्रज्याकारक ग्रह की दशा-अन्तर्दशा समय में प्रब्रज्या होती है ॥ ३ ॥

अथ येन योगेन जातः शास्त्रकरो भवति येन च राजापि दीक्षितो तद्योग-द्वयं शालिन्याह—

सुरुगुरुशशिहोरास्वाकिर्दृष्टासु धर्मे

गुरुरथ नृपतीनां योगजस्तीर्थकृत्स्यात् ।

नवमभवनसंस्थे मन्दगेऽन्यैरदृष्टे

भवति नरपयोगे दीक्षितः पार्थिवेन्द्रः ॥ ४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

प्रब्रज्यायोगाध्यायः पञ्चदशः ॥ १५ ॥

सुरगुर्विति ॥ सुरगुरुः जीवः, शशी चन्द्रः, होरा लग्नम् एतासु सुरगुरु-
शशिहोरासु आर्किणा शनैश्चरेण दृष्टासु अवलोकितासु धर्मे नवमे स्थाने गुरुः
जीवो यदि भवति । अथशब्दः पादपूरणे । नृपतीनां योगजः कश्चिद्राजयोगो
जातस्य भवति तदा स पुरुषः तीर्थकृच्छ्रास्त्रकृत्याद्भवेत् । काणादबुद्ध-
पाञ्चशिखवराहमिहिरब्रह्मगुप्तप्रतिम इति । सुरगुरुशशिहोरास्त्विति । धन्वि-
मीनकर्कटलग्नैः कैश्चिद्व्याख्यातम् । तच्चायुक्तम् । यस्मान्माण्डव्यः । “गते
मन्दालोकं गुरुशशिविलग्ने नवमगे गुरौ निष्पद्यन्ते न इह नृपयोगे नृपतयः ।
विजृम्भन्ते येषां लटहरचनारम्भसुभगा जगत्यां ये विद्वद्गुणकथनपाषाण-
सदृशाः ॥” तथा चोक्तम् । “गुरुशशिलग्ना दृष्टा कोणे न तु नवमगे यदि
गुरुः । नरनाथजन्मजातः शास्त्रकरो भवति न च नृपः ॥” अथ द्वितीयो
राजयोगस्तत्रोपस्थानं करोति तदा राजा भवति । तीर्थकरश्च जनककाशिराज-
स्फुजिध्वजप्रतिम इति । उक्तं च “अस्मिन्योगे चान्यो नृपयोगो भवति तत्र
यो जातः । स भवति जिनेन्द्रतुल्यो नरनाथः शास्त्रकर्ता च ॥” नवमभवन-
संस्थे मन्दं गच्छतीति मन्दगः सौरः तस्मिन्मन्दगे लग्नान्नवमभवनसंस्थे
धर्मस्थानाश्रितेऽन्यैः सर्वैर्भैरदृष्टे नावलोकिते तथा नरपयोगे राजयोगानां
मध्यादन्यतमे राजयोगे सति जातो दीक्षितः प्रब्रजितः पार्थिवेन्द्रश्च राजाधि-
राजो भवति । पश्चात्तत्कालं सर्वबली तद्दीक्षायां दीक्षितश्च भवति । राज-
योगं विनाऽयमपि प्रब्रज्यायोगः । योगजश्चज्जातो राजा दीक्षितश्च भवति ।
अन्यथादीक्षित एव । उक्तं च । “नवमस्थाने सौरो यदि स्थितः सर्वदर्शन-
विमुक्तः । नरनाथयोगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितो भवति ॥ नृपयोगस्याभावे
योगेऽस्मिन्दीक्षितो नरो जातः । निःसंदिग्धं प्रवदेद्योगस्यास्य प्रभावेन ॥”
इति ॥ ४ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ

प्रब्रज्यायोगाध्यायः पञ्चदशः ॥ १५ ॥

भाषा—यदि बृहस्पति, चन्द्रमा और लग्न इन तीनों पर शनि की दृष्टि हो और
गुरु नवम भाव में हो ऐसे योग में पूर्वोक्त कोई राजयोग प्राप्त हो तो इसमें उत्पन्न
मनुष्य शास्त्रकार होता है । अथवा तीर्थ में भ्रमण करनेवाला होता है । अर्थात् राजा
न होकर शास्त्रकार होता है । जैसे कणाद, बुद्ध आदि । अथवा नवम भाव में शनि
हो उस पर किसी भी ग्रह की दृष्टि नहीं हो तो ऐसे योग में कोई राजयोग पड़े तो
जातक राजा होकर दीक्षित होता है ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—इन योगों में राजयोग नहीं होता जातक साधारण परिव्राजक होता है । अर्थात् प्रव्रज्यायोग में राजयोग होने से शास्त्रकार सम्प्रदाय चलाने वाला पर सिद्ध तन्त्राजक होता है । जैसे बुद्ध, शङ्कराचार्य आदि हुए । कहा भी है—

“नवमस्थाने सौरो यदि स्थितः सर्वदर्शनविमुक्तः ।

नरनाथयोगजातो नृपोऽपि दीक्षान्वितो भवति ॥

नृपयोगस्याभावे योगेऽस्मिन् दीक्षितो नरो जातः ।

निःसन्दिग्धं प्रवदेद्योगस्यास्य प्रभावेन ॥” इति ।

अथ ऋक्षशीलाध्यायः १६ ।

अथ ऋक्षशीलाध्यायो व्याख्यायते । ऋक्षं नक्षत्रं राशिश्च तत्रादावेव चन्द्र-
भुज्यमाननक्षत्रशीलं भवति, तत्राश्विनीभरणयोः जातस्य शीलविज्ञानमार्ययाह-

प्रियभूषणः सुरुपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च ।

कृतनिश्चयसत्यारुदक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥ १ ॥

प्रियभूषण इति ॥ प्रियभूषणः अलंकरणवत्प्रभः, सुरुपः शोभनरूपः, वपुष्मान् सुभगः सर्वजनप्रियः, दक्षः सर्वकार्यकरणपटुः, मतिमान् बुद्धियुक्तः एवंविधोऽश्विनीषु जातो भवति । तारकापेक्षयात्र सर्वत्र बहुवचननिर्देशः कृतः । कृतनिश्चय इति । कृतनिश्चयः प्रारब्धानां कर्मणामंतगः, सत्यः सत्य-
वाक्, अरुक् नीरुजः, दक्षः चतुरः, सुखितो दुःखनिर्मुक्तः एवंविधो भरणीषु जातो भवति ॥ १ ॥

भाषा—अश्विनी में उत्पन्न मनुष्य अलङ्करण प्रिय, सुन्दर स्वरूप, सर्वजन प्रिय, कार्यों में पटु और बुद्धिमान् होता है । भरणी में उत्पन्न अपने वचन को पूरा करनेवाला सत्यवक्ता, रोगरहित, चतुर और सुखी होता है ॥ १ ॥

अथ कृत्तिकारोहिण्योर्जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

बहुभुक् परदाररतस्तेजस्वी कृत्तिकासु विख्यातः ।

रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियव्वंदः स्थिरमतिः सुरुपश्च ॥ २ ॥

बहुभुगिति ॥ बहुभुक् प्रभूताहारः, परदाररतः परस्त्रीष्वासक्तः, तेजस्वी असहिष्णुः, विख्यातः सर्वत्र प्रसिद्धकीर्तिः एवंविधः कृत्तिकासु जातो भवति । सत्यः अवितथभाषी, शुचिः परस्वाद्यलुब्धः, शास्त्रोक्तशौचानुष्ठाता, प्रियवन्दः मधुरवाक्, स्थिरमतिः एकमतिः, सुरुपश्च वपुष्मान् एवंविधः रोहिण्यां जातो भवतीति ॥ २ ॥

भाषा—कृत्तिका नक्षत्र में जन्म लेनेवाला बहुत खाने वाला, परस्त्रीगामी, असहिष्णु और विख्यात होता है । रोहिणी में जिसका जन्म हो वह सत्यवक्ता, पवित्रात्मा, प्रियवचन बोलनेवाला, स्थिर बुद्धि और सुन्दर होता है ॥ २ ॥

अथ मृगशीर्षाद्रियोः जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

चपलश्चतुरो भीरुः पटुरुत्साही धनी मृगे भोगी ।

शठगर्वितः कृतघ्नो हिंस्रः पापश्च रौद्रर्चे ॥ ३ ॥

चपल इति । चपलः क्रियास्वनवस्थितः, चतुरः दक्षः, भीरुः भयार्त्तः, पटुः प्रवक्ता, उत्साही सोद्यमः, धनी वित्तवान्, भोगी सम्भोगशीलः, एवंविधो मृगे मृगशिरसि जातो भवति । शठः परकार्यविमुखः । उक्तं च ग्रन्थान्तरे शठलक्षणम् । “मनसा वचसा यश्च दृश्यते कार्यतत्परः । कर्मणा विपरीतरश्च स शठः सद्गिरुच्यते ॥” गर्वितः मानी, कृतघ्नः खलः कृतमुपकृतं हन्ति यः स कृतघ्नः, हिंस्रः अधिकः, पापः पापकर्मकर्ता एवंविधो रौद्रर्चे आर्द्रायां जातो भवतीति ॥ ३ ॥

भाषा—मृगशिरा नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य चञ्चल, चतुर, डरपोक, पण्डित, उत्साही धनी और भोगी होता है । आर्द्रा नक्षत्र में जन्म लेनेवाला कुटिल हृदय, अभिमानी, कृतघ्न, हिंस्र और पापी होता है ॥ ३ ॥

अथ पुनर्वसौ जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

दान्तः सुखी सुशीलो दुर्मेधा रोगभाक्पिपासुश्च ।

अल्पेन च सन्तुष्टः पुनर्वसौ जायते मनुजः ॥ ४ ॥

दान्त इति ॥ दान्तः शमपरः तपःक्लेशसहः, सुखी सुखितः, सुशीलः शोभनशीलः विनयवान्, दुर्मेधा जडप्रायः, रोगभाक् पीडितदेहः, तृषार्त्तः, अल्पेन स्तोकेनैवार्थेन सन्तुष्टः एवंविधो मनुजो मनुष्यः पुनर्वसौ जायते उत्पद्यते ॥ ४ ॥

भाषा—पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य क्लेश को सहनेवाला, सुखी, सुशील, बुद्धिहीन, रोगी, तृषार्त्त, और थोड़े में ही सन्तुष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ पुष्याश्लेषयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

शान्तात्मा सुभगः पण्डितो धनी धनसंभृतः पुष्ये ।

शठसर्वभक्षपापः कृतघ्नधूर्तश्च भौजङ्गे ॥ ५ ॥

शान्तात्मेति ॥ शान्तात्मा शमदमपरो जितेन्द्रियः, सुभगः सर्वजनप्रियः, पण्डितः शास्त्रार्थविन्, धनी वित्तवान्, धर्मनिरत एवंविधः, पुष्यजो भवति । शठः परकार्यविमुखः, सर्वभक्षः संचयनशीलः, पापकर्मरतः, कृतघ्नः कृतमुपकृतं हन्ति स कृतघ्नः, धूर्तः परवंचनदक्षः एवंविधो भौजङ्गे आश्लेषायां जातो भवति ॥ ५ ॥

भाषा—पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न मनुष्य शान्त हृदय, सर्वप्रिय, विद्वान्, धनी और धर्म में तत्पर होता है । श्लेषा नक्षत्र में जन्म लेनेवाला शठ, सर्वभक्षी, पापी, कृतघ्न (उपकार को न मानने वाला) और धूर्त होता है ॥ ५ ॥

अथ मघापूर्वाफाल्गुन्योः जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

बहुभृत्यधनो भोगी सुरपितृभक्तो महोद्यमः पित्र्ये ।

प्रियवाग्दाता द्युतिमानटनो नृपसेवको भाग्ये ॥ ६ ॥

बहुभृत्यधन इति ॥ बहुभृत्यधनः प्रभूतपरिवारवित्तान्वितः, भोगी भोगान्वितः, सुरपितृभक्तः देवानां पितृणां च भक्तः, महोद्यमः महोत्साही एवंविधः पित्र्ये मघायां जातो भवति । प्रियवाक् अभिमतवक्ता, दाता दान-शीलः, द्युतिमान् सुकान्तिः, अटनः परिभ्रमणशीलः, नृपसेवकः राजसेवानुरतः एवंविधो भाग्ये पूर्वाफाल्गुन्यां जातो भवति ॥ ६ ॥

भाषा—मघा नक्षत्र में जन्म लेने वाला बहुत धन, बहुत नौकरों से युक्त, भोगी, देवता और माता-पिता का भक्त तथा महा उद्योगी होता है । पूर्वाफाल्गुनी में उत्पन्न मनुष्य प्रियवक्ता, दाता, कान्तिमान्, भ्रमणशील और राजा का नौकर होता है ॥ ६ ॥

अथोत्तराफाल्गुनीहस्तयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

सुभगो विद्याप्तधनो भोगी सुखभाग्द्वितीयफाल्गुन्याम् ।

उत्साही धृष्टः पानपोऽधृणी तस्करो हस्ते ॥ ७ ॥

सुभग इति ॥ सुभगः सर्वजनप्रियः, विद्याप्तधनः विद्यया आप्तं धनं येन स । भोगी भोगान्वितः, सुखभागदुःखरहितः एवंविधो द्वितीयफाल्गुन्यां उत्तराफाल्गुन्यां जातो भवति । उत्साही सोद्यमः, धृष्टः प्रतिभायुक्तः निर्लज्जो वा पानपः पानप्रियः आसवानुरक्तः, अधृणी निर्दयः, तस्करः चौरः एवंविधो हस्ते जातो भवति ॥ ७ ॥

भाषा—उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में जन्म लेनेवाला सर्वप्रिय, विद्या से धन लाभ करने वाला, भोगी और सुखी होता है । हस्त में उत्पन्न मनुष्य उत्साही, निर्लज्ज, मदिरा पीने वाला, निर्दय और चोर होता है ॥ ७ ॥

अथ चित्रास्वात्योर्जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च भवति चित्रायाम् ।

दान्तो वणिक्कृपालुः प्रियवाग्धर्माश्रितः स्वातौ ॥ ८ ॥

चित्राम्बरेति ॥ चित्राम्बरमाल्यधरः चित्राणि नानाप्रकाराणि अम्बराणि वस्त्राणि माल्यानि च धारयति । सुलोचनाङ्गः शोभना नेत्रावयवा यस्य एवंविधः चित्रायां जातो भवति । दान्तो विनयान्वितः, जितेन्द्रियः वणिक्कथ-विक्रयज्ञः कृपालुः केचित्पणालुरिति पठन्ति कृपालुः कृपां न सहते प्रियवाक् अभिमतवक्ता, धर्माश्रितः धर्मरतः एवंविधः स्वातौ जातो भवति ॥ ८ ॥

भाषा—चित्रा नक्षत्र में जिसका जन्म होता है वह अनेक रंग के वस्त्र और माला को धारण करने वाला, सुन्दर लोचन और शरीरवाला होता है । स्वाती में जिसका जन्म हो वह वलेश सहनेवाला, तपस्वी, उदार, व्यापारी, कृपालु, मधुरभाषी और धर्मात्मा होता है ॥ ८ ॥

अथ विशाखानुराधयोजितस्य स्वरूपमार्ययाह—

ईर्ष्युर्लुब्धो द्युतिमान्वचनपटुः कलहकृद्विशाखासु ।

आढ्यो विदेशवासी क्षुधालुरटनोऽनुराधासु ॥ ६ ॥

ईर्ष्युरिति ॥ ईर्ष्युः परद्विभक्तसरो, लुब्धो लोभाभिभूतः, द्युतिमान्मुकान्तिः, वचनपटुः सम्भाषणदक्षः । केचिदर्थपटुरिति पठन्ति, अर्थाजने पटुः प्रवीणः, कलहकृद्विरोधशीलः एवंविधो विशाखासु जातो भवति । आढ्यः ईश्वरः, विदेशवासी परदेशनिवसनशीलः, क्षुधालुः क्षुधां न सहते । अटनः परिभ्रमणशीलः एवंविधोऽनुराधासु जातो भवति ॥ ६ ॥

भाषा—विशाखा में उत्पन्न मनुष्य ईर्ष्या करनेवाला, लोभी, कान्तियुक्त, बोलने में चतुर, और कलहकारक होता है । अनुराधा में उत्पन्न घनी, परदेशी, क्षुधार्त और भ्रमणशील होता है ॥ ९ ॥

अथ ज्येष्ठाभूलयोजितस्य स्वरूपमार्ययाह—

ज्येष्ठासु न बहुमित्रः सन्तुष्टो धर्मकृतप्रचुरकोपः ।

१.

मूले मानी धनवान्सुखी न हिंस्रः स्थिरो भोगी ॥ १० ॥

ज्येष्ठास्त्विति ॥ न बहुमित्रः स्वल्पसुहृत्, सन्तुष्टः संतोषशीलः, धर्मकृद्-मानुरतः, प्रचुरकोपः अतिक्रोधो, एवंविधो ज्येष्ठासु जातो भवति । मानी गर्वितः, धनवान् प्रभूतवित्तः, सुखी सुखितः, न हिंस्रः सौम्यप्रकृतिः । परविघातं न करोति स्थिरः एकमतिः, भोगी भोगान्वितः एवंविधो मूले जातो भवति ॥ १० ॥

भाषा—ज्येष्ठा में उत्पन्न मनुष्य थोड़े मित्रवाला, संतोषी, धर्मात्मा किन्तु बड़ा ही क्रोधी होता है । मूल में उत्पन्न—मानी, घनी, सुखी, अहिंसक, स्थिरवित्त और भोगी होता है ॥ १० ॥

अथ पूर्वोत्तराषाढयोजितस्य स्वरूपमार्ययाह—

इष्टानन्दकलत्रो मानी दृढसौहृदश्च जलदैवे ।

वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ॥ ११ ॥

इष्टानन्दकलत्र इति ॥ इष्टमभिमतमानन्दजनकं कलत्रं भार्या यस्य । मानी गर्वितः, दृढसौहृदः स्थिरसुहृत् एवंविधो जलदैवे पूर्वाषाढायां जातो भवति । विनीतः विनयसंयुक्तः, धार्मिकः धर्मज्ञः, बहुमित्रः प्रभूतसुहृत्, कृतज्ञः प्रत्युपकारशीलः, सुभगश्च सर्वजनप्रियः एवंविधो वैश्वदैवे उत्तराषाढायां जातो भवति ॥ ११ ॥

भा०—पूर्वाषाढ नक्षत्र में जन्म लेनेवाला इच्छानुसार आनन्द देनेवाली स्त्री से युक्त, मानी और दृढ़ मंत्री करनेवाला होता है । उत्तराषाढ नक्षत्र में जन्म लेनेवाला

विनययुक्त, धर्मात्मा, अधिक मित्रवाला, कृतज्ञ (उपकार माननेवाला) और सर्वजन-प्रिय होता है ॥ ११ ॥

अथ श्रवणधनिष्ठयोजातस्य स्वरूपमार्ययाह—

श्रीमाञ्छ्रवणे श्रुतवानुदारदारो धनान्वितः ख्यातः ।

दाता आढ्यः शूरो गीतप्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः ॥ १२ ॥

श्रीमानिति ॥ श्रीमान् श्रिया युक्तः, श्रुतवान्पण्डितः, उदारदारः उदारा दारा यस्य स शोभनस्त्रीकः, धनान्वितः वित्तवान्, ख्यातः जनविदितकीर्तिः एवंविधः श्रवणे जातो भवति । दाता दानशीलः, आढ्यः ईश्वरः, रणप्रियः गीतवल्लभः, धनलुब्धः अर्थरुचिः एवंविधो धनिष्ठासु जातो भवति ॥ १२ ॥

भा०—श्रवण में उदात्त होनेवाला पुरुष लक्ष्मीवान्, पण्डित, उदार भार्यावाला, धनवान् और विख्यात होता है । धनिष्ठा में दाता, धनी, शूर, गीतप्रिय और धन का लोभी होता है ॥ १२ ॥

अथ शतभिषक्पूर्वाभाद्रपदयोर्जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः शतभिषजि दुर्ग्राह्यः ।

भाद्रपदाद्द्विग्नः स्त्रीजितधनी पटुरदाता च ॥ १३ ॥

स्फुटवागिति ॥ स्फुटवाक् सत्यवादी, व्यसनी रुग्णादिव्यसनोपहतः, रिपुहा शत्रुघातकः, साहसिकः ह्यसमीक्षितकार्यकृत्, दुर्ग्राह्यः दुराराध्यः एवंविधः शतभिषजि जातो भवति । उद्विग्नः दुःखितमना, स्त्रीजितः स्त्रीभिरभिभूतः, धनी धनवान् अथवा धनपटुः धनार्जने चतुरः, अदाता कदर्यः एवंविधः पूर्वाभाद्रपदासु जातो भवति ॥

भाषा—शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न होनेवाला साफ-फ झोलनेवाला, व्यसन (स्त्री सङ्ग आदि) से युक्त, शत्रु को जीतनेवाला, बिना विचारे काम करनेवाला, किसी के वश न होनेवाला होता है । पूर्वभाद्रपदा में दुःखितहृदय, स्त्री के वश में रहनेवाला, धनवान्, पण्डित और कदर्य होता है ॥ १३ ॥

अथोत्तराभाद्रपदारेवत्योर्जातस्य स्वरूपमार्ययाह—

वक्ता सुखी प्रजावान् जितशत्रुर्धार्मिको द्वितीयासु ।

सम्पूर्णाङ्गः सुभगः शूरः शुचिर्धनवान्पौष्णे ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके ऋक्षशोलाध्यायः

षोडशः ॥ १६ ॥

वक्तेति ॥ वक्ता वचनपटुः सम्भाषणे दक्षः, सुखी विद्यमानसुखः, प्रजान्बहुपुत्रपौत्रः, जितशत्रुः जितारिः, धार्मिकः एवंविधो द्वितीयासूत्तराभाद्रपदासु जातो भवति । सम्पूर्णाङ्गः परिपूर्णवयवः, सुभगः सर्वजनप्रियः,

शूरः संग्रामधीरः, शुचिः परधनादिष्वलुब्धः, अर्थवान् धनान्वितः एवंविधः पौष्णे रेवत्यां जातो भवति । एते यथोक्ता नक्षत्रस्वभावाश्चन्द्रस्य सवलत्वात्परिपूर्णा भवन्ति ॥ १४ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविधृतावृत्तशीला-
ध्यायः षोडशः ॥ १६ ॥

भाषा—उत्तरभाद्रपदा में उत्पन्न मनुष्य वक्ता, सुखी, बहुत पुत्र पीत्रादि से युक्त, शत्रु को जीतनेवाला, धर्मात्मा होता है। रेवती में जन्म लेनेवाला सब अंगों से परिपूर्ण, सर्वजनप्रिय, संग्रामप्रिय, पवित्र हृदय और धनवान् होता है ॥ १४ ॥

अथ चन्द्रराशिशीलाध्यायः ॥ १७ ॥

अथातो राशिशीलाध्यायो व्याख्यायते । अथ मेषस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वृत्ताताम्रदग्धुणशाकलघुभुक् क्षिप्रप्रसादोऽटनः

कामी दुर्बलजानुरस्थिरधनः शूरोऽङ्गनावल्लभः ।

सेवाङ्गः कुनखी व्रणाङ्कितशिरा मानी सहोत्थाग्रजः

शक्त्या पाणितलेऽङ्कितोऽतिचपलस्तोये च भीरुः क्रिये ॥ १ ॥

वृत्तेति ॥ वृत्ते परिवर्तुले आवाग्रे लोहितवर्णे दृष्टी चक्षुषी यस्य स वृत्ताता-
म्रदग्धुणशाकललोहितनेत्रः, उष्णं शाकं लघु च स्वल्पं भुङ्क्ते स उष्णशाकलघु-
भुक् उष्णभोजी शाकभोजी, क्षिप्रप्रसादः आश्वेव प्रसीदति, अटनः परि-
भ्रमणशीलः, कामी सुरतप्रियः, दुर्बलजानुः निर्मासलजंघासंधिः, अस्थिरधनः,
अचिरवित्तः, शूरः रणप्रियः, अङ्गनावल्लभः स्त्रीप्रियः, अङ्गनानां वल्लभो
अङ्गना वल्लभा यस्य । सेवाङ्गः पराराधनकुशलः, कुनखी कुत्सितनखः,
व्रणाङ्कितशिराः सच्छिद्रमूर्द्धा, मानी गर्वितः, सहोत्थाग्रजः सहोत्थानां सहजाता-
नामग्रणीगुणप्रधानः, पाणितले हस्ततले स चिह्नविशेषेणाङ्कितः चिह्नितः,
अतिचपलः क्रियास्वनवस्थितः, तोये च जले भीरुः सभयः एवंविधाः क्रिये
मेषस्थिते चन्द्रमसि जातो भवति ॥ १ ॥

भाषा—यदि जन्मकाल में चन्द्रमा मेषराशि में हो तो वह बालक गोल-गोल
रक्तवर्ण नेत्रवाला, गर्म शाक और अल्प भोजन करने वाला, जल्दी प्रसन्न होनेवाला,
भ्रमणशील, कामी, कमजोर घुटनेवाला, चल सम्पत्तिवाला, युद्धप्रिय, स्त्रियों का प्रिय,
सेवाकार्य में पटु, खराब नखवाला, शिर धाव के चिह्नों से युक्त, मानी, सहोदरों में
ज्येष्ठ, हथेली में शक्ति रेखा (चिह्न) वाला, अत्यन्त चञ्चल और जल से भय खाने
वाला होता है ॥ १ ॥

अथ वृषस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

कान्तः खेलगतिः पृथूरुवदनः पृष्ठास्यपार्श्वाङ्कित-

स्त्यागी क्लेशसहः प्रभुः ककुदवान्कन्याप्रजः श्लेष्मलः ।

पूर्वैर्वन्धुघनात्मजैर्विरहितः सौभाग्ययुक्तः क्षमी

दीप्ताग्निः प्रमदाप्रियः स्थिरसुहृन्मध्यान्त्यसौख्यो गवि ॥ २ ॥

कान्त इति ॥ कान्तः दर्शनीयः, खेलगतिः सविलासगामी, पृथूरुवदनः पृथू विस्तीर्णावूरु वदनं मुखं यस्य । पृष्ठं पश्चिमभागः आस्यं वक्त्रं पार्श्वं प्रसिद्धे एषामन्यतमस्थानेऽङ्कितश्चिह्नितः, त्यागी दाता, क्लेशसहः कदर्थना-समर्थः, प्रभुरप्रतिहताङ्गः, ककुदवान् ककुदसंयुक्तः, कन्याप्रजः कन्या प्रजा यस्य, स्त्रीजनकः, श्लेष्मलः कफाधिकः, पूर्वैः प्रथमैः बन्धुभिः कुटुम्बैः धनैः वित्तैः आत्मजैः पुत्रैश्च विरहितः वियुक्तः, सौभाग्ययुक्तः सर्वजनवल्लभः, क्षमी क्षमावान् सहिष्णुरित्यर्थः । दीप्ताग्निः बह्वाशीः, प्रमदाप्रियः खोवल्लभः, स्थिर-सुहृत् दृढमित्रः, मध्यान्त्यसौख्यः मध्ये यौवनेऽत्ये वृद्धत्वे च सुखितः अर्था-देव बाल्ये दुःखित एवं विधो गवि वृषस्थे चन्द्रे जातो भवति ॥ २ ॥

भा०—जिस जातक के जन्म समय में वृषराशि में चन्द्रमा हो तो वह दर्शनीय स्वरूप, सविलास गमन करने वाला, विशाल मुखमण्डल वाला, पीठ, मुख और पार्श्व में चिह्न (तिलमसादि) से युक्त, दाता, कष्ट सहनेवाला, प्रभुत्वयुक्त, ऊँचा कन्या वाला, कन्या सन्तान वाला, कफ प्रकृति, प्रथम बन्धु, पूर्व का घन और प्रथम सन्तान से रहित, भाग्यवान्, क्षमाशील, उदीप्त जठराग्नि वाला (अन्न को शीघ्र पचानेवाला), स्त्रियों का प्रिय, स्थिर मैत्री करने वाला और मध्यमवयस (युवावस्था) तथा अन्त्य (वृद्धावस्था) में सुखयुक्त होता है ॥ २ ॥

अथ मिथुनस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्त्रीलोलः सुरतोपचारकुशलस्ताम्रेक्षणः शास्त्रविद्-

दूतः कुञ्चितमूर्द्धजः पटुमतिर्हास्येज्जितद्युतवित् ।

चार्वङ्गः प्रियवाक्प्रभक्षणरुचिर्गीतप्रियो नृत्यवित्

क्लीबैर्याति रतिं समुन्नतनसश्चन्द्रे तृतीयर्द्धगे ॥ ३ ॥

स्त्रीलोल इति ॥ स्त्रीलोलः स्त्रीष्वभिलाषकरः, सुरतोपचारकुशलः सुरतो-पचारे सुरतकर्मणि कामशास्त्रेषु कुशलः शिञ्चितः, ताम्रेक्षणः लोहितनेत्रः, शास्त्रविच्छास्त्रज्ञः परिणितः, दूतः परेच्छया गमनागमनशीलः, कुञ्चितमूर्द्धजः कुटिलशिरोरुहः, पटुमतिश्चतुरधीः अतीव प्राज्ञः, हास्यमुपहासम् इज्जितं परचित्तज्ञानं द्युतं प्रसिद्धम् एतानि वेत्ति जानाति । चार्वङ्गः शोभनावयवः, प्रियवागभिमतवक्ता, प्रभक्षणरुचिः बहुभुक्, गीतप्रियः गीतरतिः, नृत्यविन्-त्यज्ञः, क्लीबैः षण्डैः सह रतिं याति गच्छति, समुन्नतनस उन्नतनासिकः एवं-

विधश्चन्द्रे तृतीयर्क्षगे तृतीयराशौ स्थिते मिथुनगे जातो भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

भाषा—यदि जन्म समय में चन्द्रमा मिथुन राशि में हो तो वह जातक स्त्री की विशेष इच्छा रखने वाला, कामशास्त्र का ज्ञाता, लाल नेत्र वाला, शास्त्रज्ञ, दूत का काम करनेवाला, घुँघराले केशवाला, तीक्ष्ण बुद्धि, सबको हँसाने वाला, दूसरे के मन की बात जाननेवाला, जूवा (शतरंज, चौसर आदि) खेल को जानने वाला, सुन्दर शरीर वाला, मधुर भाषी, अधिक भोजन करनेवाला, सज्जीत प्रिय, नृत्य जानने वाला नपुंसकों से प्रेम करने वाला और ऊँची नाक वाला होता है ॥ ३ ॥

अथ कर्कटस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

आवक्रद्रुतगः समुन्नतकटिः स्त्रीनिर्जितः सत्सुहृद्-

दैवज्ञः प्रचुरालयः क्षयधनैः सयुज्यते चन्द्रवत् ।

ह्रस्वः पीनगलः समेति च वशं साम्ना सुहृद्वत्सल-

स्तोयोद्यानरतः स्ववेश्मसहिते जातः शशाङ्के नरः ॥ ४ ॥

आवक्रेति ॥ आवक्रं कुटिलं द्रुत सत्वरं गच्छतीति आवक्रद्रुतगः कुटिल-सत्वरगामी, समुन्नतकटिः उच्चजघनः, स्त्रीनिर्जितः प्रमदाजितः, सत्सुहृच्छो-भनमित्रः, दैवज्ञः ज्योतिःशास्त्रार्थवेत्ता, प्रचुरालयः प्रभूतगृहकर्ता, क्षयधनैर-पचयोपचयैश्चन्द्रवच्छशिवत्संयुज्यते, कदाचित् सधनः कदाचिद्विधन इत्यर्थः चन्द्रक्षयवृद्धिवत्, ह्रस्वः अदीर्घः, पीनगलः मांसलकण्ठः, साम्ना प्रीत्या वशं वश्यतां समेति याति, सुहृद्वत्सलः मित्रवल्लभः, तोयोद्यानरतः जलोपवनसक्तः तोये जले उपवने उद्याने च रतः एवंविधः स्ववेश्मसहिते कर्कटस्थे शशाङ्के चन्द्रे नरः पुरुषः जातो भवति ॥ ४ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा स्वराशि (कर्क) में हो तो जातक कुटिल गति से शीघ्र चलने वाला, उन्नत कटि (ऊँची जङ्घा वाला), स्त्री के वशीभूत, अच्छे मित्रवाला, ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता, अधिक घर का निर्माण करने वाला, चन्द्रमा के ही समान हानि-वृद्धि वाला (अर्थात् कभी धनी, कभी गरीब), नाटे शरीर किन्तु स्थूल गर्दन-वाला, मात्र प्रेम से वश में होने वाला, मित्रों को प्रिय माननेवाला, जलाशय और बगीचों में रुचि रखने वाला होता है ॥ ४ ॥

अथ सिंहस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

तीक्ष्णः स्थूलहनुर्विशालवदनः पिङ्गेक्ष्णोऽल्पात्मजः

स्रोद्रेषी प्रियर्मांसकानननगः कुप्यत्यकार्ये चिरम् ।

क्षुत्तृष्णोदरदन्तमानसरुजा सम्पीडितस्त्यागवान्

विक्रान्तः स्थिरधीः सुगर्वितमना मातुर्विधेयोऽर्कभे ॥ ५ ॥

तीक्ष्ण इति ॥ तीक्ष्णः अमर्षशीलः स्थूलहनुः बृहद्वहनुः, बृहत्कपोलः विशाल वदनो विस्तीर्णबन्धनः, पिङ्गेक्ष्णः कपिलनेत्रः, अल्पात्मजः स्वल्पापत्यः,

स्त्रीद्वेषी प्रमदाद्विद्, स्त्रीद्वेष्टेति केचित्पठन्ति । प्रियमांसकानननगः मांसमामिषं, काननमरण्यं, नगः पर्वतः, एते प्रिया यस्य आमिषवनपर्वतानुरतः, अकार्ये अकरणीयेऽर्थे कुप्यति क्रुध्यति चिरं बहुकालं, केचिदकाण्डे अकाले । क्षुत्प्रसिद्धा तृष्णा पिपासा, उदरं जठरं, दन्ता दशनाः, मनश्चित्तमेभ्यो जाता रुजः पीडास्ताभिः सम्पीडित उपतप्तः, त्यागवान्दाता, विक्रान्तः पराक्रमशीलः, स्थिरधीरेकमतिः, गर्वितमनाः अभिमानसंयुक्तः, मातुर्विधेयो जननीवश्यः, भक्तः इत्यर्थः । “विधेयो वचनग्राही” इत्यमरः । एवंविधोऽर्कभे सूर्यराशौ सिंहस्थे चन्द्रे जातो भवति ॥ ५ ॥

भाषा—जिस जातक के जन्म समय में सिंह राशि में चन्द्रमा हो तो वह तेजस्वी (अमर्ष युक्त), मोटी ठुड्डी, विशाल मुख और पीले नेत्र वाला, थोड़े पुत्र वाला, स्त्री का द्वेषी, मांस, वन और पर्वत में प्रेम रखने वाला, (शिकारी) अकारण ही अधिक क्रोध करने वाला, क्षुधा, तृषा, उदर रोग और मानसिक रोग से पीड़ित, दानी, पराक्रमी, अभिमानी और माता का भक्त होता है ॥ ५ ॥

अथ कन्यागते चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ब्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिः सस्तांसबाहुः सुखी

श्लक्ष्णः सत्यरतः कलासु निपुणः शास्त्रार्थविद्वार्मिकः ।

मेधावी सुरतप्रियः परगृहैर्वित्तैश्च सयुज्यते

कन्यायां परदेशगः प्रियवचाः कन्याप्रजोऽल्पात्मजः ॥ ६ ॥

ब्रीडामन्थरचारुवीक्षणगतिरिति । ब्रीडा लज्जा तथा मन्थरत्वमलसत्वं तेन चारु शोभनं वीक्षणं दृष्टिपातो गतिः गमनं च यस्य, सस्तावधः पतितौ शिथिलावंसौ स्कन्धौ बाहु भुजौ यस्य, सुखी सुखितः, श्लक्ष्णः मृदुवाक् तनुकायो वा, सत्यरतः सत्यभाषी, धार्मिकश्च परमार्थवादी, कलासु निपुणः कलासु नृत्यगीतवाद्यपुस्तकचित्रकर्मसु निपुणः सुज्ञः, शास्त्रार्थवित्पण्डितः, धार्मिकः धर्मानुरतः, मेधावी बुद्धिमान्, सुरतप्रियः कामलोलुपः, परगृहैः परवेशमभिः वित्तैर्धनैश्च संयुज्यते सम्यग्युक्तो भवति परदेशगः अन्यदेशनिवासशीलः, प्रियवचाः प्रियभाषी, कन्याप्रजः कन्या प्रजा यस्य स्त्रीजनकः, अल्पात्मजः स्वल्पपुत्रः, एवंविधः कन्यायां स्थिते चन्द्रे जातो भवति ॥ ६ ॥

भाषा—यदि सिंह राशि में चन्द्रमा हो तो जन्म लेनेवाला मनुष्य लज्जामान्, आलस से युत दृष्टिपात और गमनवाला, शिथिल (ढीले) कन्धा और बाहु वाला, सुखी, कोमलदेह, सत्यवक्ता, कलाओं में निपुण, शास्त्र तत्त्व को जानने वाला (शास्त्र तत्त्वज्ञ), धर्मात्मा, बुद्धिमान्, स्त्री-संभोग-प्रिय, दूसरे के घर और धन से युक्त, परदेशी, प्रिय वचन बोलने वाला, अधिक कन्या और थोड़े पुत्र सन्तान वाला होता है ॥ ६ ॥

अथ तुलास्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः प्राज्ञः शुचिः स्त्रोजितः

प्रांशुश्चावतनासिकः कृशचलद्गात्रोऽटनोऽर्थान्वितः ।

हीनाङ्गः क्रयविक्रयेषु कुशलो देवद्विनामा सरूक्

बन्धूनामुपकारकृद्विरुपितस्त्यक्तस्तु तैः सप्तमे ॥ ७ ॥

देवेति ॥ देवब्राह्मणसाधुपूजनरतः देवानां गुराणां ब्राह्मणानां द्विजानां साधूनां सज्जनानां च पूजने रतः सक्तः, प्राज्ञः मेधावो, अत्र मेधा बुद्धिः । प्रज्ञालक्षणम् । “अजीतानुस्मृतिर्मेधा बुद्धिस्तत्कालमाहिणी । शुभाशुभविचारज्ञा प्रज्ञा धीरैरुदाहृता ॥” शुचिः परधनाद्यलुब्धः, श्रोत्रियो वा, स्त्रोजितः योपितां वशः, प्रांशुरत्युच्चः, उन्नतनासिकः अत्युन्नतनासः, कृशचलद्गात्रः दुर्बलशिथिलावयवः कृशं दुर्बलं चलत् बलहीनं गात्रं शरीरं यस्य । अटनः परिभ्रमणशीलः, अर्थान्वितः सधनः, हीनाङ्गः, अपरिपूर्णावयवः, क्रयेषु विक्रयेषु च कुशलः शक्तः, देवद्विनामा सभ्यपर्यायद्वितीयाभिधानः द्वितीयनाम देवाख्यं चास्य भवति, सरूक् पीडितदेहः, बन्धूनां स्वकुटुम्बानामुपकारकृद्विरुपितकारी, तैश्च बन्धुभिः विरुपितः भर्त्सितः पराभूतः, त्यक्तः त्यजितश्च, एवंविधः सप्तमे तुलास्थे चन्द्रमसि जातो भवति ॥ ७ ॥

भाषा—यदि तुला में चन्द्रमा हो तो जातक—देवता, विप्र (ब्राह्मण) और सन्तों का आदर करने वाला, पण्डित, पवित्र, स्त्री के वशीभूत, सुगठित शरीर, ऊँची नाक वाला, दुर्बल और शिथिल अंग वाला, भ्रमणशील, धनवान्, अंगहीन, क्रय-विक्रय में चतुर, देववाचक दो नाम वाला, रोगयुक्त, सम्बन्धीजनों का उपकार करने वाला, किन्तु स्वयं उन्हीं कुटुम्बों से अपमानित और त्यक्त होता है ॥ ७ ॥

अथ वृश्चिकस्थे चन्द्रमसि जातस्य स्वरूपं मालिन्याह—

पृथुलनयनवक्षा वृत्तजङ्घोरुजानु-

र्जनकगुरुवियुक्तः शैशवे व्याधितश्च ।

नरपतिकुलपूज्यः पिंगलः क्रूरचेष्टो

भूषकुलिशखगांकरश्छन्नपापोऽलिजातः ॥ ८ ॥

पृथुलेति ॥ पृथुलनयनवक्षाः पृथुले विस्तीर्णं नयने नेत्रे वक्ष उरो यस्य, वृत्ते परिवर्तुले जंघे ऊरु जानुनो च यस्य । जनकैः मातृपितृभिः गुरुभिरचोपदेशकारिभिः गौरवयुक्तैश्च वियुक्तो रहितः, शैशवे बाल्ये व्याधितः पीडितः, नरपतिकुले राज्ञां वंशे पूज्यः आराध्यः, पिंगलः क्रूरचेष्टः विषमस्वभावः, भूषकुलिशखगाङ्कः भूषो मीनः, कुलिशं वज्र, खगः पक्षी एतैर्मत्स्यवज्रपक्षिसमानैरङ्कैश्चहैरङ्कितश्चिह्नितः छन्नपापः गुप्ताशुभकृत् एवंविधोऽलिनि वृश्चिकस्थे चन्द्रे जातो भवति ॥ ८ ॥

भाषा—यदि वृश्चिक में चन्द्रमा हो तो जानक विशाल नेत्र वाला, विशाल वक्षः-स्थल वाला, गोल जङ्घा और जानु (ठेहुना) वाला, माता-पिता और गुरुजनों से हीन, बाल्यावस्था में रोगी, राजकुलों में पूज्य, कपिल वर्ण, कुटिल स्वभाव, हाथ या पैर में मत्स्य, वज्र और पक्षी आकार की रेखा से युक्त तथा गुप्त पाप करनेवाला होता है ॥ ८ ॥

अथ धनुर्धरस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

व्यादीर्घास्यशिरोधरः पितृधनस्त्यागी कविर्वीर्यवान्

वक्ता स्थूलरदश्रवाधरनसः कर्मोद्यतः शिल्पवित् ।

कुब्जांसः कुनखी समांसलभुजः प्रागल्भ्यवान् धर्मविद्-

बन्धुद्विट् न बलात्समेति च वशं साम्नैकसाध्योऽश्वजः ॥९॥

व्यादीर्घास्येति ॥ व्यादीर्घास्यशिरोधरः व्यादीर्घमतिदीर्घमास्यं मुखं शिरोधरा ग्रीवा च यस्य । पितृधनः जनकवित्तान्वितः, त्यागी दाता, कविः काव्यज्ञः, वीर्यवान्बली, वक्ता सम्भाषणे दक्षः, स्थूलरदश्रवाधरनसः स्थूला महत्प्रमाणा रदा दंताः, श्रवसी कर्णौ, अधर ओष्ठः, नसः नासिका घ्राणः, एते सर्व एव स्थूला यस्य । कर्मोद्यतः सर्वकार्याणामुद्यमशालः, शिल्पज्ञः लिपिपुस्तकचित्रज्ञः, कुब्जांसः अस्पष्टस्कंधः, कुनखी कुत्सितनखः, समांसलभुजः पीनबाहुः, प्रागल्भ्यवान् अतिप्रतिभायुक्तः, धर्मवित् धर्मज्ञः, बन्धुद्विट् बन्धूनामप्रीतिभाक् द्वेषा, बलान् हठादाक्रमणात् वशं संविधेयतां वश्यतां न समेति नायाति । साम्ना प्रीत्या एकेनैव गुणेन साध्यः स्वीक्रियते एवंविधोऽश्वजो धनुषि स्थिते चन्द्रे जातो भवति ॥ ९ ॥

भाषा—यदि धनु में चन्द्रमा हो तो लम्बामुख और लम्बा गला वाला, पैतृक धन पानेवाला, दाता, कवि, बलवान्, वक्ता, स्थूल दांत वाला, स्थूल कान और स्थूल ओठ वाला, कार्य में उद्यत, शिल्प (चित्रादि) जाननेवाला, कुबड़े गर्दन वाला, मोटे बाहु वाला, प्रगल्भ, धर्मज्ञ, बन्धुओं का द्वेषी, बल से वश में नहीं होने वाला, केवल प्रेम से वश में हो जाने वाला होता है ॥ ९ ॥

अथ मकरस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

नित्यं लालयति स्वदारतनयान्धर्मध्वजोऽधःकृशः

स्वन्नः क्षामकटिर्गृहीतवचनः सौभाग्ययुक्तोऽलसः ।

शीतालुर्मनुजोऽटनश्च मकरे सत्त्वाधिकः काव्यकु-

ल्लुब्धोऽगम्यजराङ्गनासु निरतः सन्त्यक्तलज्जोऽघृणः ॥१०॥

नित्यं लालयतीति ॥ नित्यं लालयति स्वदारतनयान् स्वकलत्रं तनयांश्च पुत्रान् लालयति प्रीत्या भजते । धर्मध्वजः दाम्भिकः मिथ्याधार्मिकः, अधः

कृशः अधोभागादतिदुर्बलः, स्वन्नः शोभननेत्रः, क्षामकटिः कृशजघनः, गृहीतवचनः उक्तप्राहकः यदुच्यते तत्सकृदेव गृह्णाति । सौभाग्ययुक्तः सर्वजनप्रियः, अलसः क्रियास्वपटुः, शीतालुः शीतं न सहते । अटनः परिभ्रमणशीलः, सत्त्राधिकः उदारचेष्टः, बलाधिको वा, काव्यकृत् विद्वान्, लुब्धः लोभाभिभूतः, अगम्यास्वगमनायासु निरुद्धजातिषु जरदङ्गनासु वृद्धस्त्रीषु निरतः, सन्त्यक्तलजः विमुक्तव्रण्डः, अघृणः निर्दयः एवंविधो मनुजो मनुष्यो मकरस्थे चन्द्रमसि जातो भवति ॥ १० ॥

भाषा—यदि मकर में चन्द्रमा हो तो जातक नित्य अपनी स्त्री और सन्तान को पोषण करने वाला, धर्मद्वधी (धर्म कार्य में मिथ्या आडम्बर करने वाला), कमर से नीचे कृश अंग वाला, सुन्दर नेत्रवाला, क्षीण कटि (कमर) वाला, अने वचन का पालन करने वाला, आग्यमान्, आलसी, शीत से डरनेवाला, भ्रमणशील, बलवान्, कवि, लोभी, अगम्या और वृद्ध स्त्री से प्रेम करने वाला, निर्लज और निर्दय होता है ॥ १० ॥

अथ कुम्भस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं त्रोटकेनाह—

करभगलः शिरालुः खरलोमशदार्धतनुः

पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्यकटिर्जरठः ।

परवनिताथपापनिरतः क्षयवृद्धियुतः

प्रियकुसुमानुलेपनसुहृद्घटजोऽध्वसहः ॥ ११ ॥

करभगल इति ॥ करभगलः उद्धसमग्रीवः, शिरालुः शिरासंततः, खराः कर्कशा लोमा यस्याः सा लोमशा दीर्घास्त्युष्मा तनुः शरीरं यस्य । पृथू विस्तीर्णौ चरणौ पादौ तथा ऊरू जानूपरिभागौ पृष्ठं देहपश्चिमभागो जघनं नितम्बस्थानमास्थं मुखं कटिश्च बस्तिः यस्य सः पृथुचरणोरुपृष्ठजघनास्यकटिः, तथा जरठः मूर्खः, परिजनितासु परस्त्रीषु परार्थेषु पापे च निरतः सक्तः, क्षयवृद्धियुतः उपचयपापचयैर्युक्तः, प्रियकुसुमानुलेपनसुहृत् कुसुमानि पुष्पाणि अनुलेपनं समालम्बनं सुहृदो मित्राणि प्रियाणि यस्य । अध्वसहः पथि क्षम एवंविधो घटजः कुम्भस्थे चन्द्रमसि जातो भवति ॥ ११ ॥

भाषा—कुम्भ राशि में उत्पन्न मनुष्य ऊँट के समान गर्दन वाला, प्रकट नस (शिरा) वाला, रूखे और अधिक रोमयुक्त शरीर वाला, लम्बे-लम्बे पैर वाला, जंघा, पीठ, मुख और विस्तृत कमर वाला, मूर्ख, परस्त्री, परद्रव्य और पाप कर्म में आसक्त, घनादि में ह्रास-वृद्धि वाला, पुष्प, चन्दन और मित्रों में प्रीति रखने वाला तथा भ्रमणशील होता है ॥ ११ ॥

अथ मीनस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं मालिन्याह—

जलपरधनभोक्ता दारवासोऽनुरक्तः

समरुचिरशरीरस्तुङ्गनासो बृहत्कः ।

अभिभवति सपत्नान् स्त्रीजितश्चारुदृष्टि-

धृतिनिधिधनभोगी पण्डितश्चान्त्यराशौ ॥ १२ ॥

जलपरधनभोक्तेति ॥ जलपरधनभोक्ता जलधनानामुदकोत्पन्नवित्तानां मुक्ताफलानां क्रयविक्रयजातानां परधनानां च भोक्ता स्वामी, दारवासोऽनुरक्तः दारेषु कलत्रेषु विषयेषु वासांसि वस्त्राणि एतेषु चानुरक्तः, समरुचिरशरीरः समं तुल्यं सर्वावयवपरिपूर्णं रुचिरं दोषमिच्छरीरं यस्य । तुङ्गनासोऽत्युच्चनासिकः, बृहत्कः विस्तीर्णमूर्द्धा, अभिभवति सपत्नान् सपत्नान् शत्रून् अभिभवति पराभवति, स्त्रीजितः, निधिः भूमावधः स्थितोऽर्थो निधिशब्देनोच्यते धनं वित्तमेषां भोगी भोक्ता, पण्डितश्च शास्त्रार्थवित् एवविधोऽन्त्यराशौ मीनस्थे चन्द्रमसि जातो भवति ॥ १२ ॥

भाषा—मीन राशि में जन्म लेने वाला, जल से उत्पन्न धन (मोती आदि) और दूसरे के धन को भोगने वाला, स्त्रियों और वस्त्रों में अनुराग वाला, मझोला सुन्दर शरीर वाला, ऊँची नाक और बड़े मस्तक वाला, शत्रुओं को जीतने वाला, स्त्री के वशीभूत, सुन्दर नेत्र वाला, कान्ति और निधि (खान से उत्पन्न) धन का भोगी और पण्डित होता है ॥ १२ ॥

अथोक्तराशिस्वरूपमपवादं च भ्रमरविलसितेनाह—

बलवति राशौ तदधिपतौ च स्वबलयुतः स्याद्यदि तुहिनांशुः ।

कथितफलानामविकलदाता शशिवदतोऽन्येप्यनुपरिचिन्त्याः ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

चन्द्रराशिशीलाध्यायः सप्तदशः ॥ १७ ॥

बलवति राशाविति ॥ पुरुषस्य जन्मसमये यस्मिन्राशौ चन्द्रमा व्यवस्थितस्तस्मिन्बलवति सबले तथा तस्य च राशेर्योऽधिपतिस्तस्मिन्तदधिपतौ च बलवति तथा तुहिनांशुश्चन्द्रमाः स च यदि स्वबलेनात्मीयेन वीर्येण पूर्वोक्तेन संयुतोऽन्वितः स्याद्भवेत् एवमेतेषु त्रिषु यदि सबलत्वं विद्यते तदा यथोक्तराशिस्वरूपं जातः पुरुषो भवति । यत उक्तं कथितफलानामविकलदातेति । अनया सामर्थ्या स चन्द्रः कथितफलानामुक्तस्वरूपाणामविकलानां परिपूर्णानां दाता भवति, एषां मध्याद्द्वयोर्बलवतोर्मध्ये युक्तं स्वरूपं प्राप्नोति । एकस्मिन्बलवति हीनं किञ्चित्, न कस्मिंश्चिद्बलवति तदुक्तं स्वरूपं न किञ्चिद्भवति । शशिवदत इति । अतोऽस्मान्ब्रह्मादन्ये परिशिष्टा ये ग्रहाः रविभौमङ्गगुरुसितसौराः शशिवच्चन्द्रवत् परिकल्प्याः । यत्र राशौ स्थिता भवन्ति तदाश्रयेण वक्ष्यमाणं स्वरूपं दास्यन्ति । तदपि चन्द्रवत् । एतदुक्तं भवति । बलवति राशौ तदधिपतौ च बलवति यस्य ग्रहस्य राशिस्वरूपं पठ्यते तस्मिन्नपि बलवति तदधि-

पतौ च सम्पूर्णं तत्पठितं राशिस्वरूपं भवति । यद्येकयोश्च बलवतोर्मध्यमोन-
मिति न कस्मिंश्चिद्भवति । नैतन्किञ्चिदिति । चन्द्रराशिस्वभाव इति ॥१३॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ

चन्द्रराशिशीलाध्यायः सप्तदशः ॥ १७ ॥

भाषा—जन्म समय जिस राशि में चन्द्रमा हो वह राशि और उसका स्वामी
तथा चन्द्रमा ये तीनों त्रलयुक्त हों तो उक्त फल पूर्ण रूप से समझना चाहिये । इससे
सिद्ध होता है कि इन तीनों में दो बली हों तो कुछ न्यून, यदि एक बली हो तो
आधा, यदि सब निर्बल हों तो अत्यल्प फल होता है । इसी प्रकार (चन्द्रमा के समान
ही) अन्य ग्रहों के फल में भी तारतम्य करके आदेश करना चाहिये ॥ १३ ॥

अथ राशिशीलाध्यायः ॥ १८ ॥

अथ मेषवृषगतेऽर्के जातस्य स्वरूपमौपच्छन्दसिकेनाह—

प्रथितश्चतुरोऽटनोऽल्पवित्तः क्रियगे त्वायुधभृद्वितुङ्गभागे ।

गवि वस्त्रसुगन्धपण्यजीवी वनिताद्विट् कुशलश्च गेयवाद्ये ॥१॥

प्रथित इति ॥ प्रथितः प्रख्यातः, चतुरः दक्षः, अटनः परिभ्रमणशीलः,
अल्पवित्तः स्तोकार्थः, आयुधभृत् शस्त्रधारणजीवी एवंविधः क्रियगे मेषस्थे
भानावादित्ये जातो भवति । एतच्च फलं वितुङ्गभागे यदि तत्रैव मेषस्थः
आदित्यः परमोच्चस्थो भवति तुङ्गभागं परमोच्चं वज्रयित्वा अन्यत्र स्थितेऽर्के
चैतत्फलम् दोषभाग् जाते न भवति । तद्यथा । अल्पवित्तो बहुवित्तो न भवति,
अटनो न भवति, आयुधभृत् न भवति, तस्यान्ये आयुधभृतोऽनुयायिनो भवन्ति ।
अन्ये तु पुनः पूर्वोक्ता गुणाः । प्रथितश्चतुरो भवति । गवोत्यादि । वस्त्रैरम्बरैः
सुगन्धद्रव्यैः पण्यैश्च जीवति । वनिताद्विट् स्त्रीषु द्वेषा, गेये गीते वाद्ये च
वादनविधौ कुशलः शिञ्जितः, एवंविधो गवि वृषस्थे सूर्यो जातो भवति ॥ १ ॥

भाषा—जन्म समय में सूर्य मेष राशि में उच्चांश (१० अंश) से अन्यत्र हो तो
जातक विख्यात, चतुर, भ्रमणशील, थोड़े वन वाला और शस्त्र धारण करने वाला
होता है अर्थात् सिद्ध होता है कि यदि परमोच्चांश (१० वें अंश) तक हो तो
उत्कृष्ट फल (अल्पवित्त और आयुधधारी होना जो कहा गया है वह) नहीं होता है
याने उच्चांश में रहने से बहुत धनी और उसके अनुयायी लोग शस्त्रधारी होते हैं ।
तथा वृष में सूर्य हो तो वस्त्र, सुगन्ध (इत्र आदि) का व्यापार करने वाला, स्त्री का
द्वेषी और गाने-बजाने में निपुण होता है ॥ १ ॥

अथ मिथुनकर्कसिंहकन्यास्थे सूर्ये जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

विद्याज्योतिषविचवान्मिथुनगे भानौ कुलीरे स्थिते

तोक्ष्योऽस्वः परकार्यकुच्छ्रमपथक्लेशैश्च संयुज्यते ।

**सिंहस्थे वनशैलगोकुलरतिर्वीर्यान्वितोऽङ्गः पुमान्
कन्यास्थे लिपिलेख्यकाव्यगणितज्ञानान्वितः स्त्रीवपुः ॥२॥**

विद्येति ॥ विद्यः ज्योतिषवित्तवान् विद्यावान् पण्डितः, ज्योतिषवान् ज्योतिषशास्त्रज्ञः, वित्तवान् धनी एवंविधो मिथुनस्थे भानौ जातो भवति । तीक्ष्णः उग्रः, अस्वः दरिद्रः, परकार्यकुदन्वेषां कार्यकर्ता, श्रमपथक्लेशैः श्रमेण खेदेन पथाऽध्वना क्लेशैः दुःखैश्च सर्वकालं संयुज्यते एवंविधः कुलीरस्थे कर्कटगते भानौ जातो भवति । सिंहस्थ इति । वनमरण्यं, शैलः पर्वतः, गोकुलः गोवाटः एतेषु स्थानेषु रतिः, निवासशीलः, तदासक्त इत्यर्थः । वीर्यान्वितः बली, अङ्गः मूर्खः एवंविधः पुमान् पुरुषः सिंहस्थेऽर्के जातो भवति । लिपिरक्षरविन्यासः, लेख्यं चित्रकर्म, काव्यं कवेः कर्म, गणितं ग्रहगणितादि, ज्ञानं विज्ञानम् एतैरन्वितो युक्तः, स्त्रीवपुः स्त्रीतुल्यशरीरः एवंविधः कन्यास्थेऽर्के जातो भवति ॥ २ ॥

भाषा—मिथुन में सूर्य हो तो जातक विद्वान्, ज्योतिषी और धनवान् होता है । कर्क में सूर्य हो तो उग्र स्वभाव, निर्धन, दूसरे का कार्य करने वाला, श्रम और मार्ग में चलने से क्लेश का भागी होता है । सिंह में सूर्य हो तो वन, पर्वत, गोपालन में प्रेम रखने वाला, बलवान् और मूर्ख होता है । कन्या में सूर्य हो तो चित्र, लेख काव्य और गणित शास्त्र को जानने वाला तथा स्त्री सदृश आकार वाला होता है ॥ २ ॥

अथ तुलावृश्चिकधन्विमकरस्थेऽर्के जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—
जातस्तौलिनि शौण्डिकोऽध्वनिरतो हैरण्यको नीचकृत्
क्रूरः साहसिको विषार्जितधनः (१) शस्त्रान्तगोऽलिस्थिते ।
सत्पूज्यो धनवान्धनुर्द्धरगते तीक्ष्णो भिषक्कारुको
नीचोऽङ्गः कुवण्डिमृगेऽल्पधनवॉल्लुब्धोऽन्यभाग्यै रतः ॥३॥

जात इति ॥ शौण्डिको मद्यविक्रयी भवति, मद्यकरो वेति केचित्, अध्वनिरतः पथि प्रसक्तः, हैरण्यकः स्वर्णकारः, नीचकृदनुचितकर्मकर्ता एवंविधः तौलिनि तुलास्थेऽर्के जातो भवति । क्रूरः उग्रस्वभावः, साहसिकः असमीक्षितकार्यकृत् । तथा च । “असमीक्षितकार्याणां कर्त्ता साहसिकः स्मृतः ।” विषार्जितधनः विषप्रयोगैरर्जितं धनं सञ्चितं वित्तं येन, प्रत्यन्तरे वृथाजितधनः यद्धनमर्जयति तदस्य वृथा निष्फलं भवति चौरादयोऽपहरन्ति । शस्त्रान्तगः शस्त्रनैपुण्यकः शस्त्रस्यायुधस्यांतगः एवंविधोऽलिस्थिते वृश्चिकगनेऽर्के जातो भवति । सत्पूज्यः सतामर्चनीयः, धनवान्वित्तयुक्तः, तीक्ष्णः क्रूरचेष्टः, भिषक् वैद्यप्रयोगज्ञः, कारुकः शिल्पकर्मज्ञः एवंविधो धनुर्द्धरस्थेऽर्के जातो भवति ।

(१) ‘वृथाजितधनः’ इत्यापि पाठस्तत्र वृथाऽर्जितं धनं यस्येति विग्रहः ।

नीचः कुलानुचिताधर्मकर्मकृत्, अज्ञः सुखः, कुवणिक् कुत्सितवणिक्, अल्प-
धनवान् स्तोत्रार्थः, लुब्धः लोभाभिभूतः, अन्यभाग्यै रतः परार्थोपकारभोक्ता
एवंविधो मृगे मकरस्थेऽर्के जातो भवति ॥ ३ ॥

भाषा—जन्म समय में तुला में सूर्य हो तो जातक मद्य व्यवसायी, मार्ग चलने
वाला, स्वर्णकार और अपने कुछ से निन्द्य कार्य करने वाला होता है। बुध्रिक में
सूर्य हो तो क्रूर, बिना विचार काम करने वाला, विष व्यवसायी तथा शास्त्र को
जानने वाला होता है। घनु में सूर्य हो तो जातक सज्जनों से पूजित, धनी, उग्र
स्वभाव, वंछ और चित्रकार होता है। मकर में सूर्य हो तो नीच, सुख, निन्दाजनक
व्यापार करने वाला, अल्प धन वाला, लोभी और दूसरे के भाग्य से जीनेवाला होता
है ॥ ३ ॥

अथ कुम्भमीनगतेऽर्के जातस्य स्वरूपं चन्द्रार्कयोस्तु लक्ष्मज्ञानं वसन्त-
तिलकेनाह—

नीचो घटे तनयभाग्यपरिच्युतोऽस्वस्तोयात्थपण्यविभवो वनितादृतोऽन्त्ये
नक्षत्रमानवतनुप्रतिमे विभागे लक्ष्मादिशेत्तुहिनरश्मि-दिनेशयुक्ते ॥४॥

नीच इति ॥ नीचः कुलानुचिताधर्मकर्मकृत्, तनयैः पुत्रैः भाग्यैश्च परि-
च्युतः त्यक्तः, पुत्रैः जनबाल्लभ्येन च विरहितः, अस्वः निर्धनः एवंविधो घटे
कुम्भस्थेऽर्के जातो भवति। तोयोत्थं जलोत्पन्नं मुक्ताफलादि तत्पण्येन तद्वि-
क्रयेण विभवमैश्वर्यं यस्य। वनितादृतः स्त्र्योपूज्यः एवंविधोऽन्त्ये मीनस्थेऽर्के
जातो भवति। नक्षत्रमानवतनुरित्यादि। नक्षत्रमानवको राशिपुरुषः कालाङ्गा-
नीत्यादिना प्रदर्शितः तुहिनरश्मिश्चन्द्रः, दिनेश आदित्यः एतौ समेतौ यस्मि-
न्नाशौ स्थितौ स राशिनक्षत्रपुरुषस्य यस्मिन्नङ्गे स्थितस्तत्र पुरुषस्य जातस्य
लक्ष्म चिह्नं मन्तकादौ समादिशेत् वदेत्। यथा मेषस्थयोः शिरांस, वृषस्थयोः
मुख इत्येवमूह्यम्। इति आदित्यराशिस्वभावः ॥ ४ ॥

भाषा—यदि सूर्य कुम्भ राशि में हो तो जातक नीच (अनुचित कार्य करने
वाला), पुत्र और भाग्य से परित्यक्त तथा निर्धन होता है। मीन में सूर्य हो तो
जलोत्पन्न वस्तु (मोती आदि) के व्यापार से धन लाभ करने वाला और स्त्री से
पूजित होता है। सूर्य और चन्द्रमा जिस राशि में दोनों एक साथ हों वह राशि नक्षत्र
मानव ('कालाङ्गानि' इत्यादि कथित कालपुरुष) के जिस अङ्ग में हो उस अंग पर
चिह्न (मसक, तिल आदि) कहना चाहिए। जैसे मेष में हो तो मस्तक पर, वृष में
हो तो मुख पर, इत्यादि ॥ ४ ॥

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलम्ये कुजे जातस्य स्वरूपं त्रोटकेनाह—

नरपतिसत्कृतोऽटनश्चमूपवणिकसधनाः

क्षततनुचौरभूरिविषयाश्च कुजः स्वगृहे ।

युवतिजितान् सुहृत्सु विषमान् परदाररतान्

कुहकसुवेषभीरुपुरुषान् सितभे जनयेत् ॥ ५ ॥

नरपतिसत्कृत इति ॥ नरपतिसत्कृतः राजपूजितः, अटनः परिभ्रमणशीलः, चमूपः सेनापतिः, वणिक् क्रयविक्रयज्ञः, वित्तान्वितः, क्षततनुः विक्षतदेहः, क्षणितशरीरः, चौरस्तस्करः, भूरिविषयः विप्रकीर्णेंद्रियः, एवंविधान् स्वगृहे मेषवृश्चिकस्थः कुजः भौमः जनयेत् । युवतिजितः ओविधेयः, सुहृत्सु मित्रेषु, विषमः दुर्विधेयः सक्करम्बभावः, परदाररतः परयोषितां प्रसक्तः, कुहकज्ञः ऐन्द्र-जालिकः, सुवेषः शोभनालङ्कारः, भीरुः सभयः पुरुषः, कर्कशः निस्नेहः एवं-विधान्पुरुषान् सितभे शुक्रक्षेत्रे वृषे तुले च स्थितो भौमो जनयेदुत्पादयेत् ॥ ५ ॥

भाषा—मेघ या वृश्चिक में हो तो जातक राजा से सत्कार पाने वाला भ्रमण-शील, सेनापति, व्यापारी और धनवान् पुरुष को पैदा करता है । यदि वृष या तुला में मंगल हो तो स्त्री के वश में रहने वाला, मित्रों से कपट कर वाला, पर-स्त्री म रत, इन्द्रजाल विद्या जानने वाला, सुन्दर वेष वाला, डरपोक और कर्कश मनुष्य को पैदा करता है ॥ ५ ॥

अथ मिथुनकन्याकर्कटस्थे भौमे जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

बौधेऽसहस्तनयवान्विसुहृत्कृतज्ञो गान्धर्वयुद्धकुशलः कृपणोऽभयोऽर्थी ।

चान्द्रेऽर्थवान्सलिलयानसमर्जितस्वः प्राज्ञश्च भूमितनये विकलः खलश्च ६

बौधे इति ॥ असहः तेजस्वी, तनयवान् पुत्रयुक्तः, विसुहृत् मित्ररहितः, कृतज्ञः परोपकारशीलः, गान्धर्वयुद्धकुशलः गान्धर्वे गीते युद्धे च संग्रामे प्रवेश-निर्गमव्यूहचरणादिषु च कुशलः तज्ज्ञः, कृपणः अदाता, अभयः निर्भयः, अर्थी याच्ञापरः एवंविधो बौधे मिथुनकन्यास्थे कुजे भौमे जातो भवति । अथ कर्कटस्थे भौमे जातस्य स्वरूपमाह । चान्द्रे इति । अर्थवान् सधनः, सलिलयान-समर्जितस्वः सलिलयानेन प्लवादिना सम्यगर्जितं स्वं धनं येन अथवा सलिलेन जलेन यानेन गमनेनाध्वना समर्जितं स्वं धनं येन । प्राज्ञः मेधावी, विकलोऽ-गहीनः, खलः दुर्जनः एवंविधश्चान्द्रे कर्कटगते भौमे जातो भवति ॥ ६ ॥

भाषा—यदि मंगल मिथुन या कन्या में हो तो जातक असह (किसी की अनुचित कथा को बर्दाश्त नहीं करने वाला अर्थात् तेजस्वी), पुत्रवान् मित्र रहित, कृतज्ञ (उपकार को मानने वाला) गाने, बजाने में और युद्ध भूमि में निपुण, कृपण, निर्भय किन्तु याचक होता है । यदि कर्क में बुध हो तो जातक धनवान्, नौका द्वारा धनोपार्जन करने वाला, पण्डित, अंगहीन और शठ होता है ॥ ६ ॥

अथ सिंहधन्विमीनकम्भमकरस्थे भौमे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

निःस्वः क्लेशसहो वनान्तरचरः सिंहेऽप्यपदारात्मजो

जैवे नैकरिपुर्नरेन्द्रसचिवः ख्यातोऽभयोऽप्यपात्मजः ।

दुःखार्तो विधनोऽनृतनोऽनृततरतस्तीक्ष्णश्च कुम्भस्थिते

भौमे भूरिधनात्मजो मृगगते भूपोऽथ वा तत्समः ॥ ७ ॥

निःस्व इति ॥ निःस्वः निर्धनः, क्लेशसहः आपद्धोरः कदर्थनाक्षमः, वनान्तरचरः अरण्यमध्यचारी, केचिदभयो वनचर इति पठन्ति । अभयो भयरहितः, वनान्तरचरोऽरण्यचारी, अल्पदारात्मजोऽल्पकलत्रः अल्पापत्यः एवंविधः सिंहस्थे भौमे जातो भवति । अनेकरिपुः बह्वरिः, नरेन्द्रसचिवः मन्त्री, ख्यातः विदितकीर्तिः, अभयः निर्भयः, अल्पात्मजः स्वल्पापत्यः एवंविधो धन्विमीनस्थे भौमे जातो भवति । दुःखार्तः नित्यं दुःखसन्तप्तः, विधनः दरिद्रः, अटनः परिभ्रमणशीलः, अनृततरतः असत्यभाषी, तीक्ष्णः निरपेक्षः, क्रूरः एवंविधः कुम्भस्थे भौमे जातो भवति । भूरिधनात्मजः प्रभूतधनः, प्रभूतपुत्रः, भूपः राजा, अथवा तत्समः राजतुल्यः, एवंविधो मृगगते मकरस्थे भौमे जातो भवति । इति भौमराशिस्वभावः ॥ ७ ॥

भाषा—जन्मसमय में मंगल यदि सिंह राशि में हो तो जातक निर्धन, क्लेश सहने वाला, जंगल में भ्रमण करने वाला, अल्प स्त्री और अल्प पुत्रवाला होता है । यदि धनु या मीन में मंगल हो तो बहुत अधिक शत्रुवाला, राजा का मन्त्री, विख्यात, निर्भय और थोड़े पुत्रवाला होता है । यदि कुम्भ में मंगल हो तो दुःख से पीड़ित, धनहीन, भ्रमणशील, झूठ बोलनेवाला तथा उग्र स्वभाव का होता है । यदि मकर में मंगल हो तो बहुत धन और बहुत पुत्रवाला राजा या राजा के तुल्य होता है ॥ ७ ॥

अथ मेषवृश्चिकतुलवृषगते बुधे जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

द्युतर्णपानरतनास्तिकचौरनिःस्वाः कुस्त्रीककूटकदसत्यरताः कुजर्चे ।

आचार्यभूरिसुतदारधनार्जनेष्टाः शौक्रे वदान्यगुरुभक्तिरताश्च सौम्ये ॥ ८ ॥

द्यतेति ॥ द्यूतेऽञ्जाने ऋणे परम्बहरणे पाने च निरतः सक्तः, नास्तिकः शास्त्रार्थोदपेतः, तार्किकः नास्ति परलोके मतिर्यस्य स नास्तिकः, चौरस्तस्करः, निःस्वो दरिद्रः, कुस्त्रीकः कुत्सितभार्यः, कूटकृत् कूटकर्ता दाम्भिकः, असत्यनिरतः अनृतभाषी एवंविधा जाताः सौम्ये बुधे भौमर्चे मेषवृश्चिकस्थे भवन्ति । आचार्येत्यादि । आचार्यः उपदेशकर्ता, भूरिसुतः प्रसूतापत्यः, भूरिदारो बहुकलत्रः, धनार्जनमिष्टं अस्य, अथाजने नित्यमुद्यतः, वदान्यः दाता, गुरुभक्तिरताः मातृपितृगुरुणां भक्ताः एवंविधाः पुरुषाः शौक्रे वृषतुलस्थे बुधे जाता भवन्ति ॥ ८ ॥

भाषा—यदि जन्म समय में बुध मेष या वृश्चिक राशि में हो तो जातक जुआड़ी, ऋण करने वाला, मद्यपायी, नास्तिक, चोर, निर्धन, द्रुष्ट स्त्रीवाला, जाल बनाने वाला तथा मिथ्याभाषी होता है । यदि वृष या तुला में बुध हो तो जातक अध्यापक, बहुत पुत्रवाला, बहुत स्त्री और बहुत धनोपार्जन करनेवाला, उदार हृदय और गुरुजन (माता-पिता आदि) का भक्त होता है ॥ ८ ॥

अथ मिथुनकर्कटस्थे बुधे जातस्य स्वरूपमुपेन्द्रवज्रयाह—

विक्रत्यनः शास्त्रकलाविदग्धः प्रियवन्दः सौख्यरतस्तृतीये ।

जलार्जितस्वः स्वजनस्य शत्रुः शशाङ्कजे शीतकर्कटयुक्ते ॥ ६ ॥

विक्रत्यन इति ॥ विक्रत्यनः वाचालः असत्यवादी, शास्त्रकलाविदग्धः शास्त्रे कलासु च गीतवाद्यनृत्यखेलचित्रकर्मसु विदग्धः शिञ्जितः, प्रियवन्दोऽभिमत-
वक्ता, सौख्यरतः सुखासक्तः एवंविधः शशाङ्कजे बुधे तृतीये मिथुनस्थे जातो
भवति । जलार्जित इति । जलार्जितस्वः जलेनोदकेनार्जितं स्वं धनं येन सः ।
केचिद्वलार्जितस्व इति पठन्ति । बलेन वीर्येणार्जितं स्वं धनं येन । स्वजनस्या-
त्मीयजनस्य च बन्धुजनस्य शत्रुः रिपुः एवंविधः शशाङ्कजे बुधे शीतकर्कट-
कर्कटयुक्ते जातो भवति ॥ ६ ॥

भाषा—यदि बुध मिथुन राशि में हो तो जातक अधिक बोलने वाला (वाचाल),
शास्त्रकला जाननेवाला, प्रिय बोलनेवाला और सुखी होता है । यदि कर्क में बुध हो
तो जलोत्पन्न वस्तुओं से धन उपार्जन करने वाला और अपने कुटुम्बों का शत्रु
होता है ॥ ९ ॥

अथ सिंहकन्यागते बुधे जातस्य स्वरूपं प्रहर्षिण्याह—

स्त्रीद्वेष्यो विधनसुखात्मजोऽटनोऽज्ञः स्त्रीलोलः स्वपरिभवोऽर्कराशिगे ज्ञे
त्यागी ज्ञः प्रचुरगुणः सुखी क्षमावान् युक्तिज्ञो विगतभयश्च षष्ठराशौ १०

स्त्रीद्वेष्य इति ॥ स्त्रीणां द्वेष्यः स्त्रीद्वेष्य, विधनसुखात्मजः विधनः धन-
रहितः, विमुखः विगतसुखः, विगतात्मजः पुत्ररहितः, अटनः परिभ्रमणशीलः,
अज्ञः मूर्खः, स्त्रीलोलः वनिताभिलाषी, स्वपरिभवः स्वेषामात्मीयानां सकाशा-
त्परिभवो यस्य एवविधो ज्ञे बुधेऽर्कराशिगे सिंहस्थे जातो भवति । त्यागी
दाता, ज्ञः पण्डितः, प्रचुरगुणः प्रभूतगुणैर्युतः गुणा विद्याशौर्यादयः । सुखी
सुखितः, क्षमावान्सहिष्णुः, युक्तिज्ञः प्रयोगवेत्ता, विगतभयः निर्भयः एवंविधः
षष्ठराशौ कन्यास्थे बुधे जातो भवति ॥ १० ॥

भाषा—यदि बुध सिंह राशि में हो तो जातक स्त्री का शत्रु, धन, सुख और
सन्तानों से हीन भ्रमणशील, मूर्ख, स्त्रीलम्पट (पर-वनिताभिलाषी), अपने जनों से
अनादृत्य होता है । यदि कन्या राशि में बुध हो तो दाता, विद्वान्, अनेक गुणों से युक्त,
सुखी, क्षमाशील, युक्ति को जानने वाला और निडर होता है ॥ १० ॥

अथ मकरकुम्भधनिमीनगते बुधे जातस्य स्वरूपमौपच्छन्दसिकेनाह—

परकर्मकृदस्वशिल्पबुद्धी ऋणवान्विष्टिकरो बुधेऽर्कजर्त्ते ।

नृपसत्कृतपण्डिताप्तवाक्या नवमेऽन्त्ये जितसेवकोऽन्त्यशिल्पः ॥ ११ ॥

परकर्मकृदिति ॥ परकर्मकृत् परद्वेष्यकरः, अस्वः दरिद्रः, शिल्पबुद्धिः
शिल्पकर्मस्वनुरतमतिः, ऋणवान् परस्वग्रहणशालः, विष्टिकरः आज्ञाकरः

एवंविधोऽर्कजर्ज्ञे मकरकुम्भस्थे बुधे जातो भवति । नृपसत्कृतः राजपूजितः नृपसम्मतो वा राजवल्लभः, पण्डितः विद्वान्, आप्तवाक्यः व्यवहारार्थवेत्ता आप्तनृकुलं वाक्यं यस्य एवंविधो नक्षत्रे दन्विस्थिते बुधे जातो भवति । जितसेवकः जिताः सेवका येन परागधनदत्ताः पराभिप्रायदाः, शान्तविरुद्धः नीचशिल्पः एवंविधोऽन्त्ये मीनस्थे बुधे जातो भवति । इति बुधराशिस्वभावः ॥११॥

भाषा—यदि मकर या कुम्भ में बुध हो तो जातक दूसरे का कार्य करने वाला, गरीब, शिल्प कर्म जानने वाला, ऋण लेनेवाला, दूसरे का हुक्म करने वाला होता है । यदि धनु में बुध हो तो जातक राजा से पूजित, पण्डित, अपने अनुकूल बात को जानने वाला (व्यवहारज्ञ) होता है । मीन में बुध हो तो सेवक को जीतने (वश में करने) वाला और निन्द्य कर्म करने वाला होता है ॥ ११ ॥

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलमिथुनकन्यागते जीवे जातस्य स्वरूपं शार्दूल-
विक्रीडितेनाह—

सेनानीर्बहुवित्तदारतनयो दाता सुभृत्यः क्षमी
तेजोदारगुणान्वितः सुगुरौ ख्यातः पुमान्कौजभे ।
कल्पाङ्गः सधनार्थमित्रतनयस्त्यागी प्रियः शौक्रभे
बौधे भूरिपरिच्छदात्मजसुहृत्साचिव्ययुक्तः सुखी ॥ १२ ॥

सेनानीरिति ॥ सेनानीः सेनानायकः, बहुवित्तः प्रभूतधनः, बहुदारः प्रभूतकलाः, बहुतनयः प्रभूतापत्यः, दाता दानशीलः, सुभृत्यः शोभनभृत्यः, क्षमी क्षमावान्, तेजसा कान्त्या दारगुणैः कलत्रसौख्यैरन्वितो युक्तः, ख्यातः प्रख्यातकीर्तिः एवंविधः सुगुरौ जीवे कौजे कुजभे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकस्थे जातो भवति । कल्पाङ्गः स्वस्थदेहः, सधनार्थः सधनः, समित्रः ससहृत्, सतनयः पुत्रान्वितः, सुखधनमित्रपुत्रयुक्तः, त्यागी दाता, प्रियः सर्वजनवल्लभः एवंविधः शौक्रभे शुक्रक्षेत्रस्थे जीवे जातो भवति । बौधे इत्यादि । भूरि-परिच्छदः बहुवस्त्रगृहपरिवारः, भूर्यात्मजः बहुपुत्रः, भूरिसहृत् प्रभूतमित्रः, साचिव्ये सन्निवृत्ते नियुक्तः सचिवस्य भावः साचिव्यं सुखितः एवंविधो बौधे बुधक्षेत्रे मिथुनकन्यास्थे जीवे जातो भवति ॥ १२ ॥

भाषा—मेष या, वृश्चिक में गुरु हो जातक सेनापति, बहुत धन, बहुत स्त्री और बहुत पुत्रवाला, दाता, अच्छे नौकरवाला, क्षमावान्, कान्ति और स्त्री सुख से युक्त, विख्यात पुरुष होता है । यदि गुरु वृष या तुला में हो तो जातक मजबूत देह-वाला, धनी, सुख, मित्र और पुत्र से युक्त, दाता और सर्वजन-प्रिय होता है । यदि मिथुन या कन्या में गुरु हो तो अनेक वस्त्रों से युत, बहुत पुत्र और मित्रों से युक्त, राक्षसपुत्री और सुखी होता है ॥ १२ ॥

अथ कर्कटसिंहधन्विमोनकुम्भमकरस्थे जीवे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

चान्द्रे रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखैरन्वितः

सिंहे स्याद्बलनायकः सुरगुरौ प्रोक्तं च यच्चन्द्रमे ।

स्वर्द्धे माण्डलिको नरेन्द्रसचिवः सेनापतिर्वा धनी

कुम्भे कर्कटवत्फलानि मकरे नीचोऽल्पवित्तोऽसुखी ॥ १३ ॥

चान्द्र इति ॥ रत्नानि मणयः, सुताः पुत्राः, स्वं धनं, दाराः कलत्रं, विभव ऐश्वर्यं, प्रज्ञा मेधा, सुखं सुखभावः एतैरन्वितः संयुक्तः एवंविधः चान्द्रे चन्द्रक्षेत्रे कर्कटस्थे सुरगुरौ जीवे जाता भवति । बलनायकः सेनाप्रधानः अन्यच्च यच्चन्द्रमे कर्कटस्थे उक्तं रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखैरन्वितः एवंविधः सिंहस्थे जीवे स्याद्भवेत् । माण्डलिकः मण्डलाधिपतिः सेनानाथो वा, अथवा धनी वित्तवान् एवंविधः स्वर्द्धे श्वराशौ धन्विमीनस्थे जीवे जातो भवति । कुम्भे कर्कटवदिति । यानि कर्कटस्थे जीवे फलान्यभिहितानि रत्नसुतस्वदारविभवप्रज्ञासुखरन्वित इत्येतानि कुम्भस्थे गुरौ भवन्ति । अत्रान्येन सह मतभेदः । तैरानिष्टं फलमविहितम् । तथा च । नीचः कुम्भे जनयति कर्मणि तोयाश्रये सक्तम् । नीचः कुलानुचिताधर्मकर्मकृत्, अल्पवित्तः स्तोकार्थः, असुखी दुःखितः एवंविधो मकरस्थे जीवे जातो भवति । इति बृहस्पतिराशिस्वभावः ॥ १३ ॥

भाषा—कर्क में बृहस्पति हो तो जातक रत्न, पुत्र, धन, स्त्री, ऐश्वर्य, बुद्धि और सर्व सुखों से युक्त होता है । सिंह में गुरु हो तो कर्क के जो फल कहे गये हैं, वे सब तथा सेनापति होता है । धनु या मीन में गुरु हो तो मण्डलाधीश (प्रान्तपति), राजमन्त्री, सेनापति वा धनी होता है । कुम्भ में गुरु हो तो कर्क के समान सब फल समझना । यदि मकर में बृहस्पति हो तो नीच, धनहीन और दुःखी होता है ॥ १३ ॥

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलगते शुक्रे जातस्य स्वरूपं पुष्पिताश्याऽऽह—

परयुवतिरतस्तदर्थवादैर्हृतविभवः कुलपांसनः कुजर्धे ।

स्वबलमतिधनो नरेन्द्रपूज्यः स्वजनविभुः प्रथितोऽभयः सिते स्वे । १४ ।

परेति ॥ परयुवतिरतः परस्त्रीषु सक्तः, तदर्थवादैस्तासां परस्त्रीणामर्थवादैरपराधानुवचनैः इतविभवोऽपहृतार्थः, कुलपांसनः कुलकलङ्कभूतः एवंविधः सिते शुक्रे कुजर्धे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकस्थे जातो भवति । स्वबलेत्यादि । स्वबलेनात्मवायण स्वमत्या आत्मीयबुद्ध्या च धनं यस्यासौ स्वबलमतिधनः नरेन्द्रपूज्यः राजबल्लभः, स्वजनविभुः बन्धुप्रधानः, प्रथितः विख्यातः, अभयः निभयः, एवंविधः स्वे स्वक्षेत्रे वृषतुलास्थे सिते शुक्रे जातो भवति ॥ १४ ॥

भाषा—यदि शुक्र मेरु या वृश्चिक में हो तो वह जातक परन्धीयामी, तथा उसी अपवाद में धनी और कुल को कलङ्कित करवाना होता है । यदि शुक्र अपने घर (बुध या तुल्य) में हो तो अपने वह वृद्धि में धन कमाने वाला, राजनीत्य, अपने कुटुम्ब में श्रेष्ठ, विख्यात और निभेय होता है ॥ १४ ॥

अथ मिथुनकन्यामकरकुम्भस्थे शुके जातस्य स्वरूपसौपन्त्यन्दसिकेवाह—
नृपकृत्यकरोऽर्थवान्कलाविन्मिथुने पट्टगतेऽतिनीचकर्मा ।

रविजर्जगतेऽमरारिपूज्ये सुभगः स्त्रीविजितो रतः कुनार्याम् ॥ १५ ॥

नृपेति ॥ नृपकृत्यकरः राजकर्मकर्ता, अर्थवान् धनी, कलावित् कलाज्ञः गीतवाद्यादिकवेत्ता एवंविधोऽमरारिपूज्ये दैत्यगुरौ शुके मिथुनस्थे जातो भवति । पट्टगते कन्यास्थे शुकेऽतिनीचकर्मा कष्टकार्यकरो जातो भवति । सुभगः सर्वजनप्रियः, स्त्रीविजितः प्रमदावशगः, कुनार्यां कुतिसतस्त्रियां रतः सक्तः एवंविधः शुके रविजर्जगते मकरकुम्भस्थे जातो भवति ॥ १५ ॥

भाषा—शुक्र यदि मिथुन में हो तो राजकार्य करने वाला, धनवान तथा कला-विज्ञ होता है । यदि कन्या राशि में शुक्र हो तो वह जातक अत्यन्त निन्द्यकर्म करने वाला होता है । मकर या कुम्भ में शुक्र हो तो सुन्दर (सर्वप्रिय) स्त्री के वश में रहने वाला तथा कुचाल वाली स्त्री में आसक्त होता है ॥ १५ ॥

अथ कर्कटसिंहधन्विमीनस्थे शुके जातस्य स्वरूपं शिखरिएयाह—

द्विभार्योऽर्थी भोरुः प्रबलमदमशोकश्च शशिमे

हरौ योषामार्थः प्रवरयुवतिर्मन्दतनयः ।

गुणैः पूज्यः सस्वस्तुरगसहिते दानवगुरौ

ऋषे विद्वानाढ्यो नृपजनितपूजोऽतिसुभगः ॥ १६ ॥

द्विभार्य इति ॥ द्विभार्यः द्विस्त्रीकः, अर्थी याश्चापरः, भोरुः सभयः, प्रबलमदम-दोऽतिदृप्तः, प्रबलशोकोऽतिदुःखितः एवंविधो दानवगुरौ दैत्यपूज्ये शुके शशिमे कर्कटस्थे जातो भवति । योषामार्थः स्त्रीप्राप्तधनः, प्रवरयुवतिः प्रधान-स्त्रीकः, मन्दतनयः अल्पपत्यः एवंविधो हरौ सिंहस्थे शुके जातो भवति । गुणैः पूज्यः मान्यः, सस्वः सधनः एवंविधस्तुरगसहिते धन्विस्थे दानवगुरौ शुके जातो भवति । विद्वान्पण्डितः, आढ्यः ईश्वरः, नृपजनितपूजः नृपेण राजा जनितोत्पादिता पूजाऽर्हणं यस्य । अतिसुभगः सर्वजनानामतिवल्लभः एवंविधो ऋषे मीनस्थे शुके जातो भवति । इति शुक्रराशिस्वभावः ॥ १६ ॥

भाषा—यदि शुक्र कर्क में हो तो जातक दो स्त्री वाला, याचक, सभय, विशेष-मद (गर्व) वाला और प्रबल शोक युक्त होता है । सिंह में शुक्र हो तो स्त्री के वश में रहनेवाला और अल्प सन्तानवाला होता है । धनु में शुक्र हो तो बहुपूजित और

घनवान् होता है । यदि शुक्र मीन राशि में हो तो जातक विद्वान्, घनवान्, राजा का मान्य और सर्वजनप्रिय होता है ॥ १६ ॥

अथ मेषवृश्चिकमिथुनकन्यागते सौरे जातस्य स्वरूपं वसंततिलकेनाह—

**मूर्खोऽटनः कपटवान्विसुहृद्यमेऽजे कोटे तु बन्धवधभाक् चपलोऽघृणश्च ।
निर्होमुखार्थतनयः स्वलितश्च लेख्ये रक्षः पतिर्भवति मुख्यपतिश्च बौधे १७**

मूर्ख इति ! मूर्खोऽज्ञानोपेतः, अटनः परिभ्रमणशीलः, कपटवान् दांभिकः, विसुहृन् मित्ररहितः एवंविधो यमे सौरे अजे मेषस्थे जातो भवति । बन्धवधभाक् बंधा बंधनं, बन्धस्ताडनं बंधवधौ भजेतम्, चपलः क्रियास्वनवस्थितः, अघृणः निर्दयः एवंविधः कोटे वृश्चिकस्थे जातो भवति । निर्होमुखार्थतनयः निर्गता हर्लज्जा यस्य स निर्लज्जः, निर्मुखो दुःखितः, निरर्थो दरिद्रः, निस्तनयः पुत्ररहितः, लेख्ये आलेख्यकर्मणि स्वलितः अज्ञः, रक्षः पतिर्भवत्या-
रक्षकः मुख्यपतिः प्रधाननाथः एवंविधो बौधे बुधक्षेत्रे मिथुनकन्यास्थे सौरे जातो भवति ॥ १७ ॥

भाषा—यदि शनि मेषराशि में हो तो जातक मूर्ख, भ्रमणशील, कपटी, और मित्रों से रहित होता है । वृश्चिक में शनि हो तो बन्धन और वध का भागी, चञ्चल और निर्दय होता है । यदि मिथुन या कन्या में शनि हो तो निर्लज्ज, सुखहीन, लेखकर्म से अनभिज्ञ, रक्षक (द्वारपाल) या प्रधानपति (मुख्य रक्षक) होता है ॥ १७ ॥

अथ वृषतुलाकर्कटसिंहस्थे सौरे जातस्य स्वरूपं मन्दाक्रान्तयाह—

**वर्ज्यस्त्रीष्टो न बहुविभवो भूरिभार्यो वृषस्थे
ख्यातः स्वोच्चे गणपुरबलग्रामपूज्योऽर्थवांश्च ।
कर्किण्यस्वो विकलदशनो मारुहीनोऽसुतोऽज्ञः
सिंहेऽनार्यो विसुखतनयो विशिक्तसूर्यपुत्रे ॥ १८ ॥**

वर्ज्येति । वर्ज्यास्वगम्यासु स्त्रीषु योषित्सु इष्टः वल्लभः, न बहुविभवः न प्रभूतैश्वर्ययुक्तः अल्पैश्वर्ययुक्तः, भूरिभार्यः प्रभूतदारः एवंविधो वृषस्थे सूर्यपुत्रे शनैश्चरे जातो भवति । ख्यातः विदितकीर्तिः, गणानां समूहानां पुराणां नगराणां बलानां सैन्यानां ग्रामाणां च पूज्यो मान्यः, अर्थवान्सञ्जनः एवंविधः स्वोच्चराशौ तुलास्थे सौरे जातो भवति । अस्वः दरिद्रः, विकलदशनः अल्पदन्तः, मारुहीनः जननीवियुक्तः, असुतः पुत्ररहितः, अज्ञः मूर्खः एवंविधः कर्कटस्थे सौरे जातो भवति । सिंहेऽनार्य इति । अनार्यः मूर्खः, विसुखो दुःखितः, वितनयः पुत्ररहितः, विशिक्तद्धारवाहकः एवंविधः सिंहस्थे सूर्यपुत्रे शनैश्चरे जातो भवति ॥ १८ ॥

भाषा—यदि वृषराशि में शनि हो तो वह जातक अगम्या स्त्री का प्रेमी, अल्प

घनवान, बहुत स्त्रियों का पति होता है। तुला में शनि हो तो जातक विख्यात जनसमूह में, नगर में, सेना में, या गाँव में अप्रगण्य और घनवान होता है। कर्क में शनि हो तो घनहीन, अल्प दाँत वाला या दाँत का रोगी, मानहीन, पुत्रहीन और मूर्ख होता है। सिंह में शनि हो तो विचारहीन, दुःखी, पुत्रहीन और भारवाही होता है ॥ १८ ॥

अथ धन्विमीनमकरकुम्भगते सौरे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडिनेनाह—

स्वन्तः प्रत्ययितो नरेन्द्रभवने सत्पुत्रजायाधनो

जीवक्षेत्रगतेऽर्कजे पुग्वलग्रामाग्रनेताऽथ वा ।

अन्यस्त्रोधनसंवृतः पुरवलग्रामाग्रणीर्मन्ददृक्

स्वक्षेत्रे मलिनः स्थिरार्थविभवां भोक्ता च जातः पुमान् ॥१९॥

स्वन्तरिति । स्वन्तः शोभनेऽतः पर्यन्तो यस्य स स्वन्तः शुभेन कर्मणा तस्य मृत्युर्भवति । अथवाऽन्ते शोभनं सुखादिकं यस्य । नरेन्द्रभवने राजगृहे प्रत्ययितः संज्ञातप्रत्ययः, सत्पुत्रः शोभनापत्यः, सज्जायः शोभनभायः, सद्धनः सद्धितः, पुग्वलग्रामाग्रनेता पुग्वलां नगराणां बलमय सेनायाः प्रमाणां च अग्रनेता प्रधानो नायकः एवंविधोर्कजे सौरे जीवक्षेत्रे धन्विमीनस्थे जातो भवति । अन्यस्त्रोधनसंवृतः परयाषिद्धिः परधनैश्च संवृतः संयुक्तः, पुरवल-ग्रामाग्रणीः पुराणां बलानां ग्रामाणां च अग्रणीः प्रधाननायकः, मन्ददृगल्प-चक्षुः, मलिनः मलोपेतः स्नानालसः, स्थिरार्थः स्थिरचित्तः, स्थिरविभवः स्थिरै-श्वर्यः, भोक्ता असञ्चयशीलः एवंविधः पुमान् पुरुषः स्वक्षेत्रे मकरकुम्भस्थे सौरे जातो भवति । इति शनैश्चरराशिस्वभावः । एतेषु सर्वेषु ग्रहराशिस्व-भावेषु बलवति राशौ तदधिपतौ च तस्मिन् ग्रहे बलवति जातस्य यथोक्तं राशिस्वरूपं भवति । द्वयेकयोश्च बलवतोर्मध्ये समानमिति । न कस्मिन्श्चिद्बल-वति न किञ्चिदिति ॥ १९ ॥

भाषा—शनि घन या मीन में हो तो जातक अन्त में सुख पाने वाला, राजगृह में विश्वासपात्र, सत्पुत्र, सुन्दरी स्त्री वाला, विपुल धन सम्पन्न, अथवा शहर, सेना या ग्राम का मुखिया होता है। यदि मकर या कुम्भ में शनि हो तो परस्त्री और परधन से युक्त, नगर, सेना या ग्राम का अधिपति, मन्द ज्योति आँख वाला, मलिन, स्थिर धन ऐश्वर्य वाला और भोगी होता है ॥ १९ ॥

अथ मेषादिषु लग्नेषु चन्द्राक्रान्तराशुक्तस्वरूपातिदेशं पुष्पिताग्याह—

शिशिरकरसमागमेक्षणां सदृशफलं प्रवदन्ति लग्नजातम् ।

फलमधिकमिदं यदत्र भावाद्भवनभनाथगुणैर्विचिन्तनीयाः ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके राशि-

शीलाध्यायोऽष्टादशः ॥ १८ ॥

शिशिरेति ॥ शिशिरकरश्चन्द्रमास्तस्य राशिभिः सह समागमे यत्स्वरूप
वृत्ताताम्रदृगित्यादिकं तन्मेघलम्बजातस्यापि वक्तव्यम् । एवमन्येष्वपि रा
वृषादिषु स्थिते चन्द्रमसि यदुक्तं तल्लम्बजातस्यापि वक्तव्यम् । यतो मु
सदृशं फलं वदन्ति कथयन्ति । स्वरूपभेदाभावात् । तथा च सत्यः—

“मेघविलम्बे कुनखी सरोषणो भेदकृत्स्वलितवाक्यः ।
पित्तानिलभूयिष्ठः कृष्णोऽतिबहुव्यथश्चैव ॥
रहितो बाल्ये गुरुभिर्मन्दसुतः स्वजनसहजहितकर्ता ।
धर्मस्थितौ विदेशोपगच्छ कर्मारभत्यफलम् ॥
नीचां वा पिशुनां वा विकलां लभतेऽन्यपूर्विकां भार्याम् ।
सहजसमान्यपि मित्राणि चास्य बन्धुत्वमुपयाति ॥
शस्त्रेण वा विषैर्वा मरणं पित्तोद्भवैर्विकारैर्वा ।
स्वात्पक्षाज्ज्वलनाद्वा वर्षाद्दुर्गात्प्रपतनाद्वा ॥
वृषभविलम्बे स्थूलोष्ठगण्डनासो महाललाटश्च ।
श्लेष्मानिलभूयिष्ठस्त्यागी बहुशो व्ययस्त्वश्च ॥
कन्याप्रजोऽल्पपुत्रः पितुर्जनन्याश्च दोषकृद्बहुशः ।
कर्मणि सततं सक्तो विधर्मयुक्तीऽर्यभाक् चैव ॥
नित्यं कलत्रकांक्षी शस्त्रत्रिधाती सदा स्वजनहर्ता ।
मृत्युः शस्त्रैः पाशैर्मृगैश्च लभतेऽन्यदेशेषु ॥
देहश्रमैर्जलैर्वा मूलैर्वाऽप्यटननिरसनैश्चैव ।
पुरुषश्चतुष्पदैर्वा बलान्वितान्मृत्युमुपयाति ॥
पूर्वविलम्बे मिथुने हीनांगः सूयतेऽधिकांगो वा ।
प्रियवाग्विशिष्टकर्मा मिश्रप्रकृतिर्द्विजननीकः ॥
अल्पमतिरल्पकायः सतां च महितो गुरुणां च ।
अल्पसहजोऽल्पचेष्टः परावमर्दो गुणयुतश्च ॥
कर्मसु बहुष्वभिरतो धर्मं साधयति न चाथ धर्मेण ।
प्राप्ताङ्गान्विविधान्दोषैस्तैस्तैश्च नाशयति ॥
बह्वीः पत्नीर्लभते रोगांश्च दारुणाञ्जयति ।
व्यालाद्विषान्मृगाद्वाऽप्युदकाद्वा मृत्युमुपयाति ॥
कर्किणि पूर्वविलम्बे नैकाग्रो गुह्यरोगवान् भीरुः ।
उरसिकृताभिज्ञानः कफानिलात्मा दृढमाही ॥
पापानहितात्मजते परस्वमपि निक्षिपद्व्ययेन सकृत् ।
स्वजनादप्यः स्वजनैर्विभर्त्सितो ह्यस्थिरप्रसवः ॥
तीक्ष्णं कर्म विदेशे नित्यं ह्यर्द्धोदितः परस्वामी ।
असदृशदारो रिपुनिर्जितश्च पूज्यः समूहानाम् ॥

कंठादीनामृज्ज्वा रक्तोदयादन्विभंजनाद्देदात् ।
 देहच्छेदादथ श जलाजगान्मृत्युमप्राप्ति ॥
 मिह्विलगने कठिनः प्रियमांसः पित्तोको विततनासः ।
 बह्वरंभकुटुंबः कुरणस्त्वय्यंजनः ख्यातः ॥
 सद्जविषादी स्वजनस्य घातको विक्रमैः स्वकैर्युक्तः ।
 अविषादो कमेकरो विविधोपायैस्त्वधर्मिष्ठः ॥
 भार्या बह्वर्लभते विद्याद्विविधाः कुलरुपताश्च ।
 कटथां रुजश्च बहुशो जन्वार्दशनेषु चाप्राप्ति ॥
 मृत्युः शस्त्रेः पापैर्विषैश्च काष्ठैरथामयैश्चापि ।
 अंशुचरैर्वा सत्त्वैर्वुभुक्षया ह्यसमुपयाति ॥
 षष्ठविलगने प्रियवाक् तनुच्छावर्दीर्घकरचरणः ।
 मिश्रप्रकृतिश्चार्याकृतिर्ब्रह्मी चार्थवान् कृपणः ॥
 स्वजनस्येष्टः कन्याबहुप्रजो भ्रातृभिर्विरुद्धश्च ।
 धर्मप्रियोऽल्पलाभः कर्मणि निपुणः समाचरति ॥
 विविधाश्चतुष्पदगणाच्छ्रद्धात् पित्तोद्भवाद्भोगात् ।
 शोकात्संपाताद्वा मृत्युं चाप्रति पाशाद्वा ॥
 सप्तमराशौ लग्ने विषमांगः सूयते विषमशीलः ।
 कफवातिकः सुचपलो ह्रस्वग्रीवः कृतघ्नश्च ॥
 अर्थान्विपुलल्लभते व्ययेन सपूज्यते यशः प्रायः ।
 गुरुसेवायां निरतः पितान्प्रजनसहजजनपूज्यः ॥
 अध्वरुचिर्धर्मिष्ठो विनाशमायाति पीडनैः स्वैः स्वैः ।
 मृतभार्यः कलहरुचिर्वहुशः शोकादिभिः क्लिष्टः ॥
 मृत्युः ख्यातात्पुरुषात्स्वजनस्सौम्याश्चतुष्पदाद्वापि ।
 खेदाच्च विप्रयोगादुपवासान्मार्गयोगाद्वा ॥
 अष्टमराशौ लग्ने विशालरज्ज्वाननोदरः क्रूरः ।
 पित्तप्रकृतिः पिङ्गेक्षणो मृदुद्रुतगतिः परस्वामी ॥
 स्फीतकुटुम्बस्वजनोऽन्तकश्च बहुव्ययो बहुप्रसवः ।
 सुखरहितो भ्रातृभ्यां वृषसेवी धमहीनश्च ॥
 भार्यानिमित्ताविमुखी शत्रोरर्थान्न ददाति बहुशश्च ।
 स्वकुलोद्भूतांश्छत्रल्लभते रागांश्च नैकविधान् ॥
 गात्रच्छेदैः शत्रोर्वशं गतो बन्धनैः प्रहारैश्च ।
 रोगैर्वा पापकृतैर्ज्वलनाद्वा मृत्युमुपयाति ॥
 स्थूलोष्ठदशननासा नवमे लग्ने कफानिलप्रकृतः ।
 मांसलगुह्योरुभुजः कुनखी कर्मोद्यतः शूरः ॥

बुद्रात्रीचान्भजते चौर्यादनलान्नुपाच्च नष्टधनः ।
 विज्ञानानां प्रसवो बहुपूज्यो भ्रातृघातरुचिः ॥
 कर्मविदेशेष्विष्टः कुरुते वित्तानि चार्हति नृपेभ्यः ।
 धर्मे तु मध्यमगतिर्दारैश्च विरोधमुपयाति ॥
 रोगान्वदने लभते चतुष्पदाच्चात्मनः समाप्नोति ।
 मृत्युं विलेशयाद्वा नृपाच्च बन्धाज्जनाद्वापि ॥
 दशमविलग्ने तनुनासिकापुटो दीर्घवक्त्रकरचरणः ।
 वाय्वात्मको मृगास्यो भीरुश्चपलोऽथ बन्धनभाक् ॥
 बुद्रकुटुम्बोऽल्पधनः कृपणः कन्याप्रजो मृतस्वजनः ।
 सहजसमृद्धः शौर्यान्तृयादरण्याच्च लब्धधनः ॥
 उपवासव्रतशोभो नीचामिष्टमवाप्नुयाद्धार्याम् ।
 बहुविग्रहोऽल्पकेशो दुर्बलजानुश्च रागार्तः ॥
 बालादनिलाच्छ्रान्तृपाद्विषात्प्रपतनाद्गजाद्वापि ।
 पित्तोदयादजीर्णान्म्रियते वा मार्गेष्विष्टः ॥
 एकादशे विलग्ने स्तब्धः क्रूरः कुलाग्रजः पुरुषः ।
 पित्तानिलभूयिष्ठस्तिलपुष्पसमाननासश्च ॥
 प्राप्तान्नाशयतेऽर्थान् बहुभृत्यः साध्यते व्ययश्चापि ।
 क्षीणः स्वगोत्रगुरुजनपरपक्षमुहृत्स्वजनशत्रुः ॥
 कमणि पापे सक्तस्तनुश्च कान्तानवाप्नुयात्लाभान् ।
 धर्मध्वजप्रवृत्तौ दैवतपूजश्च कारयति भार्याम् ॥
 विग्रहशीलां लभते विविधान् रोगान्कफोद्भवानुरसि ।
 म्रियते च जठररोगाद्वमनात्क्षीणां प्रयोगाद्वा ॥
 द्वादशगे प्राग्लग्ने स्थूलोष्ठो मोनहृक् महानासः ।
 कफवातिको महात्मा त्वग्दोषो नैकमतिचेष्टः ॥
 शिष्टायव्ययभृत्यैः स्वजनस्त्रीपूत्रितः सहजनाथः ।
 कर्मणि धर्मे युक्तः पित्रापचयः सुदारश्च ॥
 नीचाचारां भार्या लभते च रिपून्सुदारुणान् क्रूरान् ॥
 रोगात्सशोणितादानुयाद्भयं व्यालसिहेभ्यः ॥
 मृत्युं पुरुषैर्गणवृन्दपूजितैर्गुह्यजैर्विकारैर्वा ।
 विद्यौपधप्रयोगादुपवासान्मार्गदोषाद्वा ॥”

एवं शिशिरकरसमागमसदृशं लग्नजातं फलम् । तथा च । शिशिरकरा-
 श्रितराशिरीक्षणं दृष्टिफलं वक्ष्यमाणं तथा तदेव तल्लग्नजातस्यापि वक्तव्यम् ।
 चन्द्रे भूपबुधावित्यादि । किन्तु लग्ने फलमपि किमिदम् । यदत्र भाव इति
 चन्द्रराशित इदमत्र लग्नादिषु भावेष्वधिकं फलं यद्वावास्तन्वादयः । भवन-
 गुणैः राशिगुणैर्भवननाथगुणैस्तत्त्वामिगुणैर्विचिन्तनीयाः विचार्याः । भवन-

भनाथयोर्गुणः सबलत्वम् । एतदुक्तं भवति । लग्ने बलवति लग्नपतौ च बलवति जातस्य शरीरपुष्टिर्वक्तव्या । लग्नाद्द्वितीयराशौ बलवति तदधिपतौ च बलवति जातस्य धनसमृद्धिर्वक्तव्या : एवं शेषराशिबले तदधिपबले च जातस्य भ्रात्रादीनां वृद्धिर्वक्तव्या । तथापि किञ्चिद्विशेषः कथयति । विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु इत्यादि । एवं तन्वादिस्थेषु राशिष्वबलवत्सु तदधिपेष्वबलवत्सु च भावहानिर्वक्तव्या । भवनभनाथयोः यद्येको बलवान् भवति तदा मध्यस्था भाववृद्धिर्वाच्येति । तथा च यवनेश्वरः—

“भावेशभावस्थखगस्वभावप्रधानमध्याधमदर्शनाद्यैः ।

तद्भावसम्पत्तिविपत्त्युपायैर्नैर्याणिकं पाकमुपैति पुंसाम् ॥” ॥ २० ॥

इति श्रीभट्टोत्तरलग्नविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ राशिशीला-

ध्यायोऽष्टादशः ॥ १८ ॥

भाषा—मेषादि राशियों में चन्द्र के योग और दृष्टि के जो-जो फल कहे गये हैं उनके समान ही मेषादि लग्नों के फल होते हैं । किन्तु लग्न में इतनी विशेषता है कि लग्नादि भावों की राशि और राशियों के स्वामी के गुणों के अनुसार भावों के फल होते हैं ।

जैसे—मेषराशिस्थ चन्द्र के जो फल पूर्व “वृत्ताताम्रदृग्” इत्यादि तथा आगे “चन्द्रे भूपबुधौ” इत्यादि दृष्टिफल जो कहे गये हैं वे मेषलग्न के भी समझने चाहिये । भावफल में विशेषता यह है कि—जिस भाव की राशि और राशि स्वामी दोनों बली हों तो उस भाव की पूर्ण वृद्धि, एक बली हो तो मध्यम, दोनों निर्बल हों तो भाव की हानि, तथा ६, ८, १२ भाव में विपरीत होते हैं ॥ २० ॥

अथ दृष्टिफलाध्यायः १६ ।

अथातो दृष्टिफलाध्यायो व्याख्यायते । तत्र एवं मेषवृषि मिथुनकर्कटस्थे चन्द्रे भौमाद्यैर्ग्रहैः दृश्यमाने जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

चन्द्रे भूपबुधौ नृपोपमगुणी स्तेनोऽधनश्चाजगे

निःस्वः स्तेननृमान्यभूपधनिनः प्रेण्यः कुजाद्यैर्गवि ।

नृस्थेऽयोव्यवहारिपार्थिवबुधाभीस्तन्तुवायोऽधनः

स्वर्त्तं योद्धृकविज्ञभूमिपतयोऽयोजोविद्वगोगिणौ ॥ १ ॥

चन्द्रे भूपबुधाविति ॥ कुजाद्या भौमादयः भौमबुधबृहस्पतिशुक्रशनिश्च-
रार्काः तत्राजगे मेषस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टे जातो भूपो राजा भवति । बुधदृष्टे बुधः पण्डितः, जीवदृष्टे नृपोपमः राजतुल्यः, शुक्रदृष्टे गुणी गुणवान् भवति । केचिद्वर्णिगिति पठन्ति । शनिश्चरदृष्टे स्तेनश्चौरः, सूर्यदृष्टेऽधनः दरिद्र इति । एवमपि मेषलग्ने भौमादिदृष्टे फलं वाच्यम् । गविस्थेति । गवि वृषस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टे जातो निःस्वः दरिद्रः भवति । बुधदृष्टे स्तेनश्चौरः, जीवदृष्टे नृमान्यः

नृणां मान्यः पूज्यः, केचिन्नृपाह्य इति पठन्ति । नृपाह्यः नृपो राजा धनाह्यः ईश्वरः, शुक्रदृष्टे भूपः राजा, सौरदृष्टे धना धनवान्, सूर्यदृष्टे प्रेम्णः दासः । एवं वृषलग्नेऽपि । नृस्थे मिथुनस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टेऽयोध्यावहारी शस्त्र-विक्रयः, बुधदृष्टे पार्थिवः राजा, जीवदृष्टे बुधः पण्डितः, शुक्रदृष्टेऽभीः निर्भयः धीरः भयरहितः, सौरदृष्टे तन्तुवायः, रविदृष्टेऽध्वजः हरिद्रः । एवं मिथुनलग्नेऽपि । स्वर्णे कर्कटस्थे चन्द्रमसि भौमदृष्टे योद्धा भवति युद्धकुशलः, बुधदृष्टे कविः काव्यकर्त्ता, जीवदृष्टे ज्ञः पण्डितः, शुक्रदृष्टे भूमिपतिः राजा, सौरदृष्टेऽयोजीवी आयुधजीवी शस्त्रोपजीवी, सूर्यदृष्टे द्रुमो गी चक्षुर्व्याध्यर्दितः । एवं कर्कटलग्नेऽपि ॥ १ ॥

भाषा—यदि मेष में चन्द्र हो और मंगल आदि ग्रहों से देखा जाता हो तो जातक क्रम से राजा, पण्डित, राजा के तुल्य, गुणवान्, चोर और निर्धन होता है । अर्थात् मंगल की दृष्टि से राजा, बुध की दृष्टि से पण्डित, गुरु की दृष्टि से राजा के तुल्य (मन्त्री आदि), शुक्र की दृष्टि से गुणी, शनि की दृष्टि से चोर और सूर्य की दृष्टि से निर्धन, इसी प्रकार आगे राशि में भी ग्रह का क्रम समझना चाहिए । तथा वृष में चन्द्र हो और उस पर यदि मंगल आदि ग्रह की दृष्टि हो तो क्रम से निर्धन, चोर, लोक में मान्य, राजा, धनवान् और भृत्य होता है । मिथुनस्थ चन्द्रमा पर मंगल आदि की दृष्टि हो तो क्रम से—लोहार, राजा, पण्डित, निर्भय, कपड़ा बनानेवाला और निर्धन होता है । कर्कस्थ चन्द्रमा पर मंगल आदि की दृष्टि हो तो जानक क्रम से योद्धा, कवि, पण्डित, राजा, लोहे का व्यापारी और नेत्र रोगी होता है ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—मेष आदि-आदि लग्न में भी मंगल आदि की दृष्टि से ये ही फल समझने चाहिए ॥ १ ॥

अथ सिंहकन्यातुलावृश्चिकस्थे चन्द्रे बुधादिदृष्टे जातस्य स्वरूपं शार्दूल-विक्रीडितेनाह—

ज्योतिर्ज्ञाद्विनरेन्द्रनापितनृपचमेशा बुधाद्यैर्हरौ

तद्वद्भूपचमूपनैपुण्युताः षष्ठेऽशुभैः स्त्र्याश्रयः ।

जूके भूपसुवर्णकारवणिजः शेषेचित्ते नैकृती

कीटे युग्मपिता नतश्च रजको व्यङ्गोऽधनो भूपतिः ॥ २ ॥

ज्योतिरिति ॥ बुधादयः बुधगुरुशुक्रशनिः सूर्यभौमाः हरिः सिंहस्तस्मिन् हरौ सिंहस्थे चन्द्रे बुधदृष्टे ज्योतिर्ज्ञः ज्योतिः शास्त्रार्थवेत्ता, जीवदृष्टे आह्वयः ईश्वरः, शुक्रदृष्टे नरेन्द्रो राजा, सौरदृष्टे नापितः, रविदृष्टे नृपः राजा, भौमदृष्टे ध्वमेशः भूपतिः । एवं सिंहलग्नेऽपि । तद्वदित्यादि । तद्वद्बुधादिभिर्दृष्टे इत्यनुवर्तते सर्वत्र । षष्ठे कन्यागते चन्द्रे बुधदृष्टे भूपः राजा, जीवदृष्टे चमूपः सेनापतिः, शुक्रदृष्टे नैपुण्युतः सर्वकार्येषु सूक्ष्मदृष्टिः, अशुभैः सौररविभौमै-

दृष्टे स्त्रियाश्रयो भवति । स्त्रियमाश्रित्य जीवतीत्यर्थः । एवं कन्यालग्नेऽपि । जूके तुलास्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे भूपो राजा भवति । जीवदृष्टे सुवर्णकारः, शुक्रदृष्टे बणिक् कथविक्रयज्ञः, शेषाः सौरसूर्यभौमाः एतैः दृष्टे नैकृता निवृत्तः प्राणिघातकः । एवं तुलालग्नोऽपि । कीटे वृश्चिकस्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे युग्मपिता युग्मस्य जनकः द्वयोः पिता जातो भवति जात एव युग्मपिता । द्विपितृक इति केचित्पठन्ति । जीवदृष्टे नतः प्रह्वः, शुक्रदृष्टे रजकः वस्त्ररागकृत्, सौरदृष्टे व्यङ्गोऽङ्गहीनः, सूर्यदृष्टेऽधनः दरिद्रः, भौमदृष्टे भूपतिः राजा । एवमेतैरेव दृष्टे वृश्चिकेऽपि ॥ २ ॥

भाषा—मिह में चन्द्रमा हो और उसपर बुध, गुरु, शुक्र, शनि, रवि, मंगल की दृष्टि हो तो जातक क्रम में ज्योतिषी, धनवान्, राजा, नाई, राजा और भूपति होता है । यदि कन्या में चन्द्रमा हो उसपर बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से राजा, मन्त्री और नृपुण (सब कार्य में सूक्ष्म बुद्धि) से युत होता है । शेष पापग्रह शनि, रवि और मंगल से दृष्ट हो तो स्त्री के आश्रित होकर जीनेवाला होता है । तुलास्थित चन्द्रमा पर बुध ग्रह बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से राजा, सोनार और बनियाँ होता है । शेष पापग्रह की दृष्टि हो तो प्राणीघातक होता है । और वृश्चिकस्थ चन्द्र पर बुध, वृश्चिकपति, शुक्र, शनि, रवि, मंगल की दृष्टि हो तो दो सन्तान का पिता, नम्र, धोबी, अंगहीन, निर्धन और राजा होता है । ये फल प्रत्येक ग्रह के क्रम से समझने चाहिए ॥ २ ॥

अथ धन्विमकरकुम्भमीनस्थे चन्द्रमसि बुधादिदृष्टे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ज्ञातुर्वीशजनाश्रयश्च तुरगे पापैः सदम्भः शठ-

श्चात्युर्वीशनरेन्द्रपण्डितधनी द्रव्योनभूपो मृगे ।

भूपो भूपसमोऽन्यदारनिरतः शेषैश्च कुम्भस्थिते

हास्यज्ञो नृपतिर्बुधश्च ऋषगे पापश्च पापेक्षिते ॥ ३ ॥

ज्ञातुर्वीशेति ॥ तुरगो धन्वी तत्रस्थे चन्द्रे बुधदृष्टे ज्ञातीशः स्वजनभर्ता, जीवदृष्टे उर्वीशो राजा, शुक्रदृष्टे जनाश्रयः जनानामाश्रयस्थानं, पापैः शनिरवि-भौमैर्दृष्टे सदम्भः मिथ्या धर्मध्वजी, शठः परकार्यविमुखश्च भवति । एवं धन्वि-लग्नेऽपि । मृगो मकरस्तत्रस्थे चन्द्रे बुधदृष्टेऽत्युर्वीशो राजाधिराजो भवति, जीवदृष्टे नरेन्द्रो राजा, शुक्रदृष्टे पण्डितः, शनिदृष्टे धनी वित्तवान्, सूर्यदृष्टे द्रव्योनः दरिद्रः, भौमदृष्टे भूपो राजा । एवं मकरलग्नेऽपि । कुम्भस्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे भूपः राजा भवति । जीवदृष्टे भूपसमः राजतुल्यः, शुक्रदृष्टेऽन्यदारनिरतः परस्त्रीसक्तः । चशब्दाच्छेषैः शनिसूर्यभौमैस्त्रिभिरप्यन्यदारनिरत एव । एवं कुम्भलग्नेऽपि । ऋषगे मीनस्थे चन्द्रमसि बुधदृष्टे हास्यज्ञः उपहासं कर्तुं

जानाति । जीवदृष्टे नृपतिः राजा, शुक्रदृष्टे बुधः पण्डितः । पापाः शनिसूर्य-
भौमाः एतैर्दृष्टे च पाप एव भवति । एवं मीनलग्नेऽपि । लग्नदृष्टिफलं चन्द्रफ-
लातिदेशेनोक्तम् “शिशिरकरसमागमेक्षणानां दृष्टाफलं प्रवदन्ति लग्नज्ञानम् ।”
इति । तत्र चन्द्रमसा दृष्टे लग्ने फलम् उक्तम् । तस्मात्तत्रोन्यते उक्तमेव यस्मा-
दुक्तम् । “होरास्वामिगुरुद्विवीक्षितयुता नान्यैश्च वीर्यात्कटा ।” तत्र कर्कटवर्ज्य-
मन्यल्लग्नम्, चन्द्रदृष्टं हीनबलं भवति । हीनबलत्वादशोभनम् । उक्तं च ।
“मुक्त्वा तु चन्द्रभवनं लग्नगतं शिशिराकरणसंदृष्टम् । अशुभफलं निर्दिष्टं
पृच्छायां जन्मसमये वा” ॥ ३ ॥

भाषा—यदि घनुराशिस्थ चन्द्र पर बुध, गुरु और शुक्र की दृष्टि हो तो क्रम से
स्वजनों का भरण पोषण करनेवाला, भूपति और बहुत जनों का आश्रय होता है ।
पापग्रहों (शनि-रवि-मंगल) की दृष्टि हो तो दम्भी (मिथ्या धर्मध्वजी) तथा शठ
होता है । मकर में चन्द्र पर बुध आदि ६ ग्रहों की दृष्टि से क्रम से राजाधिराज,
राजा, पण्डित, धनवान्, निर्धन और राजा होता है । कुम्भस्थित चन्द्र पर बुध की
दृष्टि से राजा, गुरु की दृष्टि से राजा के समान, शेष ग्रहों की दृष्टि से परस्त्रीगामी होता
है । मीनस्थित चन्द्रमा पर बुध की दृष्टि से हास्यप्रिय, गुरु की दृष्टि से राजा, शुक्र की
दृष्टि से पण्डित और शेष पापग्रहों की दृष्टि से पापी होता है ॥ ३ ॥

अथ होरात्रेष्काण्यवस्थितस्य चन्द्रस्य ग्रहदृष्टिफलं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

होरेशर्चदलाश्रितैः शुभकरो दृष्टः शशी तद्गत-

स्व्यंशे तत्पतिभिः सुहृद्भवनगैर्वा वीक्षितः शस्यते ।

यत्प्रोक्तं प्रतिराशिवीक्षणफलं तद्द्वादशांशे स्मृतं

सूर्याद्यैरवलोकितेऽपि शशिनि ज्ञेयं नवांशेष्वतः ॥ ४ ॥

होरेति ॥ होराशब्देन राश्यर्द्धमुच्यते । “होरेति लग्नं भवनस्य चार्द्धम्”
इति वचनात् । होराया ईशः होरेशः तस्यर्चदलं होरेशर्चदलं तत्राश्रिता होरे-
शर्चदलाश्रिताः तैर्ग्रहैः होरेशर्चदलाश्रितैः शशी चन्द्रः तद्गतस्तद्धोरास्थो दृष्टः
शुभकरो भवति । एतदुक्तं भवति । यत्र तत्र राशौ यस्यां होरायां चन्द्रमा स्थित-
स्तद्धोरास्थैः सर्वग्रहैः यदि दृश्यते तदा जन्मनि शुभकरो भवति । तेनार्कहोरास्थ-
श्चंद्रो यत्र तत्र राश्याश्रितैर्कहोराश्रितैर्ग्रहैः दृष्टश्च शुभकरो भवति । अर्थादेव
चन्द्रहोरास्थैर्दृष्टेऽशुभकरः । एवं यत्र तत्र राशौ स्वहोरास्थैश्चन्द्रहोरास्थैर्ग्रहैर्यत्र
तत्रावस्थैर्दृष्टः शुभकरो भवति । अर्थादेवार्कहोरास्थैर्दृष्टोऽशुभकरः । एवं लग्ने-
ऽपि होरेशेन फलं योज्यम् । स्व्यंशे तत्पतिभिरिति । यत्र तत्र राशौ यस्मिन्
द्रेष्काणे स्थितश्चन्द्रस्तस्य यः पतिस्तेन द्रेष्काणपतिना दृष्टश्चन्द्रः शस्यते स्तूयते ।
शुभकरः इत्यर्थः । पतिभिरिति । बहुवचननिर्देशान्नवांशद्वादशांशत्रिंशांशा-
काधिपतयो गृह्यन्ते । तैरपि दृष्टः चन्द्रः शुभकरो भवति । एवं लग्नेऽपि । यद्यपि
सामान्येनोक्तं तथापि शुभग्रहैर्द्रेष्काणपतिभिर्दृष्टः शस्यते । पापग्रहैर्मध्यमः ।

यस्मादनेनैव स्वल्पजातके उक्तम् । “क्षेत्राधिपसंष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान् । द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नान्यैः ॥” इति । सुहृद्भवनगैरित्यादि । सुहृद्भवनगैः मित्रक्षेत्रन्यैः ग्रहैः वीक्षितः दृष्टः चन्द्रः शस्यते स्तूयते शुभकर एव । अर्थादेव स्वभवनगतैर्दृष्टः शस्यते । अर्थादेवाभिभवनगतैः दृष्टः न शस्यते अशुभफलो भवति । एवं लग्नेऽपि योज्यम् । यत्प्रोक्तं प्रतिराशिबीक्षणफलं तद्द्वादशांशे स्मृतमिति । प्रतिराशि राशी राशी मेषादिस्थे चन्द्रमसि यद्वीक्षणफलं प्रोक्तं कथितं तदेव मेषादिद्वादशांशस्थे चन्द्रमसि स्मृतमुक्तम् । तदेव वाच्यमिति । चन्द्रे भूपवुधावित्यादि यदुक्तम् । एवं लग्नेऽपि । तत्रापि कर्कटद्वादशांशं विना चन्द्रदृष्टिरशाभना सूर्याद्यैरित्यादि । अतोऽस्मात्परं शशिनि चन्द्रे सूर्याद्यैर्कर्कादिभरवलोकिते दृष्टे नवांशेषु फलं ज्ञेयं ज्ञातव्यमिति ॥ ४ ॥

भाषा—चन्द्रमा पर यदि सूर्य की होरा हो तो सूर्य होगस्थित ग्रहों से दृष्ट होने से शुभदायक होता है । एव चन्द्र अपनी होरा में हो तो चन्द्रहोरास्थित ग्रहों से दृष्ट होने पर शुभ होता है । अन्यथा अशुभ होता है । एव जिस द्रेष्काण आदि में चन्द्रमा हो उनके स्वामी से दृष्ट हो अथवा स्वमित्रराशि थ ग्रहों से दृष्ट हो तो शुभदायक होता है । प्रति राशि में जो दृष्टफल कहे गये हैं वे फल उस राशि के द्वादशांश में भी होते हैं । और चन्द्रमा के नूर्यादि ग्रहों से दृष्ट होने में जो-जो फल कहे गये हैं वे नवांश में भी समझने चाहिए ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—यद्यपि होरादि स्वामियो से दृष्ट होरादिस्थित चन्द्र का शुभ फल कहा गया है तथापि शुभ स्वामी से पूर्ण शुभ और पाप या शत्रु होरादि स्वामी हो तो न्यून फल समझना चाहिए । यदि होरादि स्वामी पापग्रह और शत्रु भी हो तो शुभ फल नहीं हो सकता है इत्यादि यहाँ अनुक्त भी समझना चाहिए । क्योंकि स्वयं आचार्य ने लघुजातक में कहा है । यथा—

“क्षेत्राधिपसंष्टे शशिनि नृपस्तत्सुहृद्भिरपि धनवान् ।

द्रेष्काणांशकपैर्वा प्रायः सौम्यैः शुभं नान्यैः ॥” स्पष्टार्थ ॥ ४ ॥

अथ मेषवृश्चिकवृषतुलांशकस्थे चन्द्रमसि सूर्यादिदृष्टे फलं वसन्ततिलकेनाह—

आरक्षिको वधरुचिः कुशलो नियुद्धे

भूपोऽर्थवान्कलहकृत्क्षितिजांशसंस्थे ।

मूर्खोऽन्यदारनिरतः सुकविः शितांशे

सत्काव्यकृतसुखपरोऽन्यकलत्रगथ ॥ ५ ॥

आरक्षिक इति ॥ क्षितिजो भौमः तन्मवांशकस्थे मेषनवांशकस्थे वृश्चिकनवांशकस्थे चन्द्रमासि सूर्यदृष्टे आरक्षिका भवति । आरक्षिकः नगररक्षाधिकृतः । भौमदृष्टे वधरुचिः प्राणिघातकः, बुधदृष्टे नियुद्धे कुशलः, नियुद्धे बाहुयुद्धे कुशलः शिक्षितः प्रवीणः, जीवदृष्टे भपः राजा । शक्रदृष्टेऽर्थावानीश्वरः

सौरहृष्टे कलहकृदिति । मूर्ख इत्यादि । मृतांशके शुक्रनवांशके वृषनवांशके तुलनवांशके वा स्थिते चन्द्रमसि रविहृष्टे मूर्खो भवति । भौमहृष्टेऽन्यदार-
निरतः परदारसक्तः, बुधहृष्टे काव्यकृत् काव्यज्ञः, केचिदाद्यवदिति ष्ठन्ति ।
जीवहृष्टे सत्काव्यकृत् शोभनकाव्यकर्ता, शुक्रहृष्टे सुखपरः सुखासक्तः,
सौरहृष्टे अन्यकलत्रगः परदाराभिगामी ॥ ५ ॥

भाषा—मेष या वृश्चिक के नवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक नगरादिक
रक्षक, मंगल की दृष्टि से अधिक (प्राणिघाती), बुध की दृष्टि से युद्ध में कुशल,
गुरु की दृष्टि से राजा, शुक्र की दृष्टि से धनवान् और शनि की दृष्टि से कलहकारक
होता है । तथा वृष या तुला के नवांशगत चन्द्रमा पर सूर्य की दृष्टि हो तो मूर्ख,
मंगल की दृष्टि हो तो परस्त्रीगामी, बुध की दृष्टि हो तो कवि, गुरु की दृष्टि हो तो
अच्छे काव्य बनावेवाला, शुक्र की दृष्टि हो तो सुखी और शनि की दृष्टि हो तो परस्त्री-
गामी होता है । ५ ॥

अथ मिथुनकन्याकर्कांशस्थे चन्द्रे फलं वसन्ततिलकेनाह—

बौधे हि रङ्गचरचौरकवीन्द्रमन्त्री गेयज्ञशिल्पनिपुणः शशिनि स्थितेऽशौ ।
स्वांशेऽल्पगात्रधनलुब्धतपस्विमुख्यः स्त्रीपोष्यकृत्यनिरतश्च निरोद्यमाणे ६

बौधे हीति ॥ शशिनि चन्द्रे बौधे बुधनवांशकस्थे मिथुननवांशकस्थे कन्या-
नवांशस्थे वा निरोद्यमाणे हृष्टे रंगचरः मल्लादिको भवति । भौमहृष्टे चौरः
तस्करः, बुधहृष्टे कवीन्द्रः कविराजः, जीवहृष्टे मन्त्री सचिवः, शुक्रहृष्टे शिल्प-
निपुणः । स्वांशेति । स्वांशे आत्मीयनवांशकस्थे कर्कटनवांशस्थे शशिनि चन्द्रे
सूर्यहृष्टेऽल्पगात्रः कुशदेहो भवति । भौमहृष्टे धनलुब्धः, कृपणः, अल्पधनो
वा, बुधहृष्टे तपस्वी, जीवहृष्टे मुख्यः प्रधानः, सितहृष्टे स्त्रीपोष्यः स्त्रीभिरभि-
वर्धनीयः, सौरहृष्टे कृत्यनिरतः कार्यासक्तः ॥ ६ ॥

भाषा—मिथुन या कन्या के नवांश में स्थित चन्द्र पर रवि की दृष्टि हो तो नृत्य
या मल्लयुद्ध करनेवाला होता है । मंगल की दृष्टि से चोर, बुध की दृष्टि से कवि,
बृहस्पति के दृष्टि से राजमन्त्री, शुक्र की दृष्टि से संगीतज्ञ और शनि की दृष्टि से
शिल्प (चित्रादि) में निपुण होता है । कर्कटनवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टि से
जातक छोटे शरीरवाला, मंगल की दृष्टि से धन का लोभी, बुध की दृष्टि से तपस्वी,
गुरु की दृष्टि से मुखिया (प्रधान), शुक्र की दृष्टि से स्त्रियों द्वारा जीनेवाला, शनि
की दृष्टि से सर्वदा कार्य करने में तत्पर रहता है । ६ ॥

अथ सिंहधन्विमीननवांशस्थे चन्द्रे सूर्यादिहृष्टे फलं प्रहर्षिण्याह—

सक्रोधो नरपतिस्ममतो निधोशः सिंहांशे प्रभुरमुतोऽतिहिंस्रकर्मा ।

जीवांशे प्रथितबलो रणोपदेशा हास्यज्ञः सचिवविकामवृद्धशीलः ॥७॥

सक्रोध इति ॥ सिंहांशकस्थे चन्द्रमस्यर्कहृष्टे सक्रोधः क्रोधयुक्तो भवति ।

भौमदृष्टे नरपतिसम्मतः गजजल्लभः, बुधदृष्टे निधीः निधिना प्राप्तार्थः, गुरु-
दृष्टे प्रभुरप्रतिहताज्ञः, शुक्रदृष्टेऽसुतः पुत्रगृहीतः, सौरदृष्टेऽतिहिंस्रकर्मा क्रूर-
कर्मणि गतः । जीवांश इत्यादि । जीवांशे बार्हस्पत्ये नवांशके धन्व्यंशके
मीनांशकगते वा स्थिते चन्द्रमसि सूर्यदृष्टे प्रथितबलः प्रख्यातवार्यो भवति ।
भौमदृष्टे रणोपदेष्टा सङ्ग्रामदेशकालव्यूहरचनाभिज्ञः, बुधदृष्टे हास्यज्ञः
उपहासवेत्ता, जीवदृष्टे सचिवः मन्त्रा, शुक्रदृष्टे विक्रमः कामहानः पुंस्त्व-
हीनः, सौरदृष्टे वृद्धशीलः धर्ममतिगिति ॥ ७ ॥

भाषा—सिंह नवांशगत चन्द्रपर रावि की दृष्टि से जातक क्रोधी, मंगल की दृष्टि
से राक्षसाध्य, बुध की दृष्टि से निधि (खान से उत्पन्न द्रव्य) का स्वामी, गुरु की
दृष्टि से प्रभु (अप्रतिहताज्ञ), शुक्र की दृष्टि से पुत्रहीन और शनि की दृष्टि से अति-
क्रूर (हिंसा) कर्म करनेवाला होता है । धनु या मीननवांशगत चन्द्र पर सूर्य की
दृष्टि हो तो विख्यात बलवान्, मंगल की दृष्टि से युद्धविद्या सिखानेवाला, बुध की
दृष्टि से हास्यप्रिय, गुरु की दृष्टि से राजमन्त्री, शुक्र की दृष्टि से कामरहित (नपुंसक)
और शनि की दृष्टि से वृद्धस्वभाववाला होता है ॥ ७ ।

अथ मकरनवांशकस्थे कुम्भनवांशकस्थे वा चन्द्रे सूर्यादिदृष्टे जातस्य
फलं शालिन्याह—

अदयापत्यो दुःखितः सत्यपि स्वे मानासक्तः कर्मणि स्वेऽनुरक्तः ।

दुष्टस्त्रीष्टः (१) कृपणश्चार्किभागे चन्द्रे भानौ तद्वदिन्द्रादिदृष्टे ॥ ८ ॥

अल्पापत्य इति ॥ आर्किः अर्कस्यापत्यमार्किः तस्य भागे शनैश्चरनवांशके
मकरनवांशकस्थे कुम्भनवांशकस्थे वा चन्द्रे सूर्यदृष्टेऽल्पापत्योऽल्पप्रसवो
भवति । भौमदृष्टे सत्यपि स्वे दुःखितः सत्यपि विद्यमानेऽपि स्वे धने दुःखितो
भवति । बुधदृष्टे मानासक्तः गर्वितः, जीवदृष्टे स्वे आत्मीये कर्मण्यनुरक्तः
कुलानुरूपकर्मकृत् । शुक्रदृष्टे दुष्टस्त्रीष्विष्टः बल्लभः, सौरदृष्टे कृपणः
अदाता । एवं तत्कालनवांशकवशात् ग्रहदृष्टया लग्नेऽपि वक्तव्यम् । किन्तु
तत्रापि कर्कटनवांशकं विना चन्द्रदृष्टिरशुभेति । भानौ तद्वदिन्द्रादिदृष्टे
भानावादित्ये इन्द्रादिदृष्टे चन्द्राद्यैर्ग्रहैरवलोकिते तद्वत्तेनैव प्रकारेण दृष्टिफलं
यत्र तत्र राशौ यत्र तत्र नवांशकस्थे चन्द्रमस्यर्कादिदृष्टे तत्फलमुक्तं तद्वत् ।
यत्र तत्र नवांशकव्यवस्थितेऽर्के चन्द्रदृष्टे तदेव फलं वाच्यम् । एतदुक्तं भवति ।
नवांशकव्यवस्थितस्यादित्यस्य चन्द्रस्य च ताराग्रहदृष्टिफलं तुल्यम् । किन्तु
यदादित्यदृष्टया चन्द्रस्याक्तं तच्चन्द्रदृष्टया सूर्यस्य वक्तव्यम् । तथा मेघ-
नवांशकस्थेऽर्के चन्द्रदृष्टे आरक्षिको भवति । वृषतुलानवांशकस्थे सूर्यः,

(१) अत्र तृतीयपदे पञ्चमाक्षरस्य ह्रस्वद्वयोपात् “दुष्टस्त्रीष्टोऽदातृकआर्कि-
भागे” इति समुचितः पाठः ।

मिथुनकन्यानवांशकस्थे रङ्गचक्रः, सिंहनवांशकस्थे सक्रोधः, धनिष्ठीननवांश-
कस्थे प्रथितबलः, मकरकुम्भनवांशकस्थेऽल्पापत्त्यः, कर्कटनवांशकस्थेऽल्पगात्रः ।
एवमादित्यस्य नवांशकावस्थितस्य ग्रहदृष्ट्या चन्द्रेण फलं सम्मान्यति ॥ ८ ॥

अथा—मकर या कुम्भ नवांशस्थ चन्द्र पर रवि की दृष्टि से जातक थोड़ी मस्तान-
वाला, मंगल की दृष्टि से घन रहते हुए भी दुःखी, बुध की दृष्टि से अहकारी, गुरु
की दृष्टि से अपने कार्य में असक्त, शुक की दृष्टि से दुष्टाह्वी का पति और शनि की
दृष्टि से कदर्थ होता है । जिस प्रकार मेषादि नवांशगत चन्द्र पर रव्यादि ग्रह के दृष्टि-
फल कहे गये हैं; उसी प्रकार मेषादि नवांशगत सूर्य पर भी चन्द्रादि ग्रहों के दृष्टि-
फल होते हैं ॥ ८ ॥

विशेष अर्थ—विशेषता इतनी है कि मंगलादि ग्रहों की दृष्टि से चन्द्रमा और
रवि दोनों के फल तुल्य ही होते हैं । किन्तु चन्द्र पर जो रवि की दृष्टि से कहे गये हैं
वे ही फल रवि पर चन्द्रमा की दृष्टि से भी होते हैं ॥ ८ ॥

अथास्यैव नवांशकदृष्टिफलस्य विशेषं वसन्ततिक्तकेनाह—

वर्गोत्तमस्वपरगेषु शुभं यदुक्तं तत्पुष्टमध्यलघुताशुभमुत्क्रमेण ।

वीर्यान्वितोऽशकपतिनिरुणद्धि पूर्वं राशीक्षणस्य फलमंशफलं ददाति ६

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिते बृहज्जातके दृष्टिफला-

ध्याय एकोनविंशः ॥ १६ ॥

वर्गोत्तमेति ॥ नवांशकव्यवस्थिते चन्द्रे नवांशकदृष्टिफलं द्विप्रकारमुक्तं
शुभमशुभं च । यथा आराक्षिक इति शुभं, वधरुचिरित्यशुभं च । तत्र वर्गो-
त्तमांशकगते चन्द्रे यद्ग्रहदृष्टिजं फलं शुभमुक्तं तत्पुष्टमतोव शुभं भवति ।
स्वांशकस्थे तु यच्छुभमुक्तं तन्मध्यमम् । परमपुष्टता मध्यता लघुता च ।
अशुभमुत्क्रमेण अशुभमनिष्टं यत्फलं यदुक्तं तदतीवाशुभं भवति । स्वनवां-
शकस्थस्य मध्यमम् । वर्गोत्तमांशस्थस्य लघुता । एवं लग्नादित्ययोरपि दृष्टि-
फलं योज्यम् । जातके सर्वाण्येव फलानि भवन्तीति प्राप्तम् । यस्माद्यवनेश्वरः ।
“अन्योन्यराश्यंशकसम्प्रयोगैरन्योन्यसंदर्शनसङ्गमैश्च । अन्योन्यसंयोगविकल्प-
नाभिरिदं समुद्राम्बुवदप्रमेयम् ॥” इति । अतः सदैव राशिदृष्टिनवांशक-
दृष्टिफलयोरपि सदैव पक्तिं प्राप्नोति । तत्र नवांशकपतौ बलवति राशिदर्शन-
फलबाधनार्थमाह । वीर्यान्वित इति । यस्मिन्नवांशके व्यवस्थितश्चन्द्रो लग्नं
वा भवति तस्य नवांशकस्य योऽधिपतिः स चेद्वीर्यान्वितो बलवान् भवति
तदा निरुणद्धि पूर्वं प्रथमं निवारयति । किं सर्वमेव नहि । राशीक्षणस्य फलं
न होराद्रेकाणद्वादशभागेक्षणस्य तद्वित्वांशेक्षणफलमेव ददाति । अथांशके
पतिर्बलवान्न भवति तदा राशीक्षणांशकेक्षणफले चमे अपि वाच्ये । एवं

चन्द्रलग्नयोरुभयोरपि । आदित्यस्य तु नवांशकेक्षणफलमेव वक्तव्यम् ।
यस्मात्तस्य राशीक्षणफलमिह नोक्तमिति ॥ ६ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलीचिरञ्चितायां बृहज्जातकविद्वौ दृष्टिफलध्यायः
एकोनविंशः ॥ १६ ॥

भाषा—चन्द्रण यदि वर्गोत्तम नवांश में हो तो जितने शुभ फल कहे गये हैं वे पूर्णरूप से और अपने नवांश में हो तो सब शुभफल मध्यमान से और अन्य नवांश में हो तो सब शुभफल अल्प परिमाण में होते हैं । और अशुभ फल इससे विपरीत अर्थात् वर्गोत्तम नवांश में चन्द्रमा हो तो अशुभ फल जो कहे गये हैं वे अल्प परिमाण में, अपने नवांश में हो तो अशुभफल मध्यमान से और अन्य नवांश में हो तो अशुभफल पूर्णरूप से होते हैं । यदि नवांशपति बलयुक्त हो तो राशीक्षण फल को निवारण करके पहिले नवांश दृष्टि फल को ही देता है ॥ ९ ॥

विशेष अर्थ—तात्पर्य यह है कि—राशि की अपेक्षा नवांश सूक्ष्म हैं अतः नवांशपति के प्रबल होने से प्रथम नवांशफल ही होता है । इस प्रकार चन्द्रमा के जितने फल कहे गये हैं, वे लग्न के भी उसी प्रकार समझने च हिए । और सूर्य के केवल नवांश फल ही चन्द्रवत् समझने चाहिए क्योंकि सूर्य के लिए राशि दृष्टि फल नहीं कहे गये हैं ॥ ९ ॥

अथ भाषाध्यायः २० ।

अथातो भाषाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादित्यस्य लग्नगतस्य द्वितीयस्थस्य च फलं मन्दाक्रान्त्याह—

शूरः स्तब्धो विकलनयनो निर्धृणोऽर्के तनुस्थे
मेघे सस्वस्तिमिरनयनः सिंहसंस्थे निशान्धः ।
नीचेऽन्धोऽस्वः शशिगृहगते बुद्बुदाक्षः पतङ्गे
भूरिद्रव्यो नृपहृतधनो वक्त्ररोगी द्वितीये ॥ १ ॥

शूर इति ॥ शूरः संग्रामप्रियः, स्तब्धः चिरकार्यकृत्, विकलनयनः हीन-
दृष्टिः, निर्धृणः निर्दयः एवं विधोऽर्के रवौ तनुस्थे लग्नस्थे जातो भवति ।
एतत्तावत्सवलमेघेषु सामान्यफलं भवति । अथ मेघसिंहतुलाकर्केटानामन्यतमे
लग्नगतेऽर्के तदा पूर्वोक्तं फलं न भवति । वक्ष्यमाणं चोक्तगणानां प्रतिराशि-
फलं भवति । तद्यथा । मेघे सस्व इति । मेष्लग्ने तत्रस्थे चार्के सस्वः सार्थः,
तिमिरनयनः चक्षुरोगी भवति । तिमिरश्चक्षुरोगी प्रसिद्धः । सिंहलग्ने तत्रस्थे
चार्के निशान्धः राज्यधो भवति । आदित्यस्य नीचः तुला तस्मिन्लग्ने तत्रस्थे
चार्के सूर्यऽन्धो नेत्रहीनो स्वः दरिद्रश्च भवति । शशिगृहे कर्केटलग्ने तत्रस्थे
पतङ्गे चार्के बुद्बुदेक्षणः पुष्पिताक्षो भवति । भूरिद्रव्य इति । लग्नात् द्वितीये-
ऽर्के भूरिद्रव्यः प्रभूतार्थः, नृपहृतधनः राज्ञा हृतस्वो, वक्त्ररोगी मुखपादितश्च
भवति ॥ १ ॥

भाषा—यदि सूर्य लग्न में हो तो जनक सप्ताम प्रिय, रेर से काम करते वाला (दीर्घसूत्री), निर्बल नेत्र वाला और निर्दय होता है । यदि सूर्य मेषस्थ होकर लग्न में हो तो धनवान् होता है । परन्तु नेत्ररोगी होता है । सिंह लग्न में हो तो धनवान् होता है किन्तु रात्रि में अन्धा (रतौंधी) होता है । तुला में हो तो अन्धा और निर्धन होता है । कर्क में हो तो आँख में फूलीवाला होता है । द्वितीय भाव में सूर्य हो तो अधिक धनवान् होता है किन्तु उसका धन समय-समय पर राजा ले (जवत धर) लिया करता है और मुख रोग से युक्त होता है ॥ १ ॥

अथ लग्नात् तृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठस्थानस्थार्कफलमौपच्छन्दसिकेनाह—
मतिविक्रमवांस्तृतीयगेऽर्के विसुखः पीडितमानसश्चतुर्थे ।

असुतो धनवर्जितस्त्रिकोणे बलवाञ्छुद्रुजितश्च शत्रुयाते ॥ २ ॥

मतीति ॥ मतिः बुद्धिः, विक्रमः पराक्रमः, एतौ विद्येते यस्य स तथा-विधस्तृतीयगेऽर्के रवौ भवति । विसुखो दुःखितः, पीडितमानसः नित्याद्वि-मचित्तः एवंविधश्चतुर्थगेऽर्के जातो भवति । असुतः विपुत्रः, धनवर्जितो दरिद्रः एवंविधस्त्रिकोणे पञ्चमस्थे रवौ जातो भवति । बलवान् बलयुक्तः, शत्रुजितश्च शत्रुभिरिभिः जितः एवंविधः शत्रुयाते षष्ठस्थानस्थेऽर्के जातो भवति । केचद्बलवान् नष्टगिपुश्च शत्रुयात इति पठति । तथा च सत्यः । “षष्ठे रिपुरांगशोकघ्नः ।” आचार्येणात्र यवनेश्वरमतमंगीकृतं यतः षष्ठस्थान-स्थितानां पापानां यवनेश्वरेणानिष्टं फलमभिहितम् । तथा च स्फुजिध्वजः । “षष्ठाश्रितोऽर्के विषशब्दाहक्षुद्रोऽंगशत्रुव्यसनापतमान् । काष्ठाश्मपाताच्च विशीर्णान्तान्यूनैटवीदंष्ट्रिनस्त्रिजतांश्च ॥ कुजो गतस्तत्र परिज्ञातां गृह्यधातं धिक्कृतिकर्शितं च । सौरः शिरोश्माशनिपातवातद्विमुष्टिघातोपहतं च कुर्यात् ॥” अनेनैवातिदेशं पापानामाचार्यः करिष्यत्यर्कवत् ॥ २ ॥

भाषा—तृतीय भाव में सूर्य हो तो बुद्धिमान् और पराक्रमी होता है । चतुर्थ भाव में हो तो सुखहीन और उद्विग्न हृदय होता है । पञ्चमभाव में हो तो पुत्रहीन और धनहीन होता है । षष्ठभाव में रवि हो तो बली और शत्रु को जीतनेवाला होता है ॥ २ ॥

अथ लग्नात्सप्तमाष्टमनवमदशमेकादशद्वादशस्थेऽर्के जातस्य स्वरूपं वसंत-तिलकेनाह—

स्त्रीभिर्गतः परिभवं मदगे पतङ्गे

स्वल्पात्मजो निधनगे विकलेक्षणश्च ।

धर्मे सुतार्थसुखभाक् सुखशायिभाक् खे

लामे प्रभूतधनवान् पतितस्तु गिःफे ॥ ३ ॥

स्त्रीभिर्गत इति ॥ पतङ्गे आदित्ये मदगे सप्तमस्थानस्थे जातः स्त्रीभिः योषिभिः परिभवं गतः प्राप्तो भवति । केचिन्महते पतङ्ग इति पठन्ति । निध-

नगे छट्सन्धे पतंगे सूर्ये स्वल्पात्मजः अल्पापत्यः, विकले नराश्च विकले
अक्षिणी यस्य, अट्टवचलुर्भवति । होनदृष्टिर्भवतीत्यर्थः । धर्मे नवमस्थे सुताः
पुत्राः, अर्थो जनं, सुखं सुखभावः एषां भागी भवति । केचिद्धर्मे सुताश्चरहित
इति पठन्ति । तथा च सत्यः । “साध्वाचारविरोधं रुजःप्रदो दैन्यकृन्नवम-
संस्थः ।” खे दशमे सुखशौर्यभाक् सुखितो बली च भवति । लाभे एकादशे
प्रभूतधनवान् बहुवित्तो भवति । रिःफे द्वादशे पतितः स्वकमपरिभ्रष्टो भवति ।
इत्यादित्यचारः ॥ ३ ॥

भाषा—यदि जन्म समय सप्तम भाव में सूर्य हो तो जातक रूी के द्वारा अपमानित
होता है । अष्टम भाव में सूर्य हो तो अल्प पुत्रवाला और हीन होता है । नवम भाव
में सूर्य हो तो पुत्र, धन और सुख का भागी होता है । दशम भाव में सूर्य हो तो सुखी
और पराक्रमी होता है । एकादश भाव में सूर्य हो तो बहुत धनवान् होता है । और
द्वादश भाव में सूर्य हो तो अपने कर्म से च्युत होता है ॥ ३ ॥

अथ चन्द्रे लग्नाद्द्वितीयचतुर्थपञ्चमषष्ठ्यथे जातस्य स्वरूपं शार्दूल-
विक्रीडितेनाह—

मूकोन्मत्तजडान्धहीनवधिरप्रेष्याः शशाङ्कोदये

स्वर्चाजोच्चगते धनी बहुसुतः सस्वः कुटुम्बी धने ।

हिंस्रो भ्रातृगते सुखे सतनये तत्प्रोक्तभावान्वितो

नैकारिर्मृदुकायवह्निमदनस्तीक्ष्णोऽलसश्चारिणे ॥ ४ ॥

मूक इति ॥ मूको वाग्धीनः, उन्मत्तः धातुवैषम्याद्यथेष्टकारी, जडः अप्र-
तिपन्नः, अन्धः नेत्रहीनः, हीनः अनुचितकर्मकृत्, वधिरः श्रीत्रेन्द्रियहीनः,
प्रेष्यो दासः, एषामन्यतमो जातः शशाङ्कोदये शशाङ्के चन्द्रे उदयगो लग्नस्थे
जातो भवति । एतन्मेषवृषकर्कटवर्ज्यम् । तेषां विशेषमाह । स्वर्चाजोच्चगत
इति । स्वर्चाः कर्कटकः तस्मिँल्लगने तस्ये चन्द्रमसि धनी वित्तवान् भवति ।
अजे मेषलग्ने तस्ये चन्द्रमसि बहुसुतः प्रभूतपुत्रो भवति । चन्द्रस्योच्चो वृषः
तस्मिँल्लगने चन्द्रे सस्वः अर्थवान् भवति । धने लग्नात् द्वितीये चन्द्रे कुटुम्बी
बहुकुटुम्बी भवति । भ्रातृगते तृतीयस्थानस्थे हिंस्रः क्रूरो भवति प्राणिवधको
वा । सुखे चतुर्थ सतनये तनयेन पञ्चमेन स्थानेन युक्ते तत्प्रोक्तभावान्वितस्तेन
प्रोक्तेन कथितेन भावेनान्वितो युक्तो भवति । तेन सुखे सुखितस्तनये पुत्रा-
न्वित इति । नैकारिरित्यनेकारिः बहुशत्रुः, मृदुकायः सुकुमारशरीरः, मृदु-
वह्निर्नातिप्रदीप्ताग्निः, मृदुमदनः मैथुनाशीघ्रगः, तीक्ष्णः उग्रस्वभावः, अलसः
क्रियास्वपटुः एवंविधोऽरिणे लग्नात् षष्ठ्यथे चन्द्रे जातो भवति ॥ ४ ॥

भाषा—चन्द्रमा यदि लग्न में हो तो जातक रूँगा, उन्मत्त (पागल), मूर्ख, अन्धा,
नीच कर्मकर्ता, वधिर और भृत्य (सेवक) होता है । यदि कर्क में होकर लग्न में हो तो
धनी, मेष लग्न में हो तो बहुत सन्तानवाला और वृष लग्न में हो तो धनवान् होता

है । द्वितीय भाव में चन्द्रमा हो तो अधिक परिवार वाला होता है । तृतीय भाव में हो तो क्रूर, चतुर्थ भाव में हो तो भाव फल (गृह सुख, मातृ सुख आदि) से युक्त, पञ्चम भाव में हो तो (बुद्धि, विद्या, पुत्र सुख आदि) से युक्त और यदि षष्ठ भाव में चन्द्रमा हो तो बहुत शत्रुवाला, सुकुमार शरीर, मन्दाग्नि, अल्पवीर्य, उग्रस्वभाव और आलसी होता है ॥ ४ ॥

अथ लग्नात्सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशस्थे चन्द्रे जातस्य स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

ईर्ष्युस्तीव्रमदो मदे बहुमतिर्व्याध्यदितश्चाष्टमे

सौभाग्यात्मजमित्रबन्धुधनभाग् धर्मस्थिते शीतगौ ।

निष्पत्तिं समुपैति धर्मधनधीशौर्यैर्युतः कर्मगे

ख्यातो भावगुणान्वितो भगवते क्षुद्रोऽङ्गहीनोव्यये ॥ ५ ॥

ईर्ष्युरिति ॥ ईर्ष्युः परद्विमतसरी, तीव्रमदः अतिमदनः एवंविधो मदे सप्तमस्थे चन्द्रे जातो भवति । बहुमतिः बहुप्रज्ञः चपलबुद्धिरित्यर्थः । व्याध्यदितः रोगपीडितः एवं विधोऽष्टमस्थे चन्द्रे जातो भवति, सौभाग्यं सर्वजनबाल्लभ्यं, आत्मजाः पुत्राः, मित्राणि सुहृदः, बान्धवाः स्वजनाः, धनं वित्तम् एषां भागे भवति । शीतगौ चन्द्रे धर्मस्थे नवमस्थानाश्रिते जातो भवति । निष्पत्तिः निष्पादनं सर्वं कर्म समुपैति गच्छति । धर्मधनधीशौर्यैर्युतः धर्मेण, धनेन वित्तेन, धिया बुद्ध्या, शौर्येण बलेन युतः एवंविधः कर्मगे दशमस्थानस्थे चन्द्रे जातो भवति । ख्यात इति । ख्यातः सर्वत्र प्रसिद्धः, भावगुणान्वितः भाव एकादशो लाभस्थानं तेनान्वितः सत्ताभः इत्यर्थः । एवंविधो भगवते एकादशस्थे चन्द्रे जातो भवति । क्षुद्रो हिंस्रस्वभावः, अङ्गहीनः अवयवरहितः एवंविधो द्वादशस्थे चन्द्रे जातो भवति । इति चन्द्रचारः ॥ ५ ॥

भाषा—सप्तम भाव में चन्द्रमा हो तो जातक ईर्ष्या (डाह) वाला, अतिकामी होता है । अष्टम भाव में चन्द्रमा हो तो अधिक बुद्धिमान्, किन्तु रोग से पीडित होता है । नवम भाव में चन्द्रमा हो तो सौभाग्य, पुत्र, मित्र, बन्धु, धन और भाग्य से युक्त होता है । दशम भाव में चन्द्रमा हो तो सब कार्य में तिद्धि पाने वाला, धर्म, धन, बुद्धि और पराक्रम से युक्त होता है । एकादश भाव में चन्द्र हो तो विख्यात और लाभ से युक्त होता है । व्यय भाव में चन्द्रमा हो तो जातक क्षुद्र और अंगहीन होता है ॥ ५ ॥

अथ लग्नादिस्थयोर्भौमबुधयोर्जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

लग्ने कुजे क्षततनुर्धनगे कदम्बो

धर्मेऽववान् दिनकरप्रतिभोऽन्यसंस्थः ।

विद्वान् धनी प्रखलपण्डितमन्यशत्रु-

धर्मज्ञविश्रुतगुणः परतोऽक्वज्ज्ञे ॥ ६ ॥

लग्न इति ॥ लग्नस्थे कुजे प्रहारादिना क्षततनुः विक्षतशरीरः, धनगे द्वितीयस्थे कदन्नः कुत्सितान्नाशो भवति । धर्मे नवमे अधवान् पापरतो भवति । अन्यसंस्थो दिनकरप्रतिमः अन्येषु परिशिष्टस्थानेषु स्थितो दिनकर-प्रतिमोऽर्कतुल्यफलः तृतीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमाष्टमदशमैकादशद्वादशेषु यान्ये-वादित्यस्य फलान्यभिहितानि तान्येव भौमस्य वाच्यानि । तद्यथा । तृतीये मतिविक्रमवांश्चतुर्थे विसुखः पीडितमानसः, पञ्चमे सुनधनवर्जितः, षष्ठे बलवान् शत्रुजितश्च सप्तमे स्त्रीभिः परिभवं गतः, अष्टमे स्वल्पात्मजः विकलेक्षणश्च, नवमे सुतार्थसुखभाक्, दशमे सुखशौर्यवान्, एकादशे प्रभूतधनवान्, द्वादशे पतितः । इति भौमचारः । अथ बुधचारः । विद्वान् धनीत्यादि । ज्ञे बुधे लग्न-गते विद्वान् पण्डितो भवति, द्वितीये धनी धनवान्, तृतीये प्रखलः प्रकर्षण खलो दुर्जनः, चतुर्थे पण्डितः, पञ्चमे मन्त्री, षष्ठेऽशत्रुः विगतरिपुः, सप्तमे धर्मज्ञः, विश्रुतगुणः प्रख्यातगुणः, परतोऽनन्तरान्यस्थानेऽर्कवत् सूर्यवत् । नवमदशमैकादशद्वादशेषु यान्यर्कस्य फलान्यभिहितानि तान्येव बुधस्य वाच्यानि । तद्यथा । नवमे सुतार्थसुखभाक्, दशमे सुखशौर्यभाक् एकादशे प्रभूतधनवान्, द्वादशे पतित इति । इति बुधचारः ॥ ६ ॥

भाषा—मंगल लग्न में हो तो जातक धनशरीर (किसी अंग में घाव वाला), धनभाव में हो तो कदन्नभोगी, नवम भाव में हो तो पापी होता है । और शेष भावों में जैसे सूर्य के फल हैं वैसे ही मंगल के भी होते हैं । बुध यदि लग्न में हो तो जातक विद्वान्, द्वितीय भाव में हो तो धनवान्, तृतीय भाव में हो तो खल, चतुर्थ भाव में हो तो पण्डित, पञ्चम भाव में हो तो राजमंत्री, षष्ठभाव में हो तो शत्रुरहित, सप्तम भाव में हो तो धर्मज्ञ, अष्टम भाव में हो तो विख्यात गुणवाला होता है । योग ९, १०, ११ और १२ भाव में बुध के फल सूर्य के फल सदृश होते हैं ॥ ६ ॥

अथ लग्नादिस्थस्य जीवस्य फलमिन्द्रवज्रयाह—

विद्वान्सुवाच्यः कृपणः सुखी च धीमानशत्रुः पितृतोऽधिकश्च ।

नीचस्तपस्वी सधनः सलाभः खलश्च जीवे क्रमशो विलग्नात् ॥ ७ ॥

विद्वानिति ॥ जीवे गुरौ विलग्नात्प्रभृति स्थितेषु द्वादशेषु स्थानेषु क्रमशः परिपाटयैतानि फलानि । तद्यथा । लग्नस्थे गुरौ विद्वान् पण्डितो भवति । द्वितीये सुवाक्यः शांभनवचनः, तृतीये कृपणः अदाता, चतुर्थे सुखी, पञ्चमे धीमान् बुद्धिमान्, षष्ठेऽशत्रुः विगतरिपुः, सप्तमे पितृतोऽधिकः पितुः सका-शाद्गुणाधिकः, अष्टमे नीचः स्वकुलानुचितकर्मकृत्, नवमे तपस्वी विद्यमान-तपाः, दशमे सधनः सवित्तः, एकादशे सलाभः लाभयुक्तः, द्वादशे खलः क्रूरचेष्टः । इति बृहस्पतिचारः ॥ ७ ॥

भाषा—गुरु लग्न में हो तो विद्वान्, द्वितीय भाव में हो तो प्रियवक्ता, तृतीय भाव में हो तो कृपण, चतुर्थ भाव में हो तो सुखी, पञ्चम में हो तो विद्वान्, षष्ठ में हो

तो अशु राहुन मम में हो तो अपने पिता से अधिक गुण युक्त, अष्टम में हो तो अनुत्पन्न मर्म करनेवाला, नवम में हो तो तपस्वी भ्रम में हो तो धनी, एकादश में हो तो लाभ करनेवाला, द्वादश में हो तो जानक खल होता है ॥ १ ॥

अथ लग्नादिस्थस्य शुक्रस्य फलं चित्रतयाह—

स्मरनिपुणः सुखितश्च विलग्ने प्रियकलहोऽस्तगते सुरतेप्सुः ।

तनयगते सुखितो भृगुपुत्रे गुरुवदतोऽन्यगृहे सधनोऽन्त्ये ॥ ८ ॥

स्मरनिपुण इति ॥ स्मरनिपुणः कामकुशलः, सुखितः सञ्जातसुखः एवंविधो विलग्नस्थे भृगुपुत्रे शुक्रे जातो भवति । प्रियकलहः कलहवत्सलः, सुरतेप्सुः सुरताभिलाषी एवंविधोऽस्तगते सप्तमस्थे शुक्रे जातो भवति । तनयगते पञ्चमस्थे शुक्रे सुखितो भवति । गुरुवदतोऽन्यगृहे अतोऽस्मात्स्थानत्रयादन्यस्मिन् गृहे स्थाने गुरुवत् जीववत्फलानि वक्तव्यानि । द्वितीयतृतीयचतुर्थषष्ठाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशेषु यान्येव गुरोः बृहस्पतेः फलान्यभिहितानि तान्येव शुक्रस्य वक्तव्यानि । तद्यथा । द्वितीये सुवाक्यो भवति । तृतीये कृपणः, चतुर्थे सुखी, षष्ठेऽशत्रुः, अष्टमे नीचः, नवमे तपस्वी, दशमे सधनः, एकादशे सलाभः, द्वादशे खलः, सधनोऽन्त्ये अन्त्ये मीने यत्र तत्र भावस्थे सधनः वित्तवान्भवति । स्थानोक्त तत्फलं न भवति । केचिद्गुरुवदतस्तु भूषे द्विविणो स्यादति पठन्ति । अतोऽनन्तरं परिशेषस्थानेषु गुरुवत् । भूषे मीने द्विविणी स्यात् भवेदिति । इति शुक्रचारः ॥ ८ ॥

भाषा—शुक्र लग्न में हो तो जातक कामकला (सुरत क्रिया) में कुशल और सुखी होता है । सप्तम भाव में हो तो कलहप्रिय और मंथुनाभिलाषी होता है : पञ्चम भाव में शुक्र हो तो सुखी होता है । और अन्य भाव (२, ३, ४, ६, ८, ९, १०, ११ इन) में गुरु के समान फल समझना चाहिए । किन्तु द्वादश में शुक्र हो तो जातक धनवान् होता है ॥ ८ ॥

अथ लग्नादिस्थस्य सौरस्य फलं शिखरिण्याह—

अदृष्टार्थो रोगी मदनवशगोऽत्यन्तमलिनः

शिशुत्वे पीडार्तः सवितृसुतलग्नेत्यलसवाक् ।

गुरुस्वर्त्तोच्चस्थे नृपतिसदृशो ग्रामपुरपः

सुविद्वांश्चार्वाङ्गो दिनकरसमोऽन्यत्र कथितः ॥ ९ ॥

अदृष्टार्थो रोगीति ॥ अदृष्टार्थः नित्यं दरिद्रः, रोगी व्याधितः, मदनवशगः कामाधीनः, अत्यन्तमलिनः अतीव-मलोपेतः, शिशुत्वे बाल्ये पीडार्तो व्याध्यर्दितः, अलसवाक् अव्यक्तभाषी, एवंविधः सवितृसुते सौरे लग्नस्थिते जातो भवति । यदि तुलाधन्विमकरकुम्भमीनानामन्यतमो राशिः लग्नगतो न भवति तदा तदेव तदुक्तं फलं भवति । एषामन्यतमे लग्नगो तस्य सौरस्य

फलमाह । गुरुस्वर्चोच्चस्थ इति । गुरुक्षेत्रे धन्विमीनौ शनैश्चरस्य स्वर्चो स्वक्षेत्रे मकरकुम्भौ तस्यैवोच्चस्तुला एषामन्यतमो राशिः यदि लग्नगतो भवति तत्र स्थिते च सौरे नृपतिसदृशः राजतुल्यो भवति । ग्रामपुरपः ग्रामाणां पुराणां वाधिपतिः, पुत्रिद्वान् परिदत्तः, चार्दङ्गः शोभनावयवश्च भवति । केचित्सुहृत्स्वर्चोच्चस्थ इति पठन्ति तदयुक्तम् । यस्मात्सारवल्यामुक्तम् । “स्वोच्चे स्वजीवभक्ते क्षिणिपालतुल्यो लग्नेऽर्कजे भवति देशनराधिनाथः । शेषेषु दुःखगदपीडित एव बाल्ये दारिद्र्यकामवशगो मलिनोऽलसश्च ॥” दिनकरसमोऽन्यत्र कथित इति । अन्यत्र द्वितीयादिषु स्थानेषु दिनकरसमोऽर्कतुल्यः कथित उक्तो यान्यादित्यस्य फलान्याभिहितानि तान्येव सौरस्य वाच्यानि । तद्यथा । द्वितीये भूरिद्वयो नृपहृतधनो वक्त्ररोगी च भवति, तृतीये मतिविक्रमवान्, चतुर्थे विमुखः पीडितमानसः, पञ्चमे असुतो धनवर्जितः, षष्ठे बलवान् शत्रुनिर्जितः, सप्तमे स्त्रीभिः परिभवं गतः, अष्टमे स्वल्पात्मजो विकलेक्षणश्च, नवमे सुतार्थसुखभाक्, दशमे सुखशौर्यभाक्, एकादशे प्रभूतधनवान्, द्वादशे पतित इति शनैश्चरचारः ॥ ६ ॥

भाषा—शनि यदि “धनु, मकर, कुम्भ, मीन और तुला से भिन्न राशि में” लग्नगत हो तो जातक निर्धन, रोगी, कामातुर, अतिमलिन, बाल्यावस्था में दुःखी और साफ न बोलनेवाला होता है । यदि लग्न में भी धनु, मीन, मकर, कुम्भ या तुला में हो तो जातक राजा के तुल्य, ग्राम या नगर का स्वामी, विद्वान् और सुन्दर शरीर वाला होता है । द्वितीय आदि भाव में जैसे सूर्य के फल कह गये उन्हीं के समान शनि के भी फल समझने चाहिए ॥ ९ ॥

अथ लग्नादारभ्य ये तन्वाद्यो भावास्तेषु भावेषु व्यवस्थितानां सर्वेषामेव ग्रहाणां फलविशेषं मालिन्याह—

सुहृदरिपरकीयस्वर्चतुङ्गस्थितानां फलमनुपरिचित्यं लग्नेदेहादिभावैः ।

समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु सत्यः कथयति विपरीतं रिःफषष्ठाष्टमेषु १० ।

सुहृदरि ॥ यदेतत्प्रतिगृहं लग्नात्प्रभृति द्वादशसु स्थानेषु फलमनुपरिचित्यम् । भावाः तनुकुटुम्बसहोत्थादयः । लग्नेदेहादिभावैरिति । लग्नं देहः शरीरं परिकल्प्यम्, लग्नादारभ्य तनुकुटुम्बसहोत्थादयो भावाः परिकल्प्याः । अत्र का भ्रान्तिः ? तत्रोच्यते । अस्त्येव । यस्माद्यवनेश्वरः । मूर्तिं च होरां शशिभं च विद्यात्” इति । अत्र शशिभान्न परिकल्प्या लग्नात्परिकल्प्याः तेषु शरीरादिभावेषु यो ग्रहो व्यवस्थितः स तस्य भावस्य पुष्टिं कृशतां वा करोति । कथमित्याह ? । सुहृदरिपरकीयस्वर्चतुङ्गस्थितानां फलमनुपरिचित्यमिति । सुहृत्क्षेत्रं मित्रक्षेत्रं अरिक्षेत्रं शत्रुभं परकीयमुदासीनभं स्वर्चमात्मीयक्षेत्रं तुङ्गमुच्चभम् एतेषु स्थानेषु स्थितानां फलमनुपरिचित्यं परिकल्प्यम् । भावस्थो ग्रहो यादृशो क्षेत्रे भवति तादृशं फलं प्रयच्छति । नन्वत्र सुहृदादिक्षेत्राणां परिगणना कृता

तत्र न शुभाशुभफलविभाग उक्तः । उच्यते । अर्थादेवैतद्गम्यते । यथा मित्र-
क्षेत्रस्थो भाववृद्धिं करोति, शत्रुक्षेत्रादिस्थश्च तद्वानिम् । तत्र च ये शुभाशुभ-
क्षेत्रे नोक्ते त्रिकोणनीचभे ते अपि ग्राह्ये । मित्रादिक्षेत्रान्यक्षेत्रोपलक्षणानि
ज्ञेयानि । कः पुनरपि अरिपरकीययोर्विशेष उच्यते । उदासीनोऽत्र परोऽभिप्रेतः,
अरिः शत्रुः, पर उदासीनः, तत्रैतदुक्तं भवति । पापः सौम्यो वा नीचस्थः
शत्रुक्षेत्रस्थो वा यस्मिन्भावे व्यवस्थितः तस्य भावस्य हानिं करोति । उदासी-
नक्षेत्रस्थे न हानिं न च वृद्धिम् । मित्रक्षेत्रे स्वक्षेत्रे मूलत्रिकोणे स्वोच्चे व्यव-
स्थितो भावस्य वृद्धिमिति । एतत्केषांचिन्मते । तथा च भगवान् गार्गिः ।
“नीचर्क्षरिपुणेहस्थो ग्रहो भावविनाशकृत् । उदासीनगृहे मध्यो मित्रर्क्षस्वत्रि-
कोणगः ॥ स्वोच्चगश्च ग्रहोऽवश्यं भाववृद्धिकरः स्मृतः ॥” इति । सत्याचार्यस्तु
पुनः समुपचयविपत्ती सौम्यपापेषु कथयति यस्मिन् भावे सौम्याः स्थितास्तस्य
भावस्य वृद्धिं कुर्वन्ति, यस्मिन् भावे पापाः स्थितास्तस्य भावस्य विपत्तिं हानिं
कुर्वन्ति । किन्तु रिःफषष्ठाष्टमेध्वेतद्विपरीतं कथयन्ति । रिःफे द्वादशे स्थाने
भावहानिं कुर्वति पापाः वृद्धिं तेन रिःफे सौम्या व्ययहानिं कुर्वति पापाः
व्ययवृद्धिम् । षष्ठे सौम्याः शत्रुहानिं कुर्वति पापाः शत्रुवृद्धिम् । अष्टमे सौम्याः
मृत्युहानिं कुर्वति पापाः मृत्युवृद्धिमिति । तथा च सत्यः । “सौम्याः
पुष्टिं पापस्तद्धानि संश्रिता ग्रहाः कुर्युः । मर्त्यादिषु निघर्नेऽत्ये षष्ठे च
विपर्ययात्फलदाः ॥” ननु पूर्वं सौम्यानां पापानां चोपचयस्थानावस्थितानां
शुभं फलं व्याख्यातं तत्कथं षष्ठस्थाः पापाः शत्रुवृद्धिं कुर्वन्ति । अत्रोच्यते
पूर्वं । सामान्येनोक्तम् । यत्र च वाचनिकी बाधा भवति तत्र सामान्यं भाव-
फलं त्यक्त्वा यथोक्तफलं वक्तव्यम् । यद्येवं कथं स्वतपजातके उक्तम् । “पुष्टंति
शुभा भावान्मूर्त्यादीन् ज्ञन्ति संस्थिताः पापाः । सौम्याः षष्ठेऽरिघ्नाः
सर्वे नेष्टा व्ययाष्टमगाः ॥” इति । अत्रोच्यते । बृहज्जातके आचार्येणोक्तं
स्वल्पजातकेऽन्याचार्यमतेन प्रतिज्ञातमाचार्येण । “ज्यौतिषमागमशास्त्रं विप्रति-
पत्तौ न योग्यमस्माकम् । स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ॥”
यत्राचार्याणां समसंख्यानां मतभेदसमत्वं भवति तत्र वराहमिहिरो मतद्वय-
मपि दर्शयति । तथा च बृहद्यात्रायामन्यरूपां ग्रहकुंडलिकां स्वल्पयात्रायां
सामान्यरूपां पठति । एवं बृहदल्पयोर्विबाहपटलयोरपि ॥ १० ॥

भाषा—लग्न से आरम्भ कर तनु, घन आदि संज्ञा से जो द्वादशभाव हैं
उन भावों में जो ग्रह मित्रराशि, शत्रुराशि, उदासीन राशि, अपनी राशि, अपने
उच्च में स्थित हो तदनुसार भी उनके फल विचार करना चाहिए । जैसे जो
ग्रह लग्न में देह सुखकारक कहा गया है वह ग्रह यदि मित्रराशि में हो तो देह सुख
की पुष्टि, यदि शत्रुग्रह में हो तो देह सुख की अल्पता, उदासीन राशि में हो तो देह
सुख मध्यम, अपनी राशि में हो तो भी देह सुख पूर्ण, यदि उच्च में हो तो देह सुख
अत्युत्तम कहना चाहिये । और जिस भाव में शुभग्रह का योग हो उस भाव की पुष्टि,

तथा जिसमें पापग्रह हो उस भाव की हानि होती है । किन्तु ६, ८, १२ भाव में विपरीत याने इन तीनों भाव में शुभग्रह हो तो भाव (शत्रु आदि) की हानि, पापग्रह हो तो भाव की वृद्धि होती है ॥ १० ॥

अथ ग्रहकुण्डलिकाफलविशेषमनुष्टुभाह—

उच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैः ।

शुभं सम्पूर्णपादोनदलपादाल्पनिष्फलम् ॥ ११ ॥

इति श्रीबराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके भावाध्यायो विंशतिः ॥२०॥

उच्चेति ॥ ग्रहकुण्डलिकायां फलं द्विविधमुक्तं शुभमशुभं च । तत्र यच्छुभं फलं तदुच्चत्रिकोणस्वसुहृच्छत्रुनीचगृहार्कगैर्ग्रहैर्दत्तं यथाक्रमं पादोनदलपादाल्पनिष्फलं भवति । तेनोच्चस्थो ग्रहः सम्पूर्णं प्रयच्छति । मूलत्रिकोणस्थः पादोनं, स्वक्षेत्रस्थोऽर्द्धं, मित्रक्षेत्रस्थः पादफलं, शत्रुक्षेत्रस्थः पादादल्पं, नीचस्थोऽस्तमितश्च न किञ्चिदपि । एवं शुभफलम् । शुभग्रहणादेवाशुभस्य ग्रहस्य व्युत्क्रमो व्याख्येयः । तत्रास्तमितो नीचस्थश्चाशुभं फलं संपूर्णं प्रयच्छति । शत्रुक्षेत्रस्थः पादोनं, मित्रक्षेत्रस्थोऽर्द्धं, स्वक्षेत्रस्थः पादं, त्रिकोणस्थः पादादल्पं, उच्चस्थो न किञ्चिदपि । एवं ज्ञातकाले ग्रहस्यावस्थानात्फलं वाच्यम् । दशाष्टकवर्गादिफलपत्तिकाले शुभमशुभं वा पुष्टफलं बलवानेव प्रयच्छति । एतच्च पूर्वमेव व्याख्यातम् । उक्तं च—

“तत्कालं बलयुक्तो भवति यदि दशाधिपस्तस्य ।

शुभमशुभं वापि फलं वक्तव्यं नित्यमेव परिपूर्णम् ॥” ११ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ भावाध्यायो विंशतिः ॥२०॥

भाषा—पूर्व जो शुभभावफल कहे गये हैं वे स्वोच्च में ग्रह हो तो सम्पूर्ण, मूलत्रिकोण में ३ चरण, अपने ग्रह में २ चरण, मित्रग्रह में १ चरण, शत्रुग्रह में अल्प और नीच वा अस्त हो तो फल का अभाव समझना चाहिए । इसी से सिद्ध होता है कि अशुभफल इससे विपरीत अर्थात् अस्त और नीच में ग्रह हो तो सम्पूर्ण, शत्रुग्रह में ३ चरण, मित्रग्रह में हो तो २ चरण, अपने घर में हो तो १ चरण, मूल त्रिकोण में हो तो अल्प और उच्च में ग्रह हो तो अशुभ भावफल का अभाव होता है ॥ ११ ॥

अथाश्रययोगाध्यायः २१ ।

अथात आश्रययोगाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेवैकादिसंख्योत्तरवृद्ध्या स्वग्रहगतानां ग्रहाणां मित्रक्षेत्रगतानां च फलं पुष्पिताप्रयाह—

कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनिसुखिभोगिनृपाः स्वभैकवृद्ध्या ।

परविभवसुहृत्स्वबन्धुपौष्या गणपबलेशनृपाश्च मित्रभेषु ॥ १ ॥

कुलसमकुलेति ॥ स्वभेषु स्वराशिष्वेकवृद्ध्या स्थितैः ग्रहैर्जाताः कुलसमकुलमुख्यबन्धुपूज्या धनिसुखिभोगिनृपाः पुरुषा भवन्ति । यस्मिंस्तस्मिन् ग्रहे स्व-

क्षेत्रगतजातः कुलसमः स्वकुलतुल्यो भवति । एवं द्वयोः स्वक्षेत्रस्थयोः कुलमुख्यः स्वकुलप्रधानः स्वकुलाधिकः, त्रिषु बन्धूनां पूज्यः, चतुर्थे धनी वित्तवान्, पंचसु सुखी, षट्सु भोगी नृपतुल्यः केचिद्भूष इति पठन्ति । स चोत्तमादाभूयतिरिव भूषस्तत्समत्वमेवमुक्तम् । स्वल्पजातकेऽप्युक्तम् । “कुलतुल्यकुलाधिकबन्धुभान्यधनिभोगिनृपसमत्तरैर्द्राः ।” एवं षट्सु नृपसमः, सप्तसु नृपो राजा, एवंगुणः एकोत्तरवृद्धया स्वक्षेत्रगेषु जातो भवति । परविभवत्वादि । एकवृद्धया इत्यनुवर्तते । मित्रभेष्वेकवृद्धया स्थितेषु परविभवसुहृत्स्वबन्धुपोष्या गणपवलेशानृपाश्च जाताः भवन्ति । तेनैकस्मिन् मित्रक्षेत्रस्थे ग्रहे जातः परविभवपोष्यो भवति । पराजीवीत्यर्थः । द्वयोः सुहृत्पोष्यः, त्रिषु स्वपोष्यो ज्ञातिपोष्यो भवति । चतुर्थे बन्धुपोष्यः भ्रातृपोष्य इत्यर्थः । पंचसु गणपः गणस्वामी, षट्सु बलेशो सेनापतिः, सप्तसु नृपो राजा ॥ १ ॥

भाषा—जन्म समय में अपने गृह में एक ग्रह हो तो जातक अपने पिता के समान, २ ग्रह स्वगृह में हो तो कुल में मुख्य, ३ ग्रह स्वगृह के हों तो बन्धुओं में पूज्य, ४ ग्रह स्वगृह के हों तो धनी, ५ ग्रह हों तो सुखी, ६ ग्रह हों तो भोगी, सातों ग्रह स्वगृह के हों तो राजा होता है । एवं ग्रह मित्र राशि में हो तो, दूसरे के धन से पोषित होता है । २ ग्रह मित्र गृह में हो तो मित्र द्वारा, ३ ग्रह मित्र गृह में हो तो स्वजातिद्वारा, ४ ग्रह मित्रराशि में हो तो बन्धु के द्वारा पालित होता है । ५ ग्रह मित्रराशि में हो तो बहुतों का नायक, ६ ग्रह हों तो सेनापति, सातों ग्रह मित्रराशि में हो तो राजा होता है ॥ १ ॥

अथोच्चगतस्यैकस्यापि मित्रदृष्टस्य फलमेकोत्तरवृद्धया नीचशशुस्थानानां च सालिन्याह—

जनयति नृपमेकोऽप्युच्चगो मित्रदृष्टः प्रचुरधनसमेतं मित्रयोगाच्च सिद्धम् ।
विधनविसुखमूढव्याधितो बन्धतप्तो वधदुरितसमेतः शत्रुनीचर्दगेषु । २ ।

जनयतीति ॥ एकोऽप्युच्चगतो ग्रहो मित्रदृष्टः सुहृदवलोकितः नृपं राजानं जनयति उत्पादयति एवमेकोऽप्युच्चगतो मित्रयोगान्मित्रयुक्तत्वात्प्रचुरधनसमेतं सिद्धं च जनयति प्रचुरधनसमेतं पर्याप्तवित्तायुक्तं सिद्धं च सर्वत्रावाप्तपूजं जनयति । विधनविसुखमूढेत्यादि । एकवृद्धया शत्रुनीचर्दगेषु शत्रुक्षेत्रस्थेषु नीचगेषु वा ग्रहेषु विधनविसुखमूढव्याधिता बन्धतप्ता वधदुरितसमेता जाताः भवति । तेन यस्य जन्मन्येको ग्रहः शत्रुक्षेत्रगो नीचगो वा भवति स विधनः विगतधनो भवति दरिद्रः । यस्य द्वौ स विसुखो दुःखितः । यस्य त्रयः स मूढः विचित्रः । यस्य चत्वारः स व्याधितः पीडितः । यस्य पंच स बन्धनतप्तो भवति । यस्य षट् स तप्तो भवति बहुदुःखसंतप्तः । यस्य सप्त स वधदुरितसमेतो भवति । वधवध्यो दुरितं दुष्कृतं वध एव दुरितं तेन समेतो वा । नीचे यद्यपि सप्त न सम्भवन्ति तथापि वज्रादिवत्पूर्वशास्त्रानुसारेण तत्फलोपदेशः ॥ २ ॥

भाषा—अपने उच्च में एक भी ग्रह हो और अपने मित्र से दृष्ट हो तो जातक अत्यन्त धनसंयुक्त राजा होता है। यदि मित्र से युक्त हो तो धनवान् राजा होकर सर्वत्र सम्मान पाने वाला होता है। यदि २ या अधिक ग्रह उच्च में हो तो फिर कहना ही क्या है? एवं एक ग्रह शत्रु या नीच राशि में हो तो धनहीन, २ ग्रह हो तो सुखहीन, ३ ग्रह हो तो मूढ़, ४ ग्रह हो तो व्याधियुक्त, ५ ग्रह नीच में हो तो बन्धन से दुःखी और ६ ग्रह नीचग्रह में तथा ६ या ७ शत्रुग्रह में हो तो वध (मृत्यु) और दुरित (पाप) से युक्त होता है ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—सातों ग्रह एक साथ नीच में नहीं हो सकते हैं। परन्तु ७ ग्रह शत्रुग्रह में हो सकते हैं इसलिये ६ और सात ग्रह का फल समान ही 'पाप दुरित समेत' एकही कहा गया है ॥ २ ॥

अथ कुम्भलग्नजातस्याशुभं फलमुपजातिकयाह—

न कुम्भलग्नं शुभमाह सत्यो न भागभेदाद्यवना वदन्ति ।

कस्यांशभेदो न तथास्ति राशेरतिप्रसङ्गस्त्विति विष्णुगुप्तः ॥३॥

न कुम्भलग्नमिति ॥ सत्याचार्यः कुम्भलग्नं जन्मनि न शुभमाह न शोभ-
नमुक्तवान् । तथा च सत्यः । “जन्मनि चन्द्रः श्रेष्ठः प्रवदेद्धोरारिनिधनवर्जः
स्यात् । होरा च भवेदिष्टा द्विपदेष्विह कुम्भवर्ष्य हि ॥ कुम्भविलगने जातो
भवति नरो दुःखशोकसन्तप्तः ।” इति । न भागभेदादिति । पुराणयवना भाग-
भेदाद्द्वादशांशभागभेदाज्जन्मनि कुम्भलग्नमशुभमिति यस्य तस्य लग्नस्य कुम्भ-
द्वादशांशे जन्म न शुभमिति तेषां मतं न कुम्भलग्ने । तथा च तन्मत्त्वानुसा-
रिणा श्रुतकीर्तिना “सर्वस्मिन्नलग्नगते कुम्भद्विरसांशको यदा भवति । राशौ न
तदा सुखितः परान्नभोजी भवेत्पुरुषः ॥” इति । अत्र विष्णुगुप्तचाणक्यावा-
हृतुः । कस्यांशभेद इति । यदुक्तम् । भागभेदात्कुम्भलग्नं जन्मनि न शुभम् ।
तत्कस्य राशेर्लग्नगतस्य । कुम्भद्वादशांशो नास्त्यपि तु सर्वस्यैवास्ति विद्यते ।
तस्माद्यदि कुम्भस्य द्वादशांशो न शुभस्तदा सर्वाण्येव लग्नोक्तानि फलानि
निरर्थकानि भवन्ति । तस्मादिति प्रसङ्गः । तेन कुम्भलग्नमेवाशुभं न तत्तद्भागभेद
इति । तथा च तद्वाक्यम् ।

“कुम्भद्वादशांशो लग्नगतो न प्रशस्यते यवनैः ।

यद्येवं सर्वेषां लग्नगतानामनिष्टफलता स्यात् ॥

घटयोगाद्वाशीनां न मतं तत्सर्वशास्त्रकाराणाम् ।

तस्मात्कुम्भविलग्नो जन्मन्यशुभो न तद्भागः ॥” इति ॥ ३ ॥

भाषा—“जन्म समय में कुम्भलग्न शुभ नहीं होता है” ऐसा सत्याचार्य कहते हैं ।
किन्तु किसी भी लग्न में कुम्भ का द्वादशांश अशुभ होता है ऐसा प्राचीन यवनाचार्यों
का मत है । किन्तु विष्णुगुप्त कहते हैं कि—ऐसी कौनसी राशि है जिसमें कुम्भ का
द्वादशांश नहीं है? अर्थात् कुम्भ का द्वादशांश तो सब राशि में है तब तो सब राशि

लग्न में अशुभ हो जायेंगे, इसलिए ऐसा मानना अति-प्रसङ्ग है । इसलिये कुम्भ लग्न ही जन्म में अशुभ है ॥ ३ ॥

अधुना होरास्थानां प्रहाणां फलं वसंततिलकेनाह—

यातेष्वसत्स्वसमभेषु दिनेशहोरां ख्यातो महोद्यमबलार्थयुतोऽतितेजाः ।

चान्द्रीं शुभेषु युजि मादवकान्तिसौख्यसौभाग्यधीमधुरवाक्ययुतः प्रजातः

यातेष्विति ॥ असदग्रहाः पापाः तेष्वसत्सु पापेषु असमभेषु विषम-
राश्यवस्थितेषु न केवलं यावद्दिनेशहोरामादित्यहोरां यातेषु प्राप्तेषु विषमरा-
शिषु पापाः प्रथमार्द्धस्था यदा भवन्ति तदा जातः ख्यातः सर्वत्र प्रसिद्धः महो-
द्यमबलार्थयुतः महत्सु कार्येषु धीमरतो, बलवान् वीर्यवान्, अर्थयुतो धनवान्,
अतितेजा अतितेजस्वी भवति । चान्द्रीं शुभेष्विति । युजि युगाशौ शुभेषु सौम्य-
ग्रहेषु सौम्यग्रहेषु चान्द्रीं होरां यातेषु समराशिषु प्रथमार्द्धस्थाः सौम्या भवन्ति
तदा जातो मादवयुतो मृदुस्वभावः, कान्तियुतो द्युतिमान्, सौख्ययुतः
सुखान्वितः सौभाग्ययुतः सर्वजनप्रियः, धीयुतः मतिवान्, मधुरवाक्ययुतः प्रियं-
वदः एतैः गुणैर्युक्तो जातो भवति ॥ ४ ॥

भाषा—यदि पापग्रह विषम राशि और सूर्य भी होरा में हो तो जातक सर्वत्र
विख्यात, महा उद्यमी और धन से युत तथा परम तेजस्वी होता है । एवं यदि शुभग्रह
समराशि और चन्द्रमा की होरा में हो तो जातक कोमल कान्ति, सुख, सौभाग्य, बुद्धि-
से युत और प्रियभाषी होता है ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—यदि पापग्रह विषम राशि और रवि की होरा में तथा शुभग्रह सम-
राशि और चन्द्र होरा में हो तो ऊपर कहे हुए दोनों प्रकार के गुणों से युक्त होता है,
इत्यादि अपनी बुद्धि से भी समझना चाहिए ॥ ४ ॥

अथ पुनरपि होरागतफलमिन्द्रवज्रयाह—

तास्वेव होरास्वपरार्द्धेषु ज्ञेया नराः पूर्वगुणेषु मध्याः ।

व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेषु मर्त्या भवन्त्युक्तगुणैर्विहीनाः ॥ ५ ॥

तास्वेवेति ॥ तास्वेव पूर्वोक्तासु होरास्वपरार्द्धेष्वन्यराश्याश्रितेषु जाता
नराः सर्वेषु पूर्वोक्तगुणेषु मध्याः भवन्ति । एतदुक्तं भवति । समराशिषु
रविहोरायां पापग्रहाणामवस्थानं भवति तदा जातानां पूर्वोक्तगुणा मध्या
भवन्ति । एवं विषमराशिषु चन्द्रहोरायां सौम्यग्रहाणामवस्थानं भवति तदा
जातानां पूर्वोक्तगुणा मध्या भवन्ति । व्यत्यस्तहोराभवनस्थितेष्विति व्यत्यस्तासु
विपरोत्तस्थासु होरासु व्यत्यस्तेषु च भवनेषु राशिषु स्थितेषु ग्रहेषु जाता मर्त्या
मनुष्या उक्तगुणैः प्रागुद्दिष्टैः गुणैः विहीना वर्जिता भवन्ति । एतदुक्तं भवति
समराशिषु चन्द्रहोरायां पापानामवस्थानं भवति तदा जाता महोद्यमबलार्थ-
हीना भवन्ति वितेजसश्च । एवं विषमराशिषु आदित्यहोरायां सौम्यानामवस्थानं
भवति तदा जाता मादवकान्तिसौख्यसौभाग्यधीमधुरवाक्यविहीना भवन्ति ।

अत्र च दर्शिते ग्रहावस्थाने यथा यथा ग्रहबहुत्वं भवति तथा तथा गुणबहु-
त्वं वक्तव्यम् ॥ ५ ॥

भाषा—यदि पापग्रह सूर्य होरा में होते हुए भी यदि समराशि में हो, एवं शुभग्रह
यदि चन्द्र होरा में होते हुए भी विषम राशि में हो तो जातक पूर्व कथित गुणों में मध्यम
होता है । यदि बिल्कुल विपरीत (अर्थात् पापग्रह चन्द्र होरा और समराशि में हो और
शुभग्रह रविहोरा और विषम राशि में हो) तो जातक ऊपर कहे हुए गुणों से हीन
होता है ॥ ५ ॥

अथ द्रेष्काणावस्थानाच्चन्द्रस्य फलं वसन्ततिलकेनाह—

कल्याणरूपगुणमात्मसुहृद्द्रेष्काणे चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाथगुणं करोति ।
व्यालोद्यतायुधचतुश्चरणण्डजेषु तीक्ष्णोऽतिहिंस्रगुरुतत्परतोऽटनश्च ॥ ६ ॥

कल्याणरूपगुणमिति ॥ आत्मीयद्रेष्काणे यदा चन्द्रः स्थितो भवति
अथवा सुहृद्द्रेष्काणे स्थितस्तदा जातः कल्याणरूपगुणः प्रशस्तरूपः प्रशस्तगुणश्च
भवति । आत्मीयद्रेष्काणमित्रद्रेष्काणावस्थानं विनान्यद्रेष्काणावस्थिते
चन्द्रमसि विचारः । यस्मादुक्तान्यगस्तदधिनाथगुणं करोति । यस्मिन् द्रेष्काणे
चन्द्रमा व्यवस्थितस्तस्य योऽधिपतिः स यदि चन्द्रस्य तत्कालमध्यस्थस्तदा
जात्यस्य मध्यमौ रूपगुणौ भवतः । अथ द्रेष्काणाधिपतिश्चन्द्रस्य तत्कालमरि-
स्तदा जातो रूपगुणहीनो भवति । व्यालोद्यतायुवेति । व्यालद्रेष्काणः सर्प-
द्रेष्काणस्तत्रस्थे चन्द्रे जातः तीक्ष्ण उग्रो भवति । उद्यतायुधद्रेष्काणः सायु-
धस्तस्थे चन्द्रे जातोऽतिहिंस्रो मारणात्मको भवति । प्राणि-चातरत इत्यर्थः ।
चतुश्चरणः तत्रस्थे चन्द्र गुरुतत्परतो गुरुदाराभिगामी भवति । अण्डज-
द्रेष्काणः पक्षिद्रेष्काणस्तत्रस्थे चन्द्रेऽटनः परिभ्रमणशीलो भवति । आत्मीया-
दिद्रेष्काणस्थे चन्द्रमसि व्यालद्रेष्काणस्थे चन्द्रे संभवतः फलद्वयमपि वक्त-
व्यम् । अत्र व्यालद्रेष्काणाः कर्कटद्वितीयः कर्कटतृतीयः वृश्चिकाद्यः वृश्चिकद्वि-
तीयः मीनतृतीयः उद्यतायुधद्रेष्काणाः । मेषाद्यः मेषतृतीयः मिथुनद्वितीयः मि-
थुनतृतीयः, सिंहतृतीयः, कन्याद्वितीयः तुलातृतीयः, धनुषि प्रथमः धनुषि
तृतीयः, मकरतृतीयः । अथ चतुष्पदद्रेष्काणाः मेषद्वितीयः वृषद्वितीयः वृष-
तृतीयः कर्कप्रथमः सिंहप्रथमः सिंहद्वितीयः सिंहतृतीयः तुलातृतीयः वृश्चिक-
तृतीयः धनुषि प्रथमः (१) मकराद्यः । अथ खगद्रेष्काणाः । मिथुनद्वितीयः
सिंहप्रथमः तुलाद्वितीयः कुम्भप्रथमः । अत्रापि गुणद्वयान्तर्भूतद्रेष्काणस्थे चन्द्रे
फलद्वयं वक्तव्यमिति ॥ ६ ॥

भाषा—चन्द्रमा यदि अपने या मित्र के द्रेष्काण में हो तो जातक उत्तम रूप और
उत्तम गुणों से युक्त होता है । अन्य द्रेष्काण में हो तो तदनुसार ही गुण और रूप होता

है । अर्थात् सम के द्रेष्काण में हो तो रूप और गुण सम होता है । यदि शत्रु के द्रेष्काण में हो तो रूप और गुण निकृष्ट (अधम) होते हैं । यदि चन्द्रमा सर्प द्रेष्काण में हो तो जातक उग्र (क्रूर) स्वभाववाला, यदि उद्यतायुध द्रेष्काण में चन्द्रमा हो तो अतिहिंसक, चतुष्पद द्रेष्काण में हो तो जातक गुरुपत्नीगामी, और पक्षी द्रेष्काण में चन्द्रमा के रहने से जातक भ्रमणशील होता है ॥ ६ ॥

विशेष अर्थ—यदि सर्पादि द्रेष्काण चन्द्रमा का अपना या मित्र का हो तो दोनों प्रकार के फल होते हैं ।

सर्प द्रेष्काण—कर्क में दूसरा, तीसरा, वृश्चिक में प्रथम, द्वितीय, मीन में तृतीय ।

उद्यतायुध द्रेष्काण—मेष में प्रथम और तृतीय, मिथुन में द्वितीय और तृतीय, सिंह में द्वितीय और तृतीय, कन्या में द्वितीय, तुला में तृतीय, मकर में तृतीय ।

चतुष्पद द्रेष्काण—मेष का द्वितीय, वृष का द्वितीय, तृतीय, कर्क का प्रथम, सिंह का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, तुला का तृतीय, वृश्चिक का तृतीय, धनु का प्रथम और मकर का प्रथम ।

पक्षी द्रेष्काण—मिथुन का द्वितीय, सिंह का प्रथम, तुला का द्वितीय, कुम्भ का प्रथम ।

आगे द्रेष्काणाध्याय देखिये । यहाँ भी जिस द्रेष्काण में दो रूप हैं उसमें दोनों फल समझना चाहिये ॥ ६ ॥

अधुना मेषादिनवांशकजातस्य स्वरूपं शालिन्याह—

स्तेनो भोक्ता पण्डितादथो नरेन्द्रः क्लीबः शूरो विष्टिकृदासवृत्तिः ।

पापो हिंस्रोऽभीश्च वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशा राशिष्वद्वादशांशैः ॥ ७ ॥

स्तेन इति । मेषवर्ज्यभन्यस्मिन् राशौ लग्नगते मेषनवांशके जातः स्तेन-
शूरो भवति । वृषवर्ज्यवृषनवांशके जातो भोक्ता असञ्चयशीलः । एवं मिथुन-
वर्ज्य मिथुनवांशके जातः पण्डितो विद्वान्भवति । कर्कटनवांशके जातः आढ्यः
ईश्वरः । सिंहांशके नरेन्द्रो राजा । कन्यांशके क्लीबः पुरुषाकाररहितः ।
तुलांशके शूरः संग्रामप्रियः । वृश्चिकांशस्थे विष्टिकृद्भारजीवी । धन्यंशके दास-
वृत्तिः । मकरांशके पापः । कुभांशके हिंस्रः क्रूरः । मीनांशकेऽभीः निर्भयः ।
केचिद्धीरिति पठन्ति । अधीः बुद्धिरहितः । आचार्यस्य चाभीरभिमतम् ।
तथा च स्वल्पजातके । “तस्करभोक्तृविचक्षणधनिनृपतिनपुंसकाभयद्विराजः ।
खलपापोमोक्तृष्टा मेषाद्यानां नवांशभवाः ॥” इति । वर्गोत्तमांशेष्वेषामीशाः ।
एष्वेव राशिषु वर्गोत्तमांशेषु जाता एषामेव पूर्वोक्तानामीशाः स्वामिनो
भवन्ति । मेषलग्ने मेषनवांशके जातश्चौरस्वामी भवति । वृषलग्ने वृषनवांशके
जातो भोक्तृणां सञ्चयशीलानां स्वामी भवति । एवं मिथुने पण्डितस्वामी ।
कर्कटलग्ने ईश्वराणां स्वामी महाधनिकः । सिंहे नृपस्वामी महाराजाधिराजः ।
कन्यायां क्लीबस्वामी । तुलायां शूराणां स्वामी । वृश्चिके भारवाहानां
स्वामी । धनिनि दासानां स्वामी । मकरे पापानां स्वामी । कुम्भे क्रूराणां

स्वामी । मीनांशकेऽभयानां स्वामी । राशिवद्द्वादशांशैरिति । द्वादशांशः राशिवत्फलानि वाच्यानि । यानि मेषादिस्थे चन्द्रमसि फलान्यभिहितानि वृत्तात्ताम्रहगित्येवमादीनि तान्येव मेषादिद्वादशांशकजातस्य बक्तव्यानीति ॥७॥

भाषा—वर्गोत्तम छोड़कर लग्न में मेष का नवांश हो तो जातक स्तेन (चोर) होता है । वृष का नवमांश हो तो भोगी, मिथुन का नवांश हो तो पण्डित, कर्क का नवांश हो तो धनवान्, सिंह का नवांश हो तो राजा, कन्या का नवांश हो तो धनवान्, सिंह का नवांश हो तो संग्रामप्रिय, वृश्चिक का नवांश हो तो भार ढोने वाला, धनु का नवांश हो तो भृत्य, मकर का नवांश हो तो पापी, कुम्भ का नवांश हो तो हिंसक और मीन का नवांश हो तो निर्भय होता है । किन्तु यदि वर्गोत्तम नवांश हो तो इन सबों का अधिपति होता है । तथा मेषादि द्वादशांश के फल के समान ही होते हैं ॥ ७ ॥

विशेष अर्थ—जो राशि लग्न में हो उसी का नवांश वर्गोत्तम कहलाता है । जैसे मेष लग्न में मेष का ही नवांश हो तो चोरों का राजा, वृष लग्न में वृष का ही नवांश हो तो भोगियों में श्रेष्ठ, मिथुन लग्न में मिथुन का ही नवांश हो तो जातक पण्डितों में श्रेष्ठ इत्यादि अन्य लग्न में भी समझना चाहिए ॥ ७ ॥

अथ भौमस्त्रीयोः स्वत्रिंशांशकस्थयोः फलं वसन्ततिलकेनाह—
जायान्वितो बलविभूषणसत्त्वयुक्तस्तेजोऽतिसाहसयुतश्च कुजे स्वभागे ।
रोगी मृतस्वयुवतिर्विषमोऽन्यदारो दुःखी परिच्छदयुतो मलिनोऽर्कपुत्रे च

जायान्वित इति ॥ जायान्वितो भार्यायुक्तः, बलं वीर्यं, विभूषणान्यलङ्कार-
णानि, सत्त्वमौदार्यमेतैर्युक्तः तथातिज्ञाः अतिसाहसेनासमीक्षितकार्यकरणेन
च युक्तः, एवंविधः कुजे भौमे स्वभागे स्वत्रिंशांशकस्थे जातो भवति । रोगी
व्याधितः, मृतस्वयुवतिः मृता स्वा आत्मीया युवतिर्भार्या यस्य । विषमः क्रूरः,
अन्यदारोऽन्यसम्बन्धिनी दारा यस्य परदारासक्तः । दुःखी निःसुखः, परि-
च्छदयुतो गृहवस्त्रपरिवारापेतः, मलिनः मलोपेतः एवंविधोऽर्कपुत्रे सौरे
स्वत्रिंशांशकस्थे जातो भवति । नन्वत्र त्रिंशांशकग्रहणं नास्ति, तत्कथं ज्ञायते
त्रिंशांशकफलमेतत् । उच्यते । शुक्रफलाभिधाने त्रिंशांशकग्रहणं भविष्यति ॥८॥

भाषा—यदि मंगल अपने त्रिंशांश में हो तो जातक स्त्री सहित, बल, भूषण,
उदारतादि गुणों से युक्त, अत्यन्त तेजस्वी और साहसी होता है । यदि शनि अपने
त्रिंशांश में हो तो जातक रोगी, मृतभार्य, कुटिल, परस्त्री को रखने वाला, दुःखी
और गृहवस्त्रादि से युक्त होता है ॥ ८ ॥

अथ जीवबुधयोः स्वत्रिंशांशकस्थयोः जातस्य स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—
स्वांशे गुरौ धनयशःसुखबुद्धियुक्तास्तेजस्विपूज्यनिरुगुधमभोगवन्तः ।
मेषाकलाकपटकाव्यविवादशिल्पशास्त्रार्थसाहसयुताः शशिजेऽतिमान्याः
स्वांश इति ॥ धनेन वित्तेन, यशसा कीर्त्या, सुखेन निर्दुःखत्वेन बुद्ध्या

प्रज्ञया च युक्ताः, तेजस्वी सोत्साहः, पूज्यः लोकबंधः, निरुक् स्वस्थदेहः, उद्यमवान् उत्थानशीलः, भोगसंयुक्तः, एवंविधा गुरौ जीवे स्वत्रिंशांशकस्थे जाता भवन्ति । मेधा बुद्धिः, कला गीतवाद्यनृत्यपुस्तकचित्रकर्मादिकाः, कपटः दाम्भिकत्वं, काव्यं कवेः कर्म, विवादः वाक्पटुत्वं, शिल्पं तत्तत्कर्मादि, शास्त्रार्थः सत्तामाचरानुष्ठानं, साहसमसमीक्षितकार्यकरणशीलता, अतिमान्यो-
ऽतिपूज्यः एवंविधाः शशिजे बुधे स्वत्रिंशांशकस्थे जाताः भवन्ति । केचिदत्र सर्वत्रैकवचनमेवेच्छन्ति तथापि न कश्चिद्दोषः ॥ ६ ॥

भाषा—गुरु अपने त्रिंशांश में हो तो जातक—घन, यश, सुख, बुद्धि से युक्त, तेजस्वी, जगन्मान्य, रोगरहित, उद्यमी और भोगी होता है । यदि बुध अपने त्रिंशांश में हो तो जातक—मेधावी, कला जानने वाला, कपटी, काव्य करनेवाला, शास्त्रार्थ जानने वाला, साहसी और लोक में आदरणीय होता है ॥ ९ ॥

अथ शुक्रस्य स्वत्रिंशांशकस्थस्य भौमादित्रिंशांशकस्थयोश्चन्द्रार्कयोश्च

जातस्य स्वरूपं मन्दाक्रान्तयाह—

स्वे त्रिंशांशे बहुसुतसुखारोग्यभाग्यार्थरूपः

शुक्रे तीक्ष्णः सुललितवपुः सुप्रकीर्णैन्द्रियश्च ।

शूरस्तब्धौ विषमवधकौ सद्गुणाढ्यौ सुखिज्ञौ

चार्वाङ्गैश्चै रविशशियुतेष्वारपूर्वांशकेषु ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

आश्रययोगाध्याय एकविंशः ॥ २१ ॥

स्वे त्रिंशांशे इति । बहुसुतः प्रभूतपुत्रः, बहुसुखोऽपरिमितसुखः आरोग्येण निरोगतया, भाग्यैः जनप्रियत्वेन, अर्थेन धनेन, रूपेण सुचारुतया संयुक्तः केचिद्भार्यार्थरूप इति पठन्ति । भार्यया कलत्रेण तथा तीक्ष्णः क्रूरः, सुललित-
वपुः शोभनशरीरः, सुप्रकीर्णैन्द्रियः विक्षिप्तेन्द्रियार्थः सुप्रकीर्णानि विक्षिप्तानी-
न्द्रियाणि यस्य । बहुबुद्धीगमनशीलः एवंविधः शुक्रे स्वत्रिंशांशकस्थे जातो भवति । शूरस्तब्धावित्यादि । आरपूर्वांशकेषु भौमप्रथमेषु भागेषु रविशशि-
युक्तेष्वर्केचन्द्रसंयुक्तेषु यथासंख्यं फलानि । तद्यथा । भौमत्रिंशांशकस्थेऽर्के
शूरः सङ्ग्रामप्रियः, चन्द्रे स्तब्धश्चिरकारी, सौरत्रिंशांशकस्थेऽर्के विषमः क्रूरः
भवति । चन्द्रमसि वधकः, जीवत्रिंशांशकस्थेऽर्के सद्गुणो भवति । चन्द्र-
मस्याढ्यः ईश्वरः, बुधत्रिंशांशकस्थेऽर्के सुखी भवति । चन्द्रे ज्ञः पण्डितः,
शुक्रत्रिंशांशकस्थेऽर्के चार्वाङ्गः शोभनशरीरः, चन्द्रमसोष्ठः सर्वजनप्रियः
एवमारपूर्वेष्वंशेषु आरोऽङ्गारकः पूर्वः प्रथमो येषामंशकानां त्रिंशद्भागानां
तेष्विति ॥ १० ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविबृत्तौ आश्रययोगाध्याय एकविंशः ॥ २१ ॥

भाषा—शुक्र अपने त्रिंशांश में हो तो जातक-अधिक पुत्र, सुख, भारोग्य, भाग्य, धन, रूप से युक्त, क्रूर, सुन्दर शरीर, बहुस्त्री से गमनशील होता है । यदि मंगल के त्रिंशांश में रवि हो तो स्तब्ध (धीरे कार्य करने वाला), बुध के त्रिंशांश में रवि हो तो कुटिल, चन्द्रमा हो तो हिंसक होता है । गुरु के त्रिंशांश में सूर्य हो तो गुणवान् और चन्द्रमा हो तो धनवान् होता है । शुक्र के त्रिंशांश में सूर्य हो तो सुखी, चन्द्रमा हो तो पण्डित होता है । शनि के त्रिंशांश में सूर्य हो तो सुन्दर शरीर और चन्द्रमा हो तो सर्वजनप्रिय होता है ॥ १० ॥

अथ प्रकीर्णकाध्यायः २२ ।

अथातः प्रकीर्णकाध्यायो व्याख्यायते । मिश्रः प्रकीर्णक इत्युच्यते । तत्र ग्रहाणां परस्परं कारकसंज्ञां वैतालीयेनाह—

स्वर्चतुङ्गमूलत्रिकोणगाः कण्टकेषु यावन्त आश्रिताः ।

सर्व एव तेऽन्योन्यकारकाः कर्मगस्तु तेषां विशेषतः ॥ १ ॥

स्वर्चति ॥ स्वर्चे स्वक्षेत्रे यो ग्रहः स्थितः यश्च तुङ्गे स्वोच्चे यश्च मूलत्रिकोणे स्थितः स च यदि लग्नकण्टकेषु केन्द्रेष्वाश्रितः स्थितो भवति एवंविधस्य ग्रहस्यान्योऽप्येवंविधः केन्द्रगो यदि भवति तदा तौ ग्रहावन्योन्यं परस्परं कारकाख्यौ भवतः । अनेन प्रकारेण यः कर्मगः । यो यस्मात् ग्रहात् दशमस्थानस्थः स विशेषतः विशेषेण तेषां ग्रहाणां मध्यात्कारकसंज्ञां लभते । अत उक्तम् । कर्मगस्तु तेषां विशेषत इति ॥ १ ॥

भाषा—जितने ग्रह अपने गृह, उच्च या मूलत्रिकोण में होकर परस्पर केन्द्र में हों वे सब ग्रह परस्पर कारक कहलाते हैं । उनमें भी जिससे जो दशमस्थान में रहता है वह विशेष रूप से कारक होता है ॥ १ ॥

अथास्यैवोदाहरणप्रदर्शनार्थं रथोद्धृतयाह—

कर्कटोदयगते यथोदुपे स्वोच्चगाः कुजयमार्कसूरयः ।

कारका निगदिताः परस्परं लग्नगस्य सकलोऽम्बराम्बुगः ॥२॥

कर्कटेति ॥ यथा कर्कटोदये कुलीरलग्ने तत्स्थे चोदुपे चन्द्रे कुजोऽङ्गारकः,

यमः सौर, अर्क आदित्यः, सूरिर्बृहस्पतिः एते कुजयमार्कसूरयः स्वोच्चगाः आत्मीय-तुङ्गस्था यदि भवन्ति कुजो मकरे, यमस्तुलायामर्को मेघे, सूरिः कर्कटे तदा ते परस्परमन्योन्यङ्कारका निगदिता उक्ताः अनेन प्रकारेण यावन्तो भवन्ति तावन्तः परस्परं कारकाख्याः । अनेनोदहरणेनैव-

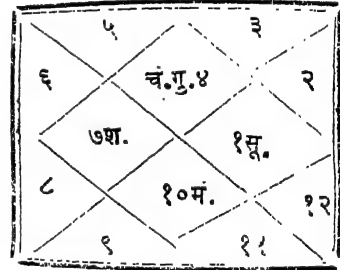
| | |
|------|---------|
| ५ | ३ |
| ६ | चं.बृ.४ |
| ७ श. | सू. १ |
| ८ | १०मं. |
| ९ | ११ |
| १२ | |

अतिपादितं भवति । यथा पुरुषस्य जन्मलग्नात् केन्द्रं विना स्वक्षेत्रे उच्च-

त्रिकोणागाः अपि परस्परं कण्टकगास्तदा कारकसंज्ञामपि लभन्ते । लग्नग-
स्येति । लग्नगस्य ग्रहस्य प्राग्लगने समवस्थितस्य सकलः सर्वो ग्रहोऽम्बरगः
दशमस्थानस्थश्चांबुगश्चतुर्थस्थानस्थश्च कारकसंज्ञो भवति । अन्येनैतदुक्तं
भवति लग्नगो ग्रहः स्वक्षेत्रस्वोच्चत्रिकोणेपु यद्यपि भवति तस्माद्यो दशमस्थः
चतुर्थो वा सोऽप्युच्चत्रिकोणस्वक्षेत्राणामन्यतमस्थो भवति तथापि लग्नगतस्य
स कारकाख्यो भवति न तस्य लग्नगत इति । अत उक्तम् । लग्नगस्य सकलो-
ऽम्बरांबुग इति ॥ २ ॥

भाषा—जैसे कर्क लग्न में चन्द्रमा हो और मकर में मंगल, तुला में शनि,
मेघ में सूर्य, कर्क में ही गुरु हो तो स्वराशि और उच्चगत होकर परस्पर केन्द्र में
पड़ने के कारण ये चारों ग्रह परस्पर कारक हुए । लग्नगत के चतुर्थ और दशम में
जो उच्चादिस्थित हो वे सब विशेष कारक होते हैं ।

जैसे इसी उदाहरण में शनि से १० में स्वराशि और स्वोच्चगत चन्द्रमा और
गुरु ये दोनों विशेष कारक हुए । एवं मंगल
से दशम स्थान में शनि स्वोच्च गत होने से
विशेष कारक है । जातक को राज्यादि
सुखदायक ग्रह कारक कहलाते हैं । कारक
ग्रह परस्पर केन्द्र में पड़ने से परस्पर शुभ
फल देने में सहायक होते हैं । ये परस्पर
दशा अन्तर्दशा में शुभप्रद होते हैं । २ ॥



अथ पुनरपि अन्यत्कारकलक्षणमनुष्ठुभाह—

स्वत्रिकोणोच्चगो हेतुरन्योन्यं यदि कर्मगः ।

सुहृत्तद्गुणसम्पन्नः कारकश्चापि स स्मृतः ॥ ३ ॥

स्वत्रिकोणोच्चग इति ॥ स्वत्रिकोणोच्चगो ग्रहः कारकत्वे हेतुः कारणं
न केन्द्रस्थः तथाऽन्योन्यस्य ग्रहस्य लग्नकेन्द्रं विनाप्यवस्थितस्य यदि कश्चिद्ग्रहः
कर्मगो दशमस्थानस्थो भवति स च स्वक्षेत्रोच्चमूलत्रिकोणानामन्यतमे
भवति । यस्माच्च दशमस्तस्य यदि सुहृन्मित्रं निसर्गतो न केवलं यावत्तद्-
गुणसम्पन्नस्तेन मित्रगुणेन संयुक्तात्कालिके मित्रामित्रविधिनाधिमित्रतां
प्राप्नोस्तथाविधः सर्वग्रहः कारकाख्यो भवति । यस्य च दशमः स तस्य
कारकाख्यो न भवति । कारकसंज्ञा च यात्रायामुपयुज्यते । यतस्तत्रोक्तम् ।
“रिक्कोपहतदशायां जन्मोदयनाथशत्रुपाके च । स्वदेशकारकदशासंश्रयणीयो
नरेन्द्रपतिः” इति । तथा सखिवेशिगृहयुक्तः कारकर्त्तुऽपि चन्द्रः जयसुख-
धनदाता तत्प्रहर्तान्यथेति ॥ ३ ॥

भाषा—स्वोच्च, स्वगृह, स्वमूलत्रिकोण गत ग्रह ही कारकत्व में हेतु है, न कि
अन्य से ही केन्द्रगत । अत एव अन्यत्र भी स्वोच्चादि स्थित ग्रह से कोई ग्रह

दशम में स्वोच्चादि-स्थान स्थित हो और वह नैसर्गिक मित्र हो तो वह भी कारक होता है ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—दशम चतुर्थ में विशेषण इसलिये है कि परस्पर दशम चतुर्थ में होने से तात्कालिक मैत्री होती है । और उन दोनों में नैसर्गिक मैत्री भी हो तो अधिकार हो जाने से विशेष कारकत्व होता है ॥ ३ ॥

अथ कारकसंज्ञाप्रयोजनमनुष्ठुभाह—

शुभं वर्गोत्तमै जन्म वैशिस्थाने च सद्ग्रहे ।

अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्यग्रहेषु च ॥ ४ ॥

शुभमिति ॥ यस्य लग्ननवांशे वर्गोत्तमाख्ये जन्म भवति चन्द्रोऽपि वा वर्गोत्तमांशगतो भवति तस्य शुभं जन्म । यस्मिन्नाशौ पुरुषस्य जन्मसमयेऽर्कः स्थितस्तस्माद्राशयो द्वितीया राशिः स वैशिसंज्ञः । यस्य च प्रागुक्ते वैशिस्थाने सद्ग्रहः सौम्यग्रहो ज्ञगुरुसितानामन्यतमो भवति तस्यापि शुभं जन्म । यस्य जन्मलग्नं केन्द्रचतुष्टयादेकमप्यशून्यं केन्द्रं भवति तस्यापि शुभं जन्म । अत्र सौम्यग्रहाधिष्ठिते केन्द्रे विशेषेण शुभं जन्म । यस्मादुक्तमनेनैव—“एकस्मिन्नपि केन्द्रे यदि सौम्यो न ग्रहोऽस्ति यात्रायाम् । जन्मन्यथवा कर्मणि न तच्छुभं प्राहुराचार्याः ॥” यस्य जन्मनि कारकाख्याः कारकसंज्ञा ग्रहा भवन्ति तस्यापि शुभं जन्म । अत्र यथा गुणाधिक्यं तथा शुभतरमेव जन्म ॥ ४ ॥

भाषा—लग्न या चन्द्रमा वर्गोत्तम नवांश में हो तो जन्म शुभ होता है । अथवा सूर्य से द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हो तो भी जन्म शुभ होता है । अथवा लग्न से केन्द्र स्थान शून्य न हो अर्थात् किसी भी केन्द्र में ग्रह हो तो जन्म शुभ होता है । एवं जन्मकुण्डली में कारक ग्रह हो तो भी जन्म शुभ होता है । अर्थात् ऐसे लग्न में जन्म लेने वाला यशस्वी और सुखी होता है ॥ ४ ॥

अथ येन योगेन जातो यौवने सुखी भवति तं दशापतिफलपाकं
वैतालीयेनाह—

मध्ये वयसः सुखप्रदाः केन्द्रस्था गुरुजन्मलग्नपाः ।

पृष्ठोभयकोदयर्चगास्त्वन्तेऽन्तः प्रथमेषु पाकदाः ॥ ५ ॥

मध्ये वयस इति ॥ गुरुर्जीवः जन्मनि यत्र राशौ चन्द्रमाः स्थितः तदधिपतिः जन्मपः यस्मिन्लग्ने जातः तदधिपो लग्नपः एषामन्यतमो यस्य लग्न-केन्द्रे भवति तस्य वयोमध्ये सुखप्रदो भवति, यौवने सुखी भवतीत्यर्थः । अत्र च यवनेश्वरः—“जन्माधिपो लग्नपतिश्च येषां चतुष्टये स्याद्वलवान् गुरुर्वा । चतुर्षु होरादिषु संगतः स्याच्चतुर्वयःकालफलप्रदः स्यात् ॥” पृष्ठोभयेत्यादि । दशापतिर्दशाप्रवेशकाले पृष्ठोदयराशिगो मेषवृषकर्कधनिमकरा-शामन्यतमस्थितो यदा भवति तदा स्वदशान्ते फलप्रदो भवति । अयोभयोदये मीने भवति तदान्तर्दशामध्ये फलप्रदो भवति । अथ कोदये शीर्षोदये मिथुन-

सिंहकन्यातुलावृश्चिककुम्भानामन्यतमे यदा भवति तदा प्रथमदशप्रवेशसमये फलप्रदो भवति । एवं शुभस्याप्यशुभस्य पक्तिर्वाच्या । दशाकालं त्रिधा परिकल्प्य यस्मिन्काले तस्य फलपक्तिर्ज्ञायते आद्ये मध्येऽन्त्ये वा तत्र चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथेति । एतत्त्रिधा विभक्ते दशाकाले ज्ञेयम् । पूर्वोक्तं सर्वं दशाकालं योग्यम् । दशापतिः प्रवेशकाले तिष्ठन्नेव तत्फलं ददातीत्येतत्कथं गम्यते । यवनेश्वरादिभिः सामान्येन चोक्तम् । उच्यते । भगवतो गर्गवचनात् । तथा च भगवान् गार्गिः—

“आद्यन्तमध्यफलदः शिरःपृष्ठोभयोदये ।

दशप्रवेशसमये तिष्ठन् वाच्यो दशापतिः ॥” इति ॥ ५ ॥

भाषा—गुरु जन्मराशि-स्वामी और जन्मलग्न-स्वामी ये केन्द्र में हो तो वयस के बीच (गुवावस्था) में सुखप्रद होते हैं । जो ग्रह पृष्ठोदय (मेष, वृष, कर्क, धनु पूर्वार्ध, मकर) राशि में हो वह दशा के अन्त में, जो उभयोदय (मीन) में हो वह दशा के मध्य में और जो शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, धनु का उत्तरार्ध, वृश्चिक, कुम्भ) में हो वह दशा के आदि में ही अपने दशाफल को देता है ॥ ५ ॥

अथाष्टकवर्गफलस्य कालं पुष्पिताग्रयाऽऽह—

दिनकररुधिरौ प्रवेशकाले गुरुभृगुजौ भवनस्य मध्ययातौ ।

रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ शशितनयः फलदस्तु सर्वकालम् ॥६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

प्रकीर्णध्यायो द्वाविंशः ॥ २२ ॥

दिनकरेति ॥ चारवशात्पत्तिकाले यस्मिन् राशौ शुभमशुभं वाष्टकवर्गफलं दिनकर आदित्यः प्रयच्छति तस्मिन् राशौ प्रवेशकाले आद्ये त्रिभागे तिष्ठन्नेव फलं प्रयच्छति । एवमेव रुधिरौ भौमः । गुरुर्जीवः, भृगुजः शुक्रः, एतौ गुरुभृगुजौ भवनस्य राशोर्मध्ययातौ मध्यत्रिभागगतौ फलप्रदौ भवतः । रविसुतः सौरः, शशी चन्द्रः, एतौ रविसुतशशिनौ विनिर्गमस्थौ राश्यन्तत्रिभागस्थौ फलप्रदौ भवतः । शशीतनयो बुधः सर्वकालं फलदः सर्वभागस्थः फलप्रदो भवति । सर्वस्मिन्नेव राशौ यावत्तिष्ठति तावत्फलं शुभमशुभं वा यथाप्राप्तं ददातीति ॥ ६ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ प्रकीर्णध्यायो द्वाविंशः ॥२२॥

भाषा—रवि और मंगल ये दोनों राशि में प्रवेश के समय में ही अष्टवर्गानुसार अपने अपने फल को देते हैं । गुरु और शुक्र राशि के मध्य में और शनि चन्द्रमा राशि के अन्त में और बुध सर्वदा अपने फल को देते हैं ।

विशेष—एक राशि में ३० अंश होते हैं अतः १० अंश तक राशि का आदि और उसके बाद २० अंश तक मध्य उसके बाद ३० अंश तक अन्त समझना चाहिए ॥ ६ ॥

अथानिष्टाध्यायः ॥ २३ ॥

अथातोऽनिष्टाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव दारसुतहीनजन्मज्ञानं
शार्दूलविक्रीडितेनाह—

लग्नात्पुत्रकलत्रमे शुभपतिप्राप्तेऽथवालोकिते

चन्द्राद्वा यदि सम्पदस्ति हि तयोर्ज्ञेयोऽन्यथासम्भवः ।

पाथोनोदयगे रवौ रविसुतो मीनस्थितो दारहा

पुत्रस्थानगतश्च पुत्रमरणं पुत्रोऽवनेर्यच्छति ॥ १ ॥

लग्नादिति ॥ यस्य जन्मनि लग्नात् पुत्रं पञ्चमस्थानं शुभग्रहेण स्व-
पतिना च प्राप्तं संयुक्तं भवत्यथवा आलोकितं दृष्टं भवति तस्यापि पुत्रसम्पत्
अस्तीति वक्तव्यम् । चन्द्राद्वा पञ्चमस्थानं यस्य शुभग्रहेण स्वपतिना वा
युतदृष्टं भवति तस्यापि पुत्रसम्पदस्ति । यस्य लग्नचन्द्रयोरुभयोरपि पञ्चम-
स्थानं शुभग्रहेण स्वपतिना वा युतदृष्टं न भवति तस्य पुत्रासम्भवः, अपुत्रत्वं
वक्तव्यम् । अत्र केचिद् द्वादशप्रकारं पुत्रं वर्णयन्ति—औरसः, क्षेत्रजः, दत्तः,
कृत्रिमः, अधमप्रभवः, गूढोत्पन्नः, अपविद्धः, पौनर्भवः, कानीनः, सहोदः,
क्रीतकः, दासीप्रभव इति । तथा च सारावल्याम् । “शुभभवनमथ शुभयुतं
शुभदृष्टं वा सुतर्क्षमिह येषाम् ॥ तेषां प्रभवः पुंसां भवत्यवश्यं न विपरीतम् ॥
एकतमे गुरुवर्गे शुभराशावौरसो भवेत्पुत्रः । लग्नाच्चन्द्रादथवा बलयुक्ता-
द्वीक्षितोऽपि वा सौम्यैः ॥ संख्या नवांशतुल्या सौम्यांशे तावती सदा दृष्टा ।
शुभदृष्टे तद्विगुणा क्लिष्टा पापांशके तथा दृष्टा ॥ सौरर्क्षे सौरगुणो बुधदृष्टो
गुरुकुजार्कद्वयीनः । क्षेत्रजपुत्रं जनयति बौधोऽपि गुणो रविजदृष्टः ॥ मान्दं
सुतर्क्षमिदं निरीक्षिते यदि शनैश्चरेण युतम् । दत्तकपुत्रोत्पत्तिः क्रीतश्च बुधस्य
चैवं स्यात् ॥ सप्तमभागे कौजे सौरयुते पञ्चमे सदा भवने । कृत्रिमपुत्रं
विद्याच्छेषग्रहदर्शानामुक्ते ॥ वर्गे पञ्चमराशौ सौरे सूर्ये च तत्र संयुक्ते ।
लोहितदृष्टे वाच्यो जातश्च सुतोऽधमप्रभवः ॥ चन्द्रे भौमांशगते धीस्थे मन्दा-
बलोकिते भवति । गूढोत्पत्तिः पुत्रः शेषग्रहदर्शनायाते ॥ तस्मिन्नेव च भौमे
शनिवर्गस्थे निरीक्षिते रविणा । पुरुषस्य भवति पुत्रोऽपविद्ध इति चरकमुनि-
वचनात् ॥ शनिवर्गस्थे चन्द्रे शनियुक्ते पञ्चमे सदा सौरे । शुक्ररविभ्यां दृष्टे
पुत्रः पौनर्भवो भवति ॥ ब्रूया यदार्कसत्त्वात्कलाहतस्यैव पञ्चमे भवने । रवि-
दृष्टेऽप्यथ सहिते कानीनः सम्भवति पुत्रः ॥ वर्गे रविचन्द्रमसोः सुतगोहे चन्द्र-
सूर्यसंयुक्ते । शुक्रेण दृष्टमात्रे पुत्रः कथितः सहोदश्च ॥ पापैर्बलिभिर्युक्ते पापर्क्षे
पञ्चमे सदा राशौ । जातो पुत्रः पुरुषः सौम्यग्रहदर्शनातीते ॥ शुक्रनवांशे तस्मिन्
शुक्रेण निरीक्षिते त्वपत्यानि । दासीप्रभवानि वदेच्चन्द्रेऽपि केचिदाचार्याः ॥
सितशशिवर्गे धीस्थे ताभ्यां दृष्टेऽथवापि संयुक्ते । प्रायेण दारिकाः स्युस्तद्राशि-

गणोऽपि वान्यथा पुत्राः ॥” इति । एवं लग्नाच्चन्द्राद्वा कलत्रभं सप्तमं स्थानं यस्य शुभेन स्वपत्निना वा युतदृष्टं भवति तस्य कलत्रसम्पदस्तीति वक्तव्यम् । एवं लग्नाच्चन्द्राद्वा यस्य सप्तमस्थानं शुभग्रहेण स्वपत्निना वा युतदृष्टं न भवति तस्य कलत्रसम्पन्न भवतीति वक्तव्यम् । भार्या तस्य न भवतीत्यर्थः । यत उक्तं ज्योतिषशास्त्रम् । अन्यथा तयोः पुत्रकलत्रयोरसम्भवः आभासो ज्योः ज्ञातव्यः । अत्र पुत्रकलत्रग्रहणमुपलक्षणार्थम् । सर्वेषामपि तन्नादानां लग्नाच्चन्द्राद्वा स्थितिरेवमव्या । यतो द्वावेतौ मूर्तिसंज्ञौ । तथा च यवनेश्वरः । “मूर्तिं च होरां शशिनं च विन्द्यात्” इति । अत्र कलत्रस्थानेऽपि केचिद्विशेषं वर्णयन्ति—“शक्रेन्दुजीवशशिजैः सकलैस्त्रिभिश्च द्वाभ्यां कलत्रभवने च तथैककेन । एषां गृहेऽपि च गणेऽथ विलोकिते वा सन्ति स्त्रियो भवनवर्ग-स्त्रगरास्वभावाः ॥ एवं क्रूरैर्नाशो लग्नाच्चन्द्राद्वदेच्च बलयोगात् । शशिराविजयोः कलत्रे भार्या पुंसां पुनर्भूः स्यात् ॥ भवनाधिपांशतुल्या भवन्ति नार्यो निरी-क्षणाद्वापि । एकैव रविकुजं शो गुरुबुधयोश्चापि जामित्रे ॥ प्रायेण चन्द्रसितयो-र्बलसंयुक्तेऽथवापि जामित्रे । दृष्टे वा बहुपत्न्यो भवन्ति शक्रे विशेषेण ॥ गुरुशुक्रयोः स्ववर्णा रविकुजशशिमानुजैर्भवन्त्यूनाः । शुक्रे वेश्याप्रायाश्चन्द्रेऽपि बदन्ति केतुमालाख्याः ॥” पाथोनेत्यादि । पाथोनः कन्या तस्मिन्नुदयगे लग्न-स्थे तत्र च रवावर्के स्थिते रविसुतः सौरः मीनस्थो यदि भवति तदा दारहा भवति दारात्कलत्राणि हन्ति घातयति । तस्य पुरुषस्य जीवत एव भार्यामरणं वक्तव्यम् । अस्मिन्नेव योगे पाथोनोदयगे रवौ अयने भूमेः पुत्रो भौमः पुत्रस्थाने गतः पञ्चमे स्थाने गतो मकरे स्थितो भवति तदा पुत्रमरणं सुत-विपत्तिं यच्छति ददाति । तस्य जीवत एव पुत्रमरणं वक्तव्यम् ॥ १ ॥

भाषा—लग्न या चन्द्रमा से ५ वाँ भाव शुभग्रह और अपने स्वामी से युत वा दृष्ट हो तो उसको पुत्र सम्पत्ति (अधिक सुपुत्र) होते हैं । एवं सप्तम भाव यदि शुभ और स्वामी से युत दृष्ट हो तो उसे स्त्री सम्पत्ति (अधिक स्त्री वा स्त्री से पूर्ण सुख) समझना । अन्यथा (यदि शुभ स्वामी की योग दृष्टि नहीं हो और पापग्रहों का योग और दृष्टि हो तो) पुत्र और स्त्री का अभाव समझना चाहिए । यदि कन्या लग्न में सूर्य हो और उससे सप्तम मीन में गति हो तो उस पुरुष की स्त्री मर जाती है । और यदि कन्या लग्न में सूर्य और पञ्चम भाव में मङ्गल हो तो पुत्र का मरणकारक होता है ॥ १ ॥

अथ जीवत एव भार्यामरणयोगत्रयं प्रहर्षिण्याह—

उग्रग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितैर्मध्यस्थिते भृगुतनयेऽथवोग्रयोः ।

सौम्यग्रहैरसहितसंनिरीक्षिते जायावधो दहननिपातपाशजः ॥ २ ॥

उग्रग्रहैरिति ॥ उग्रग्रहाः आदित्यभौमसौराः तैः सितच्छुक्राद्यासम्भवं चतुरस्रसंस्थितैः चतुर्थाष्टमगतैः यस्य जन्म भवति तस्य जायावधो भार्या-

विपत्तिः दहनेनाग्निना भवति । तस्य जीवत एव भार्याऽग्निनाऽत्मानं व्यापादयति । अथवोग्रयोः पापयोः द्वयोर्मध्ये शुक्रादेको द्वादशेऽन्यो द्वितीये भृगुतनये शुक्रे स्थिते जातस्य निपातेनोच्छ्रितपतनाज्जायावधो भवति । तस्य जातस्य जीवत एव पतनान्नपतिता भार्या म्रियत इति । अथ वैकस्मिन्नाशावेकेन भुक्तं स्थानमनिक्रम्यान्येन भुज्यमानमप्राप्य यदि शुक्रस्यावस्थानं तदापि पापद्वयमध्यस्थो भवति । अथ यस्य जन्मनि सौम्यप्रह्यारन्यतमेन सहितः संयुक्तः शुक्रो न भवति न चापि तन्निराक्षितो दृष्टस्तस्य पाशजो जागवधो भवति । जीवत एव भार्योर्द्वन्द्वनेनात्मानं व्यापादयति । कैश्चिद्वागद्वयमेतद्व्याख्यातम् । उग्रग्रहैः सितचतुरस्रसंस्थितैरेकः सध्रमस्थिते भृगुतनयेऽथवाग्रयोः द्वितीयः सौम्यग्रहैरसहितः सन्निराक्षित इति । यागद्वयविशेषाभूतजायावधो दहननिपातपाशजः इति यागद्वयेऽपि विकल्पः । तच्चायुक्तं यस्माद्भगवान् गार्गीः—

“चतुर्थाष्टमगैः शुक्रात्सौराराकैर्हुताशनात् ।

तेषां द्वयोस्तु मध्यस्थे तथा शुक्रे निपातजः ॥

शुके सद्यागद्वयवधो भवेत् ॥” ॥ २ ॥

भाषा—शुक्र से ४, ८ स्थान में पापग्रह (शनि, सूर्य, मंगल) हो अथवा दो पापग्रहों के मध्य में शुक्र हो, शुक्र यदि शुभग्रह से युत दृष्ट नहीं हो तो तीनों योगों में क्रम से जातक की स्त्री, अग्नि में जलकर, ऊँचे स्थान स गिरकर और गले में फाँसी लगाकर मर जाती है ॥ २ ॥

अधुना विकलनयनदारजन्मयोगज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

लग्नाद्व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्मयोः

पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्मं ।

द्यूनस्थयोर्नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा

शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम् ॥ ३ ॥

लग्नादिति ॥ शशी चन्द्रः, तिग्मरश्मिः सूर्यः एतयोः लग्नाद्व्ययारिगतयोः एको व्यये द्वादशे स्थाने, द्वितीयोऽरिस्थाने, षष्ठे पत्न्या सहैकनयनस्य एकाक्षस्थ जन्म वदन्ति कथयन्ति । जातः काणो भवति न केवलं, यावत् तद्भार्या काणी भवतीत्यर्थः । द्यूनस्थयोरिति । शुक्रसूर्ययोर्द्यूनस्थयोः लग्नाद् द्वयोरपि सप्तमस्थयोः नवमयोः पञ्चमयोर्वा जातं विकलदारमुशन्ति कथयन्ति । भार्या हीनाङ्गी भवतीत्यर्थः । अत्र द्यूनस्थयोः नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा शुक्रार्कयोः कैश्चिद्वा-सम्भवमेव योगो व्याख्यातः । तच्चायुक्तम् । यस्माद्भगवान् गार्गीः—

“पञ्चमे नवमे द्यूने समेतौ सितभास्करी ।

यस्य स्यातां भवेद्भार्या तस्यैकाङ्गविवर्जिता ॥” ॥ ३ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा और सूर्य लग्न से १२।६ भाव में हो तो स्त्री सहित एक

आँखवाले का जन्म होता है । यदि लग्न से सप्तम स्थान अथवा नवम पञ्चम स्थान में शुक्र और मंगल हो तो जातक की स्त्री अंगहीन होती है ॥ ३ ॥

अथामृतकलत्रवन्ध्यापतिजन्मज्ञानं मालिन्याह—

कोणोदये भृगुतनयेऽस्तचक्रसन्धौ वन्ध्यापतिर्यदि न सुतर्क्षमिष्टयुक्तम् ।
पापग्रहैर्व्ययमदलनराशिसंस्थैः क्षीणेश शिन्यसुतकलत्रजन्मधीस्थे ॥ ४ ॥

कोणोदय इति ॥ कोणः शनैश्चरस्तस्मिन्नुदये लग्नगते भृगुतनये शुक्रे अस्तचक्रसन्धौ वृश्चिककर्कटमीनानामन्यतमान्यनवांशकस्थे न केवलं यावदस्ते लग्नात्सप्तमस्थानस्थे एवमस्तस्थश्चक्रसन्धौ यदि भवति तदा जातं वन्ध्यापतिर्भवति (१) । वन्ध्या निष्फलातिवा । एतन्मकरवृषकन्यालग्नेषु सम्भवति । अपुत्र इति वक्तव्ये वन्ध्यापतिग्रहणेनैतज्ज्ञापयति । यथा कौमारेभ्यो दारेभ्यः पुत्रोत्पत्तिर्भवत्यविरुद्धकामेभ्यो भवति । पापग्रहैरिति । पापग्रहैः व्यग्रस्थानं द्वादशं मदस्थानं सप्तमं लग्नराशिरुदयः एतेषु द्वयोरेकस्मिन् वा पापग्रहैः यथासम्भवं स्थितैः शशिनं चन्द्रे क्षीणे धीम्ये लग्नपञ्चमगे अमृतस्यापुत्रस्याकलत्रस्य च स्त्रीवर्जितस्य पुत्रभार्यावर्जितस्य जन्म भवति । जातस्य न भार्या, न पुत्रो भवतीत्यर्थः ॥ ४ ॥

भाषा—ज्ञान लग्न में हो, शुक्र राशि सन्धि (कर्क, वृश्चिक या मीन के अन्तिम अंश) में होकर सप्तम भाव में हो और यदि पंचम भाव शुभग्रह और पंचमेश से युक्त नहीं हो तो जातक वन्ध्या स्त्री का पति होता है । यदि पापग्रह १२, ७ और लग्न में हो और क्षीण चन्द्रमा यदि पंचम भाव में हो तो पुत्र स्त्री वं रहित व्यक्ति का जन्म होता है ॥ ४ ॥

अथ परयुवतिगजन्मज्ञानं हरियाह—

असितकुजयोर्वर्गोऽस्तस्थे सिते तदवेक्षिते

परयुवतिगस्तौ चेत्सेन्दुस्त्रिया सह पुंश्चलः ।

भृगुजशशिनोरस्तेऽभार्यो नरो विसुतोऽपि वा

परिणततनू नृस्योर्दृष्टौ शुभैः प्रमदापती ॥ ५ ॥

असितेति ॥ असितकुजयोः सौरभौमयोः अन्यतमस्य वर्गे सिते शुक्रे स्थिते तस्मिन्नास्तस्थे लग्नात्सप्तमगते तदवेक्षिते तयोरेव सौरारयोरन्यतरेणावेक्षिते दृष्टे जातः परयुवतिगः परदारगामी भवति । तौ चेदित्यादि ! तौ सौरारावस्ते सप्तमे स्थाने एकराशिस्थितौ सेन्दू चन्द्रसहितौ भवतः असितकुजयोः वर्गः तत्स्थः सितः तदवेक्षितः तदा जातः स्त्रिया सह पुंश्चलो भवति । स पुरुषः परदारेषु गच्छति तद्भार्या परपुरुषेषु गच्छति । भृगुजशशिनोरित्यादि ।

(१) “यदि सुतर्क्षं पञ्चमभवन्मिष्टयुक्तं (शुभस्वामियुतं) न स्यात्” इति वृटिः ।

भृगुजः शुक्रः, शशी चन्द्रः तयोः भृगुजशशिनोः एकराशिगतयोः यत्र तत्रावस्थितयोः तावेव । सितकुजावस्ते सप्तमे स्थाने भवतः तदा जातो नरः अभार्यो भवति विमुक्तो वा । वाराहोऽत्र चार्थे, न विकल्पने । अभार्यो भवत्यपुत्रश्च । परिणतनू इति । ना च छाः च नृस्त्रियौ नरस्त्रीग्रहयोरेकराशिगयोरस्ते सप्तमे तावेवासितकुजौ भवतः । तौ शुभदृष्टौ सौम्यग्रहेण केनचिद्दृश्यते तदा परिणततनू प्रमदापतो भवतः परिणते तनू ययोः । एतदुक्तं भवति—तस्य वृद्धत्वे वृद्धा भार्योपतिष्ठत इति ॥ ५ ॥

भाषा—शनि मंगल के वर्ग (गृहनवांशादि) में होकर शुक्र यदि सप्तम भाव में हो और शनि मंगल से देखा जाता हो तो जातक पर-स्त्रीगामी होता है । यदि शनि और मंगल दोनों सप्तम भाव में हो, शनि मंगल के वर्ग गत शुक्र से दृष्ट हो तो वह पुरुष पर-स्त्रीगामी और उसकी स्त्री पर-पुरुषगामिनी होती है । यदि शुक्र और चन्द्रमा एक राशि में हो उससे सप्तम में शनि मंगल हो तो जातक स्त्री-रहित वा पुत्र-रहित होता है । यदि पुरुष स्त्री संज्ञक कोई दो ग्रह एक राशि में हो उससे सप्तम में शनि मंगल हो तथा उसपर शुभग्रहों की दृष्टि हो तो जातक स्त्री सहित वृद्धत्व को प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोर्गान्मन्दाक्रान्तयाह—

वंशच्छेत्ता खमदसुखगैश्चन्द्रदैत्येज्यपापैः

शिल्पोऽयंशे शशिसुतयुते केन्द्रसंस्थार्किदृष्टे ।

दास्यां जातो दितिसुतगुरौ रिःफगे सौरभागे

नीचोऽर्केन्द्रोर्मदनगतयोर्दृष्टयोः सूर्यजेन ॥ ६ ॥

वंशच्छेत्तेति ॥ चन्द्रः शशी, दैत्येज्यः शुक्रः, पापाः क्रूरग्रहाः आदित्यभौम-सौराः एतैः खमदसुखगैः खसंज्ञं दशमं, मदस्थानं सप्तमं, सुखसंज्ञं चतुर्थम्, एतेषु स्थानेषु चन्द्रदैत्येज्यपापैः गतैः समवस्थितैः जातो वंशच्छेत्ता भवति । एतदुक्तं भवति—यस्य जन्मनि चन्द्रमा दशमः, शुक्रः सप्तमः, पापाश्चतुर्थस्थाः स वंशच्छेत्ता । तत्कृतो वंश उच्छिद्यते, कुलविच्छिन्तिर्भवति दुर्योधनप्रायः । शिल्पोऽयंशे इति । शशिसुतेन बुधेन युक्तो यः व्यंशो द्रेष्काणः स यस्य राशेः सम्बन्धी तस्मिन्स राशिः लग्नकेन्द्रस्थेनार्किणा सौरेण दृष्टे जातः शिल्पो भवति । चित्रकर्मादिकर्मणा जीवतोत्यर्थः । अत्र केचिद्बुधयुक्तराशेः शनैश्चरदृष्टिं वर्णयन्ति । यथा राशौ दृष्टे द्रेष्काणोऽपि दृष्टः स्यात् । यद्येष पक्ष आचार्यभिप्रेतः स्यात्तदा बुधे केन्द्रस्थेन सौरेण दृष्टे शिल्पो भवत्येतदेवाचार्योऽवक्ष्यत् । व्यंशग्रहणं नाकरिष्यत् । कृतवांश्चातोऽवसीयते नैतदाचार्यस्याभिप्रेतमिति । तेन व्यंशग्रहणं कृतम् । तस्माद्द्रेष्काणाराशेर्दृष्टिविचारः न केवलं यावद्विलग्नानां स्वनाथेनेत्यत्रैवोदाहार्यम् । दास्यां जात इत्यादि । दितिसुतगुरौ

शुक्रे रिःफगे लग्नाद्द्वादशस्थे न केवलं यावत्सौरभागे शनैश्चरनवांशकव्यवस्थिते दास्यां जातः दासीपुत्रो जात इति वक्तव्यम् । नीचोऽर्केन्द्रोरिति । अर्केन्द्रोः रविशशिनोः द्वयोरपि लग्नान्मदनगतयोः सप्तमस्थानस्थयोः सूर्यजेन सौरेण दृष्टयोरवलोकितयोः जातो नीचो भवति । स्वकुलानुचितार्थमर्मकर्मकृदित्यर्थः ॥६॥

भाषा—यदि दशम भाव में चन्द्रमा, सप्तम में शुक्र और चतुर्थ भाव में पापग्रह हो तो जातक वंश को नाश करनेवाला होता है । जिस द्रष्टाण में बुध हो उसपर केन्द्र स्थित शनि की दृष्टि हो तो जातक चित्रकार हाता है । यदि शुक्र शनि के नवांश में होकर द्वादश भाव में हो तो दासी का पुत्र होता है । सप्तम भाव में रवि और चन्द्रमा दोनों हो उनपर शनि की दृष्टि हो तो जातक नीच (निन्द्य कर्म करनेवाला) होता है ॥ ६ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगाञ्छादूलविक्रीडितेनाह—

पापालोकितयोः सितावनिजयोरस्तस्थयोर्वाध्यरुक्
चन्द्रे कर्कटवृश्चिकांशकगते पापैर्युते गुह्यरुक् ।

शिवत्री रिःफधनस्थयोरशुभयोश्चन्द्रोदयेऽस्ते रवौ

चन्द्रे खेऽवनिजेऽस्तगे च विकलो यद्यर्कजो वेशिगः ॥ ७ ॥

पापालोकितयोरिति ॥ सितः शुक्रः, अवनिजोऽङ्गारकः एतयोरस्तयोः लग्नास्तप्तमगतयोरपि पापालोकितयोः पापग्रहदृष्टयोर्यातस्य वाध्यरुग्भवति स च प्रासिद्धः । यत्र तत्र राशौ चन्द्रे शशिनि कर्कटवृश्चिकांशकयोरन्यतमस्थे तत्र चान्ये पापेन युते जातो गुह्यरुग्भवति । गुह्यरुक्परुषव्याधिः । श्वित्रीत्यादि । अशुभयाः सौरारयोः रिःफधनस्थयोः द्वादशद्वितीयगतयोः चन्द्रे लग्ने उदयस्थे रवावादित्येऽस्ते सप्तमस्थे जातः श्वित्री श्वेतकुष्ठयुक्तो भवति । चन्द्रे खे दशमस्थेऽवनिजे भौमेऽस्तगे सप्तमस्थे अस्मिन्योगे यद्यर्कजः सौरो वेशिस्थानस्थो भवति तदा जातो विकलोऽङ्गहीनो भवति ॥ ७ ॥

भाषा—शुक्र और मंगल सप्तम भाव में यदि पापग्रहों से दृष्ट हो तो जातक रोगी (प्रत्यक्ष दृश्य रोग से युत) होता है । और चन्द्रमा यदि पापग्रह से युत होकर कर्क या वृश्चिक के नवांश में हो तो जातक गुप्त रोगी होता है अर्थात् जिस रोग का ठीक पता नहीं चलता वह गुह्यरोग कहलाता है । १२, २ भाव में पापग्रह हो, चन्द्रमा लग्न में और रवि सप्तम भाव में हो तो श्वेतकुष्ठी होता है । चन्द्रमा दशम भाव में, मंगल सप्तम में और सूर्य से द्वितीय स्थान में शनि हो तो जातक विकल (अङ्गहीन) होता है । ७ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाह—

अन्तः शशिन्यशुभयोर्मृगगे पतङ्गे रवासच्चप्लीहकविद्रधिगुल्मभाजः ।
शोषी परस्परगृहांशगयो रधीन्द्रोः क्षेत्रेऽथवा युगपदेकगयोः कुशो वा ॥८॥

अन्तरिति ॥ यत्र तत्र स्थे शशिनि चन्द्रे अशुभयोः सौरभौमयोरन्तर्मध्ये स्थिते पतङ्गे सूर्ये च मृगगते मकरस्थे जाताः श्वासक्षयप्लीहकविद्रधिगुल्मभाजो भवन्ति । श्वासः प्रसिद्धः, क्षयः शरीरक्षयः, प्लीहः प्रसिद्धः वामकुक्षिसंस्थो मांसखण्डः विद्रधिगुल्मौ रोगौ प्रसिद्धौ एषामन्यतमेन रोगेणादिता भवन्तीत्यर्थः । केचिदत्रैकवचनं पठन्ति—श्वासक्षयप्लीहकविद्रधिगुल्मभाक्स्यादिति । शोषीति । रवीन्द्रोऽथवा चन्द्रः, कर्कटांशे सूर्यः तदा जातः शोषी भवति । अत्र केचित्परस्परगृहांशगयो रवीन्द्रोरिति । सिंहे सिंहाशके स्थिते चन्द्रे कर्कटे कर्कटांशस्थे सूर्ये च जातः शोषो क्षयो भवतीति वर्णयन्ति । तच्चायुक्तम् । यस्माद्भगवान्गार्गिः । “परस्परगृहे यातौ यदि वापि तदंशगौ । भवेतामर्कशीतांशू तदा शोषा प्रजायते ॥” चेन्नेत्यवेति । युगपत्तुल्यकालं तयोरेव परस्परचेत्ते यदा द्वावपि भवतः सिंहे यदोभावपि अर्कचन्द्रौ स्थितौ कर्कटे वा भवतः तदा जातः शोषा भवति कृशो वा । कृशो दुर्बलः ॥ ८ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा दो पात्रग्रहों के बीच में हो और मकर में सूर्य हो तो जातक श्वास, क्षय-प्लीही, विद्रधि, गुल्म रोग से पीड़ित होता है । यदि रवि कर्क में और चन्द्रमा सिंह में, वा रवि कर्क नवांश में और चन्द्रमा सिंह नवांश में हो, अथवा दोनों कर्क वा सिंह किसी एक ही में दोनों साथ हो तो जातक शोषरोगी या दुर्बल देह होता है ॥ ८ ॥

अथान्यान्यनिष्ठयोगान्वसन्ततिलकेनाह—

चन्द्रेऽश्विमध्यक्षककिंमृगाजभागे कुष्ठो समन्दरुधिरे तदवेक्षिते वा ।
यातैस्त्रिकोणमलिकर्किवृषैर्मृगे च कुष्ठो च पापमहितैरवलोकितैर्वा ॥६॥

चन्द्र इति ॥ अश्विमध्ये धन्विपञ्चमनवांशके चन्द्रे स्थिते तत्र च समन्दरुधिरे मन्देन सौरेण रुधिरेणाङ्गारकेण युक्ते यथासम्भवमन्यतमेन तदवेक्षिते वा ताभ्यामन्यतमेन दृष्टे जातः कुष्ठो भवति । अथवा यत्र तत्र राशौ भक्षककिंमृगाजभागे भूषो मीनः, कर्किः कुलीरः, मृगो मकरः, अजो मेषः, एषामन्यतमे नवांशस्थे चन्द्रे तत्र मन्दरुधिरयोरन्यतमेन युते दृष्टे वा जातः कुष्ठो भवति । अत्र चन्द्रो यदा शुभग्रहदृष्टो भवति तदा कण्डूविकारी भवति, न कुष्ठो । यस्माद्यवनेश्वरः । “मीनांशके मेषमृगांशके वा चन्द्रस्थितोऽत्रैव हि पापदृष्टः । किलासकुष्ठदिविनष्टदेहमिष्टेक्षितः कण्डूविकारिणं च ॥” यातैस्त्रिकोणमिति । अलिकर्किवृषैः वृश्चिककुलीरवृषभैः मृगे च मकरे एतैश्च त्रिकोणयातैः प्राप्तेः तथाविधो लग्नो भवति । यस्यैषामन्यतमे पञ्चमे वा स्थाने भवति स च पापानामन्यतमेन युक्तो दृष्टो वा भवति तदा जातः कुष्ठो भवति ॥ ६ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा धनुराशि के मध्य (पञ्चम नवांश) में हो वा किसी भी राशि में मीन, कर्क, मकर, मेष के नवांश में हो और शनि मंगल से युत या

दृष्ट हो तो जातक कुष्टी होता है । अथवा वृश्चिक, कर्क, वृष या मकर पापग्रह से युत या दृष्ट होकर लग्न से त्रिकोण (५१९) में हो तो भी जातक कुष्टी होता है ॥९॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वसन्ततिलकेनाह—

निधनारिधनव्ययस्थिता रविचन्द्रारयमा यथा तथा ।

बलवद्ग्रहदोषकारणैर्मनुजानां जनयन्त्यनेत्रताम् ॥ १० ॥

निधनेति ॥ रविरादित्यः, चन्द्रः शशी, आरः अङ्गारकः, यमः सौरः एते रविचन्द्रारयमाः । यथा तथा येन तेन प्रकारेण निधनारिधनव्ययस्थिताः अष्टमषष्ठद्वितीयद्वादशगास्तदा जातानां मनुजानां मनुष्याणामनेत्रतामान्ध्यं जनयन्त्युत्पादयन्ति । यथातथेति क्रमनिवारणार्थः । तां चानेत्रतां बलवद्ग्रहदोषकारणैः तेषां चतुर्णां ग्रहाणां मध्याद्यो बलवांस्तस्य यो वातपित्तश्लेष्मणां मध्यादोष उक्तः तेन दोषकारणेन तत्प्रकोपेन तस्याह्निविनाशो भवति ॥ १० ॥

भाषा—यदि सूर्य, चन्द्रमा, मंगल और शनि ये चारों किसी रीति से ८, ६, २, १२ इन स्थानों में हो तो इन चारों में जो बली ग्रह हो उसके दोष (कफ, वात या पित्त-प्रकोप) से जातक का नेत्र नष्ट होता है ॥ १० ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वैतालीयेनाह—

नवमायतृतीयधीयुता न च सौम्यैरशुभा निरीक्षिताः ।

नियमाच्छ्रवणोपघातदा रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे ॥ ११ ॥

नवेति ॥ अशुभाः पापाः नवमायतृतीयधीयुताः नवमे एकादशे तृतीये धीस्थाने पञ्चमे एतेषु यथासम्भवं युताः समवस्थिताः ते च सौम्यैः शुभग्रहैरनिरीक्षिता न दृष्टास्तदा बलवद्ग्रहदोषकारणेनैव पुरुषस्य नियमान्निश्रयाच्छ्रवणोपघातदाः श्रोत्रयोः कर्णयोः उपघातदा बाधिर्यकराः । अत्राशुभग्रहोनाके-चन्द्रारसौराः प्रागुक्ता एव ज्ञेयाः । रदवैकृत्यकराश्च सप्तमे इति । त एवार्कचन्द्रार-सौराः लग्नात्सप्तमे स्थाने स्थिताः सौम्यैरदृष्टा रदानां दन्तानां वैकृत्यकराः स्युः ॥ ११ ॥

भाषा—यदि अशुभग्रह १।११।३ या ५ भाव में हो, उनपर शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो निश्चित रूप से कर्णरोग-कारक होते हैं । यदि पापग्रह सप्तम भाव में शुभग्रह से दृष्ट हो तो जातक के दाँतों में विकार उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥११॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वैतालीयेनाह—

उदयत्युडुपेऽसुरास्यगे सपिशाचोऽशुभयोस्त्रिकोणयोः ।

सोपप्लवमण्डले रवावुदयस्थे नयनापयजितः ॥ १२ ॥

उदयतीति ॥ उडुपे चन्द्रे उदयति लग्नगते तस्मिन्नासुरास्यगे राहुप्रस्ते तस्माच्च लग्नादशुभयोः सौरभौमयोः त्रिकोणयोः नवमपञ्चमस्थयोः जातः स-पिशाचो भवति । पिशाचाधिष्ठितो भवतीत्यर्थः । एवं रवावादित्ये मण्डले

सोपप्लवे असुरास्यगे अर्के राहुप्रस्ते तस्मिन्श्चोदयस्थे लग्नगे लग्नादशुभयोः सौर-
भौमयोः त्रिकोणगतयोः जातो नयनापवर्जितो भवति । अन्ध इत्यर्थः ॥१२॥

भाषा—राहु से ग्रस्त चन्द्रमा लग्न में हो तो और उससे नवम पञ्चम में:
पापग्रह (शनि कुज) हो तो जातक पिशाच से युक्त होता है । यदि राहुग्रस्त रवि
(सूर्य) लग्न में हो और उससे त्रिकोण में शनि और मंगल हो तो जातक अन्ध
होता है ॥ १२ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

संसृष्टः पवनेन मन्दगयुते द्यूने विलग्ने गुरौ
सोन्मादोऽवनिजे स्थितेऽस्तभवने जीवे विलग्राश्रिते ।

तद्वत्सूर्यसुतोदयेऽवनिमुते धर्मात्मजद्यूनगे

जातो वा ससहस्ररश्मितनये क्षीणे व्यये शीतगौ ॥ १३ ॥

संसृष्ट इति ॥ यस्य जन्मनि मन्दगः सौरौ द्यूने सप्तमे युतः स्थितो भवति
विलग्ने च गुहः वृक्षपतिः स पवनेन वायुना संसृष्टो भवति । वातगोगी भव-
तीत्यर्थः । अग्निः भूः तस्याः जातोऽवनिजः तस्मिन्नस्तभवने सप्तमे स्थाने स्थिते
विलग्राश्रिते प्राग्लग्नगे च जीवे गुरौ जातः सोन्मादो भवात्, विचित्त इति ।
तद्वदिति । सूर्यसुतः सौरः तस्मिन्नुदये लग्ने स्थिते अवनिमुते भौमे धर्मात्मज-
द्यूनगे नवपञ्चमसप्तमस्थानानामन्यतमस्थानस्थे जातस्तद्वत्सोन्माद् एव भवति ।
केचित्तद्वच्चाहुः । यमोदय इति पठन्ति । अथवा क्षीणे शीतगौ चन्द्रे सहस्ररश्मि-
तनयेन शनैश्चरेण संयुक्ते व्ययं द्वादशस्थानं याते प्राप्ते वाग्रहणात्सोन्माद् एव
भवति ॥ १३ ॥

भाषा—यदि सप्तम में शनि और लग्न में गुरु हो तो जातक वातव्याधि युक्त
होता है । यदि मंगल सप्तम भाव में और लग्न में गुरु हो तो उन्मादी (पागल)
होता है । यदि शनि लग्न में और मंगल ९ पा७ भाव में हो तो भी जातक उन्मादी
होता है । यदि क्षीण चन्द्रमा शनि के साथ होकर व्ययभाव में हो तो भी जातक
पागल होता है ॥ १३ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्बसन्ततिलकेनाह—

राश्यंपोष्णकरशीतकरामरेज्यैर्नीचाधिवांशकगतैरग्निभागैर्वा ।

एभ्योऽल्पमध्यबहुभिःक्रमशःप्रसूताज्ञेयाःस्युरभ्युपगमक्रयगर्भदासाः॥१४॥

राश्यंशपेति ॥ यस्मिन्नवांशके चन्द्रो वर्त्तते स राश्यंशकः तस्य पः पतिः
राश्यंशपः, उष्णकरः सूर्यः, शीतकरश्चन्द्रः, अमरेज्यो जीवः एतैः राश्यंशपोष्ण-
करशीतकरामरेज्यैः आत्मीयादुच्चात्सप्तमराश्यंशो नीचाधिपस्तदीये नीचाधि-
पतिनवांशके व्यवस्थितैः अग्निभागैः शत्रुनवांशगतैर्वा जाता दासा भवन्ति ।
एभ्योऽल्पमध्यबहुभिरिति । एभ्यो ग्रहेभ्यः एकोऽल्पः, द्वौ मध्यमा यत्र चत्वारो

वा बहवः एभ्यः प्रसृताः क्रमशो दासा भवन्ति । यस्यैको नीचाधिपांशके शत्रु-
नवांशके वा गतो भवति सोऽभ्युपगमेनात्मना जीवितार्थी दासत्वमपच्यते ।
यस्य द्वौ सोऽन्येन क्रीतो विक्रीतः येन क्रीतस्तस्य दासो भवति । यस्य त्रयश्च-
त्वारो वा स गर्भदासो दासस्य पुत्रो दास्या वा पुत्रो लोके गृहदास इति
प्रसिद्धः ॥ १४ ॥

भाषा—जन्मराशि के नवांशपति सूर्य, चन्द्रमा और गुरु इनमें कोई एक, यदि
नीच या शत्रु के नवांश में हो तो जातक अभ्युपगमदास (स्वयं किसी के यहाँ
जाकर नौकर) होता है । यदि २ ग्रह नीच या शत्रु राशि के नवांश में हो तो द्रव्यदास
(दूसरे के द्वारा जीवन पर्यन्त के लिये खरीदा हुआ नौकर) होता है । यदि
३ या ४ चारों ग्रह नीच या शत्रुराशि के नवांश में हो तो गर्भदास (गर्भ से ही
दास अर्थात् दास का पुत्र जिसे गर्भदास कहते हैं) होता है ॥ १४ ॥

अथान्येशमनिष्टयोगानां ज्ञानार्थं हरिण्याह—

विकृतदशनः पापैर्दृष्टे वृषाजहयोदये

खलतिरशुभक्षेत्रे लग्ने ह्ये वृषभेऽपि वा ।

नवमसुतगे पापैर्दृष्टे रवावदृष्टेक्षणे

दिनकरसुते नैकव्याधिः कुजे विकलः पुमान् ॥ १५ ॥

विकृतेति ॥ वृषः प्रसिद्धः, अजो मेषः, हयो धन्वी एषामुदयेऽन्यतमे लग्ने
पापैर्दृष्टेऽवलोकिते विकृतदशनो विरूपदन्तो भवति । अशुभक्षेत्राणि पापग्रह-
राशयः मेषसिंहवृश्चिकमकरकुम्भाः एषासन्यतमे लग्ने ह्ये धन्विनि वा वृषभेऽपि
वा लग्ने पापदृष्टे जातः खलतिः खल्वाटो भवति । रवावादित्ये नवमसुतगे
लग्नान्नवमपञ्चमयोगन्यतरस्थानस्थे पापग्रहदृष्टे जातः अदृष्टेक्षणे भवत्यसार-
नयनः । एवं दिनकरसुते सौरैः लग्नान्नवमपञ्चमस्थे पापैः दृष्टे नैकव्याधिः बहु-
रोगो भवति । एवमेव कुजे भीमे लग्नान्नवमपञ्चमस्थे पापदृष्टे पुमान् पुरुषा जातो
विकलोऽङ्गहीनो भवति ॥ १५ ॥

भाषा—वृष, मेष या धनु लग्न यदि पापग्रह से दृष्ट हो तो जातक विरूप दाँत
वाला होता है । पाप राशि (मेष, वृश्चिक, सिंह, मकर, कुम्भ) धनु वा वृष
लग्न में जातक खल्वाट (गखा सिर वाला) होता है । रवि नवम पञ्चम भाव में
पापग्रह से दृष्ट हो तो अल्प दृष्टि वाला, यदि नवम पञ्चम में मंगल पापग्रह से दृष्ट
हो तो अनेक रोग से युक्त, यः पापदृष्ट शनि नवम, पञ्चम भाव में हो तो जातक
अङ्गहीन होता है ॥ १५ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्पुष्पिताग्रयाह—

व्ययसुतधनधर्मगैरसौम्यैर्भवनसमानान्बन्धनं विकल्पम् ।

भुजगनिगडपाशभृद्दकारैर्बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत् ॥ १६ ॥

व्ययसुतेति ॥ असौम्यैः पापैः व्ययसुतधनधर्मगैः द्वादशपञ्चमद्वितीयनवम-
स्थानानां यथासम्भवमन्यतमस्थानस्थैः जातस्य निबन्धनं भवति । स बध्यत
इत्यर्थः । तच्च निबन्धनं भवनसमानं राशिसदृशं स प्राणी येन प्रकारेण स
राशिः बध्यते तेन प्रकारेणेत्यर्थः । तद्यथा । मेषवृषधनुर्धराणामन्यतमे लग्ने
तस्य रज्ज्वादिना बन्धनं भवति । मिथुनकन्यातुलाकुम्भानामन्यतमे लग्नं नग-
दैः बध्यते । कर्कटमकरमीनानामन्यतमे लग्ने बन्धनं विना दुर्गे स्थितो रक्ष्यते ।
वृश्चिकलग्ने भूगृहे बध्यते । भुजगनिगडपाशभृदिति । यस्मिन्द्रेष्काणे पुरुषो
जातः स चेद्भुजगपाशभृद्भवति सर्पद्रेष्काणां निगडपाशभृद्वा द्रेष्काणः । स च
प्रथमपञ्चमनवमानामित्यनया गणनया यस्य राशेः सम्बन्धी भवति स
चेद्वाशिः बलवता असौम्येन पापग्रहेणान्यतमेन दृश्यते तथा जातस्य तद्वन-
समानं निबन्धनं तद्वत्तेनैव प्रकारेण विकल्प्यम् । भुजगद्रेष्काणः कर्कटद्वितीयः
कर्कटतृतीयः वृश्चिकाद्यः वृश्चिकद्वितीयः मीनान्त्यश्च । निगडद्रेष्काणो मकराद्यः ।
भुजगनिगडपाशभृदिति कैश्चिद् व्याख्यातम् । तत्र पाशभृदनेन द्रेष्काणो न
पठितः । तस्माद्भुजगपाशभृन्निगडपाशभृदिति व्याख्येयम् । भुजगपाशभृन्निगड-
पाशभृद्भुजङ्गादिभागैर्बलवदसौम्यनिरीक्षितैश्च तद्वत् । इति स्पष्टो भवेदि-
त्यर्थः । अस्मिन् श्लोके पठित इति ॥ १६ ॥

भाषा—लग्न से १२, ५, २, ९ में पापग्रह हो तो इन भावों में जिसमें बलवान्
पापग्रह हो उस राशि के समान ही उस जातक का बन्धन समझना चाहिये । यदि
लग्न में सर्पयुक्त, निगडयुक्त द्रेष्काण हो उस पर बलवान् पापग्रह की दृष्टि हो तो
उसी प्रकार (जिस राशि का द्रेष्काण हो वह जिस प्रकार के बन्धन से बांधा जाता
है उसी तरह) उस जातक का बन्धन होता है ॥ १६ ॥

विशेष अर्थ—भावार्थ यह है कि ऊपर कथित दोनों योगों में जातक को बन्धन
होता है । राशि समान बन्धन का अभिप्राय यह है कि—चतुष्पद राशि भाव में,
वा लग्नगत द्रेष्काण राशि यदि चतुष्पद हो तो जातक को रस्सी से बन्धन होता
है । द्विपदराशि हो तो वेडी से बन्धन होता है । जलचर राशि हो तो विना निबन्ध का
बन्ध रक्खा जाता है । यदि वृश्चिक राशि हो तो कन्दरा आदि में बन्ध रक्खा जाता है ।

सर्पद्रेष्काण ... कर्क में द्वितीय और तृतीय । वृश्चिक में प्रथम द्वितीय । मीन में
तृतीय । निगडद्रेष्काण—मकर का प्रथम । द्रेष्काणाव्याय देखिये ॥ १६ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान् हरिण्याह—

पुरुषवचनोऽपस्मार्तः क्षयी च निशापतौ

स-रवितनये वक्रालोकं गते परिवेषणे ।

रवियमकुजैः सौम्यादृष्टैर्नभस्स्थलमाश्रितै-

र्भृतकमनुजः पूर्वोद्विष्टैर्वराधममध्यमाः ॥ १७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातकेऽनिष्टाध्यायस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

परुषवचन इति ॥ निशापतौ चन्द्रे-सरवितनये सौरसहिते वक्रालोक-
गते भौमेन दृष्टे परिवेषगे तत्कालं परिवेषयुक्ते जातः पुरुषः पुरुषवचनः
सदाऽप्रियाभिधायी, अपस्मारार्तः क्षयी च भवति । अत्र चन्द्रमसस्यः
प्रकारा व्याख्याताः, त्र्यश्च दोषाः । यस्यैकप्रकारश्चन्द्रमा भवति तस्यैको दोषो
भवति । यस्य प्रकारद्वयं तेन चन्द्रे सौरेण युक्ते परुषवचनः सदैवाप्रियाभि-
धायी भवति । सरवितनये भौमदृष्टे अपस्मारार्तोऽपस्मारः मृत्युः । सरवितनये
भौमदृष्टे तत्कालं परिवेषगे क्षयी भवति । रवियमकुजैरिति । रविरादित्यः,
यमः सौरः, कुजोऽङ्गारकः एतैः नभस्थलमाश्रितैः दशमस्थानस्थैः, सौम्यादृष्टैः
शुभग्रहाणां मध्यान्नेन केनचिद्दृष्टैरवलोकितैः जातो मनुजो मनुष्यो भूतको
भवति, तैः पूर्वोद्दिष्टैर्ग्रहैः रवियमकुजैः वराधममध्यमो भूतको भवति । तेषां
ग्रहाणामेवंविधेनैकेन भूतकोऽपि वरः श्रेष्ठो भवति । अजुगुप्सिनां भृतिं
करोति । द्वाभ्यां मध्यमो भवति, मध्यमां भृतिं करोति । त्रिभिरधमो जुगु-
प्सितां भृतिं करोति ॥ १७ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृत्तौ अनिष्टाध्यायस्त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

भाषा—यदि चन्द्रमा शनि से युक्त, मंगल से दृष्ट और परिवेष (मंगल) युक्त
हो तो जातक कठोरभाषी, अपस्मार (मृगी रोगी) से पीड़ित, और क्षय रोगी होता
है । तथा रवि, शनि और मंगल इनमें एक दशम भाव में हो तो उत्तम श्रेणी की
नौकरी करने वाला, यदि २ ग्रह दशम भाव में हो तो मध्यम श्रेणी की नौकरी
करने वाला, यदि तीनों ग्रह दशम भाव में हो तो अधम श्रेणी की नौकरी करने
वाला होता है ॥ १७ ॥

विशेष अर्थ—चन्द्रमा शनि से युक्त, मंगल से दृष्ट और परिवेश सहित, इनमें
एक योग हो तो कटुभाषी, दो योग हो तो मृगी रोगवाला, तीनों योग हो तो क्षयी
होता है ॥ १७ ॥

अथ स्त्रीजातकाध्यायः ॥ २४ ॥

अथातः स्त्रीजातकाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव पुरुषजन्मोक्तफलाति-
देशं तदधिकं च वसन्ततिलकेनाह—

यद्यत्फलं नरभवेऽक्षममङ्गनानां तत्तद्वदेत्पतिषु वा सकलं विधेयम् ।

तासां तु भर्तृमरणं निधने वपुस्तु लग्नेन्दुगं सुभगतास्तमये पतिश्च ॥ १ ॥

यद्यत्फलमिति ॥ नरभवे पुञ्जन्मनि यद्यत्फलमङ्गनानां स्त्रीणामक्षममस-
म्भाव्यं तत्पतिषु तद्वर्तुषु वदेद् ब्रूयात् ! पुञ्जन्मोक्तं फलं यद्वृत्तात/अदृगि-
त्यादि । तत्र यत्स्त्रीणां ज्ञमं योग्यं तत्तासामेव वक्तव्यं, यच्च ज्ञमं न सम्भवति
राज्यादि तत्पतिषु तज्जातककाले दृष्ट्वा वक्तव्यम् । यच्च सम्भवति सुन-
फादियोगानां फलं तदखिलं सकलमुभयोरेवं वक्तव्यम् । तानि च त्रिविधानि
फलानि । कानिचित्स्त्रीणां वक्तव्यानि, कानिचित्पतिषु, कानिचिद्द्वयोरपि ।

वृत्ताताम्रदृगित्याकारप्रदर्शनानि स्त्रीणामेव वक्तव्यानि, राजयोगादिफलानि तत्पतिषु । तत्पतीनां सुनफादियोगफलानि सुखदुःखप्रदर्शकानि उभयोरपि । अथवा सकलं समग्रं स्त्रीजातकफलं तत्पतिषु विधेयं वक्तव्यम् । तासामित्यादि । तासां स्त्रीणां निधनेऽष्टमे स्थाने भर्तृमरणं यथा वक्तव्यं तथोपरिष्ठाद्वक्ष्यति । वपुस्तु शरीरं लग्नेन्दुगं लग्नचन्द्रयोगतं तच्चापि तासां यथा वक्तव्यं तथा वक्ष्यति । तासां सुभगता सौभाग्यं यादृग्भावपतिर्वा तादृगस्तमये सप्तमस्थानाद्वक्तव्यम् । तदपि वक्ष्यति ॥ १ ॥

भाषा—पूर्व पुरुष जातक के जो जो फल कहे गये हैं, उनमें जो फल स्त्री जातक में असम्भव हो वे फल स्त्रियों के स्वामी में समझना । अर्थात् जो फल स्त्री में भी सम्भव हो वे फल स्त्री के भी पुरुष के समान ही कहना । अपना पूर्वोक्त सब फल स्त्री के लग्नानुसार उसके स्वामी में कहना चाहिये । स्त्री के स्वामी का मरण अष्टम भाव से और शरीर सम्बन्धी फल लग्न और चन्द्रमा पर से और सौभाग्य सप्तम से कहना चाहिये ॥ १ ॥

यदुक्तं वपुस्तु लग्नेन्दुगं तत्प्रदर्शनं वसन्ततिलकेनाह—

युग्मेषु लग्नशशिनोः प्रकृतिस्थिता स्त्री सच्छीलभूषणयुता शुभदृष्टयोश्च ।
श्रोजःस्थयोश्च मनुजाकृतिशीलयुक्ता पापा च पापयुतवीक्षितयोगुणोनाः

युग्मेष्विति ॥ लग्नशशिनोरुदयचन्द्रयोरपि युग्मेषु समराशिषु स्थितयोः स्त्री योषिप्रकृतिस्थिता स्त्रीस्वभावा भवति । प्रकृतौ स्वभावे तिष्ठति । तयोरेव लग्नेन्द्रोः शुभदृष्टयोः सौम्यग्रहावलोकितयोः सच्छीलभूषणयुता भवति । सच्छीलं शोभनचरित्रं तदेव भूषणमलङ्करणं तेन युता अथवा शोभनेन शीलेन भूषणैश्च युता । श्रोजःस्थयोरिति । तयोरेव लग्नेन्द्रोरोजःस्थयोर्विषमराशिगतयोः मनुजाकृतिशीलयुक्ता पुरुषाकारा पुरुषशीला च भवति । तयोः लग्नेन्द्रोः पापयुतवीक्षितयोः पापसंयुतयोः अवलोकितयोर्वा पापा पापशीला गुणोना सर्वगुणरहिता च भवति । अर्थादेवैकस्मिन्समराशिगे अन्यस्मिन् विषमराशिगे पुंस्त्रियोर्मध्यस्वरूपाकारा भवति । एवमेकस्मिन् शुभग्रहयुते अन्यस्मिन्पापयुते सच्छीलता भवति, असच्छीलता च मिश्रेत्यर्थः । एवमेकस्मिन् शुभग्रहदृष्टे अन्यस्मिन्पापदृष्टेऽपि । एवमुभयोरपि सौम्यासौम्ययुतदृष्टयोश्च । अनया दृशा शेषकल्पना कार्या ॥ २ ॥

भाषा—लग्न और चन्द्रमा दोनों यदि सम राशि से हों तो स्त्री प्रकृति (कोमल कान्ति-लज्जा-प्रिय वाक्य आदि) से युक्त होती है । यदि लग्न और चन्द्रमा पर शुभग्रह की दृष्टि हो तो उत्तम स्वभाव और बलवत् भूषण से सहिता होती है । यदि लग्न और चन्द्रमा दोनों विषम राशि हो तो वह कथं—पुरुष सदृश आकृति और स्वभाव वाली होती है । उन (लग्न चन्द्रमा) पर यदि पापग्रह की दृष्टि या योग हो तो पाप करने वाली तथा गुणहीना होती है ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—इससे यह सिद्ध होता है कि लग्न और चन्द्रमा इन दोनों में एक विषम, एक सम में हो और पाप शुभ दोनों से दृष्टयुत हो तो मिश्र स्वभाव वाली होती है ॥ २ ॥

अथ भौमक्षेत्रे लग्नगे वा भौमादित्रिंशांशकजातायाः स्वरूपमिन्द्रजग्रहाह—

कन्यैव दुष्टा व्रजतीह दास्यं साध्वी समाया कुचरित्रयुक्ता ।

भूम्यात्मजक्षेत्रे क्रमशोऽशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानाम् ॥ ३ ॥

कन्यैवेति ॥ भूम्यात्मजक्षेत्रे भौमक्षेत्रे मेषवृश्चिकयोरन्यतरे लग्नगते चन्द्रगते वा तत्र च वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानां कुजयमजीवज्ञसितानामशकेषु त्रिंशद्भागेषु क्रमेण फलनिर्देशो वक्तव्यः । तद्यथा—भौमलग्ने भौमत्रिंशांशके लग्नगते चन्द्रगते वा जाता कन्यैव दुष्टा भवत्यनूढापि सा पुरुषसम्प्रयोगे च व्रजति गच्छतीत्यर्थः । सौरत्रिंशांशकजाता कन्यैव दास्यं दासभावं व्रजति जनयति । बृहस्पतिमन् भौमक्षेत्रे जीवत्रिंशांशके साध्वी सच्छीला भवति । बुधत्रिंशांशके जाता समाया मायायुक्ता भवति । शुक्रत्रिंशांशके जाता कुचरित्रयुक्ता भवति दुर्वृत्ता इति । एवं त्रिंशांशकफलं सर्वदा गुणतया परीक्षितव्यम् ॥ ३ ॥

भाषा—मेष या वृश्चिक में लग्न या चन्द्रमा हो और मंगल का त्रिंशांश हो तो जन्म लेने वाली कन्या कुमारी अवस्था में ही दोषयुक्ता अन्य पुरुष से संयोग करने वाली होती है । यदि शनि का त्रिंशांश हो तो दासी होती है । गुरु का त्रिंशांश हो तो पतिव्रता और मुशीला होती है । बुध का त्रिंशांश हो तो माया जानने वाली होती है । और शुक्र का त्रिंशांश हो तो दुश्चरित्रा होती है । ३ ॥

अथ बुधशुक्रक्षेत्रयोरन्यतमे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमादित्रिंशांशकजातायाः स्वरूपमिन्द्रजग्रहाह—

दुष्टा पुनर्भूः सगुणा कलाज्ञा ख्याता गुणैश्चासुरपूजितर्क्षे ।

स्यात्कापटी क्लृप्तसमा सती च बौधे गुणाढ्या प्रविकीर्णकामा ॥४॥

दुष्टेति ॥ अशकेषु वक्रार्किजीवेन्दुजभार्गवानामां सवेत्रानुवर्तते असुरपूजितः शुक्रस्तस्यर्क्षे वृषतुल्योरन्यतमे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमत्रिंशांशके जाता दुष्टा दुष्टशीला भवति, शनित्रिंशांशके जाता पुनर्भूः पाणिग्रहणादनन्तरमन्यस्य भार्या भवति । जीवत्रिंशांशके जाता सगुणा गुणवता भवति । बुधत्रिंशांशके जाता कलाज्ञा भवति । गीतवाद्यनृत्यचित्रादिषु कुशला । शुक्रत्रिंशांशके जाता गुणैः शीलादिभिः ख्याता भवति । स्यात्कापटीत्यादि । बौधे मिथुनकन्ययोरन्यतरे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमत्रिंशांशके जाता कापटी कपटासक्ता भवति । सौरत्रिंशांशके जाता क्लृप्तसमा नपुंसकतुल्या भवति । बृहस्पतित्रिंशांशकजाता साध्वी भवति । बुधत्रिंशांशकजाता गुणाढ्या गुणबहुला भवति । शुक्रत्रिंशांशकजाता प्रविकीर्णकामा विक्षिप्तमनमथा सर्वपुरुषगामिनी भवतीति ॥ ४ ॥

भाषा—यदि लग्न चन्द्रगत बुध या तुला राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो जन्म लेने वाली दुष्ट स्वभाव वाली, शनि का त्रिंशांश हो तो पुनर्भू (एक पति को छोड़कर दूसरा पति करने वाली), गुरु का त्रिंशांश हो तो गुण से युक्ता, बुध का त्रिंशांश हो तो कलाओं को जानने वाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो गुणों से विख्यात होती है । मिथुन या कन्या राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो अपट युक्ता, शनि का त्रिंशांश हो तो हिजड़िन (नपुंसक तुल्य), गुरु का त्रिंशांश हो तो सती, बुध का त्रिंशांश हो तो गुणों से युक्ता और शुक्र का त्रिंशांश हो तो कामातुरा होती है ॥ ४ ॥

अथ चन्द्रार्कजीवसौरक्षेत्राणामन्यतमे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमादित्रिंशांशकजातायाः स्वरूपं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

स्वच्छन्दा पतिघातिनी बहुगुणा शिल्पिन्यसाध्वीन्दुमे

त्राचारा कुलटार्कमे नृपवधू पुञ्चेष्टितागम्यगा ।

जैवे नैकगुणाल्परत्यतिगुणा विज्ञानयुक्ता सती

दासी नीचरताकिंभे पतिरता दुष्टाऽप्रजा स्वांशकैः ॥ ५ ॥

स्वच्छन्देति ॥ इन्दुमे कर्कटे लग्ने तद्गते वा चन्द्रे भौमत्रिंशांशकजाता स्वच्छन्दा स्वैरिणी यथेष्टव्यवहारिणी भवति । सौरत्रिंशांशकजाता पातघातिनी भवति । जीवत्रिंशांशकजाता बहुगुणा भवति । बुधत्रिंशांशकजाता शिल्पिनी शिल्पकर्मनिरता भवति । शुक्रत्रिंशांशकजाता असाध्वी दुःशीला भवति । त्राचारेति । अर्कमे सिद्धे लग्ने तद्गते वा चन्द्रे भौमत्रिंशांशके जाता त्राचारा पुरुषाचारा भवति । नुरिवाचारो यस्याः । केचिद्वाचाटा इति पठन्ति, बहुभाषिणी । सौरत्रिंशांशके जाता कुलटा असाध्वी भवति । जीवत्रिंशांशके जाता नृपवधूः राजभार्या भवति । बुधत्रिंशांशके जाता पुञ्चेष्टिता पुरुषस्वभावा भवति । शुक्रत्रिंशांशके जाता अगम्यगाऽगम्यपुरुषगामिनी भवति । जीवक्षेत्रे धन्विमीनयोरन्यतरे लग्नगते तद्गते वा चन्द्रे भौमत्रिंशांशके जाता नैकगुणा बहुगुणा भवति । सौरत्रिंशांशकजाता अल्परतिः शीघ्रवेगा भवति । बुधत्रिंशांशकजाता अतिगुणा बहुगुणवती भवति । बुधत्रिंशांशके जाता विज्ञानयुक्ता आश्चर्ययुक्ता भवति । शुक्रत्रिंशांशके जाता असती असाध्वी भवति । दासीति । आर्किंभे सौरक्षेत्रे मकरकुम्भयोरन्यतरे लग्नगे चन्द्रगे वा भौमत्रिंशांशकजाता दासी भवति । सौरत्रिंशांशकजाता नीचरता नीचपुरुषसक्ता भवति । जीवत्रिंशांशकजाता पतिरता भर्तृभक्ता भवति । बुधत्रिंशांशके जाता दुष्टा भवति । शुक्रत्रिंशांशके जाताऽप्रजा वन्ध्या भवति ॥ ५ ॥

भाषा-- कर्क राशि गत लग्न या चन्द्र में यदि मंगल का त्रिंशांश हो तो स्वच्छन्दा (स्वतंत्र स्वभाव वाली), शनि का त्रिंशांश हो तो पति को मारने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो बहुत गुणों से युक्ता, बुध का त्रिंशांश हो तो

शिल्प कर्म में निपुण, शुक्र का त्रिंशांश हो तो दुराचारिणी होती है। सिंह राशि में मंगल का त्रिंशांश हो तो पुरुष के स्वभाव वाली, शनि का त्रिंशांश हो तो कुलटा, गुरु का त्रिंशांश हो तो राजपत्नी, बुध का त्रिंशांश हो तो पुरुष के समान आचरण वाली, शुक्र का त्रिंशांश हो तो नीच पुरुष से सङ्ग करने वाली होती है। गुरु राशि (धनु-मीन) में मंगल का त्रिंशांश हो तो अनेक गुण युक्ता, शनि का त्रिंशांश हो तो थोड़ी रति (पति सभोग) करने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो अत्यधिक गुणवाली, बुध का त्रिंशांश हो तो विज्ञान जानने वाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो बसती (व्यभिचारिणी) होती है। शनि राशि (मकर कुम्भ) में मंगल का त्रिंशांश हो तो दासी, शनि का त्रिंशांश हो तो नीच पुरुषों के साथ रहने वाली, गुरु का त्रिंशांश हो तो पतिव्रता, बुध का त्रिंशांश हो तो दुष्ट स्वभाव वाली और शुक्र का त्रिंशांश हो तो बन्ध्या होती है ॥ ५ ॥

एतदंशकैरिति तदर्थमनुष्टुभाह—

शशिलग्रसमायुक्तैः फलं त्रिंशांशकैरिदम् ।

बलाबलविकल्पेन तयोरुक्तं विचिन्तयेत् ॥ ६ ॥

शशीति ॥ राशि राशिमधिकृत्य यदेतत्त्रिंशांशके उक्तं फलं तच्छशिलग्र-समायुक्तैश्चन्द्रलग्नयुक्तैस्त्रिंशांशकैः यस्मिन्नाशौ यद्ग्रहत्रिंशांशके चन्द्रमा भवति तद्वत् फलं वाच्यम् । यद्वा लग्नं भवति तस्य यस्त्रिंशांशः तद्वशाद्वा । कथमुच्यते । बलाबलविकल्पेनेत्यादि । चन्द्रलग्नयोः यो बलवान्स यत्र राशौ यत्र त्रिंशांशके भवति व्यवस्थितः तस्य यदुक्तं फलं तदेवं विचिन्तयेत् । एतदुक्तं भवति—अन्यस्मिन्नाशावन्यस्मिन् त्रिंशांशके चन्द्रमा भवति अन्य-स्मिन्नाशौ अन्यस्मिन् त्रिंशांशके लग्नं तदा तयोर्यो बलवान् स यस्मिन् त्रिंशांशके भवति तस्यैव फलं वदेत् । यो बलरहितस्तस्य फलं न भवतीति ॥६॥

भाषा—ये जो फल कहे गये हैं वे चन्द्रमा और लग्नगत त्रिंशांशों से समझना चाहिए । लग्न और चन्द्रमा इन दोनों में जो बली हो उसके त्रिंशांश का ही फल विशेष रूप से कहना चाहिए । यदि दोनों बली हो तो दोनों के त्रिंशांश सम्बन्धी फल छियों में समझना चाहिये ॥ ६ ॥

अथ यस्मिन् योगे जाता स्त्रीभिः पुरुषाकारसंस्थाभिः सह मदनं शनयति तद्योगद्वयज्ञानं प्रहर्षिण्याह—

द्वक्संस्थावसितसितौ परस्परांशे शौक्रे वा यदि घटराशिसम्भवोऽंशः ।

स्त्रीभिः स्त्रीमदनविषानलप्रदीप्तं संशान्तिं नयति नराकृतिस्थिताभिः ७

द्वक्संस्थाविति ॥ असितः सौरः, सितः शुक्रः एतावसितसितौ परस्परांशे अन्योन्यांशगतौ सौरः शुक्रांशगतः, शुक्रः सौरांशगतस्तौ च परस्परं द्वक्संस्थौ अन्योन्यं पश्यतः एको योगः । अथवा शौक्रे राशौ वृषतुल्योरन्यतरे लग्नगते

तत्कालं यदि घटराशिसम्भवोऽशः कुम्भनवांशकोदयो भवति तदा द्वितीयो योगः । अस्मिन्योगद्वये जाता स्त्री अन्याभिरपराभिः स्त्रीभिः योषिद्भिः नराकृतिस्थिताभिः पुरुषसंस्थानाभिः पुरुषाकारयुताभिः भदनविषानलं प्रदीप्तं वामविषाग्निं प्रज्वलितं शान्तिं नयति शमयति । एतदुक्तं भवति—अन्या स्त्री स्वजघने पुरुषरूपेण चर्ममयं लिङ्गं बध्वा पुंस्त्वत् तस्या रतिमभिजनयति । यतोऽतिकामार्त्तत्वात् पुरुषयोगं गन्तुं न शक्नोति ॥ ७ ॥

भाषा—यदि शनि के नवांश में शुक्र और शुक्र के नवांश में शनि हो तथा दोनों में परस्पर दृष्टि हो तो अथवा वृष या तुला राशि में कुम्भ का नवांश हो तो इन दोनों योगों में उत्पन्न स्त्री पुरुष के आकार बनाई हुई दूसरी स्त्री के द्वारा अपनी प्रज्वलित कामना को शान्ति कराती है । ७ ॥

विशेष अर्थ—भावार्थ यह है—ऐसे योग में उत्पन्न स्त्री कामातुरा होती है । और उसे पति का वियोग होता है । इसलिये वह खर (चर्म) निमित्त लिंग धारिणी अपनी सहेलियों के द्वारा मैथुन क्रिया से कामाग्नि को शमन कराती है ॥७॥

अथास्तमये पतिश्चेति यदुक्तं तद्विज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शून्ये कापुरुषोऽबलेऽस्तभवने सौम्यग्रहावीक्षिते

क्लीबोऽस्ते बुधमन्दयोश्चरगृहे नित्यं प्रवासान्वितः ।

उत्सृष्टा रविणा कुजेन विधवा बाल्येऽस्तराशिस्थिते

कन्यैवाशुभवीक्षितेऽर्कतनये द्यूने जरां गच्छति ॥ ८ ॥

शून्ये इति ॥ लग्नाच्चन्द्राद्वा यः सप्तमो राशिः स यदि शून्यः सर्वग्रहवियुक्तो भवति अबला बलहीनश्च तस्मिन्नस्तभवने शून्ये अबले च बलरहिते तथा सौम्यैः शुभग्रहैरनिरोक्षिते न केनचिच्छुभग्रहेण दृश्यमाने न केनचित्सौम्यग्रहेण युते जानायाः भर्ता कापुरुषः कुत्सितपुरुषो भवति । अथवा लग्नाच्चन्द्राद्वा यः सप्तमो राशिस्तत्र बुधमन्दयोर्ज्ञसौरयोरन्यतरे स्थिते जातायाः भर्ता क्लीबः पुरुषाकारहीनो भवति । यस्याश्चरगृहं चरराशिः सप्तमे भवति तस्याः नित्यं सर्वकालं भर्ता प्रवासान्वितः प्रवासशीलो भवति, अर्थादेवं स्थिरे सप्तमे नित्यं गृहे स्थितो भवति, द्विस्वभावे किञ्चित्प्रवासे किञ्चिद्गृहे स्थितो भवति । उत्सृष्टा रविणा कुजेन विधवेति । तरणौ रवावस्तस्थिते सप्तमगे जाता पतिनोत्सृष्टा भर्ता त्यक्ता भवति । एवं कुजे सप्तमगते तस्मिन्नाशुभैः पापैः वीक्षिते बाल्ये विधवा रण्डा विगतभर्तृका भवति । अर्कतनये सौरे द्यूने सप्तमगे तस्मिन्नाशुभैः पापैर्वीक्षिते दृष्टे कन्यैव जरामुपगच्छति कुमार्येव वृद्धा भवति वृद्धत्वं प्राप्नोतीति । विवाहं न करोतीत्यर्थः । अत्र चन्द्रलग्नयोर्बलवशादेवैतद्वक्तव्यम् ॥ ८ ॥

भाषा—लग्न और चन्द्रमा से सप्तम भाव यदि ग्रह रहित हो, निर्बल हो

और शुभ ग्रह स अदृष्ट हो तो इस योग में उत्पन्न कन्या का पति नीच पुरुष (अनुयागी) होता है। यदि सप्तम भाव में बुध और शनि हो तो उस कन्या का पति नपुंसक होता है। सप्तम भाव में चर राशि हो तो कन्या का पति परदेशी होता है। सप्तम भाव में रवि हो तो अपने पति से छोड़ दी जाती है। सप्तम भाव में मंगल हो तो बाल-विधवा होती है। शनि सप्तम भाव में हो तो वह कुमारी में ही वृद्धावस्था को प्राप्त होती है ॥ ८ ॥

त्रिशेष अर्थ—सप्तम भाव में चर राशि से पति परदेशी होता है। इससे सिद्ध होता है कि सप्तम में स्थिर राशि हो तो उसका पति सर्वदा उसके साथ (घर में) ही रहे। और द्विस्वभाव हो तो कभी घर और कभी परदेश में भी रहे ॥ ८ ॥

ननु चन्द्रात्सप्तमस्थानादप्येतत्फलं कथमवगम्यते ? उच्यते, सप्तमे स्थाने चन्द्रसः फलदर्शनाभावात् पुनरपि जाता कीदृशी भविष्यतीति तद्विज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

आग्नेयैर्विधवास्तराशिसहितैर्मिश्रैः पुनर्भूभवेत्

क्रूरे हीनबलेऽस्तगे स्वपतिना सौम्येक्षिते प्रोज्झिता ।

अन्योन्यांशगयोः सितावनिजयोरन्यप्रसक्ताङ्गना

द्यूने वा यदि शीतरश्मिसहितौ भर्तुस्तदानुज्ञया ॥ ९ ॥

आग्नेयैरिति ॥ एकैकस्मिन्पापग्रहे सप्तमे फलमुक्तम्। यदि बहवः आग्नेयाः क्रूराः सप्तमस्था भवन्ति तदा प्रतिग्रहोक्तं फलं त्यक्त्वा तैराग्नेयैस्तराशिसहितैः विधवैव भवति। मिश्रैः क्रूरैः सौम्यैश्च सप्तमस्थैः पुनर्भूभवेत्। स्वपाणिग्राहिणं त्यक्त्वा अन्यस्य भार्या भवतीत्यर्थः। द्विसंस्कृता। तथा च ग्रन्थान्तरे पुनर्भूलक्षणमुक्तम्—“स्वैरिणी स्वपतिं हित्वा सर्वान् कामतः श्रेयेत्। अक्षतं च प्रजाद्वारं पुनर्भूसंस्कृता पुनः॥” क्रूर इति। क्रूर आदित्याङ्गारकशनैश्चराणामन्यतमेऽस्तगे लग्नात्सप्तमस्थे तस्मिंश्च हीनबले सर्वबलरहिते तथाभूते सौम्येक्षिते शुभग्रहाणां बुधगुरुसितानामन्यतमेन दृष्टे जाता स्वपतिना आत्मीयेनैव भर्त्रा प्रोज्झिता त्यक्ता भवति। अन्योन्यांशगयोरिति। सितः शुक्रः, अवनिजोऽङ्गारकः एतयोः सितावनिजयोः अन्योन्यांशगयोः परस्परनवांशकस्थितयोः यत्र तत्र राशौ सितनवांशके भौमः भौमनवांशके शुक्रः तदा साङ्गना स्त्री अन्यप्रसक्ता परपुरुषरता भवति। अथवा द्यूने लग्नात्सप्तमे स्थाने तावेव यद्यङ्गारकशुक्रौ शीतरश्मिसहितौ चन्द्रसहितौ भवतस्तथाप्यन्यपुरुषासक्ता भवति। किन्तु भर्तुरनुज्ञया पत्युराज्ञयेति, न तु स्वातन्त्र्येणेति ॥ ९ ॥

भाषा—यदि तीनों पाप ग्रह सप्तम भाव में हो तो वह स्त्री विधवा होती है। यदि पाप और शुभ ग्रह दोनों सप्तम भाव में हो तो पुनर्भू (एक पति को छोड़कर

दूसरा पति करने वाली) होती है। यदि निबल पापग्रह सप्तम में हो उस पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो वह पति से परित्यक्ता होती है। शुक्र और मंगल यदि परस्पर नवांश में हो तो वह स्त्री पर-पुरुष में आसक्ता होती है। यदि चन्द्रमा सहित शुक्र और मंगल सप्तम भाव में हो तो वह अपने पति की आज्ञा से अन्य पुरुष से संग करने वाली होती है ॥ ९ ॥

अथ येन योगेन जाता मात्रा सह बन्धकी भवति, येन च रुग्दित्योनि-
येन च सुभगा, तद्योगत्रयं शालिन्याह—

सौरारक्षे लग्नगे सेन्दुशुके मात्रा सार्द्धं बन्धकी पापदृष्टे ।

कौजेऽस्तांशे सौरिणा व्याधियोनिश्चारुश्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांशे ॥१०॥

सौरारक्षे इति ॥ सौरः शनैश्चरः तद्वृत्ते मकरकुम्भौ, आरो भौमस्तद्वृत्ते मेषवृश्चिकौ एषामन्यतरे लग्नगते तस्मिन् सेन्दुशुके इन्दुना चन्द्रेण शुकेण च संयुक्ते तथाभूते पापदृष्टे पापग्रहावलोकिते जाता बन्धकी परपुरुषगामिनी भवति न केवलं यावन्मात्रा सार्द्धं जनन्या सह बन्धकी जाता तन्मातापि बन्धकी परपुरुषगामिनी भवति। अस्तांशे लग्नः सप्तमे स्थाने यो राशिस्तत्कालं कौजो भौमनवांशको भवति तस्मिन् कौजेऽस्तांशे सौरिणा रविजेन दृष्टे जाता व्याधियोनिः सारोगभगा भवति। यदुक्तं सुभगतास्तमये तदर्थमाह। चारुश्रोणी वल्लभा सद्ग्रहांश इति। यदा लग्नात्सप्तमे स्थाने सद्ग्रहस्य शुभ-
ग्रहस्य नवांशकोदयो भवति तदा चारुश्रोणी शोभनभगा वल्लभा पत्युः प्रिया च भवति ॥ १० ॥

भाषा—लग्न में शनि मंगल की राशि हो उसमें शुक्र और चन्द्रमा पापग्रह से दृष्ट हो तो ऐसे लग्न में उत्पन्न स्त्री माता सहित व्यभिचारिणी होती है। यदि सप्तम भाव में मंगल का नवांश हो उस पर शनि की दृष्टि हो तो वह स्त्री रोग सहित योनि वाली होती है। यदि सप्तम भाव में शुभ ग्रह के नवांश हो तो वह स्त्री सुभगा सुन्दरी और पति की प्रिया होती है ॥ १० ॥

अथ यस्याः सप्तमं स्थानं शून्यं भवति तस्याः शनैश्चराङ्गारकशुक्रक्षेत्रे तदंशे वा सप्तमे यादृशी भवति तद्विज्ञानं मालिन्याह—

वृद्धो मूर्खः सूर्यजर्क्षेऽशके वा स्त्रीलोलः स्यात्क्रोधनश्चावनेये ।

शौके कान्तोऽतीवसौभाग्ययुक्तो विद्वान्भर्ता नैपुण्यश्च बौधे ॥११॥

वृद्ध इति ॥ यस्या जन्मनि लग्नात्सप्तमे स्थाने सूर्यजस्य सौरस्यर्क्षे मकर-
कुम्भयोरन्यतरं तत्सम्बन्धी नवांशको वा सप्तमे भवति तस्याः वृद्धः मूर्खश्च भर्ता भवति। यस्याः आवनेयस्याङ्गारकस्यर्क्षे मेषवृश्चिकयोरन्यतरस्तदंशको वा सप्तमे भवति तस्याः स्त्रीलोलः स्त्रीषु स्पृह्यालुः क्रोधनः क्रोधशीलश्च भर्ता भवति। एवं शौके राशी वृषतुल्योरन्यतरे तदंशके वा सप्तमस्थे कान्तोऽतीव-
दर्शनीयोऽतीवसौभाग्ययुक्तो वल्लभश्च भर्ता भवति। बौधे मिथुनकन्ययोरन्य-

तरे तदंशके वा सप्तमस्थे जातायाः भर्ता विद्वान्पण्डितः नैपुण्यश्च सर्वत्र सूक्ष्मदृष्टिर्भवति ॥ ११ ॥

भाषा—सप्तम भाव में शनि की राशि या नवांश हो तो उस कन्या का पति बृद्ध और मूर्ख होता है। मंगल की राशि या नवांश हो तो उसका पति स्त्री-लम्पट और क्रोधी होता है। शुक्र की राशि या नवांश हो तो उसका पति अत्यन्त सुन्दर और भाग्यवान् होता है। बुध की राशि या नवांश हो तो उसका स्वामी विद्वान् और निपुण (सूक्ष्म दृष्टि) होता है ॥ ११ ॥

अथ चन्द्रराशौ सप्तमे तन्नवांशके जीवराशौ वादित्यराशौ च तन्नवांशके वा तद्विज्ञानं पुष्पिताग्रयाह—

मदनवशगतो मृदुश्च चान्द्रे त्रिदशगुरौ गुणवान् जितेन्द्रियश्च ।

अतिमृदुरतिकर्मकृच्च सौर्ये भवति गृहेऽस्तमयस्थितेऽंशके वा ॥ १२ ॥

मदनेति ॥ यस्याः जातायाः सप्तमे स्थाने चान्द्रो राशिः कर्कटस्तदंशको वा भवति तस्याः भर्ता मदनवशगतः कामातुरो मृदुश्चाकठिनश्च भवति । त्रिदशगुरोः जीवस्य राशौ धन्विमीनयोरन्यतरे सप्तमस्थे तदंशके वा जातायाः भर्ता गुणवान् शौर्यादिभिर्गुणैर्युक्तो जितेन्द्रियो दान्तश्च भवति । सौर्ये राशौ सिंहे तदंशके वा सप्तमस्थे जातायाः भर्ताऽतिमृदुरतीवाकठिनः, अतिकर्म-कृद्तीव्रव्यापारकृद्भवति व्यापारकरणशीलः । केचिद्रतिकर्मकृदतिकामातुरः कामासक्तो भवति । एवमस्तमयस्थिते सप्तमस्थानस्थे गृहे राशावंशके वा फलमभिहितं यत्रान्यसंबन्धी राशिः सप्तमे भवति अन्यसम्बन्धी नवांशश्च तत्र राश्यंशपयोः यो बलवांस्तदीयं फलं वाच्यमिति ॥ १२ ॥

भाषा—यदि जन्म समय में सप्तम भाव में चन्द्रमा की राशि (कर्क) या नवांश हो तो उस स्त्री का स्वामी कामातुर और कोमल हृदय वाला होता है । गुरु की राशि या नवांश हो तो उसका स्वामी गुणवान् और जितेन्द्रिय होता है । सूर्य की राशि या नवांश हो तो उसका पति अत्यन्त मृदु स्वभाव और अधिक कार्य करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

विशेष अर्थ—सप्तम भाव में राशि और नवांश दोनों एक ही ग्रह के हों तो उक्त फल समझना चाहिए । यदि भिन्न ग्रह के हों तो जिसके स्वामी बली हों उसके अनुसार फल कहना । यदि राशि नवांश-पति दोनों तुल्य बल हों तो दोनों के फल समझना चाहिए ॥ १२ ॥

अथ चन्द्रशुक्रबुधानां द्वौ त्रयो वा लग्नगता यस्या भवन्ति तस्याः स्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

ईर्ष्यान्विता सुखपरा शशिशुक्रलग्ने

ज्ञेन्द्रोः कलामु निपुणा सुखिता गुणाढ्या ।

शुक्रज्ञयोस्तु रुचिरा सुभगा कलाज्ञा

त्रिष्वप्यनेकवसुसौख्यगुणा शुभेषु ॥ १३ ॥

ईर्ष्येति ॥ यस्याः जन्मलग्ने शशिशुकौ चन्द्रसितौ समेतौ भवतः सा ईर्ष्यान्विता मात्सर्ययुक्ता सुखपरा सुखासक्ता च भवति । ज्ञेन्द्रोः बुधचन्द्रयोः लग्नगतयोः कलासु निपुणा तज्ज्ञा सुखिता रुञ्जातमुखा भवति, गुणाढ्या गुणबहुला च । शुक्रज्ञयोः सितबुधयोर्लग्नगतयोः रुचिरा दर्शनीया सुकान्ता सुभगा भर्तृवल्लभा कलाज्ञा च भवति । त्रिष्वपीति । यस्यास्त्रयोऽपि चन्द्र-बुधशुक्रा लग्नगता भवन्ति साऽनेकवसुसौख्यगुणा अनेकैर्वसुभिः धनैः सौख्यै-रनेकैवदुभिश्च गुणैर्युक्ता भवति । अपिशब्दात् त्रिषु शुभेषु बुधगुरुसितेषु लग्न-गतेषु जाता अनेकवसुसौख्यगुणा भवति ॥ १३ ॥

भाषा—जन्म लग्न में चन्द्रमा और शुक्र हो तो स्त्री ईर्ष्या वाली और सुख से युक्ता होती है । बुध और चन्द्रमा हो तो कलाओं को जानने वाली सुख और गुणों से युक्त होती है । बुध और शुक्र जन्म लग्न में हो तो लावण्यवती, सौभाग्यवती और कला को जानने वाली होती है । यदि तीनों शुभग्रह (बुध, गुरु और शुक्र) जन्म लग्न में हों तो अनेक प्रकार के धन, सुख और गुणवाली होती है । १३ ॥

अत्र पूर्वं तासां भर्तृमरणमिति यदुक्तं तद्विज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

क्रूरेऽष्टमे विधवता निधनेश्वरोऽशे

यस्य स्थितो वयसि तस्य समे प्रदिष्टा ।

सत्स्वर्थगेषु मरणं स्वयमेव तस्याः

कन्यालिगोहरिषु चारुपसुतत्वमिन्दौ ॥ १४ ॥

क्रूरेऽष्टम इति । यस्याः क्रूरग्रहोऽष्टमे स्थाने भवति तस्या विधवता भवति । कस्मिन्काल इत्याह । निधनेश्वरो यस्येति । निधनेश्वरोऽष्टमस्थानाधिपतिर्यस्य ग्रहस्य नवांशके भवति तस्य यद्वयस्तस्मिन्वयसि विवाहात्परतस्तस्या वैधव्यं वक्तव्यम् । एकं द्वौ नव त्रिंशतिरित्यादि ग्रहवयः । एवं केचिद्वदन्ति । वयं पुनः दशान्तर्दशाकालं वयःशब्देन ब्रूमः । यत्र निधनेश्वरश्चन्द्रभौमयोरन्यतरंऽशे भवति तत्र चन्द्रभौमयोर्वयःप्रमाणं वर्षत्रितयम् । तत्र प्रायः कुमारीणां विवाहासंभवस्तस्मादष्टमस्थानाधिपतिर्यस्यांशके व्यवस्थितस्तस्यान्तर्दशाधि-पतिस्तस्या विवाहात्परं विधवता प्रदिष्टोक्ता । सत्स्विति । यस्या जन्मनि क्रूर-ग्रहोऽष्टमगो भवति सद्ग्रहः शुभग्रहः । कश्चिदर्थगो द्वितीयस्थानगतो भवति तस्याः भर्तुः पुरस्तात् स्वस्यैव मरणं भवति । यस्या जन्मनि कन्यायामल्लिनि वृश्चिके गवि वृषे हरौ सिंहे वा इन्दुः स्थितो भवति तस्या अल्पसुतत्वं स्वल्प-पुत्रत्वं वक्तव्यम् । कन्यालिगोहरीणामन्यतमश्चन्द्रराशिर्यस्यास्तस्याः अल्पाः पुत्रा भवन्तीति ॥ १४ ॥

भाषा—जन्म समय में लग्न से अष्टम भाव में पाप ग्रह हो तो विधवा होती हैं । वैधव्य योग में—अष्टमेश जिस ग्रह के नवांश में हो उस ग्रह की अवस्था (बाल्य-युवा-वृद्धावस्था) या दशा अन्तर्दशा समय में वह स्त्री विधवा होती है । यदि बुधग्रह द्वितीय भाव में हो तो उस स्त्री का ही मरण स्वामी के समक्ष में होता है । जिसके जन्म समय में कन्या, वृश्चिक, वृष या सिंह में चन्द्रमा हो उस स्त्री को सोड़ी सन्तति होती है ॥ १४ ॥

अथ यस्मिन्योगे जातो पुरुषिणी भवति, यस्मिंश्च ब्रह्मवादिनी भवति, तद्योगद्वयं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

सौरै मध्यबले बलेन रहितैः शीतांशुशुक्रेन्दुजैः

शेषैर्वीर्यसमन्वितैः पुरुषिणी यद्योजराशुद्गमः ।

जीवारास्फुजिदैन्दवेषु बलिषु प्राग्लग्नराशौ समे

विख्याता भुवि नैकशास्त्रनिपुणा स्त्री ब्रह्मवादिन्यपि ॥ १५ ॥

सौरै इति ॥ सौरै शनैश्चरे मध्यबले नातिबलवति न चातिबलहीने तथा शीतांशुशुक्रेन्दुजैः शशिसितबुधैः बलेन वीर्येण रहितैः विवर्जितैः शेषैरादि-
त्यभौमजीवैर्वीर्यसमन्वितैः सबलैर्यत्र तत्रावस्थितैर्यद्योजराशिः विषमराशि-
रुद्गमः उद्गम उदये लग्ने भवति । विषमराशिः लग्ने जाता भवतीत्यर्थः । तदा
जाता मेषमिथुनसिंहतुलाधन्विकुम्भानामन्यतमे सा पुरुषिणी भवति । बहु-
पुरुषेत्यर्थः । जीवारास्फुजिदैन्दवेष्विति । जीवो बृहस्पतिः, आरो भौमः,
आस्फुजिच्छुक्रः, ऐन्दवो बुधः एतेषु यत्र तत्रावस्थितेषु बलिषु वीर्यवत्सु तथा
प्राग्लग्न्ये यदि समराशिर्भवति तदा जाता स्त्री भुवि भूमौ विख्याता सर्वत्र
प्रथिता अनेकराष्ट्रकुशला अनेकेषु बहुषु शास्त्रेषु कुशला तज्ज्ञा ब्रह्मवादिन्यपि
सौक्ष्मशास्त्रे कुशला भवति ॥ १५ ॥

भाषा—जिस स्त्री के जन्म समय में शनैश्चर मध्य बली हो, चन्द्रमा शुक्र और बुध निर्बल हो, रवि, मंगल, गुरु ये बलयुक्त हों और विषम राशि (मेष, मिथुन आदि) लग्न हो तो वह स्त्री पुरुषिणी (बहुत पुरुषों को रखने वाली या पुरुष समूह में रहने वाली) होती है । यदि सम (वृष, कर्क आदि) राशि लग्न में हो तथा बुध, मंगल, शुक्र, बुध ये बलयुक्त हो तो वह स्त्री संसार में विख्याता, अनेक शास्त्र में निपुण और ब्रह्मविद्या को जानने वाली होती है ॥ १५ ॥

अथ यद्योगजाता प्रव्रज्यामाश्रयति तद्विज्ञानं प्रदर्शयिष्याह—

पापेऽस्ते नवमगतग्रहस्य तुल्यां प्रव्रज्यां युवतिरूपैत्यसंशयेन ।

उद्धाहे वरणाविधौ प्रदानकाले चिन्तायामपि सकलं विधेयमेतत् ॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

स्त्रीजातकाध्यायश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥

पापे इति ॥ पूर्व सप्तमस्थस्य ग्रहस्य पृथक्पृथक् फलमुक्तं तत्र लग्नात्पापे
करग्रहेऽस्ते सप्तमस्थे यद्यन्यः कश्चिद् ग्रहो लग्नान्नवमगतो भवति तदा सा
स्त्री प्रागुक्तं फलं न प्राप्नोति । नवमगतस्य ग्रहस्य तुल्यां तत्कथितां प्रव्रज्यां
युवतिः स्त्री असंशयेन निःसंशयेनोपैति प्राप्नोति । एवं स्त्रीजातकं व्याख्यातम् ।
उद्वाहे इति । अत्र ये यांगा व्याख्यातः स्ते चेदुद्वाहे विवाहकाले भवन्ति तदा
योगोक्तफलं वाच्यम् । तथा तस्या वरणविधौ कन्यामार्गणकाले प्रदानकाले
कन्यादानकाले च विन्तायां प्रश्नकालेऽप्येवं सकलं सर्वं विधेयं वक्तव्यम् ।
स्त्रीजातकेषु ये शुभाशुभयांगा उक्तास्तेऽत्रापि शुभाशुभा वक्तव्याः, न सकल-
जातकोक्ताः । ते च यथाप्रदर्शितकालेनैव ज्ञेयाः । येषां च वक्ष्यमाणविवाह-
पटलोक्तयोगैर्बाधो भविष्यति तेऽत्र न वक्तव्याः । युक्त्यैतद्विवाहपटलमुक्त-
मिति ॥ १६ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ स्त्रीजातका-

ध्यायश्चतुर्विंशः ॥ २४ ॥

भाषा—जिस स्त्री के जन्म समय सप्तम भाव में पाप ग्रह और नवम में कोई
ग्रह हो तो उस नवम गत ग्रह के समान पूर्वोक्त शाक्याजीविक इत्यादि प्रव्रज्या को
वह स्त्री प्राप्त करती है । नवम भाव में ग्रह नहीं हो तो प्रव्रज्या नहीं होती है ।
इस अध्याय में जो कुछ फल कहे गये हैं वे सब विवाह-लग्न, कन्या-वरण
(तिलक), कन्यादान, लग्न और प्रश्न लग्न से भी विचार कर समझना चाहिये ।
अर्थात् जो शुभ लग्न कहे गये हैं उन्हीं में विवाहादि करना चाहिए; अशुभ
में नहीं ॥ १६ ॥

अथ नैर्याणिकाध्यायः ॥ २५ ॥

अथातो नैर्याणिकाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेवाष्टमे स्थाने ग्रहदृष्टे
वियुक्ते युते वा यथा म्रियते तद्विज्ञानं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मृत्युर्मृत्युगृहे क्षणेन बलिभिस्तद्वातुकोपोद्भव-

स्तत्संयुक्तभगात्रजो बहुभवो वीर्यान्वितैर्भूरिभिः ।

अग्न्यम्बायुधजो ज्वरामयकृतस्तृत्नुत्कृतश्चाष्टमे

सूर्याद्यैर्निधने चरादिषु परस्वाध्वप्रदेशेष्विति ॥ १ ॥

मृत्युरिति ॥ बलिभिर्ग्रहैर्मृत्युगृहे क्षणेन मृत्युर्भवति । यस्य जन्मलग्ना-
न्मृत्युगृहमष्टमं स्थानं शून्यं यो ग्रहो बलवान् पश्यति तस्य ग्रहस्य यो धातुरुक्त-
स्तद्वातुकोपोद्भवस्तेन धातुना प्रकुपितेन स म्रियते । तद्यथाऽर्कस्य पित्तं, चन्द्रस्य
वातकफौ, भौमस्य पित्तं, बुधस्य त्रयोऽपि वातपित्तश्लेष्माणः, बृहस्पतेः कफः,
शुक्रस्य वातकफौ, सौरस्य वात इति । तत्संयुक्तभगात्रज इति । तदित्यनेन
लम्बादष्टमस्थानस्य परामर्शः । तेनाष्टमेन युक्तं यद्भगात्रं तत्संयुक्तभगात्रं तज्जा-

ततस्तस्मभूतः लग्नादष्टमो राशिः यस्मिन्नङ्गे कालाख्यपुरुषस्य वर्तते तस्मिन्नङ्गे दृष्टप्रहोक्तदोषकोपाग्नियते । भूरिभिर्बहुभिः वीर्यान्वितैः सबलैः बहुभवो मृत्युः यदा बहवोऽपि वीर्यान्वितास्तच्छून्यमष्टमस्थानं पश्यन्ति तदा यावन्तः पश्यन्ति तावतां ग्रहाणामुक्तदोषप्रकोपेन ते च बहवो दोषा यस्मिन्कालपुरुषाङ्गे लग्नादष्टमराशिर्वर्तते तस्मिन्नङ्गे प्रकुप्य निधनं कुर्वन्तीति । अग्न्यम्बायुधज इति । सूर्यादिभिरष्टमे स्थाने स्थितैरग्न्यादिभिर्मृत्युर्भवति । तद्यथा—यस्य लग्नादष्टमे स्थानेऽर्को भवति तस्याग्निहेतुको मृत्युर्भवति । एवं चन्द्रेऽष्टमेऽम्बु-हेतुकः, भौमे आयुधहेतुकः, बुधे ज्वरहेतुकः, जीवे आमयकृतः अविज्ञातव्या-धिहेतुकः, शुके वृद्धहेतुकः, सौरे क्षुब्धहेतुक इति । एतैर्ग्रहैर्बलिभिर्यथोक्त एव मृत्युः शुभेन कर्मणा भवति । बलहीनैरशुभेन मध्यबलैर्मध्यमेनेति । विज्ञात-मरणप्रकारस्य मरणदेशज्ञानार्थमाह—निधने चरादिष्विति । यस्य निधनेऽष्टमे स्थाने चरराशिर्भवति स परदेशे अग्नियते । यस्य स्थिरः स स्वदेशे, यस्य द्विस्व-भावः सोऽध्वप्रदेशे पथि अग्नियत इति ॥ १ ॥

भाषा—यदि अष्टम स्थान में ग्रह नहीं हो तो ग्रह बलवान् होकर अष्टम भाव को देखता हो उस ग्रह के घातु (कफ-वात या पित्त) के प्रकोप से उस जातक का मरण होता है । अष्टम स्थान की राशि कालपुरुष के जिस अंग में हो उस अंग में ही उस घातु का प्रकोप होकर मरण होता है । यदि अष्टम भाव पर बहुत बलवान् ग्रह की दृष्टि हो तो उन सब ग्रहों के घातु दोष से मरण होता है । अष्टम स्थान में सूर्य हो तो अग्नि से, चन्द्रमा हो तो जल से, मंगल हो तो अस्त्र से, बुध हो तो ज्वर से, गुरु हो तो अज्ञात रोग से, शुक हो तो वृषा से, शनि हो तो क्षुधा से मरण होता है । और अष्टम स्थान में चर राशि हो तो परदेश में, स्थिर राशि हो तो स्वदेश में, द्विस्वभाव हो तो मार्ग में मरण होता है ॥ १ ॥

विशेष अर्थ—ग्रहों के घातु पूर्वोक्त इस प्रकार हैं—रवि का पित्त, चन्द्रमा के वात, कफ, मंगल का पित्त, बुध के कफ-वात, पित्त, गुरु का कफ, शुक के कफ-वात और शनि का वात है ॥ १ ॥

अथ शैलाग्राभिघातेषु यैर्योगैर्घ्नियते तान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शैलाग्राभिहतस्य सूर्यकुजयोर्मृत्युः खवन्धुस्थयोः

कूपे मन्दशशाङ्कभूमितनयैर्बन्ध्वस्तकर्मस्थितैः ।

कन्यायां स्वजनाद्धिमोष्णकरयोः पापग्रहैर्दृष्टयोः

स्यातां यद्युभयोदयेऽर्कशशिनौ तोये तदा मज्जितः ॥ २ ॥

शैलाग्राभिहतस्येति ॥ सूर्यकुजयोः रविभौमयोः युगपत्तुल्यकालं खवन्धु-स्थयोदशमयोश्चतुर्थयोर्वा जातस्य शैलाग्राभिहतस्य शिलाग्रहारेण हतस्य मृत्यु-र्भवति । कूप इति । मन्दशशाङ्कभूमितनयैः सौरेन्दुभौमैर्बन्धवासंस्थं बन्धवस्त-

कर्मस्थितैश्चतुर्थसप्तमदशमस्थैः । तद्यथा—सौरे चतुर्थगे चन्द्रे सप्तमगे भौमे दशमगे जातः कूपे पतितो भ्रियते । कन्यायामिति । हिमोष्णकरयोश्चन्द्रार्कयोः कन्यायां स्थितयोश्च पापग्रहदृष्टयोर्जातः स्वजनेन भ्रियते स्वजनेन व्यापाद्यते । उभयोदये द्विस्वभावराशावुदये लग्नगते तत्र चार्कशशिनौ रविचन्द्रौ यदा स्यातां भवेतां तदा तोये जले मज्जितो मग्नो भ्रियते ॥ २ ॥

भाषा—जन्म समय में रवि मंगल दोनों चतुर्थ या दशम भाव में हो तो पत्थर की चोट से जातक की मृत्यु होती है । यदि शनि चतुर्थ में, चन्द्रमा सप्तम में और मंगल दशम भाव में हो तो कूप में गिरकर मरता है । यदि रवि और चन्द्रमा दोनों कन्या राशि में हों और पापग्रह से दृष्ट हों तो अपने कुटुम्बों (गोतियों) के द्वारा जातक का मरण होता है । यदि रवि और चन्द्रमा मीन राशि में हों तो जल में डूब कर मरण होता है ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ 'उभयोदय' से कितने टीकावार द्विस्वभाव राशि ग्रहण किये हैं ॥ २ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

मन्दे कर्कटगे जलोदरकृतो मृत्युर्मुगाङ्के मृगे

शस्त्राग्निप्रभवः शशिन्यशुभयोर्मध्ये कुजर्क्षे स्थिते ।

कन्यायां रुधिरौत्थशोषजनितस्तद्वत्स्थिते शीतगौ

सौरर्क्षे यदि तद्वदेव हिमगौ रज्ज्वग्निपातैः कृतः ॥ ३ ॥

मन्दे इति ॥ मन्दे शनैश्चरे कर्कटगे कुलीरस्थे मृगाङ्के चन्द्रे मृगे मकरस्थिते जातस्य जलोदरकृतो जलोदरेण मृत्युर्भवति । शस्त्राग्निप्रभव इति । शशिनि चन्द्रे कुजर्क्षे मेषघृन्निभकयोरन्यतरस्थे तत्र चाशुभयोर्द्वयोः पापयोर्मध्यस्थे जातस्य शस्त्राग्निप्रभवः शस्त्रेणाग्निना वा प्रभवति तत्कृतो मृत्युः । कन्यायामिति । शीतगौ चन्द्रे कन्यायां तद्वत् स्थिते पापद्वयमध्यगते जातस्य रुधिरौत्थशोषजनितो मृत्युर्मरणं भवति । दुष्टेन रक्तेन शोषेण वा उत्थितो जनित उत्पन्नः । सौरर्क्षे इति । हिमगौ चन्द्रे सौरर्क्षे मकरकुम्भयोगन्यतरस्थे तद्वत्तस्मिन् पापद्वयमध्यगते यदि चोदजातस्तदा रज्ज्वग्निपातैः रज्ज्वाऽग्निना पाताद्वा भ्रियत इति ॥ ३ ॥

भाषा—यदि शनि कर्क में और चन्द्रमा मकर में हो तो जातक का मरण जलोदर रोग से होता है । यदि चन्द्रमा दो पाप ग्रहों के मध्य में होकर मंगल की राशि (मेष, या वृश्चिक) में हो तो शस्त्र या अग्नि से जातक की मृत्यु होती है । यदि चन्द्रमा दो पापग्रहों के बीच में होकर कन्या में हो तो रक्त (क्षीणित) दोष से वा शोष रोग से मरण होता है । यदि दो पापग्रहों के बीच में होकर चन्द्रमा शनि की राशि (मकर या कुम्भ) में हो तो फाँसी, अग्नि या गिरकर मरण होता है ॥ ३ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

बन्धाद्धीनवमस्थयोरशुभयोः सौम्यग्रहादृष्टयो-

द्रेष्काणैश्च सपाशसर्पनिगडैश्छिद्रस्थितैर्बन्धतः ।

कन्यायामशुभान्वितेऽस्तमयगे चन्द्रे सिते मेषगे

सूर्ये लग्नगते च विद्धि मरणं स्त्रीहेतुकं मन्दिरे ॥ ४ ॥

बन्धाद्धीनवमस्थयोरिति ॥ अशुभयोर्द्वयोः पापयोर्द्वीनवमस्थयोः पञ्चम-
नवमस्थानस्थयोश्च सौम्यग्रहैर्गृहस्थोरनवलोकितयोर्यातः बन्धद्बन्धनेन
म्रियते । द्रेष्काणैरिति । येन लग्नेन पुमान् जातस्तस्मादष्टमे स्थाने यो राशि-
स्तत्कालं वर्तते तत्र यदि सपाशसर्पौ द्रेष्काणौ भवति सनिगडो वा तदा जातः
बन्धनेन म्रियते । तत्र भुजगपाशभृद्द्रेष्काणः कर्कटद्वितीयः कर्कटतृतीयः
वृश्चिकप्रथमः वृश्चिकद्वितीयः मीनान्त्यश्च । निगडद्रेष्काणः मकराद्यः । कन्या-
यामिति । मीनलग्नजातः कन्यायामस्तगे सप्तमस्थे चन्द्रे तस्मिन्नाशुभान्विते
केनचित्पापेन सहिते सिते शुके मेषगे सूर्ये रवौ लग्नगते जातस्य मरणं
मन्दिरे गृहे स्त्रीहेतुकं स्त्रीनिमित्तं विद्धि जानोहि ॥ ४ ॥

भाषा—जन्म समय में यदि दो पापग्रह पञ्चम और नवम भाव में हों उन पर
शुभग्रह की दृष्टि नहीं हो तो जातक का मरण बन्धन से होता है । अष्टम भाव में
यदि पाश, सर्प या निगड द्रेष्काण हो तो भी जातक का बन्धन से मरण होता है ।
पाप सहित चन्द्रमा कन्या में होकर सप्तम भाव में हो और पाप सहित शुक्र मेष में
हो तथा सूर्य लग्न में हो तो अपने घर में ही स्त्री के हेतु से जातक का मरण
होता है ॥ ४ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

शूलोद्भिन्नतनुः सुखेऽवनिमुते सूर्येऽपि वा खे यमे

सप्रक्षीणहिमांशुभिश्च युगपत् पापैस्त्रिकोणाद्यगैः ।

बन्धुस्थे च रवौ वियत्यवनिजे क्षीणेन्दुसंवीक्षिते

काष्ठेनाभिहतः प्रयाति मरणं सूर्यात्मजेनेक्षिते ॥ ५ ॥

शूलोद्भिन्नतनुरिति ॥ सुखे चतुर्थे स्थानेऽवनिमुते भौमे स्थिते । सूर्येऽपि
वा इति । रवौ चतुर्थस्थे खे दशमे स्थाने यदि यमः सौरो भवति तदा जातः
शूलोद्भिन्नतनुम्रियते शूलनोद्भिन्ना तनुर्यस्य शूलप्रोतस्य तस्य मरणं भवति ।
सप्रक्षीणेति । पापैः रविभौमसौरैः सप्रक्षीणहिमांशुभिरतिक्षीणचन्द्रसंयुक्तैश्च
युगपत्तुल्यकालं त्रिकोणाद्यगैः पञ्चमनवमलग्नस्थैः । एतदुक्तं भवति—सक्षीण-
चन्द्राणां पापानामेतत्स्थानत्रयं सुक्त्वाऽन्यत्रावस्थितिर्न भवति तदा चकारा-
च्छूलोद्भिन्नतनुम्रियते । बन्धुस्थे चेति । रवौ सूर्ये बन्धुस्थे लग्नाच्चतुर्थगे, वियति

दशमेऽवनिस्तुते भौमे स्थिते तस्मिंश्च क्षीणेन्दुना क्षीणचन्द्रेण संवोक्षिते तदा जातश्चकाराच्छूलोद्भिन्नतनुम्रियते । अस्मिन्नेव योगे चतुर्थगे रवौ दशमस्थे भौमे तस्मिंश्च सूर्यात्मजेन शनैश्चरेणेक्षिते दृष्टे जातः काष्ठेनाभिहतः काष्ठघातेन ताडितो मरणं प्रयाति प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ५ ॥

भाषा—यदि मंगल या सूर्य चतुर्थ भाव में और शनि दशम भाव में हो तो जातक शूल के आघात से मरता है । अथवा क्षीण चन्द्र और शनि, रवि मंगल ये चारों लग्न ५, ९ इन्हीं तीनों स्थान में हों तो भी शूल के आघात से जातक का मरण होता है । अथवा चतुर्थ रवि और दशम भाव में मंगल हो इन दोनों पर शनि की दृष्टि हो तो भी शूल के आघात से जातक की मृत्यु होती है । यदि इसी योग में (चतुर्थ रवि, दशम मंगल पर) शनि की दृष्टि हो तो काष्ठ के आघात से जातक की मृत्यु होती है ॥ ५ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान्वसन्ततिलकेनाह—

रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्लगुडाहताङ्गः प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशयुक्तैः ।

तैरेव कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थैर्धूमाग्निबन्धनशरीरनिकुट्टनान्तः ॥६॥

रन्ध्रास्पदेति ॥ रन्ध्रमष्टमं स्थानम्, आस्पदं दशमम्, अङ्गं लग्नं, हिबुकस्थानं चतुर्थम् एतै रन्ध्रास्पदाङ्गहिबुकैर्यथासंख्यं प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशयुक्तैः । एतदुक्तं भवति—अतिक्षीणचन्द्रोऽष्टमे, रुधिरो भौमः दशमे, आर्किः सौरोऽङ्के लग्ने, दिनेशो रविश्चतुर्थे एवंविधे योगे जातो लगुडहताङ्गो लगुडताडितावयवो म्रियते । केचित्पठन्ति—लगुडाहतान्त इति । लगुडाहतस्यान्तो भवति । तैरेवेति । तैरेव ग्रहैः प्रक्षीणचन्द्ररुधिरार्किदिनेशैः यथासंख्यं कर्मनवमोदयपुत्रसंस्थैः दशमनवमलग्नपञ्चमस्थैः क्षीणचन्द्रमा दशमे, भौमो नवमे, सौरो लग्ने, अर्कः पञ्चमे यदि भवति तदा जातस्य धूमेनाग्निना बन्धनेन शरीरनिकुट्टनेन काष्ठादिना प्रहरणेन वा तस्य मृत्युर्भवति ॥ ६ ॥

भाषा—८, १०, १ और ४ इन भावों में क्रम से क्षीण चन्द्र, मंगल शनि और रवि हो तो लाठी के आघात से जातक का मरण होता है । यदि वे (क्षीण चन्द्र, मंगल, शनि और रवि) क्रम से १०, ९, १ और ५ भाव में हो तो घूम, अग्नि, बन्धन अथवा काष्ठादि के आघात से शरीर कुटे जाने पर मरण होता है ॥ ६ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान्वसन्ततिलकेनाह—

बन्ध्वस्तकर्मसहितैः कुजसूर्यमन्दैर्निर्याणमायुधशिखिद्वितिपालकांपैः ।

सौरेन्दुभूमितनयैः स्वसुखास्पदस्थैर्ज्ञेयैः क्षतकृमिकृतश्च शरीरघातः ॥७॥

बन्ध्वस्तकर्मसहितैरिति । कुजोऽङ्गारकः, सूर्यो रविः, मन्दः सौरः एतैर्यथासंख्यं बन्ध्वस्तकर्मसहितैः चतुर्थसप्तमदशमस्थैः चतुर्थे भौमः, सप्तमे सूर्यः, दशमे सौरः यस्य जन्मनि भवन्ति तस्यायुधेन खड्गादिना शिखिनाग्निना

क्षितिपालकोपेन नृपक्रोधेन वा एषामन्यतमेन निर्याणं मृत्युर्भवति । सौरेन्दु-
भूमितनयैः शनिशशिभौमैः यथासंख्यं स्वसुखास्पदस्थैर्द्वितीयचतुर्थदशमस्थैः
द्वितीये सौरः, चतुर्थे चन्द्रः, दशमे भौमः यस्य जन्मनि भवन्ति तस्य क्षत-
कृमिकृतः क्षते छिद्रे कृमयः कीटा उत्पद्यन्ते तत्कृतश्च शरीरपातो भवति
क्षतकृमिभिः पतितैर्मृत्युर्भवति ॥ ७ ॥

भाषा—यदि मंगल, रवि, शनि ये क्रम से ४, ७, १० भाव में हो तो
क्रम से शस्त्र, अग्नि और राजा के कोप से जातक का मरण होता है । यदि
शनि, चन्द्र और मंगल ये २, ४, १० भाव में हो तो घाव में कीड़े पड़ने से मरण
होता है ॥ ७ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान् शार्दूलविक्रीडितेनाह—

खस्थेऽर्केऽवनिजे रसातलगते यानप्रपाताद्बधो

यन्त्रोत्पीडनजः कुजेऽस्तमयगे सौरेन्द्रिनाभ्युदगमे ।

विएमध्ये रुधिराकिंशीतकिरणैर्जूकाजसौरर्क्षगै-

यातैर्वा गलितेन्दुसूर्यरुधिरैर्व्योमास्तबन्ध्वाह्वयान् ॥ ८ ॥

खस्थ इति ॥ अर्के रवौ खस्थे दशमस्थानगते कुजे रसातलगते चतुर्थस्थे
जातस्य यानप्रपातात् बाहनात्पतितस्य बधो मृत्युर्भवति । यन्त्रोत्पीडनज इति ।
कुजेऽङ्गारकेऽस्तमयगे सप्तमस्थे सौरेन्द्रिनाभ्युदगमे सौरेश्चेन्दुश्चेनश्च ते
सौरेन्द्रिनाः, शनिचन्द्ररविभिरभ्युदगमे लग्ने स्थितैः जातस्य यन्त्रोत्पीडनजो
बधः यन्त्रपीडितो भ्रियते । केचित्क्षीणेन्द्रिनाकर्तुर्द्वगमे इति पठन्ति । क्षीणेन्दुः
क्षीणचन्द्रमाः, इन आदित्यः, आर्किः सौरः एतैः लग्ने स्थितैः जातस्य यन्त्रो-
त्पीडनजो बधः । विएमध्य इति । रुधिराऽङ्गारकः, आर्किः सौरः, शीतकिरण-
चन्द्रः एतैः यथासंख्यं जूकाजसौरर्क्षगैः जूकस्तुलः, अजो मेषः, सौरर्क्षे मकर-
कुम्भौ तेन तुले कुजो भौमः, मेषे सौरः, मकरकुम्भयोरन्यतरे चन्द्रः एवं यस्य
जन्मनि भवन्ति स विएमध्येऽमेध्यमध्ये भ्रियते । यातैर्वेति । गलितेन्दुः
क्षीणचन्द्रः, सूर्य आदित्यः, रुधिराऽङ्गारकः एतैर्यथासंख्यम् व्योमास्तबन्ध्वाह्व-
यान् यातैः प्राप्तेः । व्योम्नि दशमे क्षीणचन्द्रः, अस्तमये सप्तमे सूर्यः,
बन्ध्वाह्वये बन्धुसंज्ञके चतुर्थे भौमः बन्ध्वत्याहा संज्ञा यस्य एवं यस्य जन्मनि
भवति स वाग्रहणात् विएमध्ये भ्रियते ॥ ८ ॥

भाषा—यदि दशम भाव में सूर्य, चतुर्थ में मंगल हो तो जातक सवारी पर से
गिर कर मरता है । सप्तम भाव में मंगल और अग्न में शनि, चन्द्रमा हो तो यन्त्र
(मशीन) से पिसे जाने पर मरण होता है । यदि मंगल, शनि और चन्द्रमा तुला,
मेष, मकर और कुम्भ में हो बधवा क्षीण चन्द्रमा, सूर्य और मंगल ये तीनों क्रम से
१०, ७, ४ इन भावों में हो तो दोनों धीनों में विष्टा के बीच जातक का मरण
होता है ॥ ८ ॥

अथान्यानप्यनिष्टयोगान्वैतालीयेनाह—

वीर्यान्वितवक्रवीक्षिते क्षीणेन्दौ निधनस्थितेऽर्कजे ।

गुह्योद्भवरोगपीडया मृत्युः स्यात्कृमिशस्त्रदाहजः ॥ ६ ॥

वीर्यान्वितेति ॥ क्षीणेन्दौ क्षीणचन्द्रे वीर्यान्वितेन सबलेन वक्रेण भौमेन दृष्टे वीक्षितेऽर्कजे सौरे निधनस्थितेऽष्टमस्थानगते जातस्य गुह्योद्भवरोगपीडया गुह्ये य उद्भूत उत्पन्नः रोगो गदस्तत्पीडयाऽर्शोभगन्दरात्या कृमिशस्त्रदाहजः कृमिजः शस्त्रजः दाहजः अर्शोभगन्दरादिरोगदोषात् कृमिपातेन शस्त्रकर्मणा वा दाहेन वा क्रियमाणेन तस्य मृत्युर्भवति ॥ ६ ॥

भाषा—यदि क्षीण चन्द्रमा अष्टम भाव में, बलवान् मंगल से दृष्ट हो तो गुह्य (बवासीर आदि) रोग की पीड़ा से जातक का मरण होता है। यदि बलवान् कुज से दृष्ट शनि अष्टम भाव में हो तो कीड़े, अग्नि और शस्त्र के घात से मरण होता है ॥ ९ ॥

विशेष अर्थ—कितने ही टीकाकार इन दोनों योगों को एक ही मानते हैं ॥ ९ ॥

अथान्यानपि मृत्युयोगान्वसन्तविलक्षेनाह—

अस्ते रवौ सरुधिरे निधनेऽर्कपुत्रे

क्षीणे रसातलगते हिमगौ खगान्तः ।

लग्नात्मजाष्टमतपस्विनभौममन्द-

चन्द्रैस्तु शैलशिखराशनिकुड्यपातः ॥ १० ॥

अस्ते रवाविति ॥ अस्ते सप्तमे रवावादिष्वे सरुधिरे भौमेन संयुक्ते स्थिते-
ऽर्कपुत्रे सौरे निधनेऽष्टमे क्षीणे हिमगौ चन्द्रे रसातलगते चतुर्थस्थानस्थे जातः
खगान्तो भवति खगः पक्षी तत्कृतो मृत्युर्भवति । तस्य मृतस्याग्निसंस्कारो न
भवतीत्यर्थः । लग्नात्मजाष्टमेति । इनः सूर्यः, भौमः कुजः, मन्दः सौरः, चन्द्रः
शशाङ्कः, एतैर्यथासंख्यं लग्नात्मजाष्टमपस्वसु स्थितैः लग्नपञ्चमाष्टमनवमस्वैः
तेन लग्नेऽर्कः, पञ्चमे भौमः, अष्टमे सौरः, नवमे चन्द्रो यस्य जन्मनि भवति
तस्य शैलशिखरात् पर्वतमस्तकात् पतितस्याशनिपातेन चोल्क्या वज्रपातेन
कुड्यपातेन भित्तिपातेन वा मृत्युर्भवति ॥ १० ॥

भाषा—यदि सूर्य और मंगल सप्तम भाव में, शनि अष्टम भाव में और क्षीण चन्द्रमा चतुर्थ भाव में हो तो पक्षी के द्वारा जातक का मरण होता है। यदि सूर्य, मंगल, शनि, चन्द्र ये क्रम से लग्न, ५, ८, ९ इन भावों में हों तो पर्वत शिखर पर से गिरकर, वज्रपात से बधवा भित्ति कोठे के छत आदि पर से गिरने से मरण होता है ॥ १० ॥

अथ यस्य जन्मन्येतेषां योगानां मध्यादन्यतमो योगो न भवति न चाष्टमे स्थाने कश्चिद् ग्रहो भवति न चाष्टमं स्थानं कश्चिद्ग्रहः पश्यति तन्मृत्युकारणं चेनाज्ञानेनाह—

द्वाविंशः कथितस्तु कारणं द्रेष्काणो निधनस्य सूरिभिः ।

तस्याधिपतिर्भवोऽपि वा निर्याणं स्वगुणैः प्रयच्छति ॥११॥

द्वाविंश इति ॥ येन द्रेष्काणेन पुमान् जातस्तस्माद्यो द्वाविंशो द्रेष्काणो भवति स सूरिभिः पण्डितैः निधनस्य मृत्योः कारणं निमित्तं कथितः । कथमित्याह—तस्याधिरितिर्यादि । तस्य द्वाविंशस्य द्रेष्काणस्य योऽधिपतिर्ग्रहस्तस्याग्न्यम्बायुधज इत्यादिस्वगुणैर्यो हेतुः पठितस्तेन निर्याणं मरणं प्रयच्छति ददाति । अथवा यस्मिन् राशौ स द्वाविंशो द्रेष्काणो भवति तस्य राशेर्यः स्वामी तत्सम्भवो भवति स स्वगुणैरात्मीयहेतुभिः निर्याणं मरणं प्रयच्छति ददाति । स च द्वाविंशो द्रेष्काणो लग्नादष्टमराशौ भवति स कथं ज्ञायते ? उच्यते, यदि लग्नस्य प्रथमो द्रेष्काणस्तदाष्टमस्यापि प्रथमोऽथ लग्नस्य द्वितीयस्तदाष्टमस्यापि द्वितीयोऽथ लग्नस्य तृतीयस्तदाष्टमस्यापि तृतीयः न केवलं यावत्सर्वराशीनामेषैव व्यवस्था । अनेन क्रमेण प्रकारेण योष्टमराशोः द्रेष्काणः स एव द्वाविंशो द्रेष्काण इति । तत्रैतज्जातम्—यस्योक्तयोगानामन्यतमो योगो न भवति न चाष्टमं स्थानं ग्रहयुतवोचितं तस्य द्वाविंशद्रेष्काणाधिपाष्टमराशयधिपयोर्यो बलत्रांस्तदुक्तदोषेण मृत्युरिति ॥ ११ ॥

भाषा—जिसके जन्मलग्न से अष्टम भाव पर ग्रह की दृष्टि या योग के अभाव हों उसके लग्न में जो द्रेष्काण वर्तमान हो उससे २२ वाँ द्रेष्काण मरण का हेतु होता है, ऐसा पण्डितों ने कहा है । २२ वाँ द्रेष्काण का स्वामी अथवा अष्टम भाव में जो राशि हो उसका स्वामी अपने पूर्व-कथित (अग्नि, जल, आयुध इत्यादि प्रथम श्लोकोक्त) गुणों से जातक के मरण का हेतु होता है ॥ ११ ॥

विशेष अर्थ—लग्न और अष्टम भाव के बीच में ७ राशि कहते हैं तथा एक-एक राशि में ३ द्रेष्काण होते हैं, इसलिये लग्न में यदि प्रथम द्रेष्काण होगा तो २२ वाँ द्रेष्काण अष्टम भाव का प्रथम द्रेष्काण होगा, यदि लग्न में द्वितीय द्रेष्काण हो तो अष्टम का द्वितीय, लग्न में तृतीय द्रेष्काण हो तो अष्टम का तृतीय द्रेष्काण २२ वाँ द्रेष्काण होता है ॥ ११ ॥

अथ यादृग्भूमौ श्रियते तद्विज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

होरानवांशकप्रयुक्तसमानभूमौ

योगेक्षणादिभिरतः परिकल्प्यमेतत् ।

मोहस्तु मृत्युसमयेऽनुदितांशतुल्यः

स्वेषोचिते द्विगुणितस्त्रिगुणः शुभैश्च ॥ १२ ॥

होराणवांशेति । पुरुषस्य जन्मसमये होरायां लग्ने यो नवांशको भवति तस्य योऽधिपतिः ग्रहस्तेन यो युक्तो राशिः स राशिर्यत्र स्थित इत्यर्थः । तस्य राशेर्या योग्या भूमिस्तस्यां भूमौ स म्रियते । तद्यथा । स चेद्राशिद्वये भवति तदा अधिकसञ्चारभूमौ । स चेद्राशिः मेषो भवति तदाजाविकसंज्ञभूमौ । वृष-भश्चेत्तदा वृषभप्रचारभूमौ । मिथुनश्चेत्तदा गृहे, कर्कटश्चेत्तदा कूपे, सिंहश्चे-त्तदाऽऽरण्ये, कन्या चेत्तदा कूपे, तुला चेत्तदा पणगृहे, वृश्चिकश्चेत्तदा श्वभ्रे, धन्वी चेत्तदाऽश्वप्रचारभूमौ, मकरश्चेत्तदानूपे, कुम्भश्चेत्तदा गृहे, मीनश्चेत्तदानूप इति । येषां तु पुनर्मृत्युयोगे जलादौ मरणमुक्तं तेषां तत्रैव । न केवलं दर्शितराशिवशेन भूप्रदेशो वक्तव्यः, अपि तु योगेक्षणादिभिरिति । स लग्ननवांशकाधिपतिर्यस्मिन् राशौ व्यवस्थितः तत्र यद्यनेन ग्रहेण तस्य योगो भवति तदा तस्य च या भूमिः ईक्षणादिर्यो वा तत्स्थं पश्यति आदिग्रहणाद्यस्य नवांशके स्थितस्यापि या भूमिरुक्ता तस्यां स म्रियते इति । अत्र च बहुभूमिसम्भवे ग्रहबलादुक्तव्या । ननु च ग्रहस्य का भूमिः ? उच्यते, ग्रहस्यात्मीयराशेर्या भूमिः सैवेति । ननु यस्य राशिद्वयं तस्य का भूमिरिति ? उच्यते, तत्र त्रिकोणराशेः सम्बन्धनी भूमिः । तद्यथा । आदित्यस्य सिंहभूमिः अरण्यम् । चन्द्रमसः कर्कटभूमिरनूपम् । भौमस्य मेषभूमिरजाविकसंचारप्रदेशः । बुधस्य कन्याभूमिरनूपम् । जीवस्य धनुर्भूमिर-श्वप्रचारः । शुक्रस्य तुलाभूमिः विपणिः । शनैश्चरस्य कुम्भभूमिः गृहमिति । केचिदत्र देवालये अग्निविहारकोशशयनक्षित्युत्कराः स्युरित्यादिकं स्थानमि-च्छन्ति । एतच्च शोभनम् । यतः एतेषु स्थानेषु म्रियमाणा दृश्यन्त इति । एवमे-तस्मादन्यत् परिकल्प्यं चिन्त्यम् । मोहस्त्विति । यावन्तो लग्नस्य नवांशका अनु-दिताः शेषास्तेषांशानां संपीडितानां यावत्कालो भवति तत्तुल्यः तत्समो मृत्यु-समये मरणकाले कालो भवति । एतदुक्तं भवति—यावत्कालो लग्नादवशिष्टः पुरुषस्य जन्मविषये भवति तावत्कालमिति । स चेत्लग्नराशिः यदि स्वशेन स्वपतिनेक्षितो दृष्टस्तदा स एव कालो द्विगुणो वक्तव्यः अर्थादेव स्वामिना सौम्यग्रहेण च दृष्टस्तदा षड्गुणकालो वक्तव्यः ॥ १२ ॥

भाषा—लग्न में जो नवांश हो उसका स्वामी जिस राशि में हो उस राशि के समान भूमि ('स्वचराश्च सर्वे' इत्यादि में कथित स्थान) में मरण कहना चाहिये । तथा नवांश पति को जिस ग्रह से योग हो या जो ग्रह देखता हो उस ग्रह के समान भूमि (देवाग्निः इत्यादि कथित ग्रह स्थान) में मरण स्थान की कल्पना (विचार) करे । जन्मकाल में लग्न के जितने भोग्यांश हो उसके काल के तुल्यकाल पर्यन्त मरण समय में मोह कहना चाहिये । यदि लग्न अपने स्वामी से दृष्ट हो तो उस काल के द्विगुणित काल तुल्य, तथा शुभग्रह से दृष्ट हो तो भोग्यांश काल से त्रिगुण तुल्य काल मोह कहना । यदि शुभग्रह और स्वामी दोनों लग्न को देखते हों तो षड्गुण काल समझे, यह अर्थात् सिद्ध होता है ॥ १२ ॥

विशेष अर्थ—भाव यह है कि—लग्न नवांशपति जिस ग्रह के साथ हो उस ग्रह की जो भूमि कही गयी है उस भूमि में मरण कहना । यदि बहुत ग्रह का योग हो तो उनमें जो बली हो उसकी भूमि सदृश भूमि में । यदि ग्रह योग नहीं हो तो उस पर जिसकी दृष्टि हो, बहुत ग्रहों की दृष्टि हो तो उनमें बली ग्रह जो हो उसकी भूमि के सदृश स्थान में, यदि किसी ग्रह का योग या दृष्टि नहीं हो तो तब नवांशपति जिस राशि में हो उसके समान भूमि में मरण विचार कहना चाहिये ॥

काल का ज्ञान इस प्रकार है कि ३० अंश में लग्न राशि के उदयकाल तो लग्न के भोग्यांश में क्या ? इस प्रकार भोग्यांश को उदयमान से गुना कर ३० के भाग देकर लब्धितुल्य काल समझना ॥ १२ ॥

अथ मृतस्य शरीरपरिणामज्ञानं मालिन्याह—

दहनजलविमिश्रैर्भस्मसंक्लेदशेषैः

निधनभवनसंस्थैर्व्यालवर्गैर्विडम्बः ।

इति श्वपरिणामश्चिन्तनीयो यथोक्तः

पृथुविरचितशास्त्रादुगत्यनूकादिचिन्त्यम् ॥ १३ ॥

दहनेति । निधनभवनेऽष्टमे स्थाने यो द्रेष्काणो व्यवस्थितः तद्वराच्छ्वपरिणामश्चिन्तनीयः । स च गणनया द्वाविंशो द्रेष्काणो भवति । स च यदि दहनद्रेष्काणोऽग्निद्रेष्काणो भवति तदा भस्मत्वेन परिणामत्यग्निना दह्यते । पापद्रेष्काणोऽग्निद्रेष्काणः । अथ जलद्रेष्काणो भवति तदा संक्षिद्यते जलमध्ये क्षिप्यते । सौम्यग्रहद्रेष्काणो जलद्रेष्काणः, अथ मिश्रद्रेष्काणो भवति तदा शुष्यते । सौम्यग्रहद्रेष्काणः पापयुक्तो भवति, पापग्रहद्रेष्काणो वा सौम्ययुक्तस्तदा मिश्रद्रेष्काणः । तथा निधनभवनसंस्थैरष्टमराश्याश्रितैः व्यालवर्गैः सर्पद्रेष्काणैः विडम्बितो भवति तदा श्वशृगालकाकादिभिर्भुज्यते । भक्ष्यते इत्यर्थः । अत्र व्यालद्रेष्काणः कर्कटाद्यः कर्कटद्वितीयः वृश्चिकाद्यः वृश्चिकद्वितीयः मीनान्त्यश्च । उक्तं च—“शशिशृगहपूर्वापरगः कीटस्य च मीनपश्चिमोपगतः । निधने यस्य भवन्ति द्रेष्काणास्तस्य च मृतस्य । भुज्जन्ति वायसाद्याः प्राणिसमूहा न चास्ति संदेहः । पापग्रहद्रेष्काणो यस्याष्टमराशिसंस्थितो भवति । दहनं प्राप्नोति नरो मृतमात्रो निश्चयात्प्रवदेत् ।” एवं सौम्यद्रेष्काणो जलमध्ये क्षिप्यते नरोऽत्र मृतः । सौम्यद्रेष्काणः पापैः पापद्रेष्काणोऽपि सौम्युक्तः । यस्याष्टमभवनगतः शोषं प्राप्नोति सोऽपि मृत इति । एवं प्रकारः शवानां मृतानां परिणामो विपत्तिश्चिन्तनीयो विचार्यः । पृथुविरचितशास्त्राद्विस्तीर्णाच्छास्त्रादुगत्यर्थकादि मरणादि चिन्त्यम् । मृतस्य का गतिर्भविष्यति ? कस्माच्च लोकादयमागतः ? । आदिग्रहणात्तत्र कीदृगासीदिति । अनूकशब्देनेहातीतजन्मोच्यते ॥ १३ ॥

भाषा—अष्टम भाव में अग्नि (पापग्रह का) द्रेष्काण हो तो मृतक का शरीर अग्नि में जलाया जाता है । यदि जल (सौम्य) द्रेष्काण हो तो जल में फेंका

जाता है। यदि मिश्र द्रेष्काण (शुभग्रह का द्रेष्काण-पापग्रह या पापग्रह का द्रेष्काण शुभग्रह) हो तो मृत शरीर की विडम्बना (कुत्ते, कौवे आदि के द्वारा खाये जाने पर दुर्गति) होती है।

इस प्रकार मृत शरीर का परिणाम विचार कर समझना चाहिये। तथा मरने के बाद की गति और पूर्व जन्म के वृत्तान्त आदि पृथुरचित शास्त्र से समझना चाहिए ॥ १३ ॥

विशेष अर्थ—‘पृथुरचित’ का अभिप्राय है, कि यहाँ मैंने संक्षेप में कहा है। और विशेष विचार करना हो तो पूर्व रचित बृहद् ग्रन्थों को देखिये। तथा—‘पृथुयशा’ नामक वराहमिहिर के पुत्र थे। उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों से भी विचार करना चाहिए। यह भी सूचित किया गया है नामैकदेश से नाम का ग्रहण होता है ॥ १३ ॥

अथ योऽयं जातो जन्तुः स कस्माल्लोकादागत इति यदुक्तं तद्विज्ञानं मालिन्याह—

गुरुडुपतिशुक्रौ सूर्यभौमौ यमज्ञौ

विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च कुर्युः ।

दिनकरशशिबीर्याधिष्ठितात् त्र्यंशनाथात्

प्रवरसमनिकृष्टास्तुङ्गहासादनूके ॥ १४ ॥

गुरुरिति । गुरुर्जात्रः, डुपतिशुक्रौ चन्द्रसितौ, सूर्यभौमौ रविकुजौ, यमज्ञौ सौरबुधौ एते विबुधपितृतिरश्चो नारकीयांश्च जातान् कुर्युः । विबुधलोको देवलोकः, पितृलोकः प्रसिद्धः, तिरश्चस्तिर्यङ्लोकः प्रसिद्धः, एभ्यः आगतान् वदेत् । कथमिति तदर्थमाह । दिनकरशशिबीर्याधिष्ठितात् त्र्यंशनाथादिति । दिनकरः सूर्यः, शशी चन्द्रः अनयोः दिनकरशशिनोः मध्याह्ने बली वीर्यवान् तेनाधिष्ठितो युक्तो यस्त्यंशो द्रेष्काणः तस्य यो नाथः स्वामी तस्य यो लोकस्तस्मादागत इति वक्तव्यम् । तत्र स यदि द्रेष्काणो गुरोः जीवस्य सम्बन्धी भवति तदा विबुधलोकादागत इति वक्तव्यम् । अथ चन्द्रशुक्रयोरन्यतरसम्बन्धी भवति तदा पितृलोकादागत इति वक्तव्यम् । अथ सूर्यभौमयोरन्यतरसम्बन्धी भवति तदा तिर्यङ्लोकादागत इति वक्तव्यम् । अथ शनैश्चरभौमयोरन्यतरसम्बन्धी भवति तदा नरकलोकादागत इति वक्तव्यम् । यस्माल्लोकादागतस्तत्रापि श्रेष्ठमध्यम-हीनस्य ज्ञानमाह—प्रवरेत्यादि । यस्य ग्रहस्य प्रदर्शितलोकात्तस्य जन्मज्ञानमाह—ग्रहस्तुङ्गस्थः स्वोच्चराशिगतो भवति तदा तत्र प्रवरः प्रधान आसीदिति विज्ञेयम् । अथोच्चराशिच्युतो नीचमप्राप्य तदा तत्रासौ मध्यम आसीदिति विज्ञेयम् । नीचस्थः निकृष्टः हीनः एतदनूके प्राग्जन्मनि ज्ञेयम् ॥ १४ ॥

भाषा—सूर्य और चन्द्रमा में जो अधिक बलवान् हो वह जिस द्रेष्काण में हो उस द्रेष्काण का स्वामी गुरु हो तो देवलोक से जातक आया है—ऐसा समझना

चाहिए । यदि चन्द्रमा या शुक्र द्रेष्काण पति हो तो पितृलोक से, यदि सूर्य या मंगल द्रेष्काण पति हो तो तिर्यग् (मृत्यु) लोक से, यदि शनि या बुध उक्त द्रेष्काण पति हो तो नरक से आया है, ऐसा समझना चाहिए । पूर्व जन्म में भी जातक किस प्रकार का था उसका ज्ञान कहते हैं कि उक्त द्रेष्काणपति अपने उच्च के समीप हो तो पूर्व जन्म में देवादिलोक में भी श्रेष्ठ था, उच्चनीच के मध्य में हो तो देवादिलोक में भी मध्यम श्रेणी का था, तथा नीच के समीप में हो तो देवादिलोक में अधम श्रेणी का था, ऐसा समझना चाहिए । १४ ॥

अथ मृतस्य का गतिर्भविष्यति तद्विज्ञानं मालिन्याह—

गतिरपि रिपुरन्ध्रत्र्यंशपोऽस्तस्थितो वा

गुरुथ रिपुकेन्द्रच्छिद्रगः स्वोच्चसंस्थः ।

उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्यभागे च मोक्षो

भवति यदि बलेन प्रोज्झितास्तत्र शेषाः ॥ १५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके नैर्याणिकाध्यायः

पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

गतिर्गतिः ॥ यस्य जन्मनि लग्नात्पञ्चसप्तमाष्टमस्थानानि शून्यानि भवन्ति तस्य तत्कालं रिपुस्थाने पष्ठे यो द्रेष्काणो यश्च रंभस्थानेऽष्टमे त्र्यंशो द्रेष्काणो वर्तते तथोर्यावधिपती तथोर्मध्ये यो बलवान् तस्य यो लोकोऽभिहितः स एव गतिः । एवं रिपुरन्ध्रत्र्यंशप इति । तत्र तेन मृतेन गन्तव्यमिति । अस्तस्थितो वा । अथ लग्नात्पञ्चसप्तमाष्टमस्थानानामन्यतमे स्थाने कश्चिद्ग्रहो भवति तदा तस्य दर्शितलोके तेन गन्तव्यम् । अथ लग्नात्पञ्चसप्तमाष्टमस्थानानां द्वे स्थाने त्रीणि वा सप्तहाणि भवन्ति । अथैकस्मिन्नापि द्वाद्यादयो ग्रहा भवन्ति तेषां ग्रहाणां यो बलवांस्तस्य यः प्रदर्शितो लोकस्तेन गन्तव्यमिति । नन्वस्तस्थितो वेत्येकं स्थानमुक्तं तत्र सप्तमग्रहणं कृतं तत्पञ्चाष्टमस्थोऽपि स्वां गतिं नयतीति किं व्याख्यातम् ? उच्यते, अस्तस्थितो वेति वाशब्दश्चशब्दार्थे ज्ञेयः न केवलमस्तस्थितश्चकाराद्रिपुरन्ध्रपश्चेति केचिदस्तस्थितश्चेति पठन्ति । तथा च स्वल्पजातके उक्तम्—‘सुरपितृतिर्यङ्नारकान् गुरुकुडुपसितावसृग्वीक्ष्यमौ । रिपुन्ध्रत्र्यंशकपा नयन्ति चास्तारिनिधनस्थाः ॥’ गुरुरथेति । अथशब्दः पादपूर्णाार्थः । यस्य जन्मनि गुरुर्बृहस्पतिर्लग्नाद्रिपुस्थाने पष्ठे भवति केन्द्रेषु वा छिद्रेऽष्टमे वा स च स्वोच्चस्थः कर्षटे भवति तदैको योगः । अथवाऽन्त्ये भवने मीनराशौ उदयति विलग्नगते तत्र च गुरुवर्ज्यं शेषा ग्रहा अन्ये ग्रहा बलेन वीर्येण प्रोज्झिता वर्जिता भवन्ति तदा द्वितीयो योगः । आस्मिन्योगद्वये जातस्य मोक्षो भविष्यतीति वक्तव्यम् । उदयति भवनेऽन्त्ये सौम्यभागे च मोक्ष इत्यत्र चकारो वाश-

ब्दम्यार्थे । यथा पुरुषस्य जन्मकालग्रहवशाद्गतिरुक्ता तथा मरणकाललग्न-
वशादपि गतिर्वक्तव्या । यस्मात्स्वरूपजातके उक्तम्—

“षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुश्चेद्भवति मीनलग्ने वा ।

शेषैः खगैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥” इति ॥ १५ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ

नैर्याणिकाध्यायः पञ्चविंशः ॥ २५ ॥

भाषा—जन्म लग्न से ६।८।७ स्थान में जो ग्रह बलवान् हो उसका जो लोक
(पूर्व श्लोक कथित) है उस लोक में मरने के बाद जाता है । यदि ६।७।८ इन
स्थानों में ग्रह नहीं हो तो षष्ठम भाव गत द्रेष्याण के स्वामियों में जो बली हो
उसका जो लोक कहा गया है उस लोक में जाता है । अब मोक्ष योग कहते हैं— कर्क
स्थित बृहस्पति यदि लग्न से ६।१।४।७।१०।८ इनमें किसी स्थान में हो अथवा मीन-
लग्न में शुभ ग्रह का नवांश हो इन दोनों योगों में अन्य ग्रह सब निर्बल हों तो जातक-
को मोक्ष लाभ होता है ॥ १५ ॥

विशेष अर्थ—यहाँ ‘अस्तस्थितो वा’ इस प्रकार विकल्प शब्द से ६८ स्थान
स्थित ग्रह का भी बोध होता है । यथा लघुजातक में स्वयं आचार्य का वचन है—

“रिपुर्ध्वज्यंशकपा नयन्ति चास्तारिनिघ्नस्थाः ।” स्पष्टार्थ ।

तथा—जिस प्रकार जन्म लग्न से गति का ज्ञान कहा गया है, उसी प्रकार मरण-
कालिक लग्न से भी समझना चाहिये । यथा लघुजातक में—

“षष्ठाष्टमकण्टकगो गुरुर्भवति मीनलग्ने वा ।

शेषैर्बलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः ॥” स्पष्टार्थ ॥ १५ ॥

अथ नष्टजातकाध्यायः ॥ २६ ॥

अथ नष्टजातकाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादावेव प्रसूतिकालज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

आधानजन्मापरिबोधकाले सम्पृच्छतो जन्म वदेद्विलग्नात् ।

पूर्वापरार्थे भवनस्य विन्ध्याद्भानाबुदग्दक्षिणगे प्रसूतिम् ॥ १ ॥

आधानेति ॥ यस्याधानकालो ज्ञायते तस्याधानकालात् पूर्वमेव जन्म व्या-
ख्यातं तत्कालमिन्द्रुसहित इत्यादिना जन्मकालश्च व्याख्यात एव । एवमाधान-
जन्मकालयोरपरिबोधे अज्ञाने सति संपृच्छतः प्रष्टुः विलग्नात्प्रश्नलग्नाज्जन्म
वदेत् ब्रूयात् । येन लग्नेन प्रष्टा पृच्छति तस्य यदि पूर्वार्द्धे प्रथमहोरा भवति
तदा प्रष्टुः भानावाचित्ये उदयगते उत्तरायणस्थे जन्म वक्तव्यम् । मकरादि-
राशिषट्कस्थे जात इत्यर्थः । अथ लग्नस्यापरार्धे द्वितीया होरा भवति तदा
भानौ दक्षिणगते दक्षिणाधनस्थे जन्म वक्तव्यम् । कर्कटादिराशिषट्कस्थे जात
इत्यर्थः । तथा च आधानजन्मनी यस्याविज्ञाते तस्य देहिनः जन्म सम्पृच्छ-
तस्तस्य प्रश्नलग्नाद्विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

भाषा—जिसका गर्भावधान या जन्मसमय ज्ञात नहीं हो ऐसे मनुष्य के प्रश्न-लग्न से जन्मसमय समझना चाहिये । जैसे प्रश्न लग्न राशि के १५ अंश के भीतर (याने प्रथम होरा में) हो तो उत्तरायण (मकर से ६ राशि के सूर्य) में, यदि लग्न १५ अंश के ऊपर (याने द्वितीय होरा में) हो तो दक्षिणायन (कर्क से ६ राशिस्थ सूर्य) में जन्म समझना चाहिए ॥ १ ॥

उदाहरण—मानो काली में संवत् २००१ वैशाख शुक्ल पक्ष ७ तिथि शनिवार सूर्योदय से ११।१० इष्ट घटी पल पर किसी ने अपने अज्ञात जन्म समय होने के कारण नष्टजन्माङ्गपत्र बनाने के लिये प्रश्न किया तो उस समय के स्पष्ट ग्रह और लग्न चक्र में देखिये । दिनमान ३२।२० यहाँ प्रश्न लग्न १५ अंश के ऊपर है इसलिये जन्म का दक्षिण अयन हुआ ॥ १ ॥

प्रश्नकालिकाः स्पष्टग्रहाः—

| सू. | चं. | मं. | बु. | बृ. | शु. | श. | रा. | ल. |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|-----|----|
| ० | ३ | २ | ० | ३ | ० | १ | ३ | २ |
| १५ | ३ | २२ | २० | २८ | ३ | २६ | ११ | २३ |
| ४३ | ० | ४५ | ४९ | ५ | ५३ | १ | ३२ | १५ |
| २८ | २६ | ४७ | ११ | ३७ | ५६ | ४९ | २ | ५७ |

प्रश्नलग्न कुण्डली

| | | |
|------------|-----------|--------|
| गु. च. रा. | २ | ५ |
| ४ | मं. ३ रा. | ५ |
| ६ | १२ | ११ |
| ७ | ९ | १० के. |
| ८ | | |

अथ वर्षर्तुज्ञानमुपजातिकयाह—

लग्नत्रिकोणेषु गुरुस्त्रिभागैर्विकल्प्य वर्षाणि वयोऽनुमानात् ।

ग्रीष्मोऽर्कलग्ने कथितास्तु शेषैरन्यायनर्तावृत्तुरर्कचारात् ॥ २ ॥

लग्नत्रिकोणेष्विति ॥ त्रिभागैर्द्रेष्काणैर्लग्नत्रिकोणेषु प्रथमपञ्चमनवमस्थानेषु गुरुर्जीवो ज्ञेयः । तद्यथा । प्रश्नलग्नस्य यदि प्रथमद्रेष्काणो भवति तदा य एव लग्नराशिस्तत्रस्थे गुरौ जन्म वक्तव्यम् । अथ लग्नस्य द्वितीयो द्रेष्काणस्तदा लग्नाद्यः पञ्चमो राशिस्तत्रस्थे गुरौ जन्म वक्तव्यम् । अथ लग्नस्य तृतीयो द्रेष्काणस्तदा लग्नाद्यो नवमो राशिस्तत्रस्थे गुरौ जन्म वक्तव्यम् । एवं केषाञ्चनमतम् । अथान्येषां मतं यथा । प्रश्नलग्नस्य यदा प्रथमो द्रेष्काणादयो भवति तदा लग्नराशितो यावत्संख्ये राशौ बृहस्पतिस्तिष्ठति तावत्संख्यानि षष्ठ्युर्वर्षाणि वक्तव्यानि । अथ लग्ने द्वितीयो द्रेष्काणस्तदा लग्नात्पञ्चमराशितो यावत्संख्ये राशौ बृहस्पतिर्भवति तावत्संख्यानि षष्ठ्युर्वर्षाणि वक्तव्यानि । यदा लग्नस्य तृतीयो द्रेष्काणो भवति तदा लग्नान्नवमराशितो यावत्संख्ये राशौ बृहस्पतिर्भवति तावत्संख्यानि षष्ठ्युर्वर्षाणि वक्तव्यानि । तद-

व्याख्यानं न शोभनं, पूर्वव्याख्यानमेव श्रेयः । यस्माद्यवनेश्वरः—“द्रेष्काण-
लग्नक्रमस्तु राशौ गुरुर्विलग्नादित्रिकोणगोऽभूत् । समुद्गते तद्वचनक्रमेण स्वा-
चारभाद्वदगतिं प्रगण्यात् ॥” यद्यप्यत्र सामान्येनोक्तं बृहस्पतेरवस्थानम् । तथा
च द्वादशभागक्रमेण प्रतिराशौ सञ्चार्यः । तद्यथा ! यदि प्रश्नलग्नस्य प्रथमद्वा-
दशभागोदयो भवति तदा लग्नस्थे जोवे जातः । द्वितीयद्वादशभागश्चेत्तदा
लग्नाद्वितीये गुरौ जातः । एवं तृतीयादिद्वादशभागोदये तृतीयादिषु स्थानेषु
ऊह्यम् । “विकल्प्य वर्षाणि वयोनुमानात्” एवं बृहस्पतेरवस्थानं ज्ञात्वा तस्य
एव वयोनुमानात्तस्याकृतिं शरीरमवेक्ष्य वर्षाणि विकल्प्य वयःप्रमाणं बुद्ध्वा
द्वादशसु द्वादशसु वर्षेषु विकल्पना कार्या । किमस्मिन्नेव भगणपरिवर्तज्ञात-
राशोः बृहस्पतेरवस्थानमभूदुत द्वितीय उत तृतीयादिषु । एवं तस्याकृतिमवेक्ष्य
वयानुमानं वक्तव्यम् । यत्र द्वादशसु वर्षेषु भ्रान्तिर्भवति तत्र पुरुषलक्षणोक्तेन
दशाविभागेन द्वादशवार्षिकीं दशां क्षेत्रेषु परिकल्प्य यत्तात् क्षेत्राङ्गसंस्पर्शाद्वर्ष-
ज्ञानम् । तथा च पुरुषलक्षणे पठ्यते—“पादौ सगुल्फौ प्रथमं प्रदिष्टं जङ्घे
द्वितीयं तु स जानुवक्त्रे । मेढोरुमुष्काश्च ततस्तृतीयं नाभिं कटिं चेति चतु-
र्थमाहुः ॥ उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्ठमथ स्तनान्वितम् । अथ सप्तममंश-
जश्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे ॥ नवमं नयने च सभ्रुणी सललाटं दशमं
शिरस्तथा । अशुभेष्वशुभं दशाफलं चरणाद्येषु शुभेषु शोभनम् ॥” इति ।
किं त्वत्र विंशत्यधिकं वर्षशतं यस्य जन्मनोऽतोत्तं तस्य नष्टजातकवर्षज्ञानोपाय
एव नास्ति । एवं वर्षेषु ज्ञातेषु ऋतुज्ञानमाह । ग्रीष्मोऽर्कलग्न इति । येन
लग्नेन प्रष्टा पृच्छति तत्र चेदर्कः सूर्यः स्थितस्तद्द्रेष्काणो वा लग्ने तदा
ग्रीष्मे जात इति वक्तव्यम् । कथितास्तु शेषैरिति । शेषैरन्यैश्चन्द्रादिभिर्ग्रहै-
र्लग्नस्थैः ऋतुः पूर्वमेव कथित उक्तः द्रेष्काणैः शिशिरादय इत्यादिना ग्रन्थे-
नोक्तः । तत्र यदा शनैश्चरो लग्ने भवति तद्द्रेष्काणो वा तदा शिशिरे जात
इति वक्तव्यम् । एवं शुके लग्नगते वा तद्द्रेष्काणो तदा वसन्ते जातः ।
एवं भौमे ग्रीष्मे । एवमेव रवावपि । चन्द्रे लग्नगते तद्द्रेष्काणो वा वर्षासु ।
बुधे शरदि । जोवे हेमन्त इति । यदा बहवो लग्नगताः भवन्ति तदा तेषां मध्ये
यो बलवान् तदुक्तो जात इति वक्तव्यम् । अथ न कश्चिद्यदि लग्नगतो
भवति तदा यस्य सम्बन्धो द्रेष्काणोदयो भवति तदा तदुक्तो जात इत्येवं
वक्तव्यम् । अन्यायवर्तावृत्तुरर्कचारादिति । अन्यस्मिन्नयने वान्यस्मिन्नृतावर्क-
चारादतुः अन्यस्मिन्नयने तदयनासम्भवश्चेदतुरन्यो भवति तदतुर्कर्कचारवशेन
वक्तव्यः । एतदुक्तं भवति । सौरेण मानेन ऋतुर्वक्तव्यः न तु चान्द्रेण ।
यथा शिशिरे ज्ञाते मकरकुम्भयोरन्यतरे राशौ सूर्यस्यावस्थानं ज्ञेयम् । एवं
शेषराशिष्वप्यूह्यम् । अनेन लौकिकश्चान्द्रमासो निराकृतो भवतीति ॥ २ ॥

समझना चाहिये। द्वितीय द्रेष्काण हो तो लग्न से पञ्चम राशि में और तृतीय द्रेष्काण हो तो लग्न से नवम राशि में जन्मकालिक गुरु समझना चाहिए। पुनः संवत्सर जानने के लिये प्रश्नकर्ता के वयस (आकृति रूप) के अनुमान से वर्ष प्रमाण समझना। अर्थात् प्रश्न संवत्सर से उतने वर्ष पूर्व संवत्सर में प्रेटा का जन्म हुआ, ऐसा समझना चाहिए। तथा लग्न में रवि हो तो ग्रीष्म ऋतु और अन्य ग्रहों की ऋतु “शिशिरादयः शशुरुचाज्ञग्वादिषु” इत्यादि पूर्व २ अध्याय १२ श्लोक में कही गयी है उससे समझना चाहिए। जो अयन आया हो उसी अयन की ऋतु है या भिन्न अयन की ऋतु है इस विचार के लिए ऋतु का ज्ञान सूर्य सक्रान्ति से (“मृगादिराशिद्वयभानुभोगात् षडर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः । ग्रीष्मश्च वर्षाश्च शरदश्च तद्वद् हेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः” इस रीति से) समझना चाहिए। अर्थात् चान्द्रमान (माघ, फाल्गुन इत्यादि) से नहीं ॥ २ ॥

विशेष अर्थ—भाव यह है कि—बृहस्पति एक राशि में लगभग एक-एक वर्ष रहता है। इसलिये प्रति बारह वर्ष के बाद फिर उस राशि में आ जाता है। उक्त रीति से जन्मकालिक गुरु की राशि से वर्तमान (प्रश्नकालिक) गुरु की राशि तक जितनी संख्या हो उतने वर्ष ‘प्रश्न संवत्सर से’ पूर्व उस राशि में गुरु था, एवं उस संख्या में १२, १२ जोड़ने से जितनी संख्या हो उतने-उतने वर्ष पूर्व उस राशि में बृहस्पति की स्थिति रहती है। जैसे मानों प्रश्न समय में गुरु कर्क में है और जन्म के बृहस्पति की राशि धनु है तो धनु से कर्क तक का अन्तर ७ हुआ। इसलिये प्रश्न संवत् से ७ वर्ष तथा ७+१२=१९ वर्ष, ३१, ४३, ५५, ६७, ७९, ९१ इत्यादि वर्ष पहले धनु में गुरु की स्थिति सिद्ध होती है। इसलिये यदि प्रश्नकर्ता के वयस अनुमान से ७ के समीप हो तो ७ को, १९ के समीप हो तो १९ को, ३१ वर्ष के समीप अनुमान हो तो ३१ को इत्यादि वर्तमान (प्रश्न) संवत्सर में घटाने से जन्म-संवत्सर होता है जो धागे उदाहरण में और स्पष्ट है।

(एवं ऋतु सर्वदा सौरमान से ही ग्रहण करना चाहिये। जैसे वसन्त ऋतु हो तो—मीन और मेष राशि स्थित सूर्य समझना; चन्द्रमान से चैत्र, वंशाख नहीं।)

तथा लग्न में ग्रह हो तो जो बली हो उस ग्रह की ऋतु, यदि ग्रह नहीं हो तब जिस ग्रह का द्रेष्काण लग्न में हो उसकी ऋतु समझनी चाहिए।

उत्तर अयन में शिशिर, वसन्त, और ग्रीष्म ऋतु होती है। दक्षिण अयन में वर्षा, शरद् और हेमन्त ये तीन ऋतु होती हैं। इसे ध्यान में रखना चाहिए ॥ २ ॥

उदाहरण—प्रश्नकालिक मिथुन लग्न में तृतीय द्रेष्काण है इसलिये मिथुन से नवम कुम्भ राशि में जन्मकालिक गुरु हुआ। अतः कुम्भ से वर्तमान गुरु राशि कर्क तक ६ संख्या हुई, इसलिये वर्तमान संवत्सर से ६ वर्ष, १८ वर्ष, ३० वर्ष, ४२ वर्ष पूर्व गुरु की स्थिति कुम्भ में हो सकती है। अब प्रश्नकर्ता की आकृति के अनुमान से १५ और २१ के बीच वयस है तो उसके समीप की १८ संख्या को वर्तमान संवत्

२००१ में घटाने से जन्म सबत् १९८३ हुआ। अब ऋतु ज्ञान के लिये लग्न में शनि और मंगल दो ग्रह हैं इनमें शनि बली है इसलिये शिशिर ऋतु हुई। परन्तु प्रथम दक्षिण अयन सिद्ध हुआ है, और ऋतु उत्तर अयन की होने के कारण अगले श्लोक के अनुसार शनि के स्थान में गुरु की ऋतु हेमन्त जन्म की ऋतु हुई।

विशेष ध्येय—अनुमान सिद्ध प्रश्नकर्त्ता की वयस वर्ष सख्या को प्रश्न संवत्सर में घटाने में जो जन्म संवत्सर हो उसमें यदि ठीक गुरु पूर्वसिद्ध जन्मराशि का हो तो वही जन्म संवत्सर होता है। कदाचित् १ वर्ष का अन्तर हो जाता है इसलिये उस संवत्सर के पञ्चाङ्ग और उसके १ वर्ष आगे या पीछे के पञ्चाङ्ग देखना जिसमें सिद्ध जन्म राशि का गुरु मिले वही जन्म संवत् जानना।

जैसे उदाहरण में अनुमित वयस १८ को प्रश्न सबत् में घटाने से जन्म संवत् १९८३ हुआ। और उस सबत् के पञ्चाङ्ग में जन्मराशि कुम्भ का गुरु भी है, इसलिये वही जन्म संवत्सर हुआ ॥ २ ॥

अथायने विलोमे ग्रहपरिज्ञानादनुपरिज्ञानं मासपरिज्ञानं चेन्द्रवज्रयाह—
चन्द्रज्ञजीवाः परिवर्तनीयाः शुक्रारमन्दैरयने विलोमे।

द्रेष्काणभागे प्रथमे तु पूर्वो मासोऽनुपाताच्च तिथिर्विकल्पः ॥३॥

चन्द्रज्ञेति ॥ अयने विलोमे सति चन्द्रज्ञजीवाः शुक्रारमन्दैः परिवर्तनीयाः। शशिवुधगुरवः सितभौमशनैश्चरैः अयनव्यत्यये प्राप्ते सति परिवर्तनीयाः, व्यत्ययेन व्यवस्थाप्याः। एतदुक्तं भवति। यद्युत्तरायणे प्रावृट्काले ज्ञाते तदा वसन्ते जात इति वक्तव्यम्। चन्द्रः शुक्रेणात्र परिवर्तितः। अथोत्तरायणे शरदि प्राप्तायं ग्रीष्मे जातः। दक्षिणायने ग्रीष्मे ज्ञाते शरदि जातः। अथ बुधो रविभौमयोरपवर्तितौ रविभौमौ बुधेन च उत्तरायणे हेमन्ते ज्ञाते शिशिरे जातः। दक्षिणायने शिशिरे प्राप्ते हेमन्ते जात इति वक्तव्यम्। अत्र जोषमन्दौ परस्परमपवर्तितौ। एवमृतौ ज्ञाते मासज्ञानमाह। द्रेष्काणभागो वर्तते तदा ज्ञातौ प्रथमे मासि जात इति वक्तव्यम्। अथ लग्ने द्रेष्काणस्य द्वितीयो भागो वर्तते तदा ज्ञातौ द्वितीये मासि जातः। अत्रापि अर्कावस्थानत एव मासज्ञानम्। अथ एवं मासं ज्ञात्वा तिथिज्ञानार्थमाह। अनुपाताच्च तिथिर्विकल्पः। अनुपातात्त्रैराशिकार्त्तिथिर्विकल्पो विकल्पनीयः। लग्नस्य षड्लिप्ताशतानि द्रेष्काणः। द्रेष्काणेन ऋतुज्ञानं तदर्धलिप्ताशतत्रयम्। लिप्ताशतत्रयेण मासज्ञानम्। अत्रानुपातात्तिथिर्लिप्ता दशकेनैको ज्ञेयः। एष तिथिरादित्यभागः। एवमादित्यस्य राशयो भागा ज्ञेयाः। मासा राशयस्तिथयो भागाः। यस्मिंश्च तिथौ ज्ञातवर्षे यथा प्रदर्शितादित्यो भवति तस्मिन् तिथौ तस्य जन्म इति वक्तव्यम् ॥ ३ ॥

भाषा—यदि अयन और ऋतु में भिन्नता हो तो चन्द्रमा को शुक्र से, बुध को मंगल से और गुरु को शनि से परस्पर परिवर्तन करके ऋतु समझे। इस प्रकार

अयन और ऋतु में एकता होती है। मास ज्ञान के लिये लग्नगत द्रेष्काण के पूर्वार्ध (५ अंश के भीतर) हो तो ऋतु का पहिला सौर मास, यदि द्रेष्काण के उत्तरार्ध हो तो दूसरा मास समझना चाहिए। उसमें द्रेष्काण के भुक्त अंशों से अनुपात द्वारा तिथि (सूर्य के भुक्तांश) समझना चाहिए ॥ ३ ॥

विशेष अर्थ—अनुपात इस प्रकार है कि ५ अंश की कला (३००) में ३० तिथि तो द्रेष्काण के पूर्वार्ध वा परार्ध के भुक्तकला में क्या ? $\frac{३० \times \text{भु. कला}}{३००} =$

$\frac{\text{भुक्तकला}}{१०}$ । अथवा $\frac{३० \times \text{भुक्तांशादि}}{५} = ६ \times \text{भु. अंशादि}$ । इससे सिद्ध होता है कि

द्रेष्काण भुक्तकलादि को १० से भाग देकर लब्धि सूर्य के भुक्तांशादि अथवा द्रेष्काणार्धभुक्तांशादि को ही ६ से गुणाकर देने से सूर्य के भुक्तांशादि होते हैं ॥ ३ ॥

उदाहरण—पूर्व लग्न के उत्तरार्ध होने से दक्षिण अयन और लग्न में शनि के होने के कारण शिशिर ऋतु (उत्तर अयन) की हुई, इसलिये शनि के स्थान में शुभ की ऋतु हेमन्त लेने से अयन और ऋतु में एकता हुई। अब हेमन्त ऋतु में वृश्चिक और धनु दो सौर मास होते हैं, उनमें कौन मास है ? यह जानने के लिये लग्न २१२३।१५।५७ के तृतीय द्रेष्काण के भुक्तांश ३।१५।५७ पूर्वार्ध (५ अंश के भीतर है) अतः प्रथम सौर मास (वृश्चिकार्क) हुआ। उसमें अनुपात से अथवा भुक्तांश ३।१५।५७ को छगुना करके सौर तिथि (सूर्य के भुक्तवृश्चिकार्कांशादि) १९।३५।४२ अतः जन्मकालिक स्पष्ट सूर्य ७।१९।३५।४२ राश्यादि हुआ। इस पर से इष्टकाल साधन कर जन्मेष्टकाल समझना चाहिए। फिर उस समय स्पष्ट ग्रह लग्नादि भाव सावन द्वारा जो जन्मपत्र होगा वही 'नष्ट जन्मपत्र' समझना चाहिए। और उस पर से अज्ञात जन्म जातक प्रश्नकर्ता को फलादेश वास्तव में जन्मपत्रवत् कहना चाहिए।

यहाँ कितने लोग यह समझते हैं कि—“प्रश्न पर से वास्तव ही जन्म समय आ जाता है” परञ्च वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। जन्मकालिक को विषय अज्ञात हो केवल उसी के लिए प्रश्न करने का आदेश है वह अनेक प्रकार के सिद्ध होते हैं, जो आचार्य स्वयं भी कहते हैं—

प्रसङ्गवश-सूर्य जानकर इष्टकाल जानने का प्रकार—

इष्टार्कस्य तदासन्नपङ्क्त्यर्केण सहान्तरम् ।

कालीकृत्याऽर्कगत्यासदिनाद्येन युतो नितम् ॥

तत्पङ्क्तिस्थं च वाराद्यमिष्टार्केऽधिकहीनके ।

दिनाद्य इष्टकालोऽसौ ज्ञेयो ज्ञातार्कतो बुधैः ॥

अभीष्ट सूर्य के आसन्न जिस पङ्क्ति का सूर्य हो उस पङ्क्ति के सूर्य और अपने इष्ट सूर्य के अन्तर करके उसकी कला बनाना—उसमें पङ्क्तिस्थ सूर्य की गति कला से

भाग देकर लब्धि दिनादि (दिन, घटी, पल) को पक्ति दिनादि में जोड़ने या घटाने से शुद्धकाल होता है । यदि पक्ति के सूर्य से इष्ट सूर्य अधिक हो तो पक्ति में लब्धि जोड़ना, अन्यथा घटाना चाहिये ।

जैसे सं० १९८३ जन्मकालिक सूर्य ७।१९।३५।४२ इसके वासन्न मार्गकृष्ण अमावस्या रविवार मिश्रमन काल घड़ी ४४ पल ३६ का सूर्य ७।१९।५२।३९ इसमें इष्ट सूर्य को घटाने से राश्यादि ०।० १६।५७ । इसमें पक्तिस्थ सूर्य की गति कला ६१।६ के एकजातीय बनाकर भाग देने से लब्धि दिनादि ०।१६।४० को इष्टसूर्य अल्प होने के कारण पक्ति के वारादि १।४४।३६ में घटाने से दिनादि १ २७।५६ यह जन्म का इष्टकाल हुआ । अर्थात् मार्गकृष्ण अमावस्या रविवार सूर्योदय से इष्ट घटी पल २७।५६ जन्म समय हुआ । इस इष्ट पर से जन्मपत्र बनाने से नष्ट जन्माङ्ग-पत्र कहलाता है ॥ ३ ॥

अथ चन्द्रमानतिथिज्ञानोपायमिन्द्रवज्रयाह—

अत्रापि होरापटवो द्विजेन्द्राः सूर्याशतुल्यां तिथिमुद्दिशन्ति ।

रात्रिद्युसंज्ञेषु विलोमजन्म भागैश्च वेलाः क्रमशो विकल्प्याः ॥४॥

अत्रापिती ॥ अत्रास्मिन्स्थितिज्ञाने द्विजेन्द्रा मुनयो होराशास्त्रज्ञाः सूर्याशतुल्यामंशस्थाने स्फुटार्कभागसमां तिथिमुद्दिशन्ति कथयन्ति । प्रश्नकाले तात्कालिकेनादित्येन यावन्तो भागा भुक्तास्तावन्तः शुक्लप्रतिपत्त्यभ्युति ज्ञात-मासस्य तिथयो व्यतीताः । अत्र चान्द्रमाने मकरमासे जाते माघमासो ज्ञेयः । एवमन्येष्वपि मासकल्पना कार्या । तथा च मणित्थः । “पृच्छाकाले रविणा यावन्तोऽराः स्फुटेन संभुक्ताः । राशेस्तास्तिथयः स्युः शुक्लादावर्कमासस्य ॥” एवं दिने ज्ञाते क्रमयं रात्रौ जातो दिवा वेति तदर्थमाह । रात्रिद्युसंज्ञेष्विति । रात्रिद्युसंज्ञाः पूर्वं व्याख्याताः गोऽजाश्विकिर्मिथुना इत्यादिना । तत्र प्रश्न-काले यदि रात्रिसंज्ञा लग्नो भवति तदा तस्य विलोमता दिवा जन्म वक्तव्यम् । अथ द्युसंज्ञा लग्नो भवति तदा रात्रौ जन्म वक्तव्यम् । एवं दिनरात्रिविभागो

मेषादिराशीनां

चषकाः ।

मे. २०० मी.

वृ. २४० कुं.

मि. २५० म.

क. ३२० घ.

सि. ३६० वृ.

क. ४०० तु.

ज्ञाते वेलाज्ञानमाह । भागैश्च वेलाः क्रमशो विकल्प्याः । यस्मिन्दिने पुरुषस्य जन्मज्ञानं तस्मिन्दिने आदित्यो विज्ञातः ततस्तस्य पुरुषस्य यदि दिवा जन्म तदा तस्मादादित्याहिन-प्रमाणं कार्यम् । अथ रात्रौ जन्म तदा रात्रिप्रमाणम् । तत्र प्रश्नलग्नस्य तस्मिन्काले यावन्तश्चषका भुक्तास्तैरनुपातः कार्यः । यदि पुरुषस्य दिवा जन्म तदा दिनप्रमाणेन । यदा रात्रौ तदा रात्रिप्रमाणेन तत्काललग्नभुक्तचषकाणां गणनां कृत्वा तस्यैव लग्नस्य स्वदेशराश्युदयप्रमाणेन भागमपहृत्यावाप्तां वेलां तावता कालेन गतेन दिनस्य रात्रेर्वा जन्म वक्तव्यम् । एवं लग्नभागैः क्रमशः परिपाट्या

वेला समयः विकल्प्या विकल्पनीया ॥ ४ ॥

भाषा—पूर्व प्रकार से मास के ज्ञान होने पर कितने होराशास्त्रज्ञ आचार्य प्रश्नकालिक सूर्य के अंशतुल्य चन्द्र तिथि कहते हैं । अर्थात् सूर्य के भुक्तांश तुल्य गत तिथि और कला विकला तुल्य वर्तमान तिथि की गत घटी पल मानते हैं । अब प्रकारान्तर से इष्टकाल का ज्ञान प्रकार कहते हैं कि—प्रश्न लग्न दिन-बली राशि हो तो रात्रि में, और रात्रि-बली राशि हो तो दिन में जन्म समझना चाहिये । तथा लग्न के भुक्तांश के द्वारा अनुगत से दिनगत या रात्रिगत इष्टकाल का ज्ञान कर लेना चाहिये ॥ ४ ॥

उदाहरण—जैसे हेमन्त ऋतु के प्रथम मास (मार्गशीर्ष) का ज्ञान हुआ तो प्रश्नकालिक सूर्य के भुक्तांशादि १५।४३।२८ एतत् तुल्य तिथि अर्थात् मार्गशीर्ष १५ पूर्णिमा व्रणीत होकर पौष कृष्ण प्रतिपदा के ४३।२८ घड़ी पल बीतने पर जन्म हुआ । फिर पञ्चांग देख कर तिथि भोग के अनुसार इष्टकाल का ज्ञान कर लेना चाहिये ।

प्रकारान्तर से इष्टकाल का उदाहरण—प्रश्न लग्न मिथुन दिन बली है, इसलिये रात्रि में जन्म निश्चित हुआ । अतः प्रश्नकालिक रात्रिमान १७।४० को लग्न के भुक्तांश २३ सम्बन्धी काशी के उदयमान से भुक्त पल २३३ इसके द्वारा अनुपात किया कि—मिथुन के उदयमान ३०४ में रात्रिमान २७।४० तो लग्न के भुक्तपल में क्या ? अर्थात् रात्रिमान को भुक्तपल से गुना कर ६४४६।२० में उदयमान ३०४ के भाग देने से लब्धि रात्रिगत घटीपल = २१।१२ इसमें दिनमान ३२।२० जोड़ने से सूर्योदय से इष्टकाल ५३।२२ हुआ ॥ ४ ॥

विशेष अर्थ—राशि का उदयमान जहाँ प्रश्न हो वहाँ का ग्रहण करना चाहिये ॥ ४ ॥

अर्थान्तरेण मासज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

केचिच्छशाङ्काध्युषिताभवांशाच्छुक्लान्तसंज्ञं कथयन्ति मासम् ।

लग्नत्रिकोणोत्तमवीर्ययुक्तं भम्प्रोच्यतेऽङ्गालभनादिभिर्वा ॥ ५ ॥

केचिदिति ॥ केचिदाचार्याः शशाङ्काध्युषिताचन्द्रयुक्तान्नवांशाच्छुक्लान्तसंज्ञं मासं कथयन्ति प्रश्नकाले यस्मिन्नवांशके नवमेंऽशे चन्द्रमा भवति तमपि नवांशकं त्रिधा परिकल्प्य तस्मिन्नवांशके नवमेंऽशे चन्द्रमा व्यवस्थित इति चन्द्रनवांशकगतं नक्षत्रमन्वेष्यम् । तन्नक्षत्रशुक्लान्तसंज्ञकेन सितस्य जन्म वक्तव्यम् । अत्र यस्य नक्षत्रस्य शुक्लान्तसंज्ञो मासो नास्ति तस्य बृहस्पति-चारोक्ताविधिना शुक्लान्तसंज्ञा मासः परिकल्प्यः । तत्रोक्तम् । “नक्षत्रेण सहोदयमस्तं वा येन याति सुरमन्त्री । तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥ वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्ब्रह्मयानि योज्यानि । क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्य-मन्त्यं च यद्वर्षम् ॥” इति । तत्र चन्द्रमा यदि वृषनवांशके तन्नवांशकसप्तम-कस्यार्वाग् भवति तदा कार्तिके मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ वृषनवांशके

तन्नवांशसप्तकस्योर्ध्वं भवति मिथुननवांशके तन्नवांशकषट्कस्यार्वाग् यदा चन्द्रमा भवति तदा मार्गशीर्षे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ मिथुननवांशके तन्नवांशकषट्कस्योर्ध्वं कर्कटनवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति भवति तदा पौषे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ कर्कटे तत्तन्नवांशकपञ्चकस्योर्ध्वं सिंहनवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमाः तदा माघे मासि जन्म इति वक्तव्यम् । अथ सिंहनवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्योर्ध्वं कन्यानवांशके तन्नवांशकसप्तकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा फाल्गुने मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ कन्यानवांशकसप्तकस्योर्ध्वं तुलानवांशके तन्नवांशकषट्कस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा चैत्रे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ तुलानवांशके तन्नवांशकषट्कस्योर्ध्वं वृश्चिकनवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा वैशाखे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ वृश्चिके तन्नवांशकपञ्चकस्योर्ध्वं धन्विनवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा ज्येष्ठे मासि जात इत्यवगन्तव्यम् । अथ धन्विनवांशके तन्नवांशकचतुष्टयस्योर्ध्वं मकरनवांशकत्रयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा आषाढे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ मकरनवांशके तन्नवांशकत्रयस्योर्ध्वं कुम्भनवांशके तन्नवांशकद्वयस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा श्रावणे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ कुम्भनवांशके तन्नवांशकद्वयस्योर्ध्वं मीननवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदा भाद्रपदे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ मीननवांशके तन्नवांशकपञ्चकस्योर्ध्वं मेषनवांशके तन्नवांशाष्टकस्यार्वाग्यदा चन्द्रमा भवति तदाऽश्वयुजि मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ मेषनवांशके तन्नवांशाष्टकस्योर्ध्वं यदि चन्द्रमा भवति तदा कार्तिके मासि जात इत्यवगन्तव्यम् । यस्मिन्कृत्तिका रोहिणी च स कार्तिकः । मृगशिरार्द्रा च मार्गशीर्षः । पुनर्वसुः पुष्यश्च पौषः । आश्लेषा मघा च माघः । पूर्वाफाल्गुन्युत्तराफाल्गुनी हस्तश्च फाल्गुनः । चित्रा स्वाती च चैत्रः । विशाखानुराधा च वैशाखः । ज्येष्ठामूले ज्येष्ठः । पूर्वाषाढोत्तराषाढ-आषाढः । श्रवणधनिष्ठे च श्रावणः । शतभिषक् पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपदाश्च भाद्रपदः । रेवत्यश्विनोभरण्याश्रवाश्वयुजः । यस्मादुक्तम्—“त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम्” इति । एवं शुक्लान्तस्य मासस्य निश्चयः शुक्लान्त-ग्रहणेनैतत्प्रतिपादयति । यत्तथा । शुक्लपक्षान्ते येन नक्षत्रेण युक्तस्तदुपलक्षितो मासो वक्तव्यः । यथा कार्तिकशुक्लपक्षान्ते कृत्तिकारोहिणीभ्यामन्यतरेण यश्चन्द्रमा भवति तेन कार्तिको मास उच्यते । एवमन्येषामपि युज्यते । तदैतत् ब्रूवते । एतदुक्तं भवति । न शुक्लान्तो मास इत्यतो मासः कृष्णान्त एव । तथा च यवनेश्वरः । “मासे तु शुक्लप्रतिपत्प्रवृत्ते पूर्वे शशी मध्यबलो दशाहो ।” तथा च । “यद्राशिसंज्ञः शीतांशुः प्रश्नकाले नवांशके । स्थितस्तद्राशिगः पूर्णो यस्मिन्भवति चन्द्रमाः ॥ जन्ममासः स निर्दिष्टः पुरुषस्य तु

पृच्छतः । कृष्णपञ्चान्तिको मासो ज्ञेयोऽत्र तु विपश्चिता ॥” लग्नत्रिकोणे-
त्यादि । लग्नस्य प्रश्नलग्नस्य त्रिकोणयोश्च नवमपञ्चमयोर्मध्याद्यस्त-
त्कालमुत्तमेन प्रधानवीर्येण बलेन युक्तस्तद्गं राशिः प्रोच्यते कथ्यते ।
तस्मिन्नाशौ गते चन्द्रमसि जात इति वक्तव्यम् । तथा च यवनेश्वरः ।
“होरादिवीर्याधिकलग्नभाजि स्थानं त्रिकोणे शशिनोऽवधार्यम् ॥” अङ्गाल-
भनादिभिर्वा । कालांगानीत्यनेन प्रदर्शितो यः कालपुरुषस्याङ्गविभागस्तदा-
लभनाद्वाऽनेन विधिना स्पष्टः स्पृशतः यदेव कालपुरुषस्याङ्गं स्पृशति तत्स्थे
चन्द्रमसि जात इति वक्तव्यम् । आदिग्रहणात्प्राणयुक्तसत्त्वदर्शनश्रवणं
गृह्यते ॥ ५ ॥

भाषा—कितने आचार्यों का मत है कि—प्रश्नकाल में चन्द्रमा जिस नवांश
(नक्षत्र चरण) में हो उस नाम से प्रसिद्ध ‘शुक्लान्त्य चान्द्रमास’ जन्ममास
समझना । तथा लग्न, पञ्चम, नवम इन तीनों में जो अधिक बली हो वह जन्म-
राशि होती है । अथवा प्रष्टा अपने जिस अङ्ग को स्पर्श करके प्रश्न करे उस अंग में
“कालांगानि” इत्यादि प्रकार से जो राशि हो वही राशि जन्म राशि होती है ॥ ५ ॥

नक्षत्र से मास की संज्ञा जानने का प्रकार सूर्यसिद्धान्तादि में देखिये ।

यथा—

“नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ।

कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादिद्वयं द्वयम् ॥

अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रय स्मृतम् ॥”

स्पष्टार्थं चक्ष—

| का. | मार्ग. | पौ. | मा. | फा. | चै. | वै. | ज्ये. | आ. | श्रा. | भा. | आ. | मा. |
|-----|--------|-----|------|--------|-------|------|-------|-----------|-------|-----|-----|---------|
| कृ. | मृ. | पु. | दले. | पू.फा. | चि. | वि. | ज्ये. | पू. | अ. | श. | ने. | |
| रो. | आ. | पु. | म. | उ. ह. | स्वा. | अनु. | मू. | उ. पा. घ. | पू. | अ. | भ. | नक्षत्र |

इसका उदाहरण—प्रश्नकाल में चन्द्रमा पुनर्वसु के चतुर्थ चरण में इसलिये
शुक्लान्त्य पौष मास जन्म मास हुआ । चान्द्रमास २ प्रकार के माने जाते हैं एक
कृष्णान्त्य, दूसरा शुक्लान्त्य अर्थात् कृष्ण प्रतिपदादि से शुक्ल पूर्णिमान्त पर्यन्त ।
यहाँ इस प्रकार में शुक्लान्त्य मास ग्रहण करके तिथि का ज्ञान करना चाहिये ।

दूसरा—और तीसरा उदाहरण स्पष्ट ही है ॥ ५ ॥

अथ प्रकारान्तरेण जन्मेशराशिज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

यावान् गतः शीतकरो विलग्नाच्चन्द्राद्देत्तावति जन्मराशिः ।

मीनोदये मीनयुगं प्रदिष्टं भक्ष्याहृताकाररुतैश्च चिन्त्यम् ॥ ६ ॥

यावानिति ॥ विलग्नात्पृच्छालग्नाच्छीतकरश्चन्द्रो यावान् गतो यावति
राशौ व्यवस्थितस्तस्माद्यस्तावति राशिः तत्रस्थे चन्द्रमसि जात इति

वक्तव्यम् । मीनोदये यदि मीनस्तन्मगतो भवति तदा मीनयुगमेव प्रदिष्टमुक्तम् । मीनस्थचन्द्रमा इति वक्तव्यम् । ननु दर्शितविधिना राशिरनेकप्रकारो यत्र प्राप्नो भिन्नरूपस्तत्र को वक्तव्य इत्याशङ्क्याह । भद्व्याहृताकाररुतैरिति । यस्य राशे सम्बन्धि भद्व्यहृत्त्वं तस्मिन्काले कृत्रिममानोयते तदाकारश्च कश्चिद् दृश्यते । यथा मार्जारदिदर्शने सिंहो महिषादिदर्शने वृष इत्यादि । अथवा राशयुक्तरूपं पुरुषस्य दृष्टयाऽथवा रुतेन यस्य राशिसदृशप्राणिनो रुतं शब्दः क्रियते तत्रस्थे चन्द्रमसि जात इति वक्तव्यम् ॥ ६ ॥

भाषा—प्रश्नलग्न से जितने संख्य स्थान में चन्द्रमा हो, उससे उतने ही स्थान आगे जो राशि हो वही प्रष्टा की जन्मराशि समझे । परञ्च यदि मीन प्रश्नलग्न हो तो मीन ही जन्मराशि समझना चाहिये । अथवा प्रश्नकाल में जिस राशि के भक्ष्य जिस राशि सदृश आकार का प्राणी, जिस राशि सदृश शब्द अचानक देखने या सुनने में आवे वही जन्मराशि समझे ॥ ६ ॥

विशेष अर्थ—इसका आशय यह है कि अनेक प्रकार से राशि-ज्ञान कहा गया है, वहाँ कौन प्रकार से राशि ग्रहण करना चाहिए ? यथा—एक प्रकार से वृष आया और दूसरे प्रकार से मिथुन तो यहाँ कौन सा ग्रहण करें ? इस विकल्प में उस स्थान पर यदि अचानक कोई घास (बैल का खाद्य) लावे या गाय अथवा बैल आ जाए, या उसका शब्द सुनने में आवे तो मिथुन (द्विपद) राशि समझना चाहिये ॥ ६ ॥

उदाहरण—जन्मलग्न से द्वितीय स्थान (कर्क) में चन्द्रमा है अतः उस (कर्क) से द्वितीय सिंह, जन्मराशि हुई ॥ ६ ॥

वास्तव रीति तो यह है कि—स्पष्ट राश्यादि चन्द्रमा में स्पष्ट लग्न राश्यादि घटाकर शेष को स्पष्ट चन्द्रमा में जोड़ने से अर्थात् द्विगुणित स्पष्ट चन्द्रमा में स्पष्ट लग्न को घटाने से जो शेष बचे वह जन्मकालिक राश्यादि स्पष्ट चन्द्रमा होता है । चन्द्रमा जिस राशि में रहता है वही जन्मराशि कहलाता है ।

जैसे—स्पष्ट चन्द्रमा ३।३।०।२६ दूना करने से ६।६।०।५२ इसमें लग्न २।२३।१५।५७ को घटाने से ३।१२।४४।४५ यह जन्मराशि अर्थात् जन्मकालिक स्पष्ट चन्द्रमा हुआ । इसलिए वास्तव जन्मराशि कर्क ही हुई । क्योंकि मूल पद्य के अनुसार लग्न से चन्द्रमा के अन्तर को चन्द्रमा में जोड़ने से ही स्पष्टमान हो सकता है ॥ ६ ॥

एवं जन्मराशौ ज्ञाते लग्नज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

होरानवांशप्रतिमं विलग्नं लग्नाद्रविर्यावति वा दृकाणे (१) ।

तस्माद्वेत्तावति वा विलग्नं प्रष्टुः प्रसूताविति शास्त्रमाह ॥ ७ ॥

(१) प्राचीनमुद्रितपुस्तकेषु सर्वेष्वेव “यावति च दृकाणे” इति पाठो दृश्यते तद-सङ्गतं ज्ञेयं छन्दोमङ्गलोपात् ।

होरेति ॥ होरायां प्रश्नलग्ने यस्य राशेर्नवांशकस्त्वत्कालं वर्तते तत्प्रतिमं तमे रांशकराशिं तस्य जन्मलग्नं वक्तव्यम् । अथवा लग्नान्नमद्रेष्काणादारभ्य रविः सूर्यं यावति यावत्संख्ये द्रेष्काणे व्यवस्थितस्तस्माल्लग्नान्नमद्रेष्काणादारभ्य तावति राशौ लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम् । अत्र च द्वादशभ्योऽधिके द्रेष्काणे द्वादशकमपास्य संख्यानिर्देशः चतुर्विंशतेरधिके चतुर्विंशतिमपास्य शेषं वदेत् । एव शास्त्रमाह शास्त्रं कथयति । न स्वमनीषिकयोक्तमिति शास्त्रग्रहणेनैतत्प्रतिपाद्यते । उक्तं च—

“पृच्छालग्ननवांशस्य यो राशिः संज्ञया समः ।

तस्मिँल्लग्नगते राशौ वक्तव्यं जन्म पृच्छतः ॥

यावत्संख्यो गतो लग्नाद्रेष्काणो दिनकृतः ततः ।

तावत्संख्ये लग्नराशौ प्रष्टुर्जन्म विनिर्दिशेत्” ॥ ७ ॥

भाषा—प्रश्न लग्न में जिस राशि का नवांश हो वही जन्मलग्न समझना । अथवा लग्न से जितने द्रेष्काण आगे रवि हो उतने ही रवि से आगे जो राशि हो वही प्रश्नकर्ता का जन्मलग्न समझना, यह शास्त्र का आदेश है ॥ ७ ॥

विशेष अर्थ—इसकी स्पष्ट रीति यह है कि लग्न से रवि तक की द्रेष्काण संख्या को स्पष्ट रवि में जोड़कर १२ से अधिक हो तो उसमें १२ के भाग देकर जो शेष बचे वही जन्मलग्न समझना ॥ ७ ॥

उदाहरण—(१) जैसे लग्न (२।२३।१५।५७) में मेष का नवांश है तो मेष ही जन्मलग्न हुआ । दूसरा प्रकार, लग्न से रवि तक की द्रेष्काण संख्या जानने के लिये रवि ०।१५।४३।२८ में लग्न (२.२३।१५।५७) को घटाने से ९।२२।२७।३१ इसके अंश बनाकर २९२।२६।३१ इसमें १० के भाग देने से गत २९ वर्तमान ३० वाँ द्रेष्काण हुआ । इसलिये रवि में ३० जोड़कर ३०।१५।४३।२८ इसमें १२ के भाग देकर राश्यादि ६।१५।४३।२८ यह जन्मलग्न हुआ ॥ ७ ॥

अथ प्रकारान्तरेण लग्नानयनमिन्द्रवज्रयाह—

जन्मादिशेऽल्लग्नगवीर्यगे वा ज्ञायाङ्गुलधनेऽर्कहतेऽवशिष्टम् ।

आसीनसुप्तोत्थिततिष्ठताभं जायासुखाज्ञोदयगं प्रदिष्टम् ॥ ८ ॥

जन्मादिशेदिति ॥ लग्नगे ग्रहे जन्मादिशेत् । प्रश्नलग्ने यो ग्रहो व्यवस्थितस्तं तात्कालिकं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम् । अथ बहवो लग्नगता भवन्ति तदा तेषां यो बलवान् तं तात्कालिकं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम् । ततः सलिलसमीकृतायामवनौ द्वादशाङ्गुलेन शङ्कुना तात्कालिकानि ज्ञायाङ्गुलानि गृहीत्वा तैरङ्गुलैरेकैकं ग्रहं यद्दर्शितकाले लिप्तापिण्डीकृतं गुणयेत् । अथवा सर्वग्रहेभ्यो या बलवान् ग्रहस्तं तात्कालिकं कृत्वा लिप्तापिण्डं कृत्वा ज्ञायाङ्गुलहतं चार्कशुद्धं कारयेत् द्वादशभिर्विभजेत्तत्र यावत्संख्यमवशिष्टं तावत्संख्यो मेषादेरारभ्य यो राशिर्भवति तस्मिन्नाशौ लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम् । अथ प्रकारान्तरे-

गाह । आसीनेत्यादि । आसीन उपविष्टो यदा प्रष्टा पृच्छति तदा लग्नाद्यज्ञा-
यास्थानं सप्तमराशिस्तस्मिँल्लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम् । अथ सुप्तः । सु-
प्तोऽत्र शयनपतितो विहितः लब्धनिद्रस्य प्रश्नाभावात् । तत्र पतितो यदा
पृच्छति तदा लग्नाद्यसुखस्थानं चतुर्थराशिस्तस्मिँल्लग्नगते तस्य जन्म वक्त-
व्यम् । अथोत्थितः पृच्छति तदा तस्माल्लग्नद्यदाज्ञास्थानं दशमो राशिस्त-
स्मिन् लग्नगते तस्य जन्म वक्तव्यम् । अथ शयनादासनाच्चोत्थितः उत्तिष्ठन्
पृच्छति तदोदयलग्नराशौ तस्मिन्नेव जन्म वक्तव्यम् । उक्तं च—

“उत्तिष्ठतो विलग्नात्प्रष्टुः सुप्तस्य बन्धुलग्नाच्च ।

उपविष्टस्यास्तमये व्रजतो मेधूरणस्थानात् ॥” इति ॥ ८ ॥

भाषा—प्रश्नलग्न में ग्रह हो तो उनमें जो बली हो उसको तात्कालिक
द्वादशांगुल शंकु की छाया से गुणाकर गुणनफल में १२ के भाग देकर शेष जन्म-
लग्न कहना चाहिये । अथवा प्रश्नकर्त्ता यदि बैठकर प्रश्न करे तो लग्न से सप्तम
राशि जन्मलग्न समझना चाहिए । यदि पृथ्वी पर लेट कर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न
से चतुर्थ राशि, यदि पहिले से बैठा हो और उठकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न से
१० वीं राशि, यदि खड़े खड़े आकर प्रश्न करे तो प्रश्नलग्न ही प्रष्टा का जन्मलग्न
समझना चाहिये ॥ ८ ॥

विशेष अर्थ—ग्रह को अंगुलादि छाया से गुणा करने में इस बात को ध्यान में
रखना चाहिए कि राश्यादि ग्रह को कलात्मक बनाकर अंगुलादि छाया से गुणा
करके गुणनफल कलादि को फिर राश्यादि बनाकर १२ से तष्टित करे ॥ ८ ॥

उदाहरण—जैसे पूर्वोक्त प्रश्न में शनि और मंगल है इनमें शनि बली है
इसलिये शनि (१।२६।१।४९) को कलात्मक बनाकर ३३६१।४९ इसको तात्कालिक
अङ्गुलादि छाया (६।२०) से गुणा कर कलादि गुणनफल २१२९।३०।२० इसको
राश्यादि बनाने से ११।२४।५१।३० यह १२ से अल्प है अतः यही जन्मलग्न
हुआ । दूसरा उदाहरण स्पष्ट ही है ।

यहाँ इष्टकाल में द्वादशांगुल शंकु की छाया नाप लेना चाहिये । अथवा इष्टकाल
पर से “नवतिगुणितमिष्टमुन्नतं” इत्यादि ग्रहलाघव आदि करण ग्रन्थ द्वारा अथवा
मकरन्दसारिणी द्वारा अंगुलादि छाया का ज्ञान करना चाहिए ॥ ८ ॥

अथ प्रकारान्तरेण सर्वमेव नष्टजातकं वक्ति । ततः प्रश्नकाले तात्कालिकं
लग्नं कृत्वा लिप्तापिण्डीकार्यम् । ततस्तस्य लिप्तापिण्डीकृतस्य गुणकार-
विज्ञानार्थं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

गोसिंहौ जितुमाष्टमौ क्रियतुले कन्यामृगौ च क्रमात्

संवर्ग्या दशकाष्टसप्तविषयैः शेषाः स्वसंख्यागुणाः ।

जीवारास्फुजिदैन्दवाः प्रथमवच्छेषा ग्रहाः सौम्यव-

द्राशीनां नियतो विधिर्ग्रहयुतैः कार्या च तद्वर्गणा ॥ ९ ॥

गोसिंहाविति ॥ गोसिंहादयो राशयो यथाक्रमं दशादिभिर्गुणकारैः संवर्ग्या गुणनीयाः । तद्यथा । गोसिंहौ वृषसिंहौ दशभिः (१०) गुणयेत् । वृषलग्नं लिप्तापिण्डीकृतं दशभिर्गुणयेत् । एवं सिंहं दशभिरेव । जितुमाष्टमौ मिथुनवृश्चिकौ लग्नगतावष्टभिः (८) गुणयेत् । क्रियतुले मेषतुले एतौ सप्तभिः (७) गुणयेत् । कन्यामृगौ कन्यामकरौ एतौ लग्नगतौ विषयैः पञ्चभिः (५) गुणयेत् । एवमेते यथाक्रमं संवर्ग्या गुणनीयाः । शेषा अनुक्ता राशयः स्वसङ्ख्यागुणा आत्मीयसंख्यया गुणनीयाः । तत्र गणनया कर्कटं चतुर्भिर्गुणयेत् । एवं धनुर्नवभिः (९) । कुम्भमेकादशभिः (११) । एवं मीनो द्वादशभिः (१२) । एवं तावत्लग्नं स्वगुणकारेणावश्यमेव गुणयेत् । दशकाष्ट-

| | | | | | | | | | | | |
|-----|-----|-----|-----|------|----|-----|-----|----|----|------|-----|
| मे. | वृ. | मि. | कं. | सिं. | क. | तु. | वृ. | ध. | म. | कुं. | मी. |
| ७ | १० | ८ | ४ | १० | ५ | ७ | ८ | ६ | ५ | ११ | १२ |

सप्तविषयैः । ततस्तत्र यदि ग्रहो भवति तदा ग्रहगुणकारेणावश्यमेव गुणयेत् । तत्र ग्रहगुणकार-

विधिः जीवारास्फुजिदैन्दवाः । प्रथमवद्दशकाष्टसप्तविषयैरिति । जीवे गुरौ लग्नगते तदेव लग्नं स्वगुणकारैराहतं दशभिर्गुणयेत् । आरे भौमे लग्नगते अष्टभिः, आस्फुजिच्छुक्रः तस्मिँल्लग्नगते सप्तभिः, ऐन्दवे बुधे पञ्चभिः, शेषा रविशशिसौरास्ते च सौम्यवत् बुधवत्, पञ्चभिर्गुणनीया इत्यर्थः । एवं

| | | | | | | | | |
|-----|-----|-----|-----|-----|-----|----|-----|-----|
| सू. | चं. | मं. | बु. | वृ. | शु. | श. | रा. | के. |
| ५ | ५ | ८ | ५ | १० | ७ | ५ | ० | ० |

तात्कालिकं लग्नमवश्यं राशिगुणकारेण गुणयेत् । ततः सग्रहोक्तगुणकारैरपि तत्र च यदा ग्रहो भवति तदा ग्रहगुणकारेण गुणयेत् । यदा बहवो ग्रहा भवन्ति तदा सर्वे-

षां गुणकारैर्गुणयेत् । एवं च तद्गुणितमेकान्ते स्थापयेत् ॥ ६ ॥

भाषा—प्रश्नलग्न में वृष या सिंह हो तो राश्यादि लग्न की कला पिण्ड बनाकर १० से गुना करे । मिथुन या वृश्चिक लग्न हो तो ८ से, मेष तुला हो तो ७ से और कन्या या मकर हो तो ५ से गुना करे । शेष राशि लग्न हो तो कलापिण्ड को अपनी-अपनी संख्या से अर्थात् कर्क को ४ से, धनु को ९ से, कुम्भ को ११ से, और मीन को १२ से गुना करे । यदि लग्न में गुरु हो तो १० से, मंगल हो तो ८ से, शुक्र हो तो ७ से और बुध हो तो ५ से गुना करे । यदि शेष ग्रह (शनि, रवि, चन्द्रमा) हो तो इनके ५ गुणक है । लग्न राशि की गुणनविधि तो निश्चित ही होती है किन्तु लग्न में जो ग्रह हो उसी की गुणना होती है । यदि लग्न में अधिक ग्रह हो तो सबकी गुणना करनी चाहिए । इस प्रकार लग्न कला को गुना करने से जो पिण्ड हो, उससे आगे कहे विधि से वर्ष मासादि का ज्ञान करना चाहिए ॥ ९ ॥

उदाहरण—प्रश्नलग्न २।२३।१५।५७ इसको कलात्मक बनाने से ४९९५।५७ इसको मिथुन के गुणकाङ्क ८ से गुना करने ३९९६७।३६ फिर लग्न में शनि और मंगल दो ग्रह हैं इसलिये शनि के गुणकांक ५ और मंगल के गुणकांक ८ दोनों से

गुना करने से १५९८७०४ यह लिप्तापिण्ड हुआ । इससे आगे कहे प्रकार से नक्षत्रादि का ज्ञान करना ॥ ९ ॥

अथ नक्षत्रानयनं वसन्ततिलकेनाह—

सप्ताहतं त्रिघनभाजितशेषमृच्चं दत्त्वाथवा नव विशोध्य न वाथवाऽस्मात्
एवं कलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्यः प्रष्टुर्वदेदुदयराशिवशेन तेषाम् ॥१०॥

सप्ताहतमिति ॥ सप्ताहतं सप्तभिर्गुणयेत् । दत्त्वाथवेति । ततस्तत्र नव देयाः शोध्या वा न किञ्चिद्वा कथमित्युच्यते । यदि स चरराशिर्लग्नगतो भवति तदा नव देयाः । स्थिरे न देया नापि शोध्याः । द्विस्वभावे विलग्ने नव शोध्याः एवं केचिद्व्याचक्षते । वयं पुनर्ब्रूमः—यदि प्रश्नलग्ने प्रथमो द्रष्टव्यः भवति तदा नव देयाः । द्वितीये न देया नापि शोध्याः । तृतीये नव शोध्याः । एवं कृत्वा तस्य राशेऽस्तिघनेन सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावाप्तं त्याज्यम् । तत्र यावत्संख्योऽङ्कोऽवशेषो भवति तावत्सङ्ख्यमश्विन्यादितो यन्नक्षत्रं तन्नक्षत्रं तस्य प्रष्टुर्वक्तव्यम् । केचिद्वदन्ति—यथास्थितस्य राशेः सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कनवकदानेन विशोधनेन वा यथास्थितेनाङ्केन संवाद उत्पद्यते तथा नक्षत्रं वक्तव्यम् । एवमित्यादिकलत्रसहजात्मजशत्रुभेभ्य इति । भार्या-भर्तृपुत्ररिपुषु नष्टजातकं यदा पृच्छति तदा तद्भेभ्यस्तद्भावेभ्यः एवं प्रष्टुः पृच्छ-कस्य वदेत् ब्रूयात् । तमेवोदयराशिं परिकल्पयेदित्यर्थः । एतदुक्तं भवति—यदि पुरुषः स्वपत्न्या नक्षत्रं पृच्छति तदा तात्कालिके लग्ने राशिषट्कं देयम् । अथ भ्रातुः पृच्छति तदा राशिद्वयं देयमथ पुत्रस्य पृच्छति तदा राशिचतुष्कं देयमथ शत्रोः पृच्छति तदा राशिपञ्चकं देयम् । एवं कृत्वा यद्भवति तदेवोदय-राशिं प्रकल्प्य तद्गुणकारेण गुणयेत् । तत्स्थग्रहगुणकारेण च ततस्तत्र प्राग्वन्नवकदानविशोधने कृत्वा सप्तविंशत्या भागमपहृत्यावशेषाङ्कसमं यस्य प्रष्टुः पृच्छति तस्य नक्षत्रं वक्तव्यम् । एतदप्युपलक्षणार्थमेव त्रिराशिसहिता-त्तात्कालिकाल्लग्नान्मित्रस्य वक्तव्यमेतन्नक्षत्रानयनमप्युपलक्षणमेव सकलमपि नष्टजातकं वक्तव्यम् ॥ १० ॥

भाषा—पूर्व सावित लग्नलिप्तापिण्ड को ७ से गुना कर २७ के भाग देकर शेष अश्विनी आदि नक्षत्र समझना चाहिये । इसमें इतना संस्कार और है कि नक्षत्रादि मान असम्भव जान पड़े तो ९ जोड़ या घटाकर समझे । कोई २ ऐसा कहते हैं कि—यदि लग्न हो तो गुणकार से गुणित लिप्तापिण्ड में ८ जोड़े, यदि स्थिर लग्न हो तो ९ घटावे, यदि द्विस्वभाव लग्न हो तो न जोड़े, न घटावे (अर्थात् यथागुणित रहने देवे) उसमें अपने विकल्प के भाग देकर नक्षत्रादि जाने ! यह तो अपने नष्टजातक के लिये है । इसी प्रकार सप्तम भाव से कलापिण्ड बनाकर प्रश्नकर्ता की स्त्री का, तृतीय भाव से भाई का, पञ्चम भाव से पुत्र का और षष्ठ भाव से शत्रु का नष्ट जातकपत्र समझना चाहिए ॥ १० ॥

उदाहरण—लग्नलिप्तापिण्ड १५९८७०४ को ७ से गुना करने से १११९०९२६ इसमें २७ के भाग देने से शेष ४ अश्विनी से चतुर्थ रोहिणी नक्षत्र हुआ ॥ १० ॥

अथ वर्षाद्यानयनं वसन्ततिलकेनाह—

वर्षर्तुमासतिथयो धुनिश् ह्युद्गुनि

वेलोदयर्चनवभागविकल्पना स्युः ।

भूयो दशादिगुणिताः स्वविकल्पभक्ता

वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम् ॥११॥

वर्षर्तुमासेति ॥ वर्षादीनि सर्वाणि स्वविकल्पेन भागे हूते यथापाठक्रमे-
णानयितव्यानि । तद्यथा । तात्कालिकं लग्नं लिप्तापिण्डीकृतं राशिगुणकारहंतं
ग्रहसंयुक्तं चेद्ग्रहगुणकाराहतमपि यदेकान्ते स्थापितं तत्पुनरपि दशादिगुणं
कार्यम् । एतदुक्तं भवति । स राशिः स्थानचतुष्टये धार्यः । एकत्र दशगुणोऽन्यत्र
द्वितीयेऽष्टगुणोऽन्यत्र तृतीये सप्तगुणः, चतुर्थे पञ्चगुणः कार्यः । यत उक्तम् ।
भूयो दशादिगुणिताः । भूयः पुनरपि दशकाष्टसप्तविषयैर्गणनीयाः ततस्तस्मि-
न्नाशिचतुष्टये प्राग्वन्नवकदानविशोधने कृत्वा स्वविकल्पैर्भागमपहृत्यावाप्तं
तेन वर्षादयो ज्ञेयाः ॥ ११ ॥

भाषा—पूर्वरीति से साधित लग्न लिप्तापिण्ड को, फिर से दश आदि अपने-अपने
गुणाकारों से गुना करके, अपने-अपने विकल्प (संख्या) से भाग देकर, शेष तुल्य
वर्ष, ऋतु, मास, तिथि, दिन, रात्रि, इष्टकाल, लग्न, राशि नवांश समझना चाहिए ।
यहाँ वर्षादि सब विषय के आनयन में नक्षत्रानयनवत् ८ जोड़ घटाकर या यथावत्
पिण्ड पर से क्रिया करनी चाहिए ॥ ११ ॥

अथ न ज्ञायते कस्माद्वाशेः कस्यानयनं कार्यं तदनुष्टुप्त्रयेणाह—

विज्ञेया दशकेष्वब्दा ऋतुमासास्तथैव च ।

अष्टकेष्वपि मासाद्धास्तिथयश्च तथा स्मृताः ॥ १२ ॥

विज्ञेया दशकेष्वब्दा इति ॥ अत्र बहुवचनं बहुधोपयोगित्वात्कृतम् ।
यदुक्तम् । स्वविकल्पभक्ताद्वर्षादयस्तद्व्याख्यायते । एते चत्वारो राशयः स्था-
पितास्तेषां नवकदानविशोधनं कृत्वा कर्मयोग्याः सर्वे भवन्ति । ततो दशगुणस्य
पृथक्स्थस्य परमायुषा विशत्यधिकेन वर्षशतेन भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते
तदङ्कसमं तस्य वर्षसंख्यानं वर्तते । तस्यैव षड्भिर्भागमपहृत्य ऋतुसंख्यया
तत्र योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमे शिशिरादारभ्यतौ जात इति वक्तव्यम् ।
तस्यैव तु माससंख्यया द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा ज्ञातौ
प्रथमे मासि जात इति वक्तव्यम् । अथ शून्यमवशिष्यते तदा द्वितीये मासि
जातः । एवं कृत्वा दशगुणः कर्मयोग्यो राशिरपास्यः । यस्य विशत्यधिकाद्वर्ष-
शतादप्यधिकं जन्मनोऽतीतं तस्य नष्टजातकज्ञानोपाय एव नास्ति । अष्टकेष्वि-

त्यादि । योऽसावष्टहतो राशिस्तस्य पृथक्स्थस्य कर्मयोगस्य पक्षसंख्यया द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा शुक्लपक्षे जात इति वक्तव्यम् । न किञ्चिदवशिष्यते तदा कृष्णपक्षे, तस्यैव तिथिसंख्यया पञ्चदशभिर्भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमाने तिथौ जात इति वक्तव्यम् । एवं कृत्वाष्टगुणः कर्मयोगो राशिरपास्यः ॥१२॥

भाषा—पूर्वसाधित लिप्तापिण्ड को १० गुना करके १२० से भाग देकर शेष वर्ष, उसी दश गुणित पिण्ड में ६ के भाग से शेष तुल्य शिशिर आदि ऋतु और २ के भाग देकर १ शेष में ऋतु का प्रथम मास, २ शेष में द्वितीय मास समझना चाहिए । पुनः लिप्तापिण्ड को ८ गुना कर नव संस्कृत करके २ के भाग से १ शेष में शुक्ल, शून्य शेष में कृष्ण पक्ष तथा १५ के भाग देकर १ आदि शेष तुल्य प्रतिपदादि तिथि होती है ॥ १२ ॥

विशेष अर्थ—विशेष ध्येय—यहाँ “वर्षादयो नवकदानविशोधनाभ्याम्”—इसका आशय यह भी है कि—पिण्ड पर जो वर्ष संख्या आवे वह यदि प्रश्नकर्त्ता के वयस से न्यून या अधिक मालूम हो तो उसमें ९ को तब तक जोड़े या घटावे जब तक प्रष्टा के वयस तुल्य सम्भव हो । जैसे—प्रष्टा की उम्र ३० वर्ष के समीप मालूम होती है । उसका गत वर्ष ज्ञान करना है तो साधित पिण्ड १५९८७०४ को १० गुना कर १५९८७०४० में १२० के भाग देकर शेष ४० वर्ष हुए । परन्तु प्रश्नकर्त्ता के वयस से अधिक प्रतीत होता है । इसलिये इस (४०) में ९ घटाने से ३१ ये सम्भव वर्ष हुए । अतः इसको प्रश्न संवत्सर २००१ में घटाने से प्रष्टा का जन्म संवत्सर १९७० हुआ ॥ १२ ॥

ऋतु ज्ञान के लिये—उसी दश गुणित पिण्ड में ६ के भाग देकर शेष ४ चौथी (वर्षा) ऋतु हुई । मास जानने के लिये—२ के भाग देने से ० शेष होने से वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद) का दूसरा मास (भाद्रपद) हुआ ।

पक्ष ज्ञान के लिये—लिप्तापिण्ड को ८ गुना कर १२७८९६३२ इसमें २ के भाग देने से शून्य शेष बचा इसलिये कृष्ण पक्ष हुआ । तथा १५ के भाग देने से २ शेष बचा इसलिये द्वितीया तिथि हुई ॥ १२ ॥

इस देश में मास शुक्लादि और कृष्णादि दो प्रकार से व्यवहृत है । गुजरात में शुक्लादि और अन्यत्र कृष्णादि चान्द्र मास मानते हैं । उस हिसाब से जिसे गुजरात में भाद्र कृष्ण कहते हैं उसकी अन्यत्र काशी आदि प्रदेश में आश्विन कृष्ण कहते हैं । अर्थात् शुक्ल पक्ष दोनों देश में एक ही मास के होते हैं । कृष्ण पक्ष में भिन्न मास हो जाते हैं । सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष ग्रन्थ के अनुसार गणित द्वारा शुक्लादि मास आता है । उस हिसाब से इस प्रश्न लग्न द्वारा प्रष्टा का जन्म समय संवत् १९७० भाद्रकृष्ण २ द्वितीया अर्थात् काशी के हिसाब से आश्विन कृष्ण द्वितीया को होता है । इतना निश्चय हो जाने पर अब यह जानना आवश्यक है कि—कितने इष्ट षष्ठी पक्ष पर जन्म हुआ । उसका अयन १४ वें श्लोक के अनुसार करना ॥ १२ ॥

दिवारात्रिप्रसूतिं च नक्षत्रानयनं तथा ।

सप्तकेष्वपि वर्गेषु नित्यमेवोपलक्षयेत् ॥ १३ ॥

दिवेत्यादि ॥ योऽसौ सप्तहतो राशिस्तत्र प्राग्वदेव नवकदानविशोधने कृत्वा तत्कर्मयोग्यं राशिं स्थापयेत् । यस्य दिवारात्रिसंख्यया द्वाभ्यां भागमपहृत्य यद्येकोऽवशिष्यते तदा दिवसे जातोऽथ न किञ्चिदवशिष्यते तदा रात्रौ जात इति वक्तव्यम् । योऽसौ सप्तहतो राशिस्तस्य नक्षत्रसंख्यया सप्तविंशत्या भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसंख्ये नक्षत्रेऽश्विन्यादित आरभ्य जात-नक्षत्रमिति वक्तव्यम् । अस्य कर्मणः पुनरभिधानं नक्षत्रानयनस्य बाहुल्यो-पयोगित्वात् ॥ १३ ॥

भाषा—दिन या रात्रि में जन्म हुआ ? यह जानना हो तथा नक्षत्रानयन यह सर्वदा सप्त गुणित लिप्तापिण्ड पर से करना चाहिए ॥ १३ ॥

उदाहरण—नक्षत्रानयन का प्रकार पूर्व ही दिखलाया गया है । दिन में या रात्रि में जन्म का ज्ञान करना हो तो पिण्ड को ७ से गुना करके २ के भाग से, १ शेष में दिन और २ शेष में रात्रि समझना चाहिए ॥ १३ ॥

वेलामथ विलग्नं च होरामंशकमेव च ।

पञ्चकेषु विजानीयानष्टजातकसिद्धये ॥ १४ ॥

वेलेत्यादि ॥ यस्मिन्दिने पुरुषस्य जन्मज्ञानं तद्दिनप्रमाणं घटिकादिकं कर्तव्यम् । रात्रौ चेत्तदा रात्रिप्रमाणम् । ततः पञ्चगुणस्य राशेस्तेन दिन-प्रमाणेन रात्रिप्रमाणेन वा भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तस्मिन्काले दिन-गते रात्रिगते वा तस्य जन्म वक्तव्यम् । अथ विलग्नमित्यादि । अथशब्दः पादपूरणार्थम् । काले ज्ञाते राश्यादि लग्नं कर्तव्यम् । ततस्तस्य होराद्रेष्काण-नवांशद्वादशांशत्रिंशांशभागाः कर्तव्याः । तात्कालिकग्रहाश्च कर्त्तव्याः । ततो यथाभिहितेन विधिना दशान्तर्दशाष्टकवर्गादेरभिहितस्य फलस्य निर्देशः कार्यः । एवं नष्टजातकं साधयेत् ॥ १४ ॥

भाषा—दिन या रात्रि में जन्म के ज्ञान होने पर—इष्ट समय, या लग्न होरा नवांश ज्ञानना हो तो पञ्च गुणित पिण्ड पर से करना चाहिए । ये क्रियार्थ—केवल अज्ञात जन्म समयादिज्ञानार्थ ही कही गई हैं ॥ १४ ॥

विशेष अर्थ—यदि निश्चित हो जाय कि दिन में जन्म हुआ तो इष्टघटी ज्ञानार्थ पिण्ड को ५ से गुना कर दिनमान घट्यादि से भाग देकर और रात्रि में रात्रिमान घट्यादि से भाग देकर शेष घट्यादि इष्टकाल समझना । उस पर से लग्नसाधन विधि से लग्न का ज्ञान करना । यदि बिना इष्टघटी ज्ञान के ही—फलार्थ नष्टजातक संबन्धी जन्मलग्न का ज्ञान करना हो तो पञ्चगुणित पिण्ड को ही १२ के भाग देकर शेष तुल्य मेष आदि लग्न समझना चाहिए । यदि लग्न का ज्ञान हो तो होराफल कथनार्थ

उसी पञ्चगुणित पिण्ड को २ से भाग देकर १ शेष में प्रथम और शून्य शेष में द्वितीय होरा समझना चाहिए । एव नवांश ज्ञान के लिये ९ का भाग देकर, द्वादशांश ज्ञान के लिये १२ से भाग देकर लब्ध तुल्य नवांश या द्वादशांश समझकर लग्नराशि के अनुसार उसका फलादेश करना ॥ १४ ॥

उदाहरण—जैसे लिप्तापिण्ड १५९८७०४ को ७ से गुना करके २ के भाग देने से शून्य (अर्थात् ०) शेष बचा इसलिये रात्रि में जन्म निश्चय हुआ । अब इष्टघटी ज्ञानार्थ लिप्तापिण्ड १५९८७०४ को ५ से गुनाकर ७९९३५२० भाज्य, इसमें रात्रि-मान (घटीपल २५।४० = एकजातीय पल १६६०) से भाग देने के लिये भाज्य को भी ६० से गुना करके भाग देकर शेष ६८० पल इसकी घटी बनाने से ११।२० यह मूर्धन्ति से घट्यादि जन्म इष्टकाल हुआ । इन पर से स्पष्टग्रह और लग्नादि द्वादश भाव नाथन कर नष्टजन्मपत्र होगा । अथवा त्रिना आयास के शीघ्रता में लग्नादि के फल कहना हो तो लग्नादि विकल्प (सख्या) से पञ्चगुणित पिण्ड में भाग देने से शेष लग्नादि होते हैं जिनका उदाहरण भी स्पष्ट है ।

जैसे किसी ने प्रश्न किया कि अमुक संवत्, अमुक मास, अमुक पक्ष, अमुक तिथि, अमुक दिन में मेरा जन्म है, लेकिन काल या लग्न का ज्ञान नहीं है, तो हमारा किस लग्न में जन्म है ? और उसका क्या फल होगा ?—ऐसे प्रश्न में पञ्चगुणित लिप्तापिण्ड में १२ के भाग देकर १ आदि शेष में मेष आदि लग्न समझना । फिर लग्न के अंश जानने के लिये उसी पञ्चगुणित लिप्तापिण्ड में ३० का भाग देकर शेष तुल्य अंश समझना चाहिये । उस अंश की कला जानने के लिये पञ्चगुणित पिण्ड में ६० के भाग देकर शेष तुल्य कला और विकला समझना चाहिए । उस पर से मूर्धर्तचित्ता-मणि के अनुसार इष्टकाज और तात्कालिक स्पष्ट ग्रहादि का ज्ञान भी सुगम है ॥ १४ ॥

अथ प्रकारान्तरेण नक्षत्रानयनमार्थथाह—

संस्कारनाममात्रा द्विगुणा छायाङ्गुलैः समायुक्ताः ।

शेषात्रिनवकभक्तान्नक्षत्रं तद्धनिष्ठादि ॥ १५ ॥

संस्कारनामेति ॥ संस्कारेण नाम संस्कारनाम तस्य मात्राः संस्कारेणागतस्य नाम्नो मात्राः संस्कारनाममात्राः । संस्कारग्रहणेनैतत्प्रतिपादितं भवति । संस्कारेण यत्पुरुषस्य नाम कृतं तस्य मात्रा ग्राह्याः, नान्यस्य कस्यचित्कुनामादेः । मात्राश्चेह गृह्यन्ते हल् अर्द्धमात्रिकः । अत्र मात्रिकः (१) इत्यनया स्थित्या ताः संस्कारनामामात्राः संगृह्य द्विगुणीकार्याः । ततस्तात्कालिकानि शङ्कुच्छायाङ्गुलानि गृहीत्वा ता द्विगुणमात्रास्तैरङ्गुलैः संयुक्ताः कार्याः । एवं

(१) यथा छन्दःशास्त्रे—

“एकमात्रो भवेद्द्विगुणो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।

त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रिकम् ॥”

कृते यद्भवति तस्य त्रिनवकेन सप्तविंशत्या भागमपहृत्य यः शेषो भवति तदङ्कसमं तस्य धनिष्ठादित आरभ्य नक्षत्रं वक्तव्यम् ॥ १५ ॥

भाषा—नामकरण संस्कार विधि से माता पिता द्वारा प्रश्नकर्ता का जो नाम हो उसमें जितने वर्ण हो उनकी मात्राओं (ह्रस्व की १, दीर्घ की २, हल् व्यंजन की अर्धमात्रा इस प्रकार सबों) के योग में तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छायाङ्गुल सख्या जोड़कर २७ के भाग देकर जो शेष बचे वह घनिष्ठादि नक्षत्र समझना चाहिए ॥१५॥

उदाहरण—जैसे प्रश्नकर्ता का संस्कार नाम 'देवनाथ' इन चारों वर्णों में २ ह्रस्व और दीर्घवर्ण हैं इसलिये सब मात्राएँ ६ हुईं इसको दूना करने से १२ इसमें तात्कालिक द्वादशाङ्गुल शङ्कु की छाया ७ मिलाया तो १९, इनमें २७ के भाग से शेष १९ बाँ धनिष्ठा से गिनने से 'चित्रा' जन्मनक्षत्र हुआ ।

विशेष अर्थ—“एकमात्रो भवेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते । त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजनं चाऽर्धमात्रकम् ॥” स्पष्ट । नाम में ह्रस्व, दीर्घ और व्यंजन तीन ही से मात्रा ली जाती है । प्लुत सम्बोधन में आता है इसलिये नाम में किसी वर्ण का ३ मात्रा नहीं होती है । इट्काल पर से छायाङ्गुल समझने का प्रकार 'ग्रहलाघव' आदि ग्रन्थ के त्रिप्रश्नाधिकार में देखिये ॥१५॥

अथ नक्षत्रानयनं प्रकारान्तरेणार्ययाह—

द्वित्रिचतुर्दशदशतिथिसप्तत्रिगुणा नवाष्ट चैन्द्राद्याः ।

पञ्चदशघ्नास्तद्विद्मुखान्विता भं धनिष्ठादि ॥ १६ ॥

द्वित्रिचतुर्दशेति ॥ पूर्वाभिमुखो यदा प्रष्टा पृच्छति तदा द्वयोरङ्काः स्थाप्याः । अथाग्नेयाभिमुखस्तदा त्रयाणाम् । अथ दक्षिणाभिमुखस्तदा चतुर्दशानाम् । अथ नैऋत्यभिमुखस्तदा दशानाम् । अथ पश्चिमाभिमुखस्तदा तिथि-संख्यानां पञ्चदशानाम् । अथ वायव्याभिमुखस्तदा सप्तत्रिगुणा एकविंशतिः । उत्तराभिमुखस्तदा नवानाम् । ऐशान्याभिमुखस्तदाऽष्टानाम् । तद्यथा । एवं दिग्भिमुखप्रवेशवशेनाङ्कं गृहीत्वा ततः पञ्चदशगुणः कार्यः । ततस्तस्मिन्प्रदेशे यावन्तः पुरुषास्तदभिमुखाः स्थितास्तत्संख्यान्वितो युक्तः कार्यः । एवं कृते यद्भवति तस्य सप्तविंशत्या भागमपहृत्य योऽङ्कोऽवशिष्यते तदङ्कसमं तस्य धनिष्ठादित आरभ्य नक्षत्रं वक्तव्यम् ॥ १६ ॥

भाषा—पूर्वादि दश दिशाओं में क्रम से २, ३, १४, १०, १५, ७, ३, ३, ९, ८ ये अंक हैं । प्रष्टा जिस दिशा में मुख करके प्रश्न करे उस दिशा के अंक को १५ के गुण करे और प्रश्नस्थल में जितने अन्य व्यक्ति उस दिशा में (जिवर प्रश्नकर्ता का मुख हो उधर) मुख किये हों उतनी संख्या गुणनफल में मिलाकर २७ के भाग देकर जो शेष बचे वह घनिष्ठादि गणना क्रम से नक्षत्र समझना चाहिए ॥१६॥

विशेष अर्थ—यहाँ भट्टोत्पल ने केवल ८ दिशाएँ समझकर 'सप्तत्रिगुणा' इन तीन अंकों के स्थान में एकही (त्रिगुणित सात=२१) अंक ग्रहण करके अर्थ किया है, जो असंगत है। क्योंकि दिशाएँ १० हैं। जैसे—पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ऐशान्य (ईशान), अधः, ऊर्ध्व क्योंकि—प्रश्नकर्ता अधोमुख होकर, कभी ऊर्ध्वमुख होकर भी प्रश्न कर सकता है उस हालत में इस प्रकार से किस अंक का ग्रहण होगा ? अथवा त्रिगुण 'यद् केवल सप्त' का विशेषण नहीं हो सकता, यदि सप्त का विशेषण 'त्रिगुणा' आचार्य का अभिप्रेत होता तो 'त्रिगुण सप्त' ऐसा प्रयोग होता। अथवा 'नवाष्ट' का विशेषण हो सकता है। 'वा द्वित्रिचतुर्दश-दश-तिथिखत' इस समस्त पद का विशेषण हो सकता है, इस प्रकार अधः ऊर्ध्व इन दो दिशाओं के अनुपपन्न होते हैं। इसलिये ये दश अंक दश दिशाओं के लिये आचार्य ने पठित किये है अतः केवल दिशा मानना असङ्गत प्रतीत होता है ॥१६॥

तथा—'तद्दिग्मुखान्विता' इसका भी कोई ऐसा अर्थ करते हैं कि—“जितने मनुष्य जिस-जिस दिशा में मुख किये हों उस-उस दिशा के अंकों को भी मिलाना” किन्तु यह भी असंगत है। क्योंकि आचार्य का ऐसा अभिप्राय रहता तो—“परमुख दिग्ङ्कयुताः” ऐसा ही पाठ भी रखते। अतः 'तद्दिग्मुखान्विता' इसका वास्तव अर्थ यही हो सकता है कि—उस दिशा में जितने मनुष्य मुख करके बैठे या खड़े हों उतनी संख्या मिलाने ॥ १६ ॥

यहाँ ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये कि इस प्रकार दिशा मान कर अंक ग्रहण करने से ३ दिशा में समान ही ३, ३ अंक होते हैं। क्योंकि ऐसा होता है। १२ राशियों में भी कितने के अंक समान कहे गये हैं तो वहाँ भी ऐसी आशंका उपस्थित हो सकती है ॥

दिशाओं के अङ्कबोधक चक्र

| पूर्व० | आ० | द० | न० | प० | वा० | उ० | ई० | अधः | ऊर्ध्व |
|--------|----|----|----|----|-----|----|----|-----|--------|
| २३ | ३ | १४ | १० | १५ | ७ | ३ | ३ | ९ | ८ |

उदाहरण— किसी ने उतान सोए हुए (ऊर्ध्वमुख होकर ही) प्रश्न किया और वहाँ १ अन्य व्यक्ति भी ऊपर मुख किया हो-तो यहाँ ऊर्ध्व दिशा के अंक ८ को १५ से गुना किया १२० इसमें १ संख्या और मिलाया तो १२१ हुआ। इसमें २७ के भाग देकर शेष १३ घनिष्टा से गिनने से पुण्य जन्मनक्षत्र हुआ ॥१६॥

अथ नष्टजातकोपसंहारमार्गग्रह—

इति नष्टजातकमिदं बहुप्रकारं मया विनिर्दिष्टम् ।

ग्राह्यमतः सच्छिष्यैः परीक्ष्य यत्नाद्यथा भवति ॥ १७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके

नष्टजातकाध्यायः षड्विंशः ॥ २६ ॥

इति नष्टजातकमिति ॥ इति शब्दः उपसंहारः । मया बराहमिहिराचार्येण नष्टजातकं बहुप्रकारं बहुभेदं विनिर्दिष्टमुक्तमिदम् । अतोऽस्माद्धेतोः सच्छिष्यैः शोभनसच्छात्रैः ग्राह्यम् । यन्नात्परोक्ष्य विचार्य यथा येन प्रकारेण सम्भवति सत्यरूपं तथा ग्राह्यमिति । येन प्रकारेण सम्भवति तथा ग्रहीतव्यमित्यर्थः । बहुभिरागमैर्मया विचार्य पराशर-वशिष्ठ-यवन-सत्य-नखित्वादीनां मतानि आलोक्य कृतम् । तदेव भूयो निर्मलगुणनिपुणबुद्ध्या विचार्य सम्यक्तया कार्यं येन स्फुटसिद्धोऽसौ सम्पद्यते ॥ १७ ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां बृहज्जातकविवृतौ नष्टजातकाध्यायः
षड्विंशः ॥ २६ ॥

भाषा—इस तरह मैंने बहुत आचार्यों के सम्मत अनेक प्रकार से नष्ट जातक कहे हैं । इनमें विद्यार्थियों को चाहिये कि—यत्न से सबों की परीक्षा करके जिस प्रकार से फल में विशेष स्पष्टता हो उस प्रकार को ग्रहण करके नष्टजातक—बनाकर फलदेश करे ॥१७॥

विशेष अर्थ—इस से यहाँ यह आशंका नहीं करनी चाहिये कि—“इन में कोई प्रकार अवास्तव है, और कोई वास्तव है ? इसलिये आचार्य का ऐसा आदेश है ?” वास्तव में सब प्रकार ठीक ही हैं, जैसे अनेक स्मृतियाँ हैं, उनमें कोई किसी अनुसार, कोई किसी के अनुसार अपने देशकाल के अनुरोधवश काम करते हैं । उसी प्रकार जिनको जो प्रकार सुलभ या स्पष्ट मालूम हो वह उसी प्रकार से बनावें, फल सब प्रकार से मिल सकता है ॥१७॥

अथ द्रेष्काणाध्यायः ॥ २७ ॥

अथ द्रेष्काणाध्यायो व्याख्यायते । तत्रादौ मेषाद्यद्रेष्काणस्य स्वरूपज्ञानं वैतालीयेनाह—

कट्यां सितवस्त्रवेष्टितः कृष्णः शक्त इवाभिरक्षितुम् ।

रौद्रः परशुं समुद्यतं धत्ते रक्तविलोचनः पुमान् ॥ १ ॥

कट्यामिति । कट्यां जघने सितं श्वेतं वस्त्रमम्बरं वेष्टितं येन । कृष्णः असितवर्णः, शक्त इव अभिरक्षितुमाभिमुख्येन रक्षां कर्तुं शक्तः समर्थ इव । रौद्रो भोषणः यः परशुं कुठारं समुद्यतं धत्ते धारयति । रक्तविलोचनो लो-
हिताक्षः स च पुमान्पुरुषः एष पुरुषद्रेष्काणः सायुधो भौमासक्तश्च ॥ १॥

भाषा—कमर में सफेद वस्त्र लपेटा हुआ, श्यामवर्ण, रक्षा करने में समर्थ, भयानक, लाल आँख वाला, फरसा को धारण किया हुआ ऐसा मेष का प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ १ ॥

अथ मेषद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाह—

रक्ताम्बरा भूषणभक्ष्यचित्ता कुम्भाकृतिर्वाजिमुखी तृषार्त्ता ।

एकेन पादेन च मेषमध्ये द्रेष्काणरूपं यवनोपदिष्टम् ॥ २ ॥

रक्ताम्बरेति ॥ रक्ताम्बरा लोहितवस्त्रा, भूषणमलंकरणं भक्ष्यं भोज्यं तत्र चित्तं यस्याः । कुम्भाकृतिः घटोदरी वाजिमुखी अश्ववक्त्रा, तृषार्त्ता पिपासार्त्ता एकेन पादेन चरणेनोपलक्षिता इदं द्रेष्काणरूपं मेषमध्ये मेषद्वितीयं यवनोपदिष्टं यवनाचार्यैः कथितम् । एष चतुष्पदद्रेष्काणः स्त्रीद्रेष्काणाऽर्कसक्तश्च । यस्मादाचार्यैश्चतुष्पान्मुखाश्चतुष्पदद्रेष्काण इति व्याख्यातस्तथा खगमुखो द्रेष्काणश्च ॥ २ ॥

भाषा—लाल वस्त्र पहिने हुई, भूषण और भोजन की इच्छा से युत, घड़ा सदृश आकार और घोड़े के समान मुखवाली, एक पैर से खड़ी मेष का दूसरा द्रेष्काण यवनों ने कहा है ॥ २ ॥

अथ मेषतृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाह—

क्रूरः कलाज्ञः कपिलः क्रियार्थी भग्नव्रतोऽभ्युद्यतदण्डहस्तः ।

रक्तानि वस्त्राणि बिभर्ति चण्डो मेषे तृतीयः कथितस्त्रिभागः ॥ ३ ॥

क्रूर इति ॥ क्रूरो विषमस्वभावः, कलाज्ञः, कलावित्, कपिलः पिङ्गलः, क्रियार्थी कर्मस्वभिलाषुकः, भग्नव्रतः स्खलितनियमः, अभिमुख्येनोद्यतो दण्डः हस्ते पाणौ यस्य । रक्तानि लोहितानि वस्त्राण्यम्बराणि बिभर्ति धारयति । चण्डः क्रोधशीलः । अयं मेषतृतीयस्त्रिभागो द्रेष्काणः कथित उक्तः । एष नरद्रेष्काणः सायुधो जीवसक्तश्च ॥ ३ ॥

भाषा—क्रूर, कला को जानने वाला, कपिलवर्ण, कार्य करने का अभिलाषी, नियम का उल्लङ्घन करने वाला, हाथ में लाठी उठाये हुए, क्रोधयुक्त, रक्त वस्त्र को धारण किया हुआ पुरुष मेष का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ ३ ॥

अथ वृषप्रथमद्रेष्काणजातस्य स्वरूपं दोधकेनाह—

कुञ्चितलूनकचा घटदेहा दग्धपटा तृषिताशनचित्ता ।

आभरणान्यभिवाञ्छति नारी रूपमिदं वृषमे प्रथमस्य ॥ ४ ॥

कुञ्चितेति ॥ कुञ्चिताः कुटिलाः लूनाः कचाः केशा यस्याः सा कुटिलच्छिन्नकेशा, घटदेहा कुम्भसदृशोदरी, दग्धपटा दग्धवस्त्रा, तृषिता पिपासार्त्ता, अशने भोजने चित्तं यस्याः । आभरणानि भूषणानि अभिवाञ्छति सा च नारी स्त्री इदं वृषप्रथमस्य द्रेष्काणस्य स्वरूपम् । एषः स्त्रीद्रेष्काणः साग्निकः शुक्रसक्तश्च ॥ ४ ॥

भाषा—टेढ़े-टेढ़े किन्तु छोटे-छोटे शिर के केशवाली, घड़ा के समान पेटवाली,

जलावज्ज पहिने हुई, प्यासी, भोजन में मन रखनेवाली, आभरण चाहने वाली स्त्री वृष के प्रथम द्रव्काण का स्वरूप है ॥ ४ ॥

अथ वृषद्वितीयद्रव्काणस्य स्वरूपं स्वागतयाह—

क्षेत्रधान्यगृहधेनुकलाज्ञो लाङ्गले सशकटे कुशलश्च ।

स्कन्धमुद्रहति गोपतितुल्यं क्षुत्परोऽजवदनो मलवासाः ॥ ५ ॥

क्षेत्रधान्येति ॥ क्षेत्रं केदारः, धान्यानि शालयः, गृहं वेश्म, धेनुः गौः, कलाः गीतवाद्यनृत्यलेखचित्रकर्मादि एतासां ज्ञः पण्डितः, लाङ्गले हस्ते, सशकटे शकटसहिते, कुशलः शिञ्जितः, गोपतितुल्यं वृषभसदृशं, स्कन्धं ककुदमुद्रहति धारयति । क्षुत्परः क्षुद्यार्तः, अजवदनः छागवक्त्रः, मलवासा मलिनाम्बरः । एष नरद्रव्काणः चतुष्पादद्रव्काणो बुधसक्तश्च ॥ ५ ॥

भाषा—खेती, अन्न, गृह, गोपालन और कलाओं को जाननेवाला, गाड़ी और हल चलाने में कुशल, बल के समान गर्दन वाला, धुधातुर, बकरे के समान मुखवाला और मैला कपड़ा पहिने वाला वृष का दूसरा द्रव्काण है ॥ ५ ॥

अथ वृषतृतीयद्रव्काणस्य स्वरूपं दोधकेनाह—

द्विपसमकायः पाण्डुरदंष्ट्रः शरभसमाङ्घ्रिः पिङ्गलमूर्तिः ।

अविमृगलोभव्याकुलचित्तो वृषभवनस्य प्रान्तगतोऽयम् ॥ ६ ॥

द्विपसमकाय इति ॥ द्विपसमकायो महाशरीरो हस्तितुल्यदेहः न पुनः हस्तिशरीरः, पाण्डुरदंष्ट्रः श्वेतदन्तः, शरभसमाङ्घ्रिः बृहत्पादो न पुनः शरभसदृशपादः, पिङ्गलमूर्तिः कपिलदेहः, अविः प्रसिद्धः, मृग आरण्यपशुः अविमृगलोभार्थं व्याकुलं चित्तं यस्य । अयं वृषभवनस्य वृषराशेः प्रान्तगतस्तृतीयद्रव्काणः । चतुष्पादः सौरसक्तश्च ॥ ६ ॥

भाषा—हाथी के समान विशाल देह, श्वेत दंत, ऊँट के तुल्य पैर, पीले रङ्ग का देह का वर्ण, बकरा, हरिण आदि के लोभ से व्याकुल मनवाला पुरुष ऐसा वृष का तृतीय द्रव्काण है ॥ ६ ॥

अथ मिथुनस्य प्रथमद्रव्काणस्य स्वरूपज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

सूच्याश्रयं समभिवाञ्छति कर्म नारी रूपान्विताभरणकार्यकृतादरा च ।

हीनप्रजोच्छ्रितभुजर्तुमती त्रिभागमाद्यं तृतीयभवनस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ७ ॥

सूच्याश्रयमिति ॥ नारी स्त्री सूच्याश्रयं कर्म सीवनक्रियां सम्यगभिवाञ्छति इति । रूपान्विता सुरुपा आभरणकार्ये भूषणकर्मणि कृत आदरो अभिलाषः श्रद्धा यया हीनप्रजा अपत्यरहिता उच्छ्रितभुजोर्ध्वबाहुको ऋतुमती सार्तवा कामार्त्ता वा । तृतीयभवनस्य मिथुनस्याद्यं प्रथमं त्रिभागं द्रव्काणं तज्ज्ञाः पण्डिताः प्रवदन्ति कथयन्ति । एष स्त्रीद्रव्काणो बुधसक्तश्च ॥ ७ ॥

भाषा—सिलाई का काम करने वाली स्त्री, मनोहर रूप वाली, भूषणों में श्रद्धा रखने वाली, सन्तानहीना, दोनों हाथों को उठाये हुई, ऋतुमती (कामातुरा) ऐसा मिथुन के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ७ ॥

अथ मिथुनद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमुपजातिक्रियाह—

उद्यानसंस्थः कवची धनुष्माञ्छूरोऽन्नधारी गरुडाननश्च ।

क्रीडात्मजालङ्कारार्थचिन्तां करोति मध्ये मिथुनस्य राशेः ॥ ८ ॥

उद्यानसंस्थ इति । उद्यानसंस्थ उपवने तिष्ठति । कवची सन्नाहप्रावृत्त-शरीरः, धनुष्मान् चापहस्त, शूरो रणप्रियः । शरास्त्रधारी वा पाठः । शराः काण्डानि तान्येवास्त्राणि तद्दरणे शीलं यस्येति । गरुडाननः पक्षिसदृशवक्त्रं, क्रीडनं क्रीडा, आत्मजाः पुत्राः, अलंकरणमाभरणम्, अर्थो वित्तम् एषां सम्बन्धिनीं चिन्तां करोति । अयं मिथुनस्य राशेर्मध्ये द्वितीयद्रेष्काण इत्यर्थः । एष नरद्रेष्काणः सायुधः खगद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च ॥ ८ ॥

भाषा—बगीचे में बैठता, कवच और धनुष को धारण किया हुआ, शूर, बन्दूक रखने वाला, गरुड़ के समान मुखवाला, खेल, पुत्र, भूषण और धन की चिन्ता रखने वाला पुरुष मिथुन राशि के दूसरे द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ८ ॥

अथ मिथुनस्य तृतीयद्रेष्काणस्वरूपं स्वागतयाह—

भूषितो वरुणवद्बहुरत्नो बद्धतूणकवचः सधनुष्कः ।

नृत्यवादितकलासु च विद्वान् काव्यकृन्मिथुनराशयवसाने ॥ ९ ॥

भूषित इति ॥ भूषितोऽलंकृतः, वरुणवत्समुद्रवत् बहुरत्नः प्रभूतमणिः, तूणं शराधानं, कवचं सन्नाहः एनौ बद्धौ प्रथितौ येन, सधनुष्कः चापयुक्तः, नृत्ये वादिते वाद्यविषये कलासु च निःशेषासु विद्वांस्रज्ज्ञः काव्यकृत्पण्डितः कवेः कर्म काव्यं तत्करोति । एषः मिथुनस्य राशेरवसाने तृतीयद्रेष्काण इत्यर्थः । एषः नरद्रेष्काणः सायुधः सौरसक्तश्च ॥ ९ ॥

भाषा—भूषणों से शोभित, वरुण (समुद्रपति) के समान, बहुत रत्नों से युक्त, तूण (तरकस) और कवच को धारण किया, धनुष से युक्त, नृत्य और वाद्य आदि कला में निपुण, काव्य करने वाला, ऐसा मिथुन के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ९ ॥

अथ कर्कटपूर्वम्य स्वरूपं स्वागतयाह—

पत्रमूलफलभृद्द्विपकायः कानने मलयगः शरभाङ्घ्रिः ।

क्रोडतुल्यवदनो हयकण्ठः कर्कटे प्रथमरूपमुशन्ति ॥ १० ॥

पत्रेति ॥ पत्राणि मूलानि फलानि च विभर्ति धारयति । द्विपकायो हस्ति-सदृशशरीरः । कानने वने मलयगः मलयश्चन्दनवृक्षः तत्रोपगतः स्थितः ।

शरभाङ्घ्रिः शरभसदृशपादः, क्रोडः सूकरस्तुल्यवदनः तत्सदृशवक्त्रः, हय-
कण्ठोऽश्वघ्रीवः, कर्कटे कर्कटराशौ प्रथमद्रेष्काणस्य स्वरूपमुशान्तिं कथयन्ति ।
एष द्रेष्काणश्चतुष्पाच्चन्द्रसक्तश्च ॥ १० ॥

भाषा—पत्र, मूल और फल को रखने वाला, हाथी के समान देहवाला, वन में
मलय पर्वत पर रहने वाला, ऊँट के समान पैर वाला, सुअर के समान मुँह-
वाला, घोड़ा के समान कण्ठवाला, ऐसा कर्क के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप कहा
गया है ॥ १० ॥

अथ कर्कटद्वितीयद्रेष्काणस्य स्वरूपमिन्द्रवज्रयाह—

पद्माचिता मूर्धनि भोगियुक्ता स्त्री कर्कशारण्यगता विरौति ।

शाखां पलाशस्य समाश्रिता च मध्ये स्थिता कर्कटकस्य राशेः ॥ ११ ॥

पद्माचितेति ॥ स्त्री योषिन्मूर्धनि शिरसि पद्मैः कमलैरचिता पूजिता ।
भोगियुक्ता ससर्पा, कर्कशा कठिनयौवनोपेता, अरण्यगता एकान्तस्थिता, वि-
रौति आक्रोशति । पलाशवृक्षस्य शाखां लतां समाश्रिता तत्रासक्ता स्थिता ।
कर्कटस्य राशेर्मध्ये स्थिता द्वितीयद्रेष्काणे समवस्थिता । एष स्त्रीद्रेष्काणो
व्यालद्रेष्काणो भौमसक्तश्च ॥ ११ ॥

भाषा—मस्तक पर कमल धारण की हुई, सर्प से युत, बड़ी ही कर्कशा, वन
में रोती हुई, पलाश वृक्ष की शाखा पकड़ कर खड़ी हुई, ऐसा कर्क के द्वितीय द्रेष्काण
का स्वरूप है ॥ ११ ॥

अथ कर्कटस्य तृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपं वैताललीयेनाह—

भार्याभरणार्थमर्णवं नौस्थो गच्छति सर्पवेष्टितः ।

हेमैश्च युतो विभूषणैश्चिपिटास्योऽन्त्यगतश्च कर्कटे ॥ १२ ॥

भार्येति ॥ भार्या जाया तस्या आभरणार्थमलंकरणनिमित्तमर्णवं समुद्रं
नौस्थो नावमारूढः । सपवेष्टिताङ्गो गच्छति याति, हेमैः सुवर्णनिर्मितैः वि-
भूषणैरलंकरणैर्युतः । चिपिटास्यः चिपिटमुखः, कर्कटेऽन्त्यगतः । तृतीय-
द्रेष्काणो इत्यर्थः । एष नरद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणो जीवसक्तश्च ॥ १२ ॥

भाषा—सर्प से युक्त पुरुष स्त्री के लिये भूषण के निमित्त नौका पर बैठकर
समुद्र में चलने वाला, सोने के भूषणों से युक्त, चिपटा मुख वाला ऐसा कर्क के तृतीय
द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ १२ ॥

अथ सिंहपूर्वस्य द्रेष्काणस्य स्वरूपज्ञानं रथोद्धतयाह—

शाल्मलेरुपरि गृध्रजम्बुकौ श्वा नरश्च मलिनाम्बरान्वितः ।

रौति मातृपितृविप्रयोजितः सिंहरूपमिदमाद्यमुच्यते ॥ १३ ॥

शाल्मलेरिति ॥ शाल्मलिवृक्षस्योपर्यग्रे गृध्रः पक्षी, जम्बुकः शृगालः,
एतौ स्थितौ तथा श्वा सारमेयः, नरो मनुष्यः स च मलिनैः मलोपेतैरम्ब-

रैर्वस्त्रैरन्वितो युक्तः, मातृपितृविप्रयोजितो जननीजनकविरहितो रौत्याक्रो-
शति । इदमाद्यं प्रथमं रूपं सिंहस्योच्यते कथ्यते । सिंहप्रथमद्रेष्काण इत्यर्थः ।
एष नरद्रेष्काणः चतुष्पदद्रेष्काणः खगद्रेष्काणोऽर्कसक्तश्च ॥ १३ ॥

भाषा—सेमल के वृक्ष पर गीघ, नीचे सियार और कुला, तथा मलिन वल्क
धारण किया हुआ, माता-पिता से रहित मनुष्य रोता हुआ बैठा ऐसा सिंह के प्रथम
द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है ॥ १३ ॥

अथ सिंहद्वितीयस्य स्वरूपं वंशस्थेनाह—

हयाकृतिः पाण्डुरमाल्यशेखरो बिभर्ति कृष्णाजिनकम्बलं नरः ।

दुरासदः सिंह इवात्तकार्मुको नताग्रनासो मृगराजमध्यमः ॥ १४ ॥

हयाकृतिरिति ॥ हयाकृतिः अश्वाकारः, पाण्डुरमीषच्छुक्तयुक्तं माल्यं पुष्प-
निचयं शेखरे शिरसि यस्य । कृष्णाजिनं कृष्णमृगचर्म कम्बलमौर्णिकं बिभर्ति
धारयति । केचित्कृष्णाजिनचीवरमिति पठन्ति । चीवरं जीर्णवासः, नरो
मनुष्यो दुरासदः दुर्ज्ञेयः, दुःसाध्यः, सिंह इव आत्तकार्मुकः गृहीतचापः,
नताग्रनासः नताग्रा नासा यस्य । मृगराजस्य सिंहस्य मध्यमो द्वितीयो द्रेष्काणः
हयाकृतिः । पुरुष एवायं नरश्चतुष्पदद्रेष्काणः सायुधो जीवसक्तश्च ॥ १४ ॥

भाषा—घोड़े के समान आकार, मस्तक पर पाण्डु (श्वेतपीत मिश्रित वर्ण की)
माला वाला, कृष्णमृग चर्म और कम्बल धारण करने वाला, सिंह समान वंश में नहीं
होनेवाला, धनुषधारी, नाक का अग्रभाग झुका हुआ इस प्रकार सिंह का द्वितीय
द्रेष्काण है ॥ १४ ॥

अथ सिंहतृतीयस्य स्वरूपमुपजातिकयाह—

ऋक्षाननो वानरतुल्यचेष्टो बिभर्ति दण्डं फलमामिषं च ।

कूर्ची मनुष्यः कुटिलैश्च केशैर्मृगेश्वरस्यान्त्यगतस्त्रिभागः ॥ १५ ॥

ऋक्षानन इति ॥ ऋक्षः प्राणी ऋक्षाननः ऋक्षसदृशवक्त्रः, वानरतुल्य-
चेष्टः वानरेण कपिना तुल्या सदृशा चेष्टा स्वभावो यस्य । दण्डमायुधं फल-
माम्रदि, आमिषं मांसं च बिभर्ति धारयति । कूर्ची दीर्घश्मश्रुः, मनुष्यः
पुरुषः, कुटिलैः केशैर्मूर्द्धजैर्युक्तः । मृगेश्वरस्य सिंहस्यान्त्यगतस्त्रिभागः । एष
नरद्रेष्काणः चतुष्पदद्रेष्काणः सायुधो भौमसक्तश्च ॥ १५ ॥

भाषा—भालू के समान मुख, वानर के समान चेष्टा वाला, लाठी, फल और
मांस को धारण करने वाला, लम्बी दाढ़ी और टेढ़े शिर के बाल वाला, ऐसा सिंह
का तृतीय द्रेष्काण है ॥ १५ ॥

अथ कन्यापूर्वस्य स्वरूपमुपजातिकयाह—

पुष्पप्रपूर्णेन घटेन कन्या मलप्रदिग्धाम्बरसंवृताङ्गी ।

वत्सार्थसंयोगमभीष्टमाना गुरोः कुलं वाञ्छति कन्यकाद्यः ॥ १६ ॥

पुष्पप्रपूर्णेनेति ॥ कन्या कुमारी, पुष्पप्रपूर्णेन कुसुमपरिपूरितेन कुम्भेन उपलालिता, मलप्रदिग्धेरतिमलोपेतैः अम्बरैर्वस्त्रैः संवृताङ्गी संवृतावयवा । वस्त्राण्यम्बराणि अर्थो धनं एषां संयोगमभीष्टज्ञाना वाञ्छमाना गुरोः कुलं व्रजति गच्छति । कन्यकाद्यः प्रथमद्रेष्काणः । एष स्त्रीद्रेष्काणो बुधसक्तश्च ॥ १६ ॥

भाषा—पुष्प से भरा हुआ बड़ा लिए हुई कन्या मन्दिर वस्त्र धारण की हुई, वस्त्र और धन का संग्रह करने की इच्छा रखती हुई गुरुकुल में जाने वाली स्त्री, ऐसी कन्या का प्रथम द्रेष्काण कहा गया है ॥ १६ ॥

अथ कन्याद्वितीयस्य स्वरूपं वैतालीयेनाह—

पुरुषः प्रगृहीतलेखनिः श्यामो वस्त्रशिरा व्ययायकृत् ।

विपुलं च बिभर्ति कार्मुकं रोमव्याप्ततनुश्च मध्यमः ॥ १७ ॥

पुरुष इति ॥ पुरुषो नरः, प्रगृहीतलेखनिः ययाक्षराणि लिख्यन्ते सा लेखनिः, श्यामो श्यामवर्णः, वस्त्रशिराः कर्पटसंयमितमूर्द्धा केचिद्वद्वशिरा इति पठन्ति । संयमितशिराः । व्ययं व्ययकृन् आयं प्रवेशं च करोति गणयति । विपुलं विस्तीर्णं कार्मुकं धनुर्बिभर्ति धारयति । रोमव्याप्ततनुः रोमशरीरः एष मध्यमो द्वितीयद्रेष्काणः । एष नरद्रेष्काणः सायुधः सौरसक्तश्च ॥ १७ ॥

भाषा—हाथ में कलम, श्यामवर्ण, मस्तक में पगड़ी बाँधे, खर्च और आमदनी का विचार करने वाला, रोम से व्याप्त शरीर, बड़ा विशाल धनुष धारण किया हुआ पुरुष कन्या के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप है । १७ ॥

अथ कन्यातृतीयस्य ज्ञानमुपजातिकयाह—

गौरी सुधौताग्रदुकूलगुप्ता समुच्छ्रिता कुम्भकटच्छुहस्ता ।

देवालयं स्त्री प्रयता प्रवृत्ता वदन्ति कन्यान्त्यगतस्त्रिभागः ॥ १८ ॥

गौरीति ॥ गौरी गौरवर्णा, सुधौतान्यग्राणि यस्मिन् दुकूले पटविशेषे तेन गुप्ताच्छादिता । केचित् दुकूलहस्ता इति पठन्ति । समुच्छ्रिता अत्युष्मा कुम्भो घटः कटच्छुर्दुर्बो प्रसिद्धा गृहोपयोगिकं लोहभाण्डं तत्करे हस्ते यस्याः । देवालयं सुरगृहं स्त्री युवतिः प्रयता समाहिता प्रवृत्ता गन्तुमुद्यता, वदन्ति कथयन्ति मुनयः । कन्यान्त्यगतस्त्रिभागः तृतीयद्रेष्काणः । एष स्त्रीद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च ॥ १८ ॥

भाषा—गौरवर्णा, घोया कपड़ा धारण करने वाली, उच्च जाकृति, हाथ में घड़ा और करछूल लिये हुई, अति पवित्रा, देवालय जाने के लिये प्रवृत्ता स्त्री, इस प्रकार का कन्या राशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥ १८ ॥

अथ तुलाद्यस्वरूपं वसन्ततिलकेनाह—

वीथ्यन्तरापणगतः पुरुषस्तुलावालुन्मानमानकुशलः प्रतिमानहस्तः ।

भाण्डं विचिन्तयति तस्य च मूल्यमेतद्रूपं वदन्ति यवनाः प्रथमं तुलायाः ॥

वीथ्यन्तरेति ॥ वीथ्यन्तरे मार्गमध्ये यदा पणं प्रसारकः समवस्थितस्तत्र गतः । पुरुषो नरस्तुलावान् तुलाहस्तः विद्यमानतुलः उन्माने ऊर्ध्वमाने तुला-
दिके माने मानशब्देन कुडवादौ च तरिमन्कुशलः तच्छब्दः प्रतिमानं येन
द्रव्याणि सुवर्णरत्नादीनि परिच्छिद्यन्ते तत् हस्ते यस्य भाण्डे क्रयद्रव्यं विचि-
न्तयति ध्यायति तस्य भाण्डस्यैतन्मूल्यमिति तस्य च भाण्डस्य च मूल्यं विचि-
न्तयति । एतद्यवनास्तुलायाः प्रथमद्रेष्काणस्य रूपं वदन्ति कथयन्ति । एष
नरद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च ॥ १२ ॥

भाषा—शहरों की गली में दूकान करने वाला, हाथ में तराजू लिया हुआ
पुरुष, सुवर्ण आदि तोलने में या पैली से मापने में कुशल, कसौटी (सुवर्ण जाँचने
का पत्थर) हाथ में लिया हुआ, खरीदने और बस्तुओं की कीमत जानने वाला,
इम प्रकार तुला के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप यवनों ने कहा है ॥ १२ ॥

अथ तुलाद्वितीयस्य स्वरूपं त्रोटकेनाह—

कलशं परिगृह्य विनिष्पतितुं समभीप्सति गृध्रमुखः पुरुषः ।

क्षुधितस्तृषितश्च कलत्रसुतान् मनसति तुलाधरमध्यगतः ॥ २० ॥

कलशमिति ॥ गृध्रः पक्षी गृध्रमुखो गृध्राननः कलशं कुम्भं गृहीत्वा विनि-
ष्पतितुं निर्विशेषं पतितुमभीप्सति वाञ्छति । यतः क्षुधितो बुभुक्षितः तृषितः
पिपासितोऽतः कलत्रं भार्या सुतान् पुत्रान्मनसा चित्तेनैति गच्छति । अभी-
प्सति अभिलषति स्मरतीत्यर्थः । इत्येवंप्रकारः तुलाधरमध्यगः तुलाद्वितीय-
द्रेष्काणः एष नरद्रेष्काणः खगद्रेष्काणः शनैश्चरसक्तश्च ॥ २० ॥

भाषा—गीध के समान मुख वाला पुरुष हाथ में घड़ा लेकर गिरने की इच्छा
करता हुआ, भूख और प्यास से व्याकुल, मन-ही-मन स्त्री और पुत्र का स्मरण करने
वाला, ऐसा तुला का द्वितीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ २० ॥

अथ तुलातृतीयस्य स्वरूपं वंशस्थेनाह—

विभीषयँस्तिष्ठति रत्नचित्रितो वने मृगान्काञ्चनतूष्णवर्मभृत् ।

फलान्मिषं वानररूपभृन्नरस्तुलावसाने यवनैरुदाहृतः ॥ २१ ॥

विभीषयन्निति ॥ रत्नचित्रितो मणिभिर्विभूषितः वनेऽरण्ये मृगान्हरिणा-
न्विभीषयन् भीषां कुर्वन् तिष्ठति । कीदृशः ? काञ्चनं सौवर्णं तूष्णं शराधानं वर्म
सन्नाहं ते च विभक्तिं धारयति । फलान्यामिषं च मांसं विभक्तिं नरो मनुष्यो
वानररूपभृत् वानरस्य कपेरेव रूपं विभक्तिं धारयति । फलान्याम्रादीनि ।
केचिद्धनुर्द्धरः किन्नररूपभृन्नर इति पठन्ति । धनुर्द्धरः चापहस्तः किन्नरो
देवयोनिरश्वमुखः पुरुषः तुलावसाने तुलायास्तृतीयद्रेष्काणे यवनैः पुराण-
यवनैरुदाहृतः कथितः । नरो मनुष्यो वानराकारोऽयं चतुष्वद्रेष्काणां
बुधसक्तश्च ॥ २१ ॥

भाषा—मणियों से विभूषित वानर के समान मुखवाला मनुष्य, हाथ में सुवर्ण के निबद्ध और कवच धारण किया हुआ, वन में मृगों को भय देता हुआ, फल और मांस चाहने वाला, ऐसा तुला का तृतीय द्रेष्काण पुराने यवनों ने कहा है ॥ २१ ॥

अथ वृश्चिकप्रथमस्य स्वरूपमुपजातिकयाह—

वस्त्रैर्विहीनाभरणैश्च नारी महासमुद्रात्समुपैति कूलम् ।

स्थानच्युता सर्पनिबद्धपादा मनोरमा वृश्चिकराशिपूर्वः ॥ २२ ॥

वस्त्रैरिति ॥ स्त्री वस्त्रेभ्यश्चरैस्तथाभरणैर्गलंकरणैश्च विहीना वर्जिता महासमुद्रान्महासागरात् कूलं समुपेत्यागच्छति । स्थानच्युता स्वस्थानात् भ्रष्टा सर्पनिबद्धपादा भुजगनियमितचरणा । मनोरमा चित्तानन्दविधायिनी चित्ताह्लादकरी वृश्चिकराशेः पूर्वः प्रथमद्रेष्काणः । एष स्त्रीद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणो भौमसक्तश्च ॥ २२ ॥

भाषा—वस्त्र और आभूषणों से हीन, महासमुद्र से तीर की ओर आती हुई, स्थान से भ्रष्टा, पैर में सर्प बाँधे हुई, मनोहर रूपवाली स्त्री, ऐसा वृश्चिक के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ २२ ॥

अथ वृश्चिकद्वितीयस्य स्वरूपं दोषकेनाह—

स्थानसुखान्यभिवाञ्छति नारी भर्तृकृते भुजगावृतदेहा ।

कच्छपकुम्भसमानशरीरा वृश्चिकमध्यमरूपमुशन्ति ॥ २३ ॥

स्थानेति ॥ नारी स्त्री स्थानसुखान्यभिवाञ्छति भर्तृकृते पतिनिमित्तं भुजगावृतदेहा सर्पव्याप्तशरीरा । कच्छपः कूर्मः, कुम्भो घटः तत्समानशरीरा तत्तुल्यदेहा । वृश्चिकं मध्यमरूपं द्वितीयं द्रेष्काणमुशन्ति कथयन्ति । एष स्त्रीद्रेष्काणो व्यालद्रेष्काणः जीवसक्तश्च ॥ २३ ॥

भाषा—पति के निमित्त स्थान सुख चाहने वाली स्त्री, सर्प से वेष्टित शरीर, कछुआ और घड़ा के समान आकार वाली, ऐसा वृश्चिक के द्वितीय द्रेष्काण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥ २३ ॥

अथ वृश्चिकतृतीयस्वरूपज्ञानं पुष्पिताग्रयाह

पृथुलचिपिटकूर्मतुल्यवक्त्रः श्वमृगवराहशृगालभीषकारी ।

अवति च मलयकरप्रदेशं मृगपतिरन्त्यगतस्य वृश्चिकस्य ॥ २४ ॥

पृथुलचिपिटमिति ॥ पृथुलं विस्तीर्णं चिपिटं चर्पटं कूर्मतुल्यं कच्छपसदृशं वक्त्रं मुखं यस्य । श्वा सारमेयः, मृगो हरिणः, शृगालः क्रोष्टा, वराहः सूकरः एष भीषकारी भयकारी मलयस्य चन्दनस्याकरस्य प्रदेशमुत्पत्तिस्थान-

भवति रक्षति स च मृगपतिः सिंहः अन्त्यगतो वृश्चिकस्य तृतीयद्रेष्काणः ।
एष कूर्माननः सिंहद्रेष्काणः चतुष्पदद्रेष्काणः चन्द्रसक्तश्च ॥ २४ ॥

भाषा—विशाल और विपटा कछुआ के समान मुख वाला, वन में कुत्ता, हरिण, सूकर, सियार इन जानवरों को भय देने वाला, सिंह, चन्दन वन की रक्षा करने वाला, ऐसा वृश्चिक वा तृतीय द्रेष्काण कहा है ॥ २४ ॥

अथ धन्विपूर्वस्य स्वरूपज्ञानमिन्द्रवज्रयाह—

मनुष्यवक्त्रोऽश्वसमानकायो धनुर्विगृह्यायतमाश्रमस्थः ।

क्रतूपयोज्यानि तपस्विनश्च ररक्ष आद्यो धनुषस्त्रिभागः ॥ २५ ॥

मनुष्यवक्त्र इति ॥ मनुष्यवक्त्रो नरवदनः, अश्वसमानकायः तुरगसदृश-
देहः, आयतं दीर्घं धनुश्चापं गृहीत्वा आश्रमस्थः तत्राश्रमे तिष्ठति । क्रतूपयो-
ज्यानि यज्ञोपकरणादीनि यज्ञभाण्डानि सूक्तसूत्रादीनि तपस्विनः तापसान्
ररक्ष रक्षितवान् । आद्यः प्रथमो धनुषस्त्रिभागो धन्विद्रेष्काणः । केचिच्च ररक्ष
पूर्वं इति पठन्ति । धनुषः पूर्वस्त्रिभागः प्रथमद्रेष्काणः । एषोऽश्वसमानकायः
नरद्रेष्काणः चतुष्पात्सायुधद्रेष्काणः जीवसक्तश्च ॥ २५ ॥

भाषा—मनुष्य के समान मुख, घोड़े के समान शरीर, हाथ में बड़ा धनुष
लिए हुए आश्रमस्थ होकर यज्ञीय वस्तु और तपस्वियों की रक्षा करने वाला, ऐसा
धनु का प्रथम द्रेष्काण है ॥ २५ ॥

अथ धन्विद्वितीयस्य स्वरूपज्ञानमुपजातिकयाह—

मनोरमा चम्पकहेमवर्णा भद्रासने तिष्ठति मध्यरूपा ।

समुद्ररत्नानि विघट्टयन्ती मध्यत्रिभागो धनुषः प्रदिष्टः ॥ २६ ॥

मनोरमेति ॥ मनोरमा चित्ताह्लादकारिणी, चम्पकं पुष्पविशेषः हेम सुवर्णं
तत्सदृशवर्णा तत्समकान्तिः भद्रासने आसनविशेषे तिष्ठति तत्र उपविष्टा
मध्यमरूपा न चातिशोभना नाप्यत्यशोभना समुद्ररत्नानि सागरमणीन्
विघट्टयन्ती स्त्री तिष्ठति । धनुषो मध्यत्रिभागो द्वितीयद्रेष्काणो मुनिभिः
प्रदिष्ट उक्तः । एष स्त्रीद्रेष्काणो भौमसक्तश्च ॥ २६ ॥

भाषा—मनोहर रूप, चम्पा और सुवर्ण समान वर्णवाली, समुद्र के रत्नों को
वटोरती हुई भद्रासन पर बैठी स्त्री, ऐसा धनु राशि का द्वितीय द्रेष्काण कहा
गया है ॥ २६ ॥

अथ धन्वितृतीयस्य स्वरूपमुपजातिकयाह—

कूर्ची नरो हाटकचम्पकाभो वरासने दण्डधरो निषण्णः ।

कौशेयकाव्युद्रहतेऽजिनं च तृतीयरूपं नवमस्य राशेः ॥ २७ ॥

कूर्ची नर इति ॥ नरो मनुष्यः कूर्ची दीर्घरमश्रुः, हाटकं सुवर्णं चम्पकः पुष्पविशेषः तदाभः तत्सदृशकान्तिः तत्समानद्युतिः वरासने प्रधानासने निषण्णः उपविष्टः दण्डधरो दण्डहस्तः, कौशेयकानि पट्टविशेषाणि उद्धृते धारयति । अजिनं मृगचर्म नवमस्य राशेर्धनुषः तृतीयद्रेष्काणस्य स्वरूपम् । एष नरद्रेष्काणः सायुधः अर्कसक्तश्च ॥ २७ ॥

भाषा—लम्बी दाढ़ी वाला पुरुष, सोना और चम्पा के समान कान्तिवाला, हाथ में दण्ड (लाठी) लेकर अच्छे आसन पर बैठता हुआ, पट्ट वस्त्र और मृगचर्म धारण किया हुआ, इस प्रकार का धनु राशि का तृतीय द्रेष्काण कहा गया है ॥ २७ ॥

अथ मकरप्रथमस्य स्वरूपं दोधकेनाह—

रोमचितो मकरोपमदंष्ट्रः सूकरकायसमानशरीरः ।

योक्त्रकजालकबन्धनधारी रौद्रमुखो मकरप्रथमस्तु ॥ २८ ॥

रोमेति ॥ रोमचितो रोमशः, मकरोपमदंष्ट्रः मकरतुल्यदंष्ट्रः मकरो जलचरप्राणी सूकरस्य वराहस्य कायो देहः तत्समानशरीरः तत्तुल्यतनुः । योक्त्रकं येन वलीवर्दा योज्यन्ते, जालकः प्रसिद्धः येन पक्षिणो बध्यन्ते बन्धनं निगडादि एतानि धारयति तच्छीलः । रौद्रमुखो वक्रिताननः मकरप्रथमः प्रथमद्रेष्काणः । एष पुरुषद्रेष्काणः बन्धनधारित्वात्सनिगडः सूकरसमानशरीरः न सूकरः तस्मान्न चतुष्पात् शनैश्चरसक्तश्च ॥ २८ ॥

भाषा—रोम से व्याप्त देह, मगर के दाँत समान दाँत वाला, सूकर के समान शरीर वाला, जोती (जिससे बेल बाँधे जाते हैं) जाल, बंधन (हथकड़ी) को धारण किया हुआ भयानक मुख वाला पुरुष, ऐसा मकर का प्रथम द्रेष्काण है ॥ २८ ॥

अथ मकरद्वितीयस्य स्वरूपमुपजातिकयाह—

कलास्वभिज्ञाब्जदलायताक्षी श्यामा विचित्राणि च मार्गमाणा ।

विभूषणालङ्कृतलोहकर्णा योषा प्रदिष्टा मकरस्य मध्ये ॥ २९ ॥

कलास्वभिज्ञाब्जदलायताक्षीति ॥ कलास्वभिज्ञा आभिमुख्येन जानाति अब्जदलायताक्षी अब्जदलं पद्मपत्रं तद्वदायते दीर्घे अक्षिणी यस्याः सा दीर्घनेत्रा च श्यामा श्यामवर्णा विचित्राणि नानाप्रकाराणि वस्तूनि च मार्गमाणा अभीप्समाना विभूषणैरलंकरणैरलंकृता लोहकर्णा लोहयुक्तश्रोत्रा लाहाभरणं कर्णयोर्यस्याः सा योषा स्त्री मकरस्य मध्ये द्वितीयद्रेष्काणे प्रदिष्टा उक्ता । एषः स्त्रीद्रेष्काणः शुक्ररुक्तश्च ॥ २९ ॥

भाषा—सभी प्रकार के कलाओं में निपुणा, कमलपत्राक्षी, श्यामवर्णा, नाना प्रकार के पदार्थ की खोज करने वाली, विभूषणों से अलंकृत, कान में लोह धारण की हुई स्त्री ऐसा मकर के द्रेष्काण का स्वरूप कहा गया है ॥ २९ ॥

अथ मकरतृतीयस्य स्वरूपं रथोद्धृतयाह—

किन्नरोपमतनुः सकम्बलस्तूणचापकवचैः समन्वितः ।

कुम्भमुद्धति रत्नचित्रितं स्कन्धगं मकरराशिश्चिषः ॥ ३० ॥

किन्नरोपमेति ॥ किन्नरोपमतनुः किन्नरा देवयोनयः अश्वमुखाः पुरुषास्त-
त्सदृशी तनुः, सकम्बलः कम्बलेन सहितः, तूणं शराधारं, चापं धनुः कवचं
सन्नाहः एतैस्तूणचापकवचैः शराधारधनुःसन्नाहैः समन्वितो युक्तः कुम्भं
घटं रत्नचित्रितं मणिविरचितं स्कन्धगतमंसासक्तमुद्धति धारयति ।
मकरराशेः पश्चिमस्तृतीयद्रेष्काणः । एष पुरुषद्रेष्काणः सायुधः बुधसक्तश्च ॥ ३० ॥

भाषा—किन्नर (अश्वमुख देवयोन पुरुष) के समान शरीर, कम्बल, तूणीर
(तरफ़) धनुष कवच से युक्त, कम्बल रत्नजटिन घड़ा लिये हुए, इस प्रकार
मकर के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ३० ॥

अथ कुम्भप्रथमद्रेष्काणस्य स्वरूपं दाधकेनाह—

स्नेहमद्यजलभोजनागमव्याकुलाकृतमनाः सकम्बलः ।

कोशकारवसनोऽजिनान्वितो गृध्रतुल्यवदनो घटादिगः ॥ ३१ ॥

स्नेहमद्यजलभोजनेति ॥ स्नेहस्तैलादि, मद्यं पानविशेषः जलमुदकं, भो-
जनमशनम् एतेषां य आगमः तेन व्याकुलितं मनः चित्तं यस्य । सकम्बलः
कम्बलसहितः, कोशकारवसनः पट्टवासाः, अजिनान्वितः कृष्णमृगचर्मयुक्तः,
गृध्रः पक्षी तत्तुल्यवदनः तत्समवक्त्रः, घटादिगः कुम्भप्रथमद्रेष्काणः एष
नरद्रेष्काणः खगश्च सौरसक्तश्च ॥ ३१ ॥

भा०—तैल, घृत, मदिरा, जल, भोजन इनकी आमदनी से व्याकुल मन वाला,
कम्बल, देशमी वस्त्र और मृगचर्म को धारण किया हुआ, गीध के समान मुखवाला,
ऐसा कुम्भ राशि के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ३१ ॥

अथ कुम्भद्वितीयस्वरूपं वैतालीयेनाह—

दग्धे शकटे सशाल्मले लोहान्याहरतेऽङ्गना वने ।

मलिनेन पटेन संवृता भाण्डैर्मूर्ध्नि गतैश्च मध्यमः ॥ ३२ ॥

दग्धे शकटे इति । शकटे गन्ध्यां दग्धे अग्निना भस्मीकृते सशाल्मले
शाल्मलवृक्षैः सहिते अङ्गना स्त्री लोहान्याहरते गृह्णाति वने अरण्ये मलिनेन
पटेन समलेन वाससा संवृता प्रावृता भाण्डैः भाण्डप्रकारैः मूर्ध्नि गतैः मस्त-
कारोपितैः उपलक्षिता । केचिद्भाण्डैरोपितैः परिपूर्ण इति पठन्ति । मध्यमो
द्वितीयद्रेष्काणः । एष स्त्रीद्रेष्काणः साग्निको बुधसक्तश्च ॥ ३२ ॥

भाषा—वनमें अग्नि से जले सेमलवृक्ष सहित गाड़ीपर बैठी, मलिन वस्त्र
पहिने हुई, माथेपर घड़ा लिए हुई, स्त्री लोह बटोर रही है, ऐसा कुम्भ का द्वितीय
द्रेष्काण कहा गया है ॥ ३२ ॥

अथ कुम्भतृतीयस्य स्वरूपज्ञानमिन्द्रवज्राह—

श्यामः सरोमश्रवणः किरिटी त्वक्पत्रनिर्यासफलैर्विभर्ति ।

भाण्डानि लोहव्यतिमिश्रितानि सञ्चारयत्यन्तगतो घटस्य ॥ ३३ ॥

श्याम इति ॥ श्यामः श्यामवर्णः, सरोमश्रवणः लोमशर्कराः, किरिटी मौलियुक्तः, त्वक् चर्म, पत्रं पर्ण, निर्यासः वृक्षनिर्यासः यथा गुग्गुलुः स्नेहः फलं च सुप्रसिद्धमेवाग्रादि एतैः सह भाण्डानि लोहव्यतिमिश्रितानि लोह-संयुक्तानि विभर्ति धारयति तानि च संचारयति स्थानात् स्थानान्तरं नयति । घटस्य कुम्भस्यान्तगतः तृतीयद्रेष्काणः । एष नरद्रेष्काणः शुक्रसक्तश्च ॥ ३३ ॥

भाषा—श्यामवर्ण, कान पर रोम, मस्तक पर किरिटी धारण किया हुआ, डिलका, पत्ता, गोद और फल से युक्त लोड़ से निमित्त भाण्ड (बर्तन) को धारण करनेवाला और उन बर्तनों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखते हुए पुरुष को कुम्भराशि के तृतीय द्रेष्काण का स्वरूप समझना ॥ ३३ ॥

अथ मीनाद्यस्य स्वरूपमिन्द्रवज्राह—

सुग्भाण्डमुक्तामणिशङ्खमिश्रैर्व्याक्षिप्तहस्तः सविभूषणश्च ।

भार्याविभूषार्थमपां निधानं नावा प्लवत्यादिगतो भ्रष्टस्य ॥ ३४ ॥

सुग्भाण्डेति ॥ सुग्भाण्डानि यज्ञोपकरणभाण्डानि, मुक्ता मौक्तिकं, मणयः प्रसिद्धाः, शंखः प्रसिद्ध एव एतैर्मिश्रैरेकीकृतैः व्याक्षिप्तो हस्तो यस्य आकुलकरः सविभूषणः साभरणः भार्या जाया तद्विभूषार्थमलंकरणार्थमपां निधानं समुद्रं नावा प्लवति नौस्थो गच्छति । केचिन्महार्णवं च नावा प्लवतीति पठन्ति । भ्रष्टस्य मीनस्यादिगतः प्रथमद्रेष्काणः । एष नरद्रेष्काणो जीवसक्तश्च ॥ ३४ ॥

भाषा—सुक आदि यज्ञ-पात्र, मोती, रत्नमणि, शङ्ख इन सब को अधिक संख्या में हाथ में लिया हुआ, भूषणों से शोभित, और स्त्री के भूषणों के निमित्त नौका से समुद्र में तैरने वाला पुरुष, ऐसा मीन के प्रथम द्रेष्काण का स्वरूप है ॥ ३४ ॥

अथ मीनद्वितीयस्य स्वरूपज्ञानं वसन्ततिलकेनाह—

अत्युच्छ्रितध्वजपताकमुपैति पोतं

कूलं प्रयाति जलधेः परिवारयुक्ता ।

वर्णेन चम्पकमुखा प्रमदा त्रिभागो

मीनस्य चैष कथितो मुनिभिर्द्वितीयः ॥ ३५ ॥

अत्युच्छ्रितेति ॥ अत्युच्छ्रिता अतीवोच्चध्वजाः पताका यस्मिन्पोते तमुपैति आरोहति । जलधेः समुद्रस्य कूलं तटं प्रयाति । प्रमदा स्त्री, कीदृशी ? परिवारयुक्ता सखीजनेनावृता । चम्पकं पुष्पविशेषः चम्पककान्तिः मुखवर्णेन चम्पककान्तिं मुष्णातीत्यर्थः । एष मीनस्य द्वितीयत्रिभागो मुनिभिर्गदित उक्तः । एष स्त्रीद्रेष्काणश्चन्द्रसक्तश्च ॥ ३५ ॥

भाषा—चम्पा पुष्प सदृश मुख की कान्तिवाली, परिवारों से सहित, अति उच्च पताकावाले, जहाज पर चढ़ी हुई, समुद्र के किनारे जाती हुई स्त्री, ऐसा मीन राशि के द्वितीय द्रव्माण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥ ३५ ॥

अथ मीनस्य तृतीयद्रव्माणस्वरूपज्ञानसिद्धयञ्जयाह—

श्वभ्रान्तिके सर्पनिवेष्टिताङ्गो वस्त्रैर्विहीनः पुरुषस्तद्व्याम् ।
चौरानलव्याकुलितान्तरात्मा विक्रोशतेऽन्त्योपगतो भूपस्य ॥ ३६ ॥
इति श्रीवराहमिहिराचार्यप्रणीते बृहज्जातके द्रव्माण

स्वरूपाध्यायः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

श्वभ्रान्तिके इति ॥ श्वभ्रान्तिके गर्तसमीपे सर्पनिवेष्टिताङ्गो भुजगावृतावयवः वस्त्रैरम्बरैर्विहीनो रहितः पुरुषो नरः अटव्यामरण्ये चौरैस्तस्करैः अनलेनाग्निना व्याकुलितः क्षुब्धोऽन्तरात्मा यस्य, विक्रोशते रोदिति । भूपस्य मीनस्यान्त्योपगतः तृतीयद्रव्माणः । एष व्यालद्रव्माणो भौमसत्कश्च । द्रव्माणस्वरूपस्य प्रयोजनं प्रदेशेषु व्याख्यातम् । तथा च यात्रायाम् वक्ष्यति । “द्रव्माणकारचेष्टां गुणसदृशफलं योजयेद्बृहद्दिहेतोर्द्रव्माणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च । सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात्प्रहरणसदृशे पापदृष्टे च भङ्गः सम्मोहो वाथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते पिपासुः” ॥ इति । अन्यच्चास्य प्रयोजनं चौररूपस्थानादिज्ञानम् । उक्तं च षट्पञ्चाशिकायां पृथुयशसा—
“अंशकाज्जायते द्रव्यं द्रव्माणैस्तस्कराः स्मृताः । राशिभ्यः कालदिग्देशा वयो ज्ञातिश्च लग्नपात् ॥” एवं वृत्तानि ॥ ३६ ॥

इति श्रीभट्टोत्पत्तिविरचितायां बृहज्जातकविद्युतौ द्रव्माणध्यायः सप्तविंशः ॥ २७ ॥

भाषा—वनमें गर्त (गड्ढा) के समीप, सर्प से युत शरीर, वस्त्रहीन पुरुष चोर और अग्नि के भय से व्याकुल मन से रोता हुआ, ऐसा मीन राशि के तृतीय द्रव्माण का स्वरूप मुनियों ने कहा है ॥ ३६ ॥

विशेष अर्थ—द्रव्माण के प्रयोजन—“कल्याणरूपगुणमात्म—सुहृद्द्रव्माणे चन्द्रोऽन्यगस्तदधिनाशगुणं करोति” इत्यादि पीछे कहे गये हैं । तथा यात्रा समय में एवं चोर के आकार स्थानादि जानने में इनका प्रयोजन होता है । यथा—

“द्रव्माणकारचेष्टागुणसदृशफलं योजयेद् बृहद्दिहेतो

द्रव्माणे सौम्यरूपे कुसुमफलयुते रत्नभाण्डान्विते च ।

सौम्यैर्दृष्टे जयः स्यात् प्रहरणसमये पापदृष्टे च भङ्गः

सम्मोहो वाथ बन्धः सभुजगनिगडे पापयुक्ते पिपासुः ॥”

भावार्थ यह है कि—लग्नगत द्रव्माण के आकार, चेष्टा और गुण के समान ही जातक के आकार, चेष्टा और गुण होते हैं । जिस द्रव्माण के स्वरूप आदि सौम्य, और पुष्प, फल, सुवर्ण से युत कहे गये हैं उसमें यात्रा करने से विजय और लाभ होता है । जिसका रूप भयानक, सर्प या पाशयुत तथा तृषित, क्षुब्धित कहे गये हैं उसमें यात्रा करने से हानि, पराजय और बन्धन होता है । एवं षट्पञ्चाशिका में—

अंशकाज् जायते द्रव्यं द्रव्माणैस्तस्कराः स्मृताः ।

राशिभ्यः कालदिग्देशा वयो ज्ञातिश्च लग्नपात् ॥” स्पष्टार्थ ॥ ३६ ॥

अथोपसंहाराध्यायः ॥ २८ ॥

अथात उपसंहाराध्यायो व्याख्यायते । अथाध्यायसंग्रहमुपजातिकयाह—

राशिप्रभेदो ग्रहयोनिभेदो वियोनिजन्माऽथ निषेककालः ।

जन्माथ सद्यो मरणं तथायुर्दशाविपाकोऽष्टकवर्गसञ्ज्ञः ॥ १ ॥

राशिप्रभेद इति ॥ राशिप्रभेदः प्रथमोऽध्यायः, ग्रहयोनिभेदो द्वितीयः, वियोनिजन्मा तृतीयः, अथ शब्दः आनन्तर्ये । निषेककालश्चतुर्थः, जन्मविधिः पञ्चमः, अथ सद्योमरणमरिष्टाध्यायः षष्ठः, आयुर्विभागः सप्तमः, दशाविभागोऽष्टमः, अष्टकवर्गसंज्ञो नवमः ॥ १ ॥

अथ शेषाध्यायसंग्रहं शालिन्याह—

कर्माजीवो राजयोगाः खयोगाश्चान्द्रा योगा द्विग्रहाद्याश्च योगाः ।

प्रव्रज्याथो राशिशीलानि दृष्टिर्भावस्तस्मादाश्रयोऽथ प्रकीर्णः ॥ २ ॥

कर्माजीव इति ॥ कर्माजीवो दशमः, राजयोगाध्याय एकादशः, खयोगाः नाभसयोगाध्यायः द्वादशः, चान्द्रयोगाः सुनफाद्याश्चन्द्रयोगाध्यायस्त्रयोदशः, द्विग्रहत्रिग्रहयोगाध्यायश्चतुर्दशः, प्रव्रज्यायोगाध्यायः पञ्चदशः, अथोऽनन्तरं राशिशीलाध्यायः षोडशः, दृष्टिफलाध्यायः सप्तदशः, तस्मात्परो भावाध्यायोऽष्टादशः, अथातः परमाश्रयाध्याय एकोनविंशतितमः, प्रकीर्णाध्यायो विंशतिः ॥ २ ॥

अथ शेषाध्यायसंग्रहं शालिन्याह—

नेष्टा योगा जातकं कामिनीनां निर्याणं स्यान्नष्टजन्मा दृकाणः ।

अध्यायानां विंशतिः पञ्चयुक्ता जन्मन्येतद्यात्रिकं चाभिधास्ये ॥ ३ ॥

नेष्टा योगा इति ॥ अनिष्टयोगाध्याय एकविंशतिः, कामिनीनां स्त्रीणां जातकाध्यायो द्वाविंशतिः, निर्याणं मरणज्ञानाध्यायस्त्रयोविंशतिः, नष्टजातकाध्यायश्चतुर्विंशतिः, द्रेष्काणस्वरूपाध्यायः पञ्चविंशतिः (१) । एवं पञ्चयुक्ताध्यायानां विंशतिः जन्मनि जातके उक्ता कथिता उक्ता एतज्जातके ॥ ३ ॥

भाषा—राशिप्रभेदाध्याय १, ग्रहयोनिभेदाध्याय २, वियोनिजन्माध्याय ३, निषेकाध्याय ४, जन्माध्याय ५, अरिष्टाध्याय ६, आयुर्दशाध्याय ७, दशाध्याय ८, अष्टवर्गाध्याय ९, कर्माजीवाध्याय १०, राजयोगाध्याय ११, नाभसयोगाध्याय १२, चन्द्रयोगाध्याय १३, द्विग्रहत्रिग्रहयोगाध्याय १४, प्रव्रज्याध्याय १५, राशिशीलाध्याय १६, दृष्टिफलाध्याय १७, भावाध्याय १८, आश्रययोगाध्याय १९, प्रकीर्णाध्याय २०, अनिष्टयोगाध्याय २१, स्त्रीजातकाध्याय २२, निर्याधाध्याय २३, नष्टजन्माध्याय २४, और द्रेष्काणाध्याय २५, इस प्रकार पचीस (२५) अध्याय जातक में कहे गये हैं । इनमें नक्षत्रशील १, चन्द्रान्तरराशिशील २ और उपसंहार ये ३ अध्याय पृथक् मानने से इस ग्रन्थ में २८ अध्याय होते हैं ॥ १-३ ॥

(१) एतेन षोडशाध्याये कैश्चिद् त्रयोऽध्यायाः प्रकरणभेदेन नियुक्ताः सैव सरणिः टीकाकारैरपि समाश्रिता ।

एवमिदानीं यात्रिके यात्रायां निबद्धमध्यायसंग्रहमभिधास्ये कथयिष्ये ।
तच्चोपजातिकयाह—

प्रश्नास्तिथिर्भूँ दिवसः क्षणश्च चन्द्रो विलग्नं त्वथ लग्नभेदः ।

शुद्धिर्ग्रहाणामथ चापवादो विमिश्रकारणं तनुवेपनं च ॥ ४ ॥

प्रश्नास्तिथिरिति ॥ प्रश्नाः प्रश्नभेदाध्यायः, तिथिस्तिथिवलाध्यायः, भूँ नक्षत्राभिधानं, दिवसो दिवसाभिधानं वारफललक्षणं, क्षणो मुहूर्तनिर्देशः, चन्द्रश्चन्द्रबलाध्यायः, लग्नं च लग्नविनिश्चयः, अथानन्तरं लग्नभेदो होराद्रेष्काणा-
नवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागानां लक्षणं सफलं ग्रहाणां शुद्धिः सफला समस्त-
ग्रहाणां कुण्डलिकाफलम् । अथानन्तरं अपवादाध्यायः विमिश्रकारणं विमिश्र-
काध्यायः तनुवेपनं देहस्पन्दनम् ॥ ४ ॥

शेषाध्यायस्य कीर्तनमुपजातिकयाह—

अतः परं गुह्यकपूजनं स्यात्स्वप्नं ततः स्नानविधिः प्रदिष्टः ।

यज्ञो ग्रहाणामथ निर्गमश्च क्रमाच्च दिष्टः शकुनोपदेशः ॥ ५ ॥

अतः परमिति ॥ अतोऽस्मात्परं गुह्यकपूजनं स्याद्भवेत् स्वप्नं स्वप्नाध्यायः
ततोऽनन्तरं स्नानविधिः प्रदिष्टः उक्तः, ग्रहाणां यज्ञो ग्रहयज्ञः अथानन्तरं
निर्गमः प्रास्थानिकं क्रमात्परिपाटया दिष्ट उक्तः शकुनोपदेशः शकुनरुतज्ञानम् ।
एष यात्रायां संग्रहः ॥ ५ ॥

अथ शेषवस्तुसंग्रहमुपजातिकयाह—

विवाहकालः करणं ग्रहाणां प्रोक्तं पृथक्तद्विपुलास्थ शाखा ।

स्कन्धैस्त्रिभिर्ज्योतिषसङ्ग्रहोऽयं मया कृतो दैवविदां हिताय ॥ ६ ॥

विवाहकाल इति ॥ विवाहकालो विवाहपटल ग्रहाणां करणं पञ्चसि-
द्धान्तिकायां प्रोक्तं कथितं पृथग्विभज्य तद्विपुला तस्य करणस्य शुभाशुभ-
ज्ञानाय विपुला विस्तीर्णा शाखा कथिता । त्रिभिः स्कन्धैरेतैर्गणितहोरा-
संहिताख्यैरयं ज्योतिःशास्त्रसंग्रहो मया वराहमिहिराचार्येण दैवविदां सां-
त्सरिकाणां हितार्थं कृतो विरचितः । विस्तीर्णशास्त्रण्यालोच्य संक्षेपतो मया
कृतः ॥ ६ ॥

भाषा—प्रश्नाध्याय १, तिथिवलाध्याय २, नक्षत्रबलाध्याय ३, दिनबलाध्याय
४, मुहूर्त ५, चन्द्रबल ६, लग्नसाधन ७, लग्नभेद (होरा, द्रेष्काणादि वर्ग) ८,
ग्रहशुद्धि ९, अपवादाध्याय १०, मिश्रकाध्याय ११, अङ्गस्फुरणाध्याय १२, गुह्यक-
पूजनविधि १३, स्वप्नाध्याय १४, स्नानविधि १५, ग्रहयज्ञ १६, निर्गम (यात्रा-
निर्णय) १७, शकुनाध्याय १८, विवाहपटल १९, ये यात्रिक (अर्थात् मोहूर्तिक)
विषय हैं । एवं ग्रहों का कारण (पञ्चसिद्धान्तिकोक्त) और उसकी विपुला शाखाएँ,
इस प्रकार मैं (वराहमिहिर) ने ज्योतिषियों के हितार्थं तीन (जातक, संहिता और
गणित रूप) स्कन्धों में यह ज्योतिषशास्त्र का संग्रह किया है ॥ ४-६ ॥

एतन्मालिन्याह—

पृथुविरचितमन्यैः शास्त्रमेतत्समस्तं

तदनु लघु मयेदं तत्प्रदेशार्थमेव ।

कृतमिह हि समर्थं धीविषाणामलत्वे

मम यदिह यदुक्तं सज्जनैः क्षम्यतां तत् ॥ ७ ॥

पृथुविरचितमन्यैरिति ॥ एतत्समस्तं सकलशास्त्रमन्यैराचार्यैर्वनेश्वरा-
दिभिः पृथु विस्तीर्णं कथितं तदनु तदेव शोभनतरं मया तत्प्रदेशार्थं तदुप-
दिष्टार्थं लघु स्वरूपं कृतं तत्प्रदेशोऽपि योऽर्थः सोऽस्मिंस्तात्पर्यार्थः । हि यस्मादर्थं
इहास्मिन् शास्त्रे कृतं धीविषाणामलत्वे बुद्धिशृङ्गनिर्मलोत्करणविषये समर्थ-
मुक्तमेतत् कृतम् । मया चेह संप्रहे यदुक्तमशाभनयुक्तं कथितं तत्सज्जनैः
पण्डितैर्मम क्षम्यतां, क्षन्तव्यमित्यर्थः ॥ ७ ॥

भाषा—इस ज्योतिष शास्त्र के अन्य (यवनादि) आचार्यों ने विस्तार से कहा
है । उनके बाद मैंने उन शास्त्रों में कहे हुए समस्त विषयों को संक्षेप में कहा है ।
मैंने इस ग्रन्थ में बुद्धिरूप शृंग को निर्मल (तीक्ष्ण) बनाने के लिये ही सूक्ष्म विषयों
का प्रतिपादन किया है । इसमें जो कुछ हमसे अयुक्त हुआ हो उसे सज्जन महानुभाव
क्षमा करें ॥ ७ ॥

अथ कालविशेषेण कुकृताल्पकृतयोश्च पुनः करणे सतां प्रार्थनाय वसन्त-
तिलकेनाह—

ग्रन्थस्य यत्प्रचरतोऽस्य विनाशमेति

लेख्याद्बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण ।

यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा

कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम् ॥ ८ ॥

ग्रन्थस्येति ॥ अस्य ग्रन्थस्य यत्प्रचरतो विचरमाणस्य यद्विनाशमेति याति
लेख्याल्लेखकदोषात् तत् बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण बहुश्रुतानां पण्डितानां
मुखादधिगम्य ज्ञात्वा क्रमेण परिपाठ्या विदुषा पण्डितेन रागं मात्सर्यम-
पहृत्य विहाय कर्तव्यम् । ते च शास्त्रार्थापेक्षया संस्कारेण समर्थाः । यद्वा
मया कुकृतं कुत्सितं कृतं तथाऽल्पमपरिपूर्णं तद्विचार्य विचारेण कर्तव्य-
मित्यर्थः ॥ ८ ॥

भाषा—इस ग्रन्थ के प्रचार होने से लेखक आदि के दोषवश जो अक्षरादि नष्ट
हो जाय, अथवा मुझसे ही जो कुछ अयुक्त हुआ हो, अल्प किया गया हो या प्रमाद-
वश छूट गया हो उसे—विवेकजन—बहुश्रुतजनों के मुख से या अपनी स्फीत बुद्धि
से—मात्सर्य को छोड़ कर शुद्ध कर लेवें ॥ ८ ॥

तत्रादित्यदासाख्यस्य पितुर्नाम कापित्याख्ये ग्रामे वरदनामादित्यदासाख्य
विज्ञानागमं स्वनिवासमुज्जयिनीं च नाम होराशास्त्रनाम च वसन्ततिलकेनाह—

आदित्यदासतनयस्तदवाप्तबोधः

कापित्थके सवितुलब्धवरप्रसादः ।

आवन्तिको मुनिमतान्यवलोक्य सम्य-

घोरां वराहमिहिरो रुचिरां चकार ॥ ६ ॥

आदित्यदासेति ॥ आदित्यदासाख्यो ब्राह्मणः तस्य तनयः पुत्रः तस्मादेव पितुर्आदित्यदासादवाप्तः बोधः ज्ञानं येन । कापित्थाख्ये ग्रामे योऽसौ भगवान् सविता सूर्यस्तस्माद्वधः प्राप्तो वरप्रसादो येन । आवन्तिकः आवन्तिके देशे रज्जयिन्यां वास्तव्यः । कोऽसौ वराहमिहिरः ? अयं मुनिमतानि ऋषिप्रणीतानि शास्त्राण्यवलोक्य विचार्य सम्यग्यथावस्तु कृत्वा होरां जातकशास्त्रं रुचिरां शोभनां सुगमां चकार कृतवानिति ॥ ६ ॥

भाषा—उज्जयिनी नगर निवासी आदित्यदस विप्र के पुत्र, उन्हीं आदित्यदास (अपने पिता) से ज्ञान प्राप्त कर और कपित्थ ग्राम स्थित श्रीसूर्यनारायण की आराधना द्वारा उनसे वररूप प्रसाद को पानेवाला वराहमिहिर नाम आचार्य ने मुनियों के मत को देखकर मनोहर होरा (जातक) शास्त्र को बनाया ॥ ९ ॥

अथ सतां प्रणामपूर्वकाणि शास्त्राणि प्रणामान्तानि कृत्वा ततः शास्त्रावसाने पूर्वप्रणेतॄणां नमस्कारमार्ययाह—

दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् ।

शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥ १० ॥

इति वराहमिहिराचार्यप्रणीतेवृहज्जातके उपसंहाराध्यायोऽष्टाविंशः ॥ २८ ॥

दिनकरेति ॥ दिनकरोऽर्कस्तदादिकाः सर्व एव ग्रहाः मुनयो वसिष्ठाद्याः गुरुरादित्यदासः तेषां चरणप्रणिपातेन पादनमस्कारकरणेन कृतो यः प्रसादोऽनुकम्पा तेनानुनयेन मतिर्बुद्धिर्यस्य तेन दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिना मयेदं शास्त्रमुपसंगृहीतं स्वीकृतमस्ति । तस्मात्पूर्वप्रणेतृभ्यः पूर्वशास्त्रकारेभ्यो नमोऽस्तु नमस्करणेन यः कृतप्रसादः नम इति भद्रम् ॥ १० ॥

इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां वृहज्जातकविवृतौ उपसंहाराध्यायोऽष्टाविंशः ॥ २८ ॥

भाषा—श्रीसूर्य भगवान्, वसिष्ठादि मुनि और गुरु (पूज्य पिता आदित्यदास) इनके चरण कमलों में प्रणाम करने से प्राप्त अनुकम्पा से मति (ज्ञान) पाकर मैं (वराहमिहिर) ने इस ग्रन्थ का संग्रह किया । इसलिये उन पूर्वशास्त्र रचयिता मुनिजनों को मेरा नमस्कार होवे ॥ १० ॥

वराहमिहिराचार्यकृते होरामहोदधौ ।

अर्थिनामुत्पलश्चक्रेऽर्थाप्तये विवृतिप्लवम् ॥ १ ॥

चिन्तामणिरिति ख्याता टीका शास्त्रज्ञवरत्नभा ।

सप्तसहस्रसहस्राणि (७५००) मानमस्यामनुष्ठभाम् ॥ २ ॥

प्रीतिं दौष्ट्यं परित्यज्य टीकां सम्यग्विचार्य च ।
 उपयोग्यात्र शास्त्रे चेत्सङ्ग्रहा नोपरोधतः ॥ ३ ॥
 व्याख्येयं यन्मया त्यक्तं यच्च युक्तिविवर्जितम् ।
 भ्रान्त्या त्रिलिखितं यच्च तत्सर्वं स्फुटतां नयेत् ॥ ४ ॥
 चैत्रमासस्य पञ्चम्यां सितायां गुरुवासरे ।
 वस्वष्टाष्टमिमे (१) शाके (८८७) कृनेयं विवृतिर्मया ॥ ५ ॥
 विधाय टीकां शास्त्रेऽस्मिन्यत्किञ्चित्पुण्यमर्जितम् ।
 तेन निर्मत्सरं भूयान्सौजन्यालंकृतो जनः ॥ ६ ॥
 दीर्घस्वरोष्ठ्यादिविधेयतां साहाष्टादशे द्वयजनसमकेन ।
 स्वार्थं च वेद्यां समवस्थितेन भाष्योत्पले चैव लिखापितस्तु ॥ ७ ॥
 इति भट्ट-त्पलकृता बृहज्जातकविवृतिः समाप्ता ।

पूर्ण-राम-नभोनेत्रामिते विक्रमवत्सरे ।
 चैत्रशुक्लत्रयोदश्या तिथौ भास्करवासरे ॥
 बृहज्जातकसंज्ञेऽस्मिन् वराहमिहिरोदिते ।
 सारार्थदीपिकाख्येयं व्याख्या सम्पूर्णतां गता ॥
 मिथिलादेशमध्यस्थ-चौगमाग्रामवासिना ।
 काश्यां पाठयता छात्रान् श्रीसौतारामशर्मणा ॥
 कृता पाठकवर्गाणां सज्जनानां हृदि स्थिता ।
 अज्ञानतिमिरं भित्त्वा भूयादर्थसंज्ञिका ॥

इति वराहमिहिरकृत-बृहज्जातके-भाषाभाष्ये सारार्थदीपिकाख्या
 व्याख्या सम्पन्ना ॥

(१) अत्र “वस्वष्टाष्टमिमे शाके” पाठोऽयं समुचितः । यतो भास्कराचार्यो-
 रनन्तरं भट्टोत्पलस्योत्तिरिति स्वयमेवास्यैव ग्रन्थस्य मङ्गलश्लोकविवृतौ—
 “तरणिकिरणसङ्गाशेष पीयूषपिण्डो
 दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति ।”

इति प्रमाणरूपेण समाश्रयति भट्टोत्पलः । भास्कराचार्यस्य च जन्मसमयः सिद्धान्त-
 शिरोमण्यन्ते—

“रसगुणपूर्णमही (१०३६) समशकनृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः ।

रसगुण (३६) वर्षेण मया सिद्धान्तशिरोमणी रचितः ॥”

अनेन षट्त्रिंशदधिकसहस्रमितशके निश्चीयतेऽतः षट्त्रिंशदधिकसहस्रमितशकाद्-
 व्यतीतेषु कियन्मिमेषु दिनेषु भट्टोत्पलटीकाङ्कर्तुमुद्युक्तस्तेन “वस्वष्टाष्टमिमे १६८८
 शाके कल्पयितुं शक्यते, बहुधा लेखकाध्यापकाध्येतुदोषैरिकारो भ्रष्टो जात इति
 विबुधैर्भृशं विभाव्यम् ।

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुक्सलर

राजादरवाजा, ब्राह्म-कचौड़ीगली, वाराणसी ।

